स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने लिए लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि स्वराज्य हो जाने पर लोग अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिए सरकार का मुंह ताकना शुरू कर दें, तो वह स्वराज्य-सरकार किसी काम की नहीं होगी।

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज-शिक्षकों के लिए

उत्तरप्रदेश बन्द !

११ जुलाई — होटल बन्द
१२ जुलाई — बाजार बन्द
१८ जुलाई — सरकारी दफ्तर और सरकारी बस बन्द — गोलीकाण्ड
२३ जुलाई — स्कूल, कालेज बन्द — मुठभेड़ — उपद्रव

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : १

वर्षा न होने से भगवान की कृपा तो पहले से ही बन्द थी, जुलाई में उत्तरप्रदेश के बाजार और सरकार में भी कुछ ऐसी ही हवा रही। १२ ता० की बाजारबन्दी कम्यूनिस्ट और संयुक्त समाजवादी पार्टियों के कार्यक्रम के अनुसार हुई थी, लेकिन १८ तारीख को स्वयं सरकारी दफ्तरों के कर्मचारियों ने कामबन्दी का सिलसिला शुरू कर दिया। सारा गुस्सा इस बात पर है कि महँगाई बढ़ती है तो भत्ता क्यों नहीं बढ़ता और टैक्स क्यों नहीं घटते। लोगों का कहना है कि फरवरी १९६७ में होनेवाले चुनाव तक इस तरह के विरोधपूर्ण प्रदर्शनों का सिलसिला बराबर जारी रहेगा। और, केवल उत्तर प्रदेश नहीं, पूरे देश में! अगर ऐसी बात है तो यह मानना कठिन है कि ये प्रदर्शन केवल इसलिए हो रहे हैं कि लोगों को टैक्स और महँगाई के बढ़ने के *कारण तकलीफ है, बल्कि ज्यादा लक्षण इस बात के दिखायी देते हैं कि इनके* पीछे गद्दी हासिल करने की व्यापक योजना है। विरोधी दल सोचते हैं कि इस तरह के उपायों से सरकार को खोखली और निकम्मी सिद्ध कर चुनाव में वोटरों का वोट प्राप्त करना आसान होगा।

स्वराज्य होने पर देश की व्यवस्था के लिए जो संविधान बना उसकी बुनियाद यह थी कि सरकार उस दल की होगी जिसे चुनाव में अधिक वोट मिलेंगे। साथ ही संविधान ने नागरिकों को यह अधिकार भी दिया कि वे किसी प्रश्न पर अपने विचार प्रकट कर सकें, संगठन बना सकें और लोकमत को अनुकूल करने के लिए सभा आदि बुला सकें। ये बातें लोकतंत्र

के लिए बुनियादी महत्व की मानी गयी। आज भी जनता के ये अधिकार एशिया के दूसरे किसी देश के मुकाबिले हमारे देश म अधिक सुरक्षित हैं। अगले चुनाव म जनता के लिए खुला अवसर है कि अगर वह आज की सरकार से असन्तुष्ट है तो उसे हरा दे और उसकी जगह कोई नयी सरकार बना दे। तो फिर चुनाव तक धैर्य न रखकर बीच मे ही इस तरह की उग्रता और अधीरता क्यो ?

कहा जाता है कि सरकार के कई काम ऐसे होते हैं कि उनका विरोध करना जरूरी हो जाता है। यह बात मान ली जा सकती है। अनीति और अन्याय को स्वीकार करने की सलाह कोई किसी को नही दे सकता, खासकर गाधी के देश म जहाँ उनकी सारी जिन्दगी अन्याय से लडते बीती। लेकिन यह तो सोचना ही पडेगा कि जब हमने सरकार को बदलने के लिए शान्ति के प्रतीक वोट का रास्ता सही माना है तो क्या विरोध और प्रतिकार के लिए दूसरा कोई रास्ता मान्य करेंगे ? क्या रेल और बस का रोकना विरोध के लिए जरूरी है ? रेल और यातायात को 'लाइफ लाइन' कहते हैं। क्या अपने देश की 'लाइफ लाइन' के साथ छेडछाड करना उचित कहा जा सकता है ? अगर रेल रुक जायें, बसें बन्द हो जायें, तो चीजो के मूल्य बढेंगे या घटेंगे ?

असहमति या विरोध प्रकट करने के दूसरे भी उपाय हो सकते हैं जिनको आज की परिस्थिति म लोकतत्र की दृष्टि से अनुचित न कहा जाय, लेकिन उनकी ओर शायद हमारे राजनीतिक दलो का ध्यान नही है। चूँकि सोचने की भूमिका सघर्ष और सत्ता की है, इसलिए काम करने के ढग पर उपद्रव का रग चढ जाता है, और दल के स्वार्थ के सामने देश का हित पीछे छूट जाता है। जैसे-जैसे समय बीत रहा है जनता के मन म यह बात घर करती जा रही है कि वोट तो सिर्फ एक तमाशा है, काम सचमुच उपद्रव की शक्ति से होता है। शासन किसी भी दल का हो, लेकिन क्या राष्ट्रीय भाईचारे और लोकतत्र की दृष्टि से यह स्थिति शुभ है ? क्या लोकतत्र को खतम करके हम अपने किसी अधिकार को कायम रख सकेंगे ? आज एक खास दल की सरकार है। दूसरा दल, या कई दल मिलकर उसे हटाना चाहते हैं और उसके लिए तोड फोड आदि का सहारा लेते हैं। मान लीजिए कि कल उन्ही की सरकार बन गयी, तो क्या यह मान लिया जायगा कि उस वक्त उस सरकार के विरोधियो को और अधिक तोड-फोड और उग्र कार्रवाई करने का अधिकार होगा ? आखिर, यह सिलसिला कहाँ खतम होगा ? जाहिर है कि इस सिलसिले का अन्त तानाशाही के सिवाय दूसरा हो नही सकता। फिर कहाँ रहेंगी हमारी माँगें और हमारे अधिकार ?

विरोधवाद की इस राजनीति ने देश को 'गृहयुद्ध' के किनारे पहुँचा दिया है। क्षोभ अपने म एक शक्ति है, उसे राष्ट्र के निर्माण म भी लगाया जा सकता है और विध्वस म भी। आज हमारे राजनैतिक दल जनता के क्षोभ को उभाडकर उसे अपने लिए गद्दी प्राप्त करने का साधन बना रहे हैं, और जनता भी इस भ्रम मे है कि एक दल से काम नही बना तो शायद दूसरे से बन जायगा। केरल ने पिछले वर्षों म ९ सरकार देखी हैं। पूछिए वहाँ के लोगो से कि वे क्या

चाहते हैं। सचमुच उन्हें सरकार में ही भरोसा नहीं रह गया है। वे खोये हुए हैं; निराश हैं; तेजी के साथ जीवन में उनकी आस्था खत्म हो रही है।

स्वराज्य के १९ वर्षों में राजनैतिक दलों ने—सरकारी और विरोधी सबने—मिलकर जनता की शक्ति को तोड़ा है। आज लोकतंत्र का 'लोक' पंगु दिखायी देता है। हम इतने असहाय हो गये हैं कि सरकार को 'माई-बाप' मानने लगे हैं। यह सिद्धान्त-सा बन गया है कि जो कुछ होगा सरकार-शक्ति में ही होगा; जनता की सहकार-शक्ति, उसकी सामूहिक इच्छा-शक्ति, जैसे कुछ है ही नहीं। इस तरह का मानस पैदा करने की पूरी जिम्मेदारी हमारे दलों पर है। जनता की सहकार-शक्ति के अभाव में देश का विकास असम्भव है। विकास तो असम्भव है ही, यह सरकार को निरकुश बनाने का सबसे आसान तरीका है। अगर किसी दूसरे देश पर उतना संकट होता जितना हमारे देश पर है तो देश के अच्छे से अच्छे लोगों की मिली-जुली सरकार बनती और गाँव-गाँव, नगर-नगर में आगे बढ़ने और एक-एक ईंट जोड़कर देश को बनाने का उत्साह दिखायी देता, लेकिन हम अपने देश में क्या देख रहे हैं? दलवाद, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, पूँजीवाद, राज्यवाद, सैनिकवाद—ये ही वे फूल हैं जो स्वराज्य के बाग में खिल रहे हैं। मर रहा है तो वह जो आज भी अपना खून-पसीना एक करके देश को कुछ दे रहा है। और उसके बदले में उसे मिल क्या रहा है? भूख, अरक्षा, अपमान, उपेक्षा और नेताओं के मोहक, लेकिन थोथे नारे।

दुख की बात यह है कि हमारे समाज ने अपनी समस्याओं को सलझाने की शक्ति खो-सी दी है, इसीलिए वह हर बात के लिए सरकार का, नेता का, मुँह देखता है, लेकिन हम यह भी देख रहे हैं कि सरकार भी केवल शासन की शक्ति से कोई समस्या हल नहीं कर सकती। इस वक्त जरूरत है कि एक-एक गाँव में ग्रामभावना भरी जाय, भूमि पर परिवार-स्वामित्व की जगह ग्राम-स्वामित्व स्थापित किया जाय, गाँव की पूँजी बनायी जाय, और हर गाँव अपनी योजना बनाकर आगे बढ़े। गाँव में गाँव की अपनी व्यवस्था हो, और ग्रामसभा की ओर से हर मेहनत करनेवाले को भोजन, वस्त्र की गारण्टी हो। यह कार्यक्रम है नीचे से सहकार-शक्ति बनाने और सरकार-शक्ति को सीमित करने का, 'लोक' को जगा और संगठित करके नौकरशाही को कम करने का। लेकिन मुश्किल यह है कि इस बुनियादी काम में लगने की फुर्सत किसे है। गनीमत इतनी है कि गाँव में रहनेवाले करोड़ों-करोड़ के कान अभी तक 'सरकारवाद' और विरोधवाद' के निरर्थक नारों के लिए तैयार नहीं हुए हैं। विनोबाजी के आन्दोलन में देश भर में ३६ पूरे ब्लाकों का दान बता रहा है कि गाँव बुनियादी क्रान्ति की ओर बढ़ना चाहता है, उसे दलों के दलदल में फँसने की फुर्सत नहीं है। वह नारों के जेल में बन्द नहीं होना चाहता; बन्धनों को तोड़कर मुक्त होना चाहता है।

—राममूर्ति

राष्ट्रीय विकास और शिक्षा

● रामकिशोर गुप्ता

यदि हम राष्ट्रीय विकास के हेतु किये गये गत १०, वर्षों के प्रयत्नों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि हमारे राष्ट्र के कर्णधारों ने एक साथ दो भिन्न दिशाओं में अग्रसर होने का प्रयास किया। फलस्वरूप हमारी वही दशा हुई जो दो घोड़ों पर एक साथ सवारी करनेवाले की होती है। एक ओर गांधीजी के सर्वोदय के आंचल से हमने सटे रहने का प्रयास किया और दूसरी ओर अपनी समस्त शक्ति को औद्योगिकीकरण एवं नगरोत्थान की ओर केंद्रित कर दिया। परिणाम यह हुआ कि ग्राम विकास और ग्रामोत्थान का प्रश्न हमारे दिल में तो समाया रहा किन्तु नेत्रों से न चाहते हुए भी ओझल हो गया। अतः शहरी विकास की चकाचौंध में ग्राम विकास पिछड़ गया, धूल में मिल गया। इस तथ्य को दृष्टिपथ में रखते हुए हमें यह कहना ही होगा कि तृतीय पंचवर्षीय योजना के आरम्भ तक राष्ट्रीय विकास की कोई दीर्घकालीन योजना हम तय करने में असफल रहे। यह अथवा वह के चक्रव्यूह में हम एक अनिश्चितता के झूले में झूलते रहे।

आज चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की जो रूप रेखा देश के सम्मुख प्रस्तुत है उससे स्पष्ट झलकता है कि राष्ट्रीय विकास के प्रयत्नों की शृंखला में सबसे कमजोर कड़ी कृषि विकास की रही है। तृतीय योजना के आरम्भ में शुद्ध राष्ट्रीय आय का जो अनुमान आगामी १५ वर्षों के लिए लगाया गया था उसमें १९६५ ६६ में १९,००० करोड़, १९७० ७१ में २५,००० करोड़ और पाँचवीं योजना के अन्त तक ३३,००० ३४,००० करोड़ रुपये आँका गया

या; किन्तु चतुर्थ योजना के स्मरण-पत्र में योजना आयोग ने १९६४ में यह स्वीकारा है कि तृतीय योजना के प्रथम तीन वर्षों में राष्ट्रीय आय में १० प्रतिशत से भी कम वृद्धि हुई, जिसके लिए कृषि की कम उपज और अन्य लागत पूँजी से आय का प्राप्त न होना मुख्य कारण दिये हैं। साथ ही यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि की उपज में वृद्धि करने के सभी प्रयत्नों के बावजूद तृतीय योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय १९,००० करोड न होकर केवल १७,४०० करोड रुपये ही हो सकेगी। दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि के आँकडे १९६६ के लिए ४९२ करोड से बढाकर ४९५ करोड, १९७१ के लिए ५५५ करोड से ५६० करोड और १९७६ के लिए ६२५ से बढाकर ६३० करोड करने पडे।[१]

राष्ट्रीय विकास की कठिनाइयाँ

कृषि की उपज में आशातीत सफलता का न मिलना और जनसंख्या में अनुमान से अधिक वृद्धि राष्ट्रीय विकास में अनेक कठिनाइयों का जन्म देते हैं। उदाहरणार्थ कच्चे माल के प्रचुर मात्रा में न मिल सकने के कारण औद्योगिक प्रगति में या तो अवरोध पैदा हो जायगा या वह विदेशी सामान की प्राप्ति पर आधृत हो जायगी। जिस स्थिति से आज हमारा देश गुजर रहा है उस स्थिति में विदेशी व्यापार की प्रतिकूल दशा और ऋण सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण औद्योगिक विकास का पूर्ण विस्तार न हो पाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि औद्योगिक विकास के सभी प्रयत्न देश की आर्थिक दशा को और विशेषतया जन-साधारण की दशा को सुधारने व समृद्धिशाली बनाने में असमर्थ रहे हैं।

हम अपनी सभी योजनाओं को औद्योगिकीकरण पर आधारित मानकर चले। राष्ट्र की आर्थिक कठिनाइयों में इसे रामबाण माना, किन्तु इससे हमें कितनी सफलता मिली, इसका एक चित्र डा० वी० के० आर० वी० राव के शब्दों में देखिए[२]—

राष्ट्रीय आय में भारी उद्योगों और खनिज उद्योग का अंशदान १९५०–५१ और १९५९–६० के बीच ६२० करोड से १२६० करोड अर्थात् ६५ प्रतिशत से ९८ प्रतिशत हो गया; तब भी इस दस वर्ष की अवधि में इससे केवल ६३० लाख अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सका, अर्थात् कार्य देने में इनका योग २२ प्रतिशत बढा, जबकि राष्ट्रीय आय में इनका योगदान १४४ प्रतिशत बढा। यह और भी महत्वपूर्ण है कि गत पाँच वर्षों में यह योगदान और भी घटा, अर्थात यह केवल ३४२ लाख से ३६६५ लाख हो सका।

इन आँकडों से यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक विकास में जो आशाएँ हमने बाँधी थी वह पूर्ण न हो सकीं। देश से बेकारी को दूर करने और आय की विषमता को कम करने में इसका योगदान बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं रहा। साथ ही इस तथ्य से भी हम मुख नहीं मोड सकते कि औद्योगिक क्षेत्र में हमारी इस सफलता का मुख्य श्रेय विदेशी सहायता का रहा जो हमें अबतक मुक्तहस्त प्राप्त होती रही, किन्तु राष्ट्रीय विकास के लिए जन साधारण में, जो एक स्फूर्ति लाने और उनमें योगदान देने की भावना को जागृत करने की नितान्त आवश्यकता होती है, वह हम पूर्ण न कर पाये। आज भी बेकारी बराबर बढ रही है और परिणाम-स्वरूप विशाल मानव-शक्ति का हम उपयोग न कर पाये, जो निरर्थक नष्ट हो रही है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि औद्योगिकीकरण की नीति में स्वतः कोई बुराई नहीं है, किन्तु एक विशाल जनसंख्यावाले देश में, जिसकी ७०% से भी अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती हो, इसे पूर्णतया या विशेषतया अपनाने का अर्थ होगा देश में बेकारी को बढावा देना। अतः कहना पडेगा कि कम-से-कम भारत-जैसे देश में तो औद्योगिक विकास के लिए कृषि विकास को अधिक बढावा देना होगा। यही कारण है कि औद्योगिक विकास के साथ साथ लघु उद्योग और कृषि की ओर हमारा ध्यान बार-बार

१ Memorandum on the Fourth Five year Plan Planning Commission, Delhi—October 1964

२ V K R V Rao "Walchand Memorial lecture Series" Bombay 1962, as cited by Vaikunth L Mehta, "Decentralised Economic development" (Bombay Directorate of Publicity Khadi and Village industries Commission, 1964) P 96

जाता है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इस बात को विशेष महत्व दिया गया है।

शिक्षा का गौण अनुदान

इस पृष्ठभूमि में यदि राष्ट्रीय विकास के क्षेत्र मे राष्ट्रीय शिक्षा के अनुदान का विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि हमारी शिक्षा में भी अधिकांश वह औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं की ही पूर्ति के लिए मानव शक्ति की तैयारी एवं विकास पर दिया जाता रहा है। परिणाम-स्वरूप कृषि विकास और गृह उद्योगों की मानव-शक्ति-सम्बन्धी आवश्यकताएँ तथा शिक्षा का इस क्षेत्र में अनुदान गौण रूप धारण करता चला गया।

हाल ही में किये गये एक अध्ययन[1] के आँकड़ा का विश्लेषण बतलाता है कि देहली राज्य के दूरवर्ती ग्रामो से १९६१-६५ में हायर सेकेण्ड्री पास करनेवाले छात्रों में से २५ प्रतिशत छात्र कृषि के कार्य में योग दे रहे हैं, जबकि लगभग ५० प्रतिशत छात्र उन परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं जिनके पास उपजाऊ भूमि है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन परिवारो में से अधिकांश शिक्षित युवकों के योगदान की कमी को छोटे बच्चों और स्त्रियों के योग से पूरा किया जाता है। अध्ययन के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि कृषि उत्पादन के कार्य को वैज्ञानिक तरीकों से चलाने और उन पुराने तरीकों से निकालने के लिए भी शिक्षित युवकों का योगदान इस ओर अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि देश के आर्थिक विकास और उसमें शिक्षा के अनुदान की जो आवश्यकता अब डा० राव, श्री जे० पी० नायक, डा० कोठारी आदि शिक्षाविदों के लेखों-द्वारा सम्मुख आ रही है, उसके लिए क्या यह आवश्यक न होगा कि न केवल शिक्षा प्रणाली को आर्थिक ढाँचे के अनुरूप बनाने की चेष्टा की जाय अपितु नियोजन के पूर्ण सहयोग से आर्थिक विकास और शिक्षा में सामञ्जस्य पैदा किया जाय?

राष्ट्र की मूल आवश्यकता

राष्ट्रीय विकास का अर्थ यदि जन-साधारण का विकास है तो हमारे सम्मुख मूल प्रश्न यह उठता है कि देश का आर्थिक ढाँचा क्या हो और उसके अनुसार शिक्षा का स्वरूप कैसा हो? कहना न होगा कि भारत की अधिकांश जनता के लिए कृषि अब भी जीविका का मुख्य साधन है और इसका विकास जनता के विकास का प्रतिबिम्ब है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, किन्तु कृषि का विकास केवल मशीनों की भरमार, कृत्रिम खाद का उत्पादन और सामुदायिक विकास की बड़ी-बड़ी योजनाओं से नहीं हो सकता। इस दिशा में मूल आवश्यकता है शिक्षित युवकों को खेती के कार्य में लगाने की और ग्राम छोड़ शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति को रोकने की।

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु दो प्रश्न हमारे सम्मुख आते हैं—शिक्षित युवकों को कृषि की ओर किस प्रकार प्रवृत्त किया जा सकता है और उनमें बढ़ती हुई शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति को कैसे रोका जा सकता है? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर हमें बुनियादी शिक्षा मे मिलते हैं। राष्ट्र-पिता गांधी ने राष्ट्र के विकास की कल्पना को ध्यान में रखकर ही बुनियादी शिक्षा की परिकल्पना राष्ट्र को दी थी। उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए, जहाँ एक ओर गृहउद्योगों को बढ़ावा देने और कृषि की उन्नति आवश्यक है वहीं दूसरी ओर शिक्षा में हस्तकला और उद्योग सम्बन्धी शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान देकर शिक्षित वर्ग के मन से शारीरिक श्रम-सम्बन्धी घृणा को दूर करना भी अत्यन्त आवश्यक है। बुनियादी शिक्षा का यही आधारभूत सिद्धान्त है।

इस विषय में एक और विचारणीय प्रश्न यह है कि बुनियादी शिक्षा के इस आधारभूत सिद्धान्त को केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता।

---

१. R K Gupta "A Study of the out come of the spread of Higher Secondary Education in the Villages of Delhi Admn for the development of Agriculture and village improvement programmes during the period 1961-65" Unpublished M Ed dissertation, C I E, Delhi 1966

जहाँ एक ओर ग्राम-सुधार और ग्रामोत्थान हमारा लक्ष्य है वहाँ दूसरी ओर देश की समस्त जनता में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न कर सभी नागरिकों को श्रम-प्रेमी बनाना है। शिक्षा के क्षेत्र में यदि केवल रोजगार पाने की स्थिति से ऊपर हम न उठ सके तो राष्ट्र-विकास की सभी योजनाओं में बाधाएँ आती ही रहेंगी तथा शहरी और ग्रामीण जनता का यह संघर्ष बढ़ता ही चला जायगा। शिक्षाप्रणाली में शहरी और ग्रामीण भेदभाव को दूर करना होगा। इस बात को दृष्टि में रखते हुए हमें सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए बुनियादी शिक्षा को आधार बनाना होगा। हाँ, आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न उद्योगों की शिक्षा की खुली छूट बुनियादी शिक्षा में है। अतः स्थान विशेष के अनुसार इन्हें चुना जा सकता है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शहरीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर और केवल औद्योगिक विकास का सहारा लेने से राष्ट्र विकास में बाधाएं आने की और श्रम के प्रति हीन भाव एवं बेकारी की समस्या में वृद्धि होगी। अतः यदि हम सम्पूर्ण रूप में राष्ट्र की उन्नति और प्रगति चाहते हैं, प्रजातन्त्र और समाजवाद के आदर्शों को सही दिशा देना चाहते हैं और चाहते हैं कि भारत का प्रत्येक नागरिक श्रमनिष्ठ हो तथा राष्ट्र पर भार न बनकर उसका भार अपने कन्धा पर वहन करने की क्षमता रखे तो बुनियादी शिक्षा प्रणाली को हमें समस्त राष्ट्र के लिए बिना किसी भेदभाव के अपनाना होगा। राष्ट्र के विकास को ग्राम-विकास के सन्दर्भ में सोचना होगा, तभी हम सब प्रकारेण सुखी और आदर्श राष्ट्र की कल्पना साकार कर सकते हैं।

•

'गाँव की बात' का प्रकाशन

- साथियों-द्वारा बारबार यह कहा जाता रहा है कि गाँववालों के समझने लायक और गाँव की रुचि की एक पत्रिका प्रकाशित करनी चाहिए। फिलहाल यह सोचा गया है कि 'गाँव की बात' नाम से 'भूदान यज्ञ' का ४ पृष्ठ का एक परिशिष्ट हर १५ दिन पर निकाला जाय। इसके सम्पादन की जिम्मेदारी आचार्य राममूर्ति ने ली है।
- इस परिशिष्ट में गाँववालों के उपयोग तथा रुचि की बातें सरल सुबोध भाषा में रहेंगी। इसमें गाँवों में ग्रामस्वराज्य की स्थापना कैसे हो, गाँवों का विकास तथा निर्माण कैसे हो, आदि समस्याओं से सम्बद्ध सामग्री दी जायगी।
- देहाती जनता तथा ग्रामदानी गाँवों के लिए 'गाँव की बात' उपयोगी होगी।
- 'गाँव की बात' डिमाई आकार के अर्थात् ११ ×९" आकार के ८ पृष्ठों में बड़े टाइप में प्रकाशित की गयी है।
- अलग से मँगानेवालों के लिए 'गाँव की बात' का वार्षिक चन्दा तीन रुपये है।
- 'गाँव की बात' के एक वर्ष में २४ अंक होंगे।
- 'गाँव की बात' का पहला अंक ५ अगस्त को प्रकाशित हो गया है।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

समाज की गतिविधि और शिक्षा

• द्वारिका सिंह

यह निर्विवाद है कि प्रत्येक स्वतंत्र देश अपने निश्चित लक्ष्य के अनुसार देश-निर्माण की अपनी योजना तैयार करता है और योजना की दिशा में वह ठोस कदम उठाता है। अपना देश भी एक महान स्वतंत्र देश है और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही अपने को सबल, पुष्ट और विकसित करने का हर तरह से प्रयास कर रहा है। दासता से मुक्त हो जाने के बाद दासत्व-काल की जितनी दुर्बलताएँ थी, वे सब-की-सब राष्ट्रीय धरातल पर उभर आयीं और देश के विकास की दिशा में अनेकानेक भीषण समस्याएँ हमलोगों के सामने उपस्थित हो गयी। हमने विषम परिस्थितियों में कठिन-से-कठिन समस्याओं को समझने की कोशिश की, यथाशक्ति निदान ढूँढा और आगे बढ़ने की चेष्टा की।

देश की महान उपलब्धियाँ

उदाहरण के लिए कुछ विवरण हम अपने सामने रख सकते है—नदी-घाटी-योजनाओं की कार्यान्विति, दुर्गम स्थानों और पहाड़ो पर ऊँचे-से-ऊँचे बांधों का निर्माण, सुदूर अविकसित क्षेत्रों में सिंचाई के लिए जलपूर्ति और उद्योग तथा प्रकाश के लिए विद्युत् आपूर्ति, दुर्गम और विनाशलीला करनेवाली नदियों का मार्गान्तरीकरण, लम्बे-लम्बे तट, बांधों का बांधना, लम्बे-लम्बे पुलो का निर्माण, हजारों-हजार मीलों में सड़कें बनाना, रेलें बिछाना, निर्माण-सम्बन्धी बड़े-बड़े कारखानों को खड़ा करना, छोटे-बड़े उद्योग-केन्द्रों को देश में जाल की तरह

विद्यालय, ऊँची से ऊँची तकनीकी और विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध करना, विशाल राष्ट्रीय अनुसन्धान-सम्बन्धी और प्रयोगिक संस्थानों का निर्माण, करोड़ों-करोड़ बच्चों के लिए विद्यालयों महाविद्यालयों और औद्योगिक शालाओं की स्थापना, दुर्गम घाटियों और पहाड़ियों पर चौकसी के लिए चौकियों का निर्माण, खाद्य स्वावलम्बन के लिए खाद की आपूर्ति की दिशा में बड़े बड़े कारखानों का निर्माण, उन्नत बीज, उन्नत औजार और उन्नत यन्त्रों का संग्रह और वितरण इत्यादि हमारे देश की महान उपलब्धियाँ हैं, जिनके लिए हमें गर्व है।

समाज की घातक गतिविधियाँ

साथ ही दूसरी ओर समाज की ऐसी गति विधियाँ हैं, जो सहज ही हमें चिन्तित और उद्विग्न बनाती हैं। जैसे, भाषा का प्रश्न उठाकर निकृष्ट से निकृष्ट आन्दोलनों का खड़ा करना, कठिन परिश्रम से बनाये इस सबल देश को टुकड़ों में बाँटने की चेष्टा करना, साधारण समस्याओं के लिए भी विवाद खड़ा कर आन्दोलन करना, वेश भूषा, खान-पान, रहन-सहन और संस्कार में तीव्र गति से विलासिता और भोग लिप्सा का समावेश, राष्ट्रीय सम्पत्ति—रेल, तार, डाक, सड़क, पुल, केन्द्रीय भण्डार, यातायात के साधन—को बेरहमी और नासमझी से नष्ट करना, पग-पगपर अनुशासनहीनता, उद्दण्डता,और उच्छृंखलता का प्रदर्शन, मत विरोध होनेपर देश हित का विरोध करना, छोटे-छोटे स्वार्थों को लेकर राष्ट्रीय एकता में व्यवधान उपस्थित करना, मनचले गन्दे साहित्य का निर्माण, लुक छिपकर कुत्सित विचारों का प्रचार करना, बहकावे में आकर देशद्रोह करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करना, ये ऐसी सामाजिक गतिविधियाँ हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान अतिशीघ्र जाना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद चलते हुए प्रगतिशील कार्य क्रम का कार्यान्वयन और लोकतन्त्र विरोधी दुष्प्रवृत्तियों का जागरण, परस्पर ऐसे विरोधी तत्त्व हैं, जो लोकतन्त्र के विकास की दिशा में घातक सिद्ध होते हैं।

ऐसी विपरीत सामाजिक गतिविधियों के दुष्परिणाम हमारे राष्ट्रीय जीवन में नित्यप्रति परिलक्षित हो रहे हैं। इसलिए हमारे सामने सबसे प्रमुख विषय आज यह है कि ऐसी सामाजिक अवरोधक गतिविधियों पर नियन्त्रण कैसे हो और राष्ट्रीय जीवन सही पगडण्डी पर कैसे लाया जा सके। बापू युगद्रष्टा थे। उन्होंने भावी राष्ट्रीय जीवन का एक स्पष्ट चित्र अपने मानस में अंकित किया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बहुत पहले उन्होंने देश के सामने राष्ट्रीय जीवन का एक नक्शा रखा था। नक्शा बनाने की विधि भी बतायी थी और तदनुकूल उपकरण भी ढूँढ रखे थे। यदि हम ऐसा कहें कि बापू के इन दिये गये सुझावों की ओर हमने ईमानदारी से ध्यान नहीं दिया तो यह कोई अनुचित नहीं होगी। आज सरकार और समाज सेवी सारी-की-सारी संस्थाएँ समाज की इन गतिविधियों से अवगत हैं और वे निदान भी ढूँढना चाहती हैं, पर लगता ऐसा है कि धागे सुलझते नहीं हैं उलझते ही चले जाते हैं।

लोकतन्त्र का संक्रमण-काल

इन पंक्तियों में पाठकों का ध्यान कुछ प्रमुख बातों की ओर आकृष्ट किया जा रहा है। हमारा देश एक नया समाज बनाना चाहता है। नये समाज का एक काल्पनिक चित्र भी सामने है। समाज निर्माण की विधि भी उसने ठीक कर ली है और वह विधि उसने निश्चित की है—लोकतान्त्रिक प्रणाली की। उसने यह भी तय किया कि भारतीय लोकतन्त्र अतीत के गौरव, संस्कृति, वर्तमान की वास्तविक स्थिति और भविष्य की ठोस कल्पना पर आधारित होगा। यह निर्विवाद सत्य है कि जिस देश की जैसी लोकशिक्षण-पद्धति होगी वैसा ही उसका विचार बनेगा। जिस प्रकार का राष्ट्रीय विचार होगा, वैसा राष्ट्रीय आचार होगा, और जिस हद तक राष्ट्रीय आचार होगा, उस हद तक उस देश की लोकतान्त्रिक प्रणाली सफल या असफल होगी। इसलिए अपने देश की कौनसी लोकशिक्षण-पद्धति हो और उसका कार्यान्वयन किस प्रकार हो, जिससे प्रतिकूल और भयावह आधुनिक सामाजिक गतिविधियों का निराकरण हो सके, इनके सम्बन्ध में पूरी गहराई और मननशीलता के साथ सामूहिक रूप में सोचने की बात है। केन्द्र सरकार ने एक आयोग गठित किया था। उसका प्रतिवेदन हमारे सामने आ गया है। पूज्य विनोबा अपने विचारों से हमें

प्रभावित कर रहे हैं। सर्व-सेवा संघ का यह अनवरत परिश्रम हो रहा है कि देश अपनी स्थिति को ठीक से समझे, पर लोकतन्त्र के इस संक्रमण-काल में कोई रास्ता सूझ नहीं रहा है और निरंकुश होकर देशवासी व्यक्तिगत रूप से या संस्थागत जैसा-तैसा मार्ग अपनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

शिक्षा-जगत को चुनौती

आश्चर्य तो तब होता है जब प्रत्यक्ष रूप से समाज विरोधी तत्त्व पूरी सक्रियता के साथ विध्वंस में रत रहते हैं या वासनापूर्ण जीवन सामाजिक तौर से बिताने की चेष्टा करते हैं तो भी समाज मूक होकर दर्शकमात्र बना रहता है और उस दिशा में उन गतिविधियों के प्रतिकार के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाता। ऐसी स्थिति में जैसा ऊपर कहा गया है कि समाज को सामूहिक चिन्तन दिशा में आमूल परिवर्तन लाकर सही दिशा में उसके मार्गान्तरीकरण की आवश्यकता होगी और यह काम सामूहिक लोक शिक्षण की प्रक्रिया को सबल बनाकर ही करना होगा। इस बात को ठीक से समझने की कोशिश रखनी चाहिए कि समाज निर्माण के लिए कोई लोक-शिक्षण-पद्धति हमारी सही चल रही है। मात्र-लगभग आठ करोड़ बच्चों की औपचारिक शिक्षा को हम लोक-शिक्षण नहीं कह सकते। आज बाकी सैंतीस करोड़ लोगों के बारे में कौन सोचता है? चौबीस प्रतिशत साक्षरता स्तर और राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घात प्रतिघातों के बीच निरंकुशता के साथ बढ़ते हुए समाज की गतिविधियों को जैसे-तैसे छिटपुट औपचारिक प्रयत्नों से रोक नहीं सकते। ४५ करोड़ लोगों के सामूहिक चिन्तन के लिए निर्माण की राष्ट्रीय योजनाओं को सामने लाना होगा और तदनुसार मार्गदर्शन का अपना निजी और सार्वजनिक आचरण भी ऊँचे माप दण्ड पर लाने का प्रयत्न करना होगा। समाज के वर्तमान अव-रोधक और विनाशकारी मूल्यों को बदलना होगा और इस संक्रमणकाल में समाज का चाहे जो भी बलिदान करना हो, उसे दृढ़तापूर्वक करने को कटिबद्ध रहना होगा। शैक्षिक और लोकोपकारी संस्थाओं को इस कार्य में पूरी स्वतन्त्रता देनी होगी। अतीत की संस्कृति और सभ्यता की आधारशिला पर, वर्तमान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भावी समाज की कल्पना को सम्मुख रख पूरी दृढ़ता और संयम के साथ समाज का मार्गदर्शन करना होगा। इस प्रक्रिया में नासमझ, समाज विरोधी तत्त्वों का दृढ़ता से सामना करना होगा। इस शमन की प्रक्रिया में नारियल के बाह्य और अन्तर रूप का आच-रण करना होगा।

यह काम कैसे होगा, शिक्षा-जगत सोचे और रास्ता निकालने का प्रयास करे, नहीं तो अपनी आँखों के सामने समाज की प्रतिकूल गतिविधियों को देखते हुए शुतुर्मुर्ग की तरह रेत में अपना सिर छिपाने के समान ऐसी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी, जो लोकतन्त्र के सम्यक् विकास के लिए घातक सिद्ध होगी। शिक्षा-जगत को यह चुनौती स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि यह उसीका काम है किसी अन्य का नहीं।

●

एक वर्ग हमारे देश में तैयार हुआ है, जो मानता है कि भारत का अध्यात्म उज्ज्वल है सो तो ठीक, भारत का मिशन सांस्कृतिक है सो भी मंजूर, लेकिन असली बात हम भूल नहीं सकते कि भारत का उद्धार पश्चिम का निष्ठावान शिष्य बनने में ही है। पश्चिम का विज्ञान, पश्चिम का बुद्धिवाद और उपयोगितावाद पश्चिम की यन्त्र-विद्या, कल कारखाने, अर्थशास्त्र और राजनीति इतनी ही बातें ठोस हैं। उसके सामने बाकी की सब बातें ढकोसले हैं। ऊपर की बतायी पश्चिम की बातें अपनाने के लिए अंग्रेजी भाषा अपनाये बिना चारा नहीं।

यह पश्चिमी पक्ष इतने स्पष्ट शब्दों में बोलता नहीं, लेकिन कार्य करता जाता है। मानवता, जागतिकता और अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के नाम से यही पक्ष बलवान होता जा रहा है।

—काका कालेलकर

देश की समस्याएँ और हमारी शिक्षा

● मनमोहन चौधरी

आज के जमाने की खास विशेषता है उसकी परिवर्तनशीलता। गत हजारों वर्षों से, जो परिवर्तन नहीं हुए अभी हम देख रहे हैं कि पिछले दस-बीस वर्षों में बहुत तेजी के साथ हो रहे हैं। एक महिला भारत की प्रधानमंत्री चुनी गयी है। आज से ४० वर्ष पहले यानी मेरे बचपन में हिन्दुस्तान की जो हालत थी उसमें यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि एक महिला हिन्दुस्तान की प्रधानमंत्री बन सकती है। उस जमाने में यह भी देखने को नहीं मिलता था कि इतनी संख्या में बहनें सार्वजनिक काम में भाग लेंगी। अभी विश्व राष्ट्रसंघ (यू० एन० ओ०) के अध्यक्ष पिछले दिनों घाना के एक नीग्रो नेता रहे हैं। १५–२० साल पहले ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सामाजिक परिवर्तन और विकास की दिशा

अभी डेढ़ साल पहले पण्डितजी (श्री जवाहरलाल नेहरू) का शेष कृत्य हुआ और कुछ दिन पहले शास्त्रीजी का। सारी दुनिया के लोग यहाँ पहुँचे थे, लेकिन १८ साल पहले जब गांधीजी का शेष कृत्य हुआ तो ऐसा नहीं हुआ था। गांधीजी के लिए दुनिया में क्या कम आदर था? नहीं, लेकिन १८ साल पहले सम्भव नहीं था कि दुनिया के विभिन्न कोनों से मनुष्य इतने कम समय के अन्दर पहुँच सकें। यातायात के साधनों में इतना विकास इन थोड़े दिनों में ही हुआ है।

इस प्रकार हम अपने चारों तरफ पचासों परिवर्तन

देखेंगे। इन्हें हम मुख्यत दो हिस्सों में बाँट सकते हैं--- एक तो आपसी सम्बन्ध और दूसरा कुदरत के साथ मनुष्य का सम्बन्ध। आपसी सम्बन्धों में, जो परिवर्तन हुए उनमें हम देखेंगे कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता का समावेश अधिक-से-अधिक हुआ है। अनेक राष्ट्र स्वतंत्र हुए हैं। समाज की रचना पहले-जैसी नहीं रही। बहुत हद तक वह रचना टूट रही है। कुछ विशेष वर्ग या जमातें जो दबी रहती थीं, जिनको पूरी सामाजिक स्वतंत्रता नहीं थी उनको आजादी मिल गयी है। परिवारों में भी परस्पर मत परिवर्तित हो रहे हैं। पहले जहाँ भय और अधिकार का महत्व था, वहाँ परस्पर समानता और प्रेम का बोलबाला है। आज आपसी सम्बन्ध चाहे वे बाप बेटे के हों या पति पत्नी के, उनमें बहुत परिवर्तन हुआ है और हो रहा है।

साथ ही व्यक्ति के जीवन में और भी एक परिवर्तन हुआ है। वह यह कि जड परिश्रम के बदले सृजनशीलता का विकास होने लगा है। लोग सोचने लगे हैं कि मनुष्य को केवल मेहनत करना नहीं है, बल्कि अपने आन्तरिक विचारों को भी कार्यरूप में परिणत करना है। दूसरी तरफ बढ़ते विज्ञान के कारण कुदरत पर मनुष्य ने पहले से अधिक नियंत्रण हासिल कर लिया है या कुदरत के भण्डार से अधिक सहूलियतें प्राप्त कर ली हैं और वह अपने उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अधिक सफल ढंग से प्रयास कर रहा है। इससे गरीबी, बीमारी आदि भौतिक दुःखों को मिटा सकने के लिए मनुष्य के हाथ में आज बहुत बड़ी ताकत आ गयी है।

इसके अतिरिक्त यातायात के साधनों में विकास के कारण दुनिया एक बन रही है और समाज में परस्पर परिचय बढ़ रहा है। ये परिवर्तन करीब दो-ढाई सौ वर्षों में बहुत तेजी से हुए हैं। इनके विकास की गति में अभी और तेजी आ रही है। इन परिवर्तनों के पीछे समाज में बड़ी-बड़ी ताकतें—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक—काम कर रही हैं। उनके कारण समाज में होनेवाले परिवर्तनों में से किसी का समाज पर अच्छा असर होता है किसी का बुरा, किसी के कारण सुख मिलता है किसी के कारण दुःख। ये अपने आप होनेवाले परिवर्तन होते रहे हैं, लेकिन मनुष्य में इनपर नियंत्रण प्राप्त करने की इच्छा रही है और धीरे धीरे कोशिश भी चलती रही है। आज दुनिया में जगह जगह नयी-नयी योजनाएँ बन रही हैं, शिक्षण के बारे में सोचा जा रहा है समाज में सुधार के बारे में सोचा जा रहा है यह सारा हमारा प्रयास अपनी इच्छा से और किसी निश्चित ध्येय की ओर समाज को ले जाने की दृष्टि से चल रहा है।

हमें स्वराज्य मिले १८ वर्ष हो गये और हमारा प्रयास बराबर अन्न-स्वावलम्बन की दिशा में चल रहा है, लेकिन प्रश्न जहाँ-का-तहाँ है। कोई हल निकलता नहीं दिखता। विनोबाजी से लेकर और कई बड़े बड़े दुनिया के दूसरे देशों से आये हुए अर्थशास्त्रियों तक ने बताया है कि सिर्फ फर्टीलाइजर और इन सारे यन्त्रों के बल पर स्वावलम्बन होनेवाला नहीं है। आज की सबसे जरूरी समस्या है जमीन की। जमीन की समस्या का अर्थ जमीन का सुधार नहीं, बल्कि जमीन के आधार पर मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों में सुधार। कोई मालिक है, कोई मजदूर, कोई भूमिहीन, कोई भूमिवान।

आज उत्पादन के लिए केवल यन्त्र और मजदूर ही आवश्यक नहीं हैं, बल्कि इन दोनों के आपसी सम्बन्धों का बहुत बड़ा योगदान अपेक्षित है। लेकिन, समाज में मालिक मजदूर के सम्बन्धों में जमीन आसमान का फर्क है। अगर इन सम्बन्धों के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर में भी ज्यादा फर्क रहा तो उसका असर होता है।

अगर उत्पादन बढ़ाना है तो समाज का संगठन और उसका स्वरूप बदलने का सवाल आता है। तकनीक का सवाल तो है ही। इसके लिए यन्त्र चाहिए, साधन चाहिए और उसका ज्ञान चाहिए। इसके लिए एक और चीज चाहिए। वह है अन्दर की चीज, यानी वृत्ति, श्रम से भरी पूरी प्रेरणा, कुछ नया करने की आकांक्षा। इसकी अपने देश में अभी कमी है। एक तरफ तो अपनी घिसी पिटी समाज-व्यवस्था के कारण श्रम की रुचि और वृत्ति अपने समाज में रही नहीं, साथ ही नये-नये पराक्रम की रुचि भी मारी गयी।

समाज-परिवर्तन और नये प्रश्न

हमें सोचना है कि जिस गति से तकनीकी ज्ञान का विकास हो रहा है वैज्ञानिक वृत्ति बढ़ रही है, क्या वह

पूर्ण है ? साथ ही यह भी सोचना है कि उससे उत्पादन की कला या उसकी वृत्ति ही नहीं, वरन सृजनशीलता की शक्ति भी कहांतक पैदा होती है ? सृजनशीलता में एक और भी चीज आती है, जो परिवर्तन से सम्बन्ध रखती है। वह यह कि जो समाज इतने धीरे धीरे बदलता है कि कुछ पता नहीं चलता, उसके कुछ बने-बनाये नियम होते हैं, बना-बनाया ढांचा होता है। मनुष्य पैदा हुआ और उस ढांचे में एकबार फिट बैठ गया तो जिन्दगी के अन्त तक चलता रहेगा। किसान के घर में पैदा हुआ तो मान लेना है कि बाप के साथ मेहनत करनी है, खेत में जाना है। शादी करनी है तो उसके लिए नियम बना-बनाया है कि किन किन बिरादरियों में उसकी शादी हो सकती है, और मरेगा तो उसके भी नियम बने हुए हैं कि उसको दफनाया जायगा या जलाया जायगा। शादी-श्राद्ध आदि किस प्रकार होंगे, ये सब जीवन में शुरू से अन्त तक के नियम उसके लिए बने हुए हैं।

लेकिन, जब समाज परिवर्तनशील रहता है और तेजी से बदलता रहता है तब उसके बने बनाये नियम काम नहीं आते। फिर पग पग पर मनुष्य को सोचना पड़ता है और उसमें तय करना पड़ता है कि उससे आगे हमें क्या करना है ? हजारों हजार सवाल उसके सामने खड़े होते हैं। इसलिए आमतौर आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक और औद्योगिक क्षेत्र में कहीं भी देखेंगे तो हजारों सवाल खड़े मिलेंगे। कोई काम करने जाते हैं तो एक नया सवाल खड़ा पाते हैं, क्योंकि परिस्थिति जो थी उसमें थोड़ा फर्क हो गया। इन सवालों को हल करने के लिए मनुष्य में बहुत बड़ी सामर्थ्य की जरूरत आज पैदा हो रही है। बड़े-बड़े नेता ही इन सवालों को हल करेंगे, ऐसा नहीं है। कदम-कदम पर हर चीज में छोटे-छोटे सवाल खड़े होते हैं, उनके बारे में सोचना पड़ता है और हल करना पड़ता है कोई नया तरीका उसमें से निकालना पड़ता है। आज ऐसी क्षमता और लियाकत, जो मनुष्य में है उसकी बहुत जरूरत है। जरूरत है कि मनुष्य का दिमाग तंग न बने। गांधीजी ने जब नयी तालीम की कल्पना की तब उनके सामने हिन्दुस्तान को बदलने का सवाल था। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए नयी तालीम परिवर्तन का ही साधन बने, उन्होंने ऐसा सोचा।

आत्मरक्षा की वृत्ति और वैचारिक रूढ़िग्रस्तता

आप जानते हैं कि मनुष्य पर जब आक्रमण होता है वह डिफेंसिव बन जाता है। नयी तालीम के साथ भी ऐसा ही हुआ। इसीलिए हममें आत्मरक्षा की वृत्ति पैदा होना स्वाभाविक था और उस आत्मरक्षा की वृत्ति के कारण कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारे पास जो विचार हैं हम उससे चिपक जाते हैं और हम उसे छोड़ नहीं पाते। नया सोचने में बाधा होती है, कोई आलोचना होती है या कोई नया सुझाव आता है, तो, हम उसको आक्रमण ही समझते हैं और उसको खुले दिमाग से सोचने के बदले हम उससे अपने को बचाने की कोशिश करते हैं। इस तरह यह भी एक डिफेंसिव ऐटीच्यूड अपने में आ गया है। फिर भी पिछले वर्षों में नयी तालीम में काफी नयी सूझ आयी है नये विचार आये हैं, प्रयोग हुए हैं और सोचा गया है, लेकिन हमें उसे और आगे बढ़ाना है।

नयी तालीम में नय नये प्रयोग होते रहने चाहिए, नयी-नयी खोज होनी चाहिए नये नय ज्ञान हमको मिलते रहना चाहिए। इसलिए नयी तालीम ही चलनी चाहिए इसका मैं अर्थ इस प्रकार लगाता हूँ कि आज जो प्रचलित पद्धति है उसमें ऐसे जितने दोष हैं वे बिल्कुल खत्म होने चाहिए।

हम चाहते हैं कि देश में लोकतंत्र हो। लोकतंत्र का यह मतलब तो नहीं कि हर एक एक ही तरह से जीये, एक ही तरह के विचार रखे और एक ही प्रकार का काम करें। लोकतंत्र का मतलब होता है कि हम कुछ मूल्य समाज में स्वीकार करें, जिसमें व्यक्तिगत विकास के लिए व्यक्तिगत पराक्रम और सर्जना के लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा हो, विकास के लिए मौका हो। हम चाहते हैं कि लोकतंत्र के विरुद्ध, जो तानाशाही और कुछ इसी प्रकार के तत्त्व हैं, जिनके कारण उक्त प्रकार की आजादी समाज में नहीं रह पाती, लोगों को अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता, इस प्रकार के सभी तत्त्व खत्म हों। नयी तालीम से हमारी अपेक्षा है कि ऐसे दकियानूसी तत्त्वों को हटाकर मुकाबला से अपना विकास करे। ●

तालीम का आधार और भावी समाज-शिक्षा की तीन बुनियादें

• मनुभाई पंचोली

आदमी को चाहे जितना ही खिलाया जाय, समझनेवाले उसका खाया केवल इतना ही मानेंगे, जो हजम होता है शेष को तो वे एक प्रकार का व्यायाम या क्रिया ही कहेंगे। नहाने से जितना मैल दूर हुआ उतना स्नान, शेष पानी का बिगाड़ समझा जायगा, लेकिन तालीम की प्रक्रिया के बारे में इस सीधी-सादी बात को स्वीकार करने में पहुँचे हुए लोगों को भी कष्ट होता है। वे तो यही सोचते हैं कि बालक के सामने जितना ज्यादा परोसा जाय उतना अच्छा। अरे! परोसने में ही सन्तोष नहीं होता, वे समझते हैं कि जितना ज्यादा खिलाया जाय उतना अच्छा। परोसने तक तो कई सम्मत होंगे, क्योंकि उसमें से बालक को अपनी पसन्द की चीज लेने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन ठूँस-ठूँसकर खिलाने की बात स्वीकार करना कुछ मुश्किल है। क्योंकि खिलाना हजम होने के बराबर है ऐसा समीकरण शक्य नहीं है, बल्कि उससे तो बदहजमी होने की सम्भावना ज्यादा रहती है। इसीलिए तो विचारशील माँ-बाप अपना बच्चा जितना खाता है उसपर जितना ध्यान देते हैं उससे ज्यादा ध्यान उसपर देते हैं कि बच्चा जो खाता है वह उसके शरीर को बनाता है या नहीं।

नयी तालीम की प्रथम शैक्षणिक बुनियाद जो हर प्रकार की सच्ची शिक्षा के लिए आवश्यक होती है वह ऊपर कहे अनुसार होती है। इसीलिए बालक याद रखता है या नहीं, उसने मुँहपाठ (कण्ठस्थ) किया या नहीं, पास हुआ या नहीं, वह

महत्व का नहीं है। मार्गदर्शिका पढ़कर पास होने की बात तो उसे जरूर नापसन्द लगती है क्योंकि उसमें विद्यार्थी नहीं मार्गदर्शिका लिखनेवाला पास हुआ है। नयी तालीम तो उसे ही सच्ची शिक्षा कहेगी जिसे बालक ने आत्मसात किया हो।

बालक को दिया गया और दिया जानेवाला ज्ञान आत्मसात करने के लिए कई चीजों की जरूरत होती है जिसमें अनुभव सबसे अधिक महत्व रखता है। समग्र साक्षरी शिक्षा का आधार मूलाक्षर और वर्णमाला ही है। वर्णमाला की जानकारी के बिना बच्चा आगे बढ़ ही नहीं सकता। उसे पा लेने के बाद उसके लिए वेद-वेदान्तों को पढ़ना भी आसान हो जाता है। क्योंकि सभी भाषाएँ इन बावन अक्षरों की ही लीला है। बालक को उच्च विद्या में या आनेवाली जिन्दगी में जो कुछ समझना है साम्य वैषम्य भेद विभेद मिश्रण-वर्गीकरण, समन्वय-सामंजस्य या विग्रह, इन सबके तारतम्य के लिए बचपन के अनुभव ही वर्णमाला का काम देते हैं। जिसकी माँ बचपन में ही चल बसी हो और जिसको अनाथ आश्रम में किसी वत्सल गृहपति की छाया में बड़ा होना पड़ा हो उस बच्चे के सामने माँ शब्द पढ़ते समय गृहपति का चित्र ही आयगा। उसी तरह जो माँ के बदले मौसी के पास बड़ा होता है उस बच्चे के लिए माँ शब्द का अनुबन्ध मौसी के साथ रहता है।

यह बात अन्य भाव विभाव या अनुकूल प्रतिकूल संवेदना को भी लागू होती है। बचपन के किसी अच्छे या बुरे अनुभव से प्राप्त अच्छे या बुरे अल्प या विशेष गहरे या छिछले, संकुचित या व्यापक अनुभवों के द्वारा बालक आनेवाले प्रश्नों या समस्याओं को सुलझायगा।

नयी तालीम की यह दूसरी बुनियाद है। नयी तालीम बुनियादी मूलाक्षर की तरह मानव जीवन के लिए जो अनुभव बुनियादी माने जाते हैं उन्हें बालकों को क्रमश ध्यान में रखकर सहज रीति से शाला में देने की कोशिश करती है। उसमें से यह सिद्धान्त फलित होता है कि शाला एक परिवार या छोटा सा समाज है। कोई भी समाज अन्योन्याश्रय परिश्रम और सहकारी वृत्ति के बिना खड़ा नहीं हो सकता। इसीलिए शाला में बच्चों की कक्षा के अनुकूल उपयोगी परिश्रम शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

हम यह कहना नहीं चाहते कि इन सिद्धान्तों को माध्यमिक और उच्च शिक्षा में ठीक ऐसा ही अपनाया जाय जैसा प्राथमिक शिक्षा में। हो सकता है कि सिद्धान्त वही रहने पर भी माध्यमिक और उच्च शिक्षा में पहली सात कक्षाओं से कुछ अलग ही रहे, लेकिन पहली सात कक्षाओं तक यानी प्राथमिक और फर्जियात (अनिवार्य) कक्षा में तो उसे अपनाये बिना कोई चारा नहीं है।

× × ×

बालक के जनम से पहले सयानी माताएँ आनेवाले बालक के लिए कुरते सीती हैं पर वे सभी एक ही नाप के नहीं बनातीं। कुछ बालक के तीसरे महीने की उम्र में काम आ सकें ऐसे होते हैं कुछ छ महीने की उम्र होने पर काम आ सकें और कुछ एक साल का बच्चा होने पर उपयोग में आयें ऐसे नाप के होते हैं। ऐसा ही लड़कियों के गौने का भी होता है। गौने की तैयारी चार-पाँच साल पहले से होती रहती है क्योंकि गरीब माता पिता इतने कपड़े थोड़े ही दिनों में बनवा नहीं पाते पर बनवाने के समय भी माँ इस बात का ध्यान अवश्य रखती है कि चौथे या पाँचवें वर्ष जब मेरी लड़की यह कपड़ा पहनेगी तब उसकी देह कैसी होगी और लड़की की जरूरत क्या होगी।

यह बात शिक्षा के विषय में हम ध्यान में नहीं रखते। आज प्राथमिक शाला में प्रविष्ट होनेवाला पाँच साल का बालक इक्कीसवें वर्ष का होकर जब अध्ययन समाप्त करके प्रभावकारी नागरिक बनेगा तब उसकी और जिस जगत में वह रह रहा है उसकी कौन-कौन-सी आवश्यकताएँ होंगी ? उस समय के जगत के लिए आवश्यक कर्मकौशल, अनुरूप भावनाएँ और बौद्धिक सामग्री हमें उन्हें शिक्षा के रूप में देनी होगी।

अगर यह बात ध्यान में न रही और हम मानते रहे कि आज की जो आवश्यकताएँ हैं वे बीस साल बाद की भी होंगी और इसी दृष्टिकोण से बालक को तैयार करते रहे तो बालक उस जगत का स्वामी तो नहीं ही बनेगा, इस जगत के अनुरूप भी नहीं बन पायगा।

इसीलिए शिक्षा आज का कार्यक्रम नहीं, वस्तुत भविष्य का कार्यक्रम है।

इसका सीधा-सादा अर्थ यह हुआ कि शिक्षक को बीस साल के पश्चात आनेवाला जगत कैसा होगा, उसकी कौशल्य, बुद्धि और भाव-विषयक जरूरतें क्या होंगी, इसका भी ख्याल होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो वह पढ़ायेगा बहुत, पर बालक में आवश्यक सजगता नहीं आ पायगी।

आनेवाले जमाने का विचार करनेवाले शिक्षक के तौर पर मैं जब सोचता हूँ तो निम्नलिखित तीन बातें महत्वपूर्ण मालूम होती हैं—

(१) आनेवाले दो दशकों का जगत (बड़ी मात्रा में) यंत्रविज्ञान, रसायन विज्ञान और परमाणु विज्ञान पर आधारित होगा। इसमें कोई दश आगे पीछे हो सकता है पर जो देश चाहेगा कि वह लाचार या मुहताज न रहे तो उसे इस विज्ञान को प्रजाजीवन में सहज संस्कार के रूप में दे देना पड़ेगा।

अभी बम्बई से कलकत्ता बोइंग हवाई जहाज से गया था। दो घण्टे का समय लगा। शतरंज का एक खेल भी पूरा न होगा इतने समय में। १८०० मील का फासला तय हो गया। यही स्थिति आनेवाले बीस सालों में हमारे और लन्दन-न्यूयार्क के विषय में होगी। ऐसी स्थिति वास्तव में हो, पर देहातों में वैज्ञानिक ज्ञान बैलगाड़ी के पहियों में मात्र तेल डाल देने में ही सीमित होता हो, यह स्थिति इष्ट नहीं है। विज्ञान का ज्ञान भले ही प्रत्यक्ष समस्याओं और उनके हलों को केन्द्र में रखकर आयोजित हो—जैसे, गांवों में दूध पैदा होता है, फल पकते हैं, तो रसायन विद्या उनकी हिफाजत करने या उनमें से विभिन्न चीजें बनाने को केन्द्र में रखकर सिखायी जाय या सूर्य-शक्ति को काम में लाने का विज्ञान सिखाया जाय, पर हमें विज्ञान सिखाने पर जोर देना ही होगा। अगर ऐसा नहीं होगा तो हम भूखे जरूर नहीं रहेंगे, पर व बालक की देह पर फिट नहीं होंगे, इसलिए हमारी मेहनत निष्फल जायगी।

(२) आनेवाले दो दशकों के बाद का जगत ऐसा होगा, जिसमें बैठे बैठे खानेवाले परोपजीवियों का कोई वर्ग समाज में नहीं होगा। बिना मेहनत किये कमाना किसी के लिए शक्य नहीं होगा। जैसे राजा लोग, हमारे देखते-देखते नष्ट हो गये, मूडी-वाले (श्रीमान) जा रहे हैं, यही प्रक्रिया किसी भी समाजोपयोगी परिश्रम न करनेवाले को बीस साल के बाद जगत में प्रतिष्ठित नहीं होने देगी। यंत्रों की तथा विज्ञान की सहायता से परिश्रम हलका जरूर हुआ होगा, पर बिना समाजोपयोगी परिश्रम किये प्रतिष्ठा या धन कमाना उस जमाने में अशक्य हो जायगा।

आज से ही बालक में समाजोपयोगी कामों के प्रति अभिरुचि पैदा हो, वह उसका सामाजिक महत्व समझे, और ऐसे काम करता रहे, ऐसे शिक्षा-विषयक आयोजन हमें करना चाहिए।

(३) तीसरी बात यह मालूम होती है कि आज से बीस साल बाद का जगत इतना छोटा हो गया होगा कि इसमें देश देश के आपसी भेद या राष्ट्रवाद का जोर काफी कम हो गया होगा। परस्पर का संहार करने की हमारी शक्ति में जो वृद्धि हुई होगी वह भी हमें इसको छोड़ने के लिए मजबूर करेगी। इसलिए हमें आज से ही बालक के मन में विश्व-नागरिकता के बीज बोने होंगे। विश्व में रहनेवाले नागरिक विश्व-नागरिक न होकर विशाल भारत इण्डोनेशिया, चीन या वियतनाम के ही बने रहे तो उसमें से मत भिन्नता और झगड़ा ही पैदा होगा।

जिस घर में लड़की जानेवाली हो उसके रीति-रसम और विशेषताओं का ध्यान रखकर, लड़की को शिक्षित करना सयानी माता का काम है। हम शिक्षक लोग भी इस अर्थ में माताएँ हैं। हमारी छाया में पलनेवाले बच्चे, जिस समाज में प्रभाव-कारी नागरिक के रूप में प्रवेश करेंगे उस समाज के अनुरूप ऊपर लिखी तीन बातों की पूरी तालीम अगर हम उनको देंगे तो हमारा काम सार्थक होगा और बच्चे भी सुखी होंगे। ●

भावी युग की आकांक्षाएँ और राष्ट्रीय शिक्षा

• शिरीष

हमारे राष्ट्र के लिए आज की प्रधान चुनौती यह है कि भावी नागरिकों को वे शैक्षिक आधार कैसे प्रदान किये जायें, जो प्रत्येक नागरिक को भारतीय होने के नाते अपने राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक है। बदली हुई परिस्थितियों और भावी युग की आकांक्षाओं के प्रकाश में हमें अपने शिक्षण-सिद्धान्तों में आमूलाग्र परिवर्तन की आवश्यकता है। आज के विद्यार्थियों को विषय-वस्तु के ऐसे एकान्त विस्तार से गुजरना पड रहा है, जिसका उनके भावी जीवन से नाम-मात्र का सम्बन्ध नहीं। उनके सामने बहुत-सी ऐसी कला-कृतियाँ, तथ्य, सिद्धान्त, रूप रेखाएँ, सार और व्याख्याएँ प्रस्तुत कर दी जा रही हैं, जिन्हें समझने और इस्तेमाल करने के बजाय, उन्हें याद करना पड रहा है। शिक्षा की यह कितनी विचित्र विसंगति है कि उन्हें अच्छे नम्बरों का प्रलोभन और बुरे नम्बरों की धमकी के कारण सीखने के लिए तैयार किया जा रहा है। यही कारण है कि हमारे शिक्षण प्राप्त विद्यार्थी आस्थाहीन और ज्ञानहीन हो रहे हैं।

लोकतान्त्रिक स्वातन्त्र्य और सृजनशीलता

ऐसी आस्थाहीन भावी पीढ़ी के निर्माण के कारण हमारे सामाजिक सघटना की कड़ियाँ एक-एक कर टूट रही है। उन्हें बचाने में पुराने शिक्षा सिद्धान्त असफल सिद्ध हो चुके हैं। हमारी बहुमुखी लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता ने, चाहे वह बोलने-लिखने की हो, मताधिकार की हो, पत्रकारिता की हो, या आर्थिक

संयोजन को, हमारे सामाजिक और औद्योगिक जीवन को तो प्रभावित किया ही है व्यक्ति के मिथ्या अहम् को भी जगा दिया है और टूक टूक कर दिया है सामाजिक एकता को। हमारी स्वातन्त्र्य की यह निरंकुश भावना मालिक मजूर, शिक्षक और छात्र आदि अलग-अलग संघटना की जननी भी है। ये संघटन राष्ट्र की शक्ति को क्षीण करते हैं, क्योंकि इनका उद्देश्य अत्यन्त संकुचित होता है। फलतः अपनी एकता बनाये रखने पर भी ये हमारे संस्कृति के विकास में सहायक नहीं हो पाते।

इसलिए, आवश्यक है कि हमारी शिक्षा स्वतन्त्रता से प्राप्त सुविधाओं की विघटन शक्ति का प्रतिकार करे। इस प्रतिकार के लिए एक ही मार्ग है जनता का सामूहिक शिक्षण। इसके कार्यान्वियन के लिए सामूहिक शिक्षा के सिवा दूसरा मार्ग ही कौन है? अपनी क्षमतानुसार अपना विकास करनेवाला मानव समाज ही आदर्श होता है। नैतिक स्वातन्त्र्य के लिए नियम और कानून के अंकुश काम नहीं आते। ऐसे व्यक्ति जो शिक्षा द्वारा सामाजिक संघटन के प्रति आस्थावान है, उन्हें दो बातों का ध्यान रखना होगा:—

- पहली बात यह कि जैसे जैसे सांस्कृतिक मनोवृत्ति विकसित होती जाती है स्वतन्त्रता द्वारा प्राप्त सुविधाएँ विघटन की दिशा में कम काम करती है।
- दूसरी बात यह कि मनुष्य केवल स्वार्थी ही नहीं है, बल्कि उसमें समाज की ओर आकृष्ट करनेवाली भी एक शक्ति है जो समाज से एकता स्थापित करने की ओर उसे उन्मुख करती है और प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की बुनियाद मनुष्य की इसी शक्ति पर आधृत है।

यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि शिक्षा के आधुनिक विकास आन्दोलन का सार-तत्त्व है सृजनात्मक अनुभव और व्यक्ति पर उसका विमुक्तकारी प्रभाव। यह आन्दोलन जीवन के परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं करता और सदैव प्रयत्नशील रहता है कि तथ्यों की व्याख्या नयी तरह से की जाय, तथा कला, वास्तुकला, वैज्ञानिक अनुसन्धान, साहित्य और समाज का नया रूप दिया जाय।

सृजनात्मक चिन्तन और आत्मविश्वास

यह मान्य तथ्य है कि बच्चों की हर पीढ़ी अपने से पहलेवाली पीढ़ी से भिन्न होती है, हर बच्चा नयी जगह से अपना जीवन आरम्भ करता है, इसलिए शिक्षण संस्थाओं को ऐसा होना चाहिए, जहाँ विद्यार्थी और अध्यापक मिलकर ज्ञान और प्रथा के वर्तमान भण्डार में नयी अन्तर्दृष्टि और नये विचारों की वृद्धि करने के लिए सृजनात्मक प्रयास कर सकें। और, यह भी सत्य है कि किसी भी समाज के सृजनात्मक तत्त्व, वे ही व्यक्ति होते हैं, जो हर चीज को जैसे-का-तैसा नहीं स्वीकारते, बल्कि प्रत्येक वस्तु में सुधार के उपाय खोजने की जिज्ञासा में जुटे रहते हैं।

राजनीति और सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में यदि सृजनात्मक चिन्तन और कल्पना पैदा हो और साथ ही जिन विचारों में हमें आस्था है, उन्हें क्रियान्वित करने का हममें संकल्प हो तो समाज व्यवस्थाओं और सभ्यताओं में आमूल परिवर्तन किया जा सकता है। व्यक्ति की भाँति समाज में भी सृजनात्मकता के लिए किसी प्रेरक शक्ति के आधार की आवश्यकता होती है। यह एक ऐसी नैतिक, सौन्दर्य-बोधी तथा बौद्धिक शक्ति है जो हमें जीवन, कला या समाज व्यवस्था के वर्तमान रूप को सन्तुष्ट होकर चुपचाप बैठने नहीं देती। व्यक्ति तथा समाज की भाँति ही शिक्षा के क्षेत्र में भी इस शक्ति को जागरित करने का उपाय यह है कि हर व्यक्ति को प्रोत्साहन और स्वतन्त्रता दी जाय, उसमें आत्मविश्वास की भावना पैदा की जाय, उसपर भरोसा किया जाय, उसका आदर किया जाय और उसमें अपने अज्ञान की खोज की उत्कण्ठा पैदा की जाय, जिसकी आवश्यकता है कोई भी सृजनात्मक काम करने के लिए। उत्कण्ठा की भावना पैदा करना शिक्षा का काम है और यह काम उदार कलाओं द्वारा किया जा सकता है।

सहयोग और सहकार की भावना

हमारी शिक्षण संस्थाओं में इतिहास द्वारा महापुरुषों के जीवन से परिचित कराया जाता है, लेकिन सचाई यह है कि बच्चों पर उन बतायी गयी बातों का

रत्तमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उन्हें अपने जीवन में प्रयोग करने की छूट और प्रेरणा हमारी आज की चालू शिक्षा-पद्धति नहीं दे पाती। सहयोग-भावना की एक क्षीण झलक खेल-कूद या व्यायाम में दिख जाती है, लेकिन वह कितनी क्षणिक होती है? हमारे शिक्षक अपने विद्यार्थियों में विश्वास नहीं रखते। इसमें बच्चों में सामाजिक गुणों के विकास में रुकावट आती है। हमारी शालाओं में उपदेश के घूंट पिलाये जाते हैं और बच्चे से आशा रखी जाती है आदर्श आचरण की, लेकिन बिना कार्य-कलाप के उपदेशों द्वारा नैतिकता की शिक्षा दी कैसे जा सकती है? अगर हमें छात्रों का जन-साधारण के हित के लिए सक्रिय रचनात्मक योगदान लेना है तो हमें सहयोग के आधार पर अपनी शिक्षा-व्यवस्था का पुनर्गठन करना होगा। जबतक हमारे नागरिकों में स्वार्थ की भावना बनी रहती है राष्ट्र की शक्ति सुदृढ़ नहीं हो सकती।

गुरुकुलों में विद्यार्थी की पारिवारिक भावना को बुनियाद मजबूत होती थी, लेकिन प्रश्न यह है कि आज की शिक्षा में उन सिद्धान्तों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाय? गुरुकुलों की पद्धति अगर हम चालू भी करना चाहें तो उसे सीमित क्षेत्र में प्रायोगिक रूप में ही कर सकते हैं। सामान्य शिक्षण के लिए आज की स्थिति में ऐसी कोई व्यवस्था सम्भव नहीं होगी।

रचनात्मक कार्यों की अवहेलना क्यों?

हमारी चालू शिक्षा पूर्णतया पुस्तकीय है और इसमें बच्चों का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए आवश्यक है कि हमारी पाठशालाओं में रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जाय। जबतक हम कला-कौशल या दूसरे प्रकार के रचनात्मक कार्यों के लिए अपनी शालाओं में प्रयोगशालाओं की व्यवस्था नहीं करते, पुस्तकीय शिक्षा से पिण्ड नहीं छुड़ाया जा सकता, जबतक हम सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षण नहीं दे पाते, स्वस्थ नागरिक का विकास असम्भव ही है। कहीं-कहीं कारखानों में व्यावसायिक शिक्षण की व्यवस्था है भी, लेकिन वह कुछ इस प्रकार दी जाती है कि बच्चों को उसमें बिलकुल रस नहीं आता। वास्तविक स्थिति तो यह है कि बच्चों को रुचिपूर्वक, विधिवत श्रम करने की कहीं भी शिक्षा नहीं मिलती। उनके जीवन का बहुमूल्य समय यों ही शिक्षा के नाम पर नष्ट किया जाता है। श्रम और पुस्तकीय शिक्षा में जबतक समन्वय नहीं हो पाता, यह स्थिति बराबर चलनेवाली है। सम्भव है, कुछ लोगों को यह आशंका हो सकती है कि इस प्रकार की व्यवस्था में बच्चों की पढ़ने लिखने की क्षमता नष्ट हो जायगी, लेकिन उनका यह भय निराधार है।

आज तीव्र गति से बढ़ती हुई छात्रों की संख्या से शिक्षा के गुणात्मक (क्वालिटेटिव) पक्ष की अवहेलना हुई है और प्राय छात्रों और अध्यापकों के आपसी सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। आरम्भिक कक्षाओं में नाम मात्र का सम्बन्ध रह गया है और वह भी परिस्थिति-जन्य विवशता का, लेकिन उच्चतर शिक्षा के प्राध्यापक तो मात्र नियमित अनियमित कक्षाओं में रटी रटाई घूंट पिलाने के अतिरिक्त अपनी जिम्मेवारी ही कहाँ समझते हैं? शिक्षकों की यह प्रवृत्ति लोकतन्त्रात्मक भावना की विरोधी है। यूरोपीय राष्ट्रों में इस प्रवृत्ति का जोर है और हमारे यहाँ तो पश्चिमी अन्धानुकरण शिक्षा ही नहीं हर क्षेत्र के लिए स्तुत्य बना हुआ है। लेकिन, इधर विदेशों में यह विचार जोर पकड़ रहा है कि बच्चों के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षकों और छात्रों का आपसी सम्बन्ध सुधारना ही होगा। देखना है कि इस दिशा में अपने यहाँ कबतक सोचा विचारा जाता है।

वैज्ञानिक अनुसन्धान और नये दार्शनिक विचार

उन्नीसवीं शताब्दी में जब वैज्ञानिक अनुसन्धान के नियम प्रकृति, समाज और मनुष्य पर लागू किये गये तो भौतिकी से लेकर मनोविज्ञान तक सभी क्षेत्रों में नयी-नयी बातों का पता चला। क्रमिक विकास-द्वारा परिवर्तन के विचार का धर्म, समाज, कला, मानव प्रवृत्ति सभी से सम्बद्ध अवधारणाओं पर प्रभाव पड़ा। मानव-प्रकृति से अलग अलग व्यक्तियों के अध्ययन में दार्शनिक सिद्धान्त और वैज्ञानिक विधि को लागू करने से मनोविज्ञान के विज्ञान-पक्ष को नया बल मिला। फलत नये-नये रूपों, नयी-नयी परम्पराओं और नये नये दार्शनिक विचार, ने

तकनीकी शिक्षा का महत्व कहाँ तक ?

आज पश्चिमी देशों में तकनीकी ज्ञान को बढ़ाने और उसे बेहतर बनाने के चौतरफा शोर में यह बात बहुत कम सुनाई देती है कि शिक्षा में जीवन के मूल्यों का भी कोई स्थान है। तकनीक के महत्व से कोई इनकार नहीं कर सकता, परन्तु इसका महत्व भी इसी कारण है कि वह उन मूल्यों तक पहुँचने का एक साधन है, जो उससे परे हैं। हम अनुभवों के लिए ही वस्तुओं को चाहते हैं, वस्तुओं के लिए अनुभव कोई नहीं चाहता, क्योंकि वास्तव में वस्तुओं का स्वत कोई मूल्य नहीं होता, और ये मूल्य कोरे अनुभव नहीं होते, बल्कि वे होती हैं ऐसी सुखद अनुभूतियाँ, जिनका मानव जीवन से घनिष्टतम सम्बन्ध होता है। कोई भी मूल्य केवल इसलिए मूल्य होता है कि वह हमारी स्थिति से मेल खाता है, हमारी किसी आवश्यकता का अनुकूलन करता है, हमारी प्रकृति की किसी माँग को पूरा करता है, और वह माँग जितनी ही केन्द्रीय और बुनियादी होती है उसकी पूर्ति को इतना ही अधिक मूल्य दिया जाता है।

मानवतावादियों के अनुसार तकनीकी निपुणता ज्ञान नहीं है, लेकिन जान ड्यूई के अनुसार तकनीकी शिक्षा सही ढंग से दी जाय तो वह हर तरह से मानव शास्त्रों की शिक्षा जैसी ही अच्छी हो सकती है। उसके अनुसार विचार वास्तव में चिन्तन नहीं होता, वह स्वयं विभिन्न कार्यों को पूरा करने का उपकरण होता है, इसलिए उसने अपने सिद्धान्त का नाम ही रखा उपकरणवाद (इन्सट्रूमेण्टलिज्म)।

प्रश्न है कि क्या उच्च स्तर पर भी तकनीकी शिक्षा मूल्यों के प्रति मस्तिष्क के द्वार उसी प्रकार खोल पाती है, जैसे मानवतावादी शिक्षा। उत्तर होगा—नहीं। शिल्पी प्रकृति का अध्ययन उसे अपने वश में करने के लिए करता है और दार्शनिक प्रकृति का अध्ययन उसे समझने के लिए करता है। इस प्रकार वैज्ञानिक का क्षितिज टेक्नालाजिकल की तुलना में अधिक व्यापक होता है, क्योंकि यदि किसी विशेष प्रकार की जानकारी में व्यावहारिक उपयोग की सम्भावना न दिखाई दे तो उसमें शिल्पी की दिलचस्पी कम होने लगती है जबकि वैज्ञानिक का उत्साह पूर्ववत बना रहता है।

विज्ञान और दर्शन के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं है। दोनों एक दूसरे से घुलमिल जाते हैं। वे एक ही उद्यम के दो अंग हैं और एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं। यदि विज्ञान के बिना दर्शन खोखला है तो दर्शन के बिना विज्ञान भी बहुधा अन्धा सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार किसी भी शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता कि वह छात्रों में तकनीकी ज्ञान, बौद्धिक जानकारी, दायित्व और ममत्व की भावना पैदा करती है बल्कि आवश्यक है कि छात्र वर्तमान संस्कृति को ऊँचा उठाकर नये स्तर तक पहुँचाने का लक्ष्य सामने रखें और उसके विकास की दिशा में सतत प्रयत्नशील रहें।

●

शिक्षाशास्त्र पर बड़ी किताब लिखनेवालों से आप धोखा न खाइए। शिक्षाशास्त्री अच्छा शिक्षक नहीं होता। वह किताबें तो लिख सकता है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि वह अच्छा शिक्षक भी हो। शिक्षा का काम विद्या से नहीं चलता, मुहब्बत से चलता है। उसके लिए मुहब्बत की जरूरत है। अच्छे शिक्षक के माथे पर मुहब्बत लिखी होनी है। उसके विज्ञान के पहले सफे पर लिखा होता है मुहब्बत। जिस आदमी का झुकाव बच्चे की तरफ होता है वही अच्छा उस्ताद या शिक्षक बन सकता है।

—जाकिर हुसैन

शिक्षण-प्रक्रिया में परिवार की भूमिका

● रामनयन सिंह

शिक्षण व्यापक अर्थ में वह प्रक्रिया है जिसमें बालक एक व्यक्ति बनता है उसकी प्रकृति सुलभ किन्तु अनगढ़ प्रवृत्तियाँ सुघड़ता प्राप्त करती हैं। उसकी प्राकृतिक माँगों और क्षमताओं का सामाजिक तत्त्वों और शक्तियों से ऐसा अनुपम ताल मेल बैठता है कि बालक में उसके अनूठे व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता है। वह एक सामाजिक नैतिक धार्मिक सांस्कृतिक आत्म नियन्त्रित और समाज नियन्त्रित प्राणी बन जाता है चाहे भले ही इन विभिन्न आयामों में बहुरूपता दृष्टिगोचर होती हो।

यह शिक्षण की प्रक्रिया जन्म से ही प्रारम्भ होता है और जीवन के अन्तिम क्षणों तक कम या बेश जारी रहती है। प्रकट है कि इस प्रक्रिया के संचालक तत्त्व समाज की विभिन्न इकाइयाँ होती हैं—परिवार साथी संस्थाएँ सरकार और स्वयं व्यक्ति। शालेय शिक्षण तो इस व्यापक शिक्षण की प्रक्रिया का एक पहलू मात्र है। यद्यपि वर्तमान समय में इसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है लेकिन स्कूल की भूमिका तो कुछ बाद में प्रारम्भ होती है। सबसे पहले सम्पर्क में आनेवाली और अनवरत सम्बन्ध बनाये रखनेवाली इकाई तो परिवार ही है। इसीलिए परिवार को प्रथम पाठशाला कहा गया है।

पालकों की महत्वपूर्ण भूमिका

मनोवैज्ञानिकों ने बालक के जीवन के प्रथम पाँच और छः वर्ष व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण काल माना है। कुछ ने तो इस

अवधि को निर्णयात्मक काल कहा है। स्पष्ट है कि परिवार व्यक्तित्व निर्माण में भाग लेनेवाली एक मुख्य संस्था है। समस्यात्मक बालकों के वैज्ञानिक अध्ययन से यह तथ्य स्थापित हो गया है कि बालक समस्यात्मक नहीं होते, बल्कि समस्यात्मक होते हैं माता पिता। व्यक्ति के निर्माण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका वैज्ञानिक अध्ययनों से ही समर्थित नहीं है, बल्कि अनुभव के आधार पर जन-साधारण में प्रचलित कहावतें भी साक्षी हैं—

"जैसी माई वैसी धीया।'

"जो जल देखा कुओं इनारा, जो जल देखा भरका,
जैसे होते माता-पिता हैं वैसा होता लड़का।

हाँ, वैज्ञानिक अध्ययनों ने प्रभावशाली ढंग से और विशिष्ट रूप से परिवार के महत्व को उभाड़ा जरूर है।

विकसित राष्ट्र का निर्माण नहर, सड़क, पुल और कारखानों के निर्माण मात्र से ही नहीं होगा। इसके लिए तो महत्वपूर्ण प्रश्न है व्यक्ति निर्माण का। बिना इसके मनचाहा विकास-स्तर नहीं प्राप्त हो सकता। इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर है माता पिता के पास। सन्तानोत्पादन ही माता पिता के कर्तव्य की इतिश्री नहीं है। उसके बाद भी हर माता पिता को सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है ताकि उसकी सन्तान एक सुयोग्य व्यक्ति और नागरिक बन सके। क्या आज हर माता पिता इस दृष्टि से जागरूक है?

पारिवारिक आबोहवा में परिवर्तन

आज के भारतीय व्यक्तित्व की आधारशिला की क्या रूपरेखा है? आज जिस नये भारत के निर्माण की हम कामना करते हैं उसकी तीन आधारशिलाएँ हैं—धर्म निरपेक्षता, प्रजातन्त्र और समाजवाद या सर्वोदय। धर्म निरपेक्षता का तात्पर्य है सभी धर्मों के प्रति आदरभाव, धर्म के आधार पर भेदभाव न करना। वास्तव में धर्म एकवद्धता का सूत्र है। धर्म के नाम पर बने विभिन्न सम्प्रदाय ही विभेद सूचक हैं। देश के सम्मुख उपस्थित अहम समस्या को हल करने में तथाकथित धार्मिक सम्प्रदायों को बाधक तत्त्व के रूप में नहीं उभड़ना चाहिए। प्रजातन्त्र का तात्पर्य है व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का आदर, हर व्यक्ति को उसकी अभिलाषा और सामर्थ्य के अनुसार प्रगति की छूट। समाज का हर व्यक्ति इस तरह प्रगति करे कि सबकी प्रगति साथ हो। एक दूसरे की प्रगति बाधित न हो।

इन तीनों आधार शिलाओं पर समाज की रचना कानून-द्वारा नहीं की जा सकती। कानून तो सहायक-मात्र हो सकता है। ये तत्त्व समाज के आधार तभी बन सकते हैं जब ये व्यक्ति की जीवन शैली में ढल जायें। बालक की जीवन शैली ढालेगा कौन?

आनुवंशिकता ने बालक को सीखने या ढलने-योग्य बनाया है। सीखने या ढलने की स्वत: चालित प्रेरणा दी है। समाज, परिवार और संस्कृति ने जीवन शैली की रूपरेखा और डिजाइन तैयार कर दी है। परिवार तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं को मात्र कारीगर का काम करना है।

वर्तमान पारिवारिक आबोहवा में इन तथाकथित नवीन मूल्यों का प्रवेश नहीं है। वहाँ तो इनके विपरीत धार्मिक कट्टरता, प्राधिकारवादिता और स्वार्थभरे दृष्टिकोण का साम्राज्य है। आज इस साम्राज्य के प्रति आवश्यकता है विद्रोह और क्रान्ति की। इस क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका है। कहीं यह क्रान्ति उच्छृंखलता और ऊहापोह का रूप न धारण कर ले इसके लिए स्वयं आगे बढ़कर माता पिता को नये मूल्यों का समादर करना होगा। वर्तमान माता पिता अपनी घरेलू समस्याओं के निराकरण और विशेषकर बालक के प्रति अपने व्यवहार में प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण अपनाकर राष्ट्र-निर्माण में सहायक बनें और नये नागरिकों के शिक्षण में अपना योगदान करें।

पारिवारिक पृष्ठभूमि में बालक-बालिकाओं को, जो सही-गलत सीख मिलती है वह तो अपनी जगह पर है, उसके अतिरिक्त परिवार की ही जिम्मेदारी है कि वह बालक बालिकाओं के शालेय शिक्षण का प्रबन्ध करे। आज बहुत कुछ अंशों में परिवारवाले बालकों के शालेय शिक्षण में सक्रिय पाये जाने लगे हैं, लेकिन बालिकाओं के शिक्षण के प्रति उनकी उदासीनता पैर तोड़कर बैठी मालूम पड़ती है। इसके पीछे भी परिवार की स्वार्थ भावना है। जन साधारण सोचता है कि बालक

तो बड़ा होकर कुछ कमायगा और परिवार के भरण-पोषण में योगदान कर सकेगा, लड़की को तो केवल गृहणी बनकर बैठना है वह भी दूसरे के घर जो। फिर बालिका को पढ़ाने की क्या आवश्यकता? अभीतक समाज में स्त्री की केवल दो भूमिकाएँ रही हैं—पत्नी और माता के रूप में। आज राष्ट्रीय निर्माण बेला में इन दो भूमिकाओं को महत्वपूर्ण ढंग से अदा करने के लिए स्त्री का शिक्षित होना आवश्यक है। आनेवाले भारतीय समाज में स्त्री के केवल दो ही सामाजिक कर्तव्य नहीं रहेंगे। इसलिए भी अब यह आवश्यक है कि माता पिता बालिका शिक्षण के बारे में अपना दृष्टिकोण बदले।

सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि माता पिता अपनी सन्तान को पाठशाला में भेजने की व्यवस्था करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग तो इसे घर की अशान्ति मिटाने का एकमात्र साधन समझते हैं और बालकों के पाठशाला चले जाने पर राहत महसूस करते हैं। दूसरे लोगों को इतनी फुरसत कहाँ कि बालकों की शिक्षा पर ध्यान दें। बहुत सहानुभूति दिखायी तो ट्यूटर रखकर बालक को अपग करने की योजना बना डाली। उचित और प्रभावशाली शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि माता पिता अध्यापकों से निकट का सम्पर्क बनाये रखें, ताकि उन्हें यह प्रत्यक्ष जानकारी होती रहे कि पाठशाला में बालक कैसे चल रहा है? उसकी प्रगति में क्या बाधाएँ हैं? अध्यापकों और साथियों की उसके बारे में क्या धारणा है? अध्यापक और अभिभावक के इस निकट-सम्पर्क से बालक को उचित निर्देशन में अभिभावक महत्वपूर्ण काम कर सकते हैं। शालेय शिक्षण को पुष्ट करने के लिए घर में आवश्यक साधन, समय और उपकरण मुहैया करने के प्रति माता पिता को विशेष क्रियाशील रहना चाहिए।

अनुशासन और पारिवारिक सहयोग

सामान्यतया स्कूलों में दो बार अभिभावकों की भीड़ देखी जाती है—एक तो प्रारम्भ में प्रवेश के समय और दूसरे सत्र के अन्त में छात्र को उत्तीर्ण कराने के लिए। बीच में अभिभावकों को अन्य कामों से फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि शिक्षा को आवश्यक कार्य नहीं समझा जाता या पाठशाला से सम्पर्क करने को वे कोई महत्व नहीं देते। अनुशासनहीनता की बीमारी को ठीक करने के लिए अध्यापक-अभिभावक-सम्पर्क रामबाण का कार्य करता है, यह अनुभव सिद्ध है।

सामान्य विद्यार्थी शालेय कार्यों के प्रति सत्रभर उदासीन रहता है, लेकिन अपने अभिभावकों से अत्यन्त विद्यानुरागी होने का ढोंग रचता है। परीक्षा के समय अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए नकल करता है। पकड़ जाने पर अध्यापक को धमकाता है, अवसर पाकर मारता-पीटता भी है। असफल हो जाने पर कभी-कभी नदी या रेल के सहारे दूसरी दुनिया की यात्रा की तैयारी तक कर लेता है। अध्यापक और अभिभावक की थोड़ी-सी सतर्कता और निकट का सम्पर्क ऐसी स्थिति को न आने देने में सहायक हो सकता है।

अध्यापक-अभिभावक-संघ की आवश्यकता

आज अध्यापक और अभिभावक दोनों एक दूसरे से निकट सम्पर्क बनाये रखने के प्रति उदासीन हैं। अभिभावकों की उदासीनता के प्रमुख कारण उनकी अशिक्षा, शिक्षा में अरुचि और व्यस्त जीवन हैं। अध्यापकों की उदासीनता के कारण—अध्यापन-कार्य के प्रति हीनता का भाव, पाठशालाओं में अत्यधिक कार्यभार, शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा पास कराने की मानसिक वृत्ति, अभिभावकों की उदासीनता और अध्यापक के प्रति उपेक्षाभाव आदि हैं। कारण कुछ भी हों, शिक्षण-प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए दोनों का जीवन्त सहयोग आवश्यक है, और वह होना भी चाहिए। इसके लिए हर संस्था में अध्यापक अभिभावक-संघ का निर्माण होना चाहिए, जो विद्यार्थियों के विकास के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श करें और उन्हें कार्यान्वित करने के उपाय सोचें। हर अध्यापक के निकट सम्पर्क में छात्रों का एक एक दल रखा जाय। अध्यापक अभिभावकों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करें और उनके सम्मुख विद्यार्थी के विकास और प्रगति का विवरण प्रस्तुत करके अभिवृद्धि के उपाय ढूंढे। इसके लिए दोनों तरफ से प्रयास अपेक्षित है। ●

पढ़ना और है : गुनना और !

● श्रीकृष्णदत्त भट्ट

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पण्डित हुआ न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय ।।

शिक्षा का दिन दिन प्रचार बढ़ रहा है । स्कूल खुल रहे हैं, कालेज खुल रहे हैं विश्वविद्यालय खुल रहे हैं शोधसंस्थान खुल रहे हैं । पढ़ाई के लिए सुविधाएँ बढ़ायी जा रही हैं । बजट में लाखों करोड़ों रुपयों का आयोजन किया जा रहा है । शिक्षा-आयोग बन रहे हैं । देशी विदेशी अन्तराष्ट्रीय संस्थाएँ खड़ी की जा रही हैं । बच्चों के लिए स्त्रियों के लिए अधवैसों के लिए पढ़ाई का प्रबन्ध हो रहा है । अज्ञान के अन्धकार को मिटाने के लिए विश्वभर के विद्वान, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक ज्ञान की जलती हुई मशालें लेकर बाहर निकल पड़े हैं । ऐसा लगता है कि कुछ बरसों के भीतर विश्व से अशिक्षा और अज्ञान का नामानिशान ही मिट जायगा ।

बहुत खूब !

कौन न स्वागत करेगा इस शिक्षा अभियान का ?

\+ + +

'अंगूठाछाप' लोग शेक्सपीयर और मिल्टन पर, काण्ट और हीगेल पर बहस करने लगें । ज्ञान और विज्ञान की प्रगति पर वाद-विवाद करने लगें, राजनीति और समाजशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञान की गुत्थियाँ सुलझाने लगें—इससे बढ़कर और क्या चाहिए ? अशिक्षित लोगों का बौद्धिक धरातल ऊँचा उठे वे भी अपने को, समाज को, विश्व को भली भाँति समझकर अपनी

और परायी समस्याओं पर चिंतन करने लगें इसमे अच्छा और क्या होगा ? आज जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है कल वे ही संयुक्त राष्ट्र संघ में उपस्थित समस्याओं पर संसद और विधान सभा में उपस्थित बिलों पर अपने मत व्यक्त करने लगें तो इसका स्वागत कौन न करेगा ?

अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए किया जानेवाला कोई भी आन्दोलन प्रशंसनीय है अभिनन्दनीय है। बर्ट्रेण्ड रसेल लिखते हैं

Happiness is of two sorts the two sorts I mean might be distinguished as plain and fancy or animal and spiritual or of the heart and of the head Perhaps the simplest way to describe the difference between the two sorts of happiness is to say that one sort is open to any human being and the other only to those who can read and write 1

प्रसन्नता दो प्रकार की है—एक तो सीधी सादी दूसरी कल्पना मिश्रित। एक पार्थिव दूसरी आध्यात्मिक। एक हृदय की दूसरी मस्तिष्क की। एक का आनन्द कोई भी मनुष्य उठा सकता है दूसरी का आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं जो पढ़े लिखे हैं।

मतलब नाख्वांदा (बेपढ़े लिखे) लोग उस प्रसन्नता से वंचित रहे जाते हैं जो पढ़े लिखे लोगों के ही हिस्से में लिखी रहती है।

जरूरी है कि प्रसन्नता का यह आनन्द हर आदमी को मिल सके। इसलिए हर आदमी को साक्षर होना ही चाहिए।

\+ \+ \+

परन्तु क्या साक्षरता से ही विश्व की सभी समस्याओं का निदान निकल आयेगा ?

पोथी पढ़ लेने से ही आज की स्थिति में कल्पनातीत सुधार हो जायगा ?

शिक्षा का प्रचार होने से ही अज्ञान का पर्दाफाश हो जायगा ? मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो जायगा ?

जी नहीं। बात ऐसी नहीं है।

रस्किन ने इस समस्या पर गम्भीरता से सोचा था। वह कहता है

You might read all the books in the British museum and remain an utterly illiterate uneducated person but if you read ten pages of a good book letter by letter—that is to say, with real accuracy —you are forever more in some measure an educated person 2

ब्रिटिश म्यूजियम की सारी किताबें पढ़कर भी आप अशिक्षित मनुष्य बने रह सकते हैं और किसी अच्छी पुस्तक के केवल दस पन्ने पढ़कर भी आप किसी हद तक शिक्षित बन सकते हैं बशर्ते कि आप पढ़ें ठीक से प्रामाणिकता से।

यह ठीक से पढ़ना क्या है ?

इसका नाम है—गुनना।

पढ़ना और है गुनना और।

आज पढ़े लिखे तो हजारों हैं लाखों हैं करोड़ों हैं पर गुने हुए लोग कितने हैं। शायद उंगलियों पर गिनने लायक मुश्किल से निकलें।

\+ \+ \+

आज से ६६ साल पहले स्वामी रामतीर्थ ने अपने अलिफ के नाम के रिसाले में एक लेख में इसका एक बढ़िया उदाहरण दिया था।

बचपन में जब कौरव और पाण्डव एक साथ पढ़ते थे तो एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गयी। किसी विद्यार्थी ने आधी किताब सुनायी किसी ने पूरी। पर युधिष्ठिर से पूछा गया तो उसने कहा—मैंने तो केवल दो वाक्य याद किये हैं।

परीक्षक महाशय को अत्यन्त क्रोध हो आया। वे बोले—अरे दुष्ट ! तू तो सबसे बड़ा है और अभी तक सिर्फ दो वाक्य याद किये ! यह कैसी सुस्ती है। तुझे लज्जा नहीं आती ? चुल्लूभर पानी में डूब मर !

---

1 Bertrand Russell The Conquest of Happiness P 93
2 Ruskin Sesame and Lilies P 14

परीक्षक ने इतने से ही बस न की। लगे चपत पर चपत मारने, बेचारे राजकुमार के कपोल लाल हो गये, पर वाह रे राजकुमार! उफ् तक नहीं की। शान्त खड़ा रहा।

यह देख परीक्षक को अत्यन्त विस्मय हुआ। सोचा कि आज दुर्योधन को किसी अपराध पर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारने को तैयार हो गया था। भगवन्, यह कैसा राजकुमार है कि इसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया है और इसने चूं तक नहीं की। प्रसन्न बदन खड़ा है।

अब युधिष्ठिर का हाल सुनिये। अक्षर परिचय होने के बाद पहला ही वाक्य गुरुजी ने बताया था—'क्रोध मत करो।'

सुशील बालक सभी से एकान्त में जाकर उस पर विचार करने लगा। मानो मैं सुने पाठ को रोम-रोम में उतारने लगा। बेचारे युधिष्ठिर को उस शिक्षा-यन्त्र की खबर तक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पण्डित लोग विद्यारूपी गंगा की नहर अपने मस्तिष्क पर इस सफाई के साथ बहा देते हैं कि रुड़की-वाली नहर के साथ एक बूंद भी पुल से नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गंगा बहती है और निचला हिस्सा सूखा पड़ा रहता है। देखने में तो सैकड़ा पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओं में पूरे पूरे नम्बर हासिल किये, विश्व विद्यालय में पारितोषिक और पदक प्राप्त किये, किन्तु भीतर एक बूंद भी न पड़ने दी। आचरण में कुछ प्रवेश न होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कला से बिलकुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदय में उतरने लगा।

उसके विचार-क्रम का रूप यह था—

'क्रोध मत करो'—भला क्यों करूं? हमें तो क्रोध आ जाता है। क्यों आता है? उचित है या अनुचित? क्रोध के बिना काम चल सकेगा या नहीं? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जायंगे, काम अच्छा न करेंगे, राज उठ जायगा, प्रबन्ध बिगड़ जायगा, रसोई समय पर तैयार न होगी।

क्रोध को छोड़ने में कठिनाइयां तो होंगी, पर क्या क्रोध को छोड़ना असम्भव है? यदि असम्भव होता तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही न देते? शास्त्र ही ऐसा अनुशासन क्यों देते?

अब क्या करें? क्रोध तो आ ही जाता है। तो क्या यह उचित होगा कि मान तो लिया जाय कि क्रोध करना अनुचित है, पर समय पर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें? नहीं, यह तो छल है। गुरु और शास्त्र के साथ धोखेबाजी है। मुंह से 'हां' कर लेना और अमल में 'न' लाना। अब से दृढ़ संकल्प करते हैं कि 'क्रोध को पास न फटकने देंगे।'

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है? प्रायः जब कोई काम बिगड़ता है या कोई चीज खराब हो जाती है तो क्रोध आता है। अरे मन काम तो एक बार बिगड़ चुका। तू उसपर चित्त को क्यों बिगाड़ता है? चीज तो खराब हो गयी होगी, दस बीस पचास सौ की, पर उसके लिए चित्त जैसी अनमोल चीज को क्यों खराब कर बैठता है? आनन्द मेरा जन्मजात स्वत्व है। किसी सांसारिक वस्तु के लिए इस जन्मजात स्वत्व को क्यों खोऊं?

राजकुमारों के यहां रिवाज तो है कि बात-बात पर उरद की पीठी की तरह ऐंठना, किन्तु गुरुजी का उपदेश है—"शान्त रहो, मन को हिलने ही न दो।" गुरुजी की इस आज्ञा का मैं पालन करूंगा चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो।"

इस प्रकार सोच-विचार करते करते युधिष्ठिर ने उन तमाम मौकों को याद किया जहां उसकी शान्ति के पैर फिसला करते थे और अपने आपको खूब समझाया—ऐ अनजान मन, अब तक जो हुआ सो हुआ। आगे से ऐसे कोमल समयों पर संभलकर चलना। जब कोई कुछ कटु वाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे खिलाफ साजिश रचे अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, तब तू शान्त रह।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने बहुत बार जान-बूझकर अपने-आप को ऐसे स्थानों पर पहुंचाया, जहां दुर्योधन आदि ने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किन्तु युधिष्ठिर ने हर बार 'क्रोध मत करो'—इस पाठ का व्यावहारिक अनुभव सफलता के साथ किया। जब क्रोध बिलकुल छूट गया तो चित्त में चैन रहने लगा। आनन्द और प्रसन्नता ने रंग जमाया, मानो मुफ्त में खजाने हाथ आ

गये। अनुभव ने युधिष्ठिर को यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगों का यह ख्याल गलत है कि 'क्रोध के बिना काम नहीं चल सकता।'

परीक्षक महोदय ने जब देखा कि युधिष्ठिर पर मार का कोई असर नहीं हो रहा है तब वे समझे—ओ हो, यह लड़का हमारा भी गुरु है। यह हमको सिखा रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं।

उनकी आँखों में आँसू डबडबा आये। बच्चे को गोद में लेकर वे फूट-फूटकर रोने लगे

इल्म चन्दाँ कि बेशतर ख्वानी
चूँ अमल दर तो नेस्त नादानी।

"तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाय, यदि उस पर अमल नहीं है, तो सिर्फ नादानी है।"

\+ + +

तो, इसका नाम है पढ़ना, इसका नाम है गुनना।

लोग पढ़ते हैं ऊँचा पद पाने के लिए, लोगों से प्रशंसा पाने के लिए, ऊँचा रुतबा पाने के लिए।

कुछ का यह हौसला पूरा हो जाता है।
पर यही तो जीवन का लक्ष्य है नहीं।
यही तो जीवन की प्रगति है नहीं।

कर्लाइल के शब्दों में जीवन की प्रगति की व्याख्या यह है—

"He only is advancing in life, whose heart is getting softer, whose blood warmer, whose brain quicker, whose spirit is entering into living peace."

'केवल उसी का जीवन प्रगति की ओर जा रहा है, जिसका हृदय दिन-दिन मुलायम से मुलायम होता जा रहा है, जिस के रक्त की उष्मा बढ़ती जा रही है, जिसका दिन दिन तीक्ष्ण होता चल रहा है और जिसकी आत्मा स्थायी शान्ति की दिशा में प्रवेश करती जा रही है।

शिक्षा का लक्ष्य, विद्या का लक्ष्य है—मुक्ति।
सा विद्या या विमुक्तये।

हम नाना प्रकार के बन्धनों से मुक्त न हुए, मानव-मानव को बाँटनेवाले कठघरों में ही कैद बने रहे तो धिक्कार है हमारी शिक्षा पर, धिक्कार है हमारी विद्या पर!

हमारे यहाँ तो इसीलिए कहा है कि एक ही शब्द पढ़ लो—ढाई अक्षर का छोटा-सा शब्द है—प्रेम। बस, बेड़ा पार है।

मानव-मानव से प्रेम। पशु पक्षी से प्रेम। कीट-पतंग से प्रेम। पेड़-पौधों से प्रेम। चर-अचर से प्रेम। सृष्टि से प्रेम, सृष्टिकर्ता से प्रेम।

जीवन की सार्थकता इसी में प्राप्त हो जायगी। इसके अलावा न कुछ पढ़ने की जरूरत है, न कुछ गुनने की।

•

शिक्षा की बुनियाद

● काशिनाथ त्रिवेदी

जीवन, विशेषकर मनुष्य का जीवन, समग्र है, अत उसका विचार समग्रता-पूर्वक ही होना चाहिए। इसके अभाव में जीवन की समग्रता खण्डित होती है, उसकी शक्ति टूटती है, और विकास तथा समृद्धि की गति कुण्ठित होती है। पता नही, क्यो, कैसे, और कबसे, मनुष्य की शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में समाज और शासन ने समग्रता-पूर्वक सोचना छोडा और खण्ड-खण्ड में सोचने की परिपाटी चलायी। परिणाम यह हुआ कि मानव जीवन के समग्र विकास म अन्दर-बाहर की बाधाओं और कुण्ठाओं का एक अम्बार-सा खडा हो गया। मनुष्य अपनी पूरी ऊँचाई तक उठ सकने की स्थिति में नही रहा। वह बौना बनकर रह गया। बौनेपन का यह दुख आज मानवता का सबसे बडा दुख है। इसके निवारण का कही, कोई व्यवस्थित, योजना-बद्ध, उत्कट और सतत प्रयत्न कम-से-कम आज के भारत में तो होता दीख नहा रहा है। पता नही, इसके दूरगामी परिणाम कितने गम्भीर और भयकर होंगे।

टुकडो में सोचने की घातक रीति

आज हमारे लोक-जीवन का सबसे बडा अभाव यह है कि हम न तो पारिवारिक स्तर पर, न सामाजिक स्तर पर और न राष्ट्रीयता के स्तर पर ही मानव-जीवन को उसकी समग्रता के साथ देखने समझने का कोई प्रयत्न कर पा रहे हैं और न ऐसी कोई परिस्थिति ही खडी कर रहे हैं, जिसे जीवन को समग्र रूप से सहेजने और सँवारने

की दिशा में हमारे कदम दृढ़ता से आगे बढ़ सकें। प्रकृति ने तो अत्यन्त उदार बनकर मनुष्य के पिण्ड को कुछ इस तरह गढ़ा है कि अनुकूल वातावरण और परिस्थिति के सहारे वह अपने लिए निर्मित ऊँची-से-ऊँची ऊँचाइयों को छूकर अपने मानव-जीवन को हर तरह से सार्थक और अलंकृत कर सकता है; किन्तु मनुष्य है कि अपने समग्र विकास की सही दिशाओं को पकड़ने के बदले इधर-उधर भटक-भटक जाता है और फलस्वरूप अपने मूल लक्ष्य के आसपास पहुँच ही नहीं पाता। मनुष्य-समाज का यह दुर्दैव ही कहा जायगा। जीवन के और-और अंगों की भाँति ही शिक्षा के बारे में भी हमने अपने यहाँ टुकड़ों में सोचने की और काम करने की रीति अपनायी है, जो आगे-आप में शिक्षा के समग्र विकास के लिए अबतक घातक ही सिद्ध हुई है। फिर भी हम हैं कि अपनी आदतों से लाचार होकर गलत और हानिकारक चीज को ही पकड़े हुए हैं, और उसकी मदद से सही नतीजे निकालने की माया में उलझ गये हैं। चूँकि रास्ता गलत है, इसलिए नतीजे भी गलत ही निकलते रहते हैं। फिर भी हमारी नींद नहीं खुलती और हम हैं कि नये और सही रास्ते के बारे में सोचने से झिझकते हैं और उसपर चलने की हिम्मत तो बटोर ही नहीं पा रहे हैं। आज की हमारी अनेकानेक कमियों, खामियों और लाचारियों के मूल में हमारे लोक-जीवन की यह व्यापक दुर्बलता ही जड़ जमाये बैठी है। जबतक इसका प्रतिकार करने की शक्ति व्यक्ति और समाज के जीवन में जागेगी नहीं, तबतक आज की हमारी पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक और व्यावहारिक समस्याएँ उत्तरोत्तर बढ़ती और उलझती ही चली जायँगी।

आज इस देश के शिक्षा-जगत में जो कुछ चल रहा है, उसमें मनुष्य के समग्र जीवन का कहीं कोई स्थान नजर नहीं आता। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य को जिन परिस्थितियों में जीना और संघर्ष करना पड़ता है, वे उनके सर्वांगीण विकास के लिए पोषक और हितकर नहीं होतीं। माता की गर्भ-धारण की घड़ी से लेकर शिशु के जन्म तक के समय में भावी माता को अपने परिवार में गर्भस्थ शिशु के भावी जीवन की दृष्टि से जिस प्रकार का वातावरण, व्यवहार, विचार और आचार का लाभ सहज भाव से मिलना चाहिए, वह उसे क्वचित् ही कहीं मिल पाता हो! इस विषय में हमारी दृष्टि आज इतनी धुँधली और विकृत हो चुकी है कि उसका यथार्थ वर्णन करना सम्भव ही नहीं है। जो काम पशु-पक्षी अपनी सहज प्रेरणा से करके अपने गर्भ में पड़े जीव का यथोचित पोषण और संवर्धन कर लेते हैं, अपनी अनेकानेक विकृतियों के फेर में पड़कर आज का मनुष्य-समाज अपने गर्भस्थ शिशुओं के लिए उतना करने की अपनी शक्ति और क्षमता को भी खो बैठा है। परिणाम यह हो रहा है कि माँ के गर्भ में पुष्ट होनेवाले अर्भक को अपने गर्भकाल में ही नाना प्रकार की यातनाओं और विकृतियों का शिकार होना पड़ता है।

भारी उपेक्षा!

गर्भस्थ शिशु का अपनी माँ के साथ, जो सजीव सम्बन्ध है, उसे ध्यान में रखकर हमारे पूर्वजों ने एक मर्यादा यह सूचित की थी कि गर्भवती स्त्री के जीवन को कम-से-कम उतने समय के लिए तो सब प्रकार से स्वस्थ, सुखी और सन्तुष्ट रखने की चिन्ता तथा सावधानी परिवार के बड़ों और छोटों को रखनी ही चाहिए, जबतक शिशु माँ के गर्भ में आकार धारण करता है और पुष्ट होता है। शिशु और माँ के जीवन का वह एक अत्यन्त पवित्र समय होता है। यदि उस समय पूरी सावधानी और समझदारी के साथ सँभाला तथा साधा नहीं जाता, तो आगे फिर उसे सँभालना, साधना और भी कठिन हो जाता है, किन्तु आज सचाई यह है कि हमारा वर्तमान समाज मानव-जीवन के इस अत्यन्त मूल्यवान और महत्त्व के काल पर यथोचित ध्यान ही नहीं दे पा रहा है। अज्ञान, अन्ध-विश्वास, कुसंस्कार, कुरीतियाँ, स्त्री के प्रति देखने की दोषपूर्ण दृष्टि आदि आदि कई कारणों से आज हमारे देश की गर्भवती स्त्रियों और उनके गर्भ में पलनेवाले शिशुओं के बारे में पूरी गहराई के साथ सोचने और जिम्मेदारी के साथ व्यवहार करने के मामले में ऊपर से नीचे तक कई श्रेणियों में बँटा हुआ हमारा समाज भारी उपेक्षा से ही काम ले रहा है। भारत के भविष्य के लिए यह कोई शुभ लक्षण नहीं।

जब किसी वस्तु के मूल में ही भारी दोष रह जाते हैं, तो वह वस्तु अपने असल रूप में प्रकट ही नहीं हो पाती। आज क्या इस देश में और क्या सारी दुनिया में मानव-शिशुओं के लिए यही परिस्थिति वर्तमान है। गर्भकाल में ही उनको और उनकी माताओं को अनगिनत यातनाओं से निकलना पड़ता है और हर यातना माँ और शिशु के मन पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाती है। यदि हम चाहते हैं कि देश और दुनिया का मानव-समाज स्वस्थ, शान्त, समृद्ध और सदाचार-प्रिय बने, तो हमें सबसे पहले माताओं को सँभालना होगा और सारे समाज की जीवन रचना तथा मनोरचना ऐसी करनी होगी, जिससे कम-से-कम गर्भवती माता अपने गर्भस्थ शिशु को अपने जीवन की उत्तम से उत्तम प्रसादी प्रतिक्षण दे सके और स्वयं भी तन से, मन से, विचार से तथा वाणी और आचरण से इतनी शुद्ध-बुद्ध, शान्त-स्वस्थ और प्रसन्न हो अथवा रहे, जिससे गर्भस्थ शिशु को अपनी माँ की इन सिद्धियों का लाभ आरम्भ से अन्त तक बराबर मिल सके। इस दृष्टि से देखें तो हमें यह मानना और जानना होगा कि जिस परिवार में स्त्री गर्भवती बनती है, उस परिवार के छोटे-बड़े प्रत्येक सदस्य का जीवन जाग्रत साधना का बन जाना चाहिए। जिसके गर्भ में शिशु आता है उसकी अपनी भी साधना का श्रीगणेश तभी से हो जाता है। उसका यह धर्म और कर्तव्य बन जाता है कि वह अपने को हर तरह संयत, स्वस्थ और प्रसन्न रखे। उसके संयम का, उसकी स्वस्थता का और उसकी प्रसन्नता का लाभ गर्भस्थ शिशु को निरन्तर मिलता रहे, तो शिशु का अपना पिण्ड संयम, स्वास्थ्य और प्रसन्नता के संस्कारों से पुष्ट होता रहता और जन्म के बाद मृत्यु तक वह अपनी इन *अर्जित संस्कारों के पड़ते प्रभाव से लाभ उठा सकेगा।* अतः परिवार के बड़ों और बूढ़ों का कर्तव्य हो जाता है कि वे गर्भवती स्त्री के साथ कभी कोई ऐसा व्यवहार न करें, जिससे उसका मन दुखे, पानी उतरे, उसे रोना-कलपना पड़े अथवा अकथनीय सन्ताप, वेदना और व्यथा का सामना करना पड़े। यदि परिवार के लोग, खासकर बड़े-बूढ़े इतनी सावधानी बरतते हैं तो निश्चय ही वे एक महान पुण्य-कार्य करते हैं और परिवार में जुड़नेवाले शिशु के जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने में बहुत कीमती मदद करते हैं। जिन परिवारों में इस बात का ध्यान विचार-पूर्वक रखा जाता है उनमें उत्पन्न होनेवाले बालक औसत बालकों की तुलना में तन मन से अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ पाये जाते हैं। यदि ऐसे शिशुओं को जन्म के बाद भी परिवार में अच्छा वातावरण और अच्छी परिस्थिति का लाभ मिलता रहता है तो वे अपना विकास औसत बालकों की अपेक्षा कहीं अच्छा कर पाते हैं।

बालकों का दुर्भाग्य

अतएव आज की हमारी मूल समस्या यही है कि हम इस देश के बाल-जीवन को सुखी समर्थ और समृद्ध बनाने के लिए क्या करें? बाल-जीवन का वास्तविक सुख माता पिता के बाहरी वैभव से अथवा ठाट-बाट से भरे पारिवारिक जीवन में नहीं है। उसके लिए तो माता पिता की अपनी स्वस्थ और निर्मल जीवन-धारा ही अधिक गुणकारी और इष्ट होती है। जिस तरह घोर गरीबी बालक के सही और सर्वांगीण विकास में बड़ी हद तक बाधक होती है, उसी तरह परिवार की अतुलित सम्पत्ति भी बालक के तेजस्वी विकास को कुण्ठित कर देती है। गरीबी में विकास के सही और पूरे अवसर नहीं मिलते अमीरी में बालक का नौकर चाकर के हाथ सौंपकर माता पिता उसका भारी अहित करते हैं। बालक अथवा शिशु जब अपने माता पिता की सीधी छाँह में रहने के सुख से वंचित कर दिया जाता है और उसे अनाड़ी तथा फूहड़ नौकरों के हवाले करके माता पिता बेखबर हो जाते हैं तो बालक अपने सारे 'संस्कार' नौकरों से लेता है माता पिता से ले नहीं पाता और हम खूब अच्छी तरह जानते हैं कि अमीर परिवारों में काम करनेवाले उनके नौकर स्वयं कितने संस्कार-सम्पन्न होते हैं! इस तरह आज का हमारा बालक न गरीबों के घरों में संस्कारी और सुखी जीवन बिताने का अवसर पाता है और न अमीरों के धन-वैभव से भरे परिवारों में ही। मध्यम श्रेणी के परिवार भी इस स्थिति के अपवाद नहीं हैं। बालक तो वहाँ भी दुःखी, वंचित और नग्न ही बना रहता है। दुर्भाग्य से आज हमारे समाज के लिए सारी बात इतनी सहज हो गयी है कि इससे भिन्न

बालक के विषय में कुछ सोचने और करने की किसी की न तो कोई तैयारी दिखती है और न वृत्ति ही बनती है। आज के हमारे बाल-जीवन के लिए यह एक बड़ा और गम्भीर भय-स्थान है। समाज तथा शासन के कर्णधारों को इसके विषय में तीव्रता और तत्परतापूर्वक सोचना ही होगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश के सामने शिक्षा का जो मौलिक स्वरूप रखा था, वह व्यापक, विराट और समग्र था। माँ के गर्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक की शिक्षा-दीक्षा का समावेश उसमें किया गया था। यदि हम अपने देश में शिक्षा के उस स्वरूप को सिद्ध करना चाहते हैं, तो इसमें सन्देह नहीं कि हमें अपने देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति को जड़मूल से बदलने की तैयारी करनी होगी और मानव-जीवन को समग्र रूप से समुन्नत तथा सार्थक बनानेवाली शिक्षा को जीवन-शिक्षा के रूप में चलाने की तैयारी में लगना होगा।

जीवन की बुनियाद ही उपेक्षित !

आज तो क्या हमारी सरकारें और क्या हमारे अखिल-भारतीय शिक्षा-संगठन, सभी शिक्षा के सम्बन्ध में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक आदि की परिभाषा में ही सोचते हैं और तदनुकूल ही सारी योजना तथा व्यवस्था करने में लगे रहते हैं। प्राथमिक से पहले के बाल-जीवन को सँवारने तथा सँभालने का दायित्व न सरकार अपना मानती है, और न समाज ही अपना मानता है। इस कारण जन्म से लेकर छः साल तक की उमर का हमारा बाल-जीवन आज भी पूरी तरह उपेक्षित और कितना अनादृत है! किसी को उसकी ओर देखने की न तो प्रेरणा हो रही है और न इच्छा। बाल-जीवन के मर्म को जाननेवाले इस दुनिया के नये-पुराने सभी धुरन्धर विचारकों और आचार्यों ने बार-बार और प्रायः एक स्वर से यह माना और कहा है कि जन्म के दिन से लेकर पूरे छः वर्ष तक का समय बालकों के जीवन का अनमोल और बुनियादी समय होता है। इस समय में उनको जितना सँभाल लिया जाता है उतने ही वे जीवनभर सँभले रहते हैं। यदि उनके जीवन का यह कीमती समय परिवार, शासन अथवा समाज की उपेक्षा के कारण बरबाद हो जाता है तो फिर आगे के उनके जीवन को समर्थ और समृद्ध बनाने का काम लगभग असाध्य ही बन जाता है। इसलिए हमारा निवेदन है कि शिक्षा के क्षेत्र में, और खासकर बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में, यदि हम कोई ठोस और चिरस्थायी मूल्य का काम करना चाहते हैं, तो हम सबसे पहले बुनियादी से पहले की उमरवाले शिशुओं और बालकों के जीवन को बनाने तथा सँवारने के विषय में प्राथमिकता-पूर्वक सोचना और उपाय-योजना करनी होगी, अन्यथा आगे का सारा आयोजन मूल को छोड़कर डाल-पत्तों को सींचने-जैसा एक व्यर्थ और निरर्थक आयोजन ही रह जायगा।

देश की शिक्षा को नागरिक के सर्वांगीण विकास का वाहन बनाने में, जिनकी श्रद्धा और निष्ठा है, उनका कर्तव्य और धर्म हो जाता है कि वे इस देश में शिक्षा के स्वतन्त्र और समग्र रूप को विकसित करने में अपनी सारी शक्ति लगायें और उसमें भी बाल-जीवन के पहले छः वर्षों को अधिक-से अधिक समृद्ध बनाने के काम को प्राथमिक महत्व दें। मूल में स्वास्थ्य होगा तो वह डालियों, पत्तों और फलों को भी स्वस्थता देगा। मानवजीवन के मूल में शिशु अथवा बालक बैठा हुआ है। हम सब मिलकर आज के इस शिशु की भावभरी उपासना का कोई व्रत लेंगे और शिशु-जीवन को समृद्ध, सुखी, स्वतन्त्र, स्वावलम्बी और तेजस्वी बनाने के लिए आवश्यक आयोजन-प्रयोजन करेंगे, तो सहज क्रम से आगे का बाल-जीवन, किशोर-जीवन, युवा-जीवन, प्रौढ़-जीवन और वृद्ध-जीवन भी स्वस्थ, सुखी, शान्त और प्रसन्न बन सकेगा।

'जैसा बीज वैसा फल : जैसी नींव वैसा महल।'

•

विदेशी भाषा के माध्यम से स्वाध्याय की सच्ची सिंचाई नहीं हो सकती। विचार बड़ी देर से मस्तिष्क तक पहुँच पाते हैं; और ज्ञान का रस वहाँ तक पहुँचने के पहले भाषा के समझने और उसके व्याकरण की रटाई में ही सूख जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

राष्ट्रीय विकास के सन्दर्भ में शिक्षक और विद्यार्थी-शिविर

● बनवारीलाल चौधरी

शिक्षक, विद्यार्थी और ग्राम-युवक ये तीनों ही ग्राम उत्थान में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। ग्राम समाज में इनका स्थान महत्व का है परन्तु दुर्भाग्यवश सामान्यतः ये तीनों ही ग्राम के प्रति उदासीन हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि ये तीनों शारीरिक रूप से जरूर गाँव में हैं पर उनका मन गाँव में नहीं है। ग्राम से भाग जाने अथवा अपना पिण्ड छुड़ा लेने के लिए वे लालायित और आतुर हैं। ग्राम विकास या सुधार में इनकी रुचि जागृत करने, इसमें अपना योग-क्षेम देने और कार्यक्रम में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित करने की दृष्टि से हमने अपने कार्य के आरम्भ-काल से ही इन तीनों वर्गों से विशेष सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किये। इस ध्येय की प्राप्ति हेतु हमने समय-समय पर विद्यार्थी और युवक शिविर, श्रम एवं अध्ययन शिविर और युवक मण्डल के आयोजन किये। यहाँ मैं शिक्षकों और विद्यार्थियों के शिविर की चर्चा करूँगा।

शिक्षक-शिविर

शिक्षकों का शिविर आयोजित करना, जिस संस्था में वे कार्य करते हैं उनके सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। शिविर में भाग लेने के लिए शिक्षक अपनी संस्था की आज्ञा चाहते हैं। हमने अपने क्षेत्र के जनपद के १५–२० शिक्षकों का शिविर आयोजित करने का सोचा। जनपद के अध्यक्ष से हम लोग मिले, पर वे हमेशा आना-कानी करते रहे। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने अपने

मन का राज खोला। उन्हें डर था कि हम अपने विचारों से शिक्षकों को ऐसा प्रभावित कर देंगे, ऐसा पढा देंगे कि वे उनके वश से बाहर चले जायँगे, वे विद्रोही हो जायँगे, वे हमसे बढावा प्राप्त कर जनपद की बात ही न मानेंगे। हमने अध्यक्ष महोदय को बहुत समझाने का प्रयत्न किया। उन्हें आश्वासन दिया कि शिविर के फलस्वरूप हमें आशा है कि शिक्षक का कार्य सुधरेगा शाला अच्छी होगी, परन्तु हम उन्हे राजी करने में सफल न हो सके।

इसी समय समाज विकास योजना के अंतर्गत गांवो में पाठशालाऍं आरम्भ हुई थीं। निटाया का शाला भी इसी योजना की एक शाला थी। आसपास के ३–४ गाँवों में भी विकास-योजना ने शिक्षक नियुक्त किये थे। विकास अधिकारी और शिक्षा विकास-अधिकारी को हमने शिक्षक शिविर का सुझाव दिया। वे तुरत मान गये और उन्होंने अन्य अधिकारियों से भी हमारा सम्पर्क करा दिया। इस आधार पर हमने एक आठ दिवसीय शिक्षक शिविर निटाया में आयोजित किया।

आयोजन का स्वरूप

समाज विकास-योजना होशगाबाद के १२ शिक्षकों ने इसमें भाग लिया। ग्रामीण शालाओं के सामान्य शिक्षकों की तुलना में इनका शैक्षणिक स्तर अच्छा था।

शिक्षकों के अलावा निटाया-केन्द्र मित्र मण्डल, ग्रामसुधार केन्द्र रसूलिया और विकास योजना के शिक्षा-अधिकारियों ने इस शिविर में भाग लिया। ये सब लोग शिक्षकों के साथ ही उन्ही के समान शिविरार्थी के रूप में रहे।

शिविर के आरम्भ में ही हमसब ने चर्चा कर शिविर को जनतांत्रिक ढग पर चलाने का निर्णय किया। शिविर-संचालन एवं अन्य जिम्मेदारियाँ और व्यवस्था का भार शिक्षकों ने आपस में उठाया। बारी-बारी से सब शिक्षकों ने यह निबाहा।

भोजन, सफाई, सण्डास सफाई, प्रकाश, वर्ग व्यवस्था, भोजन परोसना आदि सब सामाजिक कार्य शिक्षक और हमलोगों ने मिलजुलकर आपस में बाँट लिये।

शिविर को एक सुगठित समाज का रूप देने का हमारा सतत प्रयत्न रहा। इस समाज में प्रत्येक सदस्य की जिम्मेदारियाँ और अधिकार बँटे और निश्चित होने पर भी पूरे समाज की समग्र जिम्मेदारी सब सदस्यों की सम्मिलित और एकाकी रूप में मानी गयी। उदाहरणार्थ यदि सफाई ठीक न हुई तो यह जिम्मेदारी सफाई टोली की अवश्य थी, पर खराबी के लिए केवल सफाई टोली ही नहीं, वरन हमसब जिम्मेदार माने गये। केवल सफाई-टोली पर दोष डालकर समाज का सदस्य अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता, परन्तु एक जिम्मेदार अधिकारी सदस्य के नाते उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह गन्दगी न रहने दे। इस व्यवस्था और निर्णय के कारण शिविर के सब लोगों ने सब कामों में सक्रिय रुचि ली और सब कार्यों को सुचारु रूप से निबटाने का उनका प्रयत्न रहा।

शिविर में चर्चा और अध्ययन के विषय इस प्रकार थे—

- ग्राम शिक्षक एवं ग्राम उत्थान।
- बुनियादी शिक्षा के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पहलू।
- ग्राम समाज में बुनियादी शाला के शिक्षकों की जिम्मेदारियाँ।
- बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम और पद्धति।
- नयी तालीम के सिद्धान्त।
- प्रौढ शिक्षण।
- बुनियादी शाला में ड्रामा सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन।
- समवाय पद्धति।
- शाला का म्यूजियम (कौतुकालय)।
- सफाई और कम्पोस्ट।
- शाला की व्यवस्था।
- आदर्श शिक्षक।
- शाला का लेखा-जोखा।
- उत्सव और समाज शिक्षा।
- युवक मण्डल का आयोजन।
- शाला का उद्यान।
- कताई बुनाई, खादी।
- ग्रामोद्योग।
- आदर्श पाठ।

- शाला में आनन्द उल्लास एवं मनोरंजन।
- ग्राम शिक्षक का जीवन और जिम्मेदारियाँ।

सब वर्ग चर्चा के रूप में हुए। विषय-अधिकारी विषय-सम्बन्धी संक्षिप्त परिचय पेश करके शिविरार्थियों की चर्चा एवं विषय विस्तार और मुद्दाविशेष को समझाने में सहायता करता था। प्रत्येक शिविरार्थी का मानस जागृत रहे इस दृष्टि से चर्चा और वाद विवाद में सबका सक्रिय योग प्राप्त किया गया।

अनुभव

सहजीवन, सहवास और सहभोजन का इन शिक्षकों के जीवन में यह प्रथम अवसर था। शिविर में ब्राह्मण, हरिजन ईसाई तथा अन्य जाति के लोगों ने भाग लिया। आरम्भ में दो अधेड़ शिक्षकों ने सहभोजन पर आपत्ति उठायी, फिर यह जानकर कि हमारे वयोवृद्ध साथी श्री हरप्रसाद ज्योतिषी भी सबके साथ भोजन करते हैं, वे भी शामिल हो गये। शिविर खतम होने तक उनके जीवन में सहभोजन की भावना ने स्थायित्व प्राप्त कर लिया और वे इसके हिमायती बन गये।

प्राथमिक ग्रामशाला का शिक्षक अपने को सबसे छोटा कर्मचारी मानता है। उसपर ऊपर के कर्मचारी वर्ग, जनपद सदस्य आदि की जड़-तंत्र ल्याड पड़ती रहती है। इस कारण उसके मन में हीनता की भावना ने जड़ पकड़ ली है। इन शिक्षकों ने पहली बार अपने उच्च अधिकारी-वर्ग में समानता का व्यवहार पाया। आरम्भ में शिक्षक हमलोगों से झिझकते थे। बरतन-सफाई सण्डास सफाई आदि काम का भार वे हमें देने में हिचकते थे। हमलोगों ने बिना काम सौंपे भी स्वेच्छा से पूरे तन मन से कार्य किया। इसका शिक्षकों के मानस पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और दो-तीन दिन के बाद उनका हृदय और मन पूर्णरूप से खुल गया, खिल गया। फिर वे सब चर्चाओं में निस्संकोच भाग लेने लगे, सोचने विचारने लगे और शिविर को उनके अनुभव और विचारों का लाभ प्राप्त हुआ।

स्वतंत्र वैचारिक आदान प्रदान के फलस्वरूप शिक्षक-गण शिविर की मूल भावना को ग्रहण कर सके, वे उसके अन्तस्तल तक पहुँचने की अपनी मन स्थिति बना सके। शिविर-काल को उन्होंने एक अटूट सामाजिक जीवन का रूप दिया और सौंपा गया कार्यभार सँभालने एवं जिम्मेदारी निभाने का जीवट भी प्रदर्शित किया। शिविर-काल के अन्त में ऐसा भास होने लगा कि शिक्षकों के मन की हीन भावना की जड़ हिल गयी है। व काय का गौरव अनुभव करने लगे थे।

अनुगतिक कार्य

इन शिक्षकों से हमने बाद में भी सम्पर्क बनाये रखा। उनकी शालाओं में गये। उन्हें हमने साग भाजी और फूल के बीज, पौधे आदि भी दिये। उनकी सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में हमने सक्रिय भाग लिया। हमारा अनुभव यह हुआ कि इस शिविर और सम्पर्क के फलस्वरूप इन शिक्षकों के काम में सुधार हुआ इनकी शालाओं में शाला उद्यानों का आरम्भ हुआ। शिक्षकों के जीवन में भी नये मूल्यों की स्थापना हुई।

विद्यार्थी-शिविर

ग्रामीण विद्यार्थी का मानस नगर निवासी विद्यार्थी से भिन्न रहता है। ग्रामीण विद्यार्थी के सामान्य ज्ञान का क्षेत्र शहरी विद्यार्थी से अलग ही है। ग्राम विद्यार्थी ग्रामीण जीवन में भाग लेता रहता है। जब तब वह अपने माता पिता को गृह-काय और धन्धे में मदद करता है फिर भी वह ग्राम समस्याओं से अपरिचित ही रहता है। संस्कार में उसे मिलता है भीरु जीवन, भूत प्रेत आदि का डर, दकियानूसी विचार और हीनता की भावना। वह सामान्यतः रूढिवादी अनुदार विचार का होता है। वह गाँव का हनुमान है पर उसे अपनी योग्यता, क्षमता और बल का भान नहीं है। उसे इसकी चेतना हो जाने पर वह ग्राम-विकास और ग्राम उत्थान-काय को खेल-खेल में कर सकता है। इस दृष्टि एवं ग्राम के भावी अगुवाओं से परिचय प्राप्त करने-हेतु हमने अपने कायकाल के आरम्भिक वर्षों में ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय ग्राम विद्यार्थियों के शिविर आयोजित किये।

शिविर दो भागों में आयोजित किये गये। पहला,

उच्च माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों का, और दूसरा, महाविद्यालय के विद्यार्थियों का।

विद्यार्थियों ने अपने में से तीन नायक चुने, जिन्हें हमने मंत्री की संज्ञा दी—

मुख्य मंत्री—सामान्य व्यवस्था, शिविरार्थियों को काम वितरण, कार्यक्रम-व्यवस्था।

गृहमंत्री—निवास, प्रकाश, समय, मेहमान, खेल कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम।

खाद्य मंत्री—भोजन, रसोई बनाना, बीमार सेवा।

शारीरिक और सामाजिक कार्य

शिविर का कुल सामाजिक कार्य शिविरार्थियों ने बारी-बारी से किया। प्रतिदिन ५ विद्यार्थियों की एक टोली निटाया ग्राम-टोली के साथ गाँव की गलियों की सफाई करने गयी। प्रतिदिन निटाया के खेतों में विद्यार्थियों ने दो घण्टे हमलोगों के साथ श्रमदान किया। उद्यान निर्माण का इससे उन्हें प्रत्यक्ष पाठ मिला। विद्यार्थियों ने सण्डास सफाई अपने जीवन में पहली बार की। शुरू में वे झिझके, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने सब कार्य बहुत लगन और उत्साह से किया।

चर्चा के विषय

- विद्यार्थी-शिविर का ध्येय और महत्व,
- पश्चिमी देशों में विद्यार्थियों का आन्दोलन,
- विद्यार्थियों का नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवहार तथा आचरण,
- भारत में गांधी विचार की संस्थाएँ,
- शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन का इतिहास और ध्येय,
- *मित्र-मण्डल, धर्म-संस्था, उसके सिद्धान्त और सेवा-कार्य,*
- विनोबा, भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य,
- विद्यार्थी और समाज विकास-योजना।

महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने मूलतः तीन विषयों का अध्ययन किया—

- विद्यार्थी और समाज उत्थान,
- सर्वोदय, भूदान, ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य,
- बेकारी—कारण और निवारण।

अनुभव

१ मुक्त, भय विहीन वातावरण और सही मार्ग-दर्शन में विद्यार्थी अपने विचार निस्संकोच प्रस्तुत करते हैं और वे शीघ्र ही सब समस्याओं के प्रति रचनात्मक दृष्टि अपनाते हैं।

२ समाज उत्थान-कार्य और योजना में अपना योगदान देने के लिए विद्यार्थी समाज उत्सुक है बशर्ते कि उन्हें अभिक्रम और मान्यता का अवसर प्रदान किया जाय। इन सबका सब प्रकार से श्रेय विद्यार्थियों को ही प्राप्त होना चाहिए।

३ स्थानीय प्रमुख माननीय व्यक्ति, उच्च शासकीय कर्मचारी और सामाजिक कार्यकर्ताओं को विद्यार्थी-समाज को अधिक से अधिक समय देना चाहिए। इसका अभिप्राय है उनमें घुलमिल जाने का, उनकी समस्याओं को समझने का, उनका विश्वास प्राप्त कर लेने का और उनकी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायक होने का।

४ विद्यार्थियों के उपयुक्त स्थानीय कार्य-योजनाएँ आयोजित की जायें। ये कार्य सप्ताह के अन्त में और शीत एवं ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय लिये जायें।

५ श्रम शिविर अधिक संख्या में आयोजित किये जायें। इसमें प्रमुख संस्थाओं के माध्यम द्वारा विदेशी छात्रों का भी योगदान प्राप्त किया जाय।

६ कार्य की प्रगति को नहीं, विद्यार्थी के विकास को महत्व दिया जाय। उसकी श्रम के प्रति श्रद्धा एवं वृत्ति में परिवर्तन करा सकना बहुत महत्व का है।

७ गाँव को अपना समझने, अपने किसी काम-विशेष को अपना कह सकने, उसका गौरव अनुभव कर सकने की दृष्टि से कोशिश की जाय कि शाला-विशेष के विद्यार्थी किसी एक गाँव को अपना लें।

८ आर्थिक रूप से ये शिविर यथासम्भव स्वावलम्बी हों। आवश्यक होने पर स्थानीय रूप से अनुदान संग्रह किया जा सकता है। शिविरार्थी स्वयं भी अपने घर से कुछ-न-कुछ अनाज, आटा, दाल, गुड़ आदि अवश्य लायें। यह उनकी क्षमतानुसार कम अधिक हो सकता है। ●

स्वराज्य........?

• रुद्रभान

सिक्का चाहे कम कीमत का हो या अधिक कीमत का, वह खरा होना चाहिए। सिक्का खरा न हो बल्कि खोटा हो तो उसके चलन में कदम-कदम पर कठिनाइयाँ और रुकावटें पेश आती हैं। सिक्के की खुटाई तीन किस्म की होती है —

- सिक्के की धातु की खुटाई।
- सिक्के के वजन की खुटाई।
- सिक्के के दोनों बाजुओं की मुहर छाप की खुटाई।

इन तीनों किस्मों में से एक भी खामी सिक्के को खोटा बनाने के लिए काफी है। खामियाँ जितनी ज्यादा होती हैं सिक्के की खुटाई उतनी ही ज्यादा मानी जाती है।

सिक्के की तरह आजादी भी खरी या खोटी होती है। आजादी का मुख्य आधार है मुल्क की जनता। जनता की राजनैतिक जिन्दगी आजादी का एक पहलू है और जनता की आर्थिक, सामाजिक जिन्दगी उसका दूसरा पहलू। किसी मुल्क की आजादी के खरे या खोटे होने की परख वहाँ के निवासियों की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति के आधार पर ही होती है। मुल्क की आजादी के खरे या खोटे होने के अनुसार ही राष्ट्र का भविष्य बनता या बिगड़ता है और राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुसार ही दुनिया का भी भविष्य बनता है।

हम आजाद हुए अनेक वर्ष बीत चुके। हमारे आगे-पीछे दुनिया के और कई मुल्क के निवासियों ने भी आजादी हासिल की। हम दूसरे मुल्कों की परिस्थिति से अपने मुल्क की परिस्थितियों की तुलना नहीं करना चाहते। हम अपने देश की बदलती हुई परिस्थितियों की रोशनी में अपनी आजादी के खरे या खोटेपन की छानबीन करना चाहते हैं।

आजादी के पिछले वर्षों में हमने क्या-क्या पाया है और क्या-क्या गँवाया है, इसका ठीक-ठीक लेखा जोखा करने की जरूरत है।

आजादी पाने के बाद ही हमारे देश में नियोजित विकास के नाम पर पचवर्षीय योजनाओ का सिलसिला शुरू हुआ। इन पचवर्षीय योजनाओ का मुख्य आधार थी विदेशो से प्राप्त की गयी पूंजी। नये-नये कल कारखाने खुलते गये, औद्योगिक उत्पादन बढता गया और इसके साथ राष्ट्रीय आय भी बढी। देश में यातायात के साधनो, और बिजली का प्रसार बढा। ऊँची तनख्वाह वाले लाखो कर्मचारियो के लिए नौकरियो की गुजाइश हुई। सरकार की आय बढी और उसके साथ-साथ नये-नये खर्च की मदो का रास्ता खुला। इन सबके नतीजे से मुल्क की बाहरी शकल और चमक-दमक बढी। लोगो की आशा और अपेक्षाएँ भी बढती गयी। वैज्ञानिक साधना द्वारा प्राप्त जो सुख-सुविधाएँ किसी समय कुछ इने गिने लोगो को ही मयस्सर थी उनका दायरा बढा। रेडियो, रेफ्रीजरेटर, मोटरकार स्कूटर, बिजली के पखे, कूलर, सिनेमा, और कृत्रिम वस्त्र नागरिको के लिए रोजमर्रा की चीज बन गये।

सिक्के का दूसरा पहलू

पचवर्षीय योजनाओ के साथ साथ नागरिको के जीवन की आवश्यक वस्तुएँ जैसे-अनाज, कपड़ा चीनी, साग सब्जी, तेल, साबुन आदि महँगी होती गयी।

इस्पात, सीमेण्ट और मशीनरी के उद्योगो से कुछ लाख तकनीकी मजदूरो को जीविका की सुविधा मिली, किन्तु कपडा तैयार करने चावल कूटने, तेल और गन्ना पेरने के कारखानो के कारण करोड़ो देहाती मजदूरो के रोजगार का जरिया छिन गया।

आजादी मिलने के ठीक बाद के कुछ वर्षो तक आम जनता में आजादी के प्रति खूब उत्साह दिखायी पडता था। १५ अगस्त के दिन नगर और देहात के लोग बड़े उल्लास के साथ राष्ट्रीय झण्डे के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने को एकत्र होते थे। वैसा दृश्य अब दुर्लभ हो गया है। अब स्वतन्त्रता दिवस का कार्यक्रम, सरकारी दफ्तरो, बड़े व्यापारियो, ठीकेदारो और सभा की दिलचस्पी का विषय बनकर रह गया है। देश की आजादी की वर्षगाँठ के प्रति आम जनता की तटस्थता वस्तुत राष्ट्रीय जीवन के गहरे खोखलेपन का लक्षण है।

जिस आजादी की प्राप्ति के लिए अनेक देशभक्त फांसी पर झूल गये, युवक बन्दूक की गोलियो के निशाना बने नेता जेल में गले पचे, जनता ने लाठियो और कोडो की मार का अत्याचार झेला और जो आजादी इनसानी जिन्दगी की सबसे बडी नियामतो में मानी जाती है उसके प्रति आम जनता की निरपेक्षता कोई मामूली चीज नही है। दरअसल यह बात पचवर्षीय योजनाओ की कुल कामयाबियो के आगे एक प्रश्नचिन्ह बनकर खडी है।

हमारी आजादी का एक पहलू जितना चमकदार और आकर्षक है, दूसरा पहलू उतना ही अटपटा और बदशक्ल है। इसलिए दुनिया के बाजार में हमारी आजादी का सिक्का अपनी पूरी कीमत पर नही चलता, बट्टे पर चलता है।

खरी आजादी के लिए जन जीवन की बुनियाद में आजादी का बीजारोपण होना चाहिए। भारत के लाख लाख गाँव ही वस्तुत भारतीय जनताके जीवन की बुनियादी इकाइयाँ हैं। उनमें आजादी का सचार होने पर डाल और टहनियो में भी उसकी झलक आयगी।

एक ओर आजादी के पव के प्रति जनता उदासीन है, दूसरी ओर लाखो लोग ग्रामदान से प्रखण्डदान और फिर प्रखण्डदान से अखण्डदान तक अपने क्षेत्रीय स्वराज्य का ध्वजारोहण करते जा रहे हैं।

आजादी के उन्तीस वर्ष बाद राष्ट्रीय जीवन के पारावार में पुन ज्वार उठने के लक्षण सामने आ रहे हैं। बिहार तमिलनाड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और उड़ीसा की जनता ने छत्तीस प्रखण्डो में ग्राम स्वराज्य के रूप में खरी आजादी का अभिनन्दन किया है। जगल की ज्वाला की तरह यह अग्नि-पुंज यदि लाख-लाख गाँवो में पहुँचकर वहाँ के जन-जीवन की क्षुधा और क्षोभ के अन्धकार को दूर कर सके तो निश्चय ही हमारी आजादी के सिक्के के दोनो पहलू चमक उठेंगे। विश्व-बाजार में उसकी कीमत बढ जायगी। ●

'सीखना और सिखाना'

"प्रौढ़ शिक्षा के जो कार्यक्रम अब चलाये जाते हैं उनका उद्देश्य स्त्री और पुरुष की समग्र बौद्धिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करना है।" इसी उद्देश्य को सामने रखकर प्रौढ़-शिक्षा में अनुभवों और उसके सिद्धान्तों का मेल बिठाने की कोशिश लेखक ने की है।

लेखक का कथन सही है कि "यह पुस्तक साधारण है, लेकिन इसके पीछे उद्देश्य महान है।"

पुस्तक ग्यारह अध्यायों में बँटी है। शिक्षा-मनोविज्ञान और सिद्धान्त, कार्यकर्ताओं के अनुभव, प्रौढ़ विद्यार्थी की प्रेरणा, रुचि और दृष्टिकोण, सीखने के लिए आवश्यक वातावरण, सिखाने की पद्धति, सीखने के सिद्धान्त तथा प्रक्रिया में अध्यापक का स्थान आदि विषयों पर पुस्तक मार्गदर्शिका का काम करेगी इसमें शक नहीं।

प्रौढ़ शिक्षा की कुछ मूलभूत बाधाओं का विश्लेषण करते हुए लेखक ने कुछ मुख्य भ्रान्त धारणाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है—मनुष्य का स्वभाव नहीं बदला जा सकता, वयस्क नयी बातें नहीं सीख पाता, सीखने में दिमाग ही सब कुछ है, सीखना या तो मनोरंजक है या कष्टप्रद। प्रौढ़ शिक्षार्थी मानसिक दृष्टि से बच्चा होता है, सीखना केवल बुद्धिमान व्यक्तियों के ही वश की बात है आदि! लेकिन ज्यों-ज्यों प्रौढ़ शिक्षा का समाज में प्रसार हो रहा है, ये धारणाएँ टूट रही हैं, और प्रौढ़-शिक्षा के नये-नये अनुभव और तथ्य सामने आ रहे हैं।

पुस्तक में प्रौढ़ शिक्षा के प्रायः हर पहलू पर क्रमिक विचार प्रस्तुत किया गया है, और बीच-बीच में शिक्षण के सिद्धान्तों, शिक्षा-शास्त्रियों की मान्यताओं और शिक्षक, विद्यार्थियों के अनुभवों का जो पुट दिया गया है, उससे पुस्तक का महत्व बढ़ गया है।

पुस्तक के अन्त में फ्रांसिस बेकन का कथन प्रस्तुत किया है जो पुस्तक पढ़ने के बाद पाठक के मन में पैदा होनेवाली प्रतिक्रियाओं को पुष्ट करता है—"ज्ञान-प्राप्ति का ध्येय, सुख, तर्क, वैयक्तिक प्रगति, लाभ ख्याति या केवल अधिकार ही नहीं है। ज्ञान-प्राप्ति का अन्तिम उद्देश्य जीवन को समृद्ध बनाना है। अध्यापक के लिए भी यही सही उद्देश्य है। अपना जीवन, दूसरों का जीवन, समाज का जीवन समृद्ध बनाना, यह उसका कार्य है। सत्य की खोज सत्य की व्याख्या और दूसरों के विकास में सहायता देना, यह केवल अपने आपको अभिव्यक्त करने के साधन हैं। अन्तिम उद्देश्य जीवन को समृद्ध बनाना है।"

पुस्तक के लेखक जे० रोबी किड प्रौढ़-शिक्षा के अनुभवी और विद्वान व्यक्ति हैं। आजकल वे यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा विकास समिति के प्रधान हैं। 'सीखना और सिखाना' उनकी मूल अंग्रेजी पुस्तक 'हाउ एडल्ट्स लर्न' का अनुवाद है। यद्यपि भारत में प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में जो लोग काम कर रहे हैं, उनकी क्षमता पर ध्यान दिया जाय तो उनके लिए यह पुस्तक पकड़ से बाहर की है। हाँ, हमारे यहाँ प्रौढ़-शिक्षा का काम 'करानेवालों' के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी साबित होगी। और, शायद कुछ अधिक विद्वान शिक्षा-शास्त्रियों को प्रौढ़-शिक्षा की ओर जाने की प्रेरणा भी मिल सकेगी।

पुस्तक २४० पृष्ठों की है। मूल्य है ७.५०। पैसे की दृष्टि से पुस्तक महँगी है, लेकिन उपयोगिता की दृष्टि से सस्ती। छपाई अच्छी है। प्रकाशक है—भारतीय प्रौढ़-शिक्षा संघ, १७ बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली।

—अनिकेत

अनुक्रम

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप किया हुआ चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

- कहाँ है गाँव ?
- किसका विकास ?
- गाँव के जीवन में ऊँच-नीच, धनी-गरीब, मालिक-मजदूर, हिन्दू-मुसलमान, शिक्षित-अशिक्षित, हर जगह भेद-ही-भेद, हर जगह विषमता-ही-विषमता ।
- समाज में मालिक-मजदूर और शासन में बहुमत-अल्पमत की अगर विषमता रह गयी तो विस्फोट रुक नही सकता ।
- हर जगह नेता की टोपी, ठीकेदार की थैली और अफसर की कुरसी का ही बोलबाला है ।
- हमारी खेती मजदूर की गुलामी पर चल रही है ।
- गाँव के घर एक-दूसरे के नजदीक है, लेकिन एक इनसान का दिल दूसरे के दिल से दूर है ।
- माँ चाहती है बच्चा सो जाय, पर भूख में उसे नीद कहाँ ?
- प्रतिनिधि, नेता और नौकरशाही के भार से बेचारे श्रमिक की कमर टूट रही है ।
- ग्रामदान की घोषणा मालिक और मजदूर दोनो की मुक्ति की घोषणा है ।
- समूह की शक्ति में ही मुक्ति है, और कही नही ।

ये है 'गाँव जाग उठा' अलबम के कुछ शब्द, जिनपर आधारित है २९ चित्र, जो भारत के गाँवो की कुछ झाँकी द जात है ।

आचार्य राममूर्तिजी की पुस्तक 'गाँव का विद्रोह को चित्रकार श्री अनिल सेन ने चित्रो में व्यक्त किया है । हर व्यक्ति इससे प्रेरणा प्राप्त कर सकता है । मूल्य २ ००

नयी तालीम, अगस्त '६६

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

त्रिविध कार्यक्रम क्या है ?

सुलभ ग्रामदान

यह अहिंसामूलक लोकतान्त्रिक समाजवाद का वास्तविक आधार है। इससे उत्पादन-साधनो का स्वामित्व और प्रशासन का नेतृत्व व्यक्ति के हाथ से गाव के हाथ म आता है। इसकी प्रक्रिया स्वेच्छामूलक और करुणा-प्ररित है और इससे ग्राम-जीवन में साम्य-स्थापना सम्भव है।

ग्रामाभिमुख खादी

यह विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की बुनियाद है, सहयोगी जीवन का प्रारम्भिक चरण है शोषणहीन समाज का आधार है सम्पूर्ण स्वावलम्बन का प्रतीक है उपयोग क लिए उत्पादन का सकल्प है और है उत्पादन में मानवीय स्पर्श का सकेत।

शान्तिसेना

एक सेवा-सेना जो दण्ड शक्ति और सैनिक-शक्ति के आधार और उसकी आवश्यकताओ को समाप्त करती है अशांति के मौके पर शान्ति-स्थापन और शान्ति के समय सेवा-कार्य करती है, जिससे अशांति के कारण समूल नष्ट हो जायँ।

इस प्रकार
ग्रामदान से मुक्त गाव का जन्म,
खादी से उसका पोषण और
शान्तिसेना स रक्षण—
तब बनेगा स्वतत्र देश म स्वतत्र गाँव।
और यह है मुक्ति की त्रिविध अहिंसक क्रान्ति।

आवरण मुद्रक—भार्गवभूषण प्रेस मानमंदिर वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २३ ६०० इस मास छपी प्रतियाँ २३ ६००

नयी तालीम
सर्व-सेवा-संघ की मासिकी
सितम्बर, १९६६

को मुक्ति का रास्ता बताये। १८ अप्रैल १९५१ को जब विनोबा ने दक्षिण के एक गांव में भूमिहीनो के लिए भूमि की मांग की, और वहां भूदानयज्ञ आन्दोलन का जन्म हुआ तो इस तरह जमीन के टुकडे बटोरना लोगो को उसी तरह उपहासास्पद लगा जैसा १९३० में कुछ लोगो का स्वराज्य के लिए गाधीजी-द्वारा नमक बनाना लगा था। और, जिस तरह स्वराज्य मिल जाने के बाद १९३० का नमक-सत्याग्रह गौरवपूर्ण इतिहास बन गया, उसी तरह १९५१ मे भूमि के टुकडे बटोरना आज इतिहास बन रहा है। भूदान सचमुच एक नयी क्रान्ति का पहला कदम था—एक छोटा-सा प्रतीक। भूदान के बाद ग्रामदान हुआ, अब ग्रामदान के बाद ब्लाकदान (प्रखण्डदान)। ब्लाकदान से तालुकादान सम्भव हो चुका है। अब पूरे जिले के 'दान' की चर्चा हो रही है, और राज्यदान भी असम्भव नही माना जा रहा है।

अगर कोई कहे कि उत्तर प्रदेश के पडोसी राज्य बिहार मे १३ ब्लाक ऐसे हैं जिनमें सौ पीछे ७५ लोगो ने अपनी भूमि की मालिकी अपनी खुशी से विसर्जित की है, और बीघा पीछे एक कट्ठा भूमि भूमिहीन को देने का संकल्प किया है, तो किसी को विश्वास होगा ? लोग कहेंगे कि आदमी जान दे सकता है, जान ले सकता है, लेकिन जान से प्यारी भूमि नही दे सकता। पर कोई जाकर देखे न कि बिहार, उडीसा, मद्रास, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के एक दो नही पूरे बयालीस ब्लाको में 'स्वामित्व-विसर्जन' का यह कौतुक कैसे हुआ है ? इतना ही नही ऐसे ब्लाको की संख्या हर हफ्ते बढ़ती जा रही है। बिहार मे तो विनोबाजी ने 'बिहारदान' का नारा लगा दिया है। वहां पूर्णियां, भागलपुर, मुगेर, दरभगा, हजारीबाग, पलामू और छपरा जिला के १३ ब्लाकों का 'दान' हो चुका है, और अब दरभगा जिले के पूरे समस्तीपुर सबडिवीजन का 'दान' प्राप्त करने की कोशिश हो रही है। योजना यह है कि पूर्णिया से लेकर दरभगा तक का जितना भाग लगभग २ करोड की आबादी का, गगा के उत्तर में है वह सब लगातार 'दान' मे आ जाय ताकि ग्रामस्वराज्य का एक विस्तृत क्षेत्र बन जाय।

गाधीजी के जमाने का नमक से स्वराज्य तक का इतिहास हम मालूम है, अब 'दान' से ग्रामस्वराज्य का कौतुक हम अपनी आंखो के सामने देख रहे है। यह नया दान पुराने दानो से भिन्न है। इसमें क्रान्ति की शक्ति है, नया समाज बनाने की कला है। यह दान वास्तव में गांव की सामूहिक मुक्ति घोषणा है। ग्रामदान में शरीक होनेवाले गांव के लोग (१) बीघे मे एक बिस्वा भूमिहीन को देते है, (२) शेष भूमि को जोतने बोने का अधिकार अपने पास रखते हैं, लेकिन भूमि का स्वामित्व अपनी 'ग्रामसभा' को सौपते है, (३) गांव की नयी व्यवस्था और विकास के लिए सब बालिगो को मिलाकर, सर्व सम्मति से चलनेवाली, चुनाव के संघर्ष से मुक्त, ग्रामसभा बनाते हैं, (४) अपनी कमाई का एक भाग—किसान अपनी उपज म मन पीछे एक सेर, मजदूर तीस दिन मे एक दिन की मजदूरी, नौकरीवाला महीने में एक दिन की मजदूरी

और व्यापारी मुनाफे का तीसवाँ हिस्सा—देकर ग्रामकोष बनाते हैं ताकि विकास के लिए गाँव की अपनी पूँजी हो जाय। ग्रामदान के लिए यह जरूरी है कि गाँव के कम से कम ७५ फीसदी भूमिवान तथा कुल जनसंख्या के ७५ फीसदी लोग इन शर्तों को मान लें, और गाँववालों की जितनी भूमि गाँव के अन्दर है उसका ५१ प्रतिशत ग्रामदान में आ जाय। तब हुआ ग्रामदान। और, ब्लाक में जितने गाँव हैं उनमें से इतने गाँवों का ग्रामदान हो जाय कि ब्लाक की कुल जनसंख्या की ७५ फीसदी जनता ग्रामदान के अन्दर आ जाय तो हुआ ब्लाकदान।

ब्लाकदान से नयी समाज-रचना की शुरुआत होगी। सौ या सौ से अधिक जन-संख्या का हर गाँव अपनी नयी ग्रामसभा (आज की नहीं) बनायगा। ब्लाकभर की ग्रामसभाओं के प्रतिनिधियों को मिलाकर 'ब्लाकसभा' बनेगी। इसी तरह आगे जिलासभा, राज्यसभा और राष्ट्रसभा भी बनती जायगी। ब्लाकसभा ब्लाक में और ग्रामसभा गाँव में, विकास और व्यवस्था का काम करेगी। सरकार के खाते में ग्रामसभा का नाम होगा–ग्रामसभा के कागज में हर परिवार का अलग-अलग–इसलिए जमीन के झगड़े समाप्त हो जायँगे। फिर क्यों कोई लेखपाल (कर्मचारी) को घूस देगा, पुलिस अदालत में जायगा ? ग्रामसभा और ब्लाकसभा विकास की जिम्मेदारी लेगी। उनके पास अपनी पूँजी होगी जिसके आधार पर वे सरकार से कर्ज ले सकेंगी और उद्योग धन्धे चला सकेंगी। फिर क्यों कोई घर छोड़कर पेट के लिए मारा मारा फिरेगा ? ग्रामसभा हर एक को जो मेहनत करने के लिए तैयार होगा, भोजन वस्त्र की गारण्टी देगी, गाँव-गाँव में शान्ति-सेना संगठित होगी जो गाँव में सहयोग और सद्भावना का वातावरण बनायगी, और विकास के हित में हमेशा श्रम के लिए तैयार रहेगी। इस तरह गाँव-गाँव में, और ब्लाक ब्लाक में, जनता की सहकार-शक्ति विकसित होगी, और आज विकास और व्यवस्था के जो काम सरकार को करने पड़ रहे हैं वे सब जनता संगठित होकर करने लगेगी। तब सरकार के काम बहुत कम हो जायँगे। मुख्य शक्ति स्वयं जनता की होगी, और सरकार की शक्ति पूरक रहेगी। न रहेंगे दल, न दलों का दल-दल।

यह ग्रामस्वराज्य का रास्ता है, दमन और शोषण से मुक्ति का रास्ता है। गांधीजी ने हमें स्वराज्य तक पहुँचाया। उनके बाद विनोबाजी ने भूदान-ग्रामदान और अब प्रखण्डदान और तालुकादान का जो रास्ता बताया उससे हम ऐसी जगह पहुँच गये हैं जहाँ से ग्रामस्वराज्य सामने साफ दिखाई देने लगा है। विनोबा ने हमें चला दिया है। अगर हम मिलकर चलते रहे तो स्वराज्य जल्द हर घर में पहुँचेगा, और तब पचास करोड़ भारतवासी एक स्वर में कहेंगे 'यह सबका स्वराज्य है'।

—राममूर्ति

संसार की भावी व्यवस्था में दो ही चीजें हमारे समक्ष रहेंगी ग्राम और विश्व। सुविधा के लिए दुनिया के नक्शे पर विभिन्न देशो के नाम चाहे रहेंगे परन्तु विश्व और ग्राम के बीच अन्य किसी तंत्र का अस्तित्व नही रहेगा। जीवन के भौतिक पक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पूर्ण सत्ता गाँव के हाथ में रहेगी। गाँव में अपने जीवन की व्यवस्था स्वयं करने की शक्ति होगी। सम्पूर्ण जगत के नैतिक विकास और प्रगति की सत्ता विश्व-केन्द्र के हाथो में होगी। राज्य अथवा जिले केवल ग्राम-समाज के प्रतिनिधि रहेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ग्राम होगा और उसके केन्द्र मे विश्व-सत्ता होगी। मानव-समाज का सगठन छोटे-छोटे ग्राम-समाजो के आधार पर होगा। इस ग्राम-समाज में हमें सच्चे भ्रातृभाव के और सच्चे सहयोग के दर्शन होगे। निजी स्वामित्व के लिए उसमें कोई गुंजाइश नही रहेगी।

भू-जयन्ती

मरे मन म अकसर यह सवाल उठता है कि किसी बड़ आदमी का जन्म दिन मनाना चाहिए या मृत्यु दिवस ? जन्म सबका एक ही तरह का होता है। जन्म क समय कौन साधारण होता ह और कौन असाधारण लकिन मौत किसी एक को असाधारण बना दती ह। यो तो सभी मरत ह पर बनी मौत बडो को ही मिलती है और असाधारण मौत तो मिलती ही उनको है जो जिन्दगी म असाधारण होन ह। सुकरात बुद्ध ईसा गाधी य सब जीवन म असाधारण थ इसलिए उन्ह मौत भी असाधारण मिली। उनकी असाधारण मौत म ही पता चलता ह कि उन्होन अपन जीवन स समाज क जीवन म कितना मन्थन पदा किया। हमार देश म जन्म दिन मनान की परम्परा ह पश्चिम की तरह मृत्यु दिवस मनान की नहा। गाधीजी न इस परम्परा म एक नयी बात जोडी। उन्होंन खुद अपनी जयन्ती को गाधी जयन्ती न कहकर चरखा जयन्ती कहा। चरखा उनक लिए *अहिंसा का प्रतीक था और अहिंसा जीवन का बुनियादी सिद्धान्त इसलिए* वह चाहत थ कि अगर लोग उन्ह याद कर तो चरख क नाम स न कि उनक अपन नाम स।

११ सितम्बर विनोबाजी का जन्म दिन ह लकिन वह दिन विनोबा जयन्ती स कहा अधिक भू जयन्ती ह। गाधी क चरख क साथ विनोबा न भूदान जोडकर सामाजिक क्रान्ति की योजना पूरी कर दी इसलिए उचित ह कि उस दिन विनोबा को उनकी क्रान्तिकारी दन क लिए याद किया जाय और *उनक दीघजीवी होन की कामना की जाय।*

जन्म स मनुष्य जीवन पाता है लकिन मृत्यु क बाद वह अमर हो जाता ह। अमर बनान की शक्ति उस कम म ह जिस मनुष्य जन्म और मृत्यु क बीच की अवधि म करता ह। जन्म स मनुष्य को कम का अवसर मिलता ह और मृत्यु उस कसौटी पर कसती ह। जो कसौटी पर खरा उतरता है वह अमर हो जाता है। इसलिए विनोबा दीघजीवी हो इस कामना क साथ साथ हमारी यह कामना भी है कि वह अमर हो।

वर्ष पन्द्रह
•
अक २

कौन जानता था कि पन्द्रह वर्षों में विनोबा युग पुरुष हो जायग ? युग पुरुष वह ह जो युग धम का प्रवतन कर। और युग धम वह ह जो आज क सन्दभ म समाज

शत सहस्र प्रणाम

•

नागार्जुन

क्रान्तदर्शी, विनोबा, निष्काम,
छू गया मनको तुम्हारा नाम ।
भारतात्मा कर्मयोगी सन्त,
करो स्वीकृत शत सहस्र प्रणाम ।

निनादित हो जय जगत का घोष
घुले कल्मष, शमित हो आक्रोश ।
मुक्त ग्रामाचल बने अब स्वर्ग
लोकलक्ष्मी भर सकेगी कोष ।

भूमि, धन, श्रम, ज्ञान औ विज्ञान
गहेंगी स्वत मनु-सन्तान ।
सभी का सहयोग एक समान
करेगा वैषम्य का अवसान ।

गुणों के आकर गुणों के धाम,
विश्व मैत्री के नवांकुर, ग्राम-
पगों पर नित गमन अविराम,
गीत होगा तुम्हारा ग्राम-ग्राम ।

सूक्ष्मदर्शी, सूक्ष्म चेता, धन्य ।
तपस्वी सद्वृत्ति नेता, धन्य !
बिना शस्त्रों के विजेता, धन्य !
धन्य, नवयुग के प्रणेता, धन्य !

नित्य नव, तुम चिर-पुरातन व्यक्ति ।
आदिमानव तुम, अनाद्याशक्ति ।
निखिल जग के प्राण पुंजीभूत ।
तुम समन्वित चेतना के दूत !

अस्ति-नास्ति समेट कर हम आज
ग्राम माता के बने युवराज
तुम्हीं कुलगुरु, तुम प्रमुख आचार्य !
मुक्ति का सम्पन्न होगा कार्य !

सहज, फिर द्रुत, फिर मचा तूफान
अचलों पर हुए अचल दान !
आज मण्डल प्राप्त हो, कल प्रान्त ।
शान्ति होगी सन्निमित, विश्रान्त !

सत्य दुख, अब सुख बनेगा सत्य,
बुद्धि पावे सु-कृति का सातत्य।
धरा पर उतरे अपूर्व स्वराज्य,
सभी सबसे जुड़ें, हो अविभाज्य।

विश्वमैत्री की धुरी की कील—
भरत-भू को कौन सकता तोल ?
सुमति-करुणा-ओज के अवतार
हमी होंगे सृष्टि के शृंगार।

यही नन्दनवन, यही हो स्वर्ग !
यही होंगे सभी सुख-अपवर्ग।
बिना छोड़े दम्भ की फुफकार,
करे मानव अन्तरिक्ष-विहार !

अजगरों के झड़ेंगे विष-दन्त
निकट है अब दानवों का अन्त।
शान्तिहित अणु-शक्ति का उपयोग
सीख लेंगे विश्व के सब लोग।

लुप्त हो संशय, घृणा अवसाद,
लुप्त हो अणुशक्ति का उन्माद।
प्रेमसागर में गले आतंक,
सृष्टि में विचरें सभी निःशंक।

अवनि अम्बर की मिटेगी क्लान्ति।
रंग लायगी अहिंसक क्रान्ति।
मिटा देगी भुवन भर की भ्रान्ति,
घृणा को प्लावित करेगी शान्ति।

नगर को निर्मल करेंगे ग्राम।
देश का संकट हरेंगे ग्राम।
सद्गुणों का स्रोत होंगे ग्राम !
भव जलधि में पोत होंगे ग्राम !

सुरक्षा का किला होंगे ग्राम !
बसावट की शिला होंगे ग्राम !
अमन का पैगाम होंगे ग्राम।
नये संघाराम होंगे ग्राम !

अखिल सुख का धाम होंगे ग्राम !
पूर्ति का आयाम होंगे ग्राम !
श्रमिक जन विश्राम होंगे ग्राम !
प्रखर और ललाम होंगे ग्राम !

लुप्त हो अब वस्तुगत व्यामोह,
सहज हो आरोह या अवरोह।
सुखद हो सब ओर ऊहापोह,
रक्तरंजित खत्म हो विद्रोह।

हो रही दृढ़ क्रान्ति की बुनियाद,
हिल रहे आलस्य और प्रमाद।
हाँफते हैं आज हिंसा-द्वेष,
कहाँ पर अब भय रहेगा शेष !

कर्म होंगे गिरा का शृंगार
ऋचाएँ होंगी सहज उद्गार।
सभी भूमा, कुछ न होगा अल्प,
मूर्त होंगे सकल शिव-संकल्प।

सभी ऋतुएँ रहेंगी अनुकूल,
सुलभ होंगे अन्न-जल-फल-मूल।
रुचिर होगा निखिल जग-कल्याण,
प्रवाही सगम बनेंगे प्राण।

मुक्त नभ में हस तुम निसग
उड रहे हो, उडोगे अविराम।
बो दिये है हवा में शुभ बीज,
बढो आगे विनोबा, निष्काम।

खोलकर तुम कल्पना के पख,
कर रहे हो अन्तरिक्ष-विहार।
मनोगति तुम प्रभजन उद्दाम,
ध्वस की यह राख दो न बुहार!

परधाम प्रतीतियो के धन्य।
चल निकेतन नीतियो के, धन्य।
मसीहा मनुहार के तुम, धन्य।
महामुनि पवनार के तुम, धन्य!

ऋद्धि-सिद्धि-समेत भारतवर्ष
मनायगा विश्व यह उत्कर्ष।
स्वस्थ, निर्भय, महाप्राण, प्रवुद्ध
बाँट देगा पीडितो में हर्ष।

सहज आयुध थे, सहज औजार,
सन्त, तुम सौजन्य के अवतार।
सामने थे विघ्न भीमाकार,
किया उनपर खूब वज्र-प्रहार।

गिर रहे हैं भेद सर्व प्रकार,
शक्ति-करुणा हुई एकाकार।
उभर आया कर्मयोग उदार,
मिल गया अद्वैत को आधार।

लोक-जीवन मे घुले अध्यात्म,
मिले श्रम को चेतना का योग।
स्नेह की सुरसरि बहे चहुँ-ओर,
स्फूर्ति मे दीपित रहे सब लोग।

निविड-निष्ठा में रमेगा तर्क,
मिला भू को साम्य का आधार।
सुदृढ होगा अहिंसा का मूल,
जयति जय हे प्रीति-पारावार!

मिला युग को तुम्हारा तप-तेज,
क्यो न होगा अविद्या का अन्त
स्थूल चमका, करो सूक्ष्म प्रवेश
विश्वमानव, चेतनाधन सन्त।

अचलो में जगी जीवन-ज्योति
उमग आया अभिक्रम अभिराम।
लोकनायक, अनासक्त, उदार,
करो स्वीकृत शत-सहस्र प्रणाम।

क्रान्तदर्शी, विनोबा, निष्काम,
छू गया मन को तुम्हारा नाम!
भारतात्मा, स्थितप्रज्ञ, उदार,
करो स्वीकृत शतसहस्र प्रणाम।

विनोबा की क्रान्ति-कला

●

प्रबोध चोकसी

शिक्षकों में दो प्रकार की निष्ठाएँ होती हैं—दण्ड-निष्ठा और सामनिष्ठा। दण्ड के भय से विद्या आती है ऐसा कुछ शिक्षक मानते हैं। समझाने से विद्यार्थी सीखता है ऐसा कुछ शिक्षक जानते हैं। शिक्षा-जगत में दण्ड-निष्ठा का एक लम्बा-सा युग ही चला था। अब तो मादाम मोण्टेसरी, रवीन्द्रनाथ, गांधीजी, गिजुभाई, नानाभाई भट्ट इत्यादि के विचारों एवं प्रयोगों के प्रभाव से दण्डयुग का दौर समाप्त-सा हो गया है।

शिक्षा में तो दण्डनिष्ठा अस्त हो गयी, परन्तु क्रान्ति में नहीं हुई है। शिक्षा तथा क्रान्ति ये दोनों शिक्षक के क्षेत्र हैं। व्यक्तियों को जब दैनन्दिन जीवन के लिए तालीम दी जाती है तब हम उसे 'शिक्षा' की संज्ञा देते हैं। जब समूचे समाज को अपनी जीवन-पद्धति में आवश्यक और इष्ट परिवर्तन करने की तालीम दी जाती है तब उस को 'क्रान्ति' कहते हैं। दोनों शिक्षक के क्षेत्र हैं अतः स्वभावतः जो शिक्षक होते हैं वे क्रान्तिकारी आन्दोलनों की ओर आकर्षित होते हैं और उसमें अक्सर अग्रणी भी बन जाते हैं।

अभान-सभान का विज्ञान

ऐसे क्रान्तिकारी शिक्षकों में भी वही दो बुनियादी निष्ठाएँ पायी जाती हैं - दण्डनिष्ठा और सामनिष्ठा—भय-माध्यम और प्रेम-माध्यम—द्वेषजनक दण्डपद्धति और सख्यजनक ऐक्य पद्धति। दण्डनिष्ठा के मूल में है जड़वादी विश्वास, सामनिष्ठा के मूल में है चेतन पर विश्वास। दण्डनिष्ठ मानता है कि मनुष्य जड़ तत्त्वों के आकस्मिक संयोग एवं विकास से बना पशु है, जिसे डण्डे से हाँका जा सकता है। सामनिष्ठ देखता है कि मनुष्य पशुता से आगे विकसित हो चला प्रबुद्ध जीव है, जिसके विशेष लक्षण हैं बुद्धि, भान। ऐसे मनोमय मानव को जिस किसी रुकावट, क्षति, न्यूनता या बन्धन का ठीक से भान हो जाता है उसे वह अपनी सृजनात्मक चैतन्यशक्ति से लाँघ जाता है। अपनी प्रकृति का भान होते ही वह संस्कृति का निर्माण स्वभावतः कर लेता है। अतः सामनिष्ठ शिक्षक मनुष्य के भान को जाग्रत कर देनेभर का पुरुषार्थ करता है। वह जानता है कि अभान मनुष्य पशु हो सकता है जिसे हाँकना पड़े, सँभालना पड़े, परन्तु सभान मनुष्य अपने सन्दर्भ को स्वयं बदलने में समर्थ होता है।

दण्डनिष्ठ शिक्षक

वस्तुतः जनक्रान्तियाँ होती तो हैं सामद्वारा, भान-विकास की ही प्रक्रिया के जरिये। फिर भी कुछ क्रान्ति-शिक्षक दण्डनिष्ठा को सामनिष्ठा से अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

सचिन्त साम्यवादी का दमनचक्र

क्रान्ति के क्षेत्र में दण्डनिष्ठ शिक्षक का विख्यात उदाहरण है - माओ त्से-तुंग और सामनिष्ठ शिक्षक का उदाहरण हैं विनोबा। माओ बन्दूक को क्रान्तिमाता बतलाता है। विनोबा सरस्वती को क्रान्तिमाता मानते हैं। अतः माओ की क्रान्ति सशस्त्र है, विनोबा की सरस। दोनों मनुष्य को प्राधान्य देते हैं, किन्तु 'मनुष्य' शब्द से

दोनों का आशय एक ही नहीं है। माओ को भरोसा नहीं है कि उसने चीन में जो क्रान्ति करायी है उसे अनुगामी पीढ़ियाँ निभायेंगी ही। उसे बड़ा डर है कि उसके मरणोपरान्त उसके उत्तराधिकारियों में उसकी मौलिक क्रांति-निष्ठा शिथिल हो जायगी और बाद की पीढ़ियाँ तो रूस के 'रिविजनिस्ट' नेताओं के ही नमूने पर 'रोटी और मक्खन' (गूलाश कम्युनिज्म) के आसान ढलाव पर फिसल जायेंगी। उसकी धारणा है कि उसी के कठोर तप के बल पर चीनी जनता ने क्रान्ति कर दी है लेकिन जब उसके हाथ नहीं रहेंगे तब बिना लगामडोर थामने वाले के और बिना चाबुक चलानेवाले के, ये पशु जैसे उधर ही चलेंगे जहाँ उन्हें ज्यादा घास और अच्छी गाजर खाने को मिलेगी। मनुष्य के स्वभाव के विषय में ऐसे बुनियादी अविश्वास के ही कारण माओ अपने अन्तिम दिनों में अविश्रान्त चाबुक चला रहा है माओ के विचारों को बाइबिल या कुरान जैसा पवित्र चमत्कारिक स्थान लोगों के मानस में बरबस दिला देने के लिए हर मुमकिन कोशिश कर रहा है। धर्मांध पंथों के मठाधिपतियों ने जैसे यूरोप में कभी इन्क्वीजिशन का क्रूर मानव द्रोही दमनचक्र चलाया था, वैसा ही दमनचक्र-'पंज' (जुगाय)—'सांस्कृतिक क्रान्ति' के नाम से माओ और उसका 'नम्बर दो' मार्शल लिन पियाओ चला रहा है। इस दमनचक्र से माओ के पुराने साथी भी बच नहीं सके। उदाहरणार्थ चीनी गणतंत्र के अध्यक्ष लिऊ शाओ। दण्डनिष्ठा, जो मानवनिष्ठा का निषेध है, चीनी जनक्रान्ति में अपनी निर्दय फीस वसूल किये बिना कैसे शांत होगी? वैर से वैर कब शान्त हुआ है? बुद्ध का यह सन्देश माओ का चीन भूल गया है। ठोकर खाकर याद करेगा।

साम्यनिष्ठ शिक्षक

बुद्ध भूमि बिहार में विनोबा ने गत जून से 'सूक्ष्म प्रवेश' किया है। विनोबा ने अपने 'साम्यसूत्र' में दस साल पूर्व ही लिख रखा है "स्थूल से सूक्ष्म में जाना।" मो अब उन्होंने पत्रों के उत्तर देना छोड़ दिया है, कागज-कलम का संसर्ग छूट ही गया-सा दीखता है। स्थूल व्यवस्था, तंत्र आदि कामों में नहीं उलझते। जहाँ माओ की क्रियाएँ तीव्र हो गयी हैं, वहाँ विनोबा की क्रियाएँ सूक्ष्म हो रही हैं। अवसान से पूर्व अन्तिम क्षणों में कीटक-पतंग पशु आदि बहुत छटपटाते हैं। भारत में श्रेष्ठ त्यागी पुरुष शान्ति से अपनी इच्छापूर्वक अन्तिम समाधि में लीन हो जाते हैं, मानो सूर्य धरती की गोद में सो जाता हो। विनोबा ने साम्यसूत्र में लिख रखा है "क्रियापरमे वीर्यवत्तरम्। अनेन स्वधर्मो विवृत"। क्रियाओं का शमन हो जाने से साम्ययोगी का जीवन-ध्येय और भी समर्थ बन जाता है, कार्य साधक बन जाता है और उससे उसका जो स्वधर्म था वह अत्यधिक सुस्पष्ट हो जाता है। साम्यनिष्ठ साम्ययोगी विनोबा को इतनी भी चिन्ता नहीं है कि उनके बाद उनकी ग्रामदान क्रान्ति का क्या होगा? उनका पक्का विश्वास है कि वह अवश्य ही सारे भारत के साढ़े पाँच लाख गाँवों में स्वामित्व की सत्ता में मौलिक स्थायी परिवर्तन करके ही रहेगी।

प्रतिक्रान्ति-रहित जनक्रान्ति

अभी तीन सप्ताह पहले मैंने विनोबा से पूछा कि अभी आप इस आन्दोलन में एक ज्वार है। फिर भी ग्रामदान में शामिल होनेवाले जमींदारों की जमीन से केवल बीसवाँ हिस्सा बेजमीनों को हस्तांतरित होता है। शेष का कब्जा यथावत् जमींदारों के पास रह जाता है। वह जमीन कब, कैसे बँटेगी? बाद में जब भाटा आयगा, तब कौन सुनेगा? तब वे क्या जमीन बाँटने लगेंगे?

इसका विनोबा ने जो उत्तर दिया उसमें उनकी निरपवाद साम्यनिष्ठा और अलौकिक लोकनिष्ठा एकदम विशद् हो जाती है। उन्होंने समझाया कि देखो, तुम काशी में रहते हो। वहाँ गंगाजी है। कभी गंगा के पानी को वापस हरद्वार को लौटता हुआ देखा है? वह तो बंग-समुद्र की ओर ही बहता चला जाता है न? वैसे ही समझ लो कि अहिंसक क्रान्ति में बढ़ी हुई जनता कभी वापस जानेवाली नहीं है। वह जनता कभी नहीं लौट सकती। वह आगे ही बढ़ती चली जायगी। अतः हम ग्रामसभा बनाते हैं। उसमें बेजमीन भी जमींदार के साथ समान अधिकार के सदस्य हैं। सारे निर्णय सर्वानुमति से करने होते हैं। ग्रामसभा सारे गाँव की कृषि-व्यवस्था पर सोचती रहेगी। इसमें बेजमीन या छोटी जमीनवाले को

'वीटो पावर' ही मानो है। अत इस क्रान्ति में प्रति-क्रान्ति का भय नहीं है।

स्वयं पराजित द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

उधर माओ त्से तुग प्रतिक्षण प्रतिक्रान्ति के आतंक का मारा चीनी जनता को प्रतिदिन आतंकित करता रहता है। इधर प्रतिक्रान्ति के विषय में विनोबा के साम्ययोगी चित्त में सर्वथा अभय है। कारण क्या? दण्ड से, भय से और द्वेष से करायी गयी द्वन्द्वात्मक क्रान्ति में प्रति-क्रान्ति के बीजरूप वैर-भय और वैषम्य रह ही जाते हैं। भौतिकवाद में लोभ-प्रेरणा बच ही जाती है। द्वन्द्व से निर्द्वन्द्व कोई कभी नहीं हुआ। द्वन्द्वात्मक विजय की कोख से द्वन्द्वात्मक पराजय जन्म लेकर ही रहता है—जैसे कंस का भानजा कृष्ण। जिनसे छीना गया वे वापस लेना चाहते हैं, जिन्होंने बिना समझे छीना वे या तो पछताते हैं या डरते हैं कि मुझसे भी कोई छीन लेगा। या फिर वे भोग करना चाहते हैं, भोग को बढ़ाना भी चाहते हैं। छीनने में, अपहरण में सख्य पैदा नहीं होता, और सख्य के बिना साम्य टिकता ही नहीं। नासमझी से लाया गया साम्य भी सपने में बनाये महल की तरह टिकता नहीं। सख्य-रहित, साम-रहित साम्य नये वैषम्य में परिणत होकर रहता है।

हिंसक और अहिंसक क्रान्ति के बीच यह मूलभूत भेद है। कुछ लोग कभी-कभी ऐसा कह देते हैं कि साम्य-वाद और सर्वोदय का लक्ष्य तो एक ही है, भेद केवल इतना है कि साम्यवाद हिंसा से उस लक्ष्य तक पहुँचना है, सर्वोदय अहिंसा से। अर्थात् दोनों का साध्य एक है, साधन भिन्न हैं। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर देखा साधन का गुण साध्य के गुण का जनक होता है। साधन हिंसक अर्थात् विषम होगा तो साध्य भी वैषम्य-युक्त बनता है। गन्दे कपड़े से पोंछी हुई मेज गन्दी ही बनती है। इसी कारण गांधी ने सर्वोदय का विज्ञान बनाया कि साध्य-साधन को एक रूप मानो, जैसा साधन वैसा ही साध्य। साधन में ही साध्य निहित होता है, जैसे दूध में मक्खन। साधन का ही अन्तिम चरण है साध्य, जैसे मार्ग का अन्त ही होता है मुकाम।

'परोक्ष' से ललित क्रान्ति

विनोबा की क्रान्ति-कला में नयी तालीम का एक और अल्पज्ञात पहलू चुपचाप प्रकट होता है। विनोबा ने पुरी के सर्वोदय सम्मेलन में इसे इशारेभर से समझा दिया था। 'परोक्षप्रिया हि देवा प्रत्यक्ष-द्विष'। क्या जाने वेद से है या कहीं से है। विनोबा तो प्राचीन ज्ञान के समुद्र-से हैं। मतलब यह है कि देवों को 'प्रत्यक्ष' नापसन्द है 'परोक्ष' पसन्द है। 'देव' से आशय है उत्तम मनुष्य। उत्तम शिक्षक उत्तम छात्र को संकेत से पते की बात समझा देता है। और गुरु-शिष्य की सबसे उत्तुंग कल्पना क्या दी गयी है?—"गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्। शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः"।—गुरु का मौन ही व्याख्यान बना और शिष्यों की शंकाएँ कट गयीं। विनोबा ने इस औपनिषदिक 'परोक्ष' तत्त्व से अपनी समग्र अभिव्यक्ति को एक विलक्षण ढंग से ओतप्रोत कर दिया है, जिससे क्रान्ति उन्हें ललित कला बनकर सध गयी है।

कितने ही प्रसंग मुझे याद आते हैं जब प्रश्नकर्ता को मैंने विनोबा से परोक्ष प्रत्युत्तर पाता हुआ पाया है। अभी 'तूफान' ही की बात है। प्रश्नकर्ता को बड़ी ही शंका थी कि विनोबा के निकट साथी उनके इस अन्तिम और श्रेष्ठ अभियान में पूरे दिल से नहीं जुटे रहे। इसका विनोबा को ध्यान था। एक छोटी-सी सभा में कई लोगों के बीच उन्होंने और ही किसी सन्दर्भ में बाइबिल से ईसा और उसके शिष्यों की बात छेड़ दी—वह कौन था पीटर? पीटर शब्द का अर्थ है पत्थर। वह बड़ा भक्त था ईसा का। उसे इस पर गर्व भी था। तो अन्तिम दिन ईसा ने कहा—"प्रभात होने से पूर्व तू तीन बार मेरा इन-कार करेगा।" ईसा को सैनिकों ने पकड़ा। तब पीटर डर गया। तीन बार उससे पूछा गया—'तुम ईसा के साथी हो?" तीन बार उसने इनकार किया "ना, मैं उनमें से नहीं हूँ।" और फिर ईसा के क्रूसारोहण के बाद वह दर पटकता रहा। बड़ी दर्दनाक, शर्मनाक दगे की कहानी है, इनसान की कमजोरी की दास्तान है। लेकिन विनोबा ने आगे कहा: "वही पीटर रोम गया। हजारों दुखी-दलित लोगों तक ईसा के सन्देश को पहुँचाया।

अन्त में खुद शूली पर चढ़कर मरा। ईसाई धर्म की बुनियाद का वह पत्थर बन गया।

विनोबा ने न जाने क्यों यह किस्सा उठाया। किन्तु उसके भाररहित परोक्ष प्रभाव से प्रश्नकर्ता की शंका श्रद्धा में बदल गयी। विनोबा को कमजोर-से-कमजोर मनुष्यों में अनन्त आस्था है। अपने 'मिशन' के विषय में निरी निश्चिन्तता है। साथ ही यह प्रसंग दिखाता है कि कैसे उनका शान्ति-विज्ञान परोक्ष के पुट से कलामय बन जाता है।

'सत्याग्रह' मुखालफत का, स्थूल प्रत्यक्ष बलप्रयोग का निःशस्त्र युद्ध प्रकार न रहकर, 'परोक्ष' से सम्पन्न बनकर सौम्य-सौम्यतर-सौम्यतम की ओर बढ़नेवाली हृदय-परिवर्तन की मानवीय कला में प्रफुल्लित हो उठा है।

उपेक्षा-योग से नियति-निरसन

'परोक्ष' ही की तरह से विनोबा का दूसरा सुन्दर प्रदान है 'उपेक्षा'। योग में मैत्री, करुणा और मुदिता के साथ 'उपेक्षा' का जिक्र आता है। अनुक्रम से सुख, दुःख, पुण्य और पाप की वृत्तियाँ को जीतने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा का विधान योग सूत्र में किया है। जीवन-शान्ति और समाज-शान्ति में विनोबा ने इस 'उपेक्षा' का अद्भुत सुन्दर विनियोग किया है। मनुष्य के दुर्गुणों, दुर्वृत्तियों, दुर्भावनाओं की उपेक्षा करके उसके सद्गुणों से योग करना विनोबा बारबार सुझाते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व में दुर्गुण दीवार-जैसे हैं, सद्गुण द्वार-जैसे हैं। दुर्गुणों पर ही ध्यान लगाकर व्यक्ति के भीतर प्रवेश करने जाओगे तो दीवार से टकराओगे, सद्गुणों के द्वार से सरलता से उसके हृदय में प्रवेश पाओगे। समाज पर भी यही लागू है। यही कारण है कि आज जब भारत में भाँति भाँति के अन्यायों, दोषों आदि को लेकर कई लोग 'सत्याग्रह', 'उपवास' आदि का सम्भवतः खण्डनात्मक प्रयोग करके दीवार से सर टकरा रहे हैं, तब विनोबा भारत के दान, उदारता, करुणा आदि गुणों का आवाहन करके ग्रामदान, प्रखण्डदान के रूप में प्रसाद प्राप्त कर रहे हैं।

शान्तिश्रद्धा का ज्ञानचक्षु

मनुष्य की तरह परिस्थितियों में भी अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ होती हैं। प्रतिकूलताओं के प्रति विनोबा उपेक्षा बरतते हैं ताकि अनुकूलताओं पर ध्यान-शक्ति केन्द्रित हो पाये। यदि प्रतिकूलताओं पर ही ध्यान चिपक जाता है तब होता यह है कि प्रतिकूलताएँ पहाड़-जैसी बड़ी दीखती हैं, अनुकूलताएँ उनके पीछे छिप जाती हैं और प्रतिकूलताओं का ब्योरेवार पृथक्करण करते-करते बुद्धि उसी के पाश में बँध जाती है, उसे शान्ति असम्भव दिखाई देती है। बन्धन को ही 'पाप' की सज्ञा दी गयी है। बुद्धि को बाँधनेवाले पाप से मोचन पाने के लिए 'उपेक्षा' शान्तिदर्शी साम्ययोगी का श्रेष्ठ शस्त्र है। जहाँ सब लोग मायूसी में डूबे हुए होते हैं, सारे व्यवहार निपुण रथ-महारथी हताशा में सिर धुनते हैं, वहाँ विनोबा कहते हैं, "अरे, यहाँ तो फसल तैयार है सिर्फ काटनेवालों की कमी है। परिस्थिति एकदम अनुकूल है। लग जाओ भैया, यहाँ तो न सिर्फ ग्रामदान मिलेगा, प्रखण्डदान भी मिल सकता है। थोड़ी और कोशिश करो तो अनुमण्डलदान ही हो जायगा।" और, हमने देखा कि जुलाई-अगस्त में उनकी यही बात सच हो गयी। जमींदार, महाजन, अफसर आदि शान्ति की राह में रोड़े माने जाते हैं। लेकिन विनोबा तो प्रेम से उनकी सद्वृत्तियों को ही ललकारते हैं। परिणामतः ये ही लोग जो शान्ति को रोकनेवाले हो सकते थे, वे स्वयं शान्ति को लानेवाले ग्रामनेताओं के रूप में आगे आते हैं। यह हमने बिहार के प्रखण्डदानों में साक्षात देखा है। २५०० वर्ष प्राचीन योगसूत्र की 'उपेक्षा' का यह अद्यतन क्रान्तिकारी उपयोग है। निष्ठावान शान्तिकारी की श्रद्धा का दिव्य ज्ञानचक्षु है।

गुणारोपण से हृदयप्रवेश

वैसे देखा जाय तो 'उपेक्षा' माताओं और शिक्षकों की एक अच्छी अवगत कला है। १९५३ की बात है। विनोबा ने बिहार में कहीं शान्ति का अपना शास्त्र समझाया था। उसमें सद्गुणों को ही देखनेवाली शुभ-दृष्टि की हिमायत थी। विनोबा ने कहा था कि यदि आरोपण ही करना है तो दोषारोपण क्यों करते हो, गुणारोपण ही करो। मैंने सम्पादन करते हुए इस पर ऐसा कुछ शीर्षक दे दिया 'शान्ति का सुदर्शन चक्र'। अभिप्रेत यह था कि जैसे विष्णु का सुदर्शन चक्र अमोघ है, वैसे शुभ का ही दर्शन करनेवाली यह शान्ति-करुणा भी अमोघ है।

हमारे यहाँ के एक बुजुर्ग नेता ने इसे पढ़ा। वे विनोबा के गीता प्रवचन से शब्दशः सुपरिचित थे। फिर भी 'गुणारोपण' की बात उन्हें अखरी। मुझसे कहने लगे, "जो गुण जिसमें नहीं है उसका उस पर आरोपण करना असत्य आचरण है। विनोबा तुमलोगों को ऐसा सिखाते रहेंगे तो उससे असत्य ही बढ़नेवाला है।" उनकी बात में जो व्यावहारिक सत्यांश था उसे बाद के वर्षों में मैंने अच्छी तरह से अनुभव किया है और आज आकर कह दिया है—"हम सब लोगों में 'मीठा' बढ़ रहा है और 'जूठा' बढ़ रहा है!" परन्तु उस वक्त तो उस सद्भावशील आलोचक के सम्मुख विनोबा की बात जिस उदाहरण से रख पाया, वह शिक्षकों के सम्मुख अवश्य रख देना चाहूँगा। मैंने उनसे सविनय निवेदन किया—"माँ क्या करती है? मेरा तो अनुभव है, आपका भी हो सकता है। बच्चा कुछ गलत-सलत काम करके आया है। सही-गलत को अभी ठीक से समझता भी नहीं है। भनभनाहट माँ के कानों तक पहुँची है। तो माँ क्या कहती है? 'नहीं, मेरा बेटा ऐसा कभी नहीं कर सकता। वह तो बड़ा शरीफ और अच्छा आदमी बनेगा।' माँ के इस गुणारोपण में बच्चों का दोष धुल जाता है वह गुण को ही देखने लगता है। प्रेम की वर्षा से मृदु बने हुए उसके दिल में गुण का रोपण हो जाता है। गुणारोपण ही उसे गुणवान बना देता है। उसे अपनी अच्छाई की शक्ति का भान करा देता है जैसे नीले बन्दर ने हनुमान को कराया था, और हनुमान समुद्र कूद गया था।

मांगल्यमूलक गुणात्मक क्रान्ति

माँ बच्चे में भगवान देखती है, गुरु शिष्य में अपनी पूर्णता देखता है। दोनों की इस मंगल दृष्टि में सब पापों से पावन करनेवाली पुण्य शक्ति है, नयी पीढ़ी में निहित क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को विकसित कर देने की कुमुद-कौमुदीवत् स्नेह-शक्ति है

अतः भारतीय संस्कृति मांगल्यपरक है। भूतप्रेतों के नायक विघ्नेश को मंगलमूर्ति गणपति बनानेवाली क्रान्तिदृष्टि शताब्दियों से इस भूमि के स्वभाव में है। गुणात्मक परिवर्तन को यहाँ संख्यात्मक परिवर्तन या द्वन्द्वात्मक भौतिक संघर्ष पर अनिवार्यतः आधारित नहीं माना गया, बल्कि गुणदर्शन, गुणोपासना से समन्वय के द्वारा सीधा गुणात्मक परिवर्तन ही यहाँ निजी एवं सामाजिक जीवन में अनेकों बार किया जा चुका है। यह जो मांगल्यमय मौलिक गुण-परिवर्तनकारी स्वधर्म है इस भारत देश का, जिसे असंख्य ऋषि-मुनियों ने, राजाओं, आचार्यों ने अपने जीवनयोग से समलंकृत किया है, उसी को आचार्य विनोबा आज इस देश में एक गहन, व्यापक, सर्वदेशीय क्रान्ति की कला के रूप में पुनः आविर्भूत कर रहे हैं।

सुदर्शन-चक्र-प्रवर्तन

वाणी के क्षेत्र में भी उपेक्षा और शुभ-संचय का क्रान्ति सिद्धान्त विनोबा ने आजमाया है। दस वर्ष पूर्व तमिलनाड में ब्राह्ममुहूर्त से पहले, जब सब लोग सोये ही थे, विनोबा को उनकी चौकी पर बैठे-बैठे गुनगुनाते सुना था अनिन्द्या अनिष्फला वाणी निन्दारहित वाणी विफल नहीं होती। विनोबा का अमोघ सुदर्शन चक्र उनकी सुमधुर तेजोमय प्रसादयुक्त एवं केवल भावरूप वाणी के रूप में सतत क्रान्तिकार्य करता ही रहता है। और, वह वाणी जब निःशब्द बनती है तब शब्द से भी समर्थतर बन जाती है। तब वाक्-शक्ति शब्दातिगामी (सुपर सॉनिक) बन जाती है।

सर्व में बसने से जो विष्णु कहा जाता है वह मानव चैतन्य का पुंज, अपना सुदर्शन यहाँ नित्य घुमाता रहे, जिसके माने हैं हम विनोबा को इस क्रान्तिकला को प्राणवत् सातत्य से जीवन्त रखें। ●

गांधीजी से अदालत में पेशा पूछा गया तो उन्होंने कह दिया—मैं कातनेवाला और बुननेवाला हूँ। यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि मैं शिक्षक हूँ। हिन्दुस्तान जो बना है वह शिक्षकों से बना है। लोकक्रान्ति का काम शिक्षकों को उठा लेना होगा। ग्रामभर में रहते हुए स्कूल के बाहर जितना कर सकते हैं उतना करना चाहिए। अखण्डदान और अन्नदान हो जायेंगे तो जनता की आवाज बुलन्द होगी और शिक्षक जनता के सम्पर्क में आयेंगे। जहाँ जनता और शिक्षक एक हो गये वहाँ सरकार उनके कहने में रहेगी।

—विनोबा

गणस्वराज्य और नेतृत्वमुक्ति

धीरेन्द्र मजूमदार

गाधीजी चले गये। भारत के एकछत्र जननायक, राष्ट्र के हृदय सम्राट के एकाएक चले जाने पर मुल्क में मानो अन्धकार छा गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के दिल का उद्गार सहज ही इन शब्दो में निकल पडा कि जो रोशनी हमेशा मार्ग दर्शन करती थी वह सब दिन के लिए बुझ गयी।

गाधीजी के प्रयाण के एक माह बाद उनके भक्त, उनके बताये हुए रचनात्मक कार्य के कार्यकर्ता उनके निकटस्थ साथी और नेता आगे की दिशा निर्धारित करने के लिए सेवाग्राम में गाधी की कुटिया के सान्निध्य म एकत्र हुए।

सबने अपने-अपने ढग से और अपने-अपने विचार से गाधी के काम को आगे बढाने की परिकल्पना रखी। उन पर चर्चा हुई बहस हुई और अनेक प्रकार की योजनाओं की बात उठी।

उसी सम्मेलन में विनोबाजी भी उपस्थित थे। तब विनोबाजी गाधी के बडे साथियो म नही गिने जाते थे। उनका नाम भी लोगो ने तभी सुना था जब आजादी की आखिरी लडाई के सिलसिले में प्रथम सत्याग्रही के रूप में उनका ही नाम सामने आया।

यह ठीक है कि विनोबा बडे नेता नही थे आजादी के सग्राम में उनका नाम विशेष नही था, लेकिन फिर भी गाधी के बाद कार्यकर्ताओ के उस बडे सम्मेलन में सबका ध्यान विनोबा की ओर ही जाता रहा। चर्चाएँ बहुत हुईं अनेक प्रकार की परिकल्पनाएँ बनी। हृदय के अन्तस्तल से श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा की भावनाएँ प्रकट हुईं। कैसा सगठन बने उसकी रूपरेखा क्या हो, जिससे गाधी विचार का एक स्पष्ट चित्र ससार को मिल सके, इत्यादि चर्चाएँ भी काफी हुईं। लेकिन किसी के हृदय का समाधान नही हो रहा था।

गाधी-विचार सगठन-मुक्त

ऐसे समय विनोबा बोले। पूरा सम्मेलन एकाग्र हो अत्यन्त आशाभरी निगाह से उन्हें देखता रहा। फिर थोडे म वे बोले। उसका आशय यह था कि गाधी का विचार एक विचार है। उस पर कोई दल नही बन सकता है, सम्प्रदाय नही बन सकता है। किसी दायरे के घेरे में सगठन नही बन सकता है, किसी नेता का एकाग्र नेतृत्व नही चल सकता है। विचार जन-जन म फैलेगा, जिसमें जितनी रुझान और पकड होगी, उतना वह पकडेगा और आगे फैलायगा। उन्होने कहा कि इस तरह विचार फैलते फैलते सर्वोदय की एक बिरादरी बनेगी जो कोई सगठित बिरादरी नही होगी, बल्कि एक ढीली-ढाली बिरादरी होगी। उन्होने प्रस्ताव किया कि इस विचार को साकार रूप देने के लिए एक सर्वोदय-समाज बन सकता है, जिसका कोई विधान नही होगा और न अपना कोई कार्यक्रम होगा। जैसे कुम्भ मेला में विचारक और भक्त आते है और मिलते हैं, विचार-विनिमय करते हैं और अपनी पूजी बढाकर आगे की साधना में लग जाते है उसी तरह सर्वोदय-समाज के सेवको का एक वार्षिक सम्मेलन होगा, जहाँ सब साथ मिलेंगे, साथ रहेंगे और आपस म चर्चा करेंगे। फिर अपने-अपने क्षेत्र में पहुँचकर सेवा में लग जायेंगे।

सम्मेलन समाप्त हुआ। रचनात्मक कार्यकर्ता, जिनपर अब तक गाधीजी का नेतृत्व और व्यक्तित्व सम्पूर्ण रूप से छाया हुआ था, अपनी-अपनी सस्था और सगठन के भविष्य की परिकल्पना के लिए अलग-अलग

गाष्ठी म बैठकर चर्चा करते रहे। उसी बीच गांधीजी के निकटस्थ साथी श्री जाकिर हुसैन अयन्त गम्भीर मुद्रा म बोल पडे कि इतिहास में एक नयी बात हुई। इतने बडे युगावतार की मृत्यु पर उनके अनुयायियो ने कभी ऐसा सकल्प नही लिया था कि उस महापुरुष के या उसके विचार के नाम कोई सगठन नही बनेगा कोई सम्प्रदाय नही बनेगा और न कोई सस्था बनेगी। उन्होने कहा कि यह एक बडी बात हुई।

नतामुक्ति का एक प्रयास

गांधीजी-द्वारा स्थापित सभी रचनात्मक सस्थाओ के नेता गांधीजी ही थे। उनमे सबसे बडी व्यापक तथा बुनियादी सस्था चरखा सघ के अध्यक्ष भी वे खुद थे। इस सघ को वे इतना बुनियादी मानते थे कि जबतक विधान के अनुसार अध्यक्ष पद का नया चुनाव होता रहा वे हँसकर कहते थे 'दूसरा कौन होगा'। ऐसे सघ के लिए भी जब अध्यक्ष की तलाश होने लगी तो बडे नताओ म किसी की स्वीकृति नही मिली। तब सदस्यो ने निणय किया कि अगर नेता नही मिलता है तो ठीक है विधान के अनुसार पद चाहिए तो कायकर्ताओ म से किसी का नाम रख दिया जाय और काम चलता रहे। शायद कालपुरुष ने ही गांधी विचार को आगे बढाने के लिए यह निणय किया। इस तरह सबसे बडा रचनात्मक सस्था ने नेतामुक्त होकर अपनी जीवन-यात्रा शुरू कर दी।

कुल रचनात्मक सस्थाओ का सघ बना। नाम हुआ सर्व सेवा सघ। उसके लिए भी सबकी राय यह रही कि विधान म अध्यक्ष का पद रखा जा सकता है लेकिन परम्परा ऐसी बने जिसस अध्यक्ष की आवश्यकता ही न पडे। और अध्यक्ष के बिना ही सघ की समिति बन गयी।

यह सब जो हुआ उससे स्पष्ट था कि विनोबा के उस विचार ने कायकर्ताओ के दिल को प्रभावित किया।

इस तरह गांधीजी के बाद उनके अनुयायियो ने आगे के लिए एक विचार और एक कल्पना का दर्शन किया। लेकिन उसके अनुसार प्रत्यक्ष तथा व्यापक रूप से कोई आन्दोलन नही चल सका। समाज तथा कायकर्ताओ का ध्यान मुख्य रूप से गांधी विचार के प्रतिपादन के लिए उस राष्ट्रीय सरकार की ओर रहा जिसका नेतृत्व गांधीजी के साथ स्वाधीनता सग्राम मे जूझनेवाले राष्ट्रीय नेता सँभाल रहे थे।

नियम से सर्वोदय-सम्मेलन होता रहा और सस्थाओ के काम जैसी हुई पुरानी लीक पर ही चलते रहे।

नतृत्व निरपेक्ष आन्दोलन का प्रारम्भ

इसी बीच राष्ट्रीय नेतृत्व से निरपेक्ष तथा रचनात्मक सस्थाओ के बाहर स्वतन्त्र रूप मे गांधी विचार का एक अपूर्व चमत्कार निकला। वह था भूदान-यज्ञ की गगोत्री।

शुरू से ही यह आन्दोलन सस्था निरपेक्ष जनशक्ति से ही चलता रहा। विनोबा की पदयात्रा ने सीधे जनता पर विचार का असर किया और वह आकृष्ट होने लगी। अगर सस्थाएँ आन्दोलन म आयी तो वे जनता के हिस्से के रूप म ही आयी। उन्होने आन्दोलन का पहल नही किया सचालन नही किया बल्कि वे सब आन्दोलन म शामिल हुई। अगर धीरे धीरे भी शान्ति सस्था और तन्त्र आधारित बनती गयी तो पेशतर इसके कि आन्दोलन पूर्ण रूप से तन्त्रबद्ध हो जाय विनोबा ने देश के सामने तन्त्रमुक्ति का घोष किया और विचार से लोगो ने उसे स्वीकार किया। आज भी आन्दोलन पूर्ण तन्त्रमुक्त नही है तो वह इसलिए नही कि शान्ति के साधको ने मुक्त आन्दोलन के विचार को छोड दिया है बल्कि इसलिए कि उन्हे अबतक सनातन परम्परागत पद्धति के विकल्प म तन्त्रमुक्त अहिंसक सगठन के मार्ग का दर्शन नही हो पाया है और न उसके लिए सयोजित रूप से कोई गम्भीर प्रयास हो पाया है। पर विचार स्पष्ट है और आकाक्षा तीव्र है तो माग का आविष्कार होगा ही।

यद्यपि भूदान-आन्दोलन के सेवक विनोबा के उपयुक्त विचार को तत्त्वशुद्ध मानकर बुद्धिपूर्वक स्वीकार करते हैं फिर भी रह रहकर उनके मन म असमाधान और शका घर कर जाती है कि आखिर इस आन्दोलन का भविष्य क्या होगा। देश के बडे नेता आन्दोलन से अलग हैं तो साधारण कायकर्ताओ के सहारे यह कबतक और कहाँतक चलेगा? उनके मन म इस बात की शिकायत है कि विनोबा ग्रामदान लेते चलते है लेकिन ग्रामदानी गाँवो के निर्माण के लिए उन्हे ग्रामस्वराज्य की मंजिल तक पहुँचाने के लिए कोई सगठन खडा नही करते है।

उसी तरह परिवर्तित विचार को चलाने के लिए म ाज के तत्र म तत्नीकी परिवर्तन की आवश्यकता है। हर विचार (आइडियालाजी) के अनुसार समाज-सगठन के लिए अपनी-अपनी पद्धति (टेक्नालाजी) होनी चाहिए। किसी भी विचार को उसके विरोधी विचार की पद्धति के सहारे रूपाइत नही किया जा सकता है। वस्तुत यही एक विचार है जो समाजशास्त्र में गाधीजी की विशिष्ट देन है। गाधीजी से पहले क्रान्तिकारियो के सामने साध्य और साधन की एकरूपता की आवश्यकता का विचार स्पष्ट नही था। शायद इसी कारण उन्होंने विचार के सचालन के लिए पद्धति की एकरूपता की अनिवार्यता महसूस नही की थी

इस बोध के अभाव मे या विचार क्रान्ति के सिलसिले में थकान के कारण नेताओ ने आसानी से केन्द्र-तत्र-द्वारा परिकल्पित और सगठित पद्धति को ही लोकतत्र के सचालन के लिए अपना लिया। जिस तरह राजतत्र के राजा केन्द्र-द्वारा सुसगठित तथा सुसचालित सैनिक-शक्ति-आधारित श्रमलातत्र के मार्फत समाज का सचालन करते रह है, उसी तरह लोकतत्र के नेताओ ने भी केन्द्र मे बैठकर उसी शक्ति और तत्र द्वारा समाज सचालन का मार्ग अपना लिया। फलस्वरूप आज जो लोकतत्र चल रहा है वह वस्तुत लोकतत्र न होकर सैनिक-आधारित दलतत्र के रूप में ही परिणत हो गया है। इस लोकतत्र मे चारो तरफ तत्र ही-तत्र दिखाई देता है, जिसके अन्दर लोक के अस्तित्व तक का दर्शन नही मिलता है। लोक तभी दिखाई देता है जब बीच-बीच में वैधानिक कर्मकाण्ड के अनुसार दलतत्र के दल को लोक के प्रमाणपत्र की आवश्यकता होती है। नतीजा यह हुआ कि यह 'दल' भी पूंजीपति और बुद्धिपति वर्ग के दायरे में ही बद रह गया। इसीलिए ही तो जयप्रकाश बाबू कहते हैं, आज का लोकतत्र वास्तविक लोकतत्र नहीं है, बल्कि लोगो की पसन्दगी का तत्र मात्र है।

यही कारण है कि गाधीजी कहते रहे कि उनका विचार कोई नया नही है। उन्होने जो नयी बात कही वह साध्य की ही बात है। साध्य और साधन की एकरूपता की बात क्रान्ति के इतिहास में नयी थी। इतिहास के अनुभव से उन्होने देख लिया था कि गलत साधन-द्वारा सही लक्ष्य पर पहुचा नहीं जा सकता है। उसी प्रकार अगर विचार के अनुरूप पद्धति अपनायी नही गयी तो उस विचार के अनुसार समाज का चित्र नही बन सकता है।

वस्तुत जिस तरह गाधीजी ने स्वराज्य प्राप्ति के साध्य के अनुरूप नैतिक साधन को अपनाया था उसी तरह वह स्वराज्य के सूर्योदय से पहले ही स्वराज्य यानी मौलिक लोकतत्र को चलाने के लिए लोकतात्रिक पद्धति के चिन्तन तथा खोज मे लग गये थे।

लोकतत्र का स्वधर्म

जिस तरह एक तत्र का अपना स्वभाव और स्वधर्म होता है और उसके अनुसार उन्हें अपना समाज-तत्र बनाना पडता है उसी तरह लोकतत्र का भी अपना एक स्वभाव और स्वधर्म होता है, और उसी के अनुसार उसे चलाने के लिए अपना एक अलग समाजतत्र की परिकल्पना जाननी पडती है। एकतत्र में समाज की जिम्मेदारी केन्द्र में उपस्थित एक सत्ताधारी पर रहती है। वह अपनी मदद के लिए अपना एक तत्र बनाता है। और, उस तत्र को सुव्यवस्थित रखने के लिए तथा उसका समाज-द्वारा मनवाने के लिए एक मजबूत सैनिक-शक्ति का सगठन करता है। लोकतत्र मे समाज की जिम्मेदारी हरेक व्यक्ति पर होती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की हर इकाई का हर व्यक्ति मिलकर अपने विधि निषेध का सकल्प करे और जितना प्रथम इकाई से न हो सके उतना दहाई पर जाकर सम्मिलित सकल्प करे। इस तरह पूरे समाज की जिम्मेदारी का प्रत्यक्षरूप से निर्वाह करे। इसलिए जहां एकतत्र में सगठन का मूल केन्द्र में होगा वहां लोकतत्र में उसकी जड निम्नतम इकाई में होगी। विचार तथा निर्णय का पहल भी प्राथमिक इकाई से ही होगा। अतएव जहां एकतत्र में समाज की मुख्य प्रतिमाएं सामाजिक नेता के रूप में केन्द्र-सत्ता की अधिकारी होगी, वहां लोकतत्र में वे लोकशिक्षक के रूप में जन-जन मे फैली हुई रहेंगी। और, अगर गौण रूप से व्यवस्था चलाने के लिए कुछ सामान्य तत्र की आवश्यकता होगी भी तो उसका सचालन सामान्य व्यवस्थापक बुद्धि-द्वारा ही होना रहेगा।

अतएव वास्तविक लोकतन्त्र में केन्द्र-सचालन का कोई स्थान नहीं है और न केन्द्रस्थ नेतृत्व का। नेतृत्व की कल्पना में ही अनुयायीत्व निहित है। अगर अनुयायी नहीं है तो नेता नहीं है। जनता अगर किसी की अनुयायी ही बनी रहेगी तो उसके द्वारा समाज के कर्तृत्व का पहल कैसे हो सकेगा?

यही कारण है कि विनोबा कहते हैं कि भविष्य के समाज में नेता का स्थान नहीं है। यह तो सब मानते ही हैं कि भविष्य में पूंजीवाद का या सैनिकतंत्र का कोई स्थान नहीं होगा। मानव-समाज का भविष्य लोकतन्त्र और समाजवाद में है। जबतक लोकतन्त्र का 'लोक' तथा समाजवाद का 'समाज' तन्त्र तथा नेतृत्व से मुक्त नहीं होगा तबतक वह स्वतन्त्रता के साथ आत्म-प्रकाशन नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि गांधीजी ने चरखा संघ को शून्य बनाकर सेवकों को लोक में विलीन होने के लिए कहा था और विनोबा कहते हैं कि ग्राम-दान से ग्रामस्वराज्य तक पहुँचने की तथा उसे कायम रखने की जिम्मेदारी लोक की है न कि तन्त्र या नेता की।

संघर्ष की दुहरी प्रक्रिया

वस्तुतः इतिहास में विचार (आइडियालाजी) के लिए तो अनेक देश और अनेक काल में संघर्ष हुए हैं, लेकिन इस प्रकार से पद्धति (टेक्नालाजी) के लिए संघर्ष नहीं हो सका है। आज जब विनोबा गांधी विचार के लिए संघर्ष में लगे हुए हैं तो उनके लिए यह आवश्यक है कि वे विचार के अनुरूप पद्धति के लिए भी संघर्ष का आह्वान करें।

इतिहास का यह नया संघर्ष है। उसके पुराने पन्नों से इसके लिए मार्गदर्शन नहीं मिलेगा। और, शुरू से आखिर तक एक अनिश्चित दिशा में चक्कर मार्ग ढूंढना पड़ेगा। इसमें तकलीफ होगी, परेशानी उठानी पड़ेगी, खतरे का सामना करना पड़ेगा, रह रहकर असफलता का भी मुकाबला करना पड़ेगा। लेकिन जब विचार के संघर्ष के लिए मनुष्य हमेशा तैयार रहा है तो पद्धति की खोज के संघर्ष के लिए क्यों नहीं तैयार होगा? इस पहलू पर सहूलियत के मोह में पड़कर अगर हम पुरानी रूढ़ पद्धति को अपनाते चलेंगे तो हमारा क्रान्ति विचार उसी तरह पीछे चला जायगा जिस तरह गलत साधन के कारण सही साध्य भी पीछे चला जाता है।

सर्वोदय-क्रान्ति के साधकों से

ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति के साधक को अपनी क्रान्ति के इस आवश्यक पहलू पर अत्यन्त गहराई से विचार करना होगा। विनोबाजी तन्त्रमुक्ति और नेतामुक्ति की जो बात कह रहे हैं, उसे गम्भीरता के साथ समझना होगा और सबको मिलकर उसका मार्ग खोजना होगा। ऐसा न करके अगर हम झंझट में परेशानी से खतरा से और असफलता से घबड़ाकर पुराने परम्परागत केन्द्रीय तन्त्र और नेतृत्व के सहारे चलने रहेंगे और जनता को चलाने की कोशिश करेंगे तो हमारे सारे आन्दोलन से किसी किस्म की क्रान्तिकारी निष्पत्ति नहीं होगी। इससे हमारा आन्दोलन जो आज केवल लोगों की पसन्दगी का एक वैधानिक कर्मकाण्ड का सिलसिला मात्र रह गया है और जो वास्तविक रूप में कुछ लोगों के लिए सत्ता का अखाड़ा बन गया है अधिक-से-अधिक परम्परागत लोकपसन्द तन्त्र में कुछ इधर उधर के वैधानिक सुधार लाकर और केन्द्रीय तन्त्र-आधारित कल्याण-कार्य के लिए जनता के मन में कुछ अधिक दिलचस्पी मात्र पैदा कर समाप्त हो जायगा। इसके द्वारा स्वतन्त्र ग्रामस्वराज्य की स्थापना नहीं होगी और न वास्तविक लोकतान्त्रिक समाज का अधिष्ठान होगा। सर्वोदय समाज तो दूर की बात है।

अतएव सर्वोदय क्रान्ति के साधक जो आज ग्राम-स्वराज्य-ग्रामदान-आन्दोलन में लगे हुए हैं, उन्हें विश्वास और निष्ठा के साथ निरन्तर विचार शिक्षण में ही लगा रहना होगा। जन-जन में प्रवेश कर ग्रामदान के विचार की प्रेरणा देनी होगी और ग्रामदान हो जाने के बाद ग्रामस्वराज्य की परिकल्पना के शिक्षण में भी लगना होगा। वे व्यापक रूप में लोक शिक्षण का काम तो करें पर नेतृत्व और व्यवस्था में न लगें। इस प्रक्रिया में अगर अधिकांश ग्रामदान टूटने लगें, तो टूटने दें और इस विश्वास से आगे बढ़ें कि जितने गाँवों में निरपेक्ष लोक-शक्ति का निर्माण होगा, वे चाहे थोड़े हों, भविष्य का लोकतन्त्र उसी तरह सूक्ष्म बीजरूप में प्रकट होगा जिस तरह अत्यन्त सूक्ष्म बीज के गर्भ से विशाल वटवृक्ष का निर्माण होता है। ●

सर्वोदय-सेवक और शान्ति के शुभचिन्तक विनोबाजी की पद्धति को अत्यन्त अधूरी और भ्रामक मानते हैं। वे मानते हैं, यह तरीका उनके विचार और नेतृत्व की असफलता है। ऐसा कहने में वे अक्सर विनोबाजी की गांधीजी से तुलना कर देते हैं। वे कहते हैं कि गांधीजी ने हिन्द-स्वराज्य का आन्दोलन चलाया, जनता उनके आह्वान पर आन्दोलन में शामिल हुई और उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ठोस संगठन-द्वारा देश को हिन्दस्वराज्य की मंजिल तक पहुँचाया। रचनात्मक संस्थाओं-द्वारा उन्होंने ठोस और स्थायी फौज को संगठित किया। विनोबा ग्रामस्वराज्य की प्राप्ति के लिए ग्रामदान तूफान की बात तो करते हैं, लेकिन जो गाँव इस तूफान में शामिल होता है उसे ग्रामस्वराज्य की मंजिल तक पहुँचाने के लिए कोई ठोस राष्ट्रव्यापी संगठन नहीं खड़ा करते हैं, बल्कि यह कहते हैं कि आन्दोलन सारी जनता के लिए है और जो जनता विचार का स्वीकार करती है उसी का काम है कि वह मिलकर ग्रामस्वराज्य की मंजिल तक पहुँचे। उसके लिए देशभर की बुद्धि और शक्ति उसको प्राप्त होनी चाहिए। वे कहते हैं कि समाज की प्रगति के इतिहास में अब कोई नेता नहीं रहेगा और न कोई संचालक-संस्था रहेगी। उनका कहना है कि अब गणतंत्र गण-आधारित रहेगा, तंत्र-आधारित नहीं। अगर कुछ सेवक हुए भी तो वे गण सेवक के रूप में समाज में फैले रहेंगे, नेता या संचालक के रूप में नहीं। शायद इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए ही स्वराज्य के उषाकाल में देश को गांधीजी ने कहा था कि मुल्क में स्वराज्य स्थापित करने के लिए सात लाख गाँवों में सात लाख गणसेवक पहुँचकर जन जन में विलीन हो जायें। वे अपने शरीरश्रम के आधार पर अपना गुजारा कर जनगण की हैसियत प्राप्त करें।

[illegible] का ऐतिहासिक क्रम

वस्तुतः यह समझने की जरूरत है कि विनोबा को संस्था-संगठन की सूझ नहीं है या वे अपने विचार के सन्दर्भ में किसी नये मार्ग का प्रतिपादन करना चाहते हैं? इस सिलसिले में गांधी और विनोबा-द्वारा भिन्न-भिन्न अवसरों के सुझाव और निर्देशों का ध्यान से अध्ययन करने की जरूरत है। वे निम्नक्रम से रहे हैं —

१ जैसे ही गांधीजी ने देखा कि अब अँग्रेज जा रहे हैं, तो उनका ध्यान तुरन्त आगे के कदमों पर चला गया। विदेशी सत्ता को समाप्त करने के लिए उन्होंने जिन पद्धतियों को अपनाया था या जिन संस्थाओं का संगठन किया था उन सबके विघटन की बात करने लगे। उनके बदले में स्वराज्य को चलाने के लिए नयी पद्धति की खोज में लग गये।

१९४४ में जेल से मुक्त होने पर उन्होंने अपने सबसे व्यापक तथा सुसंगठित संस्था चरखा संघ के सामने एक अभिनव प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि अब खादी का काम चरखा संघ-द्वारा नहीं होगा, बल्कि संघ की कामना-पूर्ति अपने को सात लाख गाँवों में विभक्त कर खुद को शून्य बना देने में है। काम की नयी पद्धति के आधार के लिए उन्होंने सात लाख गाँवों के लिए सात लाख नौजवानों का आवाहन किया, जो गाँवों में जाकर अपने को जनगण में विलीन करके समग्र सेवा का आधार बनें। स्पष्ट है यह पुकार समाज को नेता और तंत्र से मुक्त करके उसे गणसेवकत्व के साथ जोड़ने के लिए थी।

२ १५ अगस्त १९४७ को आजादी की घोषणा हुई। उसके तुरत बाद देश में साम्प्रदायिक दावाग्नि प्रज्ज्वलित हुई। उसके शमन के प्रयास से मुक्त होते ही कांग्रेस जनों के लिए गांधीजी ने प्रस्ताव बनाया कि वे अपने संगठन का विसर्जन कर दें और लोकसेवक संघ के रूप में देशभर की जनता में फैल जायें, ताकि उनकी सेवा के परिणाम-स्वरूप लोकशक्ति उद्बोधित और संगठित होकर स्वतंत्र तथा सार्वभौम शक्ति के रूप में प्रकट हो सके।

३ गांधीजी के महाप्रयाण के साथ-साथ सेवाग्राम के रचनात्मक सम्मेलन के अवसर पर उनके विचार के लिए किसी किस्म का संगठन

या सस्था न बनाने का विनोबा-द्वारा प्रस्ताव।

४ भू क्रान्ति के प्रसार के लिए विनोबा का अकेला ही निकल पडना, और सर्व सेवा सघ आदि सस्थाओ को प्रस्ताव के लिए न कहकर सीधे जनता को अपील करना।

५ इस आन्दोलन को सस्थागत और तन्त्रबद्ध होते देखकर विनोबा-द्वारा तन्त्रमुक्ति और निधिमुक्ति का उद्घोष।

६ विनोबा-द्वारा नेतृत्वमुक्ति के विचार का प्रचार।

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यो को देखते हुए क्या यह कहा जा सकता है कि विनोबा जो कहते है कि ग्रामदानी गाँवो का निर्माण-कार्य और उन्हें ग्रामस्वराज्य तक पहुँचाने का काम हमारा नही है यानी हमारी किसी सगठित सस्था का नही है बल्कि पूरे समाज का है, जिसमें सरकार और सस्थाएँ भी आ जाती है वह उनकी चूक है या मान्यता की कमी है? यह तो गाधीजी के और अपने आदर्श की पूर्ति तथा सचालन के लिए उसी आदर्श के अनुरूप पद्धति की खोज की बाहोश और सयोजित चेष्टा है।

ग्रामस्वराज्य की रूपरेखा

अब विचारणीय बात यह है कि गाधीजी और विनोबाजी का सामाजिक और राजनैतिक लक्ष्य क्या है? और आदर्श क्या है?

वैसे सर्वोदय आदर्श तो सम्पूर्ण विकारमुक्त समाज ही है, लेकिन आदर्श रेखागणित के बिन्दु-जैसा होता है जिसका अस्तित्व तो होता है परन्तु दिखाई नही देता। दिखाई देने के लिए उसका एक स्थूल रूप बनाना पडता है। राजनीतिक सन्दर्भ में यह स्थूल लक्ष्य ग्रामस्वराज्य है जिसका आधार प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का विचार है जिसका अन्तिम ध्येय अहिंसक समाज की रचना है और जिसके लिए शासन तथा शोषण से मुक्ति आवश्यक है।

सवाल यह है कि इस लोकतन्त्र का विचार क्या है और ग्रामस्वराज्य की रूपरेखा क्या है?

लोकतन्त्र का विचार कुछ नया नही है। दुनिया में लोकतन्त्र के आधार पर कई मुल्को की समाज-व्यवस्था चल भी रही है। लेकिन क्या जो लोकतन्त्र चल रहा है वह गाधीजी के स्वराज्य की कल्पना के अनुसार है? आज दुनिया में जितने लोकतन्त्र हैं उनमें 'लोक' कहाँ है, जिनकी हैसियत एक प्रत्यक्ष तथा सार्वभौम कर्ता के रूप में स्पष्ट दिखाई दे? वह लोक-द्वारा प्रमाणित दल-तन्त्र है। 'लोक' तो दण्ड-शक्ति तथा सैनिक शक्ति-द्वारा सचालित प्रजामात्र है। गाधीजी चाहते थे कि लोकतन्त्र में यानी स्वराज्य में बुनियादी 'लोक' समाज की केन्द्रीय इकाई हो, उसकी मुख्य शक्ति का चश्मा उस इकाई में से फूटे और वह क्रमश: सामुद्रिक लहर के वृत्ताकार (ओसेनिक सर्किल) में फैलते फैलते विश्व-समाज में लीन हो जाय। स्पष्ट है कि ऐसे समाज का तन्त्र केन्द्र में अवस्थित किसी दल के नेतृत्व म सचालित नही हो सकता है। ऐसा समाज स्वावलम्बन और परस्परावलम्बन के सहारे ही चल सकता है, जिसकी गतिशक्ति तथा धृतिशक्ति दण्ड या सैनिक-शक्ति न होकर सम्मति और सहकार शक्ति ही बन सकती है।

वैसे अगर गहराई से विश्लेषण किया जाय तो लोकतान्त्रिक विचार के पुराने ऋषियो की कल्पना भी गाधीजी से बहुत भिन्न नही थी। उनका उद्घोष था—साम्य मैत्री तथा स्वतन्त्रता। उनका भी लक्ष्य समाज की गतिशक्ति तथा धृतिशक्ति के रूप में दमन या दबाव के बदले सम्मतिशक्ति का अधिष्ठान था। लेकिन दुर्भाग्य से अनुकूल मार्ग न अपनाने के कारण जिस लोकतन्त्र का अधिष्ठान हुआ उसकी दिशा बदल गयी।

साध्य और साधन की एकरूपता क्यो?

लोकतान्त्रिक विचार के नेताओ ने राजतन्त्र यानी एकतन्त्र को समाप्त करके लोकतन्त्र की स्थापना के लिए महान त्याग और तपस्या की। वैचारिक सघर्ष के लिए असीम कष्ट उठाया। फिर जब वे सफलता के शिखर पर पहुँचे और क्रान्ति-द्वारा अधिष्ठित लोकतन्त्र का सगठन और सचालन का प्रश्न सामने आया तो उन्होने उस सन्दर्भ में किसी प्रकार की क्रान्ति की आवश्यकता नही समझी। उन्होने नही माना कि जिस तरह विचार-परिवर्तन के लिए त्याग और तपस्या की आवश्यकता थी, और उसके लिए जिस तरह से सघर्ष अनिवार्य था,

शिक्षक विनोबा

●

दत्तोबा दास्ताने

आज से करीब ४५ साल पहले की बात है। मैं उस समय ८-९ साल की उम्र का था। १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन के समय पिताजी ने वकालत छोड़ दी और मैंने सरकारी प्राइमरी स्कूल। मुझे स्कूल मास्टर की छड़ी से छुट्टी मिली यही आनन्द। १९२१ से १९२६ तक मेरी पढ़ाई के लिए पिताजी ने ३-४ राष्ट्रीय स्कूलों में मुझे रखकर देखा। कुछ दिन गांधीजी के साबरमती आश्रम के विद्यालय में रखा। लेकिन कुछ न कुछ बहाना बनाकर मैं किसी जगह ठहर नहीं सका। आवारा रहने का चस्का लगा हुआ लड़का क्या बन्धन में पड़ना चाहेगा? ऊधम मचाने का भी खूब अभ्यास हो गया था। आखिर तंग आकर पिताजी ने १९२६ में मुझे वर्धा भेजा। विनोबाजी के आश्रम के पड़ोस में ही जो विद्यालय चल रहा था वहाँ भरती कराया गया।

विनोबाजी के छोटे भाई बालकोबा उन दिनों वर्धा आश्रम में थे। गुरुकुल में आठ वर्ष की उम्र से ही गुरु-गृह की सेवा के माध्यम से विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचारी बटु पहुँच जाते थे और एक तप – यानी १२ साल तक – गुरुप्रेम से गुरुसेवा और विद्यार्थी-जीवन बिताने हुए स्नातक बनकर ही घर लौटते थे, ऐसी उपनिषत्कालीन भाव स्निग्धगाथाएँ वे सुनाते थे। उनके आकर्षण से मैंने वर्धा का विद्यालय भी छोड़ दिया और आश्रम में दाखिल हो गया।

विनोबाजी ने बहुत समझाया कि यह तेरी पढ़ाई की उम्र है। आगे जाकर पछताना न पड़े इसलिए स्कूल-कालेज की पढ़ाई समाप्त करने के बाद आश्रम में रहने की इच्छा बनी रही तो चले आना। लेकिन मैंने जाने से इनकार कर दिया। पिताजी को बुलाया गया। उनकी भी कुछ नहीं चली तो आखिर विनोबाजी ने पिताजी को आश्वस्त किया कि एकाध साल रहने दो। या तो वह अपने आप वापस चला जायगा या समझ बूझकर रहेगा। मैं रह गया।

उस समय आश्रम की दिनचर्या अजीब थी। सुबह ४ बजे प्रार्थना होती थी। प्रार्थना के बाद अकसर हर रोज विनोबाजी का प्रवचन होता था। लालटेन नहीं रखी जाती थी। अंधेरे में प्रवचन सुनते-सुनते सोनेवालों को अच्छी सुविधा हो जाती थी। आश्रम की थोड़ी खेती थी लेकिन अक्सर वस्त्रोद्योग में ही समय दिया जाता था। दोपहर के भोजन के बाद अनाज सफाई। इसके साथ-साथ कभी समाचार पत्रों का वाचन या फिर विनोबा की गपशप। इस गपशप में आनन्द आता था। दोपहर १ बजे से ५ बजे तक फिर उद्योग। इन आठ घण्टा के उद्योग के अलावा गृहकृत्य में डेढ़ घण्टा हर एक को देना पड़ता था। फिर शाम को ७ से ७॥ तक विनोबा के साथ हमारी गपशप होती थी। यह आधा घण्टा भी बड़ा विनोदपूर्ण और बोधपूर्ण रहता था। ७॥ बजे प्रार्थना और ८ बजे निद्रा। इस टाइम-टेबुल में पढ़ाई के लिए कहाँ अवकाश मिलता? लेकिन किताबी पढ़ाई की याद तक नहीं आती थी। क्या आती? जब कि विनोबाजी के मुँह से सब प्रकार के विज्ञानों का निचोड़ मिल जाता था।

विनोबाजी की एक आदत थी। वे बीच-बीच में जहाँ काम चलता हो वहाँ पहुँच जाते थे—कभी उद्योगघर में तो कभी रसोईघर में।

एक दिन रसोईघर में आये। मैं फुल्के (पतली रोटियाँ) बना रहा था। विनोबा ने पूछा आज आटा

कितने पौण्ड है ?" मैं देखता ही रहा ! यह पौण्ड क्या बला है ? फिर रत्तल, पौण्ड, तोले का प्रमाण बताया। आगे पूछा,—"एक पौण्ड मे कितने फुलके बनाते हो ?" फुलकों की संख्या गिनना यह नया पाठ मिला। एक पौण्ड में २० फुलके बने थे। फिर पूछा, "एक फुलका कितने तोले का बना ?" कुछ देर जोड लगाकर जवाब दिया, 'दो तोले का।' फिर सवाल, "एक आदमी को कितने तोले रोटी खानी चाहिए ?" मैं झुंझला गया। यह सवालों की झडी कब खतम होगी ! मैं आग के सामने फुलके सेंकने में लगा था और विनोबा को तोले-पौण्ड का हिसाब सूझ रहा था। फुलके सेंकने के साथ क्या सम्बन्ध है इस पौण्ड और तोले का ? और, फिर खाने मे कितने तोले रोटी लगती है, यह कैसा हिसाब ? क्या नाप-तौलकर कभी खाया जाता है ? पेटभर खाने से मतलब। लेकिन विनोबा इतनी जल्दी पिण्ड छोडें तब न ? उनके प्रश्न आगे बढते गये, "आज कितने लोग खाना खायेंगे ?" कितना आटा लिया था ? कितना चावल पकाया है ? दाल कितनी निकाली है ? तेल कितना निकाला ? प्रति आदमी हर चीज का प्रमाण क्या पड़ा ?" उनके सवालों का अन्त ही नही। और तो और नमक कितने तोले निकाला गया यहाँ तक पूछ बैठे। फिर लगे समझाने कि प्रति व्यक्ति अनाज कितना चाहिए, सब्जी कितनी चाहिए, तेल-दूध कितना चाहिए। हर चीज के गुण-दोष और विटैमिन तथा कैलरी की गिनती ! मेरे लिए तो यह सारा विषय ही नया था। लेकिन बडा मजा आने लगा यह सब सुनने में। फिर हर रोज का हिसाब मैं खुद ही विनोबा के आते ही सुना देने लगा। विनोबा चहलकदमी करते-करते गपशप में यह ज्ञान देते जा रहे थे। उस समय पता ही नही चला कि यह तो आहार-विज्ञान का मानो वर्ग ही था। क्योंकि किसी विषय का वर्ग तो तब समझा जाता है जब घण्टी बजती है और लडके क्लास में बैठते हैं। क्लास-रूम में मास्टर प्रवेश करता है और टाइम टेबुल देखकर विषय पढाता है। यहाँ तो न स्कूल, न घण्टी, न मास्टर, न विषय। जो काम चल रहा हो उसी की चर्चा, उसी का विज्ञान, और उसी का गणित !

एक दिन मुझे बुखार हुआ और सख्त सिर-दर्द। विनोबा आये हालत देखने। "बुखार क्यों आया ? पेट साफ था ? शौच क्या हुआ ? क्या खाया था ?" चला सवालों का तांता। इधर बुखार से पीडा हो रही है और विनोबा सवालों पर सवाल करते जा रहे हैं। फिर कहने लगे, "खाना बन्द रखो, उबला पानी नीबू के साथ पीओ, 'कामम् अपः पिब' उपनिषद की आज्ञा। एनिमा लेकर पेट साफ करो, सिर पर मिट्टी की पट्टी रखो" बडा अजीब इलाज है। न दवा, न डाक्टर ! खाना भी बन्द। लेकिन विनोबा पर मातृवत् श्रद्धा जम गयी थी। जो बताते गये वैसा ही किया और दो-तीन दिन में चंगा हो गया। विनोबा कहने लगे, "यह बुखार और सिरदर्द तुझे ज्ञान देने आया था। बिना ज्ञान दिये यह चला गया तो एक ज्ञान प्राप्ति का मौका ही खो दिया।" फिर चला आरोग्य विज्ञान का पाठ !

एक दिन विनोबा उद्योगशाला मे पहुँचे। कातते समय टूटा हुआ सूत मैं फेंक देता था। वे कुछ देर देखते रहे। पन्द्रह मिनट के बाद फेंका हुआ सूत मुझे इकट्ठा करने को कहा, तराजू मँगवाया। टूटे सूत को तौला और फिर गणित शुरू हो गया। पन्द्रह मिनट में इतना फेंका, एक घण्टे मे कितना होगा ? यही रफ्तार रही तो आठ घण्टे में कितना, एक महीने में कितना और सालभर मे कितना नुकसान होगा ? मुझे आयी हँसी। पन्द्रह मिनट मे मुश्किल से आध आने वजनभर सूत का नुकसान हुआ होगा और विनोबा ने साल भर का गणित करके कई पौण्डो का नुकसान गढ दिया ! यह भी कोई गणित का तरीका है ? मैं यह मन मे सोच ही रहा था कि विनोबाजी का गणित आगे बढा। "तूने सूत कातकर फेंक दिया है, यानी कातने का समय, रुई धुनने और पूनी बनाने का समय, कपास ओटने का समय, इतना ही नही, बल्कि उतने नुकसान के लिए जितनी जमीन में कपास बोयी गयी उस जमीन का नुकसान तूने किया। सारे नुकसान का जोड लगाकर राष्ट्र की कितनी हानि हुई, इसका एक अच्छा आंकडा मेरे सामने खडा कर दिया। इसी अनुपात में हर क्रिया में बरबाद करने की आदत लगी तो कुल मिलाकर समय सम्पत्ति और गुण-विकास को कितनी हानि हुई, इसका भी गणित तैयार हो गया। इस तरह न सिर्फ गणित का, बल्कि जीवन में एक-एक क्षण का हिसाब रखने का पाठ ही उन्होंने इस टूटन के निमित्त से पढाया।

एक दिन विनोबा ने पूछा—"कहाँ सोते हो ?" मुझे आश्चर्य हुआ। क्यों पूछ रहे है। फिर कहने लगे—"बारिश का मौसम छोड़कर हमेशा खुले आकाश के नीचे सोना चाहिए। आकाश में भगवान का विशाल वैभव नक्षत्रों और सितारों के रूप में फैला है, उसे देखते-देखते निःस्वप्न निद्रा में लीन होना चाहिए। आकाश की विशालता से हृदय भी विशाल बनता है। "यावान् वा अयं आकाश तावान् वा अन्तर्हृदये आकाश" उपनिषद का वचन सुनाया। एक रात नक्षत्रों का परिचय कराते हुए पूरी नक्षत्रमाला समझायी और ग्रहों तथा नक्षत्रों के स्थान मौसम के अनुसार कैसे होते हैं, इसका परिचय कराते हुए घड़ी के बिना समय का अनुमान किस तरह लगाया जाता है उसका हिसाब समझाया।

इस तरह जीवन के हर प्रसंग को लेकर नित्य ज्ञान-चर्चा चलती थी।

हर काम के साथ ज्ञान-विज्ञान जोड़ने की यह बात हुई। लेकिन किताबी पढ़ाई भी विनोबाजी के पास मुझे मिली। उस पढ़ाई में विनोबाजी की एक खास दृष्टि रहती थी। हिन्दी भाषा पढ़ानी है तो रामायण या विनय-पत्रिका ली। संस्कृत पढ़ानी है तो गीता, ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य लिया। मराठी पढ़ानी है तो गीताई ली। अंग्रेजी पढ़ानी है तो बाइबिल, वर्डसवर्थ और रस्किन की रचनाएँ ली। उनके लिए किताब या भाषा एक निमित्त मात्र था। उनको तो हम बच्चों के गुण-विकास और आध्यात्मिक विकास की चिन्ता थी।

उन दिनों नयी तालीम, बुनियादी शिक्षा इत्यादि नाम नहीं सुने थे। १९३७ में पहली बार बुनियादी शिक्षा की चर्चा गांधीजी ने की। हम बच्चों को विनोबाजी के सान्निध्य में नयी तालीम ही मिल रही थी इसका भान भी हमें उस समय नहीं था। लेकिन जब सुना कि हर प्रसंग और हर क्रिया ज्ञान के साथ जोड़ने जाना इसी को नयी तालीम कहते हैं, तब ध्यान में आया कि विनोबाजी के साथ यही तो हमने पाया।

विनोबाजी जन्मजात शिक्षक हैं—पाठशाला के नहीं, बल्कि जीवनशाला के। सूर्य के सान्निध्य में नित्य प्रकाश, वैसे विनोबाजी के सान्निध्य में नित्य ज्ञान। ●

ईश्वर का घर

●

श्रीमती देरिन सी० मेहता

मेरे पिता एक ऐसे गाँव से आये जहाँ सरल लोगों का निवास था। उलझनें नहीं थी। वह आधुनिक सभ्यता से सर्वथा अनभिज्ञ था। पर चूँकि उन दिनों अनभिज्ञता कोई अपराध न थी, अतः वहाँ के ग्रामीण अपना खाद्य उपजाते थे और खाते थे। एक दिन बाहर से कुछ मनुष्य कार मे आये। उनके साथ बहुत से कपड़े और औषधियाँ थी। उन्होंने घोषणा की कि वे ये वस्तुएँ बीमार और आवश्यकतावाले व्यक्तियों को देंगे। किन्तु उनसे मिलने कोई नहीं आया। समाज सेवक बीमार एवं आवश्यकतावाले व्यक्ति की खोज मे गाँव का चक्कर लगाते रहे, पर उन्हें एक भी इच्छित व्यक्ति न मिला।

उन्होंने कुछ व्यक्तियों को, जो अर्द्धनग्न थे, वस्त्र देना चाहा, पर उन व्यक्तियों ने नम्रतापूर्वक कहा कि हमें वस्त्रों की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हम अपनी वस्तुओं का ही व्यवहार करेंगे। ग्रामीणों ने उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया, उन्हें नारियल का स्वच्छ

जल दिया तथा विस्मित होकर उनकी धारा और सामग्रियां का निरीक्षण किया। वे व्यस्त आदमी थे एवं अनावश्यक बातों के लिए उनके पास नहीं के बराबर समय था। ग्रामीणों की समयहीनता ने उन्हें उत्तेजित कर दिया। उन्होंने मूर्ख, अनजान और असभ्य कहते हुए अपनी सामग्रियों के साथ प्रस्थान किया।

एक सप्ताह बाद एक धूलि धूसरित वस्त्र पहने इसी गांव में एक थका-मांदा व्यक्ति आया। वह एक मिशनरी था। उसके पास समय और धैर्य का प्राचुर्य था। उसके पास एक पत्र था, जो किसी स्वेच्छा सेवा-संगठन-द्वारा लिखा गया था। पत्र में मूर्खों के एक गांव का वर्णन था। उसके मिशन से वह गांव बहुत दूर नहीं था। पत्र में उल्लेख था कि वे जाहिल आदमी कभी भी नहीं सोचते कि वे रुग्ण और आवश्यकताशील हैं। इसीलिए वह पादरी स्वयं निरीक्षणार्थ आया था।

उसकी कार्य विधि भिन्न थी। वह उपहार नहीं लाया था। वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया एवं ईश्वर के सम्बन्ध में बातें करने लगा। जीवन, जन्म और मृत्यु के रहस्य बताने लगा। सामान्य जन उसकी बातें दिनभर सुनते रहे। शाम को उसे पता चला कि उन्होंने कोई बात नहीं समझी। उसने इस बात पर सोचना प्रारम्भ किया कि इन लोगों को समझदार बनाने के लिए महीनों श्रम करना पड़ेगा।

इसी समय कुछ घटना घटी। चीख-पुकार, कुत्ता का भूंकना और साथ ही बहुत से मनुष्यों का क्रियारत होना मालूम पड़ा। वे आवाज की दिशा में दौड़े। पादरी भी उनके पीछे पीछे दौड़ा। छोटी-छोटी झोंपड़ियों की एक कतार में आग लग गयी थी और इसमें से एक स्त्री की चीख सुनाई पड़ती थी। ग्रामीण पानी लाने दौड़े और उनमें से दो सघन धुआं और ज्वाला के बीच पैठ गये। पादरी के पास खड़े एक बूढ़े व्यक्ति ने दुर्घटना पर प्रकाश डाला। एक स्त्री और उसके दो बच्चे बीच की झोपड़ी में थे। उसका पति कहीं अन्यत्र गया था। उनकी रक्षा करनी थी। कानों में खड़ो और भय को आंखों में समेटी हुई दोनों स्त्रियाँ उन दोनों रक्षकों की पत्नियाँ थी, जो आग में चले गये थे। तत्काल पादरी ने पूछा कि इन दो स्त्रियों ने अपने पतियों को इस दुष्कर कार्य में क्यों नहीं रोका? बूढ़े ने उत्तर दिया—'श्रीमान् हमलोगों में ऐसे विचार नहीं आते और ये तो दो नासमझ स्त्रियाँ हैं।"

और लोग ज्वालाओं को घड़ों के पानी से शान्त कर रहे थे। इसी बीच एक व्यक्ति उस नर्ककुण्ड से उन दोनों बच्चों को लेकर वापस आया। प्रतीक्षा करती महिलाओं के हाथों में बच्चों को सौंपकर वह धरती पर गिर पड़ा और अपने कपड़ों में लगी आग को बुझाने की चेष्टा करने लगा। अन्य लोग दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा करते रहे। कहीं कोई चीख-पुकार नहीं, केवल श्मशान शान्ति थी। दूसरा व्यक्ति भी एक महिला को लिये आ पहुँचा। महिला अचेत और जली हुई थी। वह व्यक्ति भी पहचाना नहीं जा रहा था। वह कुछ क्षणों तक मद्यप की तरह चेष्टा करता रहा तत्पश्चात उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

ग्रामीणों ने शान्तिपूर्वक आग बुझायी और तब दूसरे काम की ओर मुड़े। कुछ बच्चों और महिला के उपचार में लगे और कुछ दाह-संस्कार का प्रबन्ध करने लगे। मृतक के पास उसकी विधवा बैठकर धीरे-धीरे रो रही थी।

पादरी ने यह सब देखा। वह भी शान्त था। वह धीरे से उठा। उसने सिर झुकाया और जाने की राह पकड़ी। वृद्ध व्यक्ति उसके साथ चलता रहा। उसने प्रार्थना की कि कुछ अन्न-जल ग्रहण करें।

किन्तु मैं इस दुर्घटना में कैसे कुछ ग्रहण कर सकता हूँ?" पादरी ने प्रश्न किया।

श्रीमान् दुर्घटना जीवन का एक अंग है। भोजन व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। हमें ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ विस्तार में बताने की कृपा करें।' वृद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया।

पादरी ने वृद्ध ग्रामीण के सम्मुख सिर झुकाया। उसने कहा—'मित्रवर, आपको मेरी आवश्यकता नहीं है। ईश्वर तो यहां स्वयं रहता है।" वह पादरी वहाँ से चला गया। वृद्ध व्यक्ति आश्चर्यित नेत्रों से खोज रहा था कि किस झोपड़ी में ईश्वर रहता है।●

अनु०—बच्चनपाठक 'सलिल'

बालकों के खेल

•

जुगतराम दवे

बालवाड़ी के बड़ी उमर के बालक यह खेल खेलते हैं। एक बालक चश्मा चढ़ाकर और पगड़ी पहनकर शिक्षक बन जाता है। हाथ में एक छड़ी ले लेता है। शिक्षक को देखकर बालक एकदम चुप हो जाते हैं। शिक्षक पहाड़ा बुलवाता है। जो बोल नहीं पाते उन्हें पीटता है। बालक जोर जोर से रोने लगते हैं। बीच-बीच में बालक पानी-पेशाब की छुट्टी मांगते रहते हैं। शिक्षक सबको डांट डपटकर बैठा देता है। इस प्रकार की जो जो बात उन्होंने अपनी पाठशाला में देखी सुनी होगी उनका अभिनय वे करते रहेंगे।

दुकान का खेल

दुकान-दुकान का खेल भी बालकों के लिए एक अच्छा नाटकीय खेल बन सकता है। बालक अकसर अपने माता पिता के साथ दुकानों पर जाते हैं। दुकानदार तराजू में बाट चढ़ाकर चने तौल देता है। पिताजी चनों को अपने थैलों में भर लेते हैं। फिर जेब से रुपया निकालकर दुकानदार को देते हैं। दुकानदार उसे बजाकर देखता है। खोटा हुआ तो लौटा देता है। खरा रहा तो गोलक में डालता है। इसी ढंग से बालकों का यह खेल चल सकता है।

यदि बच्चे इसमें रम जायें और इसे देर तक चलाना चाहें तो वे नये-नये ग्राहक के रूप में दुकान पर आते रहेंगे। कोई खजूर मांगेगा कोई रेवड़ी कोई केले खरीदेगा।

इस खेल को इससे भी अधिक व्यापक बनाने की इच्छा हो जाय तो दो चार दूसरे बालक भी अपनी दुकानें लगाकर बैठ जायेंगे और तराजू बाट सँभाल लेंगे। कोई साग सब्जी की दुकान लगा लेगा कोई खिलौनों की।

खेलते हुए बालकों का आनन्द बढ़ाने के लिए शिक्षिका माथे पर मटकी रखकर 'दूध लो भाई दूध' की आवाज देती चली आयेगी और कहेगी — सुनो बच्चो सुनो! मैं तुम्हारे लिए ताजा मीठा दूध लायी हूँ।

बालक दौड़ आयेंगे और दूधवाली से पूछने लगेंगे

'दूधवाली ओ दूधवाली! दूध क्या भाव दे रही हो?

'बहुत सस्ता बहुत सस्ता। पैसे सेर पैसे सेर।'

इस तरह यह खेल तबतक खेला जा सकेगा जबतक इसे खेलते-खेलते बालक थक न जायें। वे इसे रोज रोज नये नये ढंग से खेलते ही रहेंगे।

ग्वाले का खेल

गाँवों के जीवन में ग्वाले का काम बालकों के लिए बहुत ही आकर्षक होता है। घर घर से लोग अपनी अपनी गायें हाँककर गाँव के बाहर पहुँचा देते हैं। फिर ग्वाला उन सबको जंगल में चराने ले जाता है।

इस खेल में कुछ बालक घुटनों के बल चलकर गाय बन जाते हैं। कुछ सिर पर बड़ा सा साफा बाँध और हाथों में लाठियाँ लिये ग्वाले बन जाते हैं। कुछ बालिकाएँ नानी बहन मौसी बुआ नन्दू माँ और

नर्मदा धारी बनकर गायों को हाँक लाती है। कुछ दूसरे बालक रामा काका, छगन दादा और भीखा पटेल बनकर अपने-अपने मवेशी ले आते हैं। इस तरह खेल चलता रहता है।

खेल को जितना बढ़ाना हो, बढ़ाया जा सकता है। ग्वाले गायों को नदी पर पानी पिलाने ले जायेंगे। वहाँ पहुँचकर वे 'पोह-पोह' की आवाजें करते हुए गायों को पानी पिलाने का अभिनय करेंगे। फिर वहाँ से गायों को चरागाह की तरफ चराने ले जायेंगे। गायें मुँह से चरने की आवाज करती हुई चरने लगेंगी। बाद में ग्वाले गायों को पेड़ की छाया में बैठायेंगे। गायें बैठी-बैठी जुगाली करेंगी और ऊँघने लगेंगी। इस बीच ग्वाले लुका छिपी का खेल खेलेंगे और फिर चादर ओढ़कर सो जायेंगे।

अन्त में ग्वाले गायों को हाँककर गाँव में लायेंगे। गाँव के लोग भी अपनी-अपनी गायों को लिवा ले जाने के लिए सरहद तक आयें होंगे। ऐसे समय शिक्षिका भी उनमें सम्मिलित होकर बालकों के आनन्द को बढ़ा देगी। लोग अपनी-अपनी गायें पहचानेंगे और उन्हें हाँककर घर ले जायेंगे। कई बालक अपनी शिक्षिका की गाय बनना चाहेंगे। शिक्षिका उनकी पीठ पर हाथ फेरेगी, उन्हें सहलायगी, आदि-आदि।

बालकों के वैज्ञानिक खेल

बालवाड़ियों में बालकों में खेलों का एक नया प्रकार दाखिल करने लायक है। कहीं-कहीं कल्पनाशील शिक्षिकाएँ वैसा कुछ करती पायी भी जाती हैं। यहाँ हम ऐसे कुछ खेलों पर विचार करेंगे।

स्वाभाविक ही है कि शिक्षिका को ये खेल अपनी उपस्थिति में पूरे नियम के साथ खेलाने होंगे। इसी कारण इन्हें बहुत थोड़े समय तक चलाना चाहिए। यही नहीं, बल्कि इनमें उन्हीं बालकों को सम्मिलित करना चाहिए, जो सहज ही इनकी ओर झुकाये जा सकें। बालकों को आजादी रहनी चाहिए कि वे जब चाहें इन्हें छोड़कर जा सकें।

फिर भी अनुभव यह होगा कि इस प्रकार के खेलों में भी बालकों की अपनी आन्तरिक रुचि और आकर्षण उसी प्रमाण में है, जिस प्रमाण में उनकी अपनी मानसिक शक्तियों का विकास हुआ होगा। छोटा होते हुए भी आखिर बालक मानवी बालक है। उसमें बुद्धि है, विचार-शक्ति है, कल्पना शक्ति है। उसे अपनी इन शक्तियों का भान होता है और इन शक्तियों की कसरतों, करामातों और खेलों में उसे मजा आता है। जितना मजा उसे दौड़ने और कूदने के खेलों में आता है, उतना ही इन खेलों में भी आता है।

पक्षी कैसे चलते हैं ?

इस प्रकार के खेलों में सबसे सरल और आकर्षक होते हुए भी बालकों की अवलोकन-शक्ति की परीक्षा करनेवाला खेल है तरह-तरह के पक्षियों और पशुओं की चालें चलने का।

कमर पर हाथ रखकर और दोनों पैर जोड़कर कूदते हुए चलने पर चिड़िया की चाल बनेगी। इसी के साथ चिड़िया की 'चूँ चूँ' बोली भी बोलते चलेंगे तो वह एक बढ़िया खेल बन जायगा। जब कई बालक इकट्ठा होकर इस तरह चिड़िया की चाल चलेंगे और उसकी बोली बोलेंगे, तो कुछ समय के लिए खेल में बड़ा ही मजा आ जायगा।

इतने में शिक्षिका मोर की चाल चलने का हुक्म देगी। बालक आवाज को फौरन ही बदल देंगे—हवा में मोर का स्वर गूँज उठेगा। मोर की चाल चलने का मतलब है नाचना। कुछ देर के लिए एक पैर पर छम छम ठुमकना और फिर कुछ देर दूसरे पैर पर ठुमकना। बीच-बीच में मोर की तरह अपना सिर और कन्धे हिलाते रहना। समय-समय पर आँखें भी चमचम चमकती रहेंगी और होठों पर मुसकान थिरकती रहेगी।

पशु कैसे चलते हैं ?

शिक्षिका फिर एक नया हुक्म देती है—'बिल्ली चाल, बिल्ली चाल।' बालक तुरत ही कमर झुकाकर बिना तनिक भी आवाज किये, चुपचाप, दबे पैर चलने लगते हैं। जिस तरह बिल्ली अपनी जान पहचानवालों से प्रेमपूर्वक लिपट जाती है, यानी उसके साथ सटकर चलती है, उसी तरह बालक भी समय-समय पर अपनी शिक्षिका की बगल में घुसेंगे और उसके साथ सट सटकर चलेंगे। ●

भारतीय शिक्षा आयोग

शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ

●

वंशीधर श्रीवास्तव

२ अक्टूबर, १९६४ को महात्मा गाधी के जन्म-दिवस पर शिक्षा आयोग का उदघाटन हुआ था। लगभग २१ महीने काम करने के बाद २९ जून, १९६६ को इसने भारत के शिक्षा मत्री श्री चागला को अपना प्रतिवेदन समर्पित किया।

आयोग का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था। आयोग को शिक्षा के सभी स्तरो और सभी पहलुओ पर विचार करना और सुझाव देना था। आयोग में अध्यक्ष सहित १७ सदस्य थे, जिनमे ६ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिक्षा शास्त्री थे। स्वभावत इसीलिए कुछ विचारको ने इसे भीड (क्राउड) की सज्ञा दी है। साधारणत आयोग म इतने अधिक सदस्य नही होते। इस आयोग ने भारत के सभी राज्यो का दौरा किया और ९००० व्यक्तियो का साक्षात्कार किया। लिखित साक्षियो और प्रश्नावलियो-द्वारा इसने शिक्षा के हर पहलू पर जानकारी हासिल की। लगभग १०० गोष्ठियों और सम्मेलन करके इसने शिक्षा की समस्याओ को समझा और समझाया, दूसरो की बातें सुनी और अपनी बातें कही। (यद्यपि कुछ लोगो का कहना है कि सुनी सबकी, परन्तु की अपनी, और, जो कही और लिखी वह बहुत पहले से उसके मत्री श्री जे० पी० नायक कहते और लिखते आ रहे थे। उसमें कुछ बढा है तो विज्ञान के विषय में वह जो आयोग के अध्यक्ष कोठारी चाहते थे यानी विज्ञान की शिक्षा का अप्रोच विषयगत (डिसिप्लिनरी) होना चाहिए, सामान्य विज्ञान का नही, अथवा वह जो शिक्षा मत्री चाहते थे, यानी विशिष्ट व्यक्तियो के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की केन्द्रीय सस्थाएँ खोली जायें।)

लगभग साढे चार लाख शब्दो में लिखे गये १५०० पृष्ठो के इस प्रतिवेदन में ३ खण्ड और १९ अध्याय हैं। प्रतिवेदन के विषय हैं—शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य, शिक्षा-पद्धति का नवीनीकरण और पुनर्गठन, शिक्षको की स्थिति मे सुधार, शिक्षक प्रशिक्षण, छात्रो की भरती-सम्बन्धी नीतियाँ और जनशक्ति, स्कूली शिक्षा और उसकी समस्याएँ, स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षा की पद्धतियाँ, निर्देशन और मूल्याकन, शैक्षिक प्रशासन, उच्च शिक्षा की समस्या विज्ञान की शिक्षा एव अनुसन्धान, कृषि की शिक्षा तथा वित्त-व्यवस्था आदि।

इस आयोग की छपी प्रतियाँ अभी उपलब्ध नही है। आयोग की सस्तुतियो का जो सक्षेप प्रेस के पास भेजा गया है वही सामने है।

आयोग की भाषा-नीति

आयोग ने अनेक महत्वपूर्ण सस्तुतियाँ की हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण सस्तुतियाँ है प्रदेशो म सार्वजनिक शिक्षा के सामान्य शिक्षालय स्थापित करने की, जिनमे शिक्षा और परीक्षा का माध्यम क्षेत्रीय प्रादेशिक भाषाएँ होगी और देश में ६ महाविश्वविद्यालय स्थापित करने की, जिनमे शिक्षा-परीक्षा का माध्यम केवल अँग्रेजी होगी। इस प्रसग में आयोग के प्रस्ताव निम्न प्रकार हैं—

१ सार्वजनिक शिक्षा के लिए, सामान्य विद्यालय (कामन स्कूल) स्थापित करना राष्ट्रीय लक्ष्य होना चाहिए और इस कार्य को प्रभाव-

पूर्ण ढंग से प्रमित चरणों में बीस वर्ष की अवधि में पूर्ण कर लेना चाहिए। सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के लिए आयोग ने इस काम को आवश्यक बताया है।

(खण्ड–३, पैरा–१)

२ देश में उच्च शिक्षा के ऐसे विशिष्ट ६ विश्वविद्यालय जहाँ राष्ट्रीय स्तर की स्नातकोत्तर शिक्षा दी जाय और जहाँ अनुसंधान की हर सुविधा हो। इन विश्व विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगी। (अध्याय–१, खण्ड–३, पैरा–९) आयोग ने सुझाव दिया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग-द्वारा उच्च शिक्षा के लिए स्थापित किये जानेवाले इन केन्द्रों को मशक्त बनाया जाय।

इन दो सस्तुतियों के सन्दर्भ में आयोग की नयी भाषा-नीति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो उठी है। इस सम्बन्ध में आयोग के प्रस्ताव निम्नांकित हैं —

१ स्कूलों और कालेजों में मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो। चूँकि विश्वविद्यालयों शिक्षा और उच्च शिक्षा में शिक्षा का माध्यम एक ही होना चाहिए, अतः प्रदेश के विश्वविद्यालयों में उच्च स्तर की शिक्षा के लिए भी प्रादेशिक भाषाओं को ही माध्यम रखा जाय। इन सस्तुतियों को दस वर्ष के भीतर ही कार्यान्वित कर लेना चाहिए।
(पैरा ६ और ७)

२ उच्च शिक्षा की अखिल भारतीय संस्थाएँ शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का व्यवहार करती रहें। (पैरा—९)

३ अंग्रेजी का अध्यापन और अध्ययन स्कूल-स्तर से ही चले। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की भाषाओं को भी प्रोत्साहन दिया जाय—विशेषतः रूसी भाषा को।
(पैरा—११)

भाषा-नीति के परिणाम

अगर इन सस्तुतियों पर कार्यान्वयन हुआ तो इसके अनेक दूरगामी परिणाम होंगे, जिनका देश की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा।

१ देश में शिक्षा की दो धाराएँ एक साथ बहेंगी—एक सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य धारा और दूसरी उच्चतम शिक्षा की विशिष्ट धारा। पहली में प्रादेशिक भाषाएँ शिक्षा का माध्यम रहेंगी और दूसरी में अंग्रेजी।

२ चूँकि अखिल भारतीय संस्थाओं में अध्ययन और अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी रहेगी अतः अंग्रेजी का पठन-पाठन स्कूल-स्तर से ही निरन्तर चलेगा। (आयोग ने कक्षा ५ से अथवा अपर प्राइमरी स्तर से शिक्षा प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है।)

३ अगर बालक में प्रतिभा है और उसकी आकांक्षा और क्षमता अध्ययन तथा शोध की है तो उसे अखिल भारतीय महा विश्वविद्यालयों में जाना होगा। इसके लिए अंग्रेजी को अपनाना और मातृभाषा को छोड़ना होगा—छोड़ना नहीं तो गौण स्थान अवश्य देना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि मातृभाषा की शिक्षा के साथ हीन भावना जुड़ी रहेगी—जैसा आज भी है। अंग्रेजी पढ़ा लिखा वर्ग श्रेष्ठ होगा (ब्राह्मण होगा)। भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ा लिखा व्यक्ति हीन होगा (शूद्र होगा)।

४ फलतः समाज में सदा के लिए दो वर्ग बन जायेंगे। अंग्रेजी पढ़े लिखे तथा कथित प्रतिभा-सम्पन्न लोगों का विशिष्ट वर्ग और भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ा-लिखा वर्ग, निम्न वर्ग। इस प्रकार के दो वर्ग तो लार्ड मेकाले की शिक्षा-नीति के फलस्वरूप देश में अंग्रेजो के समय में ही बन गये थे। गांधीजी ने जब राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा का प्रवर्तन किया तो उनके सामने भी यह दोनों वर्ग थे और बुनियादी शिक्षा-पद्धति से जहाँ उन्होंने अनेक आशाएँ की थीं वहाँ एक आशा यह भी की थी कि उससे यह वर्ग भेद सदा के लिए समाप्त हो जायगा। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जब देश में समाजवाद की स्थापना की नीति अपनायी गयी तो यह विचार और भी गहरा हो गया कि अन्ततोगत्वा यह दोनों वर्ग मिट जायेंगे। परन्तु आयोग की इन सस्तुतियों का यदि कार्यान्वयन हुआ तो देश में ये दोनों वर्ग बने ही रहेंगे और

से ही होगा, किसी विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं। अत अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम रखने की संस्तुति करके आयोग अपने उस सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य को ही भूल गया है जो उसकी सारी हलचल के मूल में रहा है अर्थात शिक्षा को भारतीय जन-जीवन से सम्बन्धित करना। आयोग ने रिपोर्ट के प्रथम अध्याय के प्रथम अनुच्छेद में लिखा है—"आज शिक्षा में जो सुधार सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक है वह है उसमें परिवर्तन करना और उसको जनजीवन और जनता की आवश्यकताओ एव आकाक्षाओ से जोडना, जिससे शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन बने, ताकि राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके।" परन्तु शिक्षा को भारतीय जनजीवन और उसकी आवश्यकताओ और आकाक्षाओ को भारतीय भाषाओ के माध्यम से ही जोडा जा सकता है विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं। किसी देश में ऐसा नहीं हुआ है अत यदि यहाँ ऐसा हुआ तो शिक्षा भारतीय संस्कृति और भारतीय जनजीवन से पृथक ही रहेगी। जो यह बात नहीं समझते वह भाषा नहीं बोलते, वे स्वार्थ की भाषा बोलते हैं, राष्ट्र के अमगल की भाषा बोलते हैं। इस तथ्य को जितना शीघ्र समझ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

वास्तविकता तो यह है कि यदि आयोग की कोई सबसे बडी कमजोरी है तो वह है भारतीय जन जीवन और भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी अनभिज्ञता और उदासीनता। आयोग के संगठन के बाद ही यह आशका होने लगी थी कि यह आयोग भारतीय संस्कृति और जन-जीवन के साथ न्याय नहीं कर सकेगा। यह भी लोग समझने लगे थे कि आयोग विज्ञान और आधुनिकता के प्रचार पर बहुत बल देगा और इस बात की चिन्ता नहीं करेगा कि उसका मेल भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यो से है अथवा नहीं। इसीलिए कुछ लोगो ने अपने स्मरण-पत्रो में आयोग के समक्ष अपनी गवाहियो में और दूसरे तरीको से (अखबारो में लिखकर अथवा शिक्षा-सम्मेलनो और गोष्ठियो में) इस बातको स्पष्ट किया था कि यद्यपि देश की गरीबी और अज्ञान को दूर करने के लिए विज्ञान और टेक्नालाजी का प्रसार आवश्यक है, फिर भी, जैसा कि श्री चागला ने स्वय अपने उद्घाटन भाषण में कहा था, शिक्षा के वैज्ञानिक और टेक्नालाजीकल पहलुओं पर बल देते हुए भी हमको अपने अतीत को नहीं भूलना चाहिए। हम आगे देखें और आधुनिक बनें, परन्तु हमारा पैर दृढतापूर्वक हमारे देश की धरती पर हो। परन्तु रिपोर्ट की संस्तुतियो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आयोग ने इस प्रकार की किसी शिक्षा-नीति के विकास का कोई प्रयास नहीं किया है, जो विज्ञान तथा टेक्नालाजी और भारतीय संस्कृति में आधुनिक जगत की औद्योगिकता और भारत की आध्यात्मिकता में समन्वय स्थापित कर सके।

श्री सम्पूर्णानन्द की दृष्टि में आयोग

इसका सबसे बडा कारण यह है कि आयोग के भारतीय सदस्यो के सम्मुख ऐसा कोई भारतीय जीवन-दर्शन नहीं था जिसे प्राप्त करने के लिए किसी विशेष प्रकार की शिक्षा-पद्धति का विकास किया जाय। आयोग के रिपोर्ट की समीक्षा करते हुए देश के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द लिखते हैं —

विदेशो से जो शिक्षा विशेषज्ञ आये थे—विशेषत रूस और अमेरिका से उनका विश्वास एक विशेष प्रकार की जीवन-पद्धति और अर्थ-व्यवस्था में था। इसी जीवन-पद्धति में उनका पालन-पोषण हुआ है और उसी को कायम रखने में वे अपने ढग से सक्रिय रहे हैं। अत इस पद्धति को कायम रखनेवाली सहायक शिक्षा पद्धति में निष्ठा रखना और उसी की हिमायत करना उनके लिए स्वाभाविक था। परन्तु भारतीय सदस्यो के सम्मुख इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था क्योंकि उनके सामने ऐसी कोई जीवन-पद्धति नहीं थी जो शासन सम्मत हो यानी देश की सरकार-द्वारा स्वीकृत हो। परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि हजारो वर्षों की अवधि में इस देश में एक ऐसी जीवन-पद्धति विकसित हो गयी है जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं। समय असमय हम इस संस्कृति की कसम भी खाते हैं। धन खर्च करके विदेशो में उसका प्रचार भी करते हैं बाहर सास्कृतिक मिशन भी भेजते हैं, परन्तु हमने सरकारी तौर पर उस संस्कृति को अपना लक्ष्य नहीं बनाया है। गाधीजी इस संस्कृति के प्रचारक और समर्थक थे, लेकिन हमने इस बात की चेष्टा की है कि उनके विचार हमारे सविधान में प्रतिध्वनित न हो पाये। उनके विचारो उनकी

अहिंसा और उनकी आध्यात्मिकता को स्वतन्त्र भारत के शासन ने कार्यरूप में परिणत नहीं किया—न उसे अपनी राजनीति और अर्थनीति के मूल में ही रखा। अत भारतीय सदस्यों के व्यक्तिगत विचार कुछ भी हो वे किसी शासन-सम्मत जीवन-पद्धति से बँधे नहीं थे। अत ऐसी परिस्थिति में एक ओर जहाँ कुछ ऐसे सदस्य हो जो कुछ विशेष सिद्धान्तो से बँधे हो और दूसरी ओर कुछ ऐसे सदस्य हो जिनका कुछ सिद्धान्त ही न हो तो वहाँ यही श्रेयस्कर होता है कि किसी सिद्धान्त की दृष्टि से कोई बात ही न की जाय। आयोग ने भी यही किया है।"

फलत आयोग ने जो शिक्षा-नीति विकसित की है और जिसे क्रान्तिकारी कहा है वह वास्तव म लक्ष्यहीन और सिद्धान्तहीन है। सम्पूर्णानन्द जी के ही शब्दो में—"यह आशा की गयी थी कि आयोग की संस्तुतियो से भारतीय शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा। परन्तु मुझे आशका है कि ऐसी कोई बात होगी। यह सम्भव है कि इसमें कुछ टेकनीकल सुधार हो जायें, मानव शक्ति और धन का अपव्यय बच जाय अध्यापको की स्थिति कुछ अच्छी हो जाय, सम्भव है कि एक ऐसा पाठ्यक्रम भी बना लिया जाय जो आज की आर्थिक व्यवस्था के अधिक अनुकूल हो, परन्तु इसमें क्रान्तिकारी कुछ भी नही है। वास्तव में शिक्षा केवल पाठ्यक्रम शिक्षा पद्धति पाठशाला प्रबन्ध और वित्त-व्यवस्था मात्र नही है (और यही वे पहलू हैं जिनपर आयोग ने जोर दिया है।) वह तो एक लक्ष्य की प्राप्ति का साधनमात्र है—जब लक्ष्य क्रान्तिकारी नही है तो शिक्षा भी क्रान्तिकारी नही होगी। हमारे सामने पूर्ण मानव का चित्र होना चाहिए, केवल समझदार रोटी कमानेवाले नागरिक का नही। किस प्रकार के मानव को हम पूर्ण कहेंगे यह शिक्षा-दर्शन का विषय है। नि सन्देह हम भारत की परम्पराओ और युगा-युगो से विकसित यहाँ की संस्कृति पर आधारित एक पूर्ण मानव की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन चूँकि आयोग के सदस्यो में शिक्षा-दर्शन (जीवन-दर्शन) के मूल भूत सिद्धान्तो पर मतैक्य नही था, अत उन्होने शिक्षा-दर्शन की कोई बात ही नहीं कही, न उन्होने ऐसा कुछ भी कहा जिससे शिक्षको और छात्रो को प्रेरणा मिले। रिपोर्ट में ऐसा कुछ नही है जो हमारे श्रेष्ठतम की अभिव्यक्ति कर सके।'

लक्ष्यो की व्याख्या

आयोग ने आरम्भ मे शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्यो की व्याख्या की है आयोग के ही शब्दो मे—'शिक्षा का विकास इस ढग से होना चाहिए जिससे उत्पादकता बढे, सामाजिक और भावात्मक एकता की वृद्धि हो, लोकतन्त्र दृढ हो, आधुनिकता की प्रगति में गति आये और सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का निर्माण हो'। ये लक्ष्य उत्तम हैं इसमे कोई दो मत नही हो सकते। परन्तु लक्ष्यो म—'लोकतन्त्र' और 'आध्यात्मिकता'—दो ऐसे शब्द हैं जिनकी स्पष्ट व्याख्या आयोग ने नही की है। इन दोनो शब्दो की व्याख्याएँ अपने ढग से की जाती रही हैं। जिसे रूस लोकतन्त्र, समाजवाद, साम्यवाद कहता है, यूरोप के कुछ देश और अमेरिका उसे ही अधिनायकवाद कहते हैं। और जिसे ये देश लोकतन्त्र कहते है, रूस उसे पूँजीवादी शोषण कहता है। अत लोकतन्त्र की व्याख्या होनी चाहिए थी। उसी तरह आध्यात्मिक शब्द को भी स्पष्ट करना चाहिए था। परन्तु चूँकि इन्हें स्पष्ट करने में सिद्धान्त और जीवन दर्शन के प्रश्न आ जाते, अत आयोग ने इनकी स्पष्ट व्याख्या नही की है और इसी के अभाव म उसकी संस्तुतियाँ प्राणहीन रह गयी हैं। इसलिए सम्पूर्णानन्दजी ऐसे शिक्षाशास्त्री को कहना पडा है कि इन संस्तुतियो से शिक्षा में क्रान्ति नही होगी और भारतीय संस्कृति तथा जीवन-पद्धति के अनुकूल मानव का विकास नही होगा।

मेरा सुझाव है कि संगठित रूप से इन संस्तुतियो के विरुद्ध आन्दोलन करना चाहिए। किसी भी कीमत पर देश में ऐसे ६ विशिष्ट विश्वविद्यालय न खुलें, जिनमें केवल अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम हो। यह ठीक है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा के महाविद्यालय खुलें, जिनमें उच्च श्रेणी का अन्वेषण, अध्यापन हो, परन्तु ऐसे विद्यालय प्रत्येक राज्य में हो और उनमें शिक्षा का माध्यम क्षेत्रिय भाषाएँ ही हो। प्रारम्भ में यदि अंग्रेजी रहे तो क्षेत्रीय भाषाओ का विकल्प अवश्य रहे। ऐसा होगा तभी 'सामान्य शिक्षा' और 'विशिष्ट शिक्षा' में समन्वय हो सकेगा। ●

ग्रामीण युवक-शिविर

•

बनवारीलाल चौधरी

ग्राम-समाज का गठन ऐसा है कि उसमें युवक-वर्ग अति उपेक्षित और अस्वीकृत है। जबतक युवक, भले ही उसकी अवस्था कितने ही वर्ष की क्यों न हो, अपने पिता के साथ रहता है उसकी कोई भी बात नहीं मानी जाती। पिता अक्षम हो गया हो, तब बात दूसरी होगी, अन्यथा पिता ही सब बातों में सर्वोपरि रहता है। यह स्थिति युवक-वर्ग को रोटी-कपड़ा पर रखे मजदूर-सा बना देती है। फलस्वरूप वह हताश, अकृतार्थ और खिन्न रहता है। सब कामों को वह 'गुनाहे बे लज्जत' मानता है। शनैः-शनैः उसके अभिक्रम की भावना ही खतम हो जाती है और यह स्थिति उसमें जीवन-पर्यन्त बनी रहती है।

इन युवकों को प्रवाह में लाने, उनके मन में ग्राम-उत्थान की भावना जागृत कर एवं उन्हें ग्राम के दैनिक विवाद, कलह और झगड़ों से ऊपर उठाकर सोचने-विचारने की वृत्ति डालने की दृष्टि से मैंने उनमें कार्य आरम्भ किया।

पूर्व तैयारी

युवकों में कार्य करना बुजुर्गों की सहमति और सम्मति के बिना सम्भव नहीं है। हमने गाँव-गाँव में एक दिवसीय सभाएँ कीं। इन सभाओं में गाँव की अन्य समस्याओं के साथ-साथ युवकों के बारे में भी अपने विचार रखे। इन गाँवों में देश विदेश में हुए युवक-कार्यों के चलचित्र दिये और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि युवकों के विकास से उनके परिवारों के कार्य में मदद मिलेगी।

ग्रामों के प्रमुख व्यक्तियों से हम अलग से एक-एक से मिले। फिर हमने इन प्रमुख एवं प्रबुद्ध किसानों का एक दिन के लिए केन्द्र पर ३–४ घण्टे के लिए आमंत्रित किया। इन्हें हमने अपने कार्य के बारे में एवं कृषि में किये जा सकनेवाले अपेक्षित सुधारों के बारे में समझाया। इन्हें हमलोग एकदिन कृषि प्रयोग-क्षेत्र एवं गेहूँ-अनुसन्धान-क्षेत्र मवारखेड़ा दिखाने ले गये।

इन सबसे हम किसान-समाज के नजदीक आये। हमने उनकी हार्दिकता प्राप्त की। फलस्वरूप वे युवकों को हमारे यहाँ शिविर में भेजने के लिए सहर्ष राजी हो गये।

शिविर-आयोजन

ग्राम-युवकों का हमने एक तीन दिवसीय शिविर आयोजित किया। इस शिविर में भाग लेनेवाले युवक घर से आटा-दाल, चावल आदि सामान ले आये। ग्राम-सेवा समिति तरोदा, निटाया की ओर से साग-सब्जी और चाय की व्यवस्था की गयी। शिविर का सामान्य आयोजन विद्यार्थी शिविर के समान ही रखा गया।

शिविरार्थियों ने सब काम स्वयं ही किया। प्रतिदिन उन्होंने दो घण्टा समिति के खेत पर कार्य किया। इस कार्य का रूप शिक्षाप्रद रखा गया, विशेषतः उन्हें गृह-वाटिका, वृक्षारोपण और पौधें तैयार करना सिखाया गया।

प्रतिदिन हमने अधिक-से-अधिक चित्र, चलती-बोलती फिल्म, एकांकी नाटक आदि के द्वारा युवक ग्रामों में क्या कर सकते हैं, यह दर्शाया। इनपर चर्चा की

और जानना चाहा कि वे लोग अपने ग्राम में क्या कर सकते हैं।

भजन मण्डली

समाज विकास-योजना के कार्यक्रम के अन्तर्गत युवक-मण्डल सगठित किये जा रहे हैं। हमने इसमें उन्हें सहयोग दिया। निटाया-युवक-टोली को भजन मण्डली के रूप में सगठित किया। इस काम में हमें दक्षिण भारत के एक युवक से बहुत सहायता मिली। उन्होंने हमें अपने गाव को गोकुल बनाने की गीत की ध्वनि दी। निम्नलिखित वर्णन में आये विषयों को भजन मण्डली ने अपना कार्यक्रम बनाया–

- ग्राम चरोखड का खरपतवार साफ करना
- ग्राम के रास्ते ठीक करना
- ग्राम का सामाजिक कुआ साफ करना
- घर घर खाद-गड्ढा और एक-एक पपीता नींबू या केला का पौधा लगवाना
- शाला भवन का निर्माण एव उसके अहाते में हाथ पम्प लगवाना
- ग्राम धर्मशाला का निर्माण
- रामायण-मण्डल का सचालन।

इन कार्यक्रमों के सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होने से ग्राम युवकों को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और अपने गाँव में एव पास-पड़ोस के गावों में उनकी सराहना हुई।

युवकों-द्वारा किये गये इन कार्यों के फलस्वरूप तराना निटाया ग्राम को जिले के विकासशील ग्राम का ५०० रुपये का द्वितीय पुरस्कार मिला और फिर एक वर्ष का युवक मण्डल का प्रथम पारितोषिक भी।

इन अनुभवों से हमें ग्राम-श्रम-कार्य शिविर के कुछ व्यावहारिक आधार मिले। वे इस प्रकार हैं –

- श्रम शिविर समग्र ग्राम विकास-योजना के एक पूरक अंग के रूप में हो। विकास-कार्य केवल ऊपरी परिवर्तन नहीं है वह सामाजिक धार्मिक दृष्टि-परिवर्तन मूल्यों में परिवर्तन और है नये मूल्यों की प्रतिष्ठा।
- युवकों के लिए आयोजित सभी श्रम शिविरों का आन्तरिक ध्येय चरित्र निर्माण और नये परिवर्तित विज्ञान प्रधान सामाजिक भावनाओं और मूल्यों का ग्रहण करना होना चाहिए। गणतांत्रिक विचार और आचारों का भी जीवन में प्रवेश होना बहुत महत्व का है।

श्रम-कार्य शिविर की पूर्व तैयारी

- श्रम शिविर किसी स्थानीय सस्था के तत्वाव धान में आयोजित हो।
- जिस ग्राम में शिविर करना है उसकी अभीष्ट आवश्यकता का अन्दाज लगाया जाय एव ग्राम-युवकों का अधिक-से-अधिक सक्रिय सहयोग का आश्वासन प्राप्त किया जाय। बाहरी निमंत्रित युवकों की निवास व्यवस्था की जाय। यह काम स्थानीय सस्था को या ग्राम-युवक मण्डल को करना चाहिए।
- ग्राम के युवकों-द्वारा अपने ही ग्राम में श्रम कार्य आयोजित करना उत्तम होगा।

श्रम-कार्य के प्रयोजन

अधिकारी वर्ग के अनुसार ये तीन प्रकार के होते हैं।

१–सामाजिक प्रयोजन—ऐसे प्रयोजन जिससे ग्राम समाज को लाभ हो। जैसे ग्राम उद्यान बाल क्रीडांगन मवेशियों की किल्ली मारने का स्थान-गड्ढा शाला में बालकों का नाश्ता भूमि-सरक्षण ग्राम-मार्ग ग्राम-कूप, ग्राम-तालाब की सफाई देखभाल आदि।

२–सामुदायिक प्रयोजन—एक समूह विशेष के लाभ-हेतु किये कार्य। जैसे हरिजनों के लिए किये गये कार्य अम्बर या सामान्य कताई प्रशिक्षण मुर्गी-पालन गोपालन गृह-वाटिका चमड़े और बाँस का काम हाथ पम्प लगाना सीमेण्ट के साधन बनाना कूप निर्माण आदि।

३–वैयक्तिक प्रयोजन—व्यक्ति विशेष के लिए किये गये कार्यक्रम। अक्सर इनकी शुरुआत सामूहिक और सामुदायिक प्रयोजन के अन्तर्गत ही होती है। इनमें भाग लेनेवाले कुछ व्यक्ति कुछ चीजें अन्य से पूर्णरूप से सीखना चाहते

है। उन्हें अपने जीवनयापन का साधन बनाना चाहते है। जैसे, मुर्गी-पालन, दर्जीगिरी, साइकिल-दुरुस्ती, बढ़ईगिरी आदि।

कार्यक्रम का प्रारूप

यह कार्यक्रम दो प्रकार का होगा—
१—कौशल कार्य (स्किल्ड वर्क) और
२—श्रमपूर्ण शारीरिक कार्य (अनस्किल्ड वर्क)।

स्वयंसेवकों का चुनाव

श्रम शिविर के स्वयंसेवकों का चुनाव-कार्य की अभीष्ट आवश्यकतानुसार किया जाय। उदाहरणार्थ भवन निर्माण-कार्यक्रम के लिए १–२ स्वयंसेवक राज के काम में कुशल होने चाहिए। वैयक्तिक प्रयोजन के लिए पूर्ण प्रशिक्षित शिविरार्थी लगेंगे।

कृषिकार्य का प्रयोजन दो प्रकार का होगा—१ किसानों को सुधरी हुई खेती के तरीके पौध-संरक्षण, पौधों पर आँख बाँधना, यंत्रों से नदी को बाँधना आदि का निदर्शन कराना।

२ पूर्ण श्रम-कार्य—फसल गहाना रोपा लगाना, घास निकालना आदि।

मार्ग-निर्माण

मार्ग निर्माण-कार्य—ग्राम को राजपथ या दूसरे गाँव से जोड़नेवाले रास्तों का काम पहले न किया जाय। प्राथमिकता गाँव के अन्दर के कुआँ, शाला और मन्दिर को जानेवाले रास्तों को दी जाय।

इसके साथ ही शुद्ध जल प्राप्ति, ग्राम की सफाई कम्पोस्ट के गड्ढे तथा सण्डास निर्माण का कार्य भी लिया जा सकता है।

अन्य आवश्यक बातें

● अधिक-से-अधिक स्वयंसेवक ग्राम के ही हों। युवकों पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय। उन्हें प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

● शिविरार्थियों की संख्या २५ से अधिक न हो।

● एक ही शिविर में एक साथ बहुत से कार्यक्रम न उठाये जायें।

● ग्राम समाज की शिविर से बहुत अधिक अपेक्षाएँ नहीं बनने दें।

● जो भी कार्य आरम्भ किया जाय वह निश्चित योजना के अनुसार अवश्य पूर्ण किया जाय।

● शिविरार्थियों को श्रम भाररूप न हो जाय और नहीं उनको ऐसा लगे कि वे मजदूर मात्र हैं।

● समाज म विशेषत युवक-समाज में इस प्रकार के और प्रयोजन लेने का उत्साह जाहिर हो।

● शिविर-काल में समय-समय पर मनोरंजन कार्यक्रम ग्राम निवासियों को सम्मिलित करते हुए रखे जायें।

● अध्ययन पठन पाठन का शिविरार्थियों को अवसर मिले।

● कार्यारम्भ अर्थात् उद्‌घाटन और समारोप कार्यक्रम उत्सव के रूप में मनाये जायें।

● श्रम शिविर को ग्रामीण जनता के बीच की कड़ी बनाना चाहिए। उसके माध्यम से विज्ञान ग्राम-स्तर तक पहुँचे।

●

व्यक्ति के आन्तरिक जीवन की क्रान्ति ही सामाजिक क्रान्ति की आधारशिला है। समाज की बाहरी स्थिति को बदलने से क्रान्ति नहीं हो जाती, बल्कि बाहरी परिवर्तनों पर ही निर्भर रहने के कारण हम अपना जीवन खोखला बना डालते हैं। व्यक्ति-जीवन में क्रान्ति किये बिना, चाहे जितने कानून बना डालें, वे सामाजिक पतन को नहीं रोक सकते। —जे. कृष्णमूर्ति

युद्धमुक्ति के लिए सेनामुक्ति

•

विनोबा

प्रश्न—दक्षिणी वियतनाम पर जो अमानुषिक अत्याचार हो रहा है, उसे मद्देनजर रखते हुए लगता है कि द्वितीय हिटलर दुनिया के रंगमंच पर आ गया है, जैसे जानसन साहब हैं। इस बारे में आपकी क्या राय है ?

उत्तर—इसमें कोई शक नही कि घटना बडी दुखदायी है। आज दुनिया की हालत ऐसी है कि दुनिया के जो ऊँचे-से-ऊँचे लोग हैं, जिनके हाथ में राज्य का कारोबार है, उनका हिंसा पर विश्वास नही रहा है—चाहे जानसन हों या विलसन हों या और कोई हो। हिंसा पर किसी का विश्वास रहा नही और अहिंसा पर बैठा नहीं। हिंसा से मसले हल होंगे, ऐसा विश्वास जिनके हाथ में सेनाएँ हैं, उनको भी नहीं है। इसको मैंने नाम दिया है 'नरसिंहावतार'। नरसिंह के पहले अवतार थे—मत्स्य, कच्छ, वराह, याने जानवर। नरसिंह के बाद वामन परशुराम। राम मनुष्य अवतार हुए। पहले के ये पशु अवतार और बाद के ये मनुष्य अवतार। बीच में एक ऐसा अवतार हुआ, जो न पशु पूरा है, न मानव पूरा है। उसका नाम है नरसिंहावतार।

राजनीति मे नरसिंहावतार

आज दुनिया की राजनीति मे नरसिंहावतार चल रहा है। पुराना पशु गया, नया मानव आया नही। कुछ पशु कुछ मानव, ऐसा मिला-जुला रूप है। जानसन अच्छे आदमी हैं। हिंसा पर उनका विश्वास नहीं है। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया है—'बात करो बात करने के लिए तैयार हो जाओ।' चीन कहता है— नही, तुम यहाँ से हट जाओ, दूसरी बात मत करो, उसके बाद बात होगी। इस तरह मामला अडा हुआ है। यानी उनका विश्वास हिंसा पर नही है। लेकिन अहिंसा से कैसे काम बनेगा, यह उनके ध्यान में नही आया है। इस तरह पुराना चल रहा है। इसको विज्ञान में 'इनर्शिया' (निष्क्रियता) कहते हैं। उन्होने आइसन हावर की सलाह ली है। आइसन हावर पुराने राष्ट्रपति और सेना के बडे कुशल अधिकारी थे। उन्होंने कहा कि तुमको वहाँ बम डालना होगा, जहाँ तेल वगैरह है, उसके बिना बहुत संहार होगा। यानी मनुष्यों को कत्ल करने का विचार नही, लेकिन फिर भी मनुष्य कत्ल होंगे, पर बम होगे।

अहिंसा के लिए बम

दुनिया का बहुत ही बडा आदमी हो गया—आइन्स्टीन। इसमें कोई शक नही कि पिछले सौ पचास साल में जो बहुत बडे मानव हुए उनमें जिनका नाम है, उनमें वैज्ञानिक आइन्स्टीन का नाम प्रमुख है। दुनिया के विज्ञान मे इनके कारण क्रान्ति हुई है। अपने जमाने में न्यूटन बडा वैज्ञानिक था। वैसे ही इस जमाने में आइन्सटीन थे। वह यहूदी थे। जर्मनी का कितना अत्याचार चलता था, वह उन्होंने देखा था। वहाँ से भागकर वह अमेरिका गये। वहाँ उनकी विज्ञान की प्रयोगशाला काम करती थी। पिछले महायुद्ध में उन्होने देखा कि बहुत ज्यादा संहार हो रहा है। उन्होने बम की खोज की। खोज

उन्होंने अमेरिकावालों पर प्रकट कर दी। फिर पहला बम हिरोशिमा पर पड़ा। एक दिन में लाखों आदमी मारे गये, उससे ज्यादा जख्मी और उससे भी ज्यादा बीमार हुए। यह जब जापान ने देखा कि एक दिन में एक बम ने इतना तहलका मचा दिया तो एकदम लड़ाई बन्द कर दी गयी। उन्होंने बम इस ख्याल से निकाला कि वह अगर नहीं निकलता तो ज्यादा हिंसा होगी। संहार टालने के लिए बम की खोज की। लेकिन परिणाम यह आया कि ईजाद करने की होड़ लगी। उसके बाद तो आज दुनिया में ऐसे बम बने हैं कि एटम बम से सहस्र-गुना परिणाम करनेवाले हैं, फिर आइन्स्टीन को पश्चात्ताप हुआ कि मैंने गलत काम किया। लेकिन यह काम उन्होंने दया-बुद्धि से किया था। अहिंसा के ख्याल से हिंसा की। परिणामस्वरूप आज दुनिया में ऐसी स्थिति है कि बहुत से बड़े-बड़े लोग अब तंग आ गये हैं कि क्या किया जाय।

बिहारदान से युद्धमुक्ति

मैं कहना यह चाहता हूँ कि केवल ज्ञानसत्र को दोष देकर काम होनेवाला नहीं है। समझना चाहिए कि यह नरसिंहावतार चल रहा है। पुरानी चीज जारी है, कुछ सूझ नहीं रहा है। मेरा दावा है, बिहार ग्रामदान हो जाय तो मैं लड़ाई को रोक सकता हूँ। इससे भारत में जनता की ताकत पैदा हो सकती है। मसले सारे आपस में हल होंगे तो चीन वगैरह का जो डर है कि उसका हमला हमपर होगा, वह नहीं होगा। बल्कि उनके पास से प्रतिनिधि-मण्डल भारत आयगा, यह देखने और अध्ययन करने के लिए कि यहाँ किस प्रकार से प्रेम स्थापित हुआ है और किस प्रकार से गरीबी को मिटाने की कोशिश हो रही है।

मैं इतना दयालु आदमी नहीं हूँ कि केवल यह मानूँ की थोड़ी जमीन किसी को मिली, तो उसने उसका घर-संसार ठीक चलेगा, पेट पलेगा। मुझे अगर ग्रामदान में दिलचस्पी है तो यही कि इससे जन शक्ति तैयार होगी, जो हिंसा को खत्म करेगी। हमने दो मंत्र दिये हैं। एक मंत्र दिया है—'जय जगत' और दूसरा दिया है—'ग्रामदान'। जय ग्रामदान, जय जगत।

हमारा विश्वास है कि अगर यह आंदोलन श्रद्धा-पूर्वक चले—छिटपुट थोड़ा थोड़ा, टोले-टोले प्राप्त करना, ऐसा चोरीवाला काम नहीं, बल्कि सारे के सारे गाँव ग्रामदान हो रहे हैं, खण्ड के खण्ड, प्रखण्ड के प्रखण्ड, और अखण्ड के अखण्ड, फिर बिहार ग्रामदान—तो इससे ऐसी शक्ति पैदा होगी जिसके कारण हम अपने देश को और दुनिया को भी सेना-मुक्त करेंगे। ●

सर्वोदय-पर्व

कुछ वर्षों से विनोबाजी के जन्म-दिन, ११ सितम्बर से गांधीजी के जन्म दिन, २ अक्तूबर तक हम 'सर्वोदय-पक्ष' के तौर पर मना रहे हैं। इस पक्ष में सर्वोदय-विचार के व्यापक प्रचार के लिए प्रयत्न किया जाता है। इस साल हमने ग्रामदान तूफान-आन्दोलन उठाया है और उस सिलसिले में हजारों सेवक गाँव-गाँव में सर्वोदय का सन्देश लेकर घूम रहे हैं। बारिश के कारण तूफान-आन्दोलन की गति कहीं कहीं धीमी हुई है। अब बारिश का अन्त होते ही तूफान को अपने पूरे तेजस्वी स्वरूप में प्रकट करने की तैयारी चल रही है। जगह-जगह शिविर और पदयात्राओं का आयोजन हो रहा है।

इस पक्ष में हम शहरों की ओर भी विशेष ध्यान दें। आम सभा, गोष्ठी, प्रवचन, साहित्य आदि के द्वारा सर्वोदय-विचार का प्रवेश नगरवासियों में करने का विशेष प्रयत्न करें। गांधीजी के जन्म-दिन, २ अक्तूबर को जगह-जगह बड़ी-बड़ी प्रार्थना-सभाओं का आयोजन हो, जिसमें बड़ी तादाद में ग्रामदानों की तथा प्रखण्डदानों की घोषणा की जाय। मैं आशा करता हूँ कि यह पर्व हमें क्रान्ति के पथ पर आगे बढ़ाने का एक निमित्त बनेगा।

—अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ

वियतनाम-युद्ध के विभिन्न पहलू

●

रुद्रभान

दक्षिण पूर्व एशिया के देश औद्योगिक खनिज पदार्थों के भण्डार माने जाते रहे हैं। अठारहवीं सदी में यूरोप के साम्राज्यवादी देशों में ब्रिटेन और फ्रांस अग्रणी रहे हैं। दुनिया में जहाँ जहाँ औद्योगिक खनिज या कच्चा माल उपलब्ध था वहाँ-वहाँ पहुँचकर इन राष्ट्रों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। दक्षिण पूर्व एशिया में बर्मा, सिंगापुर, मलाया, सुमात्रा आदि देशों पर अंग्रेजों की सत्ता थी। फ्रांसीसियों ने उन्नीसवीं सदी में वियतनाम को जीतकर वहाँ पर अपनी सत्ता स्थापित की।

जिस समय फ्रांसीसियों ने वियतनाम को जीता उस समय वहाँ का सामाजिक ढाँचा पिरामिड की आकृति जैसा था। सबसे ऊपर वहाँ का राजा स्थित था। राजा के नीचे प्रशासकों, धर्मगुरुओं (बौद्ध भिक्षु), बौद्धिकों और व्यापारियों का समुदाय था। सबसे नीचे वहाँ के किसान थे। वियतनाम में प्रशासकों का पद वंश पर आधारित न था, इसी प्रकार धर्मगुरुओं का भी। सामान्य किसानों के होनहार और प्रतिभाशाली लड़के प्रशासन के उच्च पद तक पहुँच सकते थे। वियतनाम में मुख्यतः बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित था और सामाजिक आचरण कन्फ्यूशियस की मर्यादा पर चलता था।

आगामी विजेताओं ने वियतनाम के पारम्परिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर दिया। पहले के राष्ट्रवादी प्रशासक या तो हटा दिये गये या उन्हें जेलों में बन्दी बना दिया गया। उनके बदले प्रशासन के लिए फ्रांसीसियों ने ऐसे लोगों को चुना जो अपने हित के लिए राष्ट्र विरोधी हो सकें।

फ्रांसीसियों की इस नीति के कारण वियतनाम के राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों में आपसी कशमकश शुरू हो गयी। उसका असर इतना गहरा हुआ कि पहले के प्रशासकों तथा नये प्रशासकों के परिवारों के बीच विवाह-जैसे सामाजिक सम्बन्धों की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

सन् १९४६ में वियतनाम के नेता हो ची मिन्ह के नेतृत्व में फ्रांसीसियों के खिलाफ राष्ट्रीय युद्ध छिड़ा। उस युद्ध में वियतनाम के देश भक्तों ने हो ची मिन्ह का भरपूर साथ दिया। राष्ट्र विरोधी तत्त्व फ्रांसीसियों के साथ रहे। द्वितीय महायुद्ध से जर्जर फ्रांस को वियतनाम का युद्ध भारी पड़ने लगा। विवश होकर फ्रांस ने हो ची मिन्ह से सुलह की। सन् १९५४ में जिनेवा में संधि हुई। उस संधि के अनुसार वियतनाम तत्काल दो भागों में विभाजित कर दिया गया। उत्तर वियतनाम में हो ची मिन्ह के समर्थकों की सरकार बनी। दक्षिण वियतनाम का शासन उन्हीं लोगों के हाथ में रहा जो फ्रांसीसियों-द्वारा नियुक्त थे।

सन् १९५५ में अमरिकन लोग दक्षिण वियतनाम पहुँचे। उस समय वहाँ न्गो दीन दीम सत्तारूढ़ था। न्गो दीन दीम के समर्थक मूलतः राष्ट्र विरोधी तत्त्वों के प्रतिनिधि थे। नये सन्दर्भ में उन्होंने अपने को कम्युनिस्ट विरोधी घोषित किया। हो ची मिन्ह मूलतः राष्ट्रीय नेता थे। उन्होंने साम्यवाद के कुछ प्रगतिशील सिद्धान्तों को अपनाया इसलिए उन्हें तथा उनके समर्थकों को कम्युनिस्ट मानना आसान था।

वियतनाम-युद्ध के बन्दी-सैनिक

अमेरिका पर न्गो दीन दीम की कम्युनिस्ट विरोधी भूमिका का असर हुआ। अमेरिका ने उसे आर्थिक, राजनीतिक सहयोग तो दिया ही साथ-साथ बाह्य आक्रमण के समय सैनिक-सरक्षण देने की भी रुचि की।

दीम की सरकार ऊपर से कम्युनिस्ट विरोधी होने का स्वाग करती थी पर भीतर भीतर वह अपने क्षेत्र में लोकतान्त्रिक शक्तियो को कुचलने की चेष्टा में थी। फ्रासीसियो-द्वारा नौकरशाही और सेना-आधारित जो ढाँचा बनाया गया था उसे ही वह चलाती जा रही थी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि फ्रासीसियो के शासन काल म जो लोग फ्रासीसी हुकूमत का विरोध करते थे वे दीम का विरोध करने लगे।

सन् १९५८ में वियतकाग (वियतनाम का राष्ट्रीय संगठन) ने दक्षिण वियतनाम में स्थापित दीम की सत्ता के खिलाफ छापामार लडाई शुरू की। उस समय सैनिक-दृष्टि से वे बहुत कमजोर थे। उन्होने चीन-द्वारा प्रदर्शित राजनीति और छापामार युद्ध-पद्धति अपनायी। अपना राजनीतिक प्रभाव बढाने के लिए वियतकाग ने दक्षिण वियतनाम के लोकतान्त्रिक तत्त्वो को अपना समर्थन दिया। दीम की सत्ता का आधार यदि लोकतान्त्रिक होता तो वियतकाग को दक्षिण वह में सफलता न मिलती जो उसे मिलती गयी।

दीम के प्रशासन से विक्षुब्ध होकर उसी के समर्थको ने उसका अन्त कर दिया। दीम के बाद दक्षिण वियतनाम की सेना के ऊँचे अधिकारियो में से ही कोई-न-कोई सत्ता रूढ होता रहा। जैसे जैसे समय बीतता गया वियतकाग की राजनीतिक और सैनिक शक्ति सगठित होती गयी। दक्षिण वियतनाम लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति से दूर हटता गया। आज भी वहा यही वस्तु स्थिति है।

अमेरिका का दृष्टिकोण

वियतनाम-युद्ध को अमेरिका साम्यवादी विस्तार-नीति का एक अग्रिम मोर्चा मानता है। चूँकि उत्तर वियतनाम म कम्युनिस्ट शासको की सत्ता है इसलिए चीन और रूस उसकी भरपूर सहायता कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि दक्षिण वियतनाम अकेला छोड दिया जाय तो वह केवल अपने बूतेपर वियतकाग के षडयन्त्र और आक्रमण का सामना नही कर सकता। दक्षिण वियतनाम के पराजित होने पर थाईलैण्ड, कम्बोडिया और बरमा-जैसे गैर कम्युनिस्ट देशो की भी वही हालत होगी जो आज वियतनाम की हो रही है। इसलिए वियतनाम के युद्ध का असली कारण साम्यवाद और विशेष रूप से चीनी साम्यवाद है। उसका वियतनाम म ही डटकर मुकाबला किया जाना चाहिए। इसीलिए

अमेरिका अपनी पूरी सैन्य-शक्ति के साथ वियतनाम-युद्ध में शरीक है। चीन तेजी से आणविक शक्ति बनना चाहता है। आणविक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होने पर अमेरिका से टक्कर लेने की उसकी शक्ति बढ़ जायगी। इसीलिए आज चीन वियतनाम-युद्ध में अमेरिका का सीधे मुकाबला नहीं करना चाहता। अमेरिका चीन की इस कमजोरी को भाँप चुका है।

जब कैनेडी अमेरिका के राष्ट्रपति थे और ख्रुश्चेव रूस के प्रधान मंत्री उस समय क्यूबा में रूसी क्षेप्यास्त्रों का अड्डा बनाये जाने की सूचना अमेरिका को मिली। राष्ट्रपति ने फौरन क्यूबा की नाकेबन्दी करने की घोषणा की। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने रूस का सामना करने की राष्ट्रीय तैयारी भी रखी। ख्रुश्चेव को झुकना पड़ा और क्यूबा से अपने क्षेप्यास्त्रों का अड्डा हटाना पड़ा। क्यूबा की घटना के बाद रूस की वैदेशिक नीति आक्रामक होने के बदले सुरक्षात्मक हो गयी। अमेरिकी नायकों की पैनी निगाह में चीन की आक्रामक नीतियों का मुंह तोड़ने के लिए वियतनाम एक मोर्चा है। यदि वियतनाम युद्ध में चीन प्रत्यक्ष रूप से भागीदार बनना है तो अमेरिका को बमबारी-द्वारा चीन के औद्योगिक और सामरिक महत्व के केन्द्रों को नष्टभ्रष्ट करने का एक बहाना मिलेगा। आज से कुछ वर्षों बाद जब चीन अपने आणविक अस्त्रों का भरपूर विकास कर चुकेगा उस समय ऐसी स्थिति नहीं रहेगी। उस समय चीन भी अमेरिका पर प्रहार करने की क्षमता का उपयोग करेगा जो आज नहीं है। चीन इस स्थिति में न पहुँचने पाये इसलिए अमेरिका वियतनाम-युद्ध में उसे घसीट लाने को इच्छुक है।

रूस का दृष्टिकोण

उत्तर वियतनाम में साम्यवादी शासन है। अमेरिकी हस्तक्षेप और धुआँधार बमबाजी के कारण यदि उत्तर वियतनाम दक्षिण वियतनाम तथा अमेरिका के साथ किसी प्रकार का युद्ध विराम-समझौता करने को विवश होता है तो विश्व में साम्यवाद की प्रतिष्ठा गिरेगी। साम्यवादी चीन इसका लाभ उठाकर एशिया और दुनिया के अन्य देशों में यह प्रचार करेगा कि रूस अब दरअसल साम्यवादी सिद्धान्तों का संरक्षक नहीं रह गया। वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप के होते हुए भी रूस ने उत्तर वियतनाम के बचाव के लिए कोई कारगर उपाय नहीं किया। चीन के इस प्रचार का एशिया तथा दुनिया के साम्यवादी देशों पर बुरा असर पड़ेगा। वे रूस को अपना अगुवा मानने के बदले चीन की ओर आकर्षित होंगे जो अमेरिका-जैसे देशों के प्रति कड़ी नीति बरतने का हिमायती है। साम्यवादी देशों के नेतृत्व के प्रश्न को लेकर रूस और चीन के बीच यूँ ही आपसी प्रतिस्पर्धा चल रही है। वियतनाम में यदि हो ची मिन्ह को घुटने टेकने पड़ते हैं तो साम्यवादी देशों पर इसकी अच्छी प्रतिक्रिया नहीं होगी। वे रूस के बदले चीन की ओर नेतृत्व के लिए झुकेंगे। इस स्थिति को टालने के लिए रूस उत्तर वियतनाम को भारी युद्ध-सामग्री की सहायता दे रहा है और जैसे जैसे जरूरत बढ़ेगी उसकी युद्ध-सामग्री की सहायता का परिमाण भी बढ़ेगा। रूस के सामने इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं बचा है।

चीन का दृष्टिकोण

चीन के साम्यवादी नेता माओ त्से तुंग गुरिल्ला युद्धनीति के आचार्य हैं। गुरिल्ला युद्ध नीति के सफल प्रयोग-द्वारा उन्होंने चीन की कोमिंतांग सरकार का तख्ता उलटकर पूरे चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना की। गुरिल्ला युद्ध-नीति को साम्यवादी विचार-धारा के साथ जोड़कर उन्होंने साम्यवाद के प्रसार प्रचार की एक कुशल योजना बना ली है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों की परिस्थिति में चीन की योजना अत्यन्त कारगर सिद्ध होती है। एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति लगभग वही है जो सैकड़ों वर्ष पहले से चली आ रही है। प्रायः सभी अविकसित देशों में सामन्तयुग की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था प्रचलित है। थोड़े से लोगों के पास खेती की भूमि और उद्योग-व्यवसाय के अन्य साधनों का स्वामित्व केन्द्रित है। देश की अधिकांश जनता कोरी मेहनत मजदूरी की कमाई पर जीवन बिताती है। वैधानिक लोकतंत्र की स्थापना होने पर साधनहीन जनता को वोट देने का अधिकार मात्र मिलता है। किन्तु

वैधानिक लोकतन्त्र के द्वारा होनेवाले कार्यक्रमों से सामान्य जनता की परिस्थिति में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हो पाता। हाँ, जिनके पास खेती की भूमि और उद्योग के साधनों का स्वामित्व होता है वे अवश्य लोकतन्त्र की छत्रछाया में फलते-फूलते और मजबूत होते हैं। जैसे-जैसे देश में उद्योग धन्धे बढ़ते हैं अमीर और अधिक अमीर होते जाते हैं, भूमिहीन किसान तथा उद्योगहीन मजदूरों की स्थिति बिगड़ती चली जाती है। ऐसे देशों में साम्यवाद के प्रवेश के लिए माओ ने यह नीति निर्देश किया है कि साम्यवादी दल भूमि के पुनर्वितरण और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का सन्देशवाहक बने। किसानों को यह आश्वासन दिया जाय कि साम्यवादी शासन होने पर खेती की कुल भूमि खेती करनेवालों में मुफ्त बाँट दी जायगी तथा राष्ट्र के सभी उद्योगों में से पूँजीपतियों का स्वामित्व मिटा दिया जायगा। वे नाजायज शोषण करके जो लाखों करोड़ों का मुनाफा कमाते हैं वह समाप्त होगा। मेहनत करके जीनेवालों की इज्जत बढ़ेगी। उनकी हालत सुधरेगी।

साम्यवादी दल इस प्रकार की नीति का अगुवा बनकर स्थानीय जनता को छापामार युद्ध की दीक्षा देता है। चीन की सरकार छिपे तौर पर लड़ाई के छोटे पैमाने के हथियार मदद में देती है। छापामार सैन्य शिक्षा के लिए कुछ अनुभवी प्रशिक्षकों का प्रबन्ध भी कर देती है। प्रत्यक्ष रूप से चीन की सेना को किसी आक्रमक कार्रवाई में भाग नहीं लेना पड़ता। यदि किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप के कारण चीन को सेना भेजनी भी पड़े तो यह वालंटियरों के नाम पर उन्हें भेज देता है। कोरिया के युद्ध के समय चीन ने यही किया था।

वियतनाम के युद्ध में चीन ने यही नीति अपना रखी है। उत्तर वियतनाम को वह छोटे पैमाने के हथियारों की मदद देता है। उत्तर वियतनाम अपने छापामार सैनिकों-द्वारा दक्षिण वियतनाम और अमेरिका की सैन्य-शक्ति से लोहा ले रहा है। अमेरिका के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप और भीषण बमबाजी के बावजूद उत्तर वियतनाम की सरकार अचल और अडिग है। उसकी छापामार युद्ध-नीति का दक्षिण वियतनाम की जनता पर दिनोदिन प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

दुनिया के तटस्थ देशों का दृष्टिकोण

भारत, मिस्र, युगोस्लाविया, बरमा, लंका और मलेशिया जैसे तटस्थ नीति पर चलनेवाले राष्ट्र बड़े असमंजस में हैं। वे देख रहे हैं कि वियतनाम का युद्ध धीरे-धीरे नाजुक स्थिति की ओर बढ़ता जा रहा है। अमेरिका उत्तर वियतनाम को युद्ध-विराम-समझौते की बातचीत के लिए विवश करना चाहता है। इसके लिए अमेरिकी विमानों-द्वारा उत्तर वियतनाम के औद्योगिक और सैनिक महत्व के केन्द्रों पर भीषण बमबाजी की जा रही है। जैसे जैसे अमेरिका का सैनिक दबाव बढ़ रहा है वैसे-वैसे रूस की चिन्ता भी बढ़ रही है। उत्तर वियतनाम को रूस विमानों और क्षेप्यास्त्रों की सहायता दे रहा है और अधिकाधिक सहायता देने के लिए विवश हो रहा है। स्थिति यदि बिगड़ती गयी तो एक दिन उसे प्रत्यक्ष रूप से भी वियतनाम-युद्ध में कूदने का निर्णय लेना पड़ सकता है जैसा कि उसे 'स्वेज नहर' के युद्ध में करना पड़ा था। वह स्थिति विश्व शान्ति के लिए भयानक बन जायगी।

अमेरिकी हस्तक्षेप का परिणाम

अमेरिकन राजनीतिज्ञों ने दक्षिण वियतनाम के सत्ताधारियों के विरोधी दल पर ही अपनी नीति निर्धारित की। उन्हें वियतकांग की सफलता के पीछे कम्युनिस्ट शक्तियों की छिपी सहायता का हाथ दिखायी पड़ा। जैसे जैसे दक्षिण वियतनाम में वियतकांग का आक्रमण जोरदार होता गया वैसे-वैसे अमेरिका को अपनी सैनिक-शक्ति में वृद्धि करनी पड़ी।

अमेरिकी सैनिकों की लाखों की संख्या, जो ४ लाख होनेवाली है, वियतनाम की जनता के ऊपर एक भारी अभिशाप है। वियतनाम-जैसे छोटे से देश की सामाजिक व्यवस्था पर इन सैनिकों की उपस्थिति का दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है। एक ओर युवक-पीढ़ी युद्ध में समाप्त होती जा रही है दूसरी ओर अमेरिकी सैनिकों और वियतनाम की महिलाओं के संसर्ग से एक ऐसी नयी पीढ़ी जन्म ले रही है जो वियतनाम के लिए एक नयी सामाजिक समस्या बन रही है।

दक्षिण वियतनाम में आज जो वर्ग शासनारूढ है उसे लोकतांत्रिक शासन में दिलचस्पी नहीं है। वह डरता है कि लोकतंत्र में उसका पद छिन जायगा। अमेरिका की उपस्थिति का इसी वर्ग को सबसे अधिक लाभ मिलता है। अमेरिका दक्षिण वियतनाम को सैनिक-सहायता के अलावा भारी मात्रा में आर्थिक सहायता भी देता है। वह सहायता गरीब और साधनहीन जनता के पास नाममात्र के लिए पहुँचती है। नगरों और देहातों के सम्पन्न और भरे-पूरे लोग ही उसका अधिकांश भाग हड़प लेते हैं। इसीलिए वियतनाम-युद्ध के प्रति सामान्य जनता की कोई दिलचस्पी नहीं है। अमेरिकी सैनिकों को इस बात की बड़ी शिकायत रहती है कि वे वियतनाम की स्वतंत्रता के लिए अपना खून बहा रहे हैं और वहाँ की जनता को युद्ध के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं है।

उत्तर वियतनाम
क्षेत्रफल—६३,३६०
आबादी—१ करोड़ ७० लाख

दक्षिण वियतनाम
६५,७२६
१ करोड़ ५० लाख

आस्ट्रेलियन पत्रकार श्री डेनिस वार्नर दक्षिण पूर्वी एशिया की परिस्थितियों के अच्छे जानकार माने जाते हैं। उनकी राय है— दक्षिण पूर्व एशिया को आज जिस चुनौती का मुकाबला करना पड़ रहा है उसकी शक्ति हथियारों में नहीं बल्कि मुख्यरूप से उसकी राजनीतिक अपील में है।

वियतकांग मात्र-छापामार सैनिक-संगठन नहीं है। वह एक नयी राजनैतिक शक्ति है जो स्थानीय जनता को स्थापित सत्ता के विरुद्ध विद्रोह के लिए उकसाता है, संगठित करता है, हथियारों से लैस करता है और क्रांतिकारी सैनिक-सत्ता की कड़ी से जोड़ देता है।

वियतकांग स्थानीय परिस्थितियों का भरपूर लाभ उठाता है। उसके हथियार अधिकतर अमेरिकी सेनाओं से छीनकर प्राप्त किये जाते हैं। वियतकांग अपनी आक्रामक कारवाई इस ढंग से आयोजित करता है कि अमेरिकी सैनिक और बदनाम सरकारी अधिकारियों को अधिक-से-अधिक क्षति उठानी पड़े। सामान्य जनता के मन पर उसका गहरा प्रचारात्मक प्रभाव पड़ता है।

दक्षिणी वियतनाम के सरकारी अधिकारी जनता पर अपना कैसा असर डालते हैं इसका भी डेनिस वार्नर ने विवरण दिया है— दूर देहात में जहाँ लोग मिट्टी और फूस की झोपड़ियों में रहते हैं एक वर्दीधारी अधिकारी सरकार का प्रतीक बनकर जाता है जो हमेशा गाँव में कुछ-न-कुछ वसूल करने के लिए आता है—कभी अनाज कभी धन-जन और कभी ऐसे लोगों को ढूँढने के लिए जिन पर वियतकांग समर्थक होने का सन्देह हो।[१]

वार्नर ने आगे लिखा है कि जब निहत्थे लोगों को बगैर कुछ पूछे और सफाई देने का मौका दिये गोली मार दी जाती हो और अपराधी के साथ-साथ निर्दोष लोगों को भी सेना के जुल्म का शिकार होना पड़ता हो तो

बन्दूक लेकर पहुँचनेवालों का लोग डटकर विरोध क्यों न करें ?

वार्नर ने चेतावनी दी है—"वियतकांग का आक्रमण एक नये ही किस्म का आक्रमण है जिसका सामना पश्चिमी देशों की रणनीति से नहीं किया जा सकता।

जैसे-जैसे वियतनाम में अमेरिका की सैनिक कार्रवाई का दायरा फैल रहा है वैसे-वैसे विश्व का जागरूक जनमत अमेरिका की नीति के खिलाफ होता जा रहा है। स्वयं अमेरिका में ऐसे जागरूक नागरिकों की संख्या बढ़ती जा रही है जो अमेरिकी युद्ध-नीति के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द कर रहे हैं और लोकतांत्रिक ढंग से विरोध-प्रदर्शन भी कर रहे हैं। वे पूछते हैं—"हम वियतनाम की किस 'स्वतंत्रता' की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं? सवाल यह नहीं है कि हम किस सरकार को मदद पहुँचा रहे हैं, बल्कि सवाल यह है कि कम्युनिस्ट आक्रमण के मुकाबले के लिए हम किस 'वर्ग' और किस 'शक्ति' को खड़ी कर रहे हैं? यानी हम कम्युनिस्टों के मुकाबले के लिए किस प्रकार की समाज-रचना पैदा कर रहे हैं?"[2]

वियतनाम-युद्ध में वियतनामी जनता की हर प्रकार से दुर्गति हो रही है। एक ओर वियतकांग छापामार सैनिक उनसे सहायता लेना चाहते हैं, दूसरी ओर अमेरिका की छत्रछाया में दक्षिण वियतनामी सैनिक उनपर वियतकांग-समर्थक होने की आशंका करके तरह-तरह के अमानुषिक अत्याचार करते हैं। दिन में सरकारी सैनिकों का और रात में वियतकांग छापामार सैनिकों का भय।

वियतनाम-युद्ध समाप्त करने की दृष्टि से भारत की ओर से प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी ने सुझाव रखा है, उसकी मुख्य शर्तें ये हैं—

- अमेरिका उत्तर वियतनाम पर की जानेवाली बमवर्षा की कार्रवाई फौरन बन्द कर दे।
- वियतनाम के दोनों हिस्सों में गोलाबारी और लड़ाई बन्द हो।
- उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम सीमा-क्षेत्र पर संयुक्त अफ्रीकी एशियाई फौजी टुकड़ी-

कैदी के पेट में छुरा भोंकते हुए

द्वारा पहरा देने की व्यवस्था की जाय। किसी ओर से शान्ति भंग न हो।

- वियतनाम की समस्या के समाधान के लिए जिनेवा के अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण आयोग की बैठक बुलायी जाय।

अमेरिका के शान्तिवादी नेताओं की माँग है कि अमेरिका वियतनाम की हवाई बमवर्षा की कार्रवाई फौरन बन्द करे और अपनी ओर से एक तारीख तय करे जिसके बाद वह वियतनाम से अपनी फौजें हटा लेने की घोषणा करे। अमेरिकी सरकार अपनी ओर से स्पष्ट कर दे कि वह वियतनाम में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना होने पर सरकार को पूरी सहायता देगी।

वियतनाम की समस्या आज विश्व की सबसे जटिल समस्या बन गयी है। इसका कोई समाधान निकल आने का अर्थ होगा विश्व-युद्ध के खतरे की सम्भावना का टलना। इससे रूस और अमेरिका के आपसी सम्बन्ध सुधरेंगे। आज ये ही दोनों विश्व की महान् शक्तियाँ हैं। युद्ध की सम्भावना जितनी टलेगी, उतनी ही आणविक निःशस्त्रीकरण की अनुकूलता पैदा होगी।

आणविक निःशस्त्रीकरण ही विश्व शान्ति की दिशा में बढ़ाया गया सबसे ठोस कदम होगा। उसके बाद स्थायी विश्व-शान्ति सम्भव होगी; मानवीय विकास का नया अध्याय शुरू होगा। वस्तुतः आज वियतनाम का युद्ध एक विश्व-समस्या है। ●

---

1. The last Confucian—By Denis Warner Macmillan Company—Newyork.
2. Marshal Sahlins—Distruction of Conscious in Vietnam—Dissent. Jan—Feb 1966

अनुक्रम

●

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १५वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

'नयी तालीम' को भेंट विनोबा-जयन्ती, ११ सितम्बर '६६ के अवसर पर

लोक-शिक्षक

नयी तालीम, सितम्बर, '६६
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल. १७२३

अभिनव-उपहार

अकसर कहा जाता है कि भारतीय लोकतंत्र बहुत ऊँचा है, मूल्यवान है, लेकिन सचाई तो यह है कि आज भी लोकतन्त्र का 'लोक' अत्यन्त उपेक्षित है, निरादृत है और वह कराह रहा है। तीन-तीन चुनावों के बाद भी हमारा 'लोक' वोट की कीमत कहाँ पहचान पाया है? और कीमत न जानने के कारण उसे कितना भारी मूल्य चुकाना पड़ रहा है, इससे कौन अपरिचित है?

वैसे यह सच है कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्र में 'लोकनीति' अब अबूझ नहीं रही है। राजनीति के ऐतिहासिक विकासक्रम में लोकनीति अद्यतन विचार-प्रक्रिया है, जो हमें साम्ययोग तक ले जाती है। लोकतन्त्र में लोकनीति ही चलनी चाहिए, यह विचार सर्वमान्य है। लोकनीति क्या है, इसकी उपयोगिता क्या है, उसका ध्येय क्या है और वह समाज को किस मंजिल से ऊपर उठाती है, इन सब बातों का वैज्ञानिक विश्लेषण **दादा धर्माधिकारी** ने अपनी अभिनव पुस्तक **'लोकनीति-विचार'** में किया है। दादा की शैली तो सरस और मनोहारी है ही। निश्चय ही, आज की विषम परिस्थिति में यह पुस्तक अत्यन्त लाभदायी होगी। इसका मूल्य है मात्र दो रुपये।

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी-१

आवरण मुद्रक—खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २३,५००, इस मास छपी प्रतियाँ २३,५००

गांधी बनाम गांधी

युद्धरहित दुनिया के लिए शिक्षा

शिक्षकों द्वारा समाज की नवरचना

भारतीय शिक्षा आयोग   एक मूल्यांकन

अक्तूबर, १९६६

राष्ट्रीय शिक्षा में —

१ शिक्षा मातृभाषा में दी जाय।

२. शिक्षा और घर की स्थिति के बीच आपस मे मेल रहे।

३ शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिमसे ज्यादातर लोगो की जरूरतें पूरी हो।

४ प्राथमिक शाला के शिक्षक, ठेठ पहली कक्षा से चरित्रवान होने ही चाहिए।

५ शिक्षा मुफ्त दी जानी चाहिए।

६. शिक्षा की व्यवस्था पर जनता का अंकुश होना चाहिए।

गांधी बनाम गांधी

कुछ लोग बड़े दुख के साथ कहते हैं कि गांधी का यह देश गांधी को भी भूल गया। गांधी क्या गये देश से सत्य और इमान चला गया। और कुछ लोगो को सन्तोष होता है कि अच्छा हुआ गांधी गय–शरीर से तो गये ही, देश के मन से भी चले गये। एक बोझ उतरा। अब देश आज के जमाने के साथ कदम मिलाकर तेजी से चल सकेगा।

एक दिन मेरे एक मित्र ने विनोद में कहा–'इस देश का बड़ा कल्याण होगा अगर सरकार यह आदेश निकाल दे कि जो कोई गांधी का नाम लेगा, उनका चित्र रखेगा, मूर्ति बनायेगा, गांधी पर किताब लिखेगा, वह अपराधी समझा जायगा, और उसे जेल की सजा मिलेगी।' मैंने पूछा–'इससे क्या भला होगा?' वह बोले–'भला यह होगा कि इस देश में घर-घर में गांधी दुबारा जी उठेंगे। आज तो हालत यह है कि यह देश न गांधी को छोड़ पा रहा है, न दिल खोलकर उन्हें स्वीकार ही कर पा रहा है।'

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ३

लोग पूछते हैं–अपने ही देश के नहीं, विदेशों से आनेवाले लोग तो बहुत जोर देकर पूछते हैं कि जिस देश ने गांधी को राष्ट्रपिता माना उसके जीवन में गांधी कहां है? कोई भी बात गांधी की बतायी हुई चल रही है? अगर यहां के जीवन पर उनका थोड़ा भी प्रभाव बचा होता तो देश का यह हाल होता?

इन प्रश्नों के उत्तर में अकसर चुप हो जाना पडता है। लेकिन थोडा सोचने पर कुछ दूसरी बातें भी सामने आती हैं। सरकार के नेता देश-विदेश में जहां, जब बोलते है, गाधी का नाम जरूर लेते हैं। सरकार कोई नया कार्यक्रम शुरू करती है तो कोशिश रहती है कि २ अक्तूबर को शुरू हो। चुनाव में तो गाधी के नाम की धूम मच जाती है। गाधी के नाम में वोट गिना लेने का जादू जो है! काग्रेस कहती है कि गाधी की विरासत उसके पास है। डा० लोहिया कहते हैं कि गाधी के सत्याग्रह को उन्होंने जितना अपनाया है, दूसरे किसी ने नही अपनाया। कम्यूनिस्ट लोगो को भी दुख है कि मौजूदा नेतृत्व में देश गाधी के आदर्शो से गिर गया। सरकार और राजनीतिक दलों से अलग देश के करोडो करोड लोग आह भरे शब्दो में समय-समय पर कह उठते हैं–'अगर गाधीजी होते तो हम इस तरह अनाथ न होते!' दुखी जनता की आह को आन्दोलन बनाने की शक्ति आज किसमें है? दरिद्र को नारायण मानकर उसकी उपासना करनेवाला आज कौन है? नेता बोलते है, बहुत बोलते है, लेकिन अपने दल की ही बात कहते हैं, जनता के दिल की बात कौन कहता है? सत्य भी दल का, जाति का, सम्प्रदाय का, भाषा का हो गया है। कौन है जो सत्ता का भय और सम्पत्ति का मोह छोडकर सत्य, कठोर सत्य, केवल सत्य, सबका सत्य, कहे?

जब देश में सभी (अपने-अपने लिए) गाधी को याद कर रहे है तो उन्हें भूला कौन है?

बात कुछ दूसरी ही है। देश गाधी को सचमुच भूला नही है। वह देखता है कि एक का गाधी दूसरे के गाधी के खिलाफ खडा हो गया है। गाधी की गाधी से लडाई छिड गयी है। काग्रेस का गाधी एक है, सोशलिस्ट का गांधी दूसरा, कम्यूनिस्ट का गाधी तीसरा है, और जनसघ का गाधी इन सबसे भिन्न, कुछ निराला ही है। गरीब के गाधी का अमीर के गाधी से क्या मेल है? और इन सबके गाधी से भिन्न उस विनोबा का गाधी है जो गाधी का आध्यात्मिक शिष्य है और गुरु का अधूरा काम पूरा करने का दावा कर रहा है। एक गाधी सरकारी दफ्तरो की दीवालो पर टगा हुआ है दूसरा 'बन्द' में रेल की पटरी उखाड रहा है, तीसरा देश का शत्रु है, चौथा गांव गांव में जमीन की मालिकी छोडने की प्रेरणा दे रहा है। 'गाधीजी की जय' के नारों के साथ और काम तो होते ही है, जाति की जाति से, धर्म की धर्म से, भाषा की भाषा से, क्षेत्र की क्षेत्र से लडाइयां भी हो रही है। सचमुच, आज भारत में गाधी के कितने रूप हैं!

अगर गाधी की आत्मा कहीं स्वर्ग से देख सकती तो इन अनेक रूपो में से किसे अपना मानती? पहचान भी सकती कि ये सचमुच उसके ही रूप है?

गाधी बनाम गाधी की यह कशमकश शुभ है या अशुभ ? शुभ हो या अशुभ, कम से कम इतना तो है ही कि देश गाधी को भूला नहीं है, गाधी को ढूंढ रहा है। कई शक्लो में पहचानने की कोशिश कर रहा है कि असली गाधी कौन है। आखिर, माना भी जाय तो किस गाधी को ? दल के गाधी को, दफ्तर के गाधीजी, या दिल के गाधी को ?

गांवो की जनता हजारो की सख्या में आती है, सन्त की बातें सुनती है, और जाते समय यह कहती जाती है कि गाधीजी भी इसी तरह की बातें कहते थे। पता नहीं कौन-सा प्रभाव काम करता है, महात्मा की याद का या सन्त की बात का, कि सैकडो नहीं हजारो गांवो में जमीन की मालिकी मिट चुकी। ब्लाक के ब्लाक हवा बदल रही है–तेजी से बदल रही है। नयी आशा दिखाई दे रही है, नया विश्वास जग रहा है। लगता है कुछ होकर रहेगा। कल के गाधी और आज के विनोवा में कही कोई मेल है जो दिलो को छू रहा है।

गाधीजी ने कई बार कहा था कि अगर भारत की जनता केवल 'नहीं' कहना सीख जाय तो क्या नहीं हो सकता। तब अंग्रेजी राज को भगाना था। विनोबा आज सिखा रहे है कि हम केवल 'हां' कहना सीख जायें तो अब भी बात काबू के बाहर नहीं है, सब कुछ हो सकता है। अब किसी को भगाना नहीं है, मालिक-मजदूर-महाजन सबको मुक्ति की घोषणा करनी है और मिलकर अपना अपना गांव बनाना है, नयी बुनियादो पर एक नये समाज की रचना करनी है। गाधीजी योजना दे गये थे, विनोबाजी केवल उसकी साधना करा रहे है।

मुक्ति की आवाज अभी शहरो और अखबारो तक नहीं पहुँची है, अभी उसने गरीबो और गांवो म गूंजना शुरू किया है। लेकिन गूज जोर पकड रही है। परखने-वाले परख रहे है कि इस गूंज में गाधी की वही पुरानी परिचित ध्वनि है।

वास्तव में हम गाधी को नहीं देश को ही भूल बैठे थे। अब देश के हृदय में छिपा हुआ गाधी वैभव से दूर झोपडियो में प्रकट हो रहा है।

–राममूर्ति

शिक्षकों-द्वारा समाज की नवरचना

•

विनोबा

[६ अगस्त, १९६६ को समस्तीपुर अनुमण्डल (बिहार) के शिक्षकों के बीच विनोबाजी का जो भाषण हुआ, वह संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत है। विनोबाजी ने कहा है कि भारतवर्ष को शिक्षकों ने ही बनाया है। आचार्यों ने समाज का जो परिवर्तन किया उस पर राज्यसत्ता का कोई असर नहीं था, राज्यसत्ता आयी और गयी। —सं०]

मुझसे पूछा जाय कि 'आपका कौन सा धंधा है,' तो मैं यही कहूँगा कि 'मेरा धंधा शिक्षक का है।' तेरह साल तक पदयात्रा चली। उसमें अगर मैंने कोई काम किया तो शिक्षक और विद्यार्थी का ही। जो शिक्षक होता है वही विद्यार्थी भी होता है। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थी दोनों एक ही हैं। १३ साल में आप लोगों ने कितने व्याख्यान दिये होंगे? साल भर में ८०० व्याख्यान आप अवश्य देते होंगे। बाबा ने व्याख्यान भी औसतन हर साल एक हजार के हिसाब से इन तेरह वर्षों में १३००० हो गये होंगे। अब आप ही बताइए कि मैं शिक्षक हूँ या नहीं? जो हर साल हजार व्याख्यान करता है वह शिक्षक ही कहा जायगा।

इसके अलावा मैं विद्यार्थी भी हूँ। कारण, अब तो यह वृद्धावस्था ही मानी जायगी, और वृद्धावस्था में लोग विद्याभ्यास नहीं करते हैं, लेकिन इन तेरह वर्षों में भी मैंने ८-१० नयी भाषाओं का अध्ययन किया। जर्मन भाषा का अध्ययन हुआ, चीनी भाषा का थोड़ा-सा हुआ, जापानी का काफी हुआ और हिन्दुस्तान की अन्य भाषाओं का भी अध्ययन हुआ। इनके अलावा एस्पराण्टो भाषा भी सीखी।

नयी तालीम नित्य नूतन, सनातन

नयी तालीम पर मेरी एक किताब है—'शिक्षण विचार'। हिंदुस्तान की बहुत सारी भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है। आपके पास भी वह पहुँची ही होगी। उसमें मैंने तालीम के विषय में कुछ विचार रख दिये हैं। एक विचार यह बताया है कि नयी तालीम को नित्य नयी तालीम बनाना है। अगर वह सन् १९३७ में बने अपने सिलेबस (पाठ्यक्रम) वगैरह के शिकंजे में ही जकड़ जाती है और आगे नहीं बढ़ती—३० साल के बाद आज '६६ में भी उसी ढाँचे में नयी तालीम के बारे में लोग सोचते रहे—तो नयी तालीम नाम मात्र की 'नयी' होगी, वास्तव में वह पुरानी पड़ जायगी। आप देख रहे हैं कि ३० साल में विज्ञान कितना बढ़ा है, कहाँ से कहाँ चला गया है। उस हालत में नयी तालीम का सार-तत्त्व तो कायम रहे, लेकिन बाहरी रूप को नित्य नया रूप मिलता रहना चाहिए। इसीलिए नयी तालीम के मानी है नित्य नयी तालीम।

मैं आपको सुनाऊँ। शास्त्रकारों ने सनातनधर्म की व्याख्या की है। हमारा भारतीय धर्म सनातनधर्म है ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। पूछा गया कि 'सनातन धर्म यानी क्या?' तो शास्त्रकारों ने उसकी व्याख्या

कर दी : 'सनातनों नित्य नूतनः' अर्थात् सनातन यानी नित्य-नूतन। जो परिस्थिति के अनुसार नया रूप धारण कर सके, वही सनातन रहेगा। जो समाज पुराना रूप पकड़े रखे और परिस्थिति जानते हुए भी नया रूप लेने से इनकार करे, वह समाज नहीं टिकेगा।

ज्ञानेश्वर महाराज ने ज्ञानेश्वरी नाम का एक ग्रन्थ लिखा है जिसके आरम्भ में शिव पार्वती-संवाद लिया है। पार्वतीजी शिव से बातें कर रही हैं। पार्वती यानी माया देवी। वह भगवान शंकर से प्रश्न पूछ रही हैं—"भगवन् गीता का स्वरूप क्या है?" शंकर जवाब देते हैं—'नित्य नूतन हे गीतातत्त्व'। 'यह जो गीता-तत्त्व है वह नित्य नूतन है।' फिर उपमा देते हैं—"देवो, जैसे का स्वरूप तुझे।"—"हे देवी, पार्वती जैसे तेरा स्वरूप।" माया का स्वरूप तो नित्य नूतन है ही। वह नया नया रूप लेती है। स्वयं साक्षात् अनन्तरूपिणी मायादेवी किसी की पकड़ में नहीं आती। कब क्या रूप लेगी, कह नहीं सकते। इस तरह भगवद्‌गीता का निष्कर्ष भी निश्चित रूप से कहना बिल्कुल असम्भव है, क्योंकि वह नित्य नूतन तत्त्व है।

इसका अनुभव हिन्दुस्तान को भलीभाँति हो गया है। जब से भगवद्‌गीता बनी उसके बाद, अबतक उसकी पचासों टीकाएँ हो गयी हैं। शंकराचार्य निकले, उन्होंने कहा—"संन्यास गीता में परम तत्त्व है।" रामानुज ने कहा—"गीता में परमतत्त्व तो भक्ति है।" इस तरह कोई संन्यास, कोई भक्ति, कोई योग कहते-कहते अनेक टीकाकार हो गये। इस जमाने में भी उसकी टीकाओं की कमी नहीं। गांधीजी, अरविन्द, लोकमान्य तिलक, डा० राधाकृष्णन्, भगवानदास, एनीबेसेन्ट आदि ने लिखा। किसने नहीं लिखा, यही पूछना ठीक होगा, क्योंकि बाबा ने भी लिखा है। पर मजा यह कि हर कोई नया ही तत्त्व बताता है। अगर पुराना ही बताता तो लिखता ही क्यों? इसी का महत्त्व है, कोई नयी चीज उसमें से निकल रही है।

नयी तालीम : पालने से कब्र तक

तो, हमारी तालीम भी अगर सनातन होना, कायम टिकना चाहती है तो उसको नित्य नया रूप लेना होगा। उसके बिना उसका नहीं चलेगा। पहले जब इसका आरम्भ था, तो सोचा गया कि नयी तालीम याने बच्चों की तालीम। यह चन्द दिनों तक चला। लेकिन बाद में गांधीजी ने तो इसका रूप व्यापक करते हुए कहा—"फ्राम क्रेडिल टु ग्रेव" यानी पालने या झूले से कब्र तक की तालीम नयी तालीम है।"

इसका मतलब यह हुआ कि जिस किसी को जीवन के जितने कार्य करने हों, सभी नयी तालीम के आधार पर करने होंगे। आप व्यापार करना चाहते हैं तो नयी तालीम के आधार पर करना चाहिए। खेती करनी हो तो भी वह नयी तालीम के आधार पर होनी चाहिए। जरा सोचिए, कौन ऐसा काम है, जिसमें ज्ञान की जरूरत न पड़ती हो। यहाँ कैसे बैठना चाहिए, यह भी ज्ञान की बात है। भोजन कैसे करना, यह भी ज्ञान की बात है। क्या खाना, यह भी ज्ञान की बात है। कोई भी काम दुनिया में ऐसा नहीं, जिसमें ज्ञान की जरूरत न हो। बिना ज्ञान के काम टिक नहीं सकता और बिना काम के ज्ञान पैदा ही नहीं होता। अगर प्रयोग ही नहीं किया, तो ज्ञान कैसे पैदा होगा? प्रयोग करने से ज्ञान प्राप्त होता है। याने कुछ-न-कुछ काम के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना काम नहीं, यह तो सबका अनुभव है।

शिक्षा की समस्या

लेकिन पंचवर्षीय योजना में कहा जाता है कि अगले पाँच वर्षों में इतने-इतने 'जाब' (काम) दिये जायेंगे। उनके सामने मुख्य सवाल तालीम देना वगैरह है ही नहीं, देश को साफ रखना यह भी नहीं। देश में उत्पादन वगैरह हो, यह भी गौण है। मुख्य सवाल है बेकारों को 'जाब' सप्लाई (धन्धा देने) का। बेकारी हटाने के उनके इस कार्यक्रम में 'इतने-इतने शिक्षकों' को 'जाब' यह भी एक मद है। लेकिन मैं उनसे पूछता हूँ कि आपके शिक्षक शिक्षा के कारखाने में क्या पैदावार करेंगे? तो साफ है कि वहाँ बेकार ही पैदा करेंगे।

मैं तो यह विनोद में कहता हूँ, लेकिन सोलहो आने सत्य है कि इसतरह विद्या का उद्देश्य काम पाना बनाकर कांग्रेस पार्टी की सरकार ने कम्यूनिस्ट तैयार करने

परम्पराओं के अनुसार आज तक चला आ रहा है। आजतक शादियाँ होती है, वे आचार्यों के निर्देश के अनुसार, श्मशान की विधि भी उन्ही के निर्देश के अनुसार होती है। आजतक सन्ध्या-उपासना आदि भी उन्ही के बनाये नियमानुसार आजतक चली आ रही है। यह कैसी शक्ति है, जिसके कारण यह धन सत्ता और सत्ताधारियो का उसपर कोई असर नही रहा ? टेनिसन का एक काव्य है कि "झरना बोल रहा है मनुष्य आ सकते हैं और मनुष्य जा भी सकते है, पर मैं तो सतत चलता, बहता ही रहूँगा—"मैन मे कम एण्ड मैन मे गो, बट आइ गो आन फार एवर।" वैसे ही कई साम्राज्य आये और गये, परन्तु उन आचार्यों के वैचारिक और सामाजिक असर को कोई टाल नही सका।

बच्चा को केवल 'क का कि की' सिखा दिया या पढना लिखना सिखा दिया तो हो गयी पढ़ाने की इति ऐसी बात नही। आजकल तो 'साक्षरता दिवस' का अभियान चला है। अँगूठे की जगह हस्ताक्षर कर पाना, बस इतना ही उसका प्रयोजन है। पर सरकार को कहने को हो जाता है कि हमने हिन्दुस्तान मे इतने प्रतिशत लोगो को साक्षर बनाया। लेकिन ऐसा साक्षर बनाया तो उसका उपयोग क्या है ?

नवसमाज-रचना मुख्य लक्ष्य

मैं कहना यह चाहता था कि आप लोग शिक्षक है तो यह ध्यान में रखे कि आपका काम शिक्षा-द्वारा सारे समाज की रचना बदल देना है। अगर आपने यह मान लिया हो कि आज की समाज रचना मे परिवर्तन किये बिना किसी तरह हमे कुछ करना है—थोडा चरखा वगैरह चलाना है या और कुछ काम करना है—तो लोग आपको बेवकूफ कहेगे। लोग कहेंगे कि 'भाई हमारे विद्यार्थियो को नौकरी करनी पडती है। वहाँ तकली, चरखा आदि के ज्ञान की प्रतिष्ठा नही होती। आप उनको कोल्हू चलाना सिखायेंगे तो नौकरी करने मे उनके कोल्हू चलाने का कोई मूल्य नही है। वहाँ तो ज्ञान का सवाल है। अँग्रेजी अच्छी आनी चाहिए, हिन्दी आनी चाहिए, और इतिहास, भूगोल वगैरह भी आना चाहिए। उस ज्ञान मे जो आठ-आठ घटे समय देगा वह आगे बढेगा, या चार चार घटे कताई-धुनाई-बुनाई कर बाकी समय पढनेवाला ?" अगर आपको उसी मार्ग पर जाना है, अपने लडको से नौकरी ही तलाश करवानी है तो नाहक बच्चो को उद्योग क्यो सिखाते हैं ? क्या उनका समय बरबाद करते हैं ?

इसलिए आपको यह भलीभाँति समझना चाहिए कि हम एक नयी समाज रचना करने मे लगे हैं। हम आज की समाज-रचना को बिल्कुल बदलना चाहते है। हम शान्तिमय क्रान्ति के अग्रदूत है। अगर यह मिशन आपके ध्यान में आ जायगा तो आप नयी तालीम को ऐसा रूप देंगे, जिससे वह सरकार के हाथ से आपके हाथ में आ जाय, नही तो तालीम को बहुत बडा खतरा है।

आज दुनियाभर मे क्या हो रहा है ? शिक्षको-द्वारा विद्यार्थियो का दिमाग सरकारी साँचे में ढालने की कोशिश की जा रही है। लेकिन तब लोकतन्त्र (डेमोक्रेसी) का कोई अर्थ ही नही रहता, जब राष्ट्र में सबका दिमाग एक विशिष्ट साँचे मे ढालने की कोशिश चलती है। मान लीजिए, अगर कम्युनिस्टो का पार्लियामेन्ट मे राज्य होगा तो आपको अपने विद्यार्थियों को लेनिन के गाने सिखाने होगे और यह जो सारी कम्यूनिज्म की 'थ्योरी' है, वह विद्यार्थियो के मन में बैठानी होगी। इस तरह जिस प्रकार की राज्य-व्यवस्था होगी, उसी प्रकार की तालीम बनेगी।

शिक्षा शासन से स्वतन्त्र

अपने देश में न्याय विभाग स्वतन्त्र है। उसपर सरकार का अकुश नही, भले ही उसे सरकार की ओर से ही तनख्वाह मिलती हो। वैसे ही शिक्षा विभाग भी स्वतन्त्र होना चाहिए। उसपर सरकार की सत्ता न रहे। तभी हिन्दुस्तान में शिक्षा पनपेगी। तभी भिन्न भिन्न बुराइयो पर बुद्धि का प्रकाश पडेगा। अन्यथा सारी बुद्धि एक साँचे मे ढाली जाती है। जैसे एक किसान है। बारिश अच्छी होने पर बोने का प्रसग आया तो क्या वह बैल से पूछेगा—'बैल भैया, क्या बोया जाय ?" वहाँ बैल भैया की सलाह नही ली जायगी। उससे कहा जायगा —'यहाँ मुझे चावल बोना है चलो बैल भैया, काम के

िए चलो। क्या बोना है यह तो मालिक तय करेगा। ठीक वैसे ही आज हिन्दुस्तान के सारे शिक्षक बैल भाई हो गए हैं। ऊपर से हुक्म आयगा कि तुम्हें अमुक भाषा इतने घंटे सिखानी है। अंग्रेजी इतने घंटे हिन्दी इतने घंटे यह सारा ऊपर से ही लिखकर आता है। कौन सी किताब सिखाना चाहिए यह भी लिखकर आता है।

आज शिक्षकों की यह हैसियत है। इसमें उनकी बुद्धि का कोई विकास नहीं होता और न राष्ट्र ही बन पाता है। सरकार के इच्छानुसार वह सब कुछ करेगा। सरकार गलत रही तो राष्ट्र गलत रास्ते पर जायगा। और अच्छा रही तो अच्छे रास्ते पर। मैं इसी को बदलना चाहता हूं। पर यह तब बदलेगा जब आप अपनी हैसियत समझेंगे कि हम तो हिन्दुस्तान में समाज रचना बदलने के लिए प्रवृत्त हैं हमारा यह धर्म है यह काम है।

सर्वोदय रिपब्लिक संघ

अब आपके ध्यान में आ जायगा कि बाबा शिक्षक होते हुए भी शिक्षा का स्थूल काम क्यों नहीं करता। वह आज ग्रामदान में क्यों लगा है? ग्रामदान में लोग अपने पाँव पर खड़े होंगे। उस हालत में राजसत्ता आपकी होगी। आप जानते ही हैं ८० प्रतिशत बाट गाँव में हैं और २० प्रतिशत शहर में। लेकिन सरकार पर सत्ता शहर की है गाँव की नहीं। यह क्या? इसलिए कि गाँव विभाजित हैं गाँव में एकता नहीं है। लेकिन अगर ग्रामदान होता है तो सारा ग्राम एक बनता है और सम्मिलित योजना बन सकती है। उस योजना-द्वारा गाँव के लोग अपने पाँव पर खड़े होंगे और सरकार के हाथ में बहुत थोड़ी-सी सत्ता रहेगी। मुख्य सत्ता ग्रामीण स्तर पर आ जायगी—अन्न उत्पादन करना उसका ठीक बटवारा करना गाँव में ग्रामोद्योग शुरू करना न्याय वगैरह गाँव में ही करना गाँव का कोई मुकदमा सरकार में जाने न देना गाँव की रक्षा के लिए नागरिकों की तमना खड़ी करना। संक्षेप में समझ लें कि एक एक गाँव एक स्वावलम्बी राष्ट्र बनता है। जैसे रूस में सोवियत रिपब्लिक संघ है वैसे ही हमें सर्वोदय रिपब्लिक संघ बनाना है। हर गाँव सर्वोदय रिपब्लिक हो और उनका संघ भारत हो यही हमें बनाना है। ●

सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा

●

काका कालेलकर

शिक्षा केवल किताबी ज्ञान के लिए नहीं केवल कौशल्य के लिए भी नहीं बल्कि नौकरी या आजीविका पाने के लिए आजकल शिक्षा ली जाती है वह भी उसका मूल उद्देश्य नहीं है। शिक्षा है जीवन के लिए—व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन के लिए ही शिक्षा होनी चाहिए ताकि जीवन का सम्पूर्ण विकास हो सके। इस विकास में जीवन समझने की बुद्धिशक्ति का भी अन्तर्भाव होता है और जीवन में सफलता पाने के सामर्थ्य का भी।

ऐसी जीवन-केन्द्रित जीवन व्यापी शिक्षा का लेना देना जीवन के द्वारा ही हो सकता है। जीवन जीते जीते जो कुछ भी शिक्षा प्राप्त होती है वही सच्ची शिक्षा है। ऐसी शिक्षा बोझरूप नहीं होती आनंददायक होती है और हजम भी आसानी से होती है। ऐसी शिक्षा पाने का उत्तम साधन कौन सा? दीर्घकाल के चिंतन के अन्त में मैं इस नतीजे पर आया हूं कि आदर्श जीवन के प्रयोग रूप जो आश्रम चलाये जाते हैं उनके द्वारा ही सच्ची और सन्तोषकारक शिक्षा दी जाती है।

ऐसे आश्रमों की कुछ झाँकी हमें गांधीजी के आश्रम

मे मिलती थी। जीवन जीने के प्रयोग को ही मैं आश्रम-जीवन कहूँगा। एक सुबह से लेकर दूसरी सुबह तक का दैनन्दिन जीवन और छः की छः ऋतुओं का जिसमें अन्तर्भाव होता है ऐसा वार्षिक जीवन शिक्षा के लिए और सेवा के लिए व्यतीत करना, यही है आश्रम-जीवन का हेतु। ऐसे जीवन में प्रार्थना से लेकर आहार तक और अध्ययन से लेकर उद्योग-हुनर तक समस्त जीवन आ जाता है।

और, इसमें अनेक धर्म के, अनेक भाषा भाषी स्त्री-पुरुष, बाल बच्चे, बूढे और मरीज भी आ जाते हैं। ऐसे आश्रम में जीना और शिक्षा पाना तथा सेवा करना एक ही बात होती है।

गाधीजी ने अपने जमाने के लिए एक आदर्श आश्रम चलाकर दिखाया। उन्हें सब बातें गौण कर स्वराज्य प्राप्ति के लिए ही जीना था। इसलिए आश्रम के द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय, स्वतन्त्र, व्यापक और समर्थ जीवन का सम्पूर्ण प्रयोग वे न कर सके, तो भी उन्होंने अपने जमाने के लिए उत्कृष्ट काम करके दिखाया।

गाधीजी के सत्याग्रह-आश्रम को देखकर देश में दूसरे अनेक आश्रम तैयार हुए। उनके द्वारा एक विशाल सामाजिक क्रान्ति बडी आसानी से हुई, और देश ने एकदम दो-तीन पुश्त की प्रगति दस-बारह वर्ष के अन्दर करके दिखायी।

लेकिन, अब देश की परिस्थिति बदल गयी है। आदर्श व्यापक हुए हैं। कई सद्गुणों के विकास के लिए अवकाश मिल रहा है और कई छिपे दुर्गुण और कमजोरियाँ प्रकट होकर राष्ट्र-हृदय का अस्वस्थ कर रही हैं।

अब नवजीवन की गहरायी तक पहुँचनेवाली राष्ट्रव्यापी शिक्षा के लिए नये ढग के आश्रमो की जरूरत है।

गाधीजी के जमाने में अन्यान्य नेताओ के द्वारा जो आश्रम के प्रयोग हुए, वे सबके-सब मानो हिन्दुओ के ही आश्रम थे। हिन्दू जीवन पद्धति और हिन्दुओ के रस्म रिवाज तथा आदर्श की ही उनकी प्रधानता थी। इन आश्रमो में सब धर्म के लोगो को आमत्रण था। सबका स्वागत था, लेकिन सबका आकृष्ट वे न कर सके। दोष किसका था यह सवाल प्रस्तुत नहीं है। इन आश्रमो में अन्य धर्मावलम्बी कभी-कभी आये भी सही, लेकिन उन समाजो पर इन आश्रमो का कोई असर हुआ दीख नहीं पडता। चन्द ईसाइयो ने अपने धर्म-प्रचार के लिए अभी-अभी आश्रम खोले हैं लेकिन उनके बारे में हमारा ज्ञान नहीं के बराबर है। सामान्य हिन्दू जनता उनका धर्म-प्रचार का जाल ही मानती है।

गाधीजी के आश्रम की अद्भुत विशेषता यह थी कि उसमें पवित्र सयम और निष्काम सेवा के वायुमण्डल में स्त्री-पुरुषो का निर्भय सहजीवन और दोनो की समानता बिलकुल स्वाभाविक ढग से विकसित होती थी। व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा और सास्कृतिक नव-निर्माण के लिए इससे बढकर प्रेरक वायुमण्डल दूसरा कौन सा हो सकता है?

अच्छी-से-अच्छी शिक्षा-सस्थाएँ छात्रावास का प्रबन्ध करती ही है, लेकिन उनमें केवल विद्यार्थियो की ही प्रधानता होती है। कभी-कभी उनमे फौजी सैनिको के बैरक का वायुमण्डल होता है और कभी-कभी केवल होटलो का, लेकिन हम तो चाहिए विशाल परिवारो का आदर्श वायुमण्डल जिसमे अध्यापक, विद्यार्थी कारीगर और अन्य कर्मचारी एकत्र रह सके।

जिस शिक्षा का हम ध्यान चिन्तन करते हैं उसके लिए आदर्श वायुमण्डल ऐसे ही शिक्षा-आश्रमो में मिल सकेगा, और फिर शिक्षा विषयक सब सवालो का हल ढूँढना आसान होगा। क्या इतने बडे विशाल देश में ऐसे पाँच-दस प्रयोग करने की हिम्मत हम नहीं करेंगे? ●

गांधीजी के सिद्धान्तों पर आधारित

एक शैक्षणिक आयोजन

•

ग० ल० चन्दावरकर

२३ अक्तूबर १९३७ को वर्धा में हुए अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में अध्यक्ष पद से स्वागत-भाषण देते हुए गाधीजी ने शिक्षण की जो योजना सामने रखी थी वही आगे चलकर नयी तालीम के नाम से प्रसिद्ध हुई। गाधीजी ने अपने भाषण में कहा था—"आज जो योजना आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ वह तथाकथित लिबरल एजुकेशन के साथ कुछ हस्तकलाओ का शिक्षण नहीं है। मैं चाहता हूँ कि सारा का सारा शिक्षण किसी न किसी दस्तकारी या उद्योग के माध्यम से दिया जाय।"

सम्मेलन के कुछ दिन पूर्व हरिजन में प्रकाशित एक लेख में उक्त शिक्षण-योजना की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए गाधीजी ने लिखा था—"ऐसा शिक्षण यदि समग्र रूप से देखा जाय तो वह स्वावलम्बी हो सकता है और उसे ऐसा होना भी चाहिए। वास्तव में स्वावलम्बन ही उसका मुख्य परीक्षण है।"

गाधीजी का ऐसा विश्वास था कि उक्त योजना द्वारा राष्ट्र की सबसे बड़ी समस्या का हल निकल सकता है। राष्ट्र के युवको को ऐसा शिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे वे राष्ट्र के भावी कर्णधार बन सकें। उक्त शिक्षण वे जीवन के सीधे सम्पर्क से देना चाहते थे।

वर्धा शिक्षा-योजना

आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व गाधीजी ने अपनी योजना रखी थी। उसे वर्धा कमेटी के रिपोर्ट में सविस्तार प्रस्तुत किया गया। वर्धा समिति के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसेन थे, जो आज भारत के उपराष्ट्रपति हैं। रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद नयी तालीम का प्रयोग राष्ट्र के विभिन्न भागों में हुआ और आज भी हो रहा है। कुछ लोग तो बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से इसका प्रयोग कर रहे हैं और कुछ लोग आधे मन और उदासीन भाव से। महाराष्ट्र में सभी प्राइमरी प्रशिक्षण महाविद्यालय बेसिक ट्रेनिंग कालेज के नाम से चलते हैं और राज्य, जिला या तालुका-द्वारा संचालित प्राइमरी स्कूल भी बेसिक स्कूल ही समझे जाते हैं। जो शिक्षा-शास्त्री या शिक्षा-संस्थान अपने प्रयोग में सफल रहे हैं—(हालांकि उनकी संख्या बहुत ही सीमित है)—वे भी यह बतला सकने में असमर्थ रहे हैं कि लम्बे चौड़े पैमाने पर उक्त योजना कैसे सफल हो सकती है। जहाँ सफलता के हल के आभास मिले हैं वहाँ की स्थिति कुछ और ही है। उक्त स्थिति का पता तभी चल सकता है जब हम शिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों और छात्रों के मस्तिष्क और दृष्टिकोणों का अध्ययन करें। इस अध्ययन से एक तथ्य जो स्पष्ट होगा वह यह कि वे न तो नयी तालीम के उद्देश्यों को ही पूर्णतया समझ पाये हैं और न उक्त योजना को ईमानदारीपूर्वक प्रयोग में ही लाना चाहते हैं। यह स्वीकार करते हुए कि कुछ ऐसे भी शिक्षण-संस्थान हैं जहाँ नयी तालीम का तहेदिल और ईमानदारीपूर्वक प्रयोग हो रहा है, यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ भी वह प्रयोग की भूमिका से ऊपर आ पाया है।

दो विशेषताएँ एक संशय

उस योजना की दो विशेषताएँ हैं जिन्हें अनेक शिक्षाशास्त्रियों की आलोचना का शिकार बनना पड़ा है। शिक्षा और शिक्षार्थियों के कार्यक्रम में हस्तकला को केन्द्रीभूत स्थान मिले इसे शिक्षाशास्त्रियों ने अव्यावहारिक माना। वे यह भी नहीं मानते थे कि इसमें शिक्षा स्वावलम्बी होगी और उससे शिक्षकों के वेतन की व्यवस्था हो सकेगी। गांधीजी इन दोनों मुद्दों को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे।

भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति देखते हुए जिनके मन में नयी तालीम की उपयोगिता और लाभ के बारे में जरा भी संशय नहीं है, वे यह महसूस करते हैं कि वह शिक्षण जिसके मूल में कोई न कोई दस्तकारी है, हमारे बच्चों को बौद्धिक शिक्षण देने के लिए पर्याप्त नहीं है। बौद्धिक शिक्षण बालकों को भारत का भविष्य निर्माता बनाने के लिए आवश्यक है। ऐसा होने पर ही भारत विश्व के विकासशील राष्ट्रों में अपना स्थान बनाये रख सकता है। किसानों और दूसरी दस्तकारी में लगे हुए लोगों के बच्चों के लिए भी राष्ट्रीय विकास के साथ ही साथ बौद्धिक शिक्षण की भी आवश्यकता होगी।

जीवन से अधिक सर्वतोमुखी दूसरी वस्तु नहीं और किसी व्यक्ति का पेशा उसका एक अंग है। गांधीजी किसी पेशा या उद्योग को शिक्षा का केन्द्र बनाना चाहते थे। यह सोचना गलत नहीं होगा कि जीवन को ही शिक्षा का केन्द्र बनाया जाय। छात्रों के लिए कताई-बुनाई या कृषि-जैसी दस्तकारी का उनके भावी जीवन में सांस्कृतिक महत्व होगा। दूसरी ओर जीवन अपने विभिन्न दृश्यों और परिस्थितियों के साथ सीधे सम्पर्क में आने पर वे ही परिणाम दे सकता है जो हम दस्तकारियों से अपेक्षा रखते हैं।

जीवन शिक्षण की एक योजना

इस विचार के सन्दर्भ में—जो धीरे धीरे मेरी मान्यता बनता जा रहा है—मैं एक विनम्र योजना पेश करना चाहता हूँ जो प्रयोग के रूप में बम्बई के कुछ विद्यालयों की तीन माध्यमिक कक्षाओं में (कक्षा ५ ६ और ७ में) चल रही है। उक्त योजना का नाम हमने जीवन शिक्षण दिया है। इसका पाठ हमारी दृष्टि नयी तालीम के लिए कोई अनुकल्प देना या विरोधी योजना पेश करना नहीं है। यह मेरी इच्छा और प्रयत्न भी है कि हम इसका प्रयोग बम्बई के कुछ स्कूलों में करें जहाँ किसी दस्तकारी को शिक्षा का केन्द्र मानकर चलाना आसान नहीं है। साथ ही यह भी देखें कि गांधीजी के शिक्षण का आदर्श जो सभी ज्ञान क्रिया-द्वारा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के साथ सम्पर्क में आने से प्राप्त होता है वह माध्यमिक विद्यालयों में सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है या नहीं।

इसके पहले कि और आगे बढ़ूँ मैं यह कहना चाहता हूँ कि उक्त योजना मेरे द्वारा बम्बई गांधी स्मारक निधि के लिए तैयार की गयी थी। गांधी निधि ने उक्त शिक्षण योजना के मूल सिद्धान्तों का समर्थन किया। उक्त योजना का स्वागत महाराष्ट्र के शिक्षा निदेशक-द्वारा भी हुआ।

जीवन शिक्षण की योजना में कभी कोई ऐसा प्रयत्न नहीं किया गया है जिससे शिक्षण विभाग द्वारा पढ़ाये जानेवाले विषय या कार्यक्रमों को बदलना पड़े। जीवन शिक्षण उनके साथ कुछ ऐसी अन्य क्रियाएँ जोड़ देता है जिनका लक्ष्य विद्यालय के बाहर घर और समाज से छात्र का सीधा सम्पर्क जोड़ देना है। इस योजना की मुख्य विशेषता यह मानी गयी है कि जो कुछ भी कक्षा में पढ़ाया जाय उसका कोई न कोई नैतिक आधार हो और उसे जीवन के साथ जोड़ दिया जाय। इसके साथ ही यह छात्रों के मन में राष्ट्रीय भावना पैदा करे।

योजनाओं की विफलता का कारण

वे योजनाएँ जो खूब सोच विचारकर बनायी जाती हैं और जिनके पीछे व्यावहारिक दृष्टि भी होती है, प्रायः असफल हो जाती हैं, क्योंकि जो लोग उक्त योजनाओं का प्रयोग करते हैं वे योजनाओं के सैद्धान्तिक और आदर्शवादी पक्ष को इतना महत्व देते हैं कि उन्हें उक्त योजनाओं के रिवाज और उन्हें व्यवहार में कैसे लाये इसका ध्यान ही नहीं रहता। वास्तव में यह सिद्धांत से अधिक महत्वपूर्ण है। जीवन शिक्षण की इस योजना को स्कूलों में प्रयोग करते समय हम अपना ध्यान और

शक्ति दैनन्दिन कामो को सतत चालू रखने के लिए केन्द्रित करेंगे। इसके लिए हम एक अतिरिक्त अध्यापक की सेवाओ का उपयोग करेंगे जो उस वर्ष के काम की योजनाओ के निर्माण, रेकार्ड रखने और उन कामो के लेखा जोखा रखने का कार्य करेगा। यह विशेष रूप से ध्यान रखेंगे कि हर बालक और बालिका उक्त योजना मे सक्रिय रूप से भाग ले और योजना की सफलता में अपना भरपूर योगदान करे।

इस छोटे से निबन्ध में उक्त योजना के डिटेल दे पाना सम्भव नही है फिर भी इसकी चन्द विशेषताओ का उल्लेख यहाँ करूँगा। सर्वप्रथम, हर अध्यापक का यह कार्य होगा कि वह विद्यार्थियों, उनके अभिभावको और स्कूल के बाहरी वातावरण से निकट-सम्पर्क स्थापित करे। छात्रो को इस बात का शिक्षण दिया जायगा कि वे अपने हाथ एव कला का प्रयोग अपने घर और स्कूल के कामो में करें। दूसरो पर आश्रित न रहें। उन्हे इस बात का भी प्रशिक्षण दिया जायगा कि वे घर की साधारण मरम्मत जिसके लिए विशेष कला की जरूरत नही है आपसे आप कर सकें। दूकान, डाकघर, रेल्वे स्टेशन, थियेटर, स्टूडियो आदि में जाकर आवश्यक ज्ञान परोक्ष रूप से प्राप्त करें न कि केवल पुस्तकों में।

हर छात्र स्वय तकली या चरखा चला सके और यह जाने कि किस प्रकार कपडो मे बटन टाँके जाते है या फटे कपडे सिले जाते है। छात्रो में इस प्रकार की एक आदत-सी डाली जाय जिससे उनके हाथो और मस्तिष्क का प्रशिक्षण मिल सके। ऐसी चन्द आदते कक्षा के काम का एक प्रमुख अग बनें।

छात्रो की गैररस्मी सामाजिक बैठक बुलायी जाय जिनमें उनके माता पिता-और अभिभावक भी आयें। आवश्यकतानुसार अन्य अतिथियो को भी आमत्रित किया जाय। ऐसी बैठको के आयोजन और उनके कार्यक्रमो की योजना छात्रो-द्वारा स्वय तैयार की जाय।

अन्तर विद्यालय-मैत्री का भी सतत कार्यक्रम चलाया जाय। इसके अन्तर्गत दूसरे विद्यालयो के मित्रो को पत्र लिखना होगा जो सीधे व्यक्तिगत सम्पर्क और मित्रता की ओर उन्हे उन्मुख करेगा। इससे छात्रो की मैत्री का क्षेत्र बढेगा।

सास्कृतिक आयोजन

वर्ष के विशेष दिनो और त्योहारो को मनाने का भी आयोजन करना चाहिए पर यह ध्यान रहे कि हर आयोजन की अपनी विशेषता हो। बैठको का आयोजन करने, प्रमुख अतिथियो को भाषण देने के लिए निमत्रित करने या वाद विवाद प्रतियोगिता का निर्णय करने के लिए किसी को बुलाने-जैसी प्रचलित पद्धतियाँ किसी भी रूप में सर्वोत्तम या सबसे प्रभावकारी नही हैं। गाधी जयन्ती के पहले का पूरा एक सप्ताह मौन-सप्ताह के रूप में मनाया जाय जिसमें छात्र कम से कम बोलें, कडे या कडवे शब्दो का प्रयोग न करें। उक्त सप्ताह का उपयोग सत्य और दया को छात्रो के जीवन के हर क्षेत्र मे उतारने के लिए भी किया जा सकता है। दिन का उपयोग सफाई या ऐसे वालटियर-कार्य के सचालन में उपयोग किया जा सकता है। टैगोर दिवस के आयोजन के लिए टैगोर-द्वारा लिखे गये गीतो का समूह-गायन आदि में उपयोग किया जा सकता है। ऐसे कुछ भाषाओ के अनुवाद, जो भारत के विभिन्न भाषाओ मे अनुदित है आकाशवाणी के सौजन्य से भी प्राप्त किये जा सकते है। कुछ ऐसा भी प्रयत्न हो जिससे राष्ट्रीय ऐक्य को बल मिले। दीपावली की छुट्टी के पूर्व एक पक्ष कुछ स्कूलो और कालेजो में दीपावली के लिए उपहार आदि सकलन के लिए—बच्चो के पास की चीजें या उन्हे घर से मिलनेवाले जेबखर्च की बची रकम से किया जा सकता है। ऐसे उपहार, जिनकी सख्या सैकडो मे होगी अनाथालय या ऐसी अन्य सस्थाओ में भेजना चाहिए या बच्चो-द्वारा स्वय ले जाना चाहिए और वही उन्हे अपने-अपने उपहार दूसरे बच्चो को देना चाहिए। इस प्रकार बच्चो को दीपावली का सर्वाधिक आनन्द अनाथालयो और शिशु-चिकित्सालयों के बच्चो को उपहार आदि देने में मिलेगा।

हर छात्र के पास एक छोटी सी डायरी होनी चाहिए जिसमें वह कुछ लिख सके और स्केच आदि बना सके। उसका नाम रहेगा 'मेरा मानीटर'। हर स्कूल के पास अपना एक छोटा सा सग्रहालय होना चाहिए, जिसमें बच्चे, जो कुछ भी सग्रह या निर्माण करें, जमा करा सकें।

छात्र कोई न कोई योजना पूरे वर्ष या किसी खास अवधि के लिए ले सकते है। ऐसी योजनाएँ जिनमें—'मेरे पिता-द्वारा बनाये गये मकान की कहानी' या "हमारा मित्र पोस्टमैन"—जैसे प्रोजेक्ट में काफी छात्रो ने अच्छा परिणाम दिखलाया।

जीवन शिक्षण-योजना के अन्तर्गत छात्रो को निम्नलिखित कार्य अवश्य करने चाहिएँ

- अपने घर या स्कूल के स्नानागार और शौचालय की सफाई।
- शनिवार और रविवार को अपने वस्त्रो की स्वयं धुलाई।
- अपने फटे कपडो की स्वयं मरम्मत।
- एक छोटा-सा अपना बाग लगाना या चन्द मिट्टी के गमलो या लकडी के सन्दूको में पेड पौधे लगाना।
- स्टोव की मरम्मत और बिजली की छोटी-मोटी मरम्मत करना।
- आज्ञाकारी, नम्र, उदार और मददगार होने का प्रयास करना।
- अपने नाम से एक अल्पबचत का खाता खोलना, और धीरे-धीरे उसमें रकमें जमा करते रहना।
- किसी अच्छी पुस्तक को कम से कम १५ मिनट प्रतिदिन पढना और उसकी कम से कम ४ पक्तियाँ रट डालना।
- एक दैनन्दिनी रखना।

हमारा मूल तात्पर्य क्या है ?

स्कूल के समय और उसके बाद दिये गये हर पाठ और काम के पीछे एक नैतिक पृष्ठभूमि होती है और होनी चाहिए। अन्त में दो तीन उदाहरण देकर यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि आखिर इस नैतिक पृष्ठभूमि से हमारा क्या तात्पर्य है। भूगोल के शिक्षक और छात्रो को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सभी धरती माँ के पुत्र हैं। यह विचार इतने शक्तिशाली शब्दो मे व्यक्त करना चाहिए जितना प्रसिद्ध दार्शनिक, विचारक और नोबुल पुरस्कार विजेता बर्ट्रेण्ड रसेल ने किया है—'हम चाहे जो भी सोचना चाहे, उसके पीछे यह अवश्य हो कि हम सभी इस धरती माँ के ही पुत्र हैं। हमारा जीवन इस धरती माँ के जीवन का ही एक अश है। हम अपनी खुराक उसी धरती माँ से लेते है, जिनसे अन्य वनस्पतियाँ और जीव लेते हैं। धरती की गति काफी मन्द है उसके लिए पतझड और शरद उतने ही आवश्यक हैं जितने बसन्त और ग्रीष्म। शेष चीजें उतनी आवश्यक हैं जितनी गति।" बालक के लिए प्रौढ व्यक्ति की अपेक्षा यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपना सम्पर्क पार्थिव जीवन के उतार-चढाव से कायम रखे। अकगणित-द्वारा छात्रो के मन पर यह प्रभाव डाला जा सकता है कि परिशुद्धता, व्यवहार शुद्धि और ईमानदारी जीवन के लिए नितान्त आवश्यक हैं। औरगजेब के जीवन के सम्बन्ध बतलाते समय उसके द्वारा की गयी भाइयो की हत्या और पिता को बन्दी बनाने की घटना के बदले अध्यापको को अपने छात्रो के मन पर मानवीय पुट देते हुए यह बतलाना चाहिए कि औरगजेब के जीवन की कौन-कौन-सी विशेषताएँ थी ? जैसे उसकी सीधी-सादी आदतें, घोर परिश्रम, धर्म के प्रति प्रबल निष्ठा। साथ ही उसके प्रशासनिक जीवन से सम्बन्धित जानकारियाँ बालको को दी जा सकती है। मै इस महत्वपूर्ण भाग पर जोर डालना चाहूँगा कि यदि शिक्षक थोडी-सी भी कल्पना-शक्ति का उपयोग करे तो किसी भी विषय-द्वारा नैतिक शिक्षण दे सकता है। ●

अमंगल विचारों के परिणाम-स्वरूप अमंगल भावनाएँ आपको दूर-दूर ले जाकर निगलने के लिए तैयार बैठे हजार असुरों के हाथ में दे डालती हैं। फलतः आप निराधार हो जाते हैं। कभी न समाप्त होनेवाले आपके दुखों का बुनियादी कारण यही है।

—श्रीमाता जी

शिक्षा आयोग के लक्ष्य : एक मूल्यांकन

•

वंशीधर श्रीवास्तव

शिक्षा आयोग ने तीन लक्ष्यों को सामने रखकर कार्य प्रारम्भ किया था।

१ शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन, जिससे शिक्षा राष्ट्र के जीवन एवं उसकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप होकर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन बन सके।

२ सर्वसाधारण के लिए शिक्षा का समान अवसर प्रदान करने पर बल देते हुए जनशक्ति की आवश्यकताओं के आधार पर शिक्षा-सुविधाओं का प्रसार।

३. शिक्षा का गुणात्मक विकास, जिससे शिक्षा के जिन स्तरों की प्राप्ति हो वे यथेष्ट हों और जिनमें निरन्तर प्रगति होती रहे, कम से कम कुछ क्षेत्रों में तो यह प्रगति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुरूप हो।

जीवन-दर्शन का अभाव

मेरा विचार है कि इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आयोग ने अपने प्रतिवेदन में जो सुझाव दिये हैं, उनसे उन लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं होगी।

१—सबसे पहले राष्ट्र की शिक्षा को राष्ट्र-जीवन के अनुरूप बनाने के लिए शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के लक्ष्य को ही ले लीजिए। इस सम्बन्ध में—(क) आयोग ने शिक्षा के जिस ढाँचे (पैटर्न) की संस्तुति की है उसे अपनाने से देश की शिक्षा-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं होगा। वस्तु स्थिति तो यह है कि आयोग ने प्रणाली-परिवर्तन की बात ही नहीं की है। प्रणाली का सम्बन्ध शिक्षा के माध्यम से है। शिक्षा का माध्यम क्या हो, इसका निर्णय किसी भी राष्ट्र का जीवन-दर्शन करता है। वही निश्चय करता है कि क्या पढ़ाया जाय कि जीवन-दर्शन के अनुरूप एक विशेष प्रकार का व्यक्ति विकसित हो। गांधीजी एक विशेष प्रकार के जीवन-दर्शन में विश्वास रखते थे और उसी जीवन-दर्शन के अनुरूप वे एक शोषण मुक्त अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन किया और उत्पादक उद्योगों के माध्यम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास और संस्कार की बात कही। हम इसी पत्रिका के पिछले अंक में बता चुके हैं कि आयोग के सदस्यों के सामने इस प्रकार का कोई जीवन-दर्शन नहीं था। इसीलिए वे शिक्षा की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं कर सके हैं।

अस्तु आयोग ने शिक्षा का जो ढाँचा सुझाया है, उससे शिक्षा की पद्धति में भले ही थोड़ा-बहुत सुधार हो जाय, शिक्षा की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं होगा। पद्धति और प्रणाली दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। पद्धति का सम्बन्ध पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, पाठशाला प्रबन्ध और वित्त-व्यवस्था से है। आयोग ने इन्हीं में सुधार करने के लिए सुझाव दिये हैं। अगर इन सुझावों को कार्यान्वित किया गया तो निश्चय ही शिक्षण-पद्धति और व्यवस्था में सुधार होगा और शिक्षा की स्थिति आज

से अच्छी होगी, परन्तु प्रणाली में कोई परिवर्तन नही होगा।

शिक्षा और संस्कृति

(ख) आयोग ने शिक्षा के जिस ढाँचे को अपनाने का सुझाव दिया है उसे अपनाने से शिक्षा इस देश की आकांक्षाओं और उसके जीवन के अनुरूप नहीं बन सकती। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा उस राष्ट्र के निवासियों के जीवन के अनुरूप तभी बन सकती है, जब उसका सम्बन्ध राष्ट्र की संस्कृति से हो। युगों-युगों की परम्पराओं पर आधारित भारत की अपनी एक विशेष संस्कृति है। यह संस्कृति आज के विज्ञान के युग की प्रविधिमूलक पाश्चात्य भौतिक संस्कृति से भिन्न है, यह सभी मानते हैं। आयोग के अपने उद्घाटन भाषण में श्री चागला ने इसी भिन्नता की ओर संकेत किया था। उन्होंने कहा था—'इस देश की गरीबी और अज्ञान को दूर करने के लिए विज्ञान और टेक्नालाजी का व्यापक प्रसार आवश्यक है, परन्तु शिक्षा के वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं पर बल देते हुए भी हमें अपने महान् अतीत (अपनी संस्कृति को) को नहीं भूलना है। हम आगे देखें और आधुनिक बनें, परन्तु हमारे पैर दृढ़ता पूर्वक हमारे देश की धरती पर हों।"

हमारा यह अतीत, हमारी यह संस्कृति क्या है? एक शब्द में हम उसे आध्यात्मिकता कहते हैं, जिसका अर्थ है—शरीर के सुख के ऊपर आत्मा के सुख को, जो त्याग और प्रेम से उत्पन्न होता है तरजीह देना। यही मानवता है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। आयोग के भारतीय सदस्यों का इन मूल्यों के प्रति कोई आग्रह नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ है कि आयोग विज्ञान (टेक्नालाजी) तथा आध्यात्मिकता का समन्वय नहीं कर पाया है। वह समन्वय-स्थापन के जिस पवित्र लक्ष्य को लेकर चला था और केन्द्रीय शिक्षामंत्री के उद्घाटन-भाषण से जो आशा बँधी थी, वे आधुनिकता की आँधी में बह गये हैं। अतः यदि आयोग की संस्तुतियों का कार्यान्वयन किया गया, तो भले ही देश की थोड़ी भौतिक प्रगति हो, विज्ञान और टेक्नालाजी का प्रसार इस प्रकार नहीं होगा जिससे आध्यात्मिकता का सृजन हो और ऐसे मानव का निर्माण हो जो शरीर के सुख के ऊपर आत्मा के सुख को तरजीह दे। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने लिखा है कि सीताजी की खोज में लंका जाते हुए हनुमानजी को सुरसा नाम की एक राक्षसी ने निगल जाना चाहा। इस इच्छा से उसने अपने मुख का विस्तार किया, परन्तु ज्यों-ज्यों वह अपना मुख बढ़ाती गयी, त्यों-त्यों हनुमानजी भी अपना मुख बढ़ाते गये। इसी प्रकार यदि विज्ञान और टेक्नालाजी को सुरसा के मुख की भाँति बढ़ाते जाने से, शरीर की इच्छाएँ भी कपि मुख की भाँति दूनी बढ़ती गयी तो इसमें न तो मानवता का हित होगा और न उस भारतीयता का, जिसकी दुहाई आयोग के कार्य प्रारम्भ करने के पहले श्री चागला ने दी थी। आयोग की संस्तुतियों के कार्यान्वयन से टेक्नालाजी और आध्यात्मिकता में किसी प्रकार के समन्वय स्थापित होने की गुंजाइश नहीं है। आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का प्राण है—रहना चाहिए। आध्यात्मिकता के इस तत्व को कुचलकर विज्ञान और टेक्नालाजी का जो महल खड़ा किया जायगा, वह राष्ट्र हित में नहीं होगा।

विज्ञान और टेक्नालाजी का प्रयोग आवश्यक है। इसके बिना राष्ट्र की प्रगति असम्भव है। इनका प्रयोग अवश्य किया जाय, लेकिन उसी सीमा तक जिस सीमा तक उनसे मानव का शोषण और मानव मूल्यों का विघटन न हो। केन्द्रित औद्योगीकरण में शोषण का खतरा बढ़ जाता है और जहाँ यह खतरा नहीं है, जैसे समाजवाद में, वहाँ उत्पादन की प्रक्रिया में व्यक्ति की दिलचस्पी न होने के कारण मानव मूल्यों का विघटन होता है। इसीलिए गाधीजी ने विकेन्द्रित कुटीर उद्योगों की हिमायत की थी।

संस्तुतियों का पलड़ा किधर?

आयोग की संस्तुतियों का पलड़ा केन्द्रित और भारी उद्योगों की ओर झुका है। उसके सामने यूरोप और अमेरिका के औद्योगीकरण का प्रलोभक चित्र है। अगर उसकी संस्तुतियों को कार्यान्वित कर इस चित्र में प्राण प्रतिष्ठा की गयी तो, जो जीवित प्राणी हमें प्राप्त होगा, वह भारतीय संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ होगा।

यह तथ्य है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से देश ने औद्योगीकीकरण की जो नीति अपनायी है उससे देश का आर्थिक, व्यावसायिक, सामाजिक और नैतिक ढाँचा बदलेगा और जीवन मल्या म भी परिवर्तन होगा। परन्तु यह परिवतन इतना न हो कि इसके फलस्वरूप जो मनुष्य विकसित हो वे लाड मैकाले के शब्दा म तन से भारतीय होते हुए भी मन से अँग्रेज हो—पाश्चात्य भौतिक सस्कृति के पुजारी हो।

मूल प्रश्न

आज की औद्योगीकीकरण राष्ट्र की नीति है। टेक्नालाजी की प्रगति के लिए यह आवश्यक भी है। प्रश्न केवल इतना है कि औद्योगीकीकरण का प्रयोग किस प्रकार किया जाय कि उसकी जाहिर खामिया से बचा जाय और उससे उन मूल्यो की भी रक्षा की जाय जो भारतीय सस्कृति के चिरन्तन सत्य है। प्रश्न औद्योगीकीकरण का नही है यह तो राष्ट्र की नीति है। मूल प्रश्न तो औद्योगीकीकरण का भारतीय सस्कृति के अनुरूप उपयोग करने का है। शिक्षा आयोग के सामने सबसे बडी चुनौती एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करने की ही थी जो इस औद्योगीकीकरण का भारतीय सस्कृति के हित म उपयोग कर सके। गाधीजी की उद्योग मूलक शिक्षा प्रणाली विकेन्द्रित एव प्रभुतामूलक राजनीति और अर्थनीति तथा अशोषण और अहिसा के नैतिक तत्वा पर आधारित थी। अत यह देश की सस्कृति के अनुरूप थी, और इसम आध्यात्मिकता और टेकनालाजी का समन्वय था। उसे देश ने प्रारम्भिक स्तर के लिए राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में स्वीकार भी किया था। मुदालियर कमीशन ने बहुद्देशीय विद्यालयो के रूप मे और यूनीवर्सिटी कमीशन ने रूरल इन्स्टीट्यूट के रूप म उसकी परम्परा को आगे बढ़ाने की सिफारिश भी की थी। अत आयोग शिक्षा का सवथा एक नया ढाँचा प्रस्तुत करने के स्थान पर यदि बेसिक शिक्षा के ढाँचे को ही मजबूत बनाते और उसे दृढतापूवक प्राथमिक स्तर से विश्व विद्यालय स्तर तक लागू करने का सुझाव देता तो निश्चय ही उसम हमारे समाजवादी औद्योगिक लोकतंत्र की आवश्यकताएँ पूरी होती और राष्ट्र की सस्कृति की भी रक्षा होती। परन्तु किन्ही कारणो से आयोग ने ऐसा नही किया है। उसने बेसिक शिक्षा के शाश्वत मूल्यो को उसकी उत्पादकता को, समुदाय के साथ घनिष्ट सम्पर्क के सिद्धान्त को समाज-सेवा को वातावरण और बालका की प्रवृत्तिया के साथ पाठ्यक्रम के अनुबन्ध के सिद्धान्त का स्वीकार कर लिया है और यह भी स्वीकार कर लिया है कि आयोग के प्रतिवेदन में जो प्रस्ताव रखे गये है वे इन्ही सिद्धान्तो के आधार पर बनाये गये है। परन्तु उसने यह भी सस्तुति की है कि शिक्षा का कोई स्तर 'बेसिक' न कहा जाय। फलस्वरूप बेसिक शिक्षा की परम्परा को आगे बढाने और उसकी खामियो को दूर करने के लिए सुझाव देने के स्थान पर उसने नयी शिक्षा नीति की सिफारिश की है। आयोग की यह सस्तुति राष्ट्रीय शिक्षा के हित में नही है। इसका परिणाम यह हुआ कि आयोग ने जिस शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया है वह जन-जीवन के अनुरूप नहीं है और उससे राष्ट्र की आकाक्षाएँ पूरी नही होगी।

शिक्षा आयोग का मोह

(ग) आयोग-द्वारा सस्तुत शिक्षा-नीति जन जीवन से पृथक रहेगी इसका एक कारण यह भी है कि आयोग अँग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम रखने का मोह नही छोड सका है। आज भी देश में जिस भाषा को समझने और बोलनेवाले ४–५ प्रतिशत से अधिक नही हैं उसे देश की किसी भी स्तर की शिक्षा का माध्यम रखकर शिक्षा को जन-जीवन के अनुरूप कैसे बनाया जा सकता है? अँग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम रखने की सस्तुति कर आयोग उस लक्ष्य से च्युत हो गया है, जो उसकी सारी हलचलो के मूल में है अर्थात् शिक्षा को राष्ट्र के जीवन और उसकी आकाक्षाओ के अनुरूप बनाने के लक्ष्य से।

है। उसने सस्तुति की है कि "प्रारम्भिक स्कूलो में शुल्क लेना तत्काल बन्द कर दिया जाय। पाँचवी पचवर्षीय योजना के अन्त तक सभी सरकारी और गैर-सरकारी सस्थाओ म निम्न माध्यमिक स्तर तक की (कक्षा ७,८) शिक्षा नि शुल्क कर दी जाय और यह भी चेष्टा की जाय कि अगले १० वर्षों में उच्चतर माध्यमिक सस्थाओ और विश्वविद्यालयों में उन सभी को नि शुल्क शिक्षा दी जाय जो साधनहीन, परन्तु योग्य हो।" परन्तु शिक्षा को नि शुल्क कर देना और सबको समान शिक्षा की समान सुविधा देना, जैसा समाजवादी स्पेक्ट्रम में होना चाहिए, एक ही बात नही है। मान लीजिए कि २०,२५ वर्षों में शिक्षा नि शुल्क हो भी गयी तो जबतक विशिष्ट शिक्षा-सस्थाओ को बन्द कर सबको सामान्य शिक्षा सस्थाओ में पढने के लिए बाध्य नही किया जाता, साधन-सम्पन्न लोग अपने बच्चो को विशिष्ट शिक्षा सस्थाओ में पढाते ही रहेंगे और शिक्षा को नि शुल्क करने से कोई लाभ नही होगा। आज देश के अधिकाश प्रदेशो में, कम-से-कम उत्तर प्रदेश में तो है ही कि प्रारम्भिक शिक्षा नि शुल्क है और तथाकथित बेसिक स्कूलो में फीस नही लगती। परन्तु, चूँकि इन सामान्य स्कूलो के साथ उसी स्तर के विभिन्न विशिष्ट विद्यालय भी चल रहे है, जहाँ पर्याप्त शुल्क लगता है, और जहाँ प्रारम्भ से ही अँग्रेजी पढायी जाती है, साधन-सम्पन्न लोग अपने बच्चो को इन्ही स्कूलो में भेजते है बेसिक स्कूलो में नही भेजते। आज से ३० वर्ष पहले देश में प्रारम्भिक स्तर पर, बेसिक शिक्षा के नाम से शिक्षा की एक सामान्य पद्धति चली थी। स्वतत्र देश ने इसे राष्ट्रीय पद्धति कहकर अपनाया भी था। यह भी निश्चय किया गया कि इस स्तर पर किसी प्रकार की विशिष्ट शिक्षा-सस्था नही चलेगी। परन्तु हम जानते है कि आज भी इस पवित्र सकल्प को कार्यरूप में परिणत नही किया गया है। हम यह भी जानते हैं कि जो साधन-सम्पन्न है, भले ही वे देशभक्त काग्रेसजन हो अथवा समाजवादी कम्यूनिस्ट हो, अपने बच्चो को कान्वेण्ट में ही भेजते हैं बेसिक स्कूलो में नही भेजते। अत आयोग का यह सोचना कि शिक्षा को नि शुल्कमात्र कर देने से देश में सामान्य शिक्षा की नीति को प्रतिष्ठित किया जा सकेगा, गलत है।

आयोग की उलटी गगा

आयोग तो देश में दो शिक्षा नीतियाँ चलाने के पक्ष में है। उसकी मशा जो भी हो परन्तु उसने जो सस्तुतियाँ की हैं, उससे देश में शिक्षा की दो धाराओ की नीति का समर्थन और पोषण होता है, जो समाजवाद के हर वसूल के खिलाफ है। आयोग ने सस्तुति की है कि जहाँ एक ओर प्रदेशो मे सावजनिक शिक्षा के लिए ऐसे सामान्य विद्यालय स्थापित किये जायँ, जिनमें शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ हो, वही यह भी सस्तुति की है कि देश में ६ ऐसे महाविद्यालय स्थापित किए जायँ, जिनमें उन्ही प्रतिभा-सम्पन्न छात्रो का प्रवेश हो जो प्रारम्भ से ही अँग्रेजी के माध्यम से शिक्षा पाये हो, क्योंकि इन सस्थाओ में शिक्षा का माध्यम केवल अँग्रेजी होगी। इस सम्बन्ध में इसी पत्रिका के पिछले अक में विस्तार से लिखा है। आयोग के प्रस्ताव निम्न प्रकार है —

(१) सार्वजनिक शिक्षा के लिए सामान्य विद्यालय (कामन स्कूल) स्थापित करना राष्ट्रीय लक्ष्य होना चाहिए और इस कार्य को प्रभावपूर्ण ढग से क्रमिक चरणो मे बीस वर्ष की अवधि में पूर्ण कर लेना चाहिए। सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के लिए आयोग ने इस काम को आवश्यक बताया (अध्याय–१, खण्ड–३, पैरा–१)।

(२) देश में उच्च शिक्षा के ऐसे विशिष्ट ६ विश्व विद्यालय, जहाँ राष्ट्रीय स्तर की स्नातकोत्तर शिक्षा दी जाय और जहाँ अनुसधान की हर सुविधा हो, स्थापित किये जायँ। इन विश्व-विद्यालयो में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होगी। (अध्याय–१, खण्ड–३, पैरा–९) आयोग ने सुझाव दिया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा के लिए स्थापित किये जानेवाले इन केन्द्रो को सशक्त बनाया जाय।

स्पष्टत यह नीति सर्वसाधारण को समान शिक्षा की समान सुविधा देने की नीति नही है। बात एकदम सत्य है कि आयोग के सामने साढे पाँच लाख गाँवों से बने हुए समग्र भारत को देखनेवाली व्यापक दृष्टि का अभाव रहा है। सदस्यो में एक भी सदस्य ऐसा नही

था जिसने देश की उसकी सारी महानताओं और अधमताओं के साथ आखें खोलकर देखा हो, जो इसकी माटी में लोटा हो' और जिसने एक बार भी भारत के किसी 'गँवई-गवाँर' की आखो के आँसू पोछने का प्रयास किया हो। प्रात में ब्रेकफास्ट, दोपहर के लच और रात के डिनर से घिरी हुई विशिष्ट व्यक्तियो की इस सभा ने जिस शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया है उससे शिक्षा के क्षेत्र मे ऐसी कोई क्रान्ति नही होने जा रही है जिसमे भारत के ९० प्रतिशत साधारण जना के जीवन का सस्कार और श्रृगार हो और उनके सम्मुख सुविधाओ की वृद्धि हो। वास्तव में इन सस्तुतियो के पढने के बाद तो ऐसा लगता है कि आयोग की इन सारी हलचलो के मूल में केवल यह चेष्टा रही है कि समाज के एक विशिष्ट वर्ग को जो विशेषाधिकार प्राप्त हो गये हैं वे अक्षुण्ण बने रहें और उनकी सन्तान अनन्तकाल तक इन अधिकारो का उपभोग करती रहें। बुनियादी शिक्षा ने समानता और सर्वोदय के लिए जो प्रयास किया था मानो आयोग का यह पूरा प्रतिवेदन उसके विरुद्ध एक कुचक्र है एक सगठित किन्तु प्रच्छन्न विरोध है।

३—आयोग के तीसरे लक्ष्य अर्थात शिक्षा के गुणात्मक विकास के सम्बन्ध में उसकी सफलता असफलता के सम्बन्ध में अभी से कुछ कहा नही जा सकता। शिक्षा का गुणात्मक विकास हो इसके लिए आयोग ने जहाँ अनेक सस्तुतियाँ की है वहाँ एक यह भी सस्तुति की है कि शिक्षा उत्पादक हो। उत्पादकता के लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान और कार्य-अनुभव सामान्य शिक्षा के अभिन्न अग बना दिये जायें शिक्षा का व्यवसायीकरण कर दिया जाय, विशेषत माध्यमिक स्तर पर जिससे कृषि, उद्योग और व्यापार की आवश्यकताओ की पूर्ति हो वैज्ञानिक और टेक्नालाजिकल शिक्षा का सुधार हो और विश्वविद्यालय-स्तर पर शोध-कार्य हो। कार्य-अनुभव के सम्बन्ध में उसकी एक सस्तुति है कि 'सबको काम का अनुभव दिया जाय, जो नयी समाज व्यवस्था के अनुरूप हो। काम अनुभव आगे देखनेवाला हो। नीचे की प्रारम्भिक कक्षाओ (१ और २) में हाथ का साधारण काम सिखाया जाय। कक्षा ३-४-५ में शिल्प (उद्योग) की शिक्षा दी जाय। जूनियर हाई स्कूल (लोअर सेकेण्डरी) म कारखाना के शिक्षण के रूप में और हायर सेकेण्डरी में शिल्पशालाओ, फार्मों और व्यावसायिक-औद्योगिक-कारखाना में कार्य-अनुभव का शिक्षण दिया जाय।

अत आयोग सिफारिश करता है कि कार्य-अनुभव यथार्थ परिस्थितियो में दिया जाय जैसे खेतो और कारखाना में। प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के साथ, अथवा विद्यालय के एक समूह के साथ एक कारखाना सलग्न हो दस वर्ष में इस कार्य को क्रमिक ढग से पूरा कर लिया जाय। उच्चतर माध्यमिक सस्थाओ में स्कूल के कारखाना शिल्पशालाओ तथा फार्मों में और औद्योगिक तथा व्यावसायिक उद्योग भवनो में कार्य-अनुभव का शिक्षण दिया जाय।'

एक महास्वप्न

ये सिफारिशें अपनी जगहा पर ठीक है, क्योकि यदि स्कूलो को पर्याप्त साधन नही दिये गये तो कार्य-अनुभव की प्राप्ति नही होगी। प्रश्न यह है कि यह सब आयगा कहाँ से ? जो राज्य बालको को ५० पैसे की तख्ती और ५ रु० का चरखा नही दे सका, खेती सिखाने के लिए विद्यालय को तीन चार एकड भूमि नही दे सका, वह भरा पूरा कारखाना और फार्म कहाँ से देगा और इन कारखानो और फार्मों में शिक्षण देने के लिए, कार्य अनुभव म प्रशिक्षित, निष्णात अध्यापक कहाँ से लायगा ? मेरा तो इतना ही कहना है कि अगर बेसिक शिक्षा एक स्वप्न (एक यूटोपिया) है तो आयोग जिस शिक्षा पद्धति की सिफारिश कर रहा है वह साधन और निष्ठा के अभाव में महास्वप्न सिद्ध होगी। जिन कारणो से आज एक को असफल कहा जा रहा है उन्ही कारणो से दूसरी भी असफल रहेगी। इसीलिए मैंने कहा है कि आयोग अपने तीसरे लक्ष्य की प्राप्ति में सफल नही हुआ है।

●

डेनमार्क में सामान्य शिक्षण

•

राधा भट्ट

मुझे भारत के हर सम्भव विकास के लिए एक ही आधार सूझता है, और वह है 'शिक्षा'। हमारा जनतंत्र, हमारी योजनाएँ व हमारी क्रान्तियाँ जन शिक्षण के बिना उपहास की वस्तु बन गयी हैं। सामान्य जन का अस्तित्व तथा उसका जीवन कभी साम्राज्यवादियों की मुट्ठी में था, तो आज एक की नहीं, अनेकों की मुट्ठी में है। सरकार, व्यापारी व नेता, इन तीनों के बीच वह खो गया है। इन सबकी मुट्ठी से निकलने का एक ही तरीका है कि सामान्य जन 'जन' रहता हुआ जागरूक हो। आज होता क्या है? ज्यों ही एक सामान्य जन अपने जीवन, अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक होता है तो वह नेता, क्रान्तिकारी या सुधारक, किसी श्रेणी में खिसक जाता है। इस तरह दो भाग बन जाते हैं। एक भाग रोज सुबह से शाम तक अपनी रोटी के लिए जूझ रहा है और दूसरा सरकार, राजनीति, आन्दोलन, क्रान्ति, उद्धार, किसी भी नियत से अनुत्पादकों की श्रेणी में जुड़ता जा रहा है। सबसे बड़ा खतरा जो मुझे दीखता है वह है आज देश में जोश व विश्वास के बदले अविश्वास व विरोध—घोर विरोध—पनप रहा है। ये पचासों पार्टियाँ वास्तव में लोकतांत्रिक स्वतंत्र विचार की प्रतीक नहीं वरन अविश्वास व फूट की जड़ें हैं।

मैं नहीं जानती विचारक व अनुभवी कर्णधार इस समस्या का कौन-सा हल सोचते हैं? इन ८–१० महीनों से (जब से डेनमार्क में हूँ) भारतीय नेताओं आन्दोलनकर्ताओं तथा क्रान्तिकारियों के दैनिक विचार-प्रवचनों से वंचित रही हूँ। पर मेरी बुद्धि में आज केवल यही आता है कि इसके लिए सामान्य जन को सामान्य शिक्षण चाहिए। सामान्य जन व सामान्य शिक्षण ये दोनों मेरे दिमाग में विशेषरूप से अर्थ रखते हैं। मुझे सर्वोदय के तरीके में भी यह खामी दीखती है कि उसकी प्रवेश

पद्धति सही होते हुए भी वह सामान्य भाषा मे नही बोलता। उसकी क्रान्ति वास्तव मे कार्यकर्ताओ की क्रान्ति है और वे कार्यकर्ता भी आदर्शों, क्रान्तिपूर्ण प्रयोगो तथा बड़े शब्दों-द्वारा जनता से अलग ही रह जाते है। भारत की जनता को सीधी भाषा मे समझाया जा सकता है। 'केवल त्याग ही नही, बल्कि पुरुषार्थ करोगे तो तुरत फल पाओगे।' इसे जनता आसानी से समझ सकती है।

हर देश की अपनी स्थिति व भूमिका होती है और उसे उसीमे अपनी राह या पद्धति खोजनी होती है। परन्तु फिर भी शाश्वत या आधारिक मूल्यो के लिए कही से भी प्रेरणा मिल सकती है।

फोक हाई स्कूल

मै डेनमार्क के फोक हाई स्कूलो के बारे मे आज लिखने नहीं जा रही हूँ, केवल उनका प्रसग इसलिए आ गया है कि इन्होने डेनिश सामान्य जन को सूझ दी है। सम्भव है ये डेनिश प्रारम्भ में कुछ थोडा अधिक आदर्शवादी रहे हो, पर डेनिश-गुण के अनुसार ये मुख्यत. व्यावहारिक तथा आज के क्षण से सम्बधित रहे हैं। सामान्य कृपकों तथा मछुओ के एक राष्ट्र को गढ देने की यह एक अद्भुत पद्धति है। इन्होने राजनीति, समाजशास्त्र या अर्थशास्त्र का ज्ञान ही देने की कोशिश नही की, वरन् उसको अपनी बुद्धि मे समझ पाने की सूझ दी, जीवन में उतारने की बूझ दी और आज १००० वर्षों के इतिहास के गढने के बाद भी वे उतने ही ताजे हैं, क्योकि वे जीवन को छूते हैं, जिन्दगी की हर समस्या को सीधे छूते है, और ये हाई स्कूल के शिक्षक भले ही नेता या क्रान्तिकारी नही कहलाते, पर वास्तव मे ये 'नेता' ही रहे है। सीधी भाषा में बोलते हुए तथा सामान्य जीवन बिताते हुए इन्होंने जनता का नेतृत्व किया है। इस तरह सौ वर्षों मे डेनिश जनतत्र के स्वरूप मे जो निखार आया है वह विश्व के लिए आकर्षण की वस्तु बन गया है। आज अमेरिका, इंगलैण्ड तथा यूरोपीय अन्य देशों के युवको के दल यहाँ जनतत्र व सहकार का अध्ययन करने सैकडों की सख्या मे आते है। छोटा-सा देश—हमारे एक प्रान्त के बराबर भी नही, परन्तु विश्व में अपना विशेष महत्व रखता है। इसकी बुनियाद में फोक हाई स्कूलों का अपना विशेष स्थान कभी नहीं भुलाया जा सकता।

प्राथमिक शिक्षण

डेनिश बालक ■ वर्ष की उम्र में स्कूल जाता है। उसके पूर्व वह बालवाड़ी मे स्कूल व परिवार का मिश्रित आनन्द लेता है। पूरे डेनमार्क में अनेकों बालवाड़ियाँ हैं और हर माँ-बाप बच्चों को वहाँ भेज सकता है। इसके लिए उसे कुछ भी खर्च नही करना पडता; पर हर व्यक्ति की आमदनी पर लगनेवाले कर इस प्रकार की व्यवस्था के लिए आधार हैं। ७ वें वर्ष से प्राथमिक (एलिमेण्टरी) शिक्षण शुरू करने पर १४ वर्ष की उम्र तक याने ७ वें दर्जे तक का शिक्षण मुफ्त व अनिवार्य है। किसी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक असमर्थता के अतिरिक्त कोई बालक इससे वंचित नही किया जा सकता। माँ-बाप की आर्थिक स्थिति, मानसिक लापरवाही या अन्य कोई स्थिति इसमे रोड़ा नही बन सकती। ७ वर्षीय शिक्षण के मुफ्त होने से बालक कागज, पेंसिल, पुस्तकें आदि मुफ्त पाता है। परन्तु ७ वर्ष के बाद भी विद्यार्थी फीस से मुक्त रहता है, और अन्य खर्चों के लिए कई प्रकार से सरकारी छात्रवृत्ति पाता है। उसे ऊँचे शिक्षण के लिए कर्ज मिल सकता है, जिसे शिक्षण के बाद कमाई शुरू करने पर वह धीरे-धीरे अदा कर सकता है। छात्र यदि छुट्टियों में काम करना चाहते है तो उन्हें कई कामो में प्राथमिकता व अच्छा वेतन

श्रमिक छात्रा
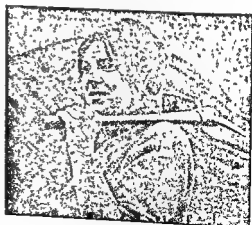
मिलता है। इस तरह की थोड़े समय (पार्ट टाइम) कमाई पर ८०० क्रोनर (याने ८०० रु०) प्रति माह की कमाई तक उन्हें किसी तरह का कर नहीं अदा करना होता है। इन ग्रीष्मकालीन छुट्टियों में मैंने कई विद्यार्थियों को रेस्तराँ में सफाई धुलाई, अस्पताल में मरीजों की सफाई सेवा आदि तथा बालवाड़ी या शिशुघरों में बच्चों की सार-सँभाल करते देखा है। वे कभी कभी सुबह ३ बजे उठकर अखबार बाँटते हैं और कभी ५ बजे उठकर आफिसों, दूकानों अथवा अन्य सार्वजनिक स्थानों के फर्श धोते हैं। इन सबमें उन्हें शिक्षण का हर सम्भव मौका देने का प्रयत्न लक्षित होता है, पर पुरुषार्थ उनका अपना है।

माध्यमिक शिक्षण

१४ वर्ष की उम्र के बाद अगला कदम किस दिशा में उठे यह विद्यार्थी की अपनी रुचि व उसके अभिभावक व शिक्षक की सलाह पर निर्भर करता है। पुस्तकीय, वैज्ञानिक या साहित्यिक रुचि रखनेवाले बुद्धि प्रधान विद्यार्थी उसी प्रकार के विषयों में प्रवेश पाते हैं। हस्त-कार्यों, मशीनों तथा व्यावहारिक कार्यों में रुचि रखनेवाले विद्यार्थी उसी तरह के विशेष शिक्षण में प्रवेश पाते हैं। ये दोनों प्रकार के स्कूल बराबर महत्त्व व मूल्य रखते हैं। इस प्रकार की रुचियों का अनुभव ६ठें व ७ वें वर्ष में विद्यार्थी, शिक्षक व अभिभाविक कर सकते हैं, क्योंकि हर प्राथमिक स्कूल इस प्रकार के साधनों व वातावरण से युक्त होता है।

शिक्षा मानवीय जीवन का एक सजीव अंग है। बच्चा विकसित होता हुआ एक सहज परिवर्तनशील सजीव मानव है। इसलिए उसकी शिक्षा नियमों, पुस्तकों या एकरूपता (यूनिफारमिटी) में बँधकर अपनी शक्ति खो देती है। डेनिश शिक्षा का ढाँचा इस दृष्टि से बड़ा लचीला है। वह सरकार पर इतना निर्भर नहीं करता जितना विद्यार्थी, शिक्षक प्रिन्सिपल या अभिभावक पर निर्भर करता है। विश्वविद्यालय के स्तर तक पहुँचने पर विद्यार्थी बालिग हो जाता है और वह अपनी शिक्षा के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होता है। शिक्षण क्रम में ही वह जान लेता है कि उसका जीवन-कार्य क्या होगा। उसका अपना आत्म विश्वास स्पष्टतः विकसित होने के आजाद मौके पा चुका होता है। इस तरह उसका व्यक्तित्व अपने स्वयं के रास्ते पर बिना किसी बाधा के विकसित होता जाता है।

शिक्षक की स्वतंत्रता

एक सप्ताह पूर्व मैं एक प्रारम्भिक स्कूल के प्रधान शिक्षक के घर पर थी। ग्रीष्मकालीन अवकाश के दिनों में उन्होंने नये साल में किस तरह विषयों शिक्षकों तथा समय की व्यवस्था करेंगे इसका एक बड़ा व्यवस्थित व सूक्ष्मपूर्ण खाका चित्र बनाया था। स्वयं शिक्षकों ने यह लिखकर दिया था कि वे नये वर्ष में किन विषयों तथा किन वर्गों को लेना चाहेंगे। स्कूल शुरू होने के दो दिन पूर्व सब शिक्षक व प्रधान शिक्षक इसपर विचार चर्चा व परामर्श करेंगे। प्रधान शिक्षक ने बताया कि इस वर्ष उन्होंने अँग्रेजी भाषा शिक्षण पर एक प्रयोग किया है। अँग्रेजी शुरू करने के निश्चित साल (जब कि आमतौर पर अँग्रेजी भाषा दूसरी भाषा के रूप में शुरू करनी होती है) के एक वर्ष पूर्व उन्होंने सप्ताह में एक पाठ अँग्रेजी बोलचाल व बातचीत के लिए रखा है। पुस्तक-द्वारा शिक्षण शुरू करने के पूर्व यह भूमिका सहज होगी। उन्होंने यह भी बताया कि उनके एक शिक्षक भूगोल शिक्षण में कुशल हैं और इस वर्ष उन्हें एक बड़ी रुचिपूर्ण पुस्तक इस विषय पर मिली है, जिसे वे अपने वर्ग में पाठ्य-पुस्तक के रूप में लेनेवाले हैं। इस तरह शिक्षक सरकार के हर इशारे पर चल-कर वेतनमात्र में रुचि रखते हुए नहीं चलता, वरन् वह कुशलता-पूर्वक शिक्षा में रुचि ले जुट सकता है। यह सरकार व शिक्षक, दोनों पर निर्भर करता है। वास्तव में यह दृष्टिकोण की बात है कि वह कितना जनतांत्रिक है। मुझे भारतीय प्रारम्भिक स्कूलों की वे पाठ्य-पुस्तकें याद आती हैं जो जलवायु, भौगोलिक स्थिति तथा सामाजिक वातावरण की भिन्नता के बावजूद एक ही हैं और शिक्षक उसके एक-एक शब्द से बँधा हुआ कोल्हू के बैल की तरह घूमता है।

स्कूल गांव का

ग्रामसभाएँ अथवा नगरपालिकाएँ इन स्कूलों की मुख्य संचालक है। डेनमार्क के ये प्रारम्भिक व माध्यमिक स्कूल याने विश्वविद्यालय के पूर्व के सारे स्कूल इन ग्रामसभाओं या नगरपालिकाओं (जिन्हें ये 'कम्यून' कहते हैं)-द्वारा चालित हैं। सरकार इन्हें शतप्रतिशत खर्च देती है। केवल शिक्षकों के प्रशिक्षण विद्यालय तथा विश्वविद्यालय सरकार-द्वारा चालित हैं। 'कम्यून' स्कूल की इमारत खड़ी करता है। शिक्षकों को चुनता है। पाठ्यक्रम तथा अन्य सब बातों पर शिक्षक-वर्ग तथा कम्यून बातें करते हैं तथा सरकारें उन्हें वेतन आदि का शतप्रतिशत खर्च देती हुई तनिक उनके बीच दखल नहीं देती जबतक स्कूल किसी विशेष समस्या में नहीं पड़ता। मैंने डेनमार्क के छोटे तथा थोड़ी आबादीवाले स्थानों में भी नयी अच्छी इमारत व सुन्दर साधनों से युक्त प्राथमिक व माध्यमिक स्कूल देखे हैं, जो किसी आधुनिक स्कूल से कम नहीं हैं तथा विद्यार्थी के लिए अनेक रास्ते देने में समर्थ हैं। यद्यपि इस छोटे से देश में जलवायु तथा रहन-सहन आदि की अत्यन्त भिन्नता नहीं है, तो भी 'कम्यून' व शिक्षक अपनी रुचि, आवश्यकता व अनुकूलता के अनुसार पाठ्य-पुस्तकें तथा कुछ आधारित विषयों को छोड़कर अन्य विषयों को बदल सकते हैं। इस निश्चय की सूचना सरकार को देने के अलावा वे अन्य बन्धन सरकार से नहीं पाते।

उच्च शिक्षण के लिए व्यावहारिक अनुभव

कृषि विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के पूर्व छात्र को एक 'फार्म' (कृषक की व्यक्तिगत खेती) में तीन वर्ष का अनुभव लेना आवश्यक है, तथा बाद को ८ या ६ माह के लिए कृषि हाई स्कूल में इसलिए जाना होता है कि वहाँ के व्यावहारिक व बौद्धिक दोनों के मिश्रित ज्ञान का लाभ ले सकें। इस प्रकार के एक स्कूल में मैं एक सप्ताह रही थी और वहाँ के वर्गों का मुझे ख्याल आता है। विद्यार्थी शिक्षक की बतायी बातों को ग्रहण करने की ही कोशिश नहीं कर रहे थे, वे कई व्यावहारिक अनुभवों, अड़चनों अथवा सुविधाओं के उदाहरण देकर चर्चा करके समझ रहे थे। उनके लिए पुस्तक में वर्णित—यन्त्र मिट्टी या पौधा, धरती पर की वनस्पति, खेती या मशीन से भिन्न नहीं थी। वहाँ सफेद वस्त्रों पर दाग आ जाने का भय टिकता न था।

यदि बालवाड़ी शिक्षिका बनना हो, तो एक साल के लिए किसी परिवार में बच्चों की देख-भाल का काम करें, अथवा किसी बालवाड़ी व शिशुघर में काम करें। मैं आजकल इस प्रकार के एक शिशुघर में दो-तीन सप्ताह के लिए काम कर रही हूँ। तीन विद्यार्थी बहनें जो अपनी मैट्रिक परीक्षा पूरी कर चुकी हैं, यहाँ बच्चों की सफाई, धुलाई, उनका पाखाना-पेशाब साफ करना, उन्हें खिलाना, सुलाना व बहलाना तथा उनके बरतन धोना व मकान के फर्श धोना आदि सारा काम करती हैं। दिन के ८–८ घण्टे इस तरह का काम वे इसलिए कर रही हैं कि अगले वर्ष प्रशिक्षण-विद्यालय में प्रवेश प्राप्त कर सकें।

इसी प्रकार इन्जीनियर, चिकित्सक, यन्त्रों के कारीगर या गोसवर्धन के विशेषज्ञ आदि को पहले व्यावहारिक अनुभव के लिए छोटे-से-छोटे काम में खटकर अनुभव लेना होता है। मुझे लगता है, शायद यही कारण है कि यहाँ के हर कार्य में, हर उत्पादन या निर्माण में, तथा हर व्यवस्था में टिकाऊपन व निपुणता का दर्शन होता है।

अभिभावकों की रुचि

विशेषत ७ वीं कक्षा तक के प्रारम्भिक स्कूलों में हर शिक्षक अथवा शिक्षिका साल या ६ माह में एक बार अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के अभिभावकों को कक्षा-कार्य के बीच निमंत्रित करते हैं, और स्कूल-समय के बाद शाम को अथवा शनिवार को दोपहर बाद अभिभावक व शिक्षक मिलकर चर्चा करें इसका आम रिवाज-सा बनता जा रहा है। मैं यह नहीं कहूँगी कि हर अभिभावक अपने बच्चे के बारे में पूर्ण सजग ही है, परन्तु कई व शायद अधिकांश अभिभावक सक्रिय रुचि लेते हैं।

नये स्कूल जो नये साधनों (वैज्ञानिक वस्तुओं) से युक्त हैं, अभी पर्याप्त नहीं हैं, अत स्वभावत स्कूल अधिक विद्यार्थियों से भरते जाते हैं। कभी-कभी एक स्कूल में डेढ़-दो हजार विद्यार्थी व सौ-सवा सौ शिक्षक

होते हैं। इस प्रकार के स्कूलों से अभिभावक व कई शिक्षक भी सन्तुष्ट नहीं हो पाते। क्योंकि इस प्रकार के स्कूल में एकरूपता तथा अनुशासन के निर्जीव तरीके अनिवार्यतः आ जाते हैं। अतः कई ऐसे प्राइवेट स्कूल खुल रहे हैं जो वास्तव में कुछ शिक्षकों तथा अभिभावकों के प्रयास हैं जहां संख्या कम तथा वातावरण पारिवारिक होता है। ये स्कूल सरकार से केवल ८५ प्रतिशत ही मदद पाते हैं पर अभिभावकों की रुचि के बलपर वे आसानी से चल रहे हैं। लगता है अगले एक-दो वर्ष में सरकार इन्हें पूरी मदद देने लगे। यह अभिभावकों की सजग रुचि का एक उत्तम उदाहरण है।

निर्माण का प्रमुख आधार

मुझे नहीं मालूम कि इस लेख से यहां की शिक्षा के बारे में पाठक कितना समझ पायेंगे—परन्तु मैं चाहती हूँ कि इनके पीछे छिपी लोकशक्ति को पाठक समझें। इन स्कूलों को जितना मैं समझती गयी हूँ मुझे उतनी बार विनोबाजी के शब्द याद आते हैं— ग्रामदानी गांव अपने बच्चों के शिक्षण के लिए सरकार का मुंह नहीं ताकेगा। हमारे कामों के जिम्मेवार तथा पहल कर्ता हम ही होंगे। शिक्षा, न्याय, अर्थव्यवस्था का स्वरूप हम निश्चय करेंगे व सचालित करेंगे। सरकार तो एक धागे के रूप में विभिन्न ग्रामरूपी फूलों को जोड़ने का काम करेगी।' इस शिक्षा-पद्धति में मुझे वह कल्पना साकार दीखती है। 'लोकशक्ति प्रमुख तथा सरकार उसकी पूरक', इस रूप का दर्शन होता है।

आज भारत में ग्रामदान तूफान चल रहा है। जनता को कदम उठाना है निर्माण का, और उसके लिए शिक्षा प्रमुख आधार है। हर देश की परिस्थिति संस्कृति तथा आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। उनके अनुसार उसकी अपनी विशिष्टता सदा बनी रहनी है जो बनी रहनी चाहिए। परन्तु कुछ शाश्वत मानवीय मूल्य हैं जो जागतिक हैं और उनकी सफलता हमें प्रेरित करती है। उस प्रेरणा को ग्रहण करने की ताकत हमारी अपनी है। यदि भारत अपनी शक्ति की सीमा के भीतर ऐसा प्रयास करे तो मुझे सफलता की कई सम्भावनाएँ दीखती हैं।●

पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग

●

श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

पाठ्य पुस्तक अधिकारी (उत्तर प्रदेश)

पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग सम्बन्धी प्रश्नों और पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है। ये प्रश्न मुख्य रूप से दो हैं—

१ पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है? और

२ इनका प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए?

जहांतक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है अभीतक इस विषय का हुआ ऐसा कोई शोध या सर्वेक्षण-कार्य इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी में नहीं है जिसके आधार पर पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग किये जाने की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला जा सके। यों सामान्य तौर पर, प्राय यही सुनने में आता है कि पाठ्य पुस्तकों का जैसा उचित वांछित और प्रभावशाली रूप में प्रयोग होना चाहिए वैसा हो नहीं रहा है। प्रश्न उठता है क्यों?

- क्या अध्यापकों की इस दिशा में क्या कठिनाइयां हैं?
- क्या जो पाठ्य पुस्तकें उन्हें पढ़ाने को दी जाती हैं उनकी पाठन विधियों से वे परिचित नहीं होते?
- क्या वे पाठन विधियां शास्त्रीय अधिक होती हैं और व्यावहारिक कम?
- क्या अध्यापकों के पास उनको पढ़ाने के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध नहीं हैं?
- क्या विद्यालय का टाइम-टेबुल ऐसा है कि उसमें निर्धारित समय के अनुसार शिक्षक उन पुस्तकों

को यथोचित ढग से प्रयोग म अपने को असमथ पाते हैं ?

- क्या वतमान शिक्षा प्रणाली के उददेश्य ही कुछ एसे हैं जिनको ध्यान म रखते हुए उन पाठ्य पुस्तको का उस ढग से पढाना सम्भव ही नही है जिस ढग मे वे चाहते ह ?
- क्या वे स्वय ही उस काय के लिए वाछित योग्यता और शिक्षण प्राप्त नही हैं ?
- क्या पाठ्य पुस्तकों म वर्णित विषय छात्रो के स्तर के अनुकूल नही होते ?
- क्या विषयों के प्रतिपादन की भाषा और शैली उनके लिए कठिन या अरोचक होती है ?
- क्या पाठ्य-पुस्तको म दिये गये चित्र ग्राफ आदि बहुत स्पष्ट नही होते ?
- क्या पाठ्य-पुस्तको म प्रयुक्त कागज टाइप स्याही तथा उनकी छपाई छात्रो के मनोनुकूल नही होती ?
- क्या पाठ्य पुस्तको म दी हुई सामग्री बहुत कम होती है या बहुत अधिक ?
- क्या छात्रो के पास पाठ्य-पुस्तका की कमी को पूरा करने के लिए अन्य आवश्यक पठनीय सामग्री का अभाव होता है ?

ये तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक एसे प्रश्न हैं जिनपर विचार की आवश्यकता है तथा इस दिशा म ठोस काय किया जाना वाछनीय है । शैक्षिक दृष्टि से इन कार्यों की महत्ता पर बल देने के लिए किसी तक की आवश्यकता नही है क्योकि जबतक स्पष्ट रूप म ज्ञात न होगा कि शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर पाठ्य-पुस्तक किस प्रकार प्रयुक्त की जा रही ह तबतक ऊपर उल्लिखित दूसरे प्रश्न म वाछित सुझावो का देना एक ओर तो बहुत कुछ किन्हीं ठोस आधारो पर न होगा और दूसरी ओर अधूरा भी । फिर भी किसी एसे शोध या सवक्षण-कार्य के अभाव म दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध म निम्नाकित पक्तियो म कतिपय विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

पाठ्य पुस्तको का प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए ? इस प्रश्न के उत्तर पर निम्नाकित दो दृष्टियों से विचार करना होगा—

१ अध्यापको को पाठ्य-पुस्तको का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए ।

२ विद्यार्थियो को पाठ्य-पुस्तको का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए ।

सवप्रथम हम अध्यापको-द्वारा पाठ्य-पुस्तको के प्रयोग पर विचार करेंगे । इस सम्बन्ध में निम्नाकित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं

अध्यापकों-द्वारा पाठ्यक्रम का अध्ययन

इस अध्ययन-द्वारा उन्हे इस बात का पूरा-पूरा स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए कि सम्बन्धित कक्षा के विद्यार्थियो को पूरे वर्ष में उस विषय का कितना ज्ञान दिया जाना अपेक्षित है । इसके साथ-साथ उनके लिए उसी कक्षा के अन्य विषयो के पाठ्यक्रम का भी एक साधारण अवलोकन और अध्ययन कर लेना बडा उपादेय होगा । इससे वे अन्य विषयो के अन्तगत पढाये जाने वाले उन प्रसगो का अपने विषय के पढाने में लाभ उठा सकेंगे जिनको कि वे अपने विषय की सम्यक पढाई के लिए सहायक समझते हो । इससे छात्रो की एक विषय की पढाई दूसरे विषयो की पढाई से यत्र-तत्र सम्बद्ध भी होगी और उस कक्षा के सभी पाठ्य विषय एक दूसरे से ग्रथित प्रतीत होंगे । उपयुक्त के अतिरिक्त यदि एक कक्षा पहले और एक कक्षा आगे के सम्बन्धित विषय के पाठ्यक्रम का भी एक साधारण अवलोकन और अध्ययन कर लिया जाय तो और भी अधिक लाभप्रद होगा ।

स्वीकृत पाठ्य पुस्तको का परिचय

जिस प्रकार एक कारीगर अपने औजार या मशीन का प्रयोग करने से पहले उससे पूणतया अवगत हो लेता है उसी प्रकार अध्यापको को भी पाठ्य पुस्तको से जो उनके साधन ह उनके प्रयोग के पूव पूर्ण परिचित हो जाना अपेक्षित है। पाठ्य-पुस्तको से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए निम्नाकित सुझाव सहायक हो सकते हैं —

(क) सम्बन्धित पाठ्य पुस्तक के लेखक । सम्पादक द्वारा लिखी गयी उस पुस्तक की भूमिका का सम्यक पठन । भूमिकाओ में लेखक । सम्पादक प्राय सम्बन्धित पुस्तक की रचना के सामान्य और

विशिष्ट उद्देश्य, उसके निर्माण के आधार तथा उसके अध्यापन आदि के सम्बन्ध में कुछ मोटी-मोटी बातों का उल्लेख करते हैं। अध्यापकों के लिए *इन सब की पूर्ण जानकारी परमावश्यक है।* यदि उनको अपनी पाठ्य-पुस्तक के सामान्य और विशिष्ट उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से ज्ञान नहीं होगा, तो उस पुस्तक का उनका पढ़ाना वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति में कदापि सफल नहीं हो सकेगा।

(ख) पाठ्य-पुस्तक में क्या-क्या पाठ्य सामग्री है और कहाँ, कहाँ इसका ज्ञान।

(ग) पाठ्य-पुस्तक और पाठ्यक्रम में दी हुई पठन-सामग्री के प्रसंगों का तुलनात्मक अवलोकन एवं अध्ययन, जिससे यह ज्ञात हो सके कि निर्धारित पाठ्य-पुस्तक में वह सब सामग्री है या नहीं जो स्वीकृत पाठ्य विषय में दी हुई है।

(घ) लेखक सम्पादक-द्वारा पाठ्य-पुस्तक में दी हुई पठन-सामग्री के प्रस्तुतीकरण, आयोजन और गठन का अध्ययन।

(ङ) लेखक सम्पादक द्वारा प्रस्तुत पठन सामग्री के पढ़ाने के लिए प्रस्तावित शिक्षण विधियों, संकेतों प्रश्नों, अभ्यासों आदि का अवलोकन।

(च) पाठ्य-पुस्तक में चित्रों रेखाचित्रों ग्राफों आदि के रूप में दी हुई सहायक सामग्री का अवलोकन।

पठन-सामग्री का आयोजन और पुनर्गठन

लेखक सम्पादक पाठ्य-पुस्तक में सम्मिलित पठन-सामग्री को अपनी रुचि और अपने विचारों के अनुसार आयोजित और गठित करता है। यद्यपि वह अपनी ओर से भरसक प्रयास यही करता है कि उसका वह आयोजन और गठन आदर्श हो, तथापि, अध्यापकों को उसके द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था को अन्तिम नहीं मान लेना चाहिए। कक्षा के अन्दर और बाहर के जिस वातावरण और जिन स्थितियों को सोचकर, सामने रखकर, पाठ्य-पुस्तक-निर्माता ने अपनी पठन सामग्री को संजोया है, सम्भव है अध्यापक जिस कक्षा में उस पुस्तक को पढ़ाना चाहता है उस कक्षा के भीतर और बाहर का वातावरण और स्थितियाँ उनसे कुछ भिन्न हों। और यह स्वाभाविक भी है। अतएव अध्यापक को चाहिए कि वह पाठ्य-पुस्तक में संकलित या लिखित पठन सामग्री का अपने विद्यार्थियों की स्थितियों के अनुकूल पुन आयोजन और गठन कर ले। उसे पाठ्य-पुस्तक रचयिता के क्रमायोजन से सर्वथा बँधा रहने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। हाँ इस पुनर्गठन और आयोजन में उसे इस बात का ध्यान अवश्य रखना है कि विद्यार्थियों को उस विषय-विशेष के सम्बन्ध में जो बातें बतायी जानी हैं, उनकी क्रमबद्धता और अविच्छिन्नता बनी रहे।

जिस प्रकार अध्यापक-द्वारा पाठ्य-पुस्तक में दी हुई पठन-सामग्री आवश्यकतानुसार पुन आयोजित और गठित की जा सकती है उसी प्रकार वह उस पाठ्य-सामग्री के पढ़ाने की प्रस्तुत योजना में भी कक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल हेर फेर और संशोधन कर सकता है और उस योजना को उन आवश्यकताओं के अनुकूल ढाल सकता है। पाठ्य-पुस्तक का रचयिता अपनी पुस्तक में पढ़ाने की जो भी योजनाएँ प्रस्तुत करता है, वह उस कक्षा के एक औसत स्तर के छात्रों को सामने रखकर ही करता है। अत कक्षा की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार उस पाठन-योजना को अनुकूलित कर लेना हितकर ही होता है।

पाठ्य-पुस्तक का समय विभाजन

प्राय यह देखने में आता है कि शैक्षिक वर्ष के आरम्भ में तो अध्यापक धीमे धीमे पुस्तक पढ़ाते चलते हैं, किन्तु वर्ष के अन्त के दिनों में बड़ी तेजी से कोर्स को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। परिणाम यह होता है कि पूरी पाठ्य-सामग्री को, जो एक-सा समय मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाता। फलस्वरूप पाठ्य-पुस्तकों के कुछ अंश तो अच्छी तरह विस्तारपूर्वक पढ़ा दिये जाते हैं और कुछ को अधिकांशत कोर्स पूरा करने की दृष्टि से एक प्रकार से जल्दी-जल्दी पढ़ाभर दिया जाता है। इससे अध्यापक पर तो वर्ष के अन्त में कार्य का बोझ बढ़ता ही है, छात्रों को भी दिक्कत और परेशानी होती है, विषय के साथ न्याय नहीं हो पाता, यह बात तो है ही। इसके अतिरिक्त छात्रों के मन और मस्तिष्क पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। उनमें इस

प्रकार के विचारों का उत्पन्न होना सम्भव है कि जो पाठांश जल्दी जल्दी में पढाये गये हैं वे या तो आवश्यक नहीं हैं या शिक्षक को स्वय उनके विषय में कोई जानकारी नही है। इससे उनके मन में विषय के प्रति एक प्रकार की अरुचि और शिक्षक के प्रति कुछ अश्रद्धा की भावना भी उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार पूरे शैक्षिक वर्ष के लिए उचित ढग से आयोजित पाठन क्रिया के बिना पढाने से छात्रा पर, अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, अनेक कुप्रभावा के पडने की सम्भावना हो सकती है।

अतएव यह परमावश्यक है कि अध्यापको-द्वारा वर्ष के आरम्भ में ही पूरे शैक्षिक वर्ष के लिए पाठ्य-पुस्तक की सामग्री का मोटे तौर पर समय विभाजन कर लिया जाय। इसके लिए अवकाश, पाठान्तर क्रियाएँ खेलकूद आदि को ध्यान में रखते हुए दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक कार्यक्रम बना लिये जायें और यथा सम्भव तदनुसार चलने का प्रयत्न किया जाय। हाँ, यह स्मरण रहे कि इस समय-विभाजन का एकदम आँख मूँद कर ही अनुसरण न किया जाय, आवश्यकतानुसार, उसमे हेर-फेर भी किया जा सकता है। यह तो काम को सुचारु रूप से सचालित करने का एक साधन मात्र है साध्य नही।

इस सम्बन्ध मे एक बात और उल्लेखनीय है, और वह यह कि कुछ पाठ्य पुस्तकें दो वर्ष के लिए होती हैं। दूसरा वर्ष परीक्षा का अन्तिम वर्ष होना है, अतएव उस वर्ष अध्यापकों को तथा विद्यार्थियो को उन पाठ्य पुस्तका को पढने-पढाने के लिए पहले वर्ष की अपेक्षा कम समय मिल पाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए ऐसी पुस्तकों को पढने पढाने की योजना इस प्रकार बनायी जानी चाहिए कि पहले वर्ष में उसका अपेक्षाकृत अधिक अश समाप्त हो जाय जिससे कि अगले वर्ष उनके पढाने में समय का अभाव न महसूस हो और छात्रों को उनके दुहराने के लिए तथा गहन अध्ययन के लिए अधिकाधिक अवसर मिल सके। ऐसी पुस्तकों के पढानेवाले अध्यापका के विषय मे प्रधानाध्यापका के लिए यह अत्यावश्यक है कि वे दोना वर्षों में एक ही अध्यापक-द्वारा उन पुस्तका को पढवाने की व्यवस्था करें जिससे कि उनकी पढाई में एकरूपता और क्रमबद्धता बनी रहे।

पाठ्य-पुस्तको की अपनी सीमाएँ होती हैं—पृष्ठो के कारण, जितनी अवधि में वे पढ़ाई जानी होती हैं उस अवधि के कारण तथा मूल्य के कारण। अतएव लेखक या सम्पादक उनमें, सक्षेप में, चुनी हुई अत्यावश्यक पठन-सामग्री का ही समावेश करता है। इसी प्रकार अभ्यास, चित्र, उदाहरण आदि के रूप में उनमें जो सहायक सामग्री सन्निहित रहती है, वह भी उतनी ही होती है जितनी कि उपर्युक्त सीमाओ में सम्भव है। इसलिए यह हो सकता है कि अध्यापक और विद्यार्थी सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग करते समय पठन तथा सहायक सामग्रियों में यत्र-तत्र कुछ अभावों का अनुभव करें। इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अध्यापक उन अभावो की पूर्ति के लिए बाहर से सामग्री जुटायें। मूल विषय में जो कमी हो उसे अन्य पुस्तकों से लें तथा अभ्यास, उदाहरण, चित्र आदि सहायक सामग्री में जो कमी हो उसकी वे स्वय पूर्ति करें।

प्रश्नो, अभ्यासा तथा निर्देशों के रूप में जो सामग्री पाठ्य-पुस्तको में दी रहती है, अध्यापक प्राय उस ओर विशेष ध्यान नही देते, पाठ की मूल सामग्री को ही पढाने में अपना कर्त्तव्य समाप्त समझ लेते हैं। ऐसा नही होना चाहिए। प्रश्न अभ्यास आदि की उपेक्षा से सम्बन्धित विषय वस्तु के अध्यापन में बडी भारी कमी की सम्भावना रह सकती है, अत इनकी ओर भी शिक्षका का पर्याप्त ध्यान अपेक्षित है।

पाठ की पूरी तैयारी

यह तो स्वय ही स्पष्ट है कि अध्यापक जिस पाठ या यूनिट को कक्षा में पढाने के लिए ले, उसे कक्षा में प्रवेश करने के पहले, उसकी पूर्ण रूप से तैयारी कर लेनी चाहिए। उन्हें यह देख लेना चाहिए कि वे जो कुछ पढाने जा रहे हैं वह उन्हें स्वय ही स्पष्ट है अथवा नही। साथ ही उस विषय को पढाने से सम्बन्धित जितनी भी सहायक सामग्री—चित्र, माडेल, चित्र पट्टियाँ, चलचित्र आदि आवश्यक हो, वे सब उसके पास है या नही, यह भी उसे पहले ही से भली भाँति देख लेना चाहिए और यथासम्भव इनको लेकर ही कक्षा में प्रविष्ट होना चाहिए। ●

यह सब हुआ कैसे !

•

जयप्रकाश नारायण

विनोबाजी के विषय में सबसे पहले बजाजवाड़ी वर्धा में कमलनयन जी आदि से प्रशंसा सुनी थी। वह पिछले महायुद्ध के पहले की बात है। शायद कांग्रेस वर्किंग कमिटी की कोई बैठक उस समय वहाँ थी। कमलनयनजी ने कहा था कि विनोबाजी से मुझे अवश्य मिलना चाहिए। परन्तु उस समय तो वह सम्भव न हो पाया था। बाद में महिलाश्रम में उनसे भेंट हुई थी— वह भी युद्ध के पहले की बात है। उसके बाद जब वर्धा जाता था, कभी-कभी उनसे भी भेंट करता था।

उस समय की स्मृति धुंधली हो चुकी है, पर इतना याद आता है कि राजनीतिक प्रश्नों पर ही उनसे चर्चा होती थी, जिनमें समाजवाद भी होता था। रचनात्मक कार्य, अहिंसा, अध्यात्म आदि की चर्चा नहीं होती थी, क्योंकि इन विषयों में मेरी रुचि कम थी। कौन-सी राजनीतिक चर्चाएँ होती थीं, इसका स्मरण तो नहीं है, परन्तु इतना ध्यान में आता है कि मुझपर बराबर यह असर पड़ता था कि विनोबाजी एक अत्यन्त सूक्ष्म विचारक हैं, बड़े विद्वान तथा छुरे की तरह तीक्ष्ण बुद्धिवाले।

बाद में आया युद्ध, बयालीस की क्रान्ति, दुनिया के उलट-फेर, जेलों में चिन्तन-मनन, विचारों का संशोधन-विराम, गांधीजी के प्रति बढ़ती हुई श्रद्धा—

स्वतन्त्रता, भारत विभाजन हिन्दू मुसलिम दंगे, गांधीजी की हत्या, सेवाग्राम का सम्मेलन, वहाँ विनोबाजी की तरफ सबकी निगाहें—

विनोबाजी की तेलंगाना-यात्रा, भूदान का प्रादुर्भाव। प्रथम शंकाएँ, अधिक परिचय, विनोबाजी से सौदा में मुलाकात। भूदान आन्दोलन में प्रवेश। सभा में दानों की झड़ी। चाण्डिल सर्वोदय सम्मेलन, 'मैं तो विनोबाजी का भक्त बन गया हूँ,' आन्दोलन की गहराई में डूबना, बोधगया का जीवन-दान—एक लम्बी कहानी, जिसके कहने का कभी समय मिलेगा ऐसा लगता नहीं। रुचि भी नहीं। बेटियों का आग्रह है, इसलिए इतना लिखता हूँ।

भूदान-ग्रामदान आन्दोलन की शोहरत बाजारों में नहीं है, अखबारों में नहीं है, धारा-सभाओं में नहीं है। पर मुड़कर पीछे देखनेपर आश्चर्य होता है कि यह सब हुआ कैसे ! लाखों एकड़ों का भूदान, हजारों ग्रामदान। और कितने समय में? एक शताब्दी, आधी? चौथाई? नहीं फकत १५ बरस हुए।

कैसे हुआ यह सब? जमीन जैसी प्यारी वस्तु का त्याग इतने बड़े पैमाने पर। इससे भी अधिक आश्चर्य— स्वामित्व जैसे अधिकार का स्वैच्छिक विसर्जन। लाखों एकड़ जमीन का दान मालिकों के द्वारा। केवल छोटे मालिक नहीं, बड़े भी। अभी मदुरै जिले के बेलूर तालुके का दान हुआ। सरसब्ज तालुका, कीमती सिंचित भूमि ! बिहार में बीहपुर, गोपालपुर प्रखण्डों के दान ! बड़े-बड़े

सुखी किसान। सारा इलाका राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण। साम्यवादियों का जोर। उत्कल, महाराष्ट्र मध्यप्रदेश असम उत्तराखण्ड सब जगह तूफान। जिला दान प्रदेशदान के मनसूबे। यह सब कैसे ?

ईश्वर की कृपा ? युग का सन्देश ? अवश्य। परन्तु इतिहास के स्थूल नयनो को दीखता है एक अधनगा कृशगात्र मानव। तो क्या उसका तप जादू कर रहा है ? उसका सातत्य चरैवेति चरैवेति ? उसकी विद्वता ? उसका अध्यात्म ? या यह सब इकट्ठा ? हो सकता है। कौन जाने। लेकिन कुछ है अवश्य। कोई शक्ति उस दुबले, पतले दाढ़ीवाले बाबा में। मानवी कहो दैवी कहो।

ग्रामदान १९५२ में ही शुरू हो चुका था। ६५ के अप्रैल मास तक बिहार में ३०० के लगभग ग्रामदान थे—पुराने और नये। उनको भी हम कम नही मानते थे। लेकिन उस बाबा के मुँह से निकला— 'माइ लास्ट ऐंड बेस्ट' (अन्तिम और सर्वोत्तम) अगर तूफान खड़ा करें—६ महीने में १०,००० ग्रामदान —तो मैं बिहार आने को तयार हूँ। क्या शक्ति है इन शब्दो में ? लेकिन वही बिहार, वही बिहार के लोग वही ढीले-ढाले कार्यकर्ता जो १२ बरस में ३०० ही ग्रामदान प्राप्त कर पाये थे, सकल्प कर बैठे १० ००० का। बाबा बिहार पहुँचे। ६ के बदले १२ महीना में १० ००० से अधिक ही हो गये ग्रामदान। और २२ प्रखण्डदान। १९६५ अप्रैल के पहले हम बिहारवाले कल्पना भी नही कर सकते थे कि १२ महीना में ३०० के १० ००० हो जायेंगे।

अगर बाकी सब कुछ होता, बाबा न होता तो क्या होता ? जब वह न होगा, तो क्या होगा ? हम न होंगे तो क्या होगा ?

('मैत्री' से साभार)

कर्त्तव्य-परायणता

•

तारकेश्वर प्रसाद सिंह

छोटे बच्चो के जीवन का निर्माण माँ-बाप के अतिरिक्त उन गुरुजनो से होता है जिनपर बच्चो की शिक्षा का दायित्व है। मनोविज्ञान-वेत्ता ऐसा मानते है कि बच्चो के विकास की प्रगति सात वर्ष की उम्र तक अधिक रहती है। इस आयु मे बच्चो के मस्तिष्क पर परिस्थितियो का जो प्रभाव पड़ता है वह अधिकतर जीवनभर टिकता है। इसलिए यह आयु बच्चो के निर्माण की दृष्टि से बहुत नाजुक है। बच्चों का सब प्रथम गुरु माँ है। उसके बाद पिता परिवार तथा इसके बाद गाँव के लोग और समाज के लोग। अफसोस है हमारे देश में न तो किसी वर्ग व जाति व परिवार के सभी सदस्य इस प्रकार शिक्षित है कि वे अपने इस दायित्व को सफलतापूर्वक निबाह सकें। इसलिए बच्चा बहुत-ही बुरी आदतो को सीखकर पाठशाला में दाखिल होता है। जैसे-नशीली वस्तुओ का व्यवहार, बुरी बातो को कहना, झूठ बोलना, चोरी करना एक दूसरे की निन्दा करना, एक दूसरे से लड़ाई करना इत्यादि। इन बुरी आदतों

से बच्चो का मुक्त कराना प्राथमिक वर्ग के शिक्षकों का कर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार विचारपूर्वक सोचने पर ऐसा मालूम होता है कि शिक्षकों का कर्त्तव्य बच्चों के घर पर पड़े हुए बुरे प्रभाव को दूर करना तथा उनकी जगह पर अच्छे प्रभाव का डालना होता है। इसी कारण शिक्षक राष्ट्र निर्माता कहा जाता है क्योंकि कोई भी राष्ट्र अच्छे नागरिकों से अच्छा बनता है। अच्छी शिक्षा की बुनियाद बचपन से पड़ती है तभी बच्चे आगे चलकर सच्चरित्र और ईमानदार बनते हैं। यदि किसी राष्ट्र के नागरिकों में इन गुणों का विकास हो जाता है तो उस राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह शासन का क्षेत्र हो या निरीक्षण या शिक्षण का हो, उनमें मितव्ययिता, ईमानदारी, सच्चरित्रता इत्यादि आपसे आप आ जाती है। राष्ट्र निर्माण की नींवें उसके नागरिकों की मितव्ययिता ईमानदारी, सच्चरित्रता, मस्तिष्क की विशालता स्वावलम्बन, किसी प्रकार की संकीर्णता का अभाव आदि गुण रूपी ईंट पर ही सुदृढ़ होती है। ऐसा मानना ही होगा कि शिक्षक इन गुणों के विकास में बहुत कुछ योगदान दे सकता है।

आजतक प्राथमिक वर्गों के शिक्षक अल्प वेतन के कारण आर्थिक बोझ से दबे रहते थे। लेकिन अब तो बिहार सरकार ने उनकी इस कठिनाई को एक हद तक दूर कर दिया है। अब शिक्षकों को देश की आर्थिक स्थिति के अनुकूल वेतन मिल रहा है। शिक्षकों के ओठों पर एक मुस्कराहट दीख पड़ती है। अब शिक्षक सुखी होंगे तो उनकी रहनुमाई में रहनेवाले बच्चे भी प्रसन्न चित्त रहेंगे। समाज का प्रत्येक व्यक्ति आज शिक्षकों से यह प्रश्न पूछने ही वाला है कि सरकार ने तो अपना कर्त्तव्य कर दिया—'क्या शिक्षक भाई सचमुच में बदली हुई परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य को दूने उत्साह और कर्त्तव्य परायणता से पूरा कर रहे हैं?' आज तक के शिक्षक संघ का उद्देश्य एक मात्र अपने शिक्षक भाइयों के आर्थिक संकट को दूर करना था। अब संघ का कर्त्तव्य वास्तविक रूप से शिक्षकों के भीतर कर्त्तव्य-परायणता का प्राण उड़ेलना है। ऐसा होगा तभी जिन लोगों ने शिक्षकों के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए प्रयास किया है उन्हें वास्तविक रूप से आनन्द का अनुभव होगा। मैं यह मानता हूँ कि आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी रहती हैं। शिक्षक भी आदमी है। उसकी भी व्यक्तिगत, पारिवारिक सामाजिक, शासकीय आदि समस्याएँ हो सकती हैं। इस प्रकार की समस्याएँ प्रत्येक कर्मचारी के सम्मुख होती हैं। समस्याओं का समाधान करना प्रत्येक व्यक्ति का जीवन धर्म होता है। जो व्यक्ति सफलतापूर्वक अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझा लेता है वह जीवन में उत्तरोत्तर तरक्की करता है और जो उनसे कतरा जाता है वह कायर कहलाता है। जिस प्रकार सरकारी या गैरसरकारी क्षेत्रों में कार्य करनेवाले कर्मचारी अपने कर्त्तव्य के सामने अपनी व्यक्तिगत समस्याओं की परवाह नहीं करते उसी प्रकार शिक्षक को भी अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को अपने दैनिक कर्त्तव्य क्षेत्र में नहीं उतारना चाहिए। आज इस बात की जरूरत है कि चाहे जिस क्षेत्र में कोई व्यक्ति काम करता हो वह पूरे दिल और दिमाग से काम करे। खेत में हल जोतनेवाला मजदूर जब पूरी लगन से काम करेगा तब ही खेत की अच्छी जुताई होगी। घास वगैरह साफ हो जायगी और उसमें जो पौधे उगेंगे वे अधिक फलदायी होंगे। उसी तरह यदि शिक्षक पूरी तैयारी तथा लगन के साथ वर्ग में बच्चों को पढ़ायेंगे तो बच्चे राष्ट्र के सफल नागरिक होंगे। यदि राष्ट्र को प्रत्येक व्यक्ति का इस प्रकार का श्रम मिलेगा तो राष्ट्र के उत्पादन में वृद्धि होगी और राष्ट्र की शस्यश्यामला उर्वर भूमि में फलदायक पौधे मस्ती से झूम सकेंगे। तब राष्ट्र में पूरी दौलत हो जायगी और राष्ट्र के कर्णधार प्रत्येक व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक भी दे सकेंगे। एक शिक्षक के नाते अपने शिक्षक बन्धुओं से मैं आशा करता हूँ कि वे राष्ट्र निर्माण में योगदान देने से पीछे नहीं हटेंगे। ●

जहाँ आदर्श ज्वलन्त रहे और दिल अडिग रहे, वहाँ असफलता नहीं हो सकती। सच्ची असफलता तो सिद्धान्त के त्याग में, अपने हक को जाने देने में और अन्याय के वशीभूत होने में है। विरोधियों के किये हुए घावों की बनिस्पत अपने किये हुए घाव भरने में हमेशा देर लगती है।

—जवाहरलाल नेहरू

छात्रों का सैन्य प्रशिक्षण

•

के० एस० आचार्लू

सैनिक प्रशिक्षण व्यक्ति के विकास में सबसे बड़ा अवरोधक तत्त्व है। क्योंकि व्यक्ति के पास जो भी लक्ष्य और अधिकार एक नागरिक की हैसियत से प्राप्त होते हैं एक सैनिक प्रशिक्षार्थी उनसे वंचित होता है। उसके व्यक्तिगत जीवन के उद्देश्यों, व्यक्तित्व और निजी चाहों का अपने आप में न तो कोई मूल्य ही होता है और न कोई स्थान ही। उसकी बस शत्रु की शक्ति, योग्यता और चरित्र की तुलना में महत्ता रहती है। सैनिक संगठन का स्वरूप व्यक्ति को उसके अधिकारों और निजी उद्देश्यों से च्युत करके अकेला बना देने का होता है जो आगे चलकर एक इकाई का निर्माण करता है। मानव के प्रति उसमें पूर्ण अनास्था होती है। दूसरी ओर हमारा शिक्षण यदि ईश्वर के प्रति निष्ठा न बढ़ा सके तो मनुष्य के प्रति निष्ठा बढ़ानेवाला होना ही चाहिए। मानव जाति के प्रति निष्ठा, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और स्वयस्फूर्त व्यक्ति के लिए आदर हमें सीखना ही चाहिए, क्योंकि वह स्वतंत्र समाज के लिए आधार बनाते हैं।

मूल पर प्रहार

शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में ऐसी आदतें डालना, ऐसे दृष्टिकोणों का निर्माण करना और ऐसे चारित्रिक गुणों का विकास करना है जिनसे किसी प्रजातांत्रिक समाज को निर्माणरत नागरिक प्राप्त हो सकें, जिनमें सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय के प्रति निष्ठा हो और जो विचार-स्वातंत्र्य, विचार-अभिव्यक्ति, अवसरों एवं पदों की समानता और विश्वबन्धुत्व में विश्वास रखते हों। प्रजातांत्रिक राष्ट्र में राजनीतिक विचारधाराओं के साथ शिक्षण का सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिए। शिक्षण में प्रजातंत्र का अर्थ एक ऐसे समाज का निर्माण करना होना चाहिए जो मानव-जाति की समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व का पोषक हो। प्रजातंत्र में ऐसे शिक्षण का कोई महत्व नहीं जिसमें व्यक्ति न तो स्वयं कोई निर्णय ले सके और न अपने विचारों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन ला सके। यदि हम अपने राष्ट्र के युवक और युवतियों को यह समझाते हैं कि दुनिया में एक ही विचारधारा सही है और जो लोग इससे भिन्न मत रखते हैं वे गलत हैं और उन्हें जेल के सीकचों के भीतर बन्द कर देना चाहिए तो हम अपने नागरिक को स्वस्थ प्रजातांत्रिक शिक्षण नहीं देते। ऐसी शिक्षा प्रदान करने से क्या लाभ जिसमें मानव के प्रति निष्ठा न बढ़े, स्वातंत्र्य के भाव न जागृत हों और जिसमें शिक्षार्थियों में अभिक्रम जगाने के लिए कोई स्थान न हो? अतः यह स्पष्ट है कि सैनिक प्रशिक्षण प्रजातंत्र के मूल पर ही प्रहार करता है और प्रजातांत्रिक परम्पराओं की अवहेलना करता है।

उपर्युक्त चर्चा के सन्दर्भ में, जिसमें प्रजातांत्रिक समाज की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है और जिस समाज के निर्माण के लिए शिक्षण छात्र तैयार करता है उससे स्पष्ट है कि सैनिक प्रशिक्षण के पक्ष में दिया गया यह तर्क कि इससे स्वस्थ नागरिक और चरित्र के विकास में बल मिलता है असत्य सिद्ध हो जाता है।

क्या यह न्यायसंगत है कि हम उन सभी युवक और युवतियों को एक ऐसी उम्र में जब कि उनपर अधिकाधिक प्रभाव डाला जा सकता है यह बतलायें कि वे अपने ही भाइयों को खतरनाक जानवर समझें। उनका शिकार करना, उन्हें पीड़ा पहुँचाना और उनकी हत्या करना ही उनका कर्त्तव्य है? क्या यह उचित है कि आशाभरे युवकों को सिखलाया जाय कि वे मानव-जाति का वध निर्दयतापूर्वक, मन में चल रही सभी बुरी भावनाओं को एक साथ बटोरकर, कीड़े-मकोड़े की तरह लाखों की संख्या में मार डालें और इस संहार का आनन्द एक पियक्कड़ की भाँति उठायें? क्या हमारा आचार शास्त्र कहता है कि हम अपने किशोरों में एक ऐसी भावना भरें जिससे वे मानवीय कष्टों के प्रति उदासीन रहें इतना ही नहीं वरन् पाशविकता पर भी उतर सकें? जब हम अपने छात्रों को ऐसी शिक्षा देते हैं जिससे वह सारी दुनिया को हथौड़ा और ठीहा, मेमना और भेड़िया तथा त्राता और त्रस्त में बँटा हुआ देखने लगता है तो हम सचमुच ही, आचारशास्त्र की मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। शिक्षण का उद्देश्य सिर्फ बन्धुत्व के भाव यानी भारतीय बन्धुत्व के भाव ही नहीं वरन् विश्व-बन्धुत्व के भाव का संचार करना होना चाहिए।

सैनिक-प्रशिक्षण के दोष

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री किलपैट्रिक ने 'मिलिटरैलिज्म इन एजुकेशन' में लिखा है कि "राज्य-द्वारा संचालित हाई स्कूल में सैनिक प्रशिक्षण दिया जाना इसलिए बुरा है क्योंकि वह बालकों के मन पर यह प्रभाव डालता है कि युद्ध एक सामाजिक प्रवृत्ति है . जैसा कि कुछ लोगों की मान्यता है इससे नागरिकता और नैतिकता का प्रशिक्षण बालकों को मिलता है, यह सर्वथा गलत है, बल्कि इसका असर अच्छे की अपेक्षा बुरा ही पड़ता है। इस ढंग से जिस प्रकार की नागरिकता का प्रशिक्षण हमें मिलता है वह हमें राष्ट्रीयता के भाव बिना समझे-बूझे अपनाने को कहता है और इससे जिस प्रकार के नैतिक चरित्र का विकास होता है वह हममें ऐसी आदतें डालता है जिनसे हम बिना किसी नु-नच के अधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करते रहें।"

न्यूयार्क युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डब्लू० एल० कावम ने 'मिलिटरैलिज्म इन एजुकेशन' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'नागरिकता और चरित्र के जो प्रशिक्षण सैनिक-पद्धति से दिये जाते हैं उन्हीं समाजों के लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं जिनमें अनिवार्यता और जबरदस्ती विशेष रूप से चलती है और जहाँ सहकारी, प्रजातंत्र की भावनाओं और व्यवहारों से उनका सीधा टकराव है। सैनिक प्रशिक्षण की उपलब्धि समूह में रहने की पाशविक मनोवृत्ति है और इसी मनोवृत्ति के विकास के लिए शिक्षण होता है। यही कारण है कि असहिष्णुता, स्वार्थपरायणता और अनावश्यक संघर्ष की ओर प्रशिक्षार्थी अग्रसर होते हैं। राज्य-द्वारा संचालित स्कूलों में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण प्रजातान्त्रिक समाज की भावना और उद्देश्यों के सर्वथा विपरीत है।"

शैक्षणिक संस्थान जनता के हैं न कि सरकार के। उन्हें हमारे स्वप्नों के अनुरूप प्रजातांत्रिक समाज को प्रतिबिम्बित करना चाहिए न कि शक्ति-द्वारा संचालित राज्य की शक्ति को। यदि राज्य ऐसी नीतियाँ और कार्यक्रमों का निर्धारण करता है, जो एक स्वस्थ एवं सच्चे प्रजातंत्र के सहज विकास में बाधक सिद्ध हों तब यह हमारा नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उन पर बन्दिश लगायें। अधिनायकवाद का लेशमात्र भी स्थान युवकों के प्रशिक्षण में नहीं होना चाहिए।

शक्ति और दण्ड-नीति, दोनों शोषक नियमों एवं अधिकारियों के जन्मजात हैं। ये हमारे शिक्षण में काफी दिनों तक चले हैं अब उन्हें बन्द होना ही चाहिए। अब शिक्षण को एक ऐसी शक्ति की खोज करनी है जिससे अच्छाइयों का अभ्युदय हो सके और जो शैक्षणिक शक्ति और अधिकार से सर्वथा भिन्न हो।

अनुशासन और आज्ञा में फर्क

सैनिक-प्रशिक्षण का समर्थन करनेवाले शिक्षा-शास्त्रियों एवं विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की दूसरी दृढ मान्यता यह है कि सैनिक-प्रशिक्षण से बालकों में अच्छी अनुशासन-प्रियता आती है।

इस विचारधारा के माननेवाले 'अनुशासन और 'आज्ञा' दोनों में फर्क नहीं कर पाते। अनुशासन छात्र की आन्तरिक स्वतन्त्रता की एक अभिव्यक्ति है। यह मस्तिष्क की एक आदत है जो छात्रों की आन्तरिक प्रवृत्तियों और उसकी सामाजिक चेतना के बीच स्वस्थ सन्तुलन का निर्माण करती है। इसके लिए यह अत्यावश्यक है कि हम वैज्ञानिक ढंग से विचार करने की शक्ति के लिए उन्हें हर सम्भव उपायों-द्वारा प्रशिक्षित करें।

'आज्ञा' सामूहिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या है। शिक्षण के लिए यह अत्यावश्यक है कि उसके पास अनुशासित व्यक्ति और समूह दोनों हों। पर ऐसा कभी भी न हो कि एक की पूर्ति दूसरे की कमजोरियों का लाभ उठाकर की जाय। यह शिक्षण का कर्तव्य है कि वह दोनों में उचित समायोजन कराये। सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए एक विशेष प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता है जिसे हम सैनिक अनुशासन कहते हैं। अनुशासन की जरूरत जहाँ आवश्यकता हो वहाँ रहे तभीतक वह लाभप्रद है। पर जब इसका प्रवेश हम शिक्षण में कराते हैं तभी परेशानियाँ बढ़ती हैं। क्योंकि जो योजना मूल रूप से अधिकाधिक लोगों के संहार के लिए तैयार की गयी थी उसका उपयोग हम बच्चों के शिक्षण में करते हैं। सैनिक-व्यवस्था में विश्वास करनेवालों के विश्व में एक ही व्यवस्था और एक ही अनुशासन है वह है 'सैनिक-अनुशासन'। सैनिक अनुशासन के नियम हर स्थान पर वही हैं। दबाव और दण्ड, जिनसे चापलूसी और महत्वाकांक्षा का पोषण होता है उसका आधार बनते हैं।

कर्नल जान मे, जो अमेरिकी सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी थे, उन्होंने सिनेट की बैठक में कहा कि 'यदि हम एक ऐसी नागरिकता चाहते हैं, जो अपने नाम को सार्थक करे तो हमें छात्रों का अभिक्रम जगाना चाहिए और उनमें सहिष्णुता के भाव भरने चाहिए, जिससे वे दूसरों के विचार सुन सकें और उनमें उचित निर्णय लेने की शक्ति आये जो सैनिक प्रशिक्षण-द्वारा नहीं हो पाती। सारे के सारे सैनिक प्रशिक्षण का आधार त्वरित आज्ञा-पालन होता है। सेना में किसी भी व्यक्ति को सोचने का समय नहीं दिया जाता। उससे सिर्फ यही अपेक्षा रखी जाती है कि वह आज्ञाओं का पालन करे। आज्ञा-पालन उसका कर्तव्य है, आज्ञा चाहे सही हो चाहे गलत, चाहे नशे में दी गयी हो चाहे गम्भीर चिन्तन के बाद।' (मिलिटैरेलिज्म इन एजुकेशन)।

शिक्षण बनाम आर्डर

सैनिक-प्रशिक्षण का सबसे बड़ा खतरा यह है कि 'आर्डर' अपने आप में एक उद्देश्य बन जाता है। 'आर्डर' के साथ एक रिजिडिटी (स्थिरता) आती है जो मानवीय स्वातन्त्र्य और अन्तरात्मा से भिन्न होती है। गतिशून्य व्यवस्था हर व्यक्ति को स्कूल में चाहती है। वह चाहती है कि छात्र और अध्यापक, दोनों इसका पालन करें और जितना ही अधिक वे अपने आपको समर्पण करेंगे उतना ही अच्छा होगा—पर यह शिक्षण नहीं है। ऐसे हिंसात्मक ढंग का बिना समझे-बूझे अनुकरण करने-मात्र से छात्र का नैतिक विकास लेशमात्र भी नहीं होता। शिक्षण का अर्थ छात्र का सर्वांगीण विकास करना है जो शिक्षण के हर स्तर पर चलता रहता है। जब कि सैनिक 'आर्डर' का अर्थ होता है घिसा पिटा और यन्त्रवत् व्यवहार। हमारा अन्तर मन जितना कम अनुशासित होगा, हमें बाहर से उतने ही अधिक प्रतिबन्ध लगाने होंगे और बक महोदय ने ठीक ही कहा है कि शिक्षण शास्त्रियों की मान्यता यह है कि वह शिक्षण और वह स्कूल सर्वोत्तम है जहाँ न्यूनतम प्रतिबन्ध होते हैं।

एक सैनिक पत्रिका के अनुसार अनुशासन का अर्थ है 'कमान्डर की इच्छाओं का पालन करना, उस समय भी जबकि वह उपस्थित न हो।' इच्छा पर जोर देने की इस वृत्ति के पीछे जो मनोविज्ञान काम कर रहा है उसका वर्णन कैप्टेन जान बर्नम ने इन शब्दों में किया है,

"यदि मनोवैज्ञानिक ढंग से देखा जाय तो सेना की सबसे बड़ी समस्या समूह में रहने की पशुओंवाली प्रवृत्ति का अधिकतम लाभ उठाया जाना है ताकि सैनिक समूह में बँधा रहे। वे लोग जिनका दृष्टिकोण सैनिकी है उन्हें तर्क-द्वारा आदवस्त करने का प्रयत्न करना ही बेकार है। उनपर प्रभाव डालने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि उन्हें सिद्धान्त के घूंट पिलाये जायें। वे चीजें जिन्हें हम उनके कार्यक्रमों के एक अंग के रूप में देखना चाहते हैं उन्हें बार-बार उनके सामने रखें ताकि पशु की वृत्तिवाले इन लोगों के मन पर संकेतों द्वारा असर आये। कोई भी राय, विचारधारा या सहिता, जो इनके मन में उपयुक्त विधि से प्रविष्ट करायी जाती है उनका ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ता है कि वह व्यक्ति, जो उन मूल सिद्धान्तों को सन्देह की दृष्टि से देखता है उसे वे मूर्ख, दुष्ट या पागल समझते हैं। सैनिक परेड व उसके पक्ष में प्रकाशित समीक्षाएँ एकता स्थापित करने में काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है क्योंकि सैनिक परेड के साथ ही साथ तड़क भड़क की चीजें चलती हैं—जैसे अच्छी खासी सैनिकों की भीड़, बैण्ड की धुन, लहराता हुआ राष्ट्रध्वज और सैनिक टुकड़ियों द्वारा कमाण्डर को दी जानेवाली सलामी।

एक विनाशकारी प्रकृति

ब्रिटस रेडलने 'यू एरा' नामक पत्रिका के जुलाई, अगस्त १९३८ के अंक में लिखा कि 'मेरा सारा का सारा विरोध सैनिक अनुशासन को लेकर है जिसका शिक्षण संस्थाओं में सीधा अर्थ सैनिक परेड और टुकड़ियों में बद्ध होने मात्र से है। सेना के प्रशिक्षण के लिए परेड और टुकड़ियों में बद्ध होना प्रशंसनीय है। जिस उद्देश्य के लिए इनकी रचना की गयी है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सर्वथा समर्थ हैं। पर जब इनका प्रयोग सैनिक शिक्षण के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में किया जाने लगता है तो हास्यास्पद बन जाता है।"

सैनिक प्रशिक्षण का मनोवैज्ञानिक लक्ष्य युयुत्सा की प्रवृत्तियों को जागृत करना और उसे उनकी विकरालतम सीमा तक ले जाना होता है। ये प्रवृत्तियाँ उस बारूद की भाँति हैं जो विनाशकारी है और जो यह नहीं समझ पाती कि वे क्या कर रही हैं। व्यवस्था कायम करना ही सैनिक अनुशासन का लक्ष्य नहीं है। यह एक संग्रहात्मक पद्धति है जिसमें व्यक्ति की युयुत्सा की प्रवृत्तियाँ संग्रहीत होती हैं। शिक्षण संस्थाओं में सैनिक अनुशासन का कोई स्थान नहीं है क्योंकि सैनिक अनुशासन आक्रमण की ओर लक्षित होता है। शिक्षण का कोई ऐसा लक्ष्य नहीं है। यदि हम यह भी मान लें कि बालकों में लड़ने की वृत्ति काफी मात्रा में पायी जाती है, शिक्षण का कार्य उन प्रवृत्तियों को संचित करना नहीं है। शिक्षण का काम यह है कि वह छात्रों को उनकी वृत्तियों के अनुरूप शिक्षण दे और ऐसी चीजें जो उनके लिए उपयोगी नहीं हैं उन्हें निकाल दे या उनका ऐसा उपयोग करे जिससे छात्र-समाज के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सके।

—अनु०-गुरुदत्त

•

बच्चों की तालीम

●

मनमोहन चौधरी

माता की गोद में बच्चों की तालीम शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। अकसर लोगों का ध्यान इस तरफ बहुत कम जाता है। पुरानी एक मान्यता है कि मनुष्य के चरित्र की नीवें ठेठ बचपन में पड़ती है। आधुनिक विज्ञान ने भी इस मान्यता का समर्थन किया है। यद्यपि उसने यह भी बतलाया है कि मनुष्य के चरित्र में जीवन-भर सुधार होता रहता है।

हर मनुष्य दूसरे मनुष्य से भिन्न होता है। बचपन में होनेवाले व्यवहार के कारण ही अधिकतर ऐसा होता है। एक कबीले, जाति या राष्ट्र के लोग समुदाय में रहते है, उनमें बहुत कुछ समानता होती है। अक्सर कुछ लोग विशेष साहसी होते है, कुछ नही होते है। कुछ लोगो में आक्रमण की वृत्ति होती है, तो कुछ लोग शान्त स्वभाव के होते हैं, कुछ लोग मिलनसार होते है, तो कुछ लोग अकेले रहना पसन्द करते हैं। इन समूहगत गुणों का कारण भी वही बाल्यकाल का व्यवहार है, जिसमें फलकर वे बड़े होते हैं और जो उस समाज में रूढ होता है।

मिसाल के तौर पर देखें। प्राय हर चीज से बच्चो को डराना हमारे यहाँ आम बात है। हमारे बच्चों को अँधेरे से डराया जाता है, नये लोगो से डराया जाता है और जानवरों तक से डराया जाता है। बड़े लोग उनको दौड़ने से मना करते है, पेड़ पर चढ़ने से रोकते है, नदी में तैरने नही देते। डर दिखाना बच्चो को काबू में रखने का मानो एक साधन बन गया है।

जब भी बच्चो को चुप कराना होता है, तब कह देते है—'*पुलिसवाला आकर पकड़ लेगा*', 'मकान के पिछवाड़े में जूजू बैठा है, रोना बन्द करो, वरना वह आ जायगा,' आदि।

यों बार-बार डराते रहने से बच्चा बहुत डरपोक बन जाता है। बड़ा होने पर कोई भी नया काम या साहस का काम करने की हिम्मत उसमें नही रह जाती। सदियों से भारत के अधिकांश लोगों की यही हालत है।

डराने-धमकाने का यह तरीका, राजा-महाराजाओं और नवाबों के लिए बड़े काम का था। इसी तरीके से वे अपनी प्रजा को कायर बनाकर आसानी से काबू में रखते थे। यही कारण था कि मुट्ठीभर विदेशी लोग हमें आसानी से हराकर हमपर राज कर सके। हमें कायर और डरपोक बनाये रखने में उनका भी फायदा ही था। गांधीजी ने हमें साहसी और पराक्रमी बनाने का प्रयत्न किया और उन्हें ज्यादा हद तक सफलता भी मिली। फिर भी अधिकतर परिवारों में डर दिखाने का यह सिलसिला आज भी ज्यों-की-त्यों है। इसीलिए दूसरे देशो की तुलना में हमलोग सामान्यतः ज्यादा दब्बू है। हम देखते है कि विदेशों से कई नौजवान, यहाँतक कि कुछ नवयुवतियाँ भी यहाँ दूर-दूर के देहातों में सेवा-कार्य करने के लिए आती है। लेकिन हमारे अपने कितने युवक-युवतियाँ ऐसी होंगी, जो वही सुदूर जाकर अपरि-चित स्थानों में काम करने के लिए तैयार होती हैं ? हमारे हर गाँव में और कुल मिलाकर सारे देश में बहुत-

सी नयी बातें करने की जरूरत है और बहुत-से नये परिवर्तन लाने हैं। ये सारे काम वे ही कर सकते हैं, जो हिम्मतवर और साहसी हो।

छोटी छोटी बातो के लिए बच्चा को डाँटना और पीटना भी हमारे यहाँ बिल्कुल साधारण बात है। चन्द माता पिता नासमझी से ऐसा करते हैं, लेकिन कई तो इसी में बच्चे का भला समझकर करते हैं। संस्कृत मे एक वचन है कि ५ से १५ वर्ष तक के बच्चा को 'ताडना' (पिटाई) करनी चाहिए। बहुत से परिवारा म बडा के सामने बच्चा का बोलना मना है। बच्चे अपने बडा का प्रतिवाद नही कर सकते। बच्चा को भगा देनेवाला को ईसा ने खूब डाँटा है। ईसा कहते है—'बच्चा को मेरे पास आने दो। वे तो स्वर्ग-साम्राज्य के निवासी हैं।" आज भी यही होता है। किसी गाँव म बाहर का कोई आता है तो चारो ओर से बच्चे उन्ह घेर लेते हैं। उनके मन मे बडा कुतूहल होता है, पर सयाने उन्हें बुरी तरह डाँट देते है और दूर भगा देते है। ये सारी बात बिलकुल गलत है। डाँट फटकार से या पीटने से बच्चे दब्बू बन जाते हैं और विद्रोही भी बन जाते हैं। बचपन म ऐसा व्यवहार किये जाने का परिणाम यह होता है कि बडे होकर ये कायर और दूसरा को सतानेवाले बन जाते हैं। बलवाना के आगे दुम दबाये रहते है और कमजोरा पर दबाव डालने लगते हैं।

नागा और कधा वगैरह आदिवासिया की बात हम अच्छी लगेगी। वे अपने बच्चा को न तो कभी पीटते है न डाँटते फटकारते हैं, बल्कि उनके साथ बडी समझदारी से बरताव करते है। कधाओ के कई गाँवा के लोग अपने बच्चा को स्कूल भेजने से इनकार करते थे। पूछने पर कारण मालूम हुआ कि स्कूल में बच्चों को मास्टर डाँटते पीटते हैं और उससे बच्चे बीमार पडते हैं। उनका यह रुख बडा विवेकपूर्ण है। शायद यही कारण है कि कधा लोगा में अच्छी मैत्री सहकार और आदर की भावना विशेष रूप से पायी जाती है।

इसके विपरीत, कुछ गैर-आदिवासी क्षेत्रा म जब बेसिक स्कूल खोले गये, तब वहाँ के लोगा ने यह शिकायत की कि ये शिक्षक तो बच्चा के प्रति जरा भी सख्ती बरतते नहीं। न मालूम बच्चा का क्या पढाते होगे? सख्ती से पेश आने की यह धारणा हमलोगों में गहरी जमी हुई है, जो अपने को आदिवासिया की तुलना में कही अधिक सुसंस्कारी और उत्कृष्ट मानते हैं।

हमें अपने बच्चा को पूरा प्यार, स्नेह और आदर भी देना चाहिए। उन्हें कभी अपमानित नही करना चाहिए। डाँटने या पीटने से बच्चे अपमान का अनुभव करते हैं। उससे उनकी आत्मा कुम्हला जाती है। भागवत में वर्णन आता है कि यशोदा ने बालक कृष्ण के साथ कैसा व्यवहार किया था। तुलसीदास ने भी रामचन्द्र के बाल्यकाल का सुन्दर वर्णन किया है। राम और कृष्ण, दोनो ठेठ जन्म से ही भगवान का अवतार समझे जाते थे और पूर्ण प्रेम और अत्यन्त आदर के साथ उनका लालन-पालन होता था। प्रत्येक बालक भगवान का अवतार है इसलिए उसके प्रति बाल राम और बाल कृष्ण की ही भावना से आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

एक ओर कुछ लोग बच्चा को डराते हैं और डाँटते है, तो दूसरी ओर कुछ लोग अपने बच्चा को हद से ज्यादा लाड करते हैं दुलराते हैं। वे बच्चो को धूप मे जाने नही देते, पानी में भीगने नही देते, अपना काम खुद करने नही देते। वे बच्चे अपने हाथ से पानी तक पी नहीं पाते। घर के काम में वे जरा हाथ बटायें, ऐसी कोई अपेक्षा नही रखते। इससे ये बच्चे बडे कोमल बन जाते है।

इस प्रकार बचपन मे गलत ढग से बच्चे पलते है, उनमें गलत आदत पड जाती है तो बडे होने पर उन्हें बदलना या सुधारना मुश्किल होता है। आज की हमारी शिक्षा-पद्धति म बच्चा के चारित्र्य निर्माण की ओर बिलकुल ही ध्यान नही दिया गया है।

हम चाहेंगे कि शालाओं में बच्चो को अच्छी-से-अच्छी तालीम मिले और उनके लिए उत्तम-से उत्तम पाठशालाएँ हो। लेकिन उत्तम से उत्तम क्या है, इसका हमें पता लगाना होगा। हमको इसकी शुरुआत उस शिक्षा से करनी चाहिए, जो घर में दी जाती है। कोशिश यह करनी होगी कि हमारे बच्चे श्रेष्ठ पुरुष बनें, महान् बनें, निडर बनें, साहसी, पुरुषार्थी, उद्यमी बनें, प्रेम और सहयोग से काम करनेवाले बनें। इसके लिए बच्चो के साथ हमको उत्तम और सभ्य व्यवहार करना होगा।●

हम देख रहे हैं कि नव-स्वतन्त्र राष्ट्र इसी तेजी से प्रगति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। तेजी से प्रगति करने के लिए समाज-जीवन को बहुत संघर्षों से गुजरना पड़ता है, कई धक्के सहने पड़ते हैं। ये धक्के अनिवार्य तो हैं, परन्तु ये ही संघर्ष की जड़ भी हैं।

इसलिए आज के नागरिकों में ऐसी शक्ति का विकास करना होगा कि वे परिस्थितिजन्य इस आघातों को सहन कर सकें, हर प्रकार के दबाव के बावजूद स्वयं सुस्थिर और सुदृढ़ रह सकें, अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाकर चल सकें। अन्यथा समाज निराश और हतोत्साह होगा।

सामंजस्यानुकूलता और लचीलेपन का गुण विकसित करना आज की शिक्षा का एक प्रमुख दायित्व है।

फुरसत का सदुपयोग

आज दुनिया में फुरसत एक बड़ी समस्या बनी हुई है। भारत—जैसे पिछड़े देशों की बात अलग है। यहाँ तो बेहद और अथक श्रम करने पर भी पेट भरना मुश्किल हो रहा है, लेकिन विश्व के अधिकतर प्रगत और उन्नत राष्ट्रों में यह बड़ा प्रश्न खड़ा हुआ है कि फुरसत का उपयोग कैसे किया जाय।

यन्त्र विद्या का बहुत विकास हुआ, कम समय में पर्याप्त उत्पादन करना आसान हुआ, नित्य जीवन की सुख-सुविधाएँ बढ़ गयीं, ग्रामों के स्थान शहर लेने लगे, सबसे बढ़कर स्वचालित यन्त्रों का उपयोग हर क्षेत्र में होने लगा।

इन सब कारणों से मनुष्य के पास एक ओर बहुत समय बचने लगा और दूसरी ओर किसी प्रकार की सुविधा का अभाव नहीं रहा। खाली मन भूत का डेरा तो है ही। जीवन के सामने कोई उच्च ध्येय नहीं रहा, उत्तम पुरुषार्थ का क्षेत्र नहीं रहा। तो, नाना प्रकार के उत्पात और उपद्रव मचने लगे, अशान्ति फैलने लगी।

इसके मूल में खाली समय के सदुपयोग का ही प्रश्न है।

इसलिए यह भी शिक्षा का दायित्व होना चाहिए कि लोगों को अपनी फुरसत के समय का रचनात्मक और श्रेयस्कर उपयोग करना सिखाये, उन्हें इस योग्य बनाये।

व्यक्ति की समाज-निष्ठा

शिक्षा जगत् में प्रारम्भ से ही एक विवाद बराबर चलता आया है कि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति है या समाज। मानो व्यक्ति और समाज के बीच विरोध ही मान लिया गया है।

हमारा दृढ़ मत है कि शिक्षा से यह विरोधभाव मिटना चाहिए। व्यक्ति समाज से भिन्न नहीं है, फिर भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता खतम नहीं होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के नाम पर व्यक्ति को स्वच्छन्द और अनर्गल भी नहीं होना चाहिए। उसे यह भान रहना चाहिए कि वह समाज का ही अंग है। इसलिए व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्रता का नियमन करना और स्वेच्छा से समाज के हित के लिए अपनी शक्ति का समर्पण करना सिखाना चाहिए। यह वृत्ति और यह गुण शिक्षा का परिणाम होना चाहिए। विश्व को युद्ध-रहित बनाने में इस तत्त्व का महत्त्व निर्विवाद है।

लोकतन्त्र

आज तक मानव-समाज पितृप्रधान (पेटर्नल) या अधिकारवादी (अथारिटेटिव) ढंग का रहा है। घर से लेकर राष्ट्र तक हर क्षेत्र में, हर स्तर में व्यक्ति-विशेष के नेतृत्व और प्रामाण्य की प्रमुखता रही है।

आज युग बदल गया है। समाज किसी एक व्यक्ति के निर्देश पर चलने को राजी नहीं है। चाहे जितना उन्नत व्यक्ति आये और चाहे जितने प्रयत्न करे, आज व्यक्ति-नेतृत्व चल नहीं सकता।

विश्व मानस आज सामूहिक पुरुषार्थ का समर्थक है, सख्यभाव का पुरस्कर्ता है, भ्रातृत्व प्रधान समाज की रचना के लिए प्रयत्नशील है। इसलिए युग की इस माँग को ध्यान में रखकर नागरिकों को इसके अनुकूल बनाने का काम शिक्षा का है। इसका अर्थ है कि शिक्षा को जन-जीवन में लोकतन्त्र के मूल्य दाखिल करने होंगे।

लोकतन्त्र शब्द आज बहुधा भ्रामक हो गया है। राजनीति के इस विकृत रूप से परे, लोकतन्त्र एक मानवीय मूल्य है, एक जीवन-तत्त्व है, एक उदात्त वृत्ति है। हम सामनेवाले की बात आदर से सुन सकें, विश्वास के साथ

समझ सकें, मिलजुलकर विचार कर सकें, सहयोगपूर्वक सामूहिक सकल्प कर सकें, सामूहिक निर्णय ले सकें—ये वास्तविक लोकतत्र की कुछ बुनियादी बातें है।

कार्यक्रम

शिक्षा के इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्यक्रम के चार अग हैं—

पहला प्रवृत्ति-ज्ञान। आज ससार के सभी शिक्षा शास्त्री इस विषय में एक राय हैं कि शिक्षा प्रवृत्ति मूलक होनी चाहिए। प्रवृत्ति या उद्योग मूलक शिक्षण से व्यक्ति उत्पादक और उपयोगी बनता है। इससे मनुष्य की क्रियाशीलता पनपती है कुशलता बढ़ती है और इसके कारण समाज समृद्ध बनता है, यह सब तो है ही, साथ ही सबके उद्योगशील बनने से समाज में व्याप्त विषमता खतम होती है, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जो युद्ध रहित विश्व के लिए अनिवार्य है।

दूसरा है प्रकृति-ज्ञान। प्रकृति के रहस्यो का ज्ञान ही प्रकृति ज्ञान नही है। एक कदम आगे बढकर प्रकृति के साथ मनुष्य का हार्दिक सम्बन्ध जुड जाये इसी को वास्तविक प्रकृति ज्ञान मानना चाहिए।

प्रकृति से हम अपनी सुविधा प्राप्त करें, भौतिक सुख की सामग्री जुटा लें, यही पर्याप्त नही है। अन्दर से अनुभव होना चाहिए कि प्राकृतिक सम्पदा से हमारा जीवन समृद्ध हो रहा है, हमारा व्यक्तित्व सम्पन्न हो रहा है, प्रकृति हमारी बन्धु है।

प्रकृति का आदर करना, प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव करना, प्रकृति के माधुर्य का आस्वाद लेना, प्रकृति के प्रति सद्भाव रखना, प्रकृति की विविधता की भव्यता पहचानना, यह सब प्रकृतिज्ञान के ही अग हैं। इसके लिए विनम्रता अत्यावश्यक है। बिना विनम्रता के प्रकृति की विभूतिमत्ता का भान नहीं हो सकता। मनुष्य में यह नम्रता लाना शिक्षा के इस अग का काम है।

तीसरा अग समाज ज्ञान है। समाज-ज्ञान में समाज का इतिहास और विज्ञान तो है ही, साथ ही व्यक्ति को यह भान होना चाहिए कि वह समाज का ही एक अग है, समाजरूपी गमले में खिला हुआ एक फूल है।

समाज की अपनी एक रचना होती है, अपनी एक आकाक्षा होती है, अपनी एक सस्कृति होती है, और उन्ही में से व्यक्ति का जन्म होता है। वह उन सबसे कटकर जी नही सकता। वैसा प्रयत्न करना भी नही चाहिए। इसीलिए समाज ज्ञान के शिक्षण के अन्तर्गत प्रयत्न यह होना चाहिए कि व्यक्ति का विकास उन विशेषताओं के अनुरूप ही हो, व्यक्ति में उन विशेषताओं को विकृत करने या समाप्त करने की नही, बल्कि सुरभित करने और विकसित करने की वृत्ति पैदा हो।

चौथा अग भाव-ज्ञान है। इस शिक्षण में व्यक्ति की भावनाओं का, कलात्मकता का, इन्द्रियों का विकास अपेक्षित है। यह ठीक है कि इसमें शिक्षार्थी की वयो-मर्यादा का विशेष महत्व है और उसके अनुसार भाव-बोध का स्तर भिन्न भिन्न होगा, यह भी तय करना कठिन है कि कितनी अवधि में इस विषय का कितना ज्ञान अपेक्षित है, परन्तु इस पहलू की अवहेलना नही की जा सकती।

शिक्षक-शिक्षार्थी-सम्बन्ध

इन सबके लिए एक निश्चित पाठ्यक्रम और एक बनी बनायी शिक्षा-पद्धति आदि बाह्य विषयों का उतना प्राधान्य नही है जितना शिक्षक और शिक्षार्थी के पारस्परिक सम्बन्ध का है। शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध शिक्षा-दर्शन का एक प्रमुख तत्त्व है, महत्व-पूर्ण सिद्धान्त है। विद्यालयीन शिक्षण में यह जितना सत्य है, लोकशिक्षण में भी उतना ही सत्य है, और उतना ही महत्वपूर्ण है। लोक शिक्षक का जनता के साथ जो सम्बन्ध बनता है, उसपर ही इनकी सफलता निर्भर है।

उसी सम्बन्ध के आधार पर शिक्षण क्रम, ढाँचा और पद्धति आदि का निर्णय होगा, शिक्षण की इमारत खड़ी होगी।

सक्षेप में ये कुछ मुद्दे हैं जिनके आधार पर युद्ध-रहित विश्व के लिए आवश्यक और योग्य नागरिक निर्माण हो सकते हैं। ●

'आन्तरभारती' हिन्दी मासिक

सम्पादक रमेश गुप्त

वार्षिक मूल्य—१० रु० एक अंक—१ रु०

प्रकाशक यदुनाथ थत्ते, आन्तरभारती ट्रस्ट

प्रकाशन स्थल आनन्दवन, वरोरा (चांदा)

साने गुरुजी का नाम केवल महाराष्ट्र में ही नहीं बल्कि अन्य प्रदेशों में भी सुपरिचित है। साने गुरुजी यानी कोमलता, और स्नेह की मूर्ति। लेकिन राष्ट्रीय एकात्मता की जाज्वल्य और प्रखर निष्ठा का तूफान उनके हृदय में छिपा था। आन्तरभारती का एक स्वप्न वे साकार करना चाहते थे। आजादी के बाद इस आन्तर भारती के स्वप्न को छिन्न भिन्न होते देखकर साने गुरुजी की आत्मा वेदना से इतनी व्याकुल हुई कि जीना उनके लिए दूभर हो गया, और अपने जीवन का अन्त करके उन्होंने भगवान् की शरण ली।

लेकिन साने गुरुजी के आन्तरभारती का स्वप्न उनके जीवन के साथ ही लुप्त नहीं हुआ। उनके साथी और विद्यार्थी साने गुरुजी के स्वप्न को साकार करने में कटिबद्ध हुए। साने गुरुजी-द्वारा स्थापित 'साधना' (मराठी साप्ताहिक) राष्ट्रीय एकात्मता की पुकार करता आया है। इसी साधना की पूर्ति में श्री बाबा आमटे, श्री रमेश गुप्त आदि अन्य साथियों ने 'आन्तरभारती' नाम से एक हिन्दी मासिक पत्र का प्रकाशन गत १ अगस्त १९६६ से प्रारम्भ किया है।

इस प्रथम अंक में सम्पादक महोदय ने स्वर्गीय साने गुरुजी की 'आन्तरभारती' की तड़प उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत की है—

> 'कभी सोचता था सब छोड़-छाड़कर हिमालय की राह लूं। भगवान को खोजूं (लेकिन) क्या सर्वत्र मंगलता का दर्शन ही प्रभु का दर्शन नहीं है? अब मुझे उस विश्वातीत भगवान की प्यास नहीं है। मुझे प्यास है एकता की। मैं भारत को विश्व की प्रतिमूर्ति मानता हूँ। यहाँ सब धर्म सभी संस्कृतियाँ मानववंश की समस्त वर्णछटाएँ मौजूद पाता हूँ। उनके समन्वय का महान् प्रयोग न जाने कब से किस योजना से यहाँ चल रहा है। विश्वमानव की उपलब्धि के लिए भारतीय मानव की सेवा ही आज मेरा लक्ष्य है।"

श्री दादा धर्माधिकारी की आन्तरभारती की व्याख्या इसी अंक में उनके भाषण के उद्धरण में इस प्रकार व्यक्त की गयी है—

> राष्ट्रीय एकात्मता का आधार हार्दिकता है। मनों के मिलन में मुकाबिला और टकराव भी हो सकता है। राष्ट्रीय एकात्मता के लिए मनों का मिलन नहीं बल्कि हृदयों के वास्तविक मिलन की आवश्यकता है। यह राजनीतिक या आर्थिक व्यवहार की लेन-देन की भूमिका पर नहीं हो सकता। यह तो निरपेक्ष स्नेह की भूमिका पर ही हो सकता है। यही भूमिका आन्तरभारती की हो सकती है।'

इस आन्तरभारती में भारत के विभिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक साहित्यिक और कलात्मक स्फूर्तियों का भी दर्शन कराया जा रहा है।

देश की विदारक स्थिति का दर्शन कराते समय श्री बाबा आमटे जैसे प्रखर ध्येयनिष्ठ और कर्मठ तपस्वी की लेखनी से बीच-बीच में आग भी उगलती हुई दिखेगी। 'आन्तरभारती' देश की असंख्य जलती हुई मूक आत्माओं के दर्द को प्रस्फुटित करने के साथ साथ उस दर्द को मिटाने की विधायक भूमिका भी प्रस्तुत करेगी, ऐसी हम आशा करें। —र० दा०

अनुक्रम

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वी तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने मे सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

'जहाँ चीनी सेना ने कब्जा किया था'

कितना विशाल है हमारा देश ! इसके सुदूर कोनो मे बसे हुए लोगो की समस्याएँ कितनी विभिन्नता लिये हुए हैं !! इनके रस्मो-रिवाज भी एक-दूसरे से अलग-थलग और कितने विचित्र है !!! सीमान्त पर्वतीय क्षेत्रो का जन-जीवन कितना श्रम-साध्य और दुर्धर्ष होता है कितने लोगो को पता है ? अभी कुछ वर्षों पहले तक थाग ला रिज सेला, बामडीला, वालांग और आलांग आदि स्थानो से सामान्य जन पूर्णतया अपरिचित ही था ।

लेकिन चीनी आक्रमण ने जहाँ हमारे जन-जीवन को झिझोड दिया, उसने यह उपकार भी किया कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीय एकता की एक नयी लहर दौड़ा दी । सोया जन-मानस जाग उठा । लोगो की निगाह जा पहुँची अपने सीमावर्ती उपेक्षित क्षेत्रो पर। उनके सम्बन्ध मे लोगो ने सोचना, विचारना शुरू कर दिया । इसी सन्दर्भ मे दो समाज-सेवी कुसुम बहन और वसन्त नारगोलकर नेहरू-विनोबा के आशीर्वाद की थाती ले जा पहुँचे उस क्षेत्र मे 'जहाँ चीनी सेना ने कब्जा किया था' । अपने इन्हीं प्रत्यक्षदर्शी अनुभवो और चित्रो को सुश्री कुसुम बहन ने सरल, सुबोध एव भाव-भीनी शैली मे प्रस्तुत किया है जिसे पाठक प्रारम्भ करने पर पूरा करके ही छोड़ेगा ।

निश्चय ही यह पुस्तक राष्ट्रीय एकता को जोडनेवाली एक मज-बूत कडी साबित होगी । इसे प्रत्येक भारतीय को पढना ही चाहिए । सर्व-सेवा-सघ-प्रकाशन की इस उपयोगी पुस्तक का नाम है—'जहाँ चीनी सेना ने कब्जा किया था' । दाम है मात्र ढाई रुपये ।

नयी तालीम, अक्तूबर, '६६
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल. १७२३

छोटे की बड़ाई : बड़े की छोटाई

'रेल के किनारे-किनारे की जमीन मे इस साल फस्ल लगी हुई है। अच्छी फस्ल है।'

'हाँ, इस साल रेलवे ने भूमिहीन हरिजनो को जमीन पट्टे पर दे दी है।'

'यह बहुत अच्छा काम हुआ है।'

'ऐसे गरीब लोगो की ऐसी फस्ल ? बड़ी मेहनत की होगी !'

'लेकिन............।'

'क्यों, क्या बात है ?'

'बात यह है कि जमीन का पट्टा हुआ है भूमिहीन हरिजनों के नाम, लेकिन खेती की है बाबू लोगो ने। उन लोगो ने झूठा पट्टा कराकर जमीन को अपनी जोत में ले लिया है।'

'उनके नाम से पट्टा है, कानून में उनका हक है। वे आवाज़ क्यों नही उठाते?' मैने श्रीबाबू से पूछा। मेरी यह बात सुनकर सुक्खू बोल उठा—

'नही बाबू यह कैसे होगा। वह देखिए, उस खम्भे के पास का खेत मेरे नाम मे है, लेकिन खेती मेरे मालिक ने की है, उसका मै बटाईदार हूँ।'

'अजीब बात है, तुम अपना हित नहीं समझते ?'

'हो सकता है बाबू, लेकिन मेरे मालिक ने पट्टा कराते समय रुपया अपने पास मे दिया था। मेरे पास रुपया कहाँ ? हमलोग ऐसी बेईमानी नहीं कर सकते।'

'तुम गरीब आदमी हो फिर भी............।'

सुक्खू ने जोर देकर कहा—

'गरीब हूँ जरूर। धन दौलत नहीं है, लेकिन क्या ईमान भी छोड़ दें ?'

सुक्खू की यह बात सुनकर मैं श्रीबाबू की ओर देखने लगा।

उनकी आँखें नीचे की ओर थी। वह क्या सोच रहे थे ? क्या वह बड़ो की छोटाई और छोटो की बड़ाई की तुलना में तल्लीन थे ?

—राममूर्ति

—आवरण मुद्रक—खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २३,५००, इस मास छपी प्रतियाँ २३,५००

नयी तालीम
सर्व-सेवा-संघ की मासिकी
नवम्बर
१९६६

भिन्न अभ्यास कब, किसने कराया ? जब अनुशासन के नाम में एन० सी० सी० शुरू किया गया, तो वह भी एक प्रकार से इस बात की घोषणा ही थी कि मनुष्य का आचरण बुद्धि और विचार से अधिक बूट और बन्दूक से प्रभावित होता है। फाज का यूनिफार्म पहनकर मनुष्य उद्‌बुद्ध होता है, उसमे सयम आता है, और उस ऊँच मूल्यों की प्रेरणा मिलती है। कहना पड़ेगा कि ऐसा माननेवाला शिक्षक और शासक जानता ही नही कि विज्ञान और लोकतन्त्र की शिक्षा कैसी होती है। शायद इसी लिए गुजराती भाषा मे शिक्षा शब्द का अर्थ ही है 'दण्ड'। हमारी 'शिक्षा' उनके यहाँ 'शिक्षण' है।

हमारे देश मे शिक्षा सरकार का एक विभाग है—आज नही, अँग्रेजो के समय से—इसलिए उसकी गठन अन्य प्रशासकीय विभागो की ही तरह हुई है। वही दमन, वही शासन, दण्ड और भय से चलनेवाला ! स्वभावत. ऐसी शिक्षा की जड़ें सरकार की फाइलों और अधिकारियो के आदेशो में है, समाज के जीवन मे नही। क्या मतलब है इस शिक्षा को समाज की आशाओ, आवश्यकताओ, और आकाक्षाओं से ? शिक्षा सरकार के तन्त्र का एक पुर्जा है, पुर्जे का काम है बड़े तंत्र को कायम रखना। गुलामी के दिनों से लेकर आजतक शिक्षा ऐसे ही लोगो को पैदा कर रही है जो सरकार की छाया में पल सकें। सरकार से बाहर समाज का भी कोई जीवन है—यह मान्यता जब सरकार में ही नहीं है, तो शिक्षा में कैसे आयगी ? आज शिक्षितो की कुल खिसियाहट ही इस बात की है कि सरकार सारे शिक्षित समुदाय को ऊँची कुर्सियाँ क्यो नही देती; उसको समाज से अलग और ऊपर क्यों नही मानती ? विद्यार्थियों की माँगें सरकार से चाहे जो हो, समाज की सरकार और विद्यार्थियों, दोनों से क्या माँग है, इसकी किसे परवाह है ? अब समय आ गया है जब हमें गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि क्या एक स्वतन्त्र देश की शिक्षा सरकार के एक विभाग के रूप मे चल सकती है ? क्या यह बात सही नही है कि सरकार चाहे जिस दल की हो, जबतक शिक्षा शासन-द्वारा सचालित होगी उसमें अनुशासन की समस्या बनी ही रहेगी ?

हम यह मान लेते है कि विद्यालयो के रजिस्टरों में जितने नाम है वे सब विद्यार्थियो के है, और जितने पढानेवाले है वे सचमुच शिक्षक है। सच बात तो यह है कि विद्यालयो मे जो भी 'विद्या' है—अगर कुछ है तो ! उसे पाने के लिए बहुत कम विद्यार्थी जाते है, और देने के लिए बहुत कम शिक्षक ! जिस दिन स्कूल-कालेज की पढ़ाई नौकरी के लिए पासपोर्ट नही रह जायगी उस दिन अनुशासन की समस्या बहुत कुछ यों ही हल हो जायगी। डिग्री को नौकरी की शर्त मानना सरासर गलत है। नौकरी ने विद्या को सौदा और विद्यालय को दूकान बना दिया है ! क्यो न हर विद्यालय अपना अलग सर्टिफिकेट दे, और नौकरी के लिए अलग परीक्षा हो ?

आज विद्यालयो में ऐसे अनेक विद्यार्थी है जिनका सक्रिय सम्बन्ध किसी राजनीतिक दल से है। वे अपने दल का काम करने के लिए विद्यालयो मे पड़े रहते है।

और कई बार तो ऐसी मिसालें सामने आती हैं जब विद्यार्थी डाकुओं या चोरों के गिरोह में अथवा गुण्डागिरी, फौजदारी, अस्वाभाविक लैंगिक सम्बन्ध, वेश्यावृत्ति, स्त्री-अपहरण, शराबखोरी, जुआ, लड़कियों के साथ अभद्र व्यवहार, आदि कामों मे, जो कानून की दृष्टि से अपराध माने जाते हैं, पकड़े जाते हैं। ऐसे लोगों को—वे चाहे विद्यार्थी हों या शिक्षक—विद्यालय की पवित्रता के नाम में कानून की पकड़ के बाहर मानना कानून के साथ खेलवाड़ करना है। सही कानून का सख्ती के साथ पालन करने में ही सभ्य समाज का अस्तित्व है। आज ऐसा नहीं हो रहा है।

मुश्किल यह है कि राजनीति कानून की पकड़ में जल्दी आती नहीं, जब कि अनेक समाज-विरोधी कार्य राजनीति की आड़ में होते रहते हैं। प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक ऐसी संस्थाएँ कितनी हैं जो राजनीति का अखाड़ा नहीं बनी हुई हैं? बहुत कम। अनेक ऐसे विद्यार्थी और शिक्षक हैं जिनका दलबन्दी करने और चुनाव लड़ने के सिवाय दूसरा कोई काम ही नहीं है। इस वक्त हमारे विद्यार्थियों को विरोधवाद की राजनीति मोहक नारों के नाम में विध्वंसात्मक कार्रवाइयों की सुव्यवस्थित दीक्षा दे रही है। देश के जीवन का कोई पहलू नहीं बचा है जिसे विरोधवाद की राजनीति विषाक्त न कर रही हो। राजनीति को शिक्षा से अलग करने की माँग विद्यार्थी करें या न करें, लेकिन यह माँग समय की है, समाज की है।

पिछले दिनों विद्यार्थियों के द्वारा, और उनके नाम में दूसरों-द्वारा जो उपद्रव हुए हैं उनसे कहीं अधिक उपद्रव दिमाग में छिपे पड़े होंगे, जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं। कायर और उपद्रवी, दोनों समाज के लिए समस्या होते हैं। अगर भारत के भौतिक विकास के लिए आज 'ऐनिमल पावर' (पशु-शक्ति) की जगह बिजली और अणु की शक्ति चाहिए, तो भारतीय समाज के सांस्कृतिक विकास के लिए 'ऐनिमल पैशन' (पाशविक-उन्माद) से ऊपर उठा हुआ मन भी चाहिए। तकनीक में नयी से नयी शक्ति की बात की जाय, और शिक्षा-संस्थाओं में उन्माद और उत्तेजना के नित्य नये रूपों का विकास होने दिया जाय: इन दोनों बातों का मेल कैसे बैठेगा?

हम यह न मान लें कि अगर उपद्रव न होते तो हमारी शिक्षा बहुत अच्छी मान ली जाती। बुद्धिमानी की बात तो यह होगी कि हम इन उपद्रवों को भीतर के गम्भीर रोग का प्रकट लक्षण मानें और यह मानकर उपाय सोचें। अन्तर इतना है कि आज उपद्रव हो रहे हैं तो विद्यार्थी अपराधी के रूप में सामने दिखायी दे रहे हैं, उपद्रव न होते तो मौजूदा निकम्मी शिक्षा देश के प्रति कितना बड़ा अपराध है, इसका पता जरा देर से चलता। पता तो १९३७-३८ में ही चल गया था जब गांधीजी ने नयी तालीम की योजना देश के सामने रखी थी। तबसे कितने वर्ष बीत गये। स्वराज्य भी उन्नीस वर्ष का हो गया। अंग्रेजी झण्डे की जगह तिरंगा तो आ गया, लेकिन शिक्षा न बदली, न बदली! बदली केवल इतनी बात कि जो शिक्षा सदा अभिशाप

तुमने सत्ता मे रहते हुए भी मनुष्यता नहीं खोयी, और प्रौढ होते हुए भी बच्चो की सहजता, चपलता बनाये रखी, इस नाते तुम सदा याद रहोगे।

लेकिन इतिहास के लिए सदा प्रश्न बने रहोगे। तुमने जो कुछ किया उसपर इतिहास एक राय देगा, और जो नहीं किया उसपर बिलकुल दूसरी। तुमने जो किया वह हमारी विरासत है, और जो छोड गये वह हमारी जिम्मेदारी। हम तुम्हारी विरासत की पूँजी से अपनी जिम्मेदारी पूरी करें, यही तुम्हे हमारी भेंट है। सं०

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

विद्यार्थी : अपराधी या शिकार ?

विद्यार्थी अपराधी है या शिकार ? इस प्रश्न का उत्तर मिल जाय तो उपाय का निर्णय आसान हो जायगा।

विद्यार्थियों के उपद्रव से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए दिल्ली में जो बैठक हुई उसमें वाइसचांसलरों के साथ पुलिस के आई० जी० भी बिठाये गये। इसका अर्थ यह है कि विद्यार्थी अब वाइसचांसलरों के वश के बाहर है, उन्हें वश में लाने के लिए पुलिस चाहिए ही। पुलिस और विद्यार्थियों में मित्रता कराने की चाहे जितनी बातें की जायें—मित्रता हर जगह अच्छी ही होती है—लेकिन मित्र को भी रास्ते पर रखने का पुलिस के पास एक ही उपाय है—डण्डा ! डण्डा अपने समाज में प्रचलित है—प्रचलित ही नहीं प्रतिष्ठित भी है। शिक्षक भी अपने छोटे विद्यार्थियों को डण्डे से ही ठीक रखता है। बड़े विद्यार्थियों के साथ डण्डा नहीं चल पाता तो दण्ड चलता है, दिशा दोनों की एक ही है। विद्यार्थी बचपन से देखता है कि शिक्षक गणित समझाने या व्याकरण याद कराने के लिए छड़ी रखता है, मालिक गाली न दे, डण्डा न दिखाये, तो हलवाहा ठीक हल न जोते, पुलिस डण्डा न रखे तो भीड़ न हटे, रिक्शावाला गलत रास्ते से निकल जाय, और, सरकार डण्डा और डण्डे के बाद गोली न चलाये तो कानून की रक्षा न हो, राजनीतिक दल जबतक तोड़फोड़ न कर लें उनके नारे सार्थक न हों, यहाँ तक कि सिनेमा की रंगीन दुनिया का प्रेम भी तबतक पूरा नहीं माना जाता जबतक उठापटक न हो जाय, पिस्तौल न निकल आये। डण्डे का इतना सम्पूर्ण व्यापक दर्शन शायद ही किसी दूसरे सभ्य समाज में दिखायी दे।

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ४

विद्यार्थियों को बचपन से समाज और संस्था में जो शिक्षण मिला है उसमें वे कितने अभ्यस्त हो गये हैं, इसका परिचय पिछले दिनों उन्होंने भरपूर दिया है। स्वराज्य के बाद के इन युवकों और युवतियों को इससे

थी वह अब अपराध बनकर असह्य हो रही है। कैसे माना जाय कि विद्यार्थी उस अपराध को स्वयं महसूस नहीं कर रहे हैं?

आखिर, कोई कारण होगा कि विद्यार्थी वर्षों तक शिक्षण की प्रक्रिया से गुजरने के बाद समाज के सामने अपराधी के रूप में आता है? शिक्षा ने उसे क्या दिया? अगर वह 'पास' हो गया तो शिक्षा ने दिया उसे कागज का एक टुकड़ा—डिग्री, डिप्लोमा या सर्टिफिकेट और उसके बदले में लिया क्या? लिया माँ-बाप के हजारों रुपये, स्वास्थ्य उंगलियों का हुनर, विवेक, चरित्र, ईमान की रोटी और इज्जत की जिन्दगी की आशा! जो 'फेल' हो गया वह तो दोबारा पढ़ भी सकता है, लेकिन जो 'पास' हो गया उसके लिए ठिकाना कहाँ है? न वह सरकार का बन पाता है, न समाज का रह जाता है। सिवाय क्षोभ और निराशा के उसके हाथ आता क्या है? वह किसी न किसी रूप में 'क्षोभ के सौदागरों' के हाथ में पड़ ही जाता है।

प्रचलित शिक्षण का परिणाम—निराशा, असंतोष, उपद्रव

इसमें आश्चर्य क्या है? जो देश स्वराज्य के बीस वर्षों में अपने खान-पान का ठिकाना न कर सका हो, जिसके विकास की दिशा आज भी उतनी ही अस्पष्ट हो जितनी कभी थी, जिसके करोड़ों करोड़ लोगों को यह भी पता न हो कि वे सचमुच जीवन के जंगल में भटक रहे हैं या किसी रास्ते पर चल रहे हैं, जहाँ की विकास-योजनाएँ अबतक न बेकारी मिटा सकी हों न विषमता, जहाँ राजनीति के नाम से दलबन्दी और गुटबन्दी का बोलबाला हो और समाज की बुनियादी शक्तियाँ दिनों दिन कुण्ठित होती जाती हों, जहाँ पद, प्रतिष्ठा और पैसे के

मुकाबिले जीवन के मूल्यों की धज्जी उड़ायी जाती हो, जिसके 'शासक' आज भी जनता के प्रति कृपा की ही भावना रखते हों जिसके कारण लोकतन्त्र का 'लोक' बिलकुल शून्य हो गया हो, जिसका शिक्षित वर्ग देश की भूमिका से उखड़कर अमेरिका को मक्का-मदीना समझता हो, जहाँ जाति, वर्ग, धर्म, धन, भाषा, क्षेत्र के झगड़ों ने राष्ट्र की एकता को बुरी तरह कमजोर कर दिया हो, जहाँ सरकार और जनता के बीच की खाई दिनोदिन बढ़ती ही जाती हो, जहाँ प्रक्षोभ को सौदा बनानेवाले नेता जनता की बड़ी बातों को भूलकर अपनी छोटी बातों में ही लगे हुए हों, जहाँ के सिनेमा का सरकारी 'सेंसर' विद्यार्थियों को अर्द्धनग्न चित्र दिखाने में ही कला का विकास समझते हों और सरकार शराब की दूकानें खोलने में देश-सेवा देखती हो, जहाँ की सड़कों पर साहित्य के नाम में गलीज बिकता हो, जिसकी पार्लियामेंट और विधान मंडलों में अशिष्टता के भद्दे से भद्दे प्रदर्शन होते हों, और जहाँ बाजारों में खुलेआम मजदूर की मेहनत और महिलाओं की इज्जत खरीदी और बेची जाती हो—ऐसे उत्तेजना और उच्छृंखलता से भरे वातावरण के देश में अगर युवक अपना सन्तुलन खो बैठें तो दुख की बात भले ही हो, आश्चर्य की नहीं है। आश्चर्य यह है कि पुस्तकालय, छात्रावास, इम्तहान, फीस आदि के सम्बन्ध में तो माँगें होती हैं, और उनमें बहुत-सी माँगें सही भी हैं क्योंकि हमारी अनेक शिक्षा-संस्थाएँ 'दूकान से बढ़कर और कुछ नहीं हैं, लेकिन यह माँग नहीं होती कि शिक्षण की पूरी पद्धति ही बदलनी चाहिए। इस बड़ी माँग में दूसरी सब माँगें समा जायेंगी, और इस माँग में पूरे समाज का समर्थन होगा, क्योंकि दोष चाहे जहाँ हो, चाहे जिसका हो, परिणाम भोगना पड़ता है समाज को ही। तब विद्यार्थियों की माँग देश की माँग होती, और तब उन्हें स्वयं महसूस होता कि तात्कालिक और बुनियादी माँगों में कितना अन्तर होता है, और बुनियादी माँग की पूर्ति बुनियादी काम से ही हो सकती है, केवल प्रदर्शन और उपद्रव से नहीं।

सच बात यह है कि हमारे देश में शिक्षण का प्रश्न राजनीति और व्यवसाय के स्थान पर शिक्षा को मुख्य सामाजिक शक्ति बनाने का है। इस तरह शिक्षण का प्रश्न बुनियादी तौर पर नयी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था का प्रश्न बन जाता है। जिस शिक्षा में इतनी समग्र क्रान्ति नहीं है, उससे हमारे देश की नयी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकती।

अपवादों की बात अलग है, लेकिन औसत विद्यार्थी अपराध में भले ही शरीक हो गया हो, वह अपराधी नहीं है। इतना ही नहीं, वह स्वयं आज की शिक्षा का शिकार है। और शिक्षा को बदलना सरकार का काम है, लेकिन बदलने के लिए जोर डालना समाज का। समाज के नेतृत्व और जिम्मेदारी पर चलनेवाली नयी शिक्षा में विद्यार्थी और शिक्षक दोनों नये हो जायेंगे।

ख—बडी सख्या म छात्रो की भरती के कारण अध्यापका का वेतनक्रम कम रखा गया। फलत इस पेशे में वही लोग आय जिन्हे दूसरी जगह नौकरिया नही मिली और जो थोड वेतन में सन्तुष्ट रहे। आज के समाज में थोड वेतनवाले की इज्जत नही होती। जिसकी समाज में इज्जत नही होती विद्यार्थी भी उसकी इज्जत नही करते।

छात्रो की सख्यावृद्धि का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि अध्यापको और छात्रा का व्यक्तिगत सम्पर्क बिलकुल समाप्त हो गया। यही सम्पर्क अनुशासन की रीढ है। इस सम्पर्क के अभाव में अनुशासन सम्भव नही है।

विशुद्ध शैक्षिक मामलो में भी अध्यापक का अपना विद्यालय में महत्त्व नही रह गया है। विद्यालयो पर प्रभुत्व उनका है जो राजनीतिक नेता या चतुर व्यवसायी हैं और जो विद्यालयो के मैनजर हैं। मैनजरो के अधिक महत्त्व के कारण अध्यापको का महत्त्व घट गया है।

शिक्षा-व्यवस्था पाठ्यक्रम और परीक्षा के क्षेत्र भी अध्यापको के प्रभाव-क्षेत्र के बाहर हैं। इनमें उनका कोई हाथ नही है। वे तो ऐसे साधन मात्र हैं जो किसी तरह छात्रो को परीक्षा में उत्तीर्ण करा दें। जिन विश्वविद्यालयो में उप-कुलपति अध्यापक हुआ करते थे वहा से भी उन्हें नालायक कहकर हटा दिया गया है। ऐसी दशा में अध्यापक छात्र का सम्मान कैसे पा सकता है ?

अस्तु जबतक योग्य चरित्रवान अध्यापक भरती नही किये जाते जबतक अधिक वेतन देने से अथवा दूसरे उपायो से समाज में उनकी प्रतिष्ठा नही होगी और जबतक शिक्षा-व्यवस्था में पाठ्यक्रम के निर्धारण में परीक्षा में उनका हाथ नही रहेगा तबतक वे अपना खोये हुए नेतृत्व को वापिस नही पा सकते और जबतक यह नही होगा अनुशासन की समस्या में स्थायी सुधार नही हो सकता।

दूषित शिक्षा प्रणाली

अनुशासनहीनता का दूसरा बडा कारण दूषित शिक्षा प्रणाली है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद अगर इस सरकार से कोई सबसे बडी भूल हुई है तो वह है पुरानी शिक्षा-पद्धति को जारी रखना और उसका विस्तार करना। यह पद्धति प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक अनुत्पादक है। इस पद्धति और आज की अर्थव्यवस्था में कोई सामञ्जस्य नही है।

गाधीजी ने शिक्षा और अर्थ-नीति में सामजस्य की आवश्यकता का अनुभव किया था और इसलिए अपनी अर्थनीति के अनुकूल एक शिक्षा-नीति का भी प्रवर्तन किया था। स्वतत्र भारत ने गाधीजी की अर्थनीति को छोड दिया और उनकी शिक्षा-नीति की उपेक्षा की परन्तु जिस औद्योगीकरणमूलक समाजवादी अर्थनीति का अनुसरण किया गया उसके भी अनुकूल शिक्षा-नीति विकसित नही की। उसने ब्रिटिश काल से चली आ रही शिक्षा-नीति का ही विस्तार किया। यह शिक्षा-नीति छात्रो को कोई समाजोपयोगी व्यवसाय सिखाने का प्रयास नही करती। फलत छात्र माध्यमिक स्तर के बाद अथवा विश्व विद्यालयो से निकलने के बाद भी इस योग्य नही होते कि वे कोई व्यवसाय कर सकें और अपने को किसी समाजोपयोगी धधे में लगा सकें। पहले भी यह शिक्षा निकम्मे व्यक्तित्व का सर्जन करती थी परन्तु तब जो थोड विद्यार्थी पढते थे वे अपेक्षाकृत सम्पन्न परिवारो से आते थे और उनके सामने भविष्य कभी उतना भयावह नही रहता था जितना आज के लडको के लिए है जिनकी पारिवारिक स्थिति सोचनीय है। फिर ऐसे छात्र जो अपने हाथ से कुछ कर नही सकते और उनका भविष्य अधकारपूर्ण है वे यदि अशान्त होकर उपद्रव करते है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नही है।

अस्तु समस्या का दूरगामी समाधान तो एक ही है। वह यह कि छात्रो को प्रारम्भिक स्तर से ही किसी समाजोपयोगी उद्योग की वैज्ञानिक शिक्षा दी जाय जिससे माध्यमिक स्तर तक पहुचते-पहुचते उनमें कोई समाजोपयोगी धधा करने की क्षमता आ जाय और उन्हें नियोजित ढग से उपयोगी धधो में लगाया जा सके। इस प्रकार जब माध्यमिक स्तर के बाद कम-से-कम ७५ प्रतिशत छात्रो को धधो में लगा दिया जायगा और केवल २५ प्रतिशत अथवा उससे भी कम प्रतिभाशाली बच्चे ही विश्वविद्यालयो में जायेंगे तभी उनका मन

शिक्षा में लगेगा और तभी अनुशासन की समस्या का स्थायी हल प्राप्त होगा।

दूषित परीक्षा-प्रणाली

यह कहना एक प्रकार का पिष्ट-पेषण है कि दूषित परीक्षा प्रणाली से भी अनुशासनहीनता को प्रश्रय मिलता है। यह परीक्षा-प्रणाली सारा महत्व अन्तिम परीक्षा को ही देती है। लड़के एक महीने में ही रट रटाकर पास होने की चेष्टा करते हैं। साल के बाकी दिन उपद्रव के लिए खाली रहते हैं। किसी प्रकार डिग्री मिलने से काम चल जायगा यह वे जानते हैं। अतः उसे येन-केन प्रकारेण प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।

इसलिए जहाँ लोगों ने यह सुझाव दिया है कि अन्तिम परीक्षा के महत्व को कम कर दिया जाय, वहीं कुछ लोगों ने यह भी सुझाव दिया है कि विश्वविद्यालय की डिग्री को नौकरी के लिए आवश्यक शर्त न बनाया जाय। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इन दोनों सुझावों के कार्यान्वयन से अनुशासन की समस्या सुलझेगी।

प्रतिगामी शिक्षा-सगठन

आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के १९ वर्ष बाद भी हमारे विद्यालयों का प्रशासकीय ढाँचा परम्परित ही बना हुआ है। प्रजातन्त्रीयकरण का अर्थ होता है, छात्र-संघ, विद्यार्थी यूनियन, आदि छात्र-संगठनों को विद्यालय के प्रशासन में अधिक-से-अधिक भाग लेने और उत्तरदायित्व वहन करने का अवसर देना। प्रारम्भिक स्तर से विश्व-विद्यालय स्तर तक अगर हम विद्यालय का प्रशासन छात्रों की सहायता से चलाये होते और अगर छात्र स्वशासन पाठशाला प्रबन्ध की रीढ़ बन गया होता तो आज का यह छात्र-आन्दोलन होता ही नहीं। विद्यालय की जितनी भी समस्याएँ हैं सभी का सम्बन्ध विद्यार्थियों से है, फिर अपने को 'लोकतन्त्रीय समाजवाद' कहनेवाला यह राष्ट्र इन समस्याओं का हल छात्र-संगठनों की सहायता से लोकतन्त्रीय ढंग से क्यों नहीं ढूंढ़ता? उत्तरदायित्व वहन करने से कर्तव्यबुद्धि, आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना विकसित होती है जो लोकतन्त्रीय शिक्षा के पवित्र लक्ष्य होने चाहिएँ। इन १९ वर्षों में हमने अपने को एशिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहकर प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की कसमें खायी हैं और समाजवाद की दोहाई दी है। परन्तु शिक्षा-संगठन को वैसा ही रहने दिया जैसा वह गुलामी के दिनों में था। यह असन्तोष और विक्षोभ का सबसे बड़ा कारण है और तत्काल दूर हो जाना चाहिए।

छात्र-संगठनों से प्रशासन में सहायता लेने के साथ-साथ आप उनसे समाज-सेवा और सामुदायिक विकास का प्रसार कार्य लें और उनकी शक्ति को रचनात्मक दिशा दें। तब आज जो शक्ति हिंसात्मक उपद्रवों में लगी है वह रचनात्मक कार्यों में लग जायगी। परन्तु उसकी पहली शर्त यह है कि छात्र यह महसूस करें कि वे विद्यालय के पूरे प्रशासन के सह-संचालक हैं।

यह समस्या का तात्कालिक हल है। समस्या का तात्कालिक एक दूसरा हल भी है। प्रत्येक नगर और उप-नगर में, और नगर बड़ा है तो कुछ मुहल्लों को मिलाकर, ऐसे अध्यापकों और प्रधानाध्यापकों की, जो अपनी योग्यता और उत्तम चरित्र के कारण छात्रप्रिय हैं, एक ऐसी समिति बनायी जाय, जो छात्र-नेताओं की परामर्शदात्री समिति के रूप में काम करे। किसी भी समस्या के निराकरण के लिए छात्र-नेता इसी समिति से परामर्श करें। पूर्ण आशा है कि यह समिति समस्या को सुलझा सकेगी। परन्तु यदि किसी कारणवश आन्दोलन प्रारम्भ हो ही जाता है तो समिति सभी शान्तिपूर्ण तरीकों से उसे समाप्त करने की चेष्टा करे। सदस्यों को इस प्रयास में जो भी त्याग करना पड़े, करें, प्राण भी देना हो तो दें। यदि अध्यापक ऐसी समिति बनाकर यह काम कर सकें तो अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर सकेंगे।

यह विचार एक अध्यापक का है जिसका निश्चित मत है कि छात्र-आन्दोलन की समस्या विद्यालयों में अध्यापकों-द्वारा ही सुलझायी जा सकेगी, उसे न तो राजनीतिज्ञ सुलझा सकते हैं न प्रशासक सुलझा सकते हैं, न साधनागृहों के शीशमहल में बैठे विचारक। शासन की दमन-नीति और पुलिस की गोलियों से तो उसे हरगिज नहीं सुलझाया जा सकता। समस्या अध्यापकों और छात्रों की है और उसका हल वही ढूंढ सकते हैं। यह हल विद्यालयों में ही मिलेगा। ●

छात्रों की अनुशासनहीनता, विक्षोभ और अशान्ति

•

वशीधर श्रीवास्तव

छात्र आदोलन ने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया है कि उसकी चपेट में लगभग सारा उत्तर भारत आ गया है। रेल के स्टेशन राजकीय बस पुलिस के थाने और दूसरी सरकारी इमारतें पुलिस और मजिस्ट्रेट उस सत्ता के प्रतीक बन गये हैं जिसकी अक्षमता और गलत नीति के कारण छात्रा के मन में क्षोभ और आक्रोश है। शासन के प्रति आज उनका वही रुख है जो स्वराज्य प्राप्ति के पहले अंग्रेजी शासन के प्रति था। आन्दोलन ने उग्र हिंसात्मक रूप धारण कर लिया है। छात्र तोड फोड कर रहे हैं और पुलिस गोली चला रही है। दक्षिण म विद्यार्थी-आन्दोलन का यह रूप नही है जैसा हैदराबाद के उप-कुलपति ने कहा है। परन्तु असन्तोष वहा भी है।

आन्दोलन के कारण

देश भर के विश्वविद्यालयो के उप-कुलपतियो ने इस समस्या पर विभिन्न मत प्रकाशित किये है। इन मता का विश्लेषण करने से नीचे लिखे तथ्य प्राप्त होते है —

छात्रो का विक्षोभ और असन्तोष देश और विश्व के सामान्य विक्षोभ का ही अग है।

अनुशासनहीनता और विक्षोभ का कारण छात्रो की आवश्यक शैक्षिक एव अन्य सामान्य सुविधाओ का न मिलना है (श्री आर० के नेहरू, उप-कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय और एम० वी० माथुर, उपकुलपति राजस्थान)।

व्यवस्था भग और शान्ति के दायी केवल छात्र नही है अध्यापक और अभिभावक भी है। अध्यापको की नतत्व शक्ति का ह्रास हो गया है और छात्रो तथा अध्यापको म व्यक्तिगत सम्पर्क नही रह गया है। (श्री त्रिगुणसेन उप-कुलपति बनारस विश्वविद्यालय और श्री आयगर उप-कुलपति आन्ध्र विश्वविद्यालय)

छात्र-अनुशासनहीनता के कारण सास्कृतिक आर्थिक राजनीतिक और शैक्षिक है। वर्तमान उपद्रव का मूल कारण अप्रत्यक्ष ही सही शिक्षा का माध्यम है जो आज भी विश्वविद्यालयो में अंग्रेजी है। (डा० वी० के० आर० वी० राव भू० पू० उप-कुलपति दिल्ली विश्वविद्यालय)

अशान्ति के मूल म विभिन्न राजनीतिक दल है और अन्य असामाजिक तत्व भी है। अत विद्यालयो की व्यवस्था भग करनेवाले असामाजिक तत्वो को दण्ड देने का पर्याप्त कानूनी अधिकार विद्यालयो को दिया जाय। (श्री सूरजभान उप कुलपति, चण्डीगढ विश्वविद्यालय)

समस्या वस्तुत कानून और व्यवस्था की है क्योकि वह मुख्यतया बल प्रयोग के प्रश्न पर पुलिस और छात्रो के मतभेद का परिणाम है। छात्र अपनी समझ में अनुचित बल प्रयोग करनेवाली पुलिस के विरुद्ध तत्काल कार्यवाही की माग करते है। देर होने से विक्षोभ जनित अशान्ति पैदा होती है (श्री सी० डी० देशमुख उप कुलपति दिल्ली विश्वविद्यालय)

अधिकाश उप कुलपतियो की राय है कि देश व्यापी छात्र-अशान्ति और आन्दोलन की यह समस्या केवल कानून और व्यवस्था का विषय नही है और केवल इस दृष्टि से समस्या का निराकरण नही किया जा सकता नहीं करना चाहिए।

इस समस्या का समाधान नही किया गया तो देश का अहित होगा। समस्या के निराकरण पर ही राष्ट्र का भविष्य निर्भर है।

इस समस्या के कारणों पर और इसके समाधान पर जो भी मत प्रकट किये जायें और उसके लिए जो भी तात्कालिक और दीर्घकालिक हल सुझाये जायें, परन्तु तोड़-फोड़ और असामाजिक कामों की निन्दा सभी को करनी चाहिए, क्योंकि इससे सामान्य जन-जीवन में अशान्ति आती है और जन सम्पत्ति की क्षति होती है। पुलिस की हिंसात्मक कार्रवाइयों की और भी अधिक निन्दा करनी चाहिए, क्योंकि उनके हाथ में शस्त्र हैं। उन्हें किसी दशा में निहत्थे छात्रों पर गोली नहीं चलानी चाहिए। सारी समस्या को अहिंसात्मक ढंग से ही सुलझाना चाहिए।

जीवन-मूल्यों में अविश्वास

कुछ अर्थों में यह अशान्ति और विक्षोभ एक विश्व-व्यापक अशान्ति का ही अंग है। नयी पीढ़ी में एक व्यापक असन्तोष और विद्रोह की भावना भर गयी है। विज्ञान और टेक्नालाजी ने जीवन के पुराने मूल्यों का नाश कर दिया है। नये मूल्यों का सृजन नहीं हुआ है। धर्म और ईश्वर-निष्ठा के मूल में जो श्रद्धा थी, विज्ञान ने उसकी भी जड़ें हिला दी हैं। फलतः धर्म ने जिस नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन की शिक्षा दी थी वह समाप्त हो गयी है। गाँवों में साथ रहकर उत्पादक उद्योगों में भाग लेते हुए, जिस भाईचारा और सहानुभूति की भावना का सृजन हुआ था, मशीनों और कारखानों के युग में वह भी समाप्त हो गयी है। नये मूल्यों का सृजन नहीं हो पाया। फलतः नयी पीढ़ी अशान्त और विक्षुब्ध है। उसके पास ऐसे आदर्श नहीं रह गये हैं, जिनके सामने वह नतमस्तक हो। परन्तु भारत की स्थिति दूसरी है। आज उसने औद्योगीकरण की नीति अपनायी, परन्तु उसकी सहस्रों वर्षों की प्राचीन उज्ज्वल सांस्कृतिक परम्परा भी है। हम औद्योगीकरण की खामियों से भी परिचित हैं। इसलिए यदि हम औद्योगीकरण का इस तरह से संचालन करें कि हम इन बुराइयों से बचें और हमारे सांस्कृतिक मूल्य भी प्रतिष्ठित रहें तो पश्चिम की टेक्नालाजी और भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का समन्वय हो सकता है। गांधीजी की विकेन्द्रित औद्योगिक नीति और शिक्षा-नीति इसी प्रकार का समन्वय है। आज हमने उस नीति का परित्याग कर दिया है। यह भी उपद्रव का एक कारण है। हम उस नीति को विश्वासपूर्वक अपनायें, तो छात्रों का राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्यों में विश्वास जगेगा और शान्ति स्थापित हो सकेगी।

एक बड़ा कारण

अनुशासनहीनता का सबसे बड़ा कारण है अध्यापकों की नेतृत्व शक्ति का ह्रास। एक दिन अध्यापक समाज का नेता था, तब वह छात्रों का श्रद्धाभाजन भी था। उसके नेतृत्व के मूल में तीन कारण थे —

१—उसकी समाज में प्रतिष्ठा,

२—उसकी योग्यता और चरित्र, और

३—उसका विद्यार्थी से व्यक्तिगत सम्पर्क।

अँग्रेजों के समय से ही इस नेतृत्व का ह्रास होने लगा था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी ह्रास की यह प्रक्रिया रुकी नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण हैं —

आज समाज में अध्यापक की प्रतिष्ठा नहीं है, क्योंकि वह दरिद्र है। आज के समाज में जब पैसा ही प्रतिष्ठा का मानदण्ड है तो अध्यापक को अच्छा वेतन मिलना ही चाहिए। प्रारम्भिक विद्यालयों के अध्यापकों का वेतन आज स्वराज्य-प्राप्ति के उन्नीस वर्ष बाद भी, चपरासी के वेतन से अधिक नहीं है।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद शिक्षा की सुविधाओं में जो विस्तार हुआ है और जिस कारण विद्यार्थियों की संख्या लगभग छः गुनी बढ़ गयी है* उससे अध्यापकों की प्रतिष्ठा दो तरह से कम हुई है।

क—छात्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि के कारण अध्यापन-व्यवसाय में उन लोगों को भी लेना पड़ा जो अध्यापन के लिए आवश्यक योग्यता नहीं रखते थे। वे छात्रों के श्रद्धाभाजन नहीं बन सके।

* कक्षा—८—	१९४६-४७	४,४८,०००
	१९६५-६६	२९,००,०००
कक्षा—१०—	१९५०-५१	४,८५,०००
	१९६५-६६	२४,४७,०००
कक्षा—१२—	१९५०-५१	२,८२,०००
	१९६५-६६	१३,९८,०००

शिक्षा-आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशें

शिक्षण म जिस अयत महत्वपूण और आव श्यक सुधार की आवश्यकता है वह है शिक्षा में परिवतन करना और उसे जीवन के साथ इस तरह सम्बद्ध करना जिससे वह जनता की भावनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा इस प्रकार राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सामाजिक और आर्थिक परिवतन का वह शक्तिशाली यत्र बन सके। इस उद्देश्य के लिए शिक्षण को इस प्रकार विकसित करना चाहिए जिससे वह उत्पादन और उत्पादन की शक्ति बढ़ा सके सामाजिक और राजनीतिक एकता की प्राप्ति कर सके लोकतंत्र को शक्तिशाली बना सके आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ा सके और सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित कर सके।

शिक्षा और उत्पादन

उत्पादन के साथ शिक्षण को सम्बद्ध करने के निम्नलिखित कार्यक्रम आवश्यक है

- विज्ञान का शिक्षण—स्कूल की पढ़ाई में विज्ञान का शिक्षण एक अनिवाय अग होना चाहिए और बाद म विश्वविद्यालय स्तर पर सभी पाठ्यक्रमों का एक अग होना चाहिए।
- काय का अनुभव—इसी प्रकार के शिक्षण में काय का अनुभव उसके अनिवाय रूप में शामिल होना चाहिए।
- काय के अनुभव को तकनीकी और औद्योगीकरण के साथ मिलाने का पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए और उत्पादन की प्रक्रिया में विज्ञान का उपयोग होना चाहिए जिसमें कृषि भी सम्मिलित है।
- व्यवसायीकरण—माध्यमिक शिक्षण में उत्तरोत्तर व्यवसायीकरण होना चाहिए और उच्चतर शिक्षण म शिक्षण और तकनीकी शिक्षण पर अब तक की अपेक्षा अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

सामाजिक और राष्ट्रीय एकता

- सामाजिक और राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति शैक्षणिक पद्धति का एक आवश्यक अग है। राष्ट्रीय चेतना और एकता को दृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए
- सावजनिक स्कूल—शिक्षण के लिए सावजनिक स्कूल की पद्धति राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार करनी चाहिए और उसे क्रमिक रूप म अमल में लाने के लिए बीस वर्षीय कायक्रम बनाना चाहिए।
- सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा—छात्रों के लिए सभी स्तरों पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा अनिवाय होनी चाहिए। हर शिक्षण सस्था को अपने ढंग का सामाजिक जीवन विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए और स्कूल कालेजों म छात्रावास और खेल के मैदानों म छात्रों से आवश्यक काम कराना चाहिए।
- प्राइमरी से लेकर अण्डरग्रेजुएट तक शिक्षण म सवत्र छात्रों को सामुदायिक विकास राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कामों म भाग लेना अनिवाय होना चाहिए।

- एन० सी० सी० का कार्यक्रम चौथी पचवर्षीय योजना के अन्त तक जारी रखना चाहिए। अण्डरग्रेजुएट स्तर तक लगभग ६० दिन शिक्षण का पूरा कार्यक्रम चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। समाज-सेवा के और भी विकल्प खोजना चाहिए और उनके अमल मे आने पर एन०सी० सी० को ऐच्छिक कार्यक्रम बना देना चाहिए।
- शिक्षा-पद्धति में एक उपयुक्त भाषा-पद्धति का विकास होना चाहिए।
- स्कूल और कालेज के स्तर में मातृभाषा का प्रमुख दावा है। शिक्षा का माध्यम उसी को बनाना चाहिए। उच्च स्तर पर शिक्षण के लिए क्षेत्रीय भाषाओं का माध्यम बनाना चाहिए।
- क्षेत्रीय भाषाओ में विशेषतः वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकें और साहित्य तैयार करने के लिए शक्तिशाली प्रयत्न होने चाहिएँ। यह विश्वविद्यालयो का उत्तरदायित्व माना जाय और यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन इसमें मदद करे।
- अखिल भारतीय सस्थाओ को आज की भाँति अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहिए। यथासमय हिन्दी उसका स्थान ले सकती है। उसके लिए कुछ विशेष सरक्षण सम्बन्धी नियम बनाये जा सकते हैं।
- क्षेत्रीय भाषाओ को सम्बद्ध क्षेत्रों के लिए यथाशीघ्र शासन की भाषा बना देना चाहिए, जिससे कि जो क्षेत्रीय भाषाओ के माध्यम से पढते हैं, वे उच्च सेवाओं की प्राप्ति से वचित न रह जायें।
- अंग्रेजी का शिक्षण और अध्ययन स्कूल के स्तर से लेकर ऊपर तक बढाते रहना चाहिए। अन्य अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओ, जैसे रूसी भाषा, को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए।
- स्कूल के स्तर पर और विश्वविद्यालय के स्तर पर भी कुछ ऐसी शिक्षण-सस्थाएँ खडी की जानी चाहिएँ, जिनमें शिक्षा का माध्यम विश्व की कुछ महत्वपूर्ण भाषाएँ हों।
- उच्च शैक्षणिक कार्य के लिए और बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए उच्च शिक्षण में अंग्रेजी एक कडी की भाषा में काम करेगी। पर अंग्रेजी देश के अधिकाश लोगों के लिए कडी की भाषा नही बन सकती, ऐसा स्थान केवल हिन्दी ही ले सकती है और यथासमय उसे लेना ही चाहिए, क्योंकि यह सघ की राजभाषा है और जनता की कडी की भाषा है, इसलिए गैर हिन्दी प्रदेशों में उसके प्रसार के लिए सभी उपाय करने चाहिएँ।
- हिन्दी के अलावा सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के लिए अनेक मार्ग निकालने चाहिएँ। भिन्न भाषावाले प्रत्येक प्रदेश में ऐसे कितने ही लोग होने चाहिएँ, जो दूसरी भारतीय भाषाएँ जानते हो। भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाएँ सिखाने के लिए हर विश्वविद्यालय मे आयोजन होने चाहिएँ। बी० ए० और एम० ए० के स्तर पर दो भारतीय भाषाओ को मिलाने का प्रयत्न होना चाहिए।
- स्कूल की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का विकास होना चाहिए। अपनी सास्कृतिक विरासत और भविष्य में महान श्रद्धा के द्वारा यह भावना विकसित करनी चाहिए।

लोकतन्त्र के लिए शिक्षण

४ लोकतन्त्र को स्थायी बनाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं।

- १४ वर्ष तक की आयु के बच्चो को उत्तम प्रकार का निशुल्क और अनिवार्य शिक्षण दिया जाय। प्रौढ शिक्षण का भी कार्यक्रम चलाया जाय, जिससे निरक्षरता ही दूर न हो, जनता की नागरिक और व्यावसायिक प्रतिभा भी विकसित हो।
- सामाजिक और उच्चतर शिक्षण को व्यापक करके सभी प्रतिभाशाली बालकों के लिए विकास की समान सुविधाएँ दी जायें, वे उत्तम नेता बन सकें।
- लोकतात्रिक मूल्यो के विकास के लिए स्कूलो का कार्यक्रम ऐसा हो, जिससे लोकतात्रिक मूल्य विकसित हो सकें, जैसे—वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सहनशीलता, जनसेवा, आत्मानुशासन, स्वावलम्बन, श्रमनिष्ठा आदि।

शिक्षा और आधुनिकता

- आज के समाज में ज्ञान का विकास अत्यन्त तीव्र गति से हो रहा है और सामाजिक परिवर्तन भी तीव्र गति से हो रहा है, इसलिए शिक्षा-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपेक्षित है। बालकों की जिज्ञासा को इस प्रकार जाग्रत करना है कि वे स्वतंत्र रूप से सोचें, अध्ययन, मनन, और निर्णय करें।
- इसके लिए समाज को अपने को शिक्षित करना होगा।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य

शिक्षा-पद्धति को मूलभूत सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर जोर देना चाहिए, इस दृष्टि से—

- केंद्रीय और राज्य-सरकारों को अपनी सभी शिक्षण-संस्थाओं में विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग और धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण-समिति-द्वारा जो सिफारिशें की गयी हैं, उनके आधार पर शिक्षा में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का प्रवेश कराना चाहिए।
- निजी शिक्षण-संस्थाओं में भी ऐसा होना चाहिए।
- स्कूल में इसका अनिवार्य क्रम तो रहे ही, कभी कभी बाहर के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के शिक्षकों को बुलाकर भी ऐसा शिक्षण देना चाहिए।
- विश्वविद्यालयों में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययनवाले विभागों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि ये नैतिक मूल्य किस प्रकार अच्छे ढंग से लोगों को सिखाये जा सकते हैं। छात्रों और अध्यापकों के लिए विशेष साहित्य तैयार करना चाहिए।

सर्वधर्म समन्वय का पाठ्यक्रम

हमारे अनेक धर्मोंवाले लोकतांत्रिक राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन का विकास करे जिससे उसके नागरिक एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह समझ सकें। स्कूलों और कालेजों में नागरिकता अथवा सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण अंश ऐसा रहना चाहिए, जिसमें सभी प्रमुख धर्मों के सम्बन्ध में अच्छे ढंग से चुनी हुई सामग्री रहे। उसमें यह बताना चाहिए कि विश्व के सभी महान धर्मों में बुनियादी समानता है और वे सब के सब नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर एक समान जोर देते हैं। अच्छा हो कि इस विषय पर देश में सभी भागों में एक समान पाठ्यक्रम रखा जाय और एक ही समान पाठ्य-पुस्तकें हों। राष्ट्रीय पैमाने पर हर धर्म के अधिकारी और उपयुक्त विद्वानों-द्वारा इस तरह का साहित्य तैयार कराना चाहिए।

शिक्षण-पद्धति : ढांचा और स्तर

शिक्षा का नया ढांचा इस प्रकार होगा

- स्कूल से पहले का शिक्षण एक से तीन साल तक।
- एक प्राइमरी स्तर ७ से ८ वर्ष का हो, जिसमें लोअर प्राइमरी ४ या ५ साल का हो और हायर प्राइमरी ३ या २ साल का हो।
- एक लोअर माध्यमिक स्तर तीन या दो साल का हो।
- एक हायर माध्यमिक स्तर, जिसमें दो साल सामान्य शिक्षण दिया जाय अथवा एक से तीन साल तक औद्योगिक व्यावसायिक शिक्षण दिया जाय।
- पहली उपाधि के लिए तीन साल अथवा अधिक समय का एक उच्च शिक्षण-स्तर। उसके बाद दूसरी उपाधि अथवा शोध के लिए भिन्न-भिन्न अवधियों का पाठ्यक्रम रहे।
- कक्षा १ में भरती होने की उमर कम-से-कम ५ साल हो।
- दसवें दर्जे के पहले किसी विषय में विशेषीकरण का प्रयत्न न किया जाय।
- माध्यमिक शालाएं दो प्रकार की हों—हाईस्कूल, जिसमें १० साल का पाठ्यक्रम रहे और उच्च माध्यमिक शाला म ११ अथवा १२ साल का।
- हर माध्यमिक शाला को उच्च माध्यमिक स्तर पर ले जाने का प्रयत्न न किया जाय। केवल एक चौथाई स्कूलों को ऊपर उठाया जाय, जो अधिक बड़े और कार्यक्षम हों।
- एक नया माध्यमिक शिक्षण-पाठ्यक्रम कक्षा ११ से

शुरू किया जाय। ११ और १२ कक्षा में भिन्न विषयों के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध हो।

- प्रीयूनिवर्सिटी-कोर्स—१९७५-७६ तक विश्व-विद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों से प्रीयूनिवर्सिटी-कोर्स लेकर माध्यमिक शालाओं को दे दिया जाय और १९८५-८६ तक इस कार्स की अवधि २ वर्ष और बढ़ा दी जाय।
- सेकेण्डरी एजुकेशन बोर्डों का पुनर्गठन हो, जिससे वे हायर सेकेण्डरी स्तर की जिम्मेदारी भी सँभाल सकें।
- लोअर और हायर माध्यमिक स्तरों पर १ से ३ वर्ष तक विभिन्न प्रकार के औद्योगिक, व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू किये जायें।
- पहली उपाधि का पाठ्यक्रम तीन वर्ष से कम का नहीं होना चाहिए। दूसरी उपाधि का पाठ्यक्रम दो से तीन वर्ष का हो सकता है।
- स्कूलों में शिक्षण के दिवस साल में ३९ सप्ताह कर देना चाहिए और कालेजों और पूर्व प्राइमरी स्कूलों में ३६ सप्ताह कर देना चाहिए।
- सरकारी छुट्टियों के अलावा साल में १० दिन से अधिक छुट्टियाँ नहीं होनी चाहिएँ। परीक्षा अथवा अन्य कारणों से स्कूलों में २१ दिन से अधिक और कालेजों में २७ दिन से अधिक पढ़ाई बन्द नहीं रहनी चाहिए।
- छुट्टियों का पूरा उपयोग विभिन्न अध्ययनों, समाज-सेवा शिविरों, साक्षरता-आन्दोलनों आदि कार्यों में करना चाहिए।
- शिक्षा के सभी स्तरों का स्तर ऊपर उठाने का ठोस प्रयत्न करना चाहिए।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण के विभिन्न स्तरों में आज की अपेक्षा परस्पर का सहयोग अधिक हो।

शिक्षकों का शिक्षण

- राष्ट्रीय शिक्षण सम्बन्धी संयोजन में शिक्षकों का शिक्षण अत्यन्त महत्व का मुद्दा है, उसपर पूरा जोर दिया जाना चाहिए। सरकारों को इस काम के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता देनी चाहिए।
- उत्तम शिक्षक तैयार करने के लिए एक ओर विश्वविद्यालयों और दूसरी ओर स्कूल के जीवन में शैक्षणिक विकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- प्रत्येक राज्य में शिक्षकों के शिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधाएँ होनी चाहिएँ, जिससे कि इतने ट्रेण्ड शिक्षक तैयार हो जायें, जितनों की आवश्यकता है।
- अध्यापकों के शिक्षण के स्तर को राष्ट्रीय पैमाने पर उन्नत करने की जिम्मेदारी यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन को लेनी चाहिए।

लड़कों की स्कूल में भरती

शिक्षण की सुविधाओं के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त इस प्रकार होने चाहिएँ—

हर बच्चे को कम-से-कम ७ साल तक का उत्तम और प्रभावशाली सामान्य शिक्षण देना चाहिए, जो आगे बढ़ना चाहे, उसे चुनाव के आधार पर उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय का शिक्षण देना चाहिए। व्यवसायगत, तकनीकी और भिन्न भिन्न रुचियों के अनुकूल लाभदायी कार्यों का शिक्षण विकसित करने पर जोर दिया जाना चाहिए। प्रतिभा का समझ-कर उसके विकास का प्रयत्न करना चाहिए। सामान्य जनता की निरक्षरता को दूर करना चाहिए और प्रौढ़-शिक्षण का व्यापक कार्यक्रम बनाना चाहिए। सभी लोगों को शिक्षा का समान अवसर मिल सके, इसका प्रयत्न करना चाहिए।

- माध्यमिक और उच्चतर शिक्षण के लिए छात्रों को भरती करने में ४ बातें देखनी चाहिएँ—जनता की *माँग, योग्यता का विकास, शैक्षणिक सहूलियतें* देने की सुविधाएँ और मानव शक्ति।
- प्राइमरी अथवा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले जो प्रतिभाशाली छात्र हैं, उनको आगे पढ़ने की पूरी सुविधाएँ देनी चाहिएँ।
- सभी क्षेत्रों में भिन्न भिन्न व्यवसायों सम्बन्धी शिक्षण के विकास के लिए प्रयत्न किया जाय और उसे प्राथमिकता दी जाय।
- शिक्षा की कोई योजना तभी सफल हो सकेगी, जब

उसके लिए कोई समग्र योजना बनायी जाय जिससे जन्म की दर आधी हो जाय। उपयोगी काम का विकास हो और लोगों को ऐसा शिक्षण मिले जिससे वे विशिष्ट प्रकार के कामों को ठीक ढंग से कर सकें।

सबको समान शैक्षणिक सुविधाएँ

- देश को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे बिना ट्यूशन फीस (शिक्षा शुल्क) दिये हर व्यक्ति निःशुल्क शिक्षा प्राप्त कर सके।
- प्राइमरी स्तर पर ट्यूशन फीस लेना यथाशीघ्र समाप्त कर दिया जाय, जहाँ तक हो चौथी पंच वर्षीय योजना की समाप्ति के पूर्व ही।
- निम्नतर माध्यमिक शिक्षण पाँचवीं योजना की समाप्ति के पूर्व यथाशीघ्र निःशुल्क कर देना चाहिए।
- अगले १० वर्षों में ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक और विश्वविद्यालय का शिक्षण उन सभी लोगों को मुफ्त मिल सके जो छात्र गरीब एवं प्रतिभाशाली हों।
- शिक्षा के अन्य खर्चे भी कम करने का प्रयत्न करना चाहिए।
- प्राइमरी स्तर पर मुफ्त पाठ्यपुस्तकें देने की सुविधा को प्राथमिकता देनी चाहिए। उच्चतर शिक्षण में 'बुक बैंक' स्थापित करने का प्रयत्न हो जिनसे पुस्तकालयों में पाठ्यपुस्तकों की कई-कई प्रतियाँ रहें। प्रतिभाशाली छात्रों को पुस्तक खरीदने के लिए अनुदान दिया जाना चाहिए।
- होनहार बच्चे जैसे ही लोअर प्राइमरी स्कूल पास करें उन्हें आगे पढ़ने के लिए वजीफे दिये जाने चाहिएँ।
- स्कूल के स्तर पर प्रतिभाशाली छात्रों को पहचानने के लिए उपयुक्त उपाय करने चाहिएँ।
- हर शिक्षण-संस्था में ऐसा कार्यक्रम हो कि उसमें प्रतिभाशाली छात्रों को पहचान कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय।
- अण्डरग्रेजुएट स्तर तक औसतन ७५ रु० और उसके बाद १५० रु० वजीफा दिया जाय।
- व्यावसायिक शिक्षण के लिए विशेषकर तकनीकी और इन्जीनियरिंग तथा मेडिकल संस्थाओं में प्रवेश के लिए सभी को समान सुविधाएँ प्राप्त हों।
- अपंग बच्चों की शिक्षा को सामान्य शिक्षण-पद्धति का अनिवार्य अंग मानना चाहिए।
- सभी स्तरों पर सभी क्षेत्रों में लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- अनुसूचित जातियों के बच्चों के शिक्षण के लिए जो कार्यक्रम चालू हैं उनको और विकसित करना चाहिए।

स्कूली शिक्षण के विस्तार का प्रश्न

- विश्वविद्यालय के पूर्व का सारा शिक्षा-काल एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में माना जाना चाहिए।

प्राइमरी से पूर्व का शिक्षण आगामी बीस वर्षों में इस प्रकार का होना चाहिए

- हर राज्य के शिक्षा-संस्थान में और हर जिले में पूर्व-प्राइमरी शिक्षण का विकास, निरीक्षण और मार्ग दर्शन के लिए विकास-केन्द्र खोले जाने चाहिएँ।
- ऐसे केन्द्र निजी तौर पर खोले जायँ, तो अच्छा। राज्य-सरकार उन्हें आर्थिक अनुदान दे।
- पूर्व प्राइमरी शिक्षण में प्रयोगात्मक पद्धति को प्रोत्साहन दिया जाय।
- संविधान में कहा है कि १४ वर्ष तक की आयुवाले सभी बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षण दिया जाय। यह उद्देश्य दो स्तरों में पूरा करना चाहिए—१९७५-७६ तक सभी बच्चों को पंच वर्षीय शिक्षण दिया जाय। १९८५-८६ तक सप्त वर्षीय शिक्षण दिया जाय।
- लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।
- आदिवासियों में शिक्षा-प्रसार की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- माध्यमिक शिक्षा में कला-कौशल और भिन्न-भिन्न व्यवसायों की शिक्षा का बड़ी मात्रा में प्रबन्ध किया जाना चाहिए। लोअर सेकेण्डरी स्तर में २० प्रतिशत और हायर सेकेण्डरी स्तर में ५० प्रतिशत छात्रों को ऐसा शिक्षण दिया जाना चाहिए। ●

स्कूल का अभ्यासक्रम

•

श्री के० श्रीनिवास आचार्लु

शिक्षा-पुनर्गठन के तीन आवश्यक पहलू हैं—आधारभूत सिद्धान्तों का स्पष्ट विवेचन, इन सिद्धान्तों से ही सामंजस्य से पाठ्यक्रम का निर्धारण, और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्रम की प्रभावपूर्ण कार्यान्विती।

शिक्षा-आयोग के अनुसार अच्छी, सुदृढ़ शिक्षा के निम्न आधार हैं—

शिक्षा को राष्ट्रीय विकास और समृद्धि के साथ जुड़ा होना चाहिए, शिक्षा का सामाजिक व राष्ट्रीय भावात्मकता के लिए योगदान हो, शिक्षा उन नैतिक मूल्यों को शक्ति व बढ़ावा दे जो लोकतान्त्रिक समाज का संवर्धन करते हैं, शिक्षा लोगों के जीवन, उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बद्ध हो, शिक्षा हमारे महान्, प्राचीन व परम्परागत मूल्यों तथा प्रेम, अहिंसा और शान्ति की पुनर्व्याख्या और हमारे मनीषियों की अन्तर्दृष्टि में आस्था विकसित करे। वर्तमान आणविक स्थिति में विज्ञान व अध्यात्म का मेल ही जगतव्यापी संकट के निवारण का एकमात्र उपाय है।

कार्यक्रम

इन आधारभूत उद्देश्यों की प्राप्ति निम्न शैक्षिक कार्यक्रमों-द्वारा करने की बात कही गयी है, शिक्षा को उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ सम्बद्ध करना। प्रत्यक्ष कार्य को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर यानी घर, खेत, कारखाने व कार्यशाला में उत्पादक-श्रम व उत्पादन-वृद्धि के लिए विज्ञान-आधारित तकनीक व कृषि का विकास विज्ञान की शिक्षा को सभी प्रकार की शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना, राष्ट्रीय व सामाजिक सेवा क्रमों की वृद्धि शिक्षा-शाला में स्वस्थ सामुदायिक जीवन की अभिवृद्धि।

आधारभूत उद्देश्यों और शाला जीवन का प्रभावपूर्ण संगठन ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। इन दोनों के बीच की कड़ी अभ्यासक्रम ही है।

अभ्यासक्रम का प्रत्येक मुद्दा ऐसा हो कि वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा कार्यक्रमों की पूर्ति सुगम करे।

अभ्यासक्रम के सिद्धान्त

शाला के वर्तमान अभ्यासक्रम की अत्यन्त संकीर्णरूप से कल्पित 'किताबी' एवं परीक्षा के कालिक रूप में आलोचना करते हुए शिक्षा-आयोग ने कहा है कि अच्छे अभ्यासक्रम को ज्ञान का संवर्धन, कौशल का विकास तथा आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज की आवश्यकता के अनुरूप सम्यक् रुचि, वृत्ति एवं मूल्यों की अभिवृद्धि करनी चाहिए।

अभ्यासक्रम का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा-आयोग ने कई उपाय सुझाये हैं। यथा—विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञों-द्वारा सुव्यवस्थित शोध, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में उन्नति, शिक्षकों का समुचित प्रशिक्षण तथा शिक्षार्थियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से अभ्यासक्रम का

सम्बन्धीकरण। शिक्षा आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि कुछ अच्छे स्कूल प्रायोगिक स्तर के पाठ्यक्रम को लागू करके देखें।

प्रथम दस वर्षों का अभ्यासक्रम

पिछले दस सालों का अभ्यासक्रम पढ़ाई के लगातार चलनेवाले कार्यक्रम के रूप में संगठित होगा और बीच व हर चरण के बाद उपलब्धि-स्तर, प्राप्त किये हुए ज्ञान, हुनर, योग्यता और वृत्ति के रूप में बताया जायगा।

(अ) निचले प्राइमरी-स्तर (१ से ४) में बच्चे को सीखने-पढ़ने, लिखने, अंकगणित और प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण के प्रारम्भिक अध्ययन के साधनों की शिक्षा मिलनी चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिए उसे अपने में क्रियाशीलता व रचनात्मक हुनरों का विकास करना चाहिए। मातृभाषा की जानकारी की दृष्टि से बच्चे की नींव पक्की होनी चाहिए। उसे इस स्तर पर और कोई भाषा नहीं पढ़ायी जायगी।

(ब) उच्चतर प्राइमरी स्तर (५ से ७) पर एक दूसरी भाषा जुड़ेगी। साथ ही, गणित-सम्बन्धी और ऊँची जानकारी तथा प्राकृतिक एवं भौतिक वातावरण का अध्ययन, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र की जानकारी और कला का, (जिसके अन्तर्गत उद्योगों तथा अन्य हुनरों का अभ्यास और स्वस्थ जीवन की आदत रहेगी,) समावेश होगा।

(स) माध्यमिक स्तर पर अभ्यासक्रम को विशारा, तथा लोकतान्त्रिक नागरिकता की आवश्यकताओं, जिसमें हुनरों का विकास वृत्तियों और चरित्र की विशेषताओं यानी, स्पष्ट चिन्तन, अपनी बात आसानी से समझा सकने की योग्यता, वैज्ञानिक वृत्ति, सच्ची देशभक्ति का भान तथा उत्पादक श्रम के मूल्य में आस्था आदि की पूर्ति करनी चाहिए। निचले माध्यमिक स्तर पर उत्साह व गहराई के साथ वही विषय चालू रखे जायेंगे जो पहले के स्तर पर पढ़े जा चुके हैं। इस स्तर पर विज्ञान-सम्बन्धी योग्यता को विशेष महत्व दिया जायगा, ऐसी आशा की जाती है। प्रत्यक्ष कार्य को खेत, कारखाना या अन्य उत्पादक इकाई में संगठित किया जायगा। एक निर्दिष्ट समय तक समाज-सेवा चालू रखी जायगी। नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की भी शिक्षा दी जायगी।

उच्चतर माध्यमिक

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्राविधिक, वाणिज्य, व्यापार तथा औद्योगिक पाठ्यक्रम तथा कृषि का विशिष्ट संस्थाओं में अध्ययन होगा और कला व विज्ञान का सामान्य स्कूलों में। भाषाएँ दो पढ़ायी जायेंगी। किशोरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा-आयोग प्रत्यक्ष कार्य-अनुभव समाज सेवा, कला व क्राफ्ट, शारीरिक तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की संस्तुति करता है। स्कूल के समय का आधा, विषयों के अध्ययन, एक चौथाई भाषा-अध्ययन तथा एक चौथाई क्रियाओं (ऐक्टीविटीज) या अन्य विषयों के लिए रखा गया है।

अभ्यासक्रम पर कुछ विचार

१—ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा-आयोग वर्तमान अमेरिकी शिक्षानीति की अभ्यासक्रम-सम्बन्धी रुझान से अधिक प्रभावित है, जिसमें जानडेवी से प्रेरित विकासवादी शिक्षा-शास्त्रियों के शैक्षिक विचार-आदर्श पीछे ढकेल दिये गये हैं। संयुक्त राज्य में आज वर्तमान शताब्दी के चतुर्थ दशकवाले वर्षों के शिशु केन्द्रित, समुदाय-केन्द्रित, जीवन-केन्द्रित तथा कार्य उन्मुख अभ्यासक्रम का स्थान राष्ट्रीय, सामाजिक व राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रति समर्पित अभ्यासक्रम ने ले लिया है। आज शिक्षा बच्चों के मनोवैज्ञानिक विकास से उतनी सम्बन्धित नहीं है जितनी विषयों की कौशलपूर्ण जानकारी के माध्यम से प्राप्त होनेवाली मानसिक दक्षता से। 'पूर्ण शिशु' की कल्पना का स्थान आज विभिन्न विषयक कल्पना ने ले लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा-आयोग-द्वारा सुझाया गया अभ्यासक्रम शिक्षार्थी या मानव-समुदाय के व्यक्तित्व के प्रति अगम्य सत्ता से प्रेरित है।

२—शिक्षा-आयोग ने स्कूल अभ्यासक्रम के एक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में विज्ञान पर बहुत जोर दिया है। प्राइमरी स्कूल स्तर पर विज्ञान-शिक्षण को प्राकृतिक व जैविकी (बायलाजिकल) वातावरण की प्रमुख परिकल्पनाओं, सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं की कोई जानकारी विकसित करनी चाहिए। निचले प्राइमरी स्तर पर प्यार बच्चे की सामाजिक, प्राकृतिक व जैविकी (बाय

लाजिक्ल) वातावरण पर केन्द्रित होनी चाहिए। प्रथम तथा द्वितीय वर्ग में सफाई, तन्दुरुस्ती की आदतें बनाने तथा निरीक्षण-शक्ति के विकास पर होना चाहिए। तीसरी और चौथी कक्षाओं में बच्चा व्यक्तिगत स्वास्थ्य व स्वच्छता पर अधिक ध्यान देगा और साथ ही विज्ञान के सामान्य क्षेत्रों—जैसे, आसपास के पशु व वनस्पति-जगत, वायु जिसमें वह सांस लेता है, पृथ्वी जिस पर वह रहता है, मौसम जो उसके नित्यजीवन को प्रभावित करता है, लोगों को इस्तेमाल में आनेवाली छोटी छोटी मशीनें, उसका स्वयं अपना शरीर तथा आकाशीय ग्रह-नक्षत्र आदि से वह परिचय प्राप्त करेगा।

हमारी यह मान्यता है कि प्राइमरी कक्षाओं में बच्चों को अपना कुछ समय बाहर के प्राकृतिक वातावरण में बिताना होगा जिसमें वे —पहाड़ों, घाटियों, जंगलों में भ्रमण तथा चट्टानों एवं मिट्टी का निरीक्षण, विभिन्न चीजों के नमूनों का एकत्रीकरण, झरनों एवं जल स्रोतों का मार्ग उनके मोड़ व किनारा, बालू व तलहटी के पत्थरों, पक्षियों एवं पशुओं, झाड़ियों, पौधों एवं वृक्षों का निरीक्षण करके मूल्यवान अनुभव प्राप्त करेंगे। ये क्रियाएँ विभिन्न ऋतुओं तथा विभिन्न प्रकार के मौसम में आयोजित एवं संगठित होनी चाहिएँ। इन निरीक्षणों एवं अनुभवों के आधार पर व्यवस्थित पाठ तैयार किये जाने चाहिएँ। प्राकृतिक वातावरण पर सर्वोत्तम पुस्तकें भी बच्चा में वास्तविक वैज्ञानिक वृत्ति उत्पन्न नहीं कर सकेंगी।

उच्चतर प्राइमरी स्तर पर शिक्षा-आयोग ने भौतिक-शास्त्र, रसायन, प्राणि शास्त्र, विज्ञान, भूगर्भ-शास्त्र, ज्योतिष आदि के रूप में विज्ञान शिक्षण की संस्तुति की है। इसी स्तर पर वह ज्ञान—प्रत्यक्ष उद्योग— शुरू होता है जिसका आयोग ने इतना विरोध किया था।

इसमें सन्देह नहीं कि अलग-अलग विषयों के रूप में विज्ञान की पढ़ाई औपचारिक, अमूर्त तथा नीरस बन जाती है और इस तरह केवल स्मरण-शक्ति को प्रधानता मिलती है। विज्ञान की पढ़ाई काफी रुचिकर और प्रभावोत्पादक हो जाय यदि निरीक्षण, अनुभव या प्राकृतिक वातावरण में समस्याओं के अध्ययन का सहारा लिया जाय।

निचले माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के विविध अंगों की पढ़ाई विकसित हो रहे उद्योगों तथा जीवन की समस्याओं पर लागू हो सकनेवाले अनिवार्य विषयों के रूप में की जाने की संस्तुति की गयी है। ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान का कृषि वातावरण से अनुबन्ध बैठाया जायगा तथा शहरी क्षेत्रों में प्राविधिक व औद्योगिक कार्यक्रमों से। हमारी मान्यता है कि विज्ञान की प्रभावोत्पादक एवं उद्देश्यपूर्ण शिक्षा तभी हो सकेगी जब ज्ञान जीवन व प्राकृतिक वातावरण के बीच अनुभव से उद्भूत होगा यानी ज्ञान और कर्म के बीच अनुबन्ध स्थापित होगा।

३—शिक्षा-आयोग की यह मान्यता है कि तखमीना (क्वान्टिफिकेशन) एक महत्वपूर्ण चीज है और इसका प्राकृतिक (फिजिकल) एवं जैविकी (बायलाजिकल) विज्ञानों में बड़ा महत्वपूर्ण कृतित्व (रोल) होता है। जहाँतक अंकगणित व बीजगणित का सम्बन्ध है, इन दोनों का एकीकरण होना चाहिए तथा और सिद्धान्तों और तर्कसंगत चिन्तन पर जोर दिया जाना चाहिए। शिक्षा-आयोग का यह सुझाव सही है कि गणित-सम्बन्धी अनावश्यक चीजों को अभ्यासक्रम से बाहर किया जाय।

४—आयोग के विचार से अच्छी नागरिकता तथा भावात्मक एकता के विकास के लिए सामाजिक विज्ञानों का प्रभावपूर्ण अध्ययन आवश्यक है। मनुष्य और उसके वातावरण के अध्ययन का केन्द्रित कर उन्होंने सामाजिक अध्ययन का एक कार्यक्रम भी सुझाया है। ऊँचे स्तर पर विद्यार्थियों को इतिहास, भूगोल और नागरिकता की अलग-अलग शिक्षा देने की बात कही गयी है।

हमारा विचार है कि अभ्यासक्रम-सम्बन्धी जिस कार्यप्रणाली का सुझाव दिया गया है वह शैक्षिक दृष्टि से समीचीन नहीं है। सामाजिक अध्ययन का मूल्य व महत्व समाप्त हो जाता है, यदि वह उस सामाजिक वातावरण का अध्ययन नहीं है जिसमें मनुष्य स्वयं रहता है। जिस वातावरण में विद्यालय स्थित है उससे सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समस्याओं एवं बाहरी दुनिया के साथ उसके सम्बन्ध से तो विद्यार्थियों को परिचित कराना ही चाहिए। शिक्षार्थी लोगों का निरीक्षण करें, उनके बीच रहें, उनके सुख-

शिक्षा-आयोग-द्वारा प्रस्तुत

शैक्षिक प्रशासन : एक मूल्यांकन

•

वंशीधर श्रीवास्तव

वर्तमान शैक्षिक प्रशासन और पर्यवेक्षण प्रणाली दूषित है और उसमें सुधार की आवश्यकता है क्योंकि उदार और कल्पनाशील प्रशासन और पर्यवेक्षण-नीति किसी भी शैक्षिक योजना की सफलता की पहली शर्त है। भारतीय शिक्षा-आयोग ने वर्तमान शैक्षिक प्रशासन और पर्यवेक्षण के ढांचे में सुधार करने के दो प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये हैं

१–सार्वजनिक शिक्षा के लिए एक सामान्य विद्यालय प्रणाली (पब्लिक एजुकेशन का कामन सिस्टम) विकसित करना।

२–शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर गुणात्मक विकास करना।

•

यह स्पष्ट है कि यदि प्रशासन और पर्यवेक्षण पद्धति से इन लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं होती तो ढांचे में सुधार करने का कोई अर्थ नहीं है। अतः इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आयोग ने शैक्षिक प्रशासन और पर्यवेक्षण के ढांचे में सुधार करने के लिए जो संस्तुतियां की हैं उनका विवेचन करके ही हम कह सकते हैं कि आयोग के सुझावों से इन लक्ष्यों की प्राप्ति में किस सीमा तक सहायता मिलती है।

सामान्य विद्यालय प्रणाली

प्रशासन की दृष्टि से आज की प्रमुख समस्या पूरे देश में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सामान्य विद्यालयों की एक ऐसी प्रणाली विकसित करनी है जिसका गुणात्मक स्तर इतना अच्छा हो कि अभिभावक अपने बच्चों को इस सार्वजनिक प्रणाली से बाहर के स्कूलों में भेजना पसन्द न करें। यह इसलिए आवश्यक है कि आज हम अपने देश में लोकतन्त्रीय समाजवाद स्थापित करना चाहते हैं और इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए हम उस खाई को पाटना होगा जो आज हमारे समाज के सम्पन्न और असम्पन्न वर्ग के बीच में पड़ गयी है। हम जानते हैं कि समाज की असमानता के मूल में शिक्षा की असमान सुविधाएं भी रहती हैं। अभिभावक के धन अथवा किसी भी दूसरे प्रभाव के कारण यदि बच्चा उत्तम शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो वह समाज की अधिक शक्तिशाली इकाई बन जाता है। फिर उसके कुछ स्वार्थ बन जाते हैं जिनकी वह प्रच्छन्न अथवा अप्रच्छन्न ढंग से रचना करता है। रक्षा के इन ढंगों में से एक ढंग है अपने बच्चों को सामान्य शिक्षा से अधिक अच्छी शिक्षा देना। इस प्रकार एक दुश्चक्र बनता है जिसे तोड़े बिना समाजवाद की स्थापना नहीं होती। इसलिए समाजवादी देशों में एक सामान्य पाठ्यक्रम और 'सामान्य विद्यालय प्रणाली' की नीति

कार्यान्वित की जाती है। अतः आयोग ने अपने सामने सबके लिए सामान्य विद्यालय खोलने का राष्ट्रीय लक्ष्य रखकर ठीक दिशा में उचित कदम उठाया है।

इस लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे अधिक बाधक हैं, वे स्वतंत्र 'पब्लिक स्कूल' जो अंग्रेजों की विरासत हैं और जो इंग्लैण्ड के पब्लिक स्कूलों की नकल हैं और जो उन्हीं के पाठ्यक्रमों का अनुसरण करते हैं। अंग्रेज चले गये परन्तु ये स्कूल बने रहे—बने ही नहीं रहे, पहले से भी अधिक शक्तिशाली और लोक-प्रिय हो गये। इन स्कूलों में बहुत अधिक फीस ली जाती है। अतः इनमें पढ़ने-वाले छात्र समाज के सर्वाधिक शक्तिशाली और सम्पन्न वर्ग के ही बच्चे होते हैं। इन स्कूलों में अध्यापकों को बहुत अधिक वेतन दिया जाता है। ये स्कूल देश की सामाजिक एकता के मार्ग के सबसे बड़े रोड़े हैं, क्योंकि ये समाज के सम्पन्न वर्ग को समाज के दूसरे वर्गों से अलग रखते हैं और इस प्रकार पृथक्करण की नीति को प्रश्रय देते हैं जो समाजवाद के उसूलों के खिलाफ है। पृथक्-करण के इस प्रश्न को हल करने के लिए प्रतिवर्ष दो सौ प्रतिभा-सम्पन्न छात्रों को छात्रवृत्ति देकर इन स्कूलों में भेजा जाता है जिससे इन संस्थाओं में विशिष्ट छात्रों की जीवन-दृष्टि बदले परन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव इन छात्रों के जीवन पर नहीं पड़ता—यह आयोग ने स्वीकार किया है (अध्याय १० पैरा १०.७७) परन्तु आयोग इन स्वतन्त्र संस्थाओं को बन्द करने की संस्तुति भी नहीं कर सका है। क्योंकि भारतीय विधान की धारा २८ (१), २८ (२) और ३० के अनुसार धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यकों को और धारा १९ (सी) और (जी) के अनुसार प्रत्येक नागरिक को व्यक्तिगत संस्था चलाने का अधिकार है'। अतः जबतक भारतीय विधान में परिवर्तन न कर दिया जाय तबतक ये व्यक्तिगत संस्थाएँ बनी ही रहेंगी। अतः इस वैधानिक कठिनाई के कारण अपनी सीमा को ध्यान में रखते हुए आयोग ने सामान्य विद्यालय-प्रणाली की स्थापना के लिए निम्न प्रकार से सुझाव दिया है.—

"यद्यपि इन पब्लिक स्कूलों का हमारे नये लोक-तंत्रीय समाजवादी समाज में कोई स्थान नहीं है, परन्तु अगर ये व्यक्तिगत संस्थाएँ राज्य से आर्थिक सहायता और स्वीकृति (रिकग्निशन) नहीं माँगती तो वे सामान्य विद्यालय-प्रणाली की राष्ट्रीय नीति से बाहर बनी रहें"। चूंकि ये संस्थाएँ फीस पर ही निर्भर करती हैं अतः हमारा अन्तिम ध्येय विद्यालय-स्तर की शिक्षा को क्रमिक कार्यक्रम के अनुसार निःशुल्क बना देना है। प्रारम्भिक स्कूलों में तो सब फीस हटा ही दी जाय।

मेरा निवेदन है कि आयोग का यह सोचना कि अगर विद्यालयी शिक्षा निःशुल्क हो जाय और सामान्य विद्यालयों की शिक्षा का स्तर ऊँचा हो जाय तो सामान्य विद्यालय-प्रणाली को प्रतिष्ठित किया जा सकेगा, गलत है। "ऊँचा स्तर" सापेक्षिक पद है। अगर सार्वजनिक स्कूलों में शिक्षा का स्तर उतना ही ऊँचा बना दिया जाय जितना कि पब्लिक स्कूलों में है और उसे निःशुल्क भी कर दिया जाय तो निःसन्देह कोई अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में, जहाँ फीस देनी पड़ती है, नहीं भेजेगा। परन्तु क्या यह सम्भव है? और अगर सम्भव नहीं है तो सम्पन्न लोग कभी भी अपने बालकों को सार्वजनिक स्कूलों में नहीं भेजेंगे। शिक्षा का स्तर ऊँचा रखकर भी स्कूल के भीतर लड़कों के रहन-सहन को कैसे ऊँचा उठाइयेगा? और सम्पन्न व्यक्तियों के लिए बच्चे की रहन-सहन का प्रश्न तो बहुत बड़ा प्रश्न है जो आर्थिक है। बड़े आदमी नगरपालिका और देहात के स्कूलों में अपने बच्चों को इसलिए भी नहीं भेजते कि वहाँ वे 'बिगड़' जाते हैं और सामान्य घरों से आये हुए लड़कों की सोहबत में 'गन्दी आदतें' सीख लेते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि सामान्य शिक्षालयों में केवल फीस माफ कर देने से अथवा उनके शिक्षा-स्तर को किंचित ऊँचा कर देने से काम नहीं चलेगा।

आयोग ने इसे समझा है इसलिए अध्याय दस के पैरा १०.१० में प्रतिवेश-विद्यालय (नेबरहुड स्कूल) सचालित करने की संस्तुति की है जिनमें किसी प्रकार के पृथक्-करण की नीति न बरती जाय और जिनमें पड़ोस के सभी बच्चे बिना जाति, वर्ग और धर्म के भेदभाव के साथ साथ पढ़ें। इन स्कूलों में अच्छी शिक्षा दी जाय। चूंकि सब बच्चे एक साथ पढ़ेंगे अतः समाज के धनी, प्रभावशाली और विशिष्ट वर्ग के लोग भी इन स्कूलों में दिलचस्पी लेंगे। अतः आयोग यह भी संस्तुति करता है कि

सभी प्रारम्भिक स्कूलों को सामान्यतः सुधारने का और इस वर्ष में दस प्रतिशत प्रारम्भिक स्कूलों के स्तर में कम-से-कम निर्धारित मात्रा तक गुणात्मक वृद्धि करने का दोहरा कार्यक्रम एक साथ चले, वहीं जिन क्षेत्रों में लोकमत अनुकूल हो वहाँ प्रारम्भिक स्तर पर अग्रगामी योजना के रूप में 'प्रतिवेश विद्यालय' चलाये जायें (पैरा १०-२०)। अतः अगर सारी छात्रवृत्तियाँ उन्हीं छात्रों को दी जायें जो सामान्य विद्यालयों में पढ़ते हैं (पैरा १०२१) और विश्वविद्यालयों में अथवा स्नातक कालेजों में भी ९० प्रतिशत छात्रवृत्तियाँ उन्हीं विद्यार्थियों को दी जायें जो इन संस्थाओं में सामान्य विद्यालयों से आये हैं, तो इन प्रतिवेश विद्यालयों को बल मिलेगा और सामान्य विद्यालय प्रणाली स्थापित करने की नीति में सफलता मिलेगी। इसके साथ यदि अच्छे विद्यालयों में योग्यता के आधार पर प्रवेश की सामान्य नीति दृढ़ता-पूर्वक लागू की जाय तो वर्गों का पृथक्करण रुक जायगा।

मेरा विचार है कि अगर ये सारी संस्तुतियाँ कार्य रूप में परिणत की जायें तो सार्वजनिक शिक्षा के लिए सामान्य विद्यालय स्थापित करने में निश्चय ही प्रगति होगी, परन्तु पब्लिक स्कूल जो वर्गभेद के सबसे बड़े गढ़ सिद्ध हो रहे हैं, समाप्त नहीं होंगे। अतः विधान की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए भी अगर आयोग इन पब्लिक स्कूलों के लिए निम्नांकित सुझाव देता तो समस्या का समाधान आसान होता।

१—सभी स्कूल एक सामान्य पाठ्यक्रम का अनुसरण करें। धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक अपने धर्म की शिक्षा दें और सीमा के भीतर अपनी भाषा के माध्यम का व्यवहार करें। परन्तु इसके अतिरिक्त वे उसी सामान्य पाठ्यक्रम का अनुसरण करें, जो सार्वजनिक शिक्षा के सामान्य विद्यालयों में चल रहा है। इस सामान्य पाठ्यक्रम के चौखटे के भीतर सबको प्रयोग करने का अधिकार हो, परन्तु सर्वथा विभिन्न पाठ्यक्रम पढ़ाने का अधिकार किसी को नहीं हो। 'पाठ्यक्रम' राष्ट्र की जीवन-पद्धति का निचोड़ होता है, और समाजवादी देश में उसकी अवहेलना अक्षम्य अपराध होना चाहिए। 'गतिशीलता' (डाइनेमिज्म) अथवा 'प्रतिभा' के नाम पर इस स्वच्छन्दता को प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

२—इन पब्लिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अनिवार्यतः क्षेत्रीय भाषा ही हो। (प्रारम्भिक कक्षाओं में मातृभाषा हो, जैसा विधान में है।) उनमें उसी भाषा-नीति का अनुसरण किया जाय जिसका अनुसरण सार्वजनिक विद्यालयों में हो रहा है। इस दृष्टि से इन दोनों में कोई अन्तर न किया जाय। अगर अँग्रेजी पढ़ायी जाय तो उतनी ही जितनी सामान्य विद्यालयों में पढ़ायी जा रही है।

३—इन स्कूलों के छात्र सार्वजनिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के साथ सामान्य कामन सेवा शिविरों में जायें और प्रसार-काम करें। इन छात्रों के लिए समाज-सेवा के कार्यक्रम और एन० सी० सी० के कार्यक्रम में विकल्प न रहे। यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही इन पब्लिक स्कूलों के शत प्रतिशत छात्र एन० सी० सी० ही के कार्यक्रम में भाग लेंगे और इस प्रकार सेवा का प्रसार-कार्य न करने से सामान्य जन-जीवन से परिचित होने के अवसर से सदा के लिए वंचित हो जायेंगे।

अस्तु मेरा निश्चित मत है कि अगर इन सुझावों के अनुसार तत्काल काम नहीं हुआ तो सामान्य विद्यालय-प्रणाली स्थापित न हो सकेगी। समाजवाद में तो राष्ट्र की यह दृढ़ नीति होनी चाहिए कि सबको समान शिक्षा का समान अवसर मिले और जो भी बाधाएँ इस नीति के मार्ग में आयें उन्हें दृढ़तापूर्वक हटा दिया जाय और अगर विधान में परिवर्तन किये बिना काम नहीं चलता है तो विधान में भी परिवर्तन किया जाय, क्योंकि यह समझ लेना चाहिए कि अन्ततोगत्वा वर्गभेद शिक्षा की असमान सुविधाओं के कारण ही उत्पन्न होता है।

सामान्य विद्यालय की स्थापना के लिए आयोग ने दूसरी महत्वपूर्ण संस्तुति यह की है कि विभिन्न संस्थाओं-द्वारा संचालित अध्यापकों के वेतनक्रम में जो अवांछनीय अन्तर आ गया है उसे दूर किया जाय। समान काम और समान योग्यता के लिए समान वेतन मिलना चाहिए। इन अध्यापकों की सेवाओं की सारी शर्तें और अवकाश की सुविधाएँ भी समान हों।

आयोग के इस सुझाव को तत्काल कार्यान्वित किया और इस उन स्कूलों के अध्यापकों पर भी लागू किया जाय, जिन्हें 'पब्लिक स्कूल' कहते हैं। जो कम वेतन पाते

है उन्हें अधिक वेतन दिया जाय परन्तु जो अधिक वेतन पाते हैं, उनके वेतन को कम करके अगर समता (लेवलिंग) की चेष्टा न की गयी तो समाजवाद की स्थापना नहीं होगी। गांधीवाद की कामना है कि व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छाओं पर काबू पाकर, उन्हें कम करके हृदय परिवर्तन-द्वारा यह काम करे। परन्तु जब देश गांधीजी की सभाज-नीति को छोड़ रहा है तो, शासन कानून से इस काम को करे। नहीं तो समाजवाद की स्थापना मृगमरीचिका सिद्ध होगी। परन्तु शासन क्या ऐसा करेगा? और करेगा तो कबतक करेगा? विलम्ब करने से अच्छी योजना भी व्यर्थ हो जाती है।

शिक्षा का गुणात्मक विकास

गुणात्मक विकास के लिए आयोग ने दो प्रकार के कार्यक्रम सुझाये हैं :

क—शिक्षा में राष्ट्र-व्यापक सुधार।
ख—प्रशासनिक ढाँचे में परिवर्तन।

शिक्षा में सुधार के लिए आयोग ने नीचे लिखे कार्यक्रम बतलाये हैं (पैरा १०.२५)।

१—क्षति और अवरोध को कम करना।
२—शिक्षण-पद्धतियों में सुधार।
३—पिछड़े हुए और प्रतिभाशाली छात्रों को विशेष प्रोत्साहन देना।
४—कार्य की नवीन शैलियों का प्रयोग।
५—शिक्षकों की व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि।
६—स्थानीय समुदाय की सहायता से मद्रास की भांति स्कूलों की भौतिक परिस्थिति में सुधार।

ये सुझाव अपनी जगह पर ठीक हैं और इनसे शिक्षा के स्तर में सुधार होगा परन्तु इसी अनुच्छेद में आयोग ने कहा है कि इन सुधारों के प्रसंग में यह बात ध्यान में रखी जाय कि भौतिक साधनों पर बल न देकर मानव-साधनों को प्रेरणा दी जाय जिससे शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति शिक्षा में सुधार करने का भरसक प्रयास करें। परन्तु जैसा मैं 'नयी तालीम' के पिछले अंकों में लिख चुका हूँ कि आयोग ने किसी विशेष जीवन-दर्शन से शासित होकर काम नहीं किया है, अतः अपने प्रतिवेदन में उसने ऐसा कुछ नहीं किया है जिससे लोगों को प्रेरणा मिले और लोग समाज-सेवा की भावना से अनुप्राणित होकर काम करें। आयोग ने यह अनुभव तो किया है कि इस प्रेरणा का किसी भी सुधार के लिए बड़ा मूल्य है परन्तु 'जीवन-दर्शन' और जीवन के कुछ निश्चित मूल्यों के अभाव में वह इस 'प्रेरणा-स्रोत' का सृजन नहीं कर सका है। यह आयोग की सबसे बड़ी कमजोरी है। अतः आयोग ने, सुधार के कार्यान्वयन का जो कार्यक्रम सुझाया है (पैरा १०.३१) उसमें कहाँतक सफलता मिलेगी, कहा नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ आयोग चाहता है कि प्रारम्भिक स्तर पर १० वर्ष में १० प्रतिशत विद्यालयों में और प्रत्येक ब्लाक में एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में गुणात्मक सुधार कर लिया जाय। सुधार के लिए, केवल कार्य-अनुभव के क्षेत्र में ही, स्कूलों के साथ फार्म और कारखाने संलग्न होंगे। इतना धन कहाँ से आयगा? जो शासन चार आने की तकली और तीन-चार एकड़ खेत नहीं दे सका वह यह सब कैसे करेगा?

आयोग ने विकेन्द्रित दृष्टिकोण पर भी बल दिया है। और कामना की है कि व्यक्तिगत संस्थाएँ नये प्रयोग करें। यह उस समय सम्भव नहीं होता जब योजना राज्य की ओर से बनती है और ऊपर से अध्यापकों पर लादी जाती है। ऐसी दशा में अध्यापक पहल नहीं कर पाता। अतः आयोग ने संस्तुति की है कि प्रत्येक संस्था एक इकाई मानी जाय, उसमें अपनी विशेषता रहे और वह अपने ढंग और गति से अपना विकास करे। इससे शिक्षा की गुणात्मकता बढ़ेगी। परन्तु 'जीवन-आदर्श' के अभाव में इस प्रकार का व्यक्तिवादी विकेन्द्रित दृष्टिकोण नहीं बनता। अतः इस दिशा में भी सफलता की अधिक आशा नहीं है।

प्रशासनिक ढाँचे में परिवर्तन

शैक्षिक प्रशासन शिक्षा-सुधार की रीढ़ है। हमारा शैक्षिक प्रशासन और पर्यवेक्षण दूषित है और इसमें सुधार किये बिना शिक्षा की कोई भी योजना सफल नहीं होगी।

आयोग ने दूषित पर्यवेक्षण के नीचे लिखे कारण बतलाये हैं : (पैरा १०.४०)।

१—शिक्षा का अत्यन्त अधिक प्रसार, परन्तु अधि-

कारियो की सख्या में उसी अनुपात से वृद्धि न होना।

२—प्रशासन और पर्यवेक्षण की क्रियाओं का सयुक्त रहना। प्रसार के कारण प्रशासन का काम बढा और पर्यवेक्षण के कार्य की अवहेलना हुई।

३—पर्यवेक्षण-सम्बन्धी अधिकारियों का शिक्षा से असम्बन्धित कार्यों में प्रयोग।

४—परम्परित निरीक्षण प्रणाली का, जो नियन्त्रण-मूलक थी और विकास-मूलक नही थी, प्रयोग।

५—योग्यता की न्यूनता।

अत आयोग ने पर्यवेक्षण के ढाँचे में जिस महत्वपूर्ण सुधार की सस्तुति की है, वह है प्रशासन और पर्यवेक्षण के कामो को पृथक् करना। उसने प्रशासन के कार्य के लिए जिला स्कूल बोर्ड नाम की एक गैर सरकारी स्वतत्र सस्था के निर्माण का सुझाव दिया है जो जिला के सभी विद्यालयो का प्रशासन सँभालेगी। पर्यवेक्षण का काम जिला-शिक्षा अधिकारी और उसके सहायक करेंगे और उनको प्रशासन के कार्य से मुक्त कर दिया जायगा। ये लोग स्कूलो के सुधार के लिए योजना विकसित करने, आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम में सुधार करने, पाठ्य-पुस्तकें तथा अध्यापकों की सहायता के लिए निर्देशिका तैयार करवाने और शिक्षण मूल्याकन की पद्धतिया में सुधार करने की योजनाएँ बनाने में सहायता देंगे। पर्यवेक्षको को अध्यापकों के पथ प्रदर्शन के लिए अलग कर देने की योजना बहुत अच्छी है। अधिकाश प्रगतिशील देशो मे ऐसा ही है। परन्तु इस योजना की सफलता कार्यान्वियन पर निर्भर है। सबसे पहले यह आवश्यक है कि शिक्षा-विभाग जिला-स्तर पर जिला शिक्षा-अधिकारी और उसके सहायकों को बहुत से अधिकार हस्तान्तरित कर दे जिससे जिला शिक्षा-अधिकारी जिला-स्तर की समस्त विद्यालयी शिक्षा का नेतृत्व करे। प्रशासन के पचडा में न पडता हुआ भी वह ऐसा नेतृत्व कैसे कर पायगा — यही सबसे बडी समस्या है? हम जानते हैं कि आज शिक्षक पर्यवेक्षक के सुझाव इसलिए मानता है कि उसके पास कुछ शक्ति है। (कम-से कम वह शिक्षक का स्थानान्तरण तो करवा ही सकता है।) परन्तु इस शक्ति (प्रशासन-शक्ति) के चाहने पर भी शिक्षक निष्ठापूर्वक पर्यवेक्षण के सुझावों का कार्यान्वियन क्या और कैसे करे? आयोग को इस सम्बन्ध मे विस्तृत सुझाव देने चाहिए थे।

परन्तु आयोग ने जिला शिक्षा-अधिकारी की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करने के अतिरिक्त विस्तारपूर्वक कोई दूसरा सुझाव नही दिया है—सम्भवत इसलिए कि वह राज्यो को 'विस्तार के बन्धन' में बाधना नही चाहता था। जो भी हो प्रतिवेदन को पढने समय यह इच्छा होती है कि अगर इस दिशा मे आयोग विस्तारपूर्वक सुझाव देता तो इसका वास्तविक मूल्य होता। अधिकार और सत्ता हस्तान्तरित करने का प्रश्न बडा कठिन है और आज के उच्च अधिकारियो मे सारे अधिकारो को केन्द्रित रखने की ही मनोवृत्ति अधिक पायी जाती है। सत्ता और प्रभुत्व का विकेन्द्रीकरण ही आज हमारे समाजवादी लोकतत्र की सबसे बडी समस्या है।

प्रशासनिक ढाँचे म परिवर्तन करने के लिए आयोग ने कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। देश भर के शिक्षको ने आयोग से यह माग की थी कि स्थानीय निकायों (जिला परिषदो और नगरपालिकाओ) से शिक्षा-व्यवस्था और प्रशासन का काम निकाल लिया जाय। जब इन सस्थाओं द्वारा सचालित स्कूलो का लगभग पूरा व्यय सरकार ही वहन करती है तो केवल कुप्रबन्ध के लिए उन्हें जिला-परिषदो और नगरपालिकाओ को सौंपने में कोई बुद्धिमत्ता नही है। परन्तु आयोग ने अनुभव किया है कि शिक्षालयो का स्थानीय समुदाय से सम्पर्क आवश्यक है और शिक्षा की दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण है, अत शिक्षा को समुदाय से पृथक करना ठीक नहीं होगा। इसलिए राष्ट्रीय नीति यह होनी चाहिए कि ग्राम क्षेत्रो मे गाँव-पचायतो को और नगरो में नगरपालिकाओ को स्थानीय विद्यालयो की विकास-नीति से सम्बन्धित रखा जाय और उन्हें अध्यापको के वेतन के अतिरिक्त स्कूल की दूसरी आवश्यकताओ की पूर्ति (सरकारी अनुदान की सहायता से) का उत्तरदायी बनाया जाय। इस काम के लिए किस स्तर पर कैसी स्थानीय सस्थाएँ बनायी जायें, किसको कितनी सत्ता हस्तान्तरित की जाय, अनुदान की प्रणाली क्या हो, आदि-आदि विस्तारो मे आयोग नहीं गया, परन्तु प्रशासनिक ढाँचे में उसने निम्नांकित

परिवर्तन सुझाये हैं जिससे स्थानीय समुदाय से सम्बन्ध बनाये रखने के लक्ष्य की उपलब्धि सम्भव हो सके

क—जिला-स्तर पर एक जिला-स्कूल-बोर्ड की स्थापना।

इसमें (१) जिला परिषद्-द्वारा चुने हुए उसके प्रतिनिधि (२) उन नगरपालिकाओं द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि जिनमें अपने नगर स्कूल-बोर्ड नहीं है (नगर स्कूल बोर्ड उन्हीं नगरपालिकाओं में रहेंगे जिनकी संख्या एक लाख से ऊपर होगी,) (३) राज्य-सरकारी-द्वारा मनोनीत शिक्षाविद और (४) शिक्षा-विभाग, कृषि-उद्योग विभागों के पदेन अधिकारी रहेंगे (पैरा १८ १८)। इसमें ३ और ४ वर्ग के सदस्यों की संख्या पूरी संख्या की कम-से-कम आधी रहेगी। राज्य सरकार का एक सीनियर अधिकारी इस बोर्ड का वैतनिक सचिव होगा, उसे आवश्यक प्रशासनिक और पर्यवेक्षणिक अधिकारी दिये जायेंगे।

सभी विद्यालय, सामान्य और व्यावसायिक, इसी बोर्ड के अन्तर्गत होंगे। और यही सबको सब प्रकार का अनुदान देगा। (पैरा १८ १९)। पैरा १८ २२ में आयोग ने संस्तुति की कि प्रत्येक स्कूल-बोर्ड के पास अपना कोष होगा और जिला परिषद् बजट की स्वीकृति देगा। रोजमर्रा के प्रशासन-सम्बन्धी मामलों में बोर्ड स्वतन्त्र रहेगा।

अध्यापकों की भरती एक विशेष समिति करेगी जिसके सदस्य, बोर्ड का अध्यक्ष, उसका सचिव और जिला शिक्षा-अधिकारी होंगे (पैरा १८ ३२)। यही समिति स्थानान्तरण भी करेगी।

आयोग का यह सुझाव उत्तम है और यदि इसका कार्यान्वयन हुआ तो विद्यालय, शिक्षा जिला-परिषदों के कुप्रबन्ध से और निकृष्ट राजनीति के कुचक्र में फँसने से बच जायेंगे। परन्तु इस बोर्ड का अध्यक्ष गैर सरकारी शिक्षाविद होना चाहिए। सरकारी आदमी तो विभाग का एजेन्ट ही रहेगा और स्वतन्त्र निर्णय बहुत कम ले पायगा। यह भी आवश्यक है कि बोर्ड में अधिक सदस्य शिक्षाविद हों।

ख—इसी प्रकार आयोग ने राज्य-स्तर पर राज्य शिक्षा-बोर्ड और राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड स्थापित करने की संस्तुति की है। उसने प्रत्येक राज्य में 'राज्य मूल्यांकन-बोर्ड' भी स्थापित करने की संस्तुति की है, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में अनवरत प्रगति हो सके। इन संस्थाओं को स्थापित करने से शिक्षा का हित होगा, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इन सब कामों में बहुत व्यय होगा और तभी सफलता मिलेगी जब निष्ठा से काम किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण विभाग माना जाय—सुरक्षा से भी महत्वपूर्ण और व्यय के सम्बन्ध में उसे प्राथमिकता दी जाय।

क्या सरकार ऐसा करेगी? यदि शीघ्र ऐसा नहीं किया गया तो प्रशासन सम्बन्धी ये संस्तुतियाँ कागज पर ही रह जायेंगी। स्वतन्त्रता के इन १९ वर्षों में यदि हमारी सरकार ने कोई सबसे बड़ी भूल की है, तो वह है, 'शैक्षिक प्रशासन' की अवहेलना। बेसिक शिक्षा की असफलता का एक मात्र कारण दकियानूस और अनुदार प्रशासन भी रहा है, नहीं तो उसके सिद्धान्त तो शिक्षा के शाश्वत सत्य हैं, जैसा आयोग ने भी स्वीकार किया। अगर 'प्रशासन' ने बेसिक शिक्षा का साथ दिया होता तो आज देश में स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता के मानव-तत्वों का सृजन हुआ होता और देश भिक्षा-पात्र लेकर विदेशों के सामने नहीं खड़ा होता।

नयी तालीम समिति और शिक्षा-आयोग

सर्व सेवा संघ की नयी तालीम समिति की ओर से शिक्षा-आयोग को कुछ सुझाव स्मृति-पत्र के रूप में भेजे गये थे। शिक्षा-आयोग की सिफारिशों के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं के साथ नयी तालीम समिति के सम्प्रेषित सुझावों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। —सं०

नयी तालीम समिति के सुझाव

१–शिक्षा ही केवल ऐसी सामाजिक शक्ति है जो विचार एवं नैतिक गुणों में परिवर्तन लाने का साधन हो सकती है।

२–राष्ट्र की बुनियादी समस्याएँ तीन हैं—प्रतिरक्षा, विकास और लोकतन्त्र।

३–देश में होनेवाली जागृति उसके विशाल जन-समूह तक पहुँचे, ऐसी जागृति की कुंजी शिक्षा है।

४–लोकतान्त्रिक राष्ट्र में सामाजिक जागृति फैलाने का मौलिक महत्त्व राष्ट्रीय शिक्षा को है।

५–विज्ञान और यान्त्रिक कौशल का तेजी से बदलता हुआ संसार, राष्ट्रों में बढ़ता हुआ विश्व-परिवार का सन्दर्भ, युगों से चली आयी हुई सांस्कृतिक परम्परा की अटूट शृंखला, भाषा, धर्म एवं जाति के कारण उत्पन्न जटिलताएँ, मर्मस्पर्शी दरिद्रता, विशाल जन-संख्या, जीविका, श्रम के प्रति सामन्ती दृष्टिकोण तथा मानवतावादी शान्तिपूर्ण विकास की सार्वलौकिक भावना, इन सबका ध्यान शिक्षा को रखना है।

६–देश तथा राष्ट्र की एकता राज्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता ही है।

शिक्षा-आयोग के सुझाव

सामाजिक परिवर्तन, उत्कृष्टता का अनुसरण तथा पूर्ण विकास का सबसे शक्तिशाली साधन शिक्षा है।

राष्ट्रीय विकास की मुख्य समस्याएँ हैं —खाद्य में आत्मपरिपूर्णता, आर्थिक विकास, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकात्मकता और प्रतिभा की खोज।

सद्गुणों के विकास का एकमात्र साधन शिक्षा है। यह राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा वैयक्तिक शक्तियों को सफल बनाने का साधन बन सकती है।

इस समय शिक्षा में ऐसी प्रगति की आवश्यकता है जो सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्रान्ति ला सके।

जन-समूह की व्यापक गरीबी, अल्प रोजगारी तथा बेकारी के क्षेत्र, आय का न्यायसंगत वितरण, जन-संख्या में वृद्धि, भाषिक, धार्मिक तथा अन्यान्य विभिन्नताएँ, महती परम्परा, लोकतन्त्र तथा लोकतान्त्रिक जीवन पद्धति को सुदृढ़ करने की आवश्यकता—शिक्षा को इन सबका ध्यान रखना है। शिक्षा जन जीवन, उसकी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से सम्बद्ध होनी चाहिए। शिक्षा की परिकल्पना पृथकता में नहीं की जा सकती, और न तो इसकी योजनाएँ हवा में बनायी जा सकती हैं।

संहत (इंटिग्रेटेड) समाज की रचना शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

७–संविधान में लिखा हुआ है कि प्रत्येक नागरिक को जीविका के पर्याप्त साधन का अधिकार होगा, प्रत्येक बालक तथा युवक की शोषण से रक्षा की जायगी, और कार्य का अधिकार सुलभ करना राज्य की जिम्मेदारी होगी।

देश के लिए आवश्यक अपरिमित साधनों की उत्पत्ति तभी हो सकती है जब कि शिक्षा उत्पादन से सम्बद्ध हो। उद्योग, कृषि एवं व्यापार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कार्यानुभव को सामान्य शिक्षा का अविच्छिन्न अंग बनाना होगा।

८–बुनियादी तालीम ही देश की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति सफलतापूर्वक करेगी और राष्ट्र को इसके लिए तैयार भी कर सकेगी। यह पराश्रित जीवन-पद्धति को मिटाती है। श्रम की मर्यादा को बढ़ाती है, सामाजिक अवरोधों को दूर करती है, एवं राजनीतिक एकता को सहायता पहुँचाती है। यह सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उत्पादनों पर जोर देती है, बच्चे के मन में स्वाध्याय एवं आत्म-विश्वास को विकसित करती है, सहकारी उद्योग तथा सामुदायिक सेवा की आस्था में विश्वास जमाती, देश और मानवता के प्रति सच्चा प्रेम उत्पन्न करती और बालक को लोकतान्त्रिक प्रवृत्ति तथा अहिंसात्मक शक्ति के योग्य बनाती है। यह बालक को विज्ञान तथा औद्योगिक यान्त्रिकी के सम्पूर्ण उपयोग के लिए समर्थ बनाती है।

बुनियादी तालीम भारतीय शिक्षा के इतिहास में सीमा-चिह्न थी। अनुत्पादक, पुस्तक-केन्द्रित तथा परीक्षा-मूलक शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध यह विद्रोह के रूप में आयी। इसने राष्ट्रीय जीवन में हलचल पैदा की जिसका प्रभाव शैक्षणिक विचार तथा पद्धति पर पड़ा। इसके परमावश्यक तत्त्व हैं—उत्पादन तथा प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के साथ पाठ्य-क्रम का समन्वय और विद्यालय तथा समुदाय के बीच घनिष्ठ सम्पर्क। सुझावों में इनमें से प्रत्येक को स्थान मिला है।

९–देश के लिए एकमात्र शिक्षा-प्रणाली बुनियादी शिक्षा ही मानी जा सकती है।

बुनियादी शिक्षा के आरम्भिक सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि वे सभी स्तरों में शिक्षा-व्यवस्था का पथ प्रदर्शन और निर्माण कर सकते हैं। अतः किसी एक शिक्षा-स्तर का नामकरण बुनियादी शिक्षा नहीं किया जा सकता।

१०–प्रत्येक व्यक्ति को माध्यमिक स्तर तक शिक्षा मिलनी चाहिए। हम कुल १४ वर्षों की क्रमिक शिक्षा का सुझाव देते हैं, अर्थात् ३ वर्षों की पूर्व प्राथमिक, ८ वर्षों की प्राथमिक और २ वर्षों की माध्यमिक शिक्षा।

राष्ट्रीय नीति यह है कि प्रत्येक बालक को ७ वर्षों की निःशुल्क, अनिवार्य तथा क्रियात्मक शिक्षा का प्रबन्ध हो ताकि जहाँतक हो सके निम्न माध्यमिक शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार हो। माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-स्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध केवल उन विद्यार्थियों के लिए हो जो इन्हें प्राप्त करने के इच्छुक तथा योग्य हों।

११–पूर्व-बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बाल शिक्षण के साथ ही उसके माता पिता का शिक्षण भी होना चाहिए। इसके द्वारा बच्चे की शिक्षा के साथ परिवार तथा आसपास के समाज की शिक्षा जोड़ी जाय।

पूर्व-बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य निम्न-प्रकार हैं — बच्चे में स्वास्थ्य की अच्छी आदतें विकसित करना, उसमें बुनियादी क्षमता का निर्माण करना, वांछनीय सामाजिक दृष्टिकोणों का विकास, भावना की परिपक्वता, सौन्दर्यानुभूति, बौद्धिक उत्सुकता, स्वाधीनता और रचनात्मक प्रेरणा का विकास।

१२–बालमंदिरों की स्थापना की जिम्मेदारी साधारणत पंचायतों तथा स्थानीय संस्थाओं पर होनी चाहिए।

इन स्कूलों की स्थापना तथा संचालन मुख्यत निजी प्रयास पर छोड़ देना चाहिए।

१३–राज्य-सरकार उपयुक्त साहित्य, खिलौने, नक्शे आदि के निर्माण में प्रोत्साहन तथा सहायता दे।

पूर्व प्राथमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, शोध-कार्य का संचालन करना और सामग्रियों तथा साहित्य के निर्माण में सहायता देना राज्य का कर्तव्य होगा।

१४–बाल मन्दिरों का आरम्भ करने के लिए शिक्षित तथा अशंत साक्षर महिलाओं को काम करते करते प्रशिक्षित करने की व्यवस्था हो।

मद्रास योजनानुसार स्थानीय महिलाओं के अल्पकालिक प्रशिक्षण के सुझाव का हम अनुमोदन करते हैं।

१५–माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं को शिशु-पालन तथा बाल शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

स्त्री पुरुष की भिन्नता के आधार पर पाठ्यक्रमों में विभिन्नता लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

१६–सातवें वर्ष से सात-आठ वर्षों की माध्यमिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिए।

प्रारम्भिक स्तर तक का अध्यापन शुल्क माफ कर दिया जाय। १९७५–७६ तक पाँच वर्षों की तथा १९८५-८६ तक सात वर्षों की अच्छी शिक्षा की व्यवस्था प्रत्येक बालक के लिए होनी चाहिए।

१७–उत्तर बुनियादी शिक्षा निःशुल्क कर दी जाय।

निम्न माध्यमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी जाय।

१८–सात-आठ वर्षीय बुनियादी पाठ्यक्रम में कोई परिवर्तन न हो।

प्राथमिक शिक्षा को दो भागों में बाँटा गया है—चार-पाँच वर्षों की निम्न प्राथमिक, तथा दो-तीन वर्षों की उच्च प्राथमिक।

१९–सात-आठ वर्षों के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के बाद भिन्न भिन्न संस्थाओं में व्यावसायिक शिक्षा का अवसर मिले।

प्राथमिक स्तर के बाद औद्योगिक संस्थाओं तथा तकनीकी विद्यालयों में २० प्रतिशत विद्यार्थियों के लिए उद्योग तथा शिल्प शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

२०–प्रत्येक बुनियादी विद्यालय में कृषि तथा उद्योग-सम्बद्ध रसायनशाला की व्यवस्था हो। सरकार को चाहिए कि निश्चित अवधि के भीतर वह बुनियादी विद्यालयों के लिए भवनों उपकरणों रसायनशालाओं आदि का प्रबन्ध कर दे।

ग्रामीण क्षेत्रों में जहां सम्भव हो प्रत्येक विद्यालय में संलग्न एक कृषि-क्षेत्र हो। जहाँ यह सम्भव न हो वहाँ निजी कृषि फार्म में कार्यानुभव का प्रबन्ध किया जाय। औद्योगिक अनुभव के लिए सभी बड़े-बड़े विद्यालयों में सुविधाएँ दी जायें। इन सबका क्रमिक कार्यक्रम बनाया जाय।

२१–पाठ्यक्रम का विभाजन कृषि, इंजीनियरी, तकनीकी आदि वर्गों में किया जाय।

माध्यमिक शिक्षा को इस उद्देश्य से औद्योगिक बनाने की आवश्यकता है ताकि लगभग आधे विद्यार्थी-समुदाय का बहु-शिल्प-केन्द्रों की कृषि वाणिज्य तथा स्वास्थ्य संस्थाओं में समावेश हो जाय।

२२–गरीब से गरीब बच्चे के लिए भी शिक्षा उपलब्ध हो, लेकिन इस प्रकार कि उसके द्वारा उसके परिवार को होनेवाली आय में कोई क्षति न पहुँचे।

उन लड़के और लड़कियों को जो आर्थिक कारणों से विद्यालय में पढ़ने में असमर्थ हैं, शिक्षित करने का एकमात्र साधन यही है कि उन्हें अंशकालिक शिक्षा दी जाय ताकि वे काम करने के साथ-साथ सीख भी सकें।

३–सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कोई उत्पादक शिल्प ही शिक्षा का आधार हो। शिल्प के प्रशिक्षण की कसौटी इस बात में मानी जाय कि उसके द्वारा दक्षतापूर्वक और सोद्देश्य उत्पादन हो सके।	व्यवहारतः बुनियादी शिक्षा अधिकांशतः कुछ निर्दिष्ट शिल्पों के चारों ओर केन्द्रित हो गयी है। यद्यपि यह शिक्षा को उत्पादन से सम्बद्ध करने के मौलिक सिद्धान्त पर जोर देती है। इस बात की जरूरत है कि बुनियादी तालीम के कार्यक्रम का आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल पुनर्निर्माण किया जाय। उत्पादनशील कार्यानुभव, कृषि और औद्योगिक तथा सामान्य जनजीवी कार्यक्रमों के इर्दगिर्द हो। इसका प्रारम्भ अधिकाधिक ग्रामीण विद्यालयों में किया जाय।
२४–शिक्षा का माध्यम विद्यार्थी की मातृ-भाषा या क्षेत्रीय भाषा हो।	विद्यालय तथा महाविद्यालय-स्तरों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का हक सबसे ऊपर है।
२५–पाँचवीं कक्षा से आगे राष्ट्रीय भाषा की शिक्षा दी जाय।	उच्च प्राथमिक स्तर पर हिन्दी या अंग्रेजी पढ़ायी जायगी।
२६–आठवीं कक्षा से अंग्रेजी पढ़ायी जाय।	इसकी शिक्षा कक्षा ५ से प्रारम्भ भले ही हो, किन्तु सामान्यतः कक्षा ८ से पहले इसका आरम्भ नहीं किया जाय। कक्षा ३ से अंग्रेजी का प्रारम्भ शिक्षा की दृष्टि से दोषपूर्ण है।
२७–पाठ्यक्रम का सम्बन्ध कार्यानुभवों, उत्पादक शिल्प, प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण से होना चाहिए।	पाठ्यक्रम के द्वारा ज्ञान की उपलब्धि, शिल्पों का विकास, और आधुनिक ज्ञान एवं जनजीवन के अनुकूल दृष्टिकोणों, सद्गुणों, मूल्यों तथा यथार्थ हितों का प्रसार होना चाहिए।
२८–विद्यालय का कार्यक्रम पड़ोसी समुदाय की वास्तविक परिस्थितियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध किया जाय।	विद्यार्थी की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के साथ पाठ्यक्रम को सम्बद्ध किया जाना चाहिए। कुछ अच्छे विद्यालय प्रायोगिक पाठ्यक्रम चलाने का प्रयास कर सकते हैं।
२९–उच्च शिक्षा समस्योन्मुख और लोगों की आवश्यकताओं से सम्बद्ध तथा शोध एवं प्रयोग पर केन्द्रित हो।	विश्वविद्यालयों के कार्य निम्न प्रकार हैं—नये ज्ञान का अन्वेषण तथा संवर्धन अध्यवसाय के साथ सत्य का अनुसरण, आधुनिक आवश्यकताओं तथा अन्वेषणों के आलोक में प्राचीन ज्ञान की व्याख्या, सही नेतृत्व उपलब्ध करना, प्रतिभान्वित युवक की पहचान तथा उसकी सहायता, सभी धन्धों में सुयोग्य पुरुषों एवं स्त्रियों की व्यवस्था, समता एवं सामाजिक न्याय का विकास, व्यक्ति तथा समाज में अच्छे जीवन का विकास।
३०–कृषि, उद्योग तथा व्यवसाय के केन्द्र उस क्षेत्र की उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में काम में लाये जायँ।	* * *

३१–अधिक सख्या में ग्रामीण विश्वविद्यालयो की स्थापना अवश्य होनी चाहिए ।	* * *
३२–शैक्षणिक सस्था मे सेना का अनाधिकार प्रवेश न होने पाये ।	एन० सी० सी० कार्यक्रम में, जो विश्वविद्यालय-स्तर पर अनिवार्य है राष्ट्रीय विकास को प्रगति देने की सम्भावनाएँ है। चतुर्थ पचवर्षीय योजना तक इसका क्रम जारी रखा जा सकता है । जब अन्य प्रकार की सामाजिक सेवाएँ अस्तित्व में आयें, तब एन० सी० सी० को स्वैच्छिक बना दिया जाय ।
३३–विभिन्न पाठयक्रमो के लिए अभ्यार्थियो के चुनाव के ढग विश्वविद्यालय स्वय निर्धारित करें।	प्रत्येक सस्था प्रार्थियो में से सर्वोत्तम विद्यार्थियो के चुनाव की पद्धति का निर्णय करें । शिक्षा में शिक्षको का गुण, योग्यता तथा चरित्र नि सन्देह बहुत ही महत्व के होते हैं ।
३४–विश्वविद्यालयीन शिक्षा का सम्बध अब सरकारी नौकरियो प्राप्त करने के लिए न हो ।	* * *
३५–सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने के मुख्य माध्यम शिक्षक ही हैं ।	शिक्षा में शिक्षको का गुण, योग्यता तथा चरित्र नि सन्देह बहुत महत्व के होते हैं ।
३६–शिक्षक कम-से-कम एक शिल्प में दक्ष एव निपुण हो । कार्यानुभवो के तरीको को ज्ञान तथा अनुभूति से सम्बद्ध करने में वह अच्छी तरह प्रशिक्षित हो ।	शिक्षको तथा शिक्षा की उत्कृष्टता को निम्न प्रकार से विकसित किया जा सकता —सुनियोजित विषयो का सगठन, धन्धो का उद्देशीकरण, सामान्य तथा रोजगारी शिक्षा का एकीकरण, शिक्षण-प्रणाली में विकास, पाठ्यक्रम का पुनर्सशोधन तथा शिक्षण-व्यवस्था का विकास ।
३७–शिक्षको का समुचित चुनाव किया जाना चाहिए ।	* * *
३८–शिक्षको के प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की हो ।	प्राथमिक स्तर में कम-से-कम दो वर्ष की अवधि हो । माध्यमिक स्तर में एक वर्ष की अवधि जारी रखी जाय, पर काम के दिन बढा दिये जायें ।
३९–शैक्षणिक सस्थाओ का स्वरूप सुसबद्ध आवासिक समुदायो का-सा हो ।	पर्याप्त आवासिक सुविधाओ, पुस्तकालयो, प्रयोगशालाओ, कारखानो आदि का प्रबन्ध हो ।
४०–वास्तविक परिस्थितियो के सन्दर्भ में एक केन्द्रीय प्रशिक्षण-सस्थान स्थापित किया जाय । राज्यो में भी इस तरह की सस्थाएं हो ।	एन० सी० ई० आर० टी० स्वत तथा राज्य की शिक्षा-सस्थाओ के सहयोग से शोध-कार्य करे ।
४१–इस दिशा में स्वैच्छिक प्रयत्न को प्रोत्साहन तथा सुविधाएँ दी जायें ।	* * *
४२–शिक्षको का चुनाव उनकी योग्यता, प्रवृत्तियो तथा रुचि के आधार पर हो ।	शिक्षको को उच्च शिक्षा प्राप्त हो ।
४३–प्रत्येक शिक्षा-सस्था के साथ प्रसार-सेवा-क्षेत्रो के रूप में पाँच गाँव सलग्न हो ।	प्रसार-कार्य शिक्षक-प्रशिक्षण-सस्थाओ का परमावश्यक कर्तव्य होना चाहिए ।

सहानुभूतिपूर्ण तथा कल्पनाशील प्रबन्ध तथा प्रशासन परमावश्यक है। अनुदार नौकरशाही दृष्टिकोण प्रायोगिकता का उच्छेद कर देता है।

४४–दलबन्दी-नीति तथा खींचतान से शिक्षा स्वतंत्र हो। शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण शैक्षिक स्वतंत्रता होनी चाहिए।

४५–केन्द्र तथा राज्य-स्तर पर कानूनी शिक्षा-परिषद् स्थापित किये जायँ। इसका अध्यक्ष गैर सरकारी शिक्षा-शास्त्री हो तथा इसमें गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत हो। केन्द्रीय परिषद् केवल बुनियादी सिद्धान्तों का निर्देश करे और राज्य की परिषदों को योजनाएँ तथा कार्यक्रम बनाने की स्वतन्त्रता हो।

बुनियादी शिक्षा का एक राष्ट्रीय परिषद् कायम किया जाय। राज्य के परिषदों को अधिकाधिक स्वतंत्रता दी जाय। इसका अध्यक्ष कोई विख्यात शिक्षा-शास्त्री अथवा विभाग का कोई वरिष्ठ अधिकारी बनाया जाय।

४६–केन्द्रीय तथा राज्य परिषदों के लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था की जाय।

पृथक् शिक्षानिधि की व्यवस्था की जाय।

४७–शिक्षा-संस्थाओं को पाठ्यक्रम, संगठन, मूल्यांकन आदि विषयों में सुधार करने की स्वतन्त्रता हो।

कुछ चुनी हुई संस्थाओं को अपना पाठ्यक्रम बनाने, पाठ्यपुस्तकें स्वीकृत करने, विद्यार्थियों का योग्यतांकन करने तथा प्रमाण-पत्र देने का अधिकार प्रदान किया जाय।

४८–बुनियादी शिक्षा का कार्यान्वयन जिला शिक्षा-समिति को सौंपा जाय।

विद्यालय परिषद् के रूप में एक निहित स्थानीय संस्था की स्थापना हो जिसके जिम्मे सम्पूर्ण शिक्षा का अधिकार हो।

४९–लोगों में नव-चेतना उत्पन्न करनेवाली शिक्षा का विकास वयस्क साक्षरता के कार्यक्रम के जरिये नहीं हो सकता, बल्कि ग्रामदान, खादी तथा शान्ति-सेना के द्वारा किया जा सकता है।

वयस्क शिक्षा के प्रभावी कार्यक्रम में निम्न विषयों की व्यवस्था की जाय :—

निरक्षरता-उन्मूलन, पत्राचार के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था, पुस्तकालय, विश्वविद्यालयों का रोल, संगठन तथा प्रशासन। साक्षरता-कार्यक्रम क्रियात्मक हो और इसका उद्देश्य प्रवृत्तियों, रुचियों तथा कौशलों का समुचित विकास करना हो, जिससे वयस्क अपने काम में दक्ष बन सके। यह निरक्षरों में राष्ट्रीय कार्यक्रमों तथा बौद्धिक कौशलों में रुचि उत्पन्न करने में सहायक हो।

●

शिक्षा-आयोग का प्रतिवेदन: लक्ष्यहीन, दिशाहीन

•

डा० सम्पूर्णानन्द

शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट अब हमारे सामने है। यह आयोग अपने आप में अपूर्व था। मुझे जानकारी नहीं है कि भारत-जैसे और विशिष्ट सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-वाले किसी अन्य राष्ट्र ने कभी ऐसा आयोग नियुक्त किया हो। इस आयोग में जो मेधावी व्यक्ति शामिल थे उनमें केवल प्रमुख भारतीय शिक्षा-शास्त्री ही नहीं थे अपितु विदेशी विशेषज्ञ भी थे। उदाहरण के लिए आयोग के दो सदस्यों का मैं उल्लेख करूँगा जिनमें एक विशेषज्ञ रूस का और दूसरा अमेरिका का था। इन दोनों में से प्रत्येक भद्र पुरुष उस जीवन-पद्धति से निष्ठाप्रेरित था जिसमें कि उसका पालन पोषण हुआ है और जिस जीवन-पद्धति को वह अपने ढंग से शाश्वत रखने में सहायक रहा है। इसलिए उस पद्धति को परिपुष्ट करने और कायम रखने में सहायक रहनेवाली शिक्षा-आयोग की सर्वोच्चता में उनका आस्था रखना स्वाभाविक ही मानना चाहिए।

अमेरिकी विशेषज्ञ, अमेरिकी ढंग की जीवन-पद्धति के प्रति निष्ठावान थे। इसी प्रकार रूसी विशेषज्ञ निःसन्देह उसी मात्रा में साम्यवादी जीवन के तरीके और वहाँ की उस शिक्षा-पद्धति के प्रति निष्ठावान था जिसे सोवियत रूस ने बनाया है। इन दोनों परस्पर विरोधी पद्धतियों के मध्य जैसी कोई चीज पाना सम्भव नहीं है और इन दोनों विशेषज्ञों में से किसी के लिए ईमानदारी के साथ अपने से भिन्न दूसरे तरीके को अपनाने की बात कहना सम्भव नहीं था। ऐसे भद्र पुरुषों से परस्पर एक साथ बैठकर ऐसी पद्धति का आविर्भाव करने के लिए कहना जिस पर कि भारतीय शिक्षा आधारित हो, सचमुच, उनसे एक असम्भव काम करने के लिए कहना था। अमेरिकी और रूसी विशेषज्ञ के सम्बन्ध में जो तथ्य है, वही न्यूनाधिक मात्रा में, विदेशों से नियुक्त आयोग के अन्य सदस्यों के सम्बन्ध में भी लागू होते हैं।

स्वीकृत जीवन-पद्धति का अभाव

भारतीय सदस्यों के सम्मुख इस प्रकार की कठिनाई नहीं थी क्योंकि हमारे यहाँ कोई ऐसी भारतीय जीवन-पद्धति नहीं है, जो सरकार-द्वारा स्वीकृत हो। निस्सन्देह यह सही है कि कई शताब्दियों की अवधि में एक इस प्रकार की चीज विकसित हुई जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं। मौके, बेमौके हम इसकी शपथ खाते हैं और अक्सर विदेशों में खर्चीले मिशन इसका प्रचार करने के लिए अथवा कम-से-कम इसका विज्ञापन करने के लिए भेजते रहते हैं। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि हमारे देश में भारतीय जीवन-पद्धति-नाम की कोई चीज है। गांधीजी इस पद्धति के व्याख्याकार प्रतीत होते थे पर हमने इस बात का खयाल रखा है कि उनके विचार किसी भी प्रकार से संविधान में प्रतिध्वनित न होने पायें। इसलिए आयोग के भारतीय सदस्यों के व्यक्तिगत विचार भले ही कुछ हों, पर ये सदस्य किन्हीं निश्चित ऐसे सिद्धान्तों से आबद्ध नहीं थे जिनका वे प्रतिनिधित्व करना चाहते हों।

ऐसी हालत में जहाँ एक ओर ऐसे व्यक्ति हों जो आपस में कभी मेल न खानेवाले सिद्धान्तों में संलग्न हों और दूसरी ओर ऐसे सदस्य हों जिनका कोई सिद्धान्त

नही हो वहाँ सबसे सुरक्षित और सबसे सरल तरीका यही है कि सिद्धान्तो की दृष्टि से किसी बात पर विचार न किया जाय। आयोग ने प्रकटत इसी मार्ग का अवलम्बन किया है।

आयोग की रिपोर्ट क्रान्तिकारी नही

शिक्षा केवल स्कूल के प्रबन्ध की प्रणाली पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण-तकनीक ही नही है। पर ये ही मुख्य चीज हैं जिन पर आयोग ने जोर दिया है। आयोग की रिपोर्ट का एक क्रान्तिकारी अभिलेख के रूप म अभिनन्दन किया गया है। यह आशा की गयी कि इससे भारतीय शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आयगा। पर मुझे आशका है कि ऐसी कोई बात इससे नही होगी। यह हो सकता है और सम्भवत ऐसा हो भी जायगा कि तकनीकी सुधार हो मानव शक्ति उसका समय और उसके धन का अपव्यय न हो अध्यापको के स्तर और उनके वेतन म सुधार हो जाय, एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार हो जाय जो आधुनिक आर्थिक अवस्थाओ के अनुकूल हो पर इन सबमें कोई क्रान्ति नही है। अगर हम चाहें तो इस शब्द का प्रयोग कर अपने को खुश कर सकते हैं पर हम शीघ्र ही यह जान जायेंगे कि हम बिना किसी औचित्य के अपने आप ही अपनी पीठ ठोक रहे थे।

वस्तुत शिक्षा एक उद्देश्य का साधन है। केवल किसी क्रान्तिकारी विचारधारा को अपनाकर ही हम किसी भी शिक्षापद्धति को क्रान्तिकारी बना सकते हैं। हमारे सामने यह स्पष्ट स्वरूप होना चाहिए कि हम कल के भारतीय नागरिक को किस प्रकार का मनुष्य बनाना चाहते हैं। हमारे सम्मुख पूर्ण मानव का चित्र होना चाहिए केवल मात्र समझदार रोटी कमानेवाले का नही। निस्सदेह भारत का नागरिक भावनात्मक रूप से सारे देश के साथ और अपने देशवासियो के सब वर्गों विभिन्न धर्मों के माननेवालो विभिन्न भाषाएँ बोलनेवालो विभिन्न एतिहासिक परम्पराओ में उत्पन्न और पालित सभी व्यक्तियो के साथ अविकल रूप से आबद्ध हो इस सब से ऊपर बात यह है कि हम उसका एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व चाहते हैं। किस प्रकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व हम विकसित करना चाहते हैं यह शिक्षा के दर्शन का विषय है जो स्वय सामान्य दर्शन शास्त्र की एक शाखा है।

अपने भविष्य म विश्वास की जरूरत है

जीवन निर्माण कुछ निश्चित दार्शनिक सिद्धान्तो पर होना चाहिए। इसमें जीवन के मूल्यो की एक पद्धति होनी चाहिए। इसमें विचारो का तानाशाहपूर्ण व्यूहबधन आवश्यक और वाछनीय नही, पर बिना व्यूहबधन के यह सम्भव है कि भारत की परम्पराओ और सस्कृति के आधार पर मूल्यो की एक योजना का विकास किया जा सके। इसके लिए हमें दूसरो के पास भिक्षा माँगने के लिए जाने की जरूरत नही है। जिस बात की जरूरत है वह है अपने में विश्वास, अपने भूतकाल और अपने भविष्य में विश्वास। अभी भी भारत के पास एक सन्देश है जो वह सारे विश्व को दे सकता है।

चूंकि आयोग के सदस्यो के लिए शिक्षा दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो पर एकमत होना सम्भव नही था, इसलिए प्रतीत होता है इस विषय की ओर सकेत करने से उसने अपने को बचा लिया। उसी कारण उसने ऐसी कोई बात नही कही है जो आशा और विश्वास ला सके और अध्यापक और शिष्य में इस काय के प्रति किसी प्रकार का लगाव पैदा कर सके। आयोग के सदस्यो ने ऐसी कोई बात नही कही है जिससे अध्यापक और शिष्य में त्याग और सेवा की भावना का प्रादुर्भाव हो।

इस रिपोर्ट में ऐसा कुछ नही है जिससे हमारे अन्तर के सर्वोत्तम की अभिव्यक्ति हो सके। जब रूस ने साम्यवादी विचारधारा को अपनाया और साम्यवाद के सिद्धान्त के चारो ओर एक शिक्षापद्धति का निर्माण किया, तब उन्होने शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति में धर्मोपदेशक की भावना भर दी एक ऐसे व्यक्ति की जिसे एक नया ससार बनाना है एक ऐसे व्यक्ति की जिसे इस भूमि पर एक स्वर्ग का राज्य कायम करना है। पर हमारे इस बहुविज्ञापित आयोग की रिपोर्ट इस प्रकार की कोई भी चीज करने म असफल रही है। यह रिपोर्ट उसी ढग की है जैसी अन्य शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट जिनमें शिक्षा पद्धति में सुधार के विषय में कहा गया है। सुधार सामान्य रूप में अच्छे हैं पर वे क्रान्ति की ओर नही ले जाते। इन सुधारो के कोई पख नही होते। वे केवल सामान्य दर्जे के होते हैं और उस पुराने स्तर में से अधिक ऊँचे नही उठ सकते, जिसमें कि उनकी जडें होती हैं।

मैं समझता हूँ कि मेरे लिए यह न्याय सम्भव न होगा यदि मैं इस आयोग-द्वारा व्यक्त सम्वद्ध राय की ओर संकेत न करूँ। आयोग के शब्दों में शिक्षा का विकास इस ढंग से होना चाहिए जिससे उत्पादकता बढ़े, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति हो, लोकतंत्र दृढ़ हो, आधुनिकता की प्रक्रिया में तीव्रता आये और सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण हो। यह जानना दिलचस्प होगा कि आयोग-द्वारा 'आध्यात्मिक' शब्द के साथ क्या महत्ता सम्बद्ध की गयी है। फिर भी हमें इस सम्बन्ध में केवल यही दोहराना होगा कि जहाँ इन प्रस्तुत लक्ष्यों के बारे में कोई दो मत नहीं हो सकते, वहाँ अन्य कुछ की अधिक स्पष्टता से व्याख्या होनी चाहिए।

लोकतंत्र की व्याख्या नहीं की गयी

यह बात कहने का कोई साहस नहीं कर सकता कि सोवियत रूस, अमेरिका, इंगलैण्ड, और फ्रांस की शिक्षा का उद्देश्य, अपने नागरिकों का चतुर्मुख विकास नहीं है, पर पश्चिमी लोकतंत्री देश जिन मूल्यों के पोषण को अपना लक्ष्य बनाते हैं, सोवियत रूस अथवा सोवियत संघ की विचार-धारा के पक्षपोषक अन्य सदस्य उन्हीं मूल्यों को लक्ष्य नहीं बनाते। एक देश जिसे तानाशाही कहते हैं दूसरे देश उसे ही लोकतंत्र कहते हैं। यह लोकतंत्र शब्द स्वयं ऐसा है जिसकी व्याख्या होनी चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि सामाजिक और राष्ट्रीय एकता हिटलर-सदृश्य तानाशाह के हाथ में जाकर बुराई का अत्यन्त शक्तिशाली साधन बन सकती है।

मैं फिर उस पुरानी शिकायत की ओर आता हूँ कि विभिन्न व्यक्तियों-द्वारा जिन विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसके बदले हमें भावी समाज के बारे में अपने विचार का निरूपण करना चाहिए, उस प्रकार के व्यक्ति का निरूपण करना चाहिए जिसकी समाज को जरूरत हो। आध्यात्मिक शब्द की व्याख्या इस बात के स्पष्टीकरण में काफी सहायता देती है, पर हमारे समाज के नेता अभी तक इसकी आवश्यकता का अनुभव नहीं करते और मैं समझता हूँ, शिक्षा-आयोग अपने विचार-क्षेत्र से बाहर जाता, अगर वह इस शब्द की अधिक व्याख्या करने में लग जाता। ●

—'आज' से साभार

शिक्षा-आयोग की सिफारिशें

●

: श्री धीरेन्द्र मजूमदार से कुछ प्रश्नोत्तर :

प्र० शिक्षा-आयोग ने जिन मूल उद्देश्यों का प्रतिपादन किया है उन उद्देश्यों का नयी तालीम के उद्देश्यों से मेल बैठता है ऐसा कहा जा रहा है। क्या आप इससे सहमत हैं?

उत्तर नयी तालीम का सार स्वावलम्बन है। गांधीजी ने कहा था कि स्वावलम्बन नयी तालीम का 'एसिड टेस्ट' है। कारण यह है कि इस शिक्षा पद्धति का ध्येय शोषणमुक्त तथा स्वावलम्बी समाज रचना है। शिक्षा-आयोग ने जो लक्ष्य बताया है उसमें वाक्य और शब्द बहुत अच्छे हैं, लेकिन कोई ठोस योजना नहीं है। और, न पूर्ण या अंशतः स्वावलम्बन का संकेत है। जो है वह भी इतना अस्पष्ट है कि उसपर कोई निश्चित राय कायम करना सम्भव नहीं है।

प्र० कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरिएंस) को शिक्षा के अविभाज्य अंग के रूप में स्वीकार करते हुए शिक्षा-आयोग ने विद्यालय में कुछ कार्यक्रमों को दाखिल कराने का सुझाव दिया है। क्या इसके द्वारा उस नयी समाज-रचना के निर्माण में मदद मिलेगी जो सर्वोदय-विचार के अनुरूप हो?

उत्तर वास्तविक जगत में 'वर्क एक्सपीरिएंस' शब्द का कोई अर्थ नहीं है। हमारे देश में खुदकाश्त किसान की परिभाषा यह है कि जो किसान अपना हल-बैल तथा नौकर रखकर खेती कराता है उसे कानूनन खुदकाश्त किसान कहा जाता है। इसी तरह इस देश में 'वर्क एक्सपीरिएंस' का अर्थ यह है कि जहाँ काम हो रहा है वहाँ विद्यार्थियों को ले जाकर 'राउण्ड' दिलाना।

सर्वोदय विचारधारा में काम का अनुभव वह है जो स्वाव लम्बन की बुनियाद पर अपने हाथ म किया जाता है। क्योकि स्वावलम्बन की शत न रहन पर मनुष्य काम चाह किस तरह कर सकता है फिकर या जिम्मेदारी का तत्व उसम नहीं रहता है। उसके अभाव में उत्पादक काय के अनुभव की प्राप्ति सम्भव नही ह।

प्र० शिक्षा आयोग न उच्च प्राइमरी कक्षाओं से दो भाषाओ—मातभाषा या क्षत्रीय भाषा तथा हिन्दी या अँग्रेजी—के शिक्षण का सुझाव पेश किया है। निचली माध्यमिक कक्षाओ के लिए तीन भाषाओ और उच्च माध्यमिक कक्षाओ के लिए दो भाषाओ का सुझाव दिया है। आयोग न प्राइमरी स्तर पर रोमन लिपि सिखान का सुझाव दिया है। लेकिन सिद्धान्त के रूप में उन्होंन सुझाव दिया है कि मातृ भाषा या क्षत्रीय भाषा के माध्यम से प्राइमरी से विश्वविद्यालय स्तर तक का शिक्षण दिया जाय। इन सुझावों के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

उत्तर शिक्षा-आयोग के सुझावा म सबस खतरनाक हिस्सा भाषा सम्बन्धी ह। इसपर काफी विस्तार से देशभर म चर्चाएँ हुई हैं। उतना पर्याप्त है। मुझ कोई नयी बात नही कहनी है।

प्र० शिक्षा-आयोग न शक्षिक प्रशासन पयवेक्षण और विकेन्द्रीकरण के मामलों में कुछ उदार पद्धतियो के कार्यान्वयन का सुझाव दिया है। एसा महसूस किया जा रहा है कि शिक्षा आयोग द्वारा सुझायी हुई यह नयी नीति ग्रामदानी प्रखण्डो में नयी तालीम का सयोजन करन म सर्वोदय ग्रुप के लिए मददगार साबित होगी। क्या आप इस बात से सहमत ह?

उत्तर सर्वोदय ग्रुप क्या है मुझ मालूम नहीं। क्रमबद्ध शिक्षण का कायक्रम ग्रामदानी प्रखण्ड में अभी नहीं चलाया जा सकता ह। वह तब हो सकेगा जब समुचित जनशिक्षण द्वारा ग्रामदानी प्रखण्ड म जनता की यह सम्मति प्राप्त हो जाय कि शिक्षा सरकार निरपेक्ष होनी चाहिए। और कोई डिग्री नौकरी की शत नहीं होनी चाहिए बल्कि नौकरी के लिए भिन्न भिन्न एजेंसी (विभाग)-द्वारा प्रवेश के लिए जाँच की परिपाटी होनी चाहिए। तबतक विचार और तालीम की उपरोक्त शत के लिए लोकमानस का शिक्षण ही सर्वोदय ग्रुप क लिए नयी तालीम का काम है। साथ-साथ शिक्षा जगत के साभन नयी तालीम का विचार लक्ष्य, दृष्टि और पद्धति का चित्र गोष्ठी तथा चर्चा द्वारा रखने चलना होगा।

प्र० उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए शिक्षा-आयोग न शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कृषि शिक्षण का महत्व स्वीकार किया है और इसके लिए कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की सस्तुति की है। क्या इससे हमारा लक्ष्य पूरा होगा?

उत्तर उत्पादन बढ़ाने का बात स औपचारिक शिक्षण का क्या सम्बन्ध ह यह समझ में नही आया। क्योकि शिक्षा-आयोग की रिपोट म कहीं भी यह बात नहीं ह कि देश के उत्पादन के कायक्रम के समवाय म शिक्षा-योजना बन। उत्पादन की योजना अलग और शिक्षा का योजना अलग रखने हुए मुल्क का उत्पादन बढ़ान की बात शिक्षा के सन्दभ म नही आ सकती।

हर स्तर पर कृषि का शिक्षण अगर स्वावलम्बन की बुनियाद पर (चाहे वह कितना भी आशिक हो) सयो जित नहीं होता है और समवाय पद्धति का प्रयोग नही होता है तो वह काम शिक्षा-सस्था में खेती को जोड़ना मात्र होगा। शिक्षा के माध्यम के रूप में उसका इस्तेमाल नही हो सकेगा इससे हमारा मतलब सिद्ध नही होता।

प्र० कुछ लोग सोचते ह कि शिक्षा आयोग न जिस काय शील साक्षरता (फक्शनल लिटरेसी) की सकल्पना (पेज ५२) की है उसमें प्रौढ़ तथा सामाजिक शिक्षण का भरपूर कायक्रम सन्निहित है। इस पर आपका क्या मत है?

उत्तर फक्शनल लिटरेसी का जो सुझाव शिक्षा आयोग न दिया है वह मुझ पसन्द ह। लकिन अगर शिक्षकों में जो निम्नतम योग्यतावाले शिक्षक ह वही प्राइमरी शिक्षण के काज में रह तो इस सुझाव पर अमल नहीं हो सकेगा। इसके लिए आवश्यक ह कि देश के योग्यतम शिक्षक प्राथमिक शिक्षण का काम करें।●

कृषि-शिक्षण

•

बनवारीलाल चौधरी

'यदि वास्तव में नयी तालीम सच्ची है तो वह राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुकूल होगी। आज हमारा राष्ट्र भूखा है अतः आज नयी तालीम का कार्य होगा, इस भूख का मुकाबिला करना। आपके सामने जो जमीन पड़ी है आपका इन्तजार कर रही है। आप इससे जितना अधिक उपजाना चाहते हैं उपजायें। इसके लिए अधिकाधिक समय देना चाहिए। हमें यह व्रत लेना चाहिए जिससे हर समुदाय का बालक कम-से-कम अपने भोजन की सामग्री आपसे पैदा कर सके। कम से-कम उतना तो पैदा कर ही लें जितना उसके लिए आवश्यक है और यदि सम्भव हो तो कुछ दूसरों के लिए भी पैदा करें।" —गांधीजी

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी कुल आबादी के ८० प्रतिशत लोगों का जीवन कृषि पर आधारित है, जिनमें ६२ प्रतिशत लोग तो कृषि-कार्य में सीधे लगे हुए हैं और शेष किसी-न किसी निमित्त से। पर आज हमारी कृषि की ऐसी स्थिति है जिसमें हम अपने राष्ट्र के करोड़ों लोगों को भरपूर भोजन दे सकने में असमर्थ हैं। कृषि की समस्या के समाधान में ही हमारे राष्ट्र की सबसे महान समस्याओं-जैसे निर्धनता एवम् अज्ञानता का भी समाधान निहित है। कृषि के विकास का अर्थ है राष्ट्रीय विकास। अतः राष्ट्रीय विकास की किसी भी योजना या शिक्षण का केन्द्र कृषि को होना चाहिए इसे नजरअन्दाज करने का अर्थ होगा राष्ट्रीय संकट को बुलावा देना।

कृषि-शिक्षण का लक्ष्य

शिक्षण वास्तव में वही वास्तविक है जो राष्ट्र के सम्मुख आयी हुई चुनौतियों का मुकाबिला कर सके। यदि किसी राष्ट्र के लोग भूखों मर रहे हैं तो उस राष्ट्र के शिक्षण को इस चुनौती का मुकाबिला करना चाहिए और इसके समाधान के लिए कोई न कोई उपाय ढूंढना चाहिए। इसको ध्यान में रखकर ही उस राष्ट्र को अपने राष्ट्रीय कृषि शिक्षण की नीति, पद्धति और टेक्नीक का निर्धारण करना चाहिए। वास्तव में किसी भी प्रभावकारी कृषि शिक्षण में इतनी शक्ति होनी ही चाहिए जिससे वह अपने राष्ट्र के कृषि के उत्पादन के स्तर को ऊँचा उठा सके और परम्परागत कृषि के तरीकों के स्थान पर आधुनिकतम कृषि की पद्धतियों का समावेश करा सके। इसे गाँव में रहनेवाले लोगों को रोजी ही नहीं मिलेगी वरन् उनके जीवन का स्तर भी ऊँचा उठेगा। आत्मनिर्भरता से प्रारम्भ होकर यह राष्ट्र को सम्पन्नता की ओर उन्मुख करेगी और एक बार पुनः इस राष्ट्र में दूध और दही की नदियाँ बहने लगेंगी। यह भारत भूमि पुनः सुजलाम् सुफलाम् शस्यश्यामलाम् बन जायगी।

कृषि-शिक्षण का पुनर्गठन

प्राइमरी अर्थात् बेसिक स्टेज पर कृषि को स्कूल की एक प्रवृत्ति के रूप में नहीं वरन् शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाना चाहिए। इस स्तर पर छात्रों को सिर्फ अपनी उँगलियाँ गीली करना ही नहीं सिखाना चाहिए वरन् उनकी ऐसी तैयारी करानी चाहिए जिससे आनेवाले वर्षों में वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कृषि के माध्यम से आत्मनिर्भर बन सकें। दूसरे शब्दों में कृषि शिक्षण काम के अनुभवों से नहीं वरन् उत्पादन के अनुभवों से देना चाहिए। ऐसा शिक्षण शिक्षा के विभिन्न स्तरों में चलना चाहिए अर्थात् प्राइमरी शिक्षण से पी० एच० डी० शिक्षण तक।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षण के समय छात्रों को आत्मनिर्भर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में स्कूल के फार्म का उत्पादन इतना होना चाहिए जिससे उस फार्म पर काम करके अध्ययन करनेवाले छात्रों के भोजन की जरूरतें पूरी हो सकें।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षण या हाईस्कूल-शिक्षण के बाद पालीटेक्नीक में छात्रों को कृषि-शास्त्र की किसी विशेष शाखा में विशेष योग्यता हासिल करनी चाहिए ताकि वे कृषि के माध्यम से अपनी आजीविका अर्जित कर सकें। इंगलैण्ड के शिक्षा-संस्थान इसी दिशा में कार्य कर रहे हैं। ये छात्र निम्नलिखित शाखाओं में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते हैं—जैसे, पौदा का रोपण, जखीरा, मुर्गी-पालन, शहद की मक्खी पालन या फसलों का अच्छा उत्पादन जैसे—गेहूँ, चावल, आलू, मक्का, नीबू, अंगूर या ज्वार और बाजरा का सकर उत्पादन या पौदों का रक्षण।

प्रतिभा-सम्पन्न विकसित किसान जिन्हें हम कृषि के पण्डित भी कह सकते हैं या अच्छे उत्पादन के लिए पारितोषिक-प्राप्त किसानों का भी सहयोग कृषि शिक्षण-योजनाओं में लेना चाहिए। वास्तव में ये ही वे लोग हैं जिन्हें हम कृषि विश्वविद्यालय के बोर्ड के सदस्य मान सकते हैं न कि राजनीतिज्ञों और अर्थ-कृषकों को।

छात्रों को ऐसे कृषि-पण्डितों और दूसरे प्रतिभा-सम्पन्न किसानों के पास विशेष अध्ययन के लिए जाना चाहिए। जैसे हलवे की परीक्षा उसके स्वाद-द्वारा ही की जाती है वैसे ही कृषि शिक्षा और ज्ञान की परीक्षा कृषि-उत्पादन-द्वारा की जानी चाहिए। इस परीक्षा में विश्वविद्यालयों के और सरकार के फार्म असफल सिद्ध हुए हैं।

विश्वविद्यालयों के कृषि-फार्म राष्ट्र पर भार के रूप में नहीं रहने चाहिएँ, जैसे कि आज हैं। सम्भवतः कोई भी सरकारी फार्म लाभ देनेवाले नहीं हैं। उनमें से अधिकांश नुकसान में चल रहे हैं। इन कृषि-फार्मों को आर्थिक दृढ़ता प्रदान करने के लिए हमारा ध्यान सुव्यवस्थित फार्मों की अपेक्षा खूब लाभ देनेवाले फार्मों की ओर अधिक जाना चाहिए।

कृषि विश्वविद्यालयों को अपनी ग्रेनाइट की दीवारें छोड़कर किसानों के खेत में जाना चाहिए। शानदार बिल्डिंग, कारें, जीप, टेरिलीन के बुशशर्ट, अच्छे वेतन-भोगी कर्मचारी और छात्रों पर पड़नेवाले भारी खर्च से ही वे किसान जो फटे-पुराने कपड़े पहनते हैं और बैलगाड़ियों पर बैठकर आया जाया करते हैं भयभीत हो, उठते हैं। बहुत दिन हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जवाहरलाल नेहरू कृषि-विश्वविद्यालय जबलपुर में एक प्रश्न पूछा था, उसका उत्तर आज तक नहीं दिया जा सका।

प्रश्न था —खेतिहर किसान को किस प्रकार कृषि-विश्वविद्यालय के प्रांगण में लाया जाय ?"

वास्तव में यह एक अजीब-सी बात है कि कृषि-कालेजों और कृषि के उच्चस्नातकोत्तर शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी भी अपने माता-पिताओं पर भारस्वरूप हैं। जिनके शैक्षणिक खर्च की पूर्ति उनके अभिभावकों को प्रचण्ड गर्मी, वर्षा और कीचड़ में अथक परिश्रम करके करनी पड़ती है।

कृषि-शिक्षण को सिर्फ अपने छात्रों को ही स्वावलम्बी नहीं बनाना चाहिए वरन् उन्हें सारे के सारे ग्राम्य-जीवन में क्रान्ति लानी चाहिए। दूसरे राष्ट्रों में ऐसा ही किया गया और ऐसा यहाँ भी किया जा सकता है। हम भी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें संशोधन, परिवर्तन तथा परिमार्जन करके उसी दिशा में कार्य कर सकते हैं।

ई मार्गन महोदय ने लिखा है, "हमें ऐसी सूचना मिली है कि भारत के ८० प्रतिशत या उससे अधिक लोग गाँवों में रहते हैं। आज तक इस जन-समुदाय ने शिक्षण से नाम मात्र का ही फायदा उठाया। यदि भारत को एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र की भाँति विकास करना है तो इस राष्ट्र में एक ऐसी शिक्षण-पद्धति का विकास करना होगा जो प्राइमरी स्कूलों से यूनिवर्सिटी तक हमारे राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। इसका पहला कारण यह है कि प्रजातंत्र एक लम्बे-चौड़े पैमाने पर तभी कायम रखा जा सकता है जब कि यहाँ के लोग सुशिक्षित हों। इसका दूसरा कारण यह है कि सारे के सारे राष्ट्र के लोग जब एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र के अंग हैं, उनकी ओर से अवसरों की समानता की माँग की जा सकती है जिसमें शिक्षण भी निहित है।" ●

—अनुवादक : गुरुदत्त

बच्चा, अपराध और सजा

•

आलोक प्रभाकर

क्या बच्चों को उनके अपराध के लिए और उनकी शरारत के लिए दण्ड देना आवश्यक है? बहुत से लोग इस प्रश्न पर बिना गौर किये, बगैर सोचे-समझे जवाब देंगे—हाँ, बच्चों को उनके अपराध के लिए दण्ड देना आवश्यक है, नहीं तो वे बिगड़ जायेंगे। किन्तु यदि इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो हम इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में देने के लिए विवश होना पड़ेगा।

बच्चों को पीटने की आदत

हम देखते हैं कि बच्चे लड़ते हैं, झगड़ते हैं, ऊधम मचाते हैं, गाली बकते हैं। और, उनका यह कार्य हमें नागवार गुजरता है। हम क्रोध से काँपने लगते हैं, और उनकी इस शरारत के लिए, उनके इस अपराध के लिए उन्हें पीटते हैं, डराते हैं, धमकाते हैं, कोठरी में भूखा-प्यासा दो-दो दिन तक बन्द रखते हैं। उन्हें उल्लू, गधा, सूअर आदि की उपाधियों से अलंकृत करते हैं। हमारा विचार है कि इससे बच्चे सुधर जायेंगे। उनको आइन्दा इस तरह की अपराध करने की हिम्मत नहीं होगी। जैसे ही वे शरारत या अपराध करने की सोचेंगे, वैसे ही उनकी आँखों के सम्मुख अपनी पिटाई और मरम्मत का खौफ आ जायगा। और, यह तो सभी जानते हैं कि मार के आगे भूत भी नाचता है। सो, हम ऐसा नित्य प्रति करते हैं और अब तो यह हमारी आदत सी बन गयी है। हम इस प्रश्न पर दूसरी निगाह से गौर ही नहीं कर पाते हैं। सच पूछिए तो हम इसकी आवश्यकता भी महसूस नहीं करते कि इस प्रश्न पर गौर किया जाय। इस बात का पता लगाना हम कतई फिजूल समझते हैं कि बच्चों की शरारत और अपराधों के पीछे कोई न कोई कारण तो अवश्य होगा। हमारे हाथ तो खुजलाते रहते हैं। जबतक बच्चों को दण्ड न दे दिया जाय तबतक हाथों की खुजली नहीं मिटती, जबतक बच्चे के गाल पर पाँचों अँगुलियों की छाप न पड़े तबतक हम चैन नहीं पाते। पर, यदि हम उनके अपराधों के लिए उन्हें दण्ड देने के पूर्व किये गये उनके अपराधों के पीछे छिपे हुए कारणों पर भी गौर करें तो हो सकता है कि बच्चे को दण्ड देने की नौबत ही न आये और हम खुद को दण्ड देने के लिए तैयार हो जायें।

अपराध के कारण

सच पूछिए तो बच्चे के मन में अपराध की भावना का अंकुर हम स्वयं बोते हैं। हम स्वयं झूठ बोलते हैं और आशा करते हैं कि हमारा बच्चा सत्यवादी हरिश्चन्द्र का दूसरा अवतार बने। हम खुद सिगरेट पीते हैं और आशा करते हैं कि हमारा बच्चा सिगरेट को हाथ भी न लगाये। हम स्वयं छल-कपट का व्यवहार करते हैं और आशा करते हैं कि हमारा बच्चा छल कपट के व्यवहार से दूर रहे।

मान लीजिए आप अपने बच्चे को स्कूल-टाइम में—जब कि उसे स्कूल में होना चाहिए था—एक सिनेमा घर के दरवाजे से बाहर निकलते देखते हैं। जब शाम को उससे पूछते हैं कि क्या वह सिनेमा

गया था। आपने उसे स्वयं सिनेमा के दरवाजे से बाहर निकलते देखा था। आपका लायक पुत्र आपको झुठलाता है कि वह तो स्कूल में पढ़ रहा था, शायद आपने किसी और को देखा होगा। आप अपनी निगाह का अपमान बर्दाश्त नहीं कर पाते और आपकी अँगुलियों की छाप उसके गालों पर चमकने लगती है। आप उसे गालियाँ दे-देकर कोसते हैं कि नालायक है। किन्तु एक बात तो सोचिए; क्या आपके बच्चे के मन में झूठ बोलने का अंकुर उसी दिन पैदा नहीं हुआ होगा, जिस दिन कोई लेनदार आपके दरवाजे पर आकर आवाज लगा रहा था और आपने अपने बच्चे से कहलवाया था कि आप घर पर नहीं हैं, कहीं बाजार गये हैं, पता नहीं कब आयेंगे? बच्चा लेनदार को जवाब देकर आया तो आपने उसकी पीठ थपथपायी थी। आखिर आज भी वह झूठ बोला और उस दिन भी झूठ बोला था, तो आज उसकी पीठ क्या नहीं थपथपायी गयी, आज उसको दण्ड क्यों दिया गया! आज वह झूठ बोला अपनी खातिर, उस दिन झूठ बोला था आपकी खातिर। तो, क्या आपका विचार है कि उसे झूठ बोलना तो चाहिए, किन्तु आपकी खातिर बोलना चाहिए! यदि वह अपनी खातिर झूठ बोला तो वह हकदार है सजा का!

बालक का मन

बच्चे के मन और हमारे मन में काफी अन्तर होता है। हैवलाक एलिस ने लिखा है—बच्चे का मन ठीक उसी प्रकार काम नहीं करता, जिस तरीके से वयस्क का मन करता है। जो एक सोपान में जरूरी है वह विकास के उससे पहले के सोपान में ऐसा ही हो, यह आवश्यक नहीं है।' हम बच्चे की हरेक क्रिया को—कैसे उठता है कैसे बैठता है, कैसे चलता है कैसे बोलता है—अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। हम यह स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं महसूस करते कि बच्चे का भी अलग व्यक्तित्व होता है। उसकी प्रत्येक क्रिया हमारे माप-दण्ड से ठीक नहीं बैठती। उसकी क्रियाएँ हमें मान्य नहीं हो पाती। उसकी प्रत्येक क्रिया हमारे मन को खटकती है और हम तुरन्त फतवा दे देते हैं—"वह दोषी है, और इसे सजा दी जानी चाहिए।"

हमारे रूढ़िग्रस्त मन में एक संस्कार कुण्डली मार-कर बैठा है कि हम युगों से चली आ रही परम्परागत चीजों के, रूप-रंगों के आदी हो गये हैं। हमारा रूढ़ि-ग्रस्त मन, हमारी रूढ़िग्रस्त आँखें उन चीजों को, उन रूप-रंगों को सहन नहीं कर पाती, जो कि हमारी परम्पराग्रस्त अभ्यस्त आँखों को खटकती हैं। हमारे कानों में जब कोई नया विचार प्रवेश करता है तो हम एकदम बौखला जाते हैं। वह विचार हमारे कानों को नागवार लगता है। हमें यों लगता है कि जैसे हमारे कानों में किसी ने पिघला हुआ शीशा डाल दिया हो। हमारा रूढ़िग्रस्त मन उस विचार के विरुद्ध विद्रोह करने लगता है और यह विद्रोह जबान, हाथों, आँखों के द्वारा बखूबी व्यक्त हो जाता है। यदि हम बच्चे का कुछ ऐसी बात करते देखते हैं, जो हमारे कानों और आँखों के लिए सर्वथा नवीन है तो हमारे कान खड़े हो जाते हैं। हम नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और बच्चे की अच्छी तरह मरम्मत कर देते हैं।

माँ-बाप का मिथ्या अहंकार

हम सोचते हैं कि बच्चों पर हमारा अधिकार है, वे हमारे हैं। और, हमारा यह मिथ्या अहंकार हमसे चाहता है कि बच्चे हमारे अनुशासन में रहें, हमारी आज्ञा-नुसार चलें, हमारे अधीन रहें। हम उन्हें कुएँ में कूद जाने के लिए कह दें तो वह बिना उज्र किये कुएँ में कूद जाने के लिए तैयार हो जायें, किन्तु जब हम देखते हैं कि बच्चे हमारे अनुशासन में नहीं रहते, आज्ञा-नुसार नहीं चलते, तो हमारी आँखों में खून उतर आता है। हमारे हाथ खुजलाने लगते हैं। हम उन्हें बागी करार देकर उनके लिए भयानक दण्ड की व्यवस्था करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं—बच्चे छोटे हैं, बेचारे हैं! उनमें ताकत ही कहाँ है कि हमसे टक्कर ले सकें, 'क्या पिद्दी का शोरबा' और यह बात तो सूरज की रोशनी की तरह साफ है कि बलवानों ने हमेशा कमजोरों को दबाया है; उनपर अत्याचार किये हैं। गौर कीजिए-हमारा कहर बच्चों पर ही क्यों बरपा होता है? क्या कभी अपने बराबरवालों या बड़ों के वैसा बोलने पर या वैसा कार्य करने पर उनके साथ भी हम वैसा ही व्यवहार

करते है—उन्हे भी दण्ड देते है? यदि नही, तो क्यो? क्या इसलिए न कि बराबरवालो या बडो के सामने हमारी दाल नही गलती। हो सकता है कि हम वहां खुद पीट जायें। इसके विपरीत बच्चों मे इतनी ताकत नही होती कि हमपर हाथ उठा सकें। हम मजे में उन्हें पीट सकते है। सच तो यह है कि बच्चो की ओर से होनेवाली बदले की भावना की असम्भावना ही हमसे उन्हें दण्डित कराती है।

इसके अलावा हमारा मिथ्या अहंकार भी हमें अवसर देता है—हमें प्रेरित करता है बच्चो को दण्डित करने के लिए। हम सोचते हैं कि बच्चे ने अभी दुनिया देखी ही कितनी है? वह तो दुनिया का नया रगरूट है। छोटा-सा उसका जिस्म है, क्या ताकत है उसके अन्दर आखिर, और अक्ल ही कितनी है, वह तो हमारी दया पर जी रहा है। हमारे बगैर वह लाचार हो जायगा। और हम तो दुनिया के बडे पुराने किरायेदार है। इस बच्चे से बहुत पहले दुनिया मे आ गये थे। हमने इसस ज्यादा दुनिया देखी है, हमारा जिस्म इससे बडा है, हमारे पास ताकत ज्यादा है, हमारे पास अक्ल ज्यादा है। हम अपने आधार पर जीवित है, पैरासाइट नही हैं; और यह बच्चा तो पैरासाइट है। हम इधर-उधर घूमने के लिए आजाद है, बम्बई, कलकत्ता भी देख आये हैं, और बच्चे समझते है कि सारी दुनिया इसी मुहल्ले मे खतम होती है।

मनुष्य के विकृत स्वभाव की पर-पीडन वृत्ति भी बच्चो को हमसे दण्ड दिलवाती है। दूसरो को सताने में, कष्ट पहुँचाने में और उनके कार्यों में बाधा डालने मे हमे आनन्द आता है। इसका कारण यह है कि हमारे स्वभाव मे पर-पीडन वृत्ति का वास है।

दण्ड-परम्परा दूर करें

इसके अतिरिक्त पीढियो से चली आयी दण्ड-परम्परा भी बच्चो को दण्ड देने का आधार होती है। हमारी मान्यता है कि दण्ड मनुष्य को सुधारता है। हमारे पुराने धर्मशास्त्र, राजनियम और शिक्षा-प्रणाली यही फतवा देती है कि दण्ड सुधार का एक प्रमुख साधन है और इसी साधन के फलस्वरूप हमारे पूर्वज दण्डित होते आये; उन्होंने अपना गुबार हमपर उतारा और हम अपने बच्चों पर उतार रहे है।

यदि आप बच्चो को वीर और साहसी बनाने की इच्छा रखते हैं, अपने भावी समाज को प्रगतिशील और शक्तिशाली देखना चाहते है, तो आपको ध्यान रखना चाहिए कि बच्चो का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। हमें सदैव बच्चों का सम्मान करना चाहिए। उनकी भावनाओं की कद्र करनी चाहिए। शरारतो या अपराधो के पीछे छिपे हुए कारणो का पता लगाकर उन कारणो को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। हमें अपनी आंखो और कानो की रूढिग्रस्त दासता से दूर हटना होगा। बस, इसी म हमारा और हमारे बच्चों का कल्याण है। •

अमीर का बेटा

बूट कौन पहनाता है?	नौकर।
कपडे कौन पहनाता है?	आया।
खाना कौन खिलाता है?	रसोइया।
पानी कौन पिलाता है?	चाकर।
घूमने किसमे जाते हो?	मोटर मे।
पढाने कौन आता है?	पण्डित रामेश्वर जी।
कपडे कौन धोता है?	हमारा धोबी।
मदरसे पहुँचाने कौन जाता है?	हमारा चपरासी।
सुबह उठते कब हो?	जब घर मे प्राइमस सुलगता है।

गरीब का बेटा

बूट कौन पहनाता है?	बूट है ही नही।
कपडे कौन पहनाता है?	मै खुद पहन लेता हूँ।
खाना कौन खिलाता है?	मां या जीजी।
पानी कौन पिलाता है?	मै खुद पी लेता हूँ।
घूमने किसमे जाते हो?	गुड्ड की गाडी म।
पढाने कौन आता है?	खुद पढता हूँ।
कपडे कौन धोता है?	मां धोती है या मैं धोता हूँ।
मदरसे पहुंचाने कौन जाता है?	मैं खुद चला जाता हूँ।
सुबह उठते कब हो?	जब मां चक्की पीसने बैठती है।

—स्व० गिजुभाई

अनुक्रम

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १५वी तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तको की दो-दो प्रतियां भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पांच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने मे सहुलियत होती है।
- रचनाओ में व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

गाँव जाग उठे

विचारशील नागरिक, सरकारी अफसर और कार्यकर्ता वर्ग के लोग अकसर यह जानना चाहते हैं कि अलग-अलग प्रदेशो में ग्रामदान होने के बाद क्या हो रहा है।

ग्रामदान होने के बाद तमिलनाड के ग्रामदानी गांवो में सामूहिक श्रम से नयी जमीन तोडी गयी है और नये कुएँ बनाये गये हैं। उडीसा के कोरापुट जिले म ग्रामदानी गांवो में ग्राम-सभा ग्रामकोष बनाकर गांवो की अनेक समस्याएँ हल कर रही है। मध्य प्रदेश के मोहझरी ग्रामदान में महत्वपूर्ण निर्माण-कार्य हो रहा है। लोक पुरुषार्थ की इस प्रेरक पद्धति और उसके सरस स्वरूप के अनेक पहलू है। ग्रामदानी गावो की दिलचस्प कहानी सर्व-सुलभ करने के लिए सर्व सेवा सघ ने निम्नलिखित पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं —

१	तमिलनाड के ग्रामदान	२ ००
२	आन्ध्र के ग्रामदान	१ ००
३	कोरापुट के ग्रामदान	२·००
४.	मध्य प्रदेश का ग्रामदान मोहझरी	१·००
५	गुजरात के ग्रामदान	(प्रेस में)

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट वाराणसी-१

अनुक्रम

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १५वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

गाँव जाग उठे

विचारशील नागरिक, सरकारी अफसर और कार्यकर्ता वर्ग के लोग अकसर यह जानना चाहते हैं कि अलग-अलग प्रदेशो में ग्रामदान होने के बाद क्या हो रहा है।

ग्रामदान होने के बाद तमिलनाड के ग्रामदानी गाँवो में सामूहिक श्रम से नयी जमीन तोडी गयी है और नये कुएँ बनाये गये है। उडीसा के कोरापुट जिले में ग्रामदानी गाँवो में ग्रामसभा ग्रामकोष बनाकर गाँवो की अनेक समस्याएँ हल कर रही है। मध्य प्रदेश के मोहझरी ग्रामदान में महत्वपूर्ण निर्माण-कार्य हो रहा है। लोक-पुरुषार्थ की इस प्रेरक पद्धति और उसके सरस स्वरूप के अनेक पहलू है। ग्रामदानी गाँवो की दिलचस्प कहानी सर्व-सुलभ करने के लिए सर्व सेवा संघ ने निम्नलिखित पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं :—

१. तमिलनाड के ग्रामदान	२·००
२. आन्ध्र के ग्रामदान	१·००
३. कोरापुट के ग्रामदान	२·००
४. मध्य प्रदेश का ग्रामदान मोहझरी	१·००
५. गुजरात के ग्रामदान	(प्रेस में)

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१

नयी तालीम, नवम्बर, '६६
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल. १७२३

गाली देने से क्या लाभ ?

मै ट्रेन के जिस डिब्बे म बैठा था उसमें बहुत से जुलाहे बैठे आपस में बातचीत कर रहे थे। इसी बीच ट्रेन बेगमपुर आकर रुक गयी। यहाँ से भी बहुत से जुलाहे कपडो का गट्ठर लेकर ट्रेन में चढे। मुझसे कुछ ही दूर एक किशोर कपडे की गाँठ लेकर बैठ गया। उसमें से ही एक व्यक्ति ने कहा, ' एक तो करघा-उद्योग की उन्नति के लिए सरकार की कोई अच्छी योजना नही है, दूसरे, देश म साधारण जनता को भी कोई दर्द नही है। यदि देश का प्रत्येक परिवार थोडा करघे के वस्त्र का प्रयोग करता तो हमलोगो की यह बुरी अवस्था न होती।"

बहुतो के समान मेरे मन ने भी इस युक्ति का समर्थन किया। किन्तु अचानक सामने के किशोर का स्वर सुनकर मैं चौक पडा। वह बोला, ' आपकी बात बहुत ठीक है किन्तु इसे लकर सरकार व जनता के विरुद्ध आरोप लगाने का आपको कोई अधिकार नही है।"

छोटे लडके की बात सुनकर वह व्यक्ति क्रुद्ध हो उठा। बोला-' क्यो ?"

'आपका अपना करघा है, फिर आपने क्या कपडा पहना है, बताइये तो ?" क्षण भर में ही उस व्यक्ति का मुँह उतर गया। सूखे गले से बोला, "मैं तो मिल का कपडा पहने हूँ, किन्तु "

बात रोककर किशोर बोला, 'तभी तो देखिए, आपही अकेले नही है, यहाँ बहुत स भाई हैं जो करघा चलाते हैं फिर भी करघे का कपडा नही पहनते। करघे के लिए आपलोगो के ही मन में दर्द कहाँ है ? केवल देश की जनता और सरकार को गाली देने से क्या लाभ ?'

सब स्तब्ध हो गये। क्षण भर रुककर लडका बोलता गया, "किन्तु मेरे पिताजी हमारे घर म मिल का कपडा बिलकुल नही घुसने देते।"

सभी की दृष्टि लडके पर पडी। वह करघे का कपडा ही पहने हुए था।

—रणजीत भट्टाचार्य

आवरण मुद्रक-सर्वसेवासघ प्रेस मानमन्दिर, वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २३,५०० इस मास छपी प्रतियाँ २३,५००

यी तालीम
सर्व सेवा संघ की मासिकी
दिसम्बर, १९

शब्द महत्वपूर्ण है। वह बहुत मानी रखता है। जगत से हमारा सम्बन्ध शब्द की मार्फत है। पर शब्द 'वृक्ष' और स्वय वस्तु-वृक्ष एक नही है। शब्द अनेक कानो के भीतर से गुजरकर अनेक मानवो-द्वारा उसे दिये गये जाने कितने अज्ञान भ्रान्त अर्थो को अपने में समाये है। इसीसे शब्द-द्वारा होनेवाला वस्तु का, जगत का जीवन का बोध खण्डित होता है अपूर्ण होता है, सीमित और भ्रान्त होता है। इसीसे कहना चाहता हूँ कि वस्तु को जीवन को, जगत को, शब्द-द्वारा नही, सीधे जानो। उसके साथ स्वय सीधे तदाकार होकर उसके समग्र को जानो। सत्य समग्र में है, खण्ड में नही है।

—जे० कृष्णमूर्ति

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

स्वराज्य के बीसवें वर्ष में !

भले ही वे खुद ऐसा न मानते हों, लेकिन जिस दिन दिल्ली में माध्यमिक शिक्षकों ने यह माँग की कि शिक्षा में जल्द-से-जल्द बुनियादी सुधार किये जायँ, उन्होंने स्वराज्य के बाद के शिक्षण के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा। भला यह दिन तो आया कि शिक्षकों की किसी जमात के मन में यह बात आयी कि शिक्षण सबसे पहिले शिक्षक की चीज है, उसके बाद ही शासक की या और किसी की ! यह बात आमतौर पर शिक्षक मित्रों के मन में आ जाय तो वह दिन दूर नहीं रह जायगा जब शिक्षक अपने हाथ में शिक्षण का झण्डा लेकर समाज का नेतृत्व करता दिखाई देगा। आज तो शिक्षक नौकर है, शासक उसका संचालक, और नेता उसका मालिक। ऐसे नौकर को न रोटी मिल रही है, न इज्जत ! दिल्ली के प्रस्ताव-द्वारा शिक्षक इस स्थिति से ऊपर उठा है।

कई बार सवाल उठता है कि शिक्षक की इज्जत बढनी चाहिए। कैसे बढे ? एक उपाय यह सुझाया जाता है कि उसका वेतन बढाया जाय, दूसरा यह कि असेम्बली और पालियामेंट में उसे जगह दी जाय। खरी मजूरी करनेवाले को चोखा दाम मिले यह इस जमाने में बहस की नहीं, मानने और करने की बात है। लेकिन हालत तो यह है कि मजदूर से लेकर राष्ट्रपति तक कहीं भी काम और दाम का सही मेल नहीं दिखाई देता। यह प्रश्न पूरे देश का है, और इस प्रश्न के उत्तर पर देश का भविष्य निर्भर है। अब रही असेम्बली और पालियामेंट में जाने की बात। तो, इसका विरोध क्यों ? क्या इसीलिए कि शिक्षक राजनीति में पड़ जायगा, और तब अपने मुख्य काम, यानी विद्यार्थियों के शिक्षण को न्याय नहीं दे सकेगा ? लेकिन अगर यह मान लिया जाय कि शिक्षक केवल शिक्षक नहीं है नागरिक भी है, और साथ ही अगर यह भी मान लिया जाय कि मौजूदा राजनीति तथा मौजूदा असेम्बली और पालियामेंट के सिवाय दूसरा कोई लोकतंत्र इस देश को सूझता नहीं है, तो क्या कहकर हम शिक्षक को नागरिक के अधिकार और लोकतंत्र के अवसर से अलग रख सकेंगे ? हम तो यह चाहते हैं कि शिक्षक की पूरी शक्ति सही नागरिकता और स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण में लगे।

वर्ष : पन्द्रह

•

अंक : ५

आज की राजनीति अगर शिक्षक के लिए गन्दी है, तो हर सज्जन के लिए गन्दी है। पूरे देश और समाज के लिए गन्दी है।

लेकिन हम यह कहना चाहेंगे कि शिक्षक की शोभा न सत्ता से बढ़ेगी न सम्पत्ति से। आज समाज में सत्ता की 'इज्जत' इसलिए है कि वह दूसरों को डरा सकती है, सम्पत्ति की इसलिए है कि वह दूसरों को खरीद सकती है। अगर शिक्षक को भी यही 'इज्जत' चाहिए तो अच्छा है कि समाज को जल्द से जल्द पता चल जाय कि शासक की तरह शिक्षक के भी मन में क्या है। अब समाज शिक्षक के हाथ में शासक का डण्डा और सेठ का थैला देने के लिए तैयार नहीं है। अगर समाज को 'रोब-दाब' के सामने सिर झुकाना ही होगा तो वह दारोगा को छोड़कर शिक्षक को क्यों चुनेगा? किस विश्वविद्यालय के किस वाइसचांसलर ने अपने ऊँचे वेतन के बल पर अपने विद्यार्थियों का प्यार पाया है? और, कौन वैज्ञानिक, साहित्यकार या शिक्षक असेम्बली में जाकर चमका है? इज्जत एक चीज है और रोब-दाब बिलकुल दूसरी। शिक्षक चुन ले कि उसे क्या चाहिए। आज के समाज में अनीति है, अन्याय है। इसलिए हमारे आज के जो जीवन-मूल्य है वे अनीति और अन्याय के ही आधार पर चल रहे हैं। क्या शिक्षक को यह बताना पड़ेगा कि आज के समाज में जो 'इज्जत' सत्ता और सम्पत्ति से मिलती है उसमें घोर अनीति और अन्याय है, इसलिए बेइज्जती से भी बदतर है? क्या शिक्षक को उसी 'इज्जत' की भूख है?

दिल्ली के प्रस्ताव में शिक्षकों ने शिक्षण-पद्धति में सुधार की माँग की है। किस तरह के सुधार की माँग की गयी है? भले ही सुधार की माँग अभी सरकार से की गयी हो, लेकिन सरकार से भी पहले शिक्षकों को समाज के सामने अपनी सुधार-योजना रखनी चाहिए, और यह बताना चाहिए कि शिक्षक शिक्षण की नयी योजना में अपना क्या स्थान रखना चाहता है। अगर सुधार का निर्णय सरकार के हाथ में छोड़ना हो तो सुधार चाहे जो हो, जितना हो, शिक्षण समाज से दूर और सरकार के करीब रहेगा। और, उस शिक्षण में शिक्षक नौकर रहेगा, और समाज सरकार का अनुगामी। क्या शिक्षक ऐसा ही सुधार चाहता है?

अब शिक्षण में सुधार और शिक्षक की प्रतिष्ठा के दोनों प्रश्न नया समाज बनाने के प्रश्न के साथ जुड़ गये हैं। नये समाज की मुख्य पहचान यह है कि नित-दिन के जीवन में निर्णय की शक्ति सरकार के हाथ से निकलकर समाज के हाथ में आ जाय, और शिक्षा में सुधार की पहली शर्त यह है कि स्कूल समाज के नित-दिन के जीवन के साथ जुड़ जाय। तब जीवन की विविध क्रियाएँ शिक्षण के विषय हो जायँगी, और शिक्षक स्वयं समाज को जीवन की दीक्षा देनेवाला।

जब शिक्षकों ने शिक्षा के बारे में सोचना शुरू किया है तो हमारा निवेदन है कि वे गांधीजी को स्वराज्य के बीसवें वर्ष में एक बार दुहरा लें। —राममूर्ति

सैनिक-प्रशिक्षण

•

श्री के. श्रीनिवास आचार्लु

मंत्री, नयी तालीम समिति, सर्व सेवा संघ

वे शिक्षाशास्त्री, जो सैनिक प्रशिक्षण का दूसरे क्षेत्रों में विरोध करते हैं उनमें से अधिकांश की यह मान्यता है कि सैनिक प्रशिक्षण एक उच्च कोटि का शारीरिक प्रशिक्षण है। पर शारीरिक प्रशिक्षण की विचार धारा में ही इन दिनों एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। माध्यमिक शिक्षण-आयोग ने कहा है कि 'शारीरिक प्रशिक्षण सिर्फ ड्रिल या व्यायाम ही नहीं है, बल्कि इसके अन्तर्गत वे सभी शारीरिक-व्यायाम आते हैं जिनमें शरीर और मस्तिष्क, दोनों का विकास हो"। साथ ही यह भी कहा है कि 'शारीरिक प्रशिक्षण सिर्फ छात्रों में शक्ति का प्रदर्शन मात्र करा देने में नहीं है, वरन् उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक उत्थान से भी सम्बन्ध रखता है।"

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के डाक्टर स्ट्रेयर का कथन है कि शारीरिक प्रशिक्षण के बारे में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ड्रिल सिर्फ बालकों के विकास के लिए अनुपयोगी ही नहीं है, वरन् हानिप्रद भी है। शारीरिक प्रशिक्षण के गण्यमान्य तज्ञों ने भी यही विचार व्यक्त किया है।" (मिलिटरैलिज्म इन एजूकेशन)

शारीरिक प्रशिक्षण-शास्त्र

अब यह देखा जाय कि इस विषय पर शारीरिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञ क्या कहते हैं? कर्नल हरमैन जे० कोहलर ने, जिन्होंने शारीरिक प्रशिक्षण में 'वेस्ट पाइन्ट सिस्टम' की खोज की, उनका कहना है कि "किसी भी व्यक्ति के शारीरिक विकास के प्रशिक्षण के लिए बन्दूकों का उपयोग, चाहे वह प्रौढ़ हो या बालक, अनुपयोगी ही नहीं, वरन् निम्न स्तर का है। मेरी राय में यह अवश्यमेव हानिप्रद है। मैं इससे पूर्णतया असहमत हूँ कि सैनिक परेड में एक विशेषता होती है और उसका उपयोग इस युग के शारीरिक व्यायाम के हर क्षेत्र में किया जा सकता है। *सुनियोजित शारीरिक प्रशिक्षण व्यक्ति के भीतर* छिपे सैनिक-गुणों का विकास अधिकतम सीमा तक बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाए करता है।"

शारीरिक प्रशिक्षण शास्त्र के एक दूसरे तज्ञ डाक्टर डडले सार्जेन्ट ने कहा है कि "सैनिक परेड को शारीरिक व्यायाम के पक्ष में माननेवाली सर्वोत्तम विचारधारा को ध्यान में रखते हुए भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सैनिक-प्रशिक्षण के विभिन्न व्यायाम और क्रियाएँ वे सुविधाएँ प्रदान नहीं कर पातीं जिनसे मांसपेशियाँ श्वास-प्रणाली और रक्तवाहिनी नलियों के विकास में बल मिले, जिससे शरीर का सन्तुलित विकास हो सके। सैनिक-परेड से हमारी स्नायु-प्रणाली और मांसपेशियों पर काफी भार पड़ता है जिससे शारीरिक दोष, और अक्षमताएँ दूर होने की अपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ने लगती हैं।"

किसी भी विवादास्पद प्रश्न पर अपने मत के पक्ष में गांधीजी का नाम लेना एक आम बात बन गयी है। इस सदाचार के निर्वाह में विश्वविद्यालय-आयोग पीछे नहीं है। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट के एन० सी० सी० वाले अध्याय का प्रारम्भ ही महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्दों को उद्धृत करके किया है

"मेरे अहिंसा के सिद्धान्त में एक तीव्र शक्ति है। इसमें कायरता और दुर्बलता को कोई स्थान नहीं है। एक हिंसक व्यक्ति कभी अहिंसक हो सकता है पर एक कायर व्यक्ति से कभी भी ऐसी अपेक्षा नहीं रक्खी जा सकती। अतः मैंने बार-बार कहा है कि यदि हम यह

नहीं जानते कि हम कष्ट सहन करके, यानी अहिंसा-द्वारा, अपने, अपनी माँ-बहना और धार्मिक स्थल की रक्षा कैसे कर सकते हैं तो हमें—यदि हम मनुष्य हैं तो—अपनी रक्षा लडकर करनी चाहिए।" (पृ० ३६५)

गाधीजी की मान्यता क्या थी ?

यह कहने की आवश्यकता नही है कि उक्त आयोग ने अपनी बात के समर्थन मे उपर्युक्त उदधरण देकर 'अहिंसा के अमर शहीद के साथ घोर अन्याय किया है, क्योकि इसने माम छात्रो को शिक्षण-सस्थाओ में सैनिक प्रशिक्षण देने की बात कहा भी नही मानी जो इस अध्याय का मूल उद्देश्य है।

इस समय हमारी चर्चा का मुख्य विषय यह नही है कि हिंसा के इस अमर सेनानी ने राष्ट्र की स्वतन्त्रता और मर्यादा की रक्षा के लिए सैनिक-कार्रवाई को उचित ठहराया या नही। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि गाधीजी की यह दृढ मान्यता थी कि बहादुरों-द्वारा पालन की गयी अहिंसा, जैसा कि उन्होने बतलाया है, न सिर्फ राष्ट्र की आन्तरिक व्यवस्था कायम रखने के लिए सबसे प्रभावकारी और अचूक साधन है, वरन् विदेशी आक्रमण का भी मुकाबला करने के लिए उतना ही प्रभावकारी और अचूक साधन है। यदि उनका वश चला होता तो वे सेना और पुलिस की व्यवस्था में भी क्रान्तिकारी सुधार करते। एक अहिंसक व्यवस्था में बाह्य आक्रमण का मुकाबला करने के लिए वे छोटी सी सेना रखने के पक्ष का समर्थन करते, दूसरी ओर लोगो का सगठन अहिंसक सुरक्षा के लिए तैयार करते। 'महात्मा गाधी दी लास्ट फेज। (पृष्ठ २२२)

गाधीजी ने निश्चित ही महसूस किया होगा कि भारत के भावी ससद को पूर्ण आजादी के बाद सेना और पुलिस की आवश्यकता होगी, पर उनकी लेखनी और भाषणा में इस बात की कभी शब्द भी नही मिलती कि गाधीजी शिक्षण-सस्थाओ में सैनिक शिक्षण के समर्थक थे।

गाधीजी निश्चित ही इस विचारधारा के थे कि हमारे शिक्षण में सैनिक शिक्षा को कोई स्थान नही है और छात्रों की शारीरिक शक्ति का उपयोग ऐसे हिंसक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए नहीं होना चाहिए। (३० १२-३६)। गाधीजी सी० ए० बी० के उस प्रस्ताव से काफी खिन्न हुए थे जिसमे शिक्षण-सस्थाओ में सैनिक शिक्षा का समर्थन किया गया था। उनके लिए 'शस्त्र किसी व्यक्ति की लाचारी के प्रतीक हैं शक्ति के नही।" पर गाधीजी की आँखें शरीर की आवश्यकताओ के प्रति बन्द नही थी। वे इस बात पर काफी जोर देते थे कि छात्रो को अपने स्वास्थ्य का भी उचित ध्यान रखना चाहिए और इसके लिए उन्हें आवश्यक व्यायाम नियमित करना चाहिए क्योकि शरीर ऐसी चीज नही है जिसे फेंक दिया जाय। इसकी सुरक्षा करनी चाहिए, इसे स्वस्थ्य और सन्तुलित रखना चाहिए (३-९-२८)। इसके लिए उन्होंने प्राणायाम की भारतीय पद्धति पर विशेष जोर दिया है।

महिलाएँ और सैनिक-शिक्षण

शिक्षा शास्त्री एवम् मनोवैज्ञानिक इस तथ्य में विश्वास रखते हैं कि बालको और बालिकाओ की शारीरिक बनावट, मानसिक बनावट, सामाजिक अभिरुचि और जीवन के उद्देश्यो में मौलिक भिन्नता होती है जो जीवन में विकास के विभिन्न स्तरो पर देखी जाती है। गाधीजी ने भी लिखा है कि महिलाओ और पुरुषो का दरजा बराबरी का है, पर वे एक जैसे नही हैं। वे ऐसे युगल हैं जो सदा एक दूसरे की सहायता करते रहते हैं। हर एक दूसरे की सहायता इस प्रकार करता है, जिससे एक के बिना दूसरे की सत्ता के बारे में सोचा ही न जा सके। महिलाओ का क्षेत्र घर, शिक्षण और शिशुपालन है। वे प्रेम और सेवा की जीती जागती मूर्ति हैं। वास्तव में वे पूरी जाति की माँ है। विश्वविद्यालय आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ ३९२ पर महिलाओ को इन विशेष गुणो के लिए सराहा है। उनका मानना है कि, 'शिक्षित एवम् सद्विचारोवाली माँ, जो अपने बच्चो के साथ रहती है इस दुनिया की सर्वोत्तम अध्यापिका है, जिसके साथ आचरण और बुद्धि दोनो चलने हैं। बिना सुशिक्षित महिलाओ के सुशिक्षित समाज की रचना ही नही हो सकती।" पर अपनी इस रिपोर्ट में विश्वविद्यालय-आयोग ने यह कही नही कहा है कि महिलाओ को एन० सी० सी० का प्रशिक्षण नही देना चाहिए। वास्तव में यह अपमान जनक है और इससे हमारी प्राचीन परम्पराओ की अवहेलना होती है। क्योकि इसके अनुसार हम अपने स्कूल और कालेजो में बालिकाओ की तैयारी सैनिक प्रशिक्षण-

द्वारा कराना चाहते हैं, जिसके लिए वे शारीरिक एवम् मानसिक बनावट की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

दार्शनिक जे० कृष्णमूर्ति का मत

प्रसिद्ध दार्शनिक एवम् तत्ववेत्ता जे० कृष्णमूर्ति से पूछा गया कि "क्या शिक्षा में सैनिक शिक्षण का कोई स्थान है?" इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"यह सारा का सारा इस बात पर निर्भर है कि आखिर हम अपने बालकों का कैसा निर्माण करना चाहते हैं। यदि हम उन्हें कुशल हत्यारा बनाना चाहते हैं तो उन्हें सैनिक प्रशिक्षण देना आवश्यक है। यदि हम उन्हें आज्ञापालक बनाना और उनके मस्तिष्क को जड़वत करना चाहते हैं, यदि हम उन्हें राष्ट्रवादी बनाना चाहते हैं—अर्थात् सारे समाज के प्रति गैर जिम्मेदार बनाना चाहते हैं—तब सैनिक-प्रशिक्षण उनके लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा। यदि हम मौत और बरबादी चाहते हैं तो निश्चित ही सैनिक-प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है। यदि हम इसलिए जीवित हैं कि हमारे अन्दर मतभेद संघर्ष चलते रहे, तब यह आवश्यक है, सैनिकों की संख्या और भी बढ़ा दी जाय, राजनीतिज्ञों की संख्या बढ़ा दी जाय और शत्रुता को बढ़ावा दिया जाय। आज वास्तव में यही हो रहा है। आधुनिक सभ्यता हिंसा पर आधारित है। अत यह मौत को बुलावा दे रही है। जबतक हम शक्ति की उपासना करते रहेंगे, हिंसा ही हमारे व्यवहार का अंग बनेगी। पर यदि हम शान्ति चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि लोगों के बीच स्वस्थ पारस्परिक सम्बन्धों का विकास हो—चाहे वे ईसाई हों या हिन्दू हों या रूसी हों या अमेरिकन हों, यदि हम अपने बालकों का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं तो सैनिक प्रशिक्षण हमारे मार्ग में सबसे बड़ा बाधक तत्व सिद्ध होगा।"

आइस्टाइन तथा जानडेवी की राय

हमारे राष्ट्र में सैनिक विचारधारा को पोषण देनेवाले चन्द राजनीतिक नेता स्कूलों और कालेजों में सैनिक-प्रशिक्षण का समर्थन करते हैं। हमारा वक्तव्य है कि उन्हें हम उन शब्दों को याद दिला दें जो इस युग के महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टाइन ने कहा है, 'अनिवार्य सैनिक-सेवा मुझे वैयक्तिक गरिमा का सबसे अपमान-जनक लक्षण-जैसा लगता है जिसमें व्यक्तिगत मर्यादा की कमी झलकती है, जिससे आज सारी की सारी मानवता पीड़ित है।"

डाक्टर जान डेवी ने कहा है कि 'सैनिक प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य ऐसा मानस तैयार करना है जो सैनिकवाद और युद्ध का समर्थन करे। यह भ्रामक मूल्यों के निर्माण की दिशा में सबसे शक्तिशाली प्रभाव पैदा करनेवाली शक्ति है।"

आइस्टाइन महान सैनिक-व्यवस्था से ही घृणा करते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आइडियाज ऐण्ड ओपीनियन्स' में लिखा है—'कोई भी व्यक्ति सैनिक परेड में चार-चार की कतारों में सैनिक-धुनों के साथ मार्च करते हुए आनन्द का अनुभव कर सकता है पर यह विचार मात्र ही मेरे मन में उस व्यक्ति के विरुद्ध घृणा के भाव भर देता है। ऐसा लगता है मानो उसे भूल से मस्तिष्क प्रदान कर दिया गया है। उसके लिए सुषुम्ना ही काफी था। सभ्यता के नाम पर लदा हुआ यह कलंक सारी की सारी शक्ति लगाकर मिटा दिया जाना चाहिए। सेना के साथ देश-भक्ति के भाव, निरर्थक हिंसा और ऐसी घृणास्पद बद-तमीजियाँ जो देशभक्ति के नाम पर चलती हैं उनसे मैं बुरी तरह से घृणा करता हूँ। मुझे युद्ध कितना घृणास्पद और बुरा प्रतीत होता है? मैं इस घृणास्पद कार्य-व्यापार में हिस्सा लेने की अपेक्षा टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाना अधिक पसन्द करूँगा। मानव जाति के प्रति मेरी आस्था इतनी दृढ़ रही है कि यह मेरा विश्वास बन गया है कि यदि स्कूल और समाचार पत्रों के माध्यम से व्यापारिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिए लोगों की विवेक-क्षमता नष्ट न कर दी गयी होती तो इस युद्ध रूपी दानव का सफाया कब का हो चुका होता।'

अमेरिका के श्री डब्लू० एच० करी, जो सेन्टर फार दी स्टडी आव डिमाक्रैटिक इंस्टिट्यूट में हैं उन्होंने अपने एक भाषण में कहा कि विश्वविद्यालय के कुछ विभाग पेन्टागान के प्रमाद से इतने अधिक तंग आ गये हैं जिससे वे बहुत-सी सैनिक शोध प्रयोगशालाओं को बन्द कर देना चाहते हैं, और शीतयुद्ध के पक्ष में की गयी अपनी सभी प्रतिज्ञाओं को तोड़ देना चाहते हैं, ताकि वे समाज को उच्च शिक्षण के उद्देश्यों से परिचित करा सकें।

शिकागो विश्वविद्यालय का निर्णय

आज अमेरिकी विश्वविद्यालयों में जो प्रवृत्ति चल रही है उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिक्षण के माग से सैनिकवाद को कैसे निकाल फेंका जाय। न्यूयार्क टाइम्स ने ६ जून १९६३ के अपने अंक में एक सवाद प्रसारित किया, जिसके अनुसार यह सूचना दी गयी कि शिकागो विश्वविद्यालय ने, जो 'अणुबम का जन्मस्थान' माना जाता है अपने यहां सारे के सारे शोध कार्य बन्द कर दिये हैं। उस विश्वविद्यालय के सैनिक शोधशाला के प्रधान ने यह घोषित किया कि १ सितम्बर से उनके विश्वविद्यालय में होनेवाले सैनिक शोधकाय समाप्त कर दिये जायेंगे और शोधशालाएँ बन्द कर दी जायेंगी। उन्होंने यह भी सूचित किया है कि ऐसा इसलिए किया गया है कि उक्त विश्वविद्यालय के उस विभाग को अणुबम का निर्माण और विकास करने के लिए उनकी अन्तरात्मा उन्हें कोसती रहती है।

'लूशियन एम० बिम्बर मैन, जो असोशिएट डाइरेक्टर आव लेबोरेटरीज आव अप्लाइड साइंस के वैज्ञानिक और सैनिक यूनिट के प्रधान हैं उन्होंने कहा है कि अणु-शक्ति और अणुबम के विकास में स्कूलों का भाग लेना इस राष्ट्र की नैतिकता के लिए इतना बड़ा कलंक है, जिसे अभीतक यह राष्ट्र नहीं धो पाया है।'

विनोबा जी का विकल्प

विनोबाजी ने हमारे राष्ट्र के समक्ष शान्तिसेना का विकल्प रक्खा है। यदि यह कार्यक्रम स्कूलों और कालेजों में निष्ठापूर्वक चलाया गया तो वास्तव में यह आत्म अनुशासन निर्भीकता और सेवा की दिशा में क्रान्तिकारी कदम सिद्ध होगा। इस योजना का उद्देश्य बालकों में सैनिकों का अदम्य उत्साह बिना उसकी पाशविक वृत्तियों को पोषण दिये, जागृत करना है। इसके पीछे कर्तव्य परायणता की वह उच्च विचारधारा है, जो अपने जान की भी बाजी लगाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर बढ़ना चाहती है, जिसके लिए विध्वंसक शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। इस कार्यक्रम में रचनात्मक प्रेम और करुणा-जैसे दो गुणों पर बल दिया गया है, जो हमारे राष्ट्रपति के अनुसार विश्व का तनाव कम करने और उसे अच्छी हालत में ला सकने के लिए अत्यावश्यक है। (आन्ध्र महिला सभा में २७ मई '६२ को दिये गये भाषण से) शान्तिसेना का नैतिक आधार तलवार नहीं, वरन् निस्वार्थ सेवा है। शान्तिसैनिकों को शारीरिक सुरक्षा, साहस निर्भीकता और आत्मनियंत्रण का प्रशिक्षण दिया जाता है।

सिर्फ इसलिए कि जो कुछ भी मैंने लिखा है उसका गलत अर्थ न लगाया जाय, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैंने जो तर्क ऊपर पेश किया है, सेना या सैनिक प्रशिक्षण देनेवाली उन विशेष संस्थाओं के लिए नहीं है जो सुरक्षा मंत्रालय-द्वारा संचालित है और जहाँ युवकों को सैनिक सेवाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। हम अपने शिक्षण संस्थानों में अपने युवकों को निर्भीकता, स्वातंत्र्य और शान्तिमय ढंग से जीने की कला का शिक्षण पूरा करा दें, तत्पश्चात हम अपने युवकों और उनके अभिभावकों को इस बात की पूरी छूट देंगे कि राष्ट्र पर आये किसी राष्ट्रीय संकट का मुकाबिला करने की सुरक्षात्मक कारवाइयों के लिए अपने को सन्नद्ध रखें। यह एक राजनीतिक समस्या है जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है पर एक शिक्षाशास्त्री के नाते मैं शिक्षण जगत में सैनिक शिक्षा के परिणामों से डरता हूँ। –अनु० गुरुदत्त

जवानी का जोश और दिशाबोध की समस्या

•

प्रो० वच्चन पाठक

प्राध्यापक
जमशेदपुर वीमेंस कालेज, जमशेदपुर,

आज हमारा देश संक्रान्ति-काल से गुजर रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक वर्ग में असन्तोष के बादल छाये हुए हैं। समस्याएँ प्रतिदिन सुरसा की भाँति मुँह फैलाती जा रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी समस्याएँ विश्व-रूप धारण कर चुकी हैं।

आज हमारे सामने तालीम की पद्धति का प्रश्न गौण बनता जा रहा है। छात्र-वर्ग में उभरनेवाला असन्तोष और उसमें पैदा होनेवाली अनुशासनहीनता इतनी व्यापक हो गयी है कि राष्ट्र का मानस इससे भयाक्रान्त है। जिम्मेवार क्षेत्रों से भी आवाज आ रही है कि अगर अनुशासनहीनता और हिंसात्मक काण्ड बढ़ते गये, तो अनिश्चितकाल के लिए देश के शिक्षालयों को बन्द कर देना होगा।

पिछले दिनों बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल और कश्मीर आदि में छात्रों-द्वारा या उनके नाम पर जो कुकाण्ड हुए, कोई भी जिम्मेवार व्यक्ति उनका समर्थन नहीं कर सकता। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में हमारे प्रशासकों, शिक्षाविदों एवं विरोधी नेताओं ने अनेक बातें कही हैं, जिनमें से काफी परस्पर विरोधी हैं। मेरी विनम्र सम्मति में इन लोगों ने समस्या का वास्तविक समाधान करने के बदले एक-दूसरे पर दोषारोपण करने की अधिक चेष्टा की है। फलस्वरूप सारी तकरीरें मात्र मानसिक व्यायाम होकर अरचनात्मक हो गयी हैं।

विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों ने अपनी एक विशेष गोष्ठी में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक विशेष सुरक्षा दल (स्पेशल सेक्युरिटी फोर्स) रहे।

इस गोष्ठी पर अपनी टिप्पणी देते हुए कतिपय विरोधी नेताओं ने कहा है कि यह इस बात का सूचक है कि हमारी सरकार तानाशाही और फासिज्म की ओर बढ़ रही है। कुछ शिक्षाविदों और सम्पादकों ने अपनी विज्ञप्तियों में कहा है कि विश्व के लोकतंत्र के इतिहास में यह पहला मौका होगा जब छात्रों का अनुशासन गुरुओं के हाथ से निकालकर सेना या पुलिस के हाथों में दे दिया जायगा।

इन पंक्तियों के लेखक को एक राज्य मंत्री ने बताया कि वास्तव में छात्रों में असन्तोष नहीं है, यह विरोधी दलों और अराष्ट्रीय तत्वों की शरारत है। आम चुनाव के ठीक पहले ये देश में अराजकता का वातावरण उपस्थित करना चाहते हैं। छात्रों को उकसाने से उन्हें कई लाभ होंगे। ये किशोर अपना भला बुरा नहीं समझते। तोड़-फोड़ और हो-हल्ला में इनका लग जाना स्वाभाविक है। शक्ति प्रयोग करने पर इनके अभिभावक और हितैषी सरकार के विरोधी होंगे। सबसे बड़ी बात यह है कि मजदूरों की हड़ताल कुछ दिनों तक ही चल सकती है, क्योंकि उनके साथ रोजी-रोटी और पेट की समस्या है। पर छात्रों के रूप में विरोधी दलों को मुफ्त के वालंटियर मिल जाते हैं।

उड़ीसा में गठित एक जाँच-आयोग के सदस्य ने, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे दलों की भर्त्सना की है।

समस्या का स्वरूप

विचारों के इस अम्बार में वास्तविक समस्या लुप्त-सी होती दिखाई देती है। वस्तुतः यह एक राष्ट्रीय समस्या है और इसका समाधान छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों, प्रशासकों आदि के सहयोग से ही सम्भव है।

शिकागो विश्वविद्यालय का निर्णय

आज अमेरिकी विश्वविद्यालयों में जो प्रवृत्ति चल रही है उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिक्षण के मार्ग से सैनिकवाद को कैसे निकाल फेंका जाय। न्ययार्क टाइम्स ने ६ जून, १९६३ के अपने अंक में एक सम्वाद प्रकाशित किया, जिसके अनुसार यह सूचना दी गयी कि शिकागो विश्वविद्यालय ने, जो "अणुबम का जन्मस्थान" माना जाता है, अपने यहाँ सारे के सारे शोध-कार्य बन्द कर दिये हैं। उस विश्वविद्यालय के सैनिक-शोधशाला के प्रधान ने यह घोषित किया कि १ सितम्बर से उनके विश्वविद्यालय में होनेवाले सैनिक शोधकार्य समाप्त कर दिये जायेंगे और शोधशालाएँ बन्द कर दी जायेंगी। उन्होंने यह भी सूचित किया है कि ऐसा इसलिए किया गया है कि उक्त विश्वविद्यालय के उस विभाग को अणुबम का निर्माण और विकास करने के लिए उनकी अन्तरात्मा उन्हें कोसती रहती है।

लूसियन एम० विम्बर मैन, जो 'असोशिएट डाइरेक्टर आव लेबोरेटरीज आव अप्लाइड साइंस' के वैज्ञानिक और सैनिक यूनिट के प्रधान हैं, उन्होंने कहा है कि "अणु-शक्ति और अणुबम के विकास में स्कूलों का भाग लेना इस राष्ट्र की नैतिकता के लिए इतना बड़ा कलंक है, जिसे अभीतक यह राष्ट्र नहीं धो पाया है।"

विनोबा जी का विकल्प

विनोबाजी ने हमारे राष्ट्र के समक्ष शान्तिसेना का विकल्प रक्खा है। यदि यह कार्यक्रम स्कूलों और कालेजों में निष्ठापूर्वक चलाया गया तो वास्तव में यह आत्म-अनुशासन, निर्भीकता और सेवा की दिशा में क्रान्तिकारी कदम सिद्ध होगा। इस योजना का उद्देश्य बालकों में सैनिकों का अदम्य उत्साह, बिना उनकी पाशविक वृत्तियों को पोषण दिये, जागृत करना है। इसके पीछे कर्तव्य-परायणता की वह उच्च विचारधारा है, जो अपने जान की भी बाजी लगाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर बढ़ना चाहती है, जिसके लिए विध्वंसक शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। इस कार्यक्रम में रचनात्मक प्रेम और करुणा-जैसे दो गुणों पर बल दिया गया है, जो हमारे राष्ट्रपति के अनुसार विश्व का तनाव कम करने और उसे अच्छी हालत में ला सकने के लिए अत्यावश्यक है। (आन्ध्र महिला सभा में २७ मई, '६२ को दिये गये भाषण से) शान्तिसेना का नैतिक आधार तलवार नहीं, वरन् निस्वार्थ सेवा है। शान्तिसैनिकों को शारीरिक सुरक्षा, साहस, निर्भीकता और आत्मनियंत्रण का प्रशिक्षण दिया जाता है।

सिर्फ इसलिए कि जो कुछ भी मैंने लिखा है उसका गलत अर्थ न लगाया जाय, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैंने जो तर्क ऊपर पेश किया है, सेना या सैनिक-प्रशिक्षण देनेवाली उन विशेष संस्थाओं के लिए नहीं है जो सुरक्षा-मंत्रालय-द्वारा संचालित हैं और जहाँ युवकों को सैनिक-सेवाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। हम अपने शिक्षण संस्थानों में अपने युवकों को निर्भीकता, स्वातंत्र्य और शान्तिमय ढंग से जीने की कला का शिक्षण पूरा करा दें, तत्पश्चात हम अपने युवकों और उनके अभिभावकों को इस बात की पूरी छूट देंगे कि राष्ट्र पर आये किसी राष्ट्रीय संकट का मुकाबिला करने की सुरक्षात्मक कार्रवाइयों के लिए अपने को सन्नद्ध रखें। यह एक राजनीतिक समस्या है, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है पर एक शिक्षाशास्त्री के नाते मैं शिक्षण-जगत में सैनिक शिक्षा के परिणामों से डरता हूँ। —अनु०-गुरुदत्त

छात्र-आन्दोलन : एक विश्लेषण

•

त्रिलोकचन्द

आचार्य, लोकभारती, शिवदासपुरा, जयपुर

छात्र-आन्दोलनों और उनसे उत्पन्न हिंसक तथा असामाजिक कार्यवाहियों को लेकर आज सारा देश चिन्तित हो उठा है। राष्ट्रपति व प्रधान मन्त्री से लेकर सामान्य नागरिक तक पिछले महीनों में एक के बाद एक होनेवाली घटनाओं से अत्यन्त दुखी हैं। छात्रों और पुलिस के संघर्ष ने देश में हर समझदार नागरिक के मानस को झकझोर दिया है। सन् ६६ के नव सत्र से—जब से कालेज स्कूल खुले हैं विद्यार्थी जगत उपद्रवों के प्रवाह से प्रभावित है और सामान्यतः कोई राज्य ऐसा नहीं बचा है जो छात्र-आन्दोलन से अछूता हो। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, मध्यप्रदेश, बंगाल, बिहार इत्यादि स्थान आज भी उपद्रव ग्रस्त क्षेत्र हैं। यहां के कई विद्यालयों को अनिश्चित काल के लिए बन्द कर देना पड़ा है। क्या राजनेता, क्या पुलिस अफसर और अभिभावक सब ही हैरान, निराश एवं निरुपाय से दिखाई पड़ रहे हैं। क्योंकि छात्रों की दुनिया एक ऐसा क्षेत्र है जिसपर अत्यन्त क्रोध आने पर भी कुछ नहीं किया जा सकता है। किसी भी निर्णय के क्रियान्वयन में हृदयगत करुणा मानसिक निर्णयों पर छा जाती है। किसी ने छात्र आन्दोलन को युवा विद्रोह की संज्ञा दी है और इन उपद्रवों का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से जोड़ा है। किसी ने इसे जन-आन्दोलन पुकारा है। किसी ने इसे आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की स्वाभाविक फलश्रुति बताया है जो युवकों के जरिये फूट पड़ी है और भावी घटनाओं की ओर संकेत करती है। एक दृष्टिकोण यह भी है कि ये सब घटनाएँ वामपक्ष साम्यवादी दल द्वारा प्रेरित तोड़फोड़ वादी कार्यवाहियों की शृंखला की कड़ियाँ हैं।

शिक्षा नीति असफल

आज के छात्र-आन्दोलन को कुछ भी रूप दिया जाय और किसी भी परिप्रेक्ष्य में समझा जाय—तो भी दो निर्णय तो स्पष्ट ही हैं कि देश की शिक्षानीति और पद्धति सर्वथा असफल रहा है। दूसरी तरफ माँ-बाप की अनिवार्य शिक्षा भी छात्रों में अनुशासनशीलता, शिक्षकों के प्रति सम्मान एवं लोकतन्त्र के संस्कार संचार करने में एकदम असमर्थ सिद्ध हुई है। ये आन्दोलन अबतक की शिक्षा-नीतियों और कार्यक्रमों के शर्मनाक परिणाम हैं। स्वाधीनता के युग में पैदा हुआ बालक १८ वर्ष का हो गया है। वह स्वाधीन भारत में प्रचलित शिक्षा के वातावरण एवं शिक्षा-द्वारा प्रदत्त संस्कार लेकर समीक्षा एवं मूल्यांकन के लिए सार्वजनिक जाँच परीक्षा में खड़ा है।

नैतिक साहस का अभाव

यह गम्भीरता से सोचने की बात है कि छात्र-वर्ग जब पैंतरा बदलता है तो गुरु अपनी मर्यादा को भूलकर अपने विद्या मन्दिर की सुरक्षा के लिए पुलिस को टेलीफोन करता है। उसको अपनी नैतिक शक्ति, मेधा शक्ति, चारित्र्य शक्ति और छात्रों के प्रति प्रेम शक्ति की अपेक्षा पुलिस की बन्दूक पर विश्वास ज्यादा है। दूसरी ओर स्वयं पिता अपने लड़के को किसी समूह के साथ सड़क पर आते देखकर दुकान बन्द कर देता है, दफ्तर की खिड़कियां बन्द हो जाती हैं, बस का ड्राइवर बस का रास्ता बदल देता है। सिनेमाघर बन्द हो जाते हैं। अभिभावक और पालक विद्यालय में भेजकर अपने बालकों से इतना डरते हैं कि उनका सामना करने का साहस ही खो देते हैं। मनौती मनाते हैं कि यह आफत भरा तूफान सकुशल टल जाय। शिक्षक और पालक दोनों ही बालकों को सामाजिक एवं सुसंस्कृत बनाने की

आजकल उच्च शिक्षा का अर्थ कालेज की शिक्षा से समझा जाता है। प्रत्येक अभिभावक यह चाहता है कि उनके बच्चे अधिक-से-अधिक शिक्षा प्राप्त करें। यह शिक्षा ज्ञान-प्राप्ति के लिए नहीं, अपितु नौकरी-प्राप्ति के लिए आवश्यक समझी जाती है। देश में जिस अनुपात में उच्च शिक्षित (कालेज उत्पादित) बढ़ रहे हैं, उस अनुपात में नौकरियाँ नहीं बढ़ती। ये कला-स्नातक नौकरियों में भी क्लर्कगीरी के ही उपयुक्त होते हैं, क्योंकि किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण इन्हें नहीं मिला रहता। फलस्वरूप जब कालेजों में पढ़नेवाले छात्र बेरोजगार स्नातकों को देखते हैं तो उनके मन में असन्तोष और विद्रोह की भावना जगती है। भारत-जैसे राष्ट्र में छोटी-मोटी घटनाएँ तो होती ही रहती हैं, विरोधी नेताओं की सामयिक टिप्पणियाँ आग में घी का काम करती हैं और आन्दोलन छिड़ जाता है।

कुछ रचनात्मक सुझाव

- आजकल अपने नाम पर कालेज और विश्वविद्यालय खोलना आम रिवाज बनता जा रहा है। इसे रोका जाय। अनिवार्य शिक्षा के बाद अधिकांश छात्रों को तकनीकी और कृषि-ज्ञान दिलाया जाय तथा कुछ बहुत ही प्रतिभाशाली छात्रों को राजकीय खर्च से उच्च शिक्षा दी जाय। चुनाव में जो छात्र नहीं आयेंगे, वे स्वतः शिक्षा की भीड़ से बच जायेंगे। किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि किसी भी प्रकार की 'बैकडोर' व्यवस्था इसमें घातक होगी।
- शिक्षकों का सम्मान हो। यह ठीक है कि शिक्षक राजनीति में क्रियाशील न हों, पर यह भी उचित है कि शिक्षा के सम्बन्ध में कोई राजनेता या विरोधी पक्ष का सदस्य उत्पात खड़ा न किया करे। सभी पक्षों के राजनीति दलवाले एक 'आचार-संहिता' बनायें, जिसमें किसी भी राजनीतिक-उद्देश्य के लिए छात्रों का प्रयोग निषिद्ध माना जाय।
- शिक्षक प्रतिनिधियों की काफी संख्या विधान-परिषदों में रहे। यह नियम बनाया जाय कि शिक्षक प्रतिनिधि केवल शिक्षक ही हो सकते हैं, कोई पेशेवर नेता नहीं। इस व्यवस्था से जहाँ शिक्षक सरकार को उचित परामर्श दे सकेंगे, अधिकार-प्राप्ति के लिए राजनीति के आकर्षण से भी बच सकेंगे।
- अभिभावकों और नेताओं को शपथ लेनी होगी कि वे कभी भी अनुचित सिफारिश के लिए किसी शिक्षक के यहाँ नहीं जायेंगे। पास कराने के लिए, प्रवेश दिलाने के लिए या बहुत अच्छा प्रमाणपत्र दिलाने के लिए सिफारिश करना एक राष्ट्रीय अपराध है।
- सामाजिक मूल्यों को बदलना होगा। आज के विद्यार्थी जितना नेताओं और अभिनेताओं से प्रभावित होते हैं, उतना और किसी से नहीं। वे जब देखते हैं कि बिना पढ़े और बिना संयमी बने ही ये नेता और अभिनेता सफलता की चोटी पर चढ़े हुए हैं तो वे भी उनका अनुकरण करने लग जाते हैं।
- स्कूलों में शिक्षकों और छात्रों का प्रत्यक्ष सम्पर्क रहे। इसके लिए आवासिक विद्यालयों की स्थापना हो। छात्रों को प्रारम्भ से ही जिम्मेवारी के काम दिये जायें, शिक्षा में सांस्कृतिक, धार्मिक और मानवीय अंश बढ़ा दिये जायें। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम धर्म-निरपेक्षता को अधार्मिकता का पर्याय समझने लगे हैं।
- शिक्षकों, प्राध्यापकों और उपकुलपतियों के अधिकार बढ़ा दिये जायें। वर्तमान कानून में भी संशोधन करना पड़ेगा। आजकल शिक्षालयों के निर्णयों को प्रायः अदालतों में चुनौती दे दी जाती है, इसलिए भी निर्भीक होकर शिक्षक अपना काम नहीं कर पाते।

अन्त में मैं कहूँगा कि जवानी में उबाल तो आता ही है, पर उसके दिशा-निर्देशन के लिए समाज को सजग रहना पड़ेगा। ●

छात्र-आन्दोलन : एक विश्लेषण

•

त्रिलोकचन्द

आचार्य, लोकभारती, शिवदासपुरा, जयपुर

छात्र-आन्दोलनों और उनमें उत्पन्न हिंसक तथा असामाजिक कार्यवाइयों को लेकर आज सारा देश चिन्तित हो उठा है। राष्ट्रपति व प्रधान मंत्री से लेकर सामान्य नागरिक तक पिछले महीनों में एक के बाद एक होनेवाली घटनाओं से अत्यन्त दुखी हैं। छात्रों और पुलिस के संघर्ष ने देश के हर समझदार नागरिक के मानस को झकझोर दिया है। सन् ६६ के नये सत्र में जब से कालेज स्कूल खुले हैं, विद्यार्थी-जगत उपद्रवों के प्रवाह से प्रभावित है और सामान्यतः कोई राज्य ऐसा नहीं बचा है जो छात्र-आन्दोलन से अछूता हो। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, मध्यप्रदेश बंगाल, बिहार इत्यादि स्थान आज भी उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्र हैं। यहां के कई विद्यालयों को अनिश्चित काल के लिए बन्द कर देना पड़ा है। क्या राजनेता, क्या पुलिस, अफसर और अभिभावक, सब ही दुखी, निराश एवं निरुपाय-से दिखाई पड़ रहे हैं। क्योंकि छात्रों की दुनिया एक ऐसा क्षेत्र है, जिसपर अत्यन्त क्रोध आने पर भी कुछ नहीं किया जा सकता है। किसी भी निर्णय के कार्यान्वयन में हृदयगत करुणा मानसिक निर्णयों पर छा जाती है। किसी ने छात्र-आन्दोलन को युवा-विद्रोह की संज्ञा दी है और इन उपद्रवों का सम्बन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से जोड़ा है। किसी ने इसे जन-आन्दोलन पुकारा है। किसी ने इसे आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की स्वाभाविक फलश्रुति बताया है, जो युवकों के जरिये फूट पड़ी है और भावी घटनाओं की ओर संकेत करती है। एक दृष्टिकोण यह भी है कि ये सब घटनाएँ वामपक्ष साम्यवादी दल-द्वारा प्रेरित तोड़-फोड़ वाली कार्यवाइयों की शृंखला की कड़ियाँ हैं।

शिक्षा-नीति असफल

आज के छात्र-आन्दोलन को कुछ भी रूप दिया जाय और किसी भी परिप्रेक्ष्य में समझा जाय—तो भी दो निर्णय तो स्पष्ट ही हैं कि देश की शिक्षानीति और पद्धति सर्वथा असफल रही है। दूसरी एन सी सी की अनिवार्य शिक्षा भी छात्रों में अनुशासनशीलता शिक्षकों के प्रति सम्मान एवं लोकतन्त्र के संस्कार-संचार करने में एकदम असमर्थ सिद्ध हुई है। ये आन्दोलन अबतक की शिक्षा-नीतियों और कार्यक्रमों के शर्मनाक परिणाम हैं। स्वाधीनता के युग में पैदा हुआ बालक १८ वर्ष का हो गया है। वह स्वाधीन भारत में प्रचलित शिक्षा के वातावरण एवं शिक्षा-द्वारा प्रदत्त संस्कार लेकर समीक्षा एवं मूल्यांकन के लिए सार्वजनिक जाँच-परीक्षा में खड़ा है।

नैतिक साहस का अभाव

यह गम्भीरता से सोचने की बात है कि छात्र-वर्ग जब पैंतरा बदलता है तो गुरु अपनी मर्यादा को भूलकर अपने विद्या-मन्दिर की सुरक्षा के लिए पुलिस को टेलीफोन करता है। उसका अपनी नैतिक शक्ति, मेधा शक्ति, चारित्र्य शक्ति और छात्रों के प्रति प्रेम-शक्ति की अपेक्षा पुलिस की बन्दूक पर विश्वास जा टिका है। दूसरी ओर स्वयं पिता अपने लड़के को किसी समूह के साथ सड़क पर आते देखकर दुकान बन्द कर देता है, दफ्तर की खिड़कियाँ बन्द हो जाती हैं, बस का ड्राइवर बस का रास्ता बदल देता है। सिनेमाघर बन्द हो जाते हैं। अभिभावक और पालक विद्यालय में भेजकर अपने बालकों से इतना डरते हैं कि उनका सामना करने का साहस ही खो देते हैं। मनौती मनाते हैं कि यह आफत-भरा तूफान सकुशल टल जाय। शिक्षक और पालक दोनों ही बालकों को सामाजिक एवं संस्कृत बनाने की

वाला बन जाता है जो कभी बस से टकराता है रेल की पटरियों से टकराता है पेट्रोल के पम्प से भिड़ता है और शीघ्र ही पुलिस के संघर्ष में खड़ा हो जाता है। समाज तथा जीवन के प्रति उसमें जो नकारात्मक एवं अभावात्मक दृष्टिकोण विकसित हो जाता है छात्र उपद्रवों में हिंसक कार्यवाइयाँ उसके परिणाम हैं।

शिक्षकों की स्थिति

आज शिक्षा जगत में विधायक चिन्तन और विधायक कर्तव्य-शक्ति का सर्वथा अभाव है। क्योंकि सारे शिक्षण काल में विधायक कर्तव्य शक्ति के विकास का अवसर ही नहीं मिलता है। यहाँ तक कि आज शिक्षक ही निरुत्साही निराश साहसहीन और असन्तुष्ट दिखाई पड़ते हैं। उनमें समाज के प्रति कोई सम्मान नहीं है। समाज निर्माण के लिए उनके पास न दृष्टिकोण है न समाज-सेवा के लिए उनके पास समय है न इसे वह अपना धर्म समझते हैं। इसीलिए उनका सारा व्यक्तित्व स्नेहहीन एवं रंगविहीन होता है और उनके व्यक्तित्व की परछाई ही छात्रों में परिलक्षित होती है। एक प्रकार से फीके व्यक्तित्ववाले छात्र तैयार होते हैं।

आज शिक्षक स्वहित के लिए संघर्ष करनेवाला पुर्जा बन रहा है। स्वयं आन्दोलनकारी बन रहा है। उसमें नैतिक साहस और अपने कर्तव्य के प्रति जागरूकता का नितान्त अभाव है। यह परिस्थिति का यथार्थ किन्तु कटु विश्लेषण है। उसका कारण है शिक्षक की आर्थिक परिस्थिति एवं शिक्षणालयों में स्वातंत्र्य एवं मुक्त चिन्तन का अभाव। शिक्षा जगत में शिक्षक का नहीं बल्कि अफसरशाही का महत्व है जिसने शिक्षक को केवल मशीन के पुर्जे के रूप में बदल दिया है। वह दफ्तर का शिक्षक मात्र रह गया है। अपने विद्यालय के शिक्षण और कार्यक्रम में उसका अपना न तो कोई अभिक्रम है और न कोई मौलिक सूझ के प्रयोग का अवसर है। उसका काम शिक्षा विभाग के अधिकारियों द्वारा निश्चित की गयी मर्यादाओं कार्यक्रमों एवं आदेशों का पालन करना मात्र रह गया है। अपने चिन्तन एवं मानस शक्ति के विकास का उसे कोई अवसर नहीं है। इसीलिए विद्यालयों के शिक्षाक्रम-सामाजिक सन्दर्भों और दैनन्दिन की समस्याओं और यथार्थ परिस्थितियों से दूर काल्पनिक लोक का चित्रण मात्र रह गये हैं। इसके साथ-साथ शिक्षक आज अविश्वास का पात्र भी बन गया है। उसे शिक्षा-विभाग एक पुर्जा या पत्रिका स्वेच्छा से खरीदने का अधिकार नहीं देना चाहता है। जबकि माता पिता एक विश्वास लेकर बालकों को उसके भरोसे पर उसके पास छोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप धीरे धीरे वह तालाब का बँधा-बँधाया पानी रह गया है जिसमें समय पाकर पानी सूखता रहता है और सड़ाध उत्पन्न हो जाती है। ये आन्दोलनकारी छात्र उसी सड़ाँध की उपज हैं।

अश्लील सिनेमा एवं पोस्टर का प्रसाद

इसके अलावा छात्रों में अराजकता गैर जिम्मेदारी तथा असामाजिक तथा अनैतिक संस्कारों का निर्माण करने के लिए व्यापक पैमाने पर जो लोक शिक्षण चल रहा है वह हमारी सरकार की अदूरदर्शिता एवं अबुद्धिमत्ता का स्पष्ट परिचायक है। सिनेमा तथा उसके अश्लील पोस्टरों-द्वारा जो शिक्षण होता है वह क्लासरूम की पुस्तकों और अध्यापकों के नीरस उपदेशों से नहीं होता है। बालक कोमल वृत्तियों और भावनाओंवाला होता है। सिनेमा तथा उनके प्रचारार्थ प्रदर्शित बड़े-बड़े अश्लील पोस्टर बालक की सुकुमार भावनाओं पर हठात आक्रमण करते हैं और प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से बालक के संवेदनशील मानस पर असर डालते हैं। लोक शिक्षण के इस उपक्रम को अखिल भारत साधु समाज के नेता और देश के गृह मंत्री भी—जिनके पास देश के पुलिस विभाग की शक्ति मौजूद है—इसका उपचार करने में निरुपाय हैं। नैतिक एवं भौतिक शक्ति दोनों को एकसाथ लेकर भी इस देश में अश्लील पोस्टरों-द्वारा जो शिक्षण कार्य चल रहा है उसको रोकने में जब गृहमंत्री असमर्थ हैं तो केवल पुलिस अधिकारियों की सभाओं से छात्र-आन्दोलन एवं जायेंगे हिंसक कार्यक्रम पर रोक लग सकेगी यह केवल दिवास्वप्न मात्र है।

स्कूलों और कालेजों को जानेवाली सड़कें इन पोस्टरों की प्रदर्शनियों से सजी हुई रहती हैं। जो युवकों की वेशभूषा खान-पान बातचीत विचार विमर्श चाल-ढाल और दैनिक व्यवहार को अनवरत प्रभावित करती रहती हैं। आप किसी भी विश्वविद्यालय

से ही काम नही चल सकता। सिपाहियो का भी विधायक प्रशिक्षण होना चाहिए, जिससे उनके हृदय और मस्तिष्क का भी विकास हो और सिपाहियो का व्यक्तित्व भी सामजस्यपूर्ण तथा सन्तुलित बन सके।

सगठित तटस्थ शक्ति

शिक्षार्थियो की बिगडती हुई स्थिति तथा मामूली बातो को लेकर जो समय समय पर असन्तोष फैल जाता है, उससे नागरिक शान्ति खतरे में पड जाती है। तथा पुलिस एव छात्रो के मध्य गृहयुद्ध का-सा नजारा उपस्थित हो जाता है। ये आये दिन की घटनाएँ न बन जायें, इसको रोकने के लिए प्रभावकारी उपाय खोजने चाहिएँ। इसके लिए केवल उपकुलपतियो की सभाओ से काम नही चलेगा। शिक्षा-क्षेत्र के हर स्तर पर गोष्ठियाँ होनी चाहिएँ। क्या शिक्षक और क्या शिक्षार्थी सबको इनमें सम्मिलित करना चाहिए। यह मान लेना कि सारा विद्यार्थी-समाज इन उपद्रवो के पीछे होता है, भारी भूल होगी। सामान्य-तया हिंसक उपद्रवो और हडतालो के पीछे दस प्रतिशत विद्यार्थी भी नही होते हैं। केवल कुछ व्यावसायिक तौर से उपद्रव करनेवाले छात्र होते हैं जो सारे विद्यार्थी-समाज को बदनाम कर देते हैं।

विद्यार्थी-समाज में जो शान्त एव तटस्थ रहनेवाली शक्ति है, वह सगठित नही है। जब कभी विद्यालयो में मॉगें प्रस्तुत की जाती हैं, जुलूस निकालने की तैयारी होती है हडताल का नारा बुलन्द किया जाता है तो अध्ययनशील विद्यार्थी इन सबसे कतराते हैं। घर पर दबककर बैठे रहते हैं। वे सही माँग के लिए प्रतिरोध नही करते हैं। उपद्रवी छात्र उन्हे तग करते हैं। रात्रि को घरो पर जाकर, होस्टलो म जाकर पीटने की धमकी देते हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि उपद्रवी छात्र किसी-न किसी राजनीतिक दल से सम्बन्धित होते हैं। अध्ययनशील, समस्या के प्रति सही दृष्टिकोण रखनेवाले विद्यार्थी साहसी नही होते, न वे सगठित होते हैं, हालांकि वे सख्या में अधिक हैं। वे मौन, तटस्थ एव उदासीन रहते हैं। इसीलिए वे उपद्रवो को हिंसात्मक रूप लेने से रोक नहीं सकते हैं, अन्यथा ऐसे तटस्थ विद्यार्थी तर्क एव युक्तिसगत सोचते हैं। तथ्यातथ्य पर विचार करते हैं। अत असामाजिक तत्त्वो को निर्बल एवं प्रभावहीन बनाने के लिए ऐसी तटस्थशक्ति को सगठित किया जा सकता है, जो सारे वातावरण को शालीन एव शान्त रखने में सहायक हो सकती है।

राजनीतिक दलो का दायित्व

इस सिलसिले में राजनीतिक दलो को भी ईमानदारी से आचारसहिता तय करनी होगी कि वे किन कार्यों में शिक्षार्थी समाज की सहायता लें और किन क्षेत्रो से और किन कार्यों से उन्हें दूर रखें। अनवरत सत्ता की दौड में व्यस्त ऐसे राजनीतिक दल जो हर सम्भव तरीके से सत्तारूढ दल को अपदस्थ करने तथा परेशान करने मे व्यस्त हैं उनको यह बात किस रूप मे मान्य होगी? आज का अनुभव कहता है कि आज राजनीतिक दलो म भी, उनके द्वारा मान्य विचारधाराओ एव कार्यक्रमो के प्रशिक्षण का अभाव है। फिर भी आज राष्ट्र का विद्यार्थी-समाज जिस असन्तोष की परिस्थिति से गुजर रहा है, अशान्त एव उद्वेलित है, उसकी समस्या का स्थायी हल खोजना होगा। उसकी विशाल शक्ति का राष्ट्रनिर्माण एव उत्पादन-वृद्धि के कार्य में उपयोग करना होगा, इसके लिए सब दलो के सहयोग से व्यावहारिक योजनाएँ बनानी होगी।

राष्ट्र की आकाक्षा

राष्ट्र की आज तीव्र आकाक्षा है कि शिक्षा की सारी कल्पना एव विचार, समाज के दृष्टिकोण, प्रचलित शिक्षा प्रणाली तथा आयोजन में आमूलचूल परिवर्तन हो। शिक्षा के वर्तमान ढाँचे को समाप्त कर दिया जाय और राष्ट्र की आकाक्षा के अनुकूल एसी नवीन शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया जाय जिसम स्वतन्त्रता, समानता शोषणमुक्ति लोकतन्त्र एव मानवीय एकता के तत्त्व निहित हो, जो युवकों में विधायक शक्ति को जागृत कर सके।

शिक्षण बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण एव सामजस्यपूर्ण विकास कर सके, उसकी अपरमित शक्ति तथा युवा-सुलभ जोश का उपयोग व्यापक पैमाने पर विशाल राष्ट्रीय उत्पादन-योजनाओ में हो सके, तब ही विद्यार्थी-समाज में नवीन वातावरण पैदा होगा। उसी से नवीन सस्कृति का नवविहान होगा। अत आज विद्यार्थी-समाज में सास्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता है। ●

पाते, तो आगे उन्नति की आशा से कालेजों और यूनिवर्सिटियों में बड़ी संख्या में पहुँचते हैं। वहाँ प्रवेश नहीं मिल पाता, वहाँ रहने को होस्टल नहीं मिलता, वहाँ रुचि के अनुकूल विषय नहीं मिलता। एक भी कारण उग्र होता है तो विद्यार्थी अपनी संख्या की अधिकता और संगठन की शक्ति मानकर आन्दोलन, हड़ताल और तोड़-फोड़ पर उतर आते हैं।

सरकार और राष्ट्र से शिक्षा पाने का अधिकार विद्यार्थी को है। यदि वे प्रवेश, छात्रावास, फर्नीचर पुस्तकालय और इस प्रकार की अन्य सुविधाएँ माँगते हैं, तो इस माँग को हम अनुचित कैसे कह सकते हैं ?

इस समस्या का मेरी समझ में एक ही हल है कि शिक्षा में आमूल परिवर्तन किया जाय, उसे उद्योगी और जीवनोपयोगी शिक्षा में परिवर्तित किया जाय, उसमें खेती और लघु उद्योगों की प्रधानता दी जाय, जिससे बिना नौकरी किये भी विद्यार्थी अपना जीवन निर्वाह कर सके। यह फफोला अभी भी कैंसर नहीं बन पाया है, समय रहते इसका इलाज आवश्यक है।

पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव

फैशन में अंग्रेजों की प्रवृत्ति का अनुकरण हमने कर लिया, पाजामे पर बुशर्ट, कोट-पैण्ट पर टोपी कुर्ते के ऊपर हैट, दलकते नितम्बों के नग्न प्रदर्शन के लिए झीने और चुस्त कपड़े पहनना हमने सीख लिया, किन्तु अंग्रेजों की लगातार और अनवरत काम करने की प्रकृति हमने नहीं सीखी। हमारे छात्र-छात्राओं ने विश्राम और मनोरंजन के क्षणों में उनकी तरह खेतों पर जाकर किसानों का हाथ बटाना नहीं सीखा, उनके बादशाहों-द्वारा कोयला झोंकने का काम करने की महत्ता उन्होंने जानकर भी नहीं जानी और खेतों के लिए मलमूत्र इकट्ठा करनेवाले जापानियों के अनुकरण को उन्होंने घृणा की दृष्टि से ही देखा।

तक्षशिला, कुशीनगर, सारनाथ, बोधगया और विक्रमशिला-जैसे शिक्षण-केन्द्रों की स्थापना हमें फिर से करनी होगी। बुद्धि के व्यापार और हृदय के उद्गार को प्रगट करनेवाली परिपदा की प्रतिष्ठा हमें पुनः करनी होगी। बिना इसके त्राण सम्भव नहीं है।

राजनीति की ठेकेदारी

दो हजार वर्षों से भी पूर्व जब सिकन्दर ने देश पर आक्रमण किया और देश की संस्कृति तथा आर्य मर्यादा खतरे में पड़ गयी, तब आचार्य चाणक्य ने तक्षशिला में गुरुपद छोड़ दिया। अपने संरक्षण में उन्होंने दण्डनीति, मन्त्रनीति और कूटनीति में दक्ष किये हुए विद्यार्थियों को प्रदेश के विभिन्न अंचलों में भेज दिया।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता पर जब भी संकट उपस्थित हो विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना अनुचित नहीं है। अंग्रेजी दासता के समय, ४२ के आन्दोलन में और चीन तथा पाकिस्तान की लड़ाई के दिनों में देश का हर नागरिक राजनीति में आ गया हमारे विद्यार्थी भी आये। किन्तु देखा जाता है कि चुनावों में, विद्यार्थियों के स्वयं के आन्दोलनों में और समय-असमय ऐसे राजनीतिक ठेकेदार उत्पन्न हो जाते हैं, जो शिक्षा से विरत करके विद्यार्थियों को निरन्तर गुमराह करते हैं। हमारे भोले भाले विद्यार्थी कभी-कभी उसमें फँस जाते हैं और भयंकर अनुशासनहीनता कर बैठते हैं।

आजकल बहुत से प्राइवेट स्कूल ऐसे खुले हैं, जिसके मैनेजर और अध्यक्ष राजनीति में घुसे हुए हैं और उस विद्यालय को राजनीतिक प्रचार का अखाड़ा बनाये हुए हैं। शिक्षा विभाग और सरकार को उनपर अंकुश लगाना आवश्यक है। विद्यालयों को राजनीति से सर्वथा अलग रखना चाहिए।

समस्या का हल

हम देखते हैं कि इंजीनियरिंग कालेजों, मेडिकल कालेजों और ट्रेनिंग कालेजों में अनुशासन की समस्या प्रायः नहीं के बराबर होती है और होती भी है तो नियन्त्रण से बाहर नहीं जाती। इसका एकमात्र कारण यही है कि यहाँ की शिक्षा एक निर्धारित लक्ष्य और सफल उद्देश्य की दृष्टि से दी जा रही है और इन विद्यालयों में से निकल कर विद्यार्थी जीवन के एक निश्चित मार्ग पर पदार्पण करेंगे। इसी प्रकार यदि प्रत्येक विद्यालय की शिक्षा जीवन का निश्चित मार्ग बता सके, तो अनुशासन की बहुत समस्या स्वयं हल हो जाय।

आज अपने देश में अपनी सरकार है। हम अपनी

वे अपनी और अपने राष्ट्र की सम्पत्ति को क्षति पहुँचा रहे हैं। ऐसा करके उन्हें अवश्य प्रसन्नता न होती होगी। विद्यार्थियों में एक उत्तेजित आवेश होता है। यह वैसा ही जैसे बच्चे माँ से मचलने और रूठने के समय अपना ही कपड़ा फाड़ देते हैं, धरती पर लेटकर अपना ही शरीर गन्दा करते हैं, भूख लगी होने पर भी अपना ही खाना धूल में फेंक देते हैं और समझते हैं कि मैंने माँ को खब हानि पहुँचा दी है। इसलिए उन्हें इस प्रकार के उत्तेजित आवेश से बचाने तथा उनके बीच में अराजक तत्त्वों, राजनीतिक दलों और पुलिसवालों के प्रवेश को रोकने के लिए सरकार को सावधानी से काम लेना चाहिए। उन्हें अपनी ही हानि का ज्ञान नहीं है, यह उनकी बाल-सुलभ मचलनी प्रवृत्ति है, जान बूझकर किया हुआ कोई जघन्य अपराध नहीं, इसके लिए हमें उनको क्षमा करना होगा और अपने ऊपर संयम रखना होगा। अपनी ही हानि करनेवाली प्रच्छन्न भावना से उनको सजग करना होगा।

मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा के प्रति प्रमाद

"मनुष्य मात्र बन्धु हैं, सारी वसुधा हमारा कुटुम्ब है और सारे विश्व को आर्य बना दो' आज से सहस्रों वर्षों पूर्व से यह भारतीय उद्घोष रहा है इसलिए यदि आज अन्तर्राष्ट्रीय हित, सहयोग और एकता के लिए संसार की प्रत्येक भाषा का प्रचलन हमारे देश में किया जाय तो उसपर किसी भी भारतीय को आपत्ति नहीं है, किन्तु अपने भाव और अपने उद्गार अपनी ही भाषा में करते हैं। हमारी माँ हमारे देश की धरती, गाँव और नगर में रहती है और वहीं की भाषा समझती है। यदि उसके सामने हम अंग्रेजी में रोयें और हँसें, तो वह हमें मात्र-पागल समझेगी। राम का मर्यादित आदर्श, कृष्ण की गीता का उपदेश, शंकराचार्य के भाष्य, विवेकानन्द के तत्त्व और ऋषियों की ऋचाएँ जिस संस्कृत और उसकी पुत्री हिन्दी में हमें सुरक्षित भारतीय संस्कृति की थाती के रूप में उपलब्ध हैं, उसे भूलकर हमें शेक्सपियर, मिल्टन शेली और कीट्स की कल्पनाएँ कभी रास न आयेंगी। हम अपनी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं से जितनी ही दूर हो जायेंगे, जितना ही अंग्रेजी में रोने और हँसने का अभ्यास करेंगे, उतना ही हम भावहीन संज्ञाहीन और अनुशासनहीन होते जायेंगे।

एक बार किसी अंग्रेज ने गांधीजी से कहा कि आप, तिलक और गोखले ने अंग्रेजी पढ़कर ही अंग्रेजी दाव-पेंच समझा और देश को स्वतन्त्र करने की ओर अग्रसर हुए, फिर आप क्यों अंग्रेजी को हटाना और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं? गांधी जी ने उत्तर दिया कि तुम्हें क्या पता कि अंग्रेजी को जाननेवाले लाख गांधी, लाख तिलक और लाख गोखले भी उतना नहीं कर सके, जितना मात्र संस्कृत को जाननेवाला अकेला शंकर कर गया है। शंकर से उनका तात्पर्य स्वामी शंकराचार्य से था। अपने देश में अपनी भाषा ही अनुशासन स्थिर रख सकेगी। अंग्रेजी का दुराग्रह छात्रों में अनुशासनहीनता ही उत्पन्न कर रहा है।

एक बात और बता दूं। मैंने श्रीनगर में एक विज्ञापन देखा। उसमें भगवान कृष्ण का बाएँ हाथ में वंशी और दाएँ हाथ में भाप निकलती चाय का प्याला लिये चित्र था। नीचे लिखा था—"नन्द गाँव के लाला, बरसाने के जीजा, दही-मक्खन तो बहुत दिया है। आके चाय पीजा।' अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी चाय और अंग्रेजी भाषा का यह कुप्रभाव है। हमें इससे बचना होगा।

योगी, कवि और कलाकार किसी क्षेत्र-विशेष, देश-विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। वे विश्व की विभूति होते हैं। जहाँ इनको बन्धन में बाँधा जायगा, इनपर अंकुश लगाया जायगा, इनके उन्मुक्त ज्ञान का उन्मुक्त उद्घोष नहीं करने दिया जायगा, वहाँ उन्नति का मार्ग स्वत: अवरुद्ध दिखाई देगा।

गुरुज्ञान का प्रकाश

रविवार और सोमवार दिन के प्रकाश की घोषणा करते हैं। रवि चन्द्र और मंगल-ग्रह प्रकाशपिण्ड हैं। जिस प्रकार इन प्रकाश पुंज ग्रहों के अस्तित्व की सार्वभौम स्वीकृति है, उसी प्रकार बुध बृहस्पति और गुरु शुक्राचार्य के नाम पर भी बृहस्पतिवार और शुक्रवार की प्रतिष्ठा की गयी है। अर्थात् आकाश के प्रकाशित नक्षत्रों में गुरु-ज्ञान के प्रकाश को सदैव प्रकाशित स्थिति में स्थिर रहने का शाश्वत और अक्षय वरदान मिला है। यही कारण

है कि सामान्य प्रजा से लेकर राजमुकुट और राजसिंहासन तक गुरु के सम्मुख सदैव नतमस्तक होते रहे हैं। राजाज्ञा पर गुरु की स्वीकृति का महत्व होता था। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यहां तक कि साक्षात् ब्रह्म का पद प्राप्त था, लेकिन आज की अवहेलना ने, युग के कुप्रभाव ने अध्यापक और अध्यापक-वृत्ति को निम्न-स्तर प्रदान करके समाज और राष्ट्र को अपने ही पतन के गर्त में डाल रखा है। उसे राजा और राज्य का संरक्षण प्राप्त नहीं है, प्रजा का सम्मान प्राप्त नहीं है, शिष्यों की श्रद्धा प्राप्त नहीं है और श्रमिकों तथा कर्मचारी जैसा भी वेतन नहीं मिल रहा है, वह मोहताज और भिखारी बन गया है। अध्यापक भौतिक ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मज्ञान का एकमात्र स्वामी और अधिष्ठाता था। लेकिन—'दिल ऐसी चीज को ठुकरा दिया नखवत परस्तों ने—बहुत मजबूर होकर हमने आईने वफा बदला।" तब ज्ञान का ह्रास हो, आत्मबल का विनाश हो, वेद-उपनिषद् की ध्वनि मन्द हो, विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढ़े और देश की भावी पीढ़ी, भावी आकांक्षा और भावी आशा पर कुठाराघात हो तो क्या आश्चर्य। अध्यापक चुप है, जैसे उसका कोई दायित्व ही नहीं है।

रूस की हर सभा में अध्यापक को पहली पंक्ति मिलती है, और ऋषियों का देश भारत, उसमें अध्यापक को कहीं स्थान नहीं है। राजनीतिक दल, राजनीतिक नेता और समूचा शासन-तन्त्र एक साथ सम्मिलित सम्पूर्ण शक्ति को लेकर विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता जिस दिन मिटा सकेंगे, और उसमें स्थायी रूप से सफल हो जायेंगे, उस दिन मैं समझूंगा कि भारत के भविष्य का आधार ही समाप्त हो गया। देश के कोने-कोने में गलत मन्त्रणा और गलत स्कीम ही बन रही है। इन आयोगों और पुलिसवालों से कभी भी कुछ होने का नहीं। बन्दरों पर कोई भी अनुशासन नहीं स्थापित कर पायगा, ये जिसके बन्दर हैं, उसी से नाचेंगे।

अध्यापक भी उत्तरदायी हैं

हमें यह कहने का अधिकार नहीं है कि समाज या राष्ट्र ने हमारा सम्मान खो दिया है, हमारी जीविका की व्यवस्था ठीक से नहीं की है और हमें पंगु बना दिया है। वास्तव में इन सब कमियों और व्याघातों के उत्तरदायी हम स्वयं हैं और हमने स्वयं ही अपनी बुद्धि, अपना ज्ञान, अपनी प्रतिष्ठा और अपना अस्तित्व खो दिया है, क्योंकि हमने अपना कर्तव्य और अध्यापक का धर्म ही भुला दिया है। जिस दिन मन, वचन, कर्म से हम अध्यापक, गुरु और ऋषि बनकर अपने विद्यार्थियों, शिष्यों और इन ऋषि कुमारों को आदेश दे सकेंगे कि वत्स, शिष्य मैं हूँ, समाज मैं हूँ, राष्ट्र और विश्व मुझमें ही समाये हुए हैं, ये बसें और गाड़ियां, स्टेशन और डाकखाने मेरी ही सम्पत्ति हैं, उसी क्षण हम देखेंगे कि इन विद्यार्थियों के शीश श्रद्धा से झुके होंगे और उनके सर्वशक्ति सम्पन्न कुलिश-कठोर नन्हें-नन्हें हाथ विध्वंस की जगह निर्माण और सुरक्षा की ओर उठे होंगे।

अनुशासनहीन कौन ?

कौन कहता है कि हमारे विद्यार्थी अनुशासनहीन हो गये हैं। वास्तव में अनुशासन ही हीन हो गया है हमारा स्नेह, हमारी ममता, हमारा अपनापन और हम अध्यापक स्वयं हीन हो गये हैं। दुख केवल इस बात का है कि एकलव्य का अंगूठा कटवा लेने पर भी जिस द्रोणाचार्य की गुरु की प्रतिष्ठा का आदर्श माना गया, पिता दशरथ के स्नेह से परे हटाकर सुबाहु और मारीच से दुर्धर्ष आततायियों को विनाश के लिए राम-लक्ष्मण को प्राप्त करने पर भी जिस विश्वामित्र में नयी सृष्टि रचने की क्षमता रही, कृष्ण को लकड़ी तोड़ने का आदेश देकर भी जिस सान्दीपिनी के आदेश की मर्यादा को सम्मान मिला, उसी द्रोणाचार्य, विश्वामित्र और सान्दीपिनी पर अपने शिष्य को साधारण सी शारीरिक ताड़ना पर आज विद्यार्थी की डाक्टरी परीक्षा कराकर मुकदमा चलाया जाता है कि अध्यापक दोषी है।

फिर भी अध्यापक के—

'हर आँसू की अपनी फुलवारी है,
हर दर्द बना केसर की क्यारी है,
महं महं महँका जिससे जग का आँगन,
कुछ और नहीं वह गन्ध हमारी है।
संसार उसी की पूजा कर पाया,
जिसने सीखा चोटें सहना।
बोकर तो देखो बीज मनुजता के,
पाषाण उगें, तो तुम मुझसे कहना। ●

पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग

•

श्री द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

पाठ्य-पुस्तक अधिकारी, उत्तरप्रदेश

पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों के लिए शिक्षा ग्रहण करने का या अध्यापकों के लिए छात्रों को शिक्षा प्रदान करने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। किन्तु पाठ्य पुस्तकों की इस महत्ता को स्वीकार करते हुए हमें इस तथ्य को भी सदैव स्मरण रखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तकें साधन हैं, साध्य नहीं, ज्ञानार्जन का एक माध्यम हैं, अन्त और अवसान नहीं। अतएव विद्यार्थियों और शिक्षकों को साधन के रूप में, माध्यम के रूप में ही उनका प्रयोग करना चाहिए। हमें पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग करते-समय हमेशा अपने सामने विषय और विद्यार्थी को ही रखना चाहिए, उन्हीं पर बल देना चाहिए। जहाँ पाठ्य-पुस्तक साध्य मान ली जाती है वहीं उसके रटने रटाने पर ही प्रायः विशेष बल दिया जाने लगता है, बालकों को उसमें वर्णित विषय का स्पष्ट बोध होता है या नहीं, यह बात गौण हो जाती है। वस्तुस्थिति यह है कि जिन विषय की पाठ्य-पुस्तक होती है, हमें तो विद्यार्थियों में उस पाठ्य-पुस्तक की सहायता से उस विषय से सम्बन्धित वांछित परिचय, जानकारी और ज्ञान तथा कौशल आदि प्रदान करने होते हैं, तथा उनमें उस विषय की शिक्षा के माध्यम से उन वांछित गुणों और प्रवृत्तियों को जन्म देना होता है, और उनका विकास करना रहता है—जिनसे उनके व्यक्तित्व के सम्यक् विकास में सहायता प्राप्त हो सके।

अध्यापक और पाठ्य-पुस्तक

जैसा कि अभी ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पाठ्य पुस्तक साधन मात्र है, साध्य नहीं। अतएव शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों को उसमें वर्णित विषय, दिये गये तथ्यों, प्रस्तावित सहायक सामग्रियों तथा पाठन विधियों आदि को पूरी विवेचना के साथ ही स्वीकार करना चाहिए। यद्यपि पाठ्य पुस्तकों में विद्वान लेखकों तथा सम्पादकों-द्वारा चुनी हुई विषय-सामग्री का ही समावेश किया जाता है, तथापि उत्तम अध्यापक और प्रतिभाशील छात्र उनका प्रयोग अपने पूर्ण विवेक के साथ ही करते हैं और आवश्यकतानुसार उनसे हटकर भी वे उस विषय को पढ़ते-पढ़ाते हैं। विद्यार्थी, विशेषकर छोटी उम्रवाले बालक, मुद्रित शब्द को ब्रह्मवाक्य की तरह मानते हैं। किन्तु अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों में धीमे धीमे ऐसी चिन्तन धारा प्रवाहित करें जिससे कि छात्रों को यह बोध होने लगे कि मुद्रित शब्द ही अन्तिम शब्द नहीं है, ब्रह्मवाक्य नहीं है। अध्यापक भी ऐसा ही मानकर चलें, इसके कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। बालकों में स्वतन्त्र विचार और चिन्तन की नींव डालना परमावश्यक है। उनका मौलिक और स्वस्थ बौद्धिक विकास तथा उनके व्यक्तित्व में प्रगतिशीलता, जो किसी भी राष्ट्र के छात्रों के लिए आवश्यक है तभी सम्भव है।

जैसा कि ऊपर भी उल्लेख किया जा चुका है पाठ्य-पुस्तक कितनी ही अच्छे ढंग से क्यों न लिखी गयी हो, उसका रचयिता कक्षा के विभिन्न छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं विशिष्टताओं को पूरी तरह कदापि नहीं समझ सकता, और यह सम्भव भी नहीं है। वह तो सामान्य तौर पर ही समस्याओं के हल प्रस्तुत कर सकता है। छात्रों की व्यक्तिगत माँगों, कमियों, आवश्यकताओं और विशेषताओं की जानकारी उस विषय के तथा उस कक्षा के पढ़ानेवाले अध्यापक को ही हो सकती है। अतएव अपने विषय के प्रभावी अध्यापक के लिए

प्रत्येक छात्र को अधिकाधिक लाभ पहुँचाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अध्यापक सम्बन्धित विषय की निर्धारित पाठ्य-पुस्तक को आँख मूँदकर ही अनुसरण न करे, वरन् आवश्यकतानुसार, पाठ्य-पुस्तक से अलग हटकर भी उस विषय की शिक्षा प्रदान करे।

पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्रों में सम्बन्धित विषय के प्रति रुचि तो उत्पन्न हो ही, उस विषय की ओर जानकारी के लिए उनमें उत्सुकता जागृत हो। इसके अतिरिक्त यह भी सर्वथा वाछनीय है कि विद्यार्थियों में पठन सामग्री को स्वयं एकत्र करने की, उसके सम्यक् चयन की तथा विधिवत नियोजन की और उसके सम्बन्ध में तर्कपूर्ण एवं आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने की शक्तियों का विकास हो। इसके लिए उन्हें सन्दर्भ-ग्रन्थों, विश्वकोषों, पुस्तकालयों, पत्र-पत्रिकाओं, पर्यटनों, विद्वानों के साक्षात्कारों आदि से सम्बन्धित पठन-सामग्री को एकत्र करने तथा उसे और अधिक समृद्ध बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय तथा इस दिशा में उनका भलीभाँति मार्गदर्शन किया जाय। इससे उनका ज्ञान केवल पाठ्य पुस्तकीय न रहकर निश्चय ही अधिकाधिक व्यापक, विस्तृत और पुष्ट होगा।

पाठ्य-पुस्तक कैसे पढ़ायी जाय ?

इन पंक्तियों के लेखक ने कृषि, विज्ञान और सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र) की पाठ्य-पुस्तकों को भाषा की गद्य की पाठ्य-पुस्तकों की तरह पढ़ाते देखा है। निवेदन है कि शिक्षण के कतिपय सामान्य सिद्धान्तों के अलावा प्रत्येक विषय के पढ़ाने की अलग-अलग विधियाँ होती हैं। भाषा की पाठन पद्धति से विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक नहीं पढ़ायी जा सकती और न विज्ञान की पाठन पद्धति से भाषा की। इसी प्रकार कृषि की पाठन-पद्धति से सामाजिक विषय की पाठ्य-पुस्तक नहीं पढ़ायी जा सकती और न सामाजिक विषय की पाठन-पद्धति से कृषि की, आदि आदि। जिस विषय की पाठ्य-पुस्तक है, उस विषय की पाठन विधि के न अपनाने से उस विषय का अध्यापन तो ठीक होता ही नहीं, बालकों में उस विषय के प्रति अरुचि भी उत्पन्न होने लगती है, जो नितान्त हानिकर है। अतएव पाठ्य-पुस्तकों को उन के विषय की पाठन-पद्धति के अनुसार ही पढ़ाया जाना चाहिए।

यहाँ तक हमने शिक्षकों-द्वारा पाठ्य-पुस्तकों के प्रयुक्त किये जाने के सम्बन्ध में कतिपय सुझाव प्रस्तुत किये हैं। अब हम विद्यार्थियों-द्वारा पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग पर विचार करेंगे। सामान्यतया यह देखा जाता है कि विद्यार्थी :

● पाठ्य-पुस्तकों को साध्य समझ लेते हैं, साधन नहीं,

● पाठ्य पुस्तकों में प्रतिपादित विषयों के मूल में जाने की अपेक्षा पल्लवग्राही ज्ञान के ग्रहण से ही सन्तुष्ट हो लेते हैं,

● सहायक सामग्री के रूप में पाठ्य पुस्तकों में दिये हुए प्रश्नों, अभ्यासों आदि की ओर वे प्रायः ध्यान नहीं देते।

● पाठ्य-पुस्तकों में दी हुई विषय-सामग्री में से भी परीक्षा की दृष्टि से समझे गये आवश्यक अंशों का ही विशेष अध्ययन करते हैं और प्रायः उन्हें रट लेते हैं।

● पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित विषय-सामग्री के अध्ययन तक ही सम्बन्धित विषय के ज्ञानार्जन की इति समझ लेते हैं।

● [illegible]खित शब्द को पत्थर की लकीर की तरह मान लेते हैं।

● पाठ्य-पुस्तकों के पन्नों पर ही शब्दार्थ आदि लिख लेते हैं, तथा

● पाठ्य-पुस्तकों की कुंजियों, उनसे सम्बन्धित नोटों आदि को कभी-कभी अपनी पाठ्य पुस्तकों से भी अधिक महत्व प्रदान कर प्रयोग करते हैं और अपने अध्ययन को उन्हीं तक सीमित कर देते हैं।

● हमने विद्यार्थियों-द्वारा पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग के सम्बन्ध में ऊपर जिन बातों की ओर संक्षेप में संकेत किया है, उनको ध्यान में रखते हुए छात्रों-द्वारा पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग के विषय में कतिपय निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं

क विद्यार्थी भी पाठ्य-पुस्तकों को साधन समझें, साध्य नहीं। साध्य विषय का ज्ञान और उस विषय के ज्ञान के माध्यम से अर्जित की जाने-

वाली वे प्रवृत्तियाँ, कुशलताएँ एव क्षमताएँ है, जिनसे उनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

ख पाठ्य-पुस्तकों में जो विषय-सामग्री दी रहती है, विद्यार्थियो को उसकी गहराई में पैठकर उसे हृदयगम करने का प्रयास करना चाहिए, केवल ऊपर-ऊपर तैर लेने से वाछित ज्ञान की प्राप्ति नही होती। सम्बन्धित विषय में रुचि और उत्सुकता भी तभी और अधिक जागृत होती है जब कि वह विषय समझ में आने लगता है।

ग पाठ्य पुस्तकों मे दिये गये प्रश्नों, अभ्यासो आदि की ओर अवश्य ध्यान दिया जाय। इनसे विद्यार्थियो को पाठो के समझने में, उनकी विचार और तर्क-शक्ति के विकास में बडी सहायता मिलती है। प्रश्नो, अभ्यासो में ऐसी भी सामग्री रहती है जिससे मूल पाठ में दी हुई सामग्री की कमी को पूरा करने में सहायता मिले। इस दृष्टि से भी इनकी ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

घ केवल परीक्षा की दृष्टि से पाठ्य-पुस्तक का पढना एकागी है। यद्यपि परीक्षा-प्रधान शिक्षा प्रणाली का यह एक दोष कहा जा सकता है, तथापि छात्रो को विषय के ज्ञानार्जन का लक्ष्य ही मुख्य रूप से सम्मुख रखना चाहिए। स्कूल की परीक्षाएँ अन्त नही हैं, विद्यार्थियो की वास्तविक परीक्षाएँ तो जब वे जीवन के विस्तृत और व्यावहारिक क्षेत्र में प्रवेश करेंगे तब उनके सामने आयेंगी और उनके लिए उन्हें पूर्ण रूपेण तैयार रहना है। केवल स्कूल परीक्षा की दृष्टि से चुन चुनकर पढे गये अशो से सम्बन्धित विषय का ज्ञान सर्वथा एकागी रह जाता है, जब कि इष्ट है, कम से कम उतना ज्ञान-अर्जन तो अवश्य हो, जितना कि पाठ्य पुस्तक में समाविष्ट है। अतएव सम्बन्धित विषय के यथासम्भव पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए ही पाठ्य-पुस्तक का अध्ययन वाछनीय है।

ङ पाठ्य-पुस्तको में सम्बन्धित विषय की जितनी सामग्री सम्मिलित रहती है, छात्र उसका अध्ययन तो करें ही, किन्तु उस विषय के ज्ञान विस्तार के लिए पाठ्य-पुस्तको के पन्नो तक ही अपने को सीमित न रखें। पाठ्य-पुस्तको के पृष्ठो की सीमाएँ होती हैं तथा उनके लेखक और सम्पादक की भी अपनी सीमाएँ होती हैं। अत मस्तिष्क के सम्यक् विकास, उस विषय की अच्छी जानकारी तथा अपने सामान्य ज्ञान की वृद्धि के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि विद्यार्थी किसी विषय का अध्ययन करते समय केवल एक निर्धारित पाठ्य-पुस्तक तक ही अपने को सीमित न रखे। पाठ्य पुस्तक तो उनके लिए एक पथ प्रदर्शक का काम करती है, उसके इगित मार्ग पर आगे बढना, यह पाठक का कार्य है।

च यद्यपि पाठ्य पुस्तकों के रचयिताओ का हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पाठ्य-पुस्तको में प्रामाणिक और आधुनिकतम (अप टू डेट) सामग्री ही रहे। तथापि एक तो अधिक-से-अधिक सतर्क रहने पर भी छापे की भूलें रह ही जाती हैं, और दूसरे, एकाध तथ्यो की त्रुटियाँ भी सम्भव हो सकती हैं। तीसरे, समाज में देश मे, अथवा विश्व में अकस्मात कोई ऐसी घटना भी घटित हो सकती है जिसके अनुसार चालू पाठ्य पुस्तक में एकदम परिवर्तन करना सम्भव नही हो पाता। अतएव विद्यार्थियो को इन समस्त सम्भावनाओ को ध्यान में रखकर पाठ्य-पुस्तको का अध्ययन करना चाहिए। उन्हें यह मानकर नही चलना चाहिए कि इनमें जो मुद्रित सामग्री है वही अन्तिम शब्द है।

एक बार की बात है। इटरमीजिएट की एक छात्रा ने मुझसे आकर कहा कि कक्षा में आज उसकी और उसकी गुरुजी की पाठ्य-पुस्तक में दिये हुए एक प्रसग को लेकर बडी बहस हो गयी। मैंने पूछा, क्यो ? तो वह बोली कि एक काव्याश के सन्दर्भ में मैंने

(छात्रा ने) जो विचार व्यक्त किये वे गुरुजी ने गलत बताये। इस पर मैंने (छात्रा ने) गुरुजी को पाठ्य पुस्तक का वह अंश खोलकर दिखाया जिसमें उसी बात का उल्लेख था, जो मैं कह रही थी। इस पर गुरुजी ने कहा कि नहीं, यह ठीक नहीं है, जो वे बता रही हैं वह ठीक है। छात्रा ने मुझसे कहा कि गुरुजी की यह बात मेरे गले से नहीं उतरी और मैंने उनसे कहा कि पुस्तक में जो यह छपा हुआ है, वह गलत कैसे हो सकता है? ऐसा तो नहीं है गुरुजी, कि कहीं आप ही को भ्रम हो रहा हो?

इस पर उस छात्रा से गुरुजी ने कहा कि तुम घर जाकर अपने पिताजी से पूछना और तब कल बताना। उस छात्रा ने जब अपने पिताजी से पूछा तो गुरुजी की बात ही सही पायी गयी। छात्रा को बड़ा आश्चर्य था कि पाठ्य-पुस्तक में भी इस प्रकार की गलती हो सकती है उसे जैसे विश्वास सा नहीं हो रहा था।

हमने अभी ऊपर जो उल्लेख किया है कि पाठ्य-पुस्तकों में मुद्रित सामग्री को एकदम अंतिम शब्द नहीं मान लेना चाहिए, वह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

छ पाठ्य-पुस्तकों के पन्नों पर ही शब्दार्थ आदि लिख लेने की प्रवृत्ति स्वस्थ नहीं है। एक ओर तो इससे पुस्तक खराब होती ही है, विद्यार्थियों की बौद्धिक शक्ति के विकास पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

ज पाठ्य-पुस्तकों की कुंजियों तथा उनसे सम्बन्धित नोटों का प्रयोग विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास और स्वतंत्र चिंतन के लिए सर्वथा अहितकर है। इससे एक ओर तो उनमें परिश्रम करने की प्रवृत्ति का ह्रास होता है, दूसरे, स्वयं सोचने तथा सन्दर्भ-ग्रन्थों के अवलोकन की आदतें नष्ट होती हैं। तीसरे, यह कि कुंजियाँ या नोट प्रायः न तो बहुत जिम्मेदारी के साथ लिखे ही जाते हैं और न बहुत जिम्मेदारी के साथ प्रकाशित ही किये जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनके ऊपर निर्भर करना सर्वथा हानिकर ही होता है। अतः छात्रों को इनका आश्रय कदापि नहीं लेना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों को छोड़कर उनकी कुंजियों तथा नोटों पर ही आश्रित रहने की प्रवृत्ति तो बिल्कुल ही घातक है और इसलिए एकदम त्याज्य भी।

जैसा कि इसके आरम्भ में ही उल्लेख किया जा चुका है, पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग के विषय में हुए किसी शोध या सर्वेक्षण-कार्य के अभाव में इस दिशा में हम सम्भवतः अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के लिए कोई ठोस मार्गदर्शन तो नहीं कर पाये हैं, फिर भी अपने अनुभव पर आधारित जो सुझाव प्रस्तुत किये हैं, आशा है उनसे विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को पाठ्य पुस्तकों के उचित प्रयोग के क्षेत्र में कुछ लाभप्रद संकेत अवश्य मिलेंगे। अन्त में यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना भी नितान्त आवश्यक है कि पाठ्य पुस्तकें कितने ही उत्कृष्ट लेखकों से उत्तम से उत्तम विधियों-द्वारा लिखी हों, सुन्दर से सुन्दर और आकर्षक ढंग से वे मुद्रित और प्रकाशित की गयी हों, किन्तु उनकी उपयोगिता और सफलता अध्यापकों तथा विद्यार्थियों-द्वारा किये गये उनके उचित प्रयोग पर ही निर्भर है। ●

बच्चों में नेतृत्व के चिन्ह

•

शमसुद्दीन

प्राध्यापक-प्रशिक्षण महाविद्यालय, रायपुर

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'बुहलर' के अनुसार नेतृत्व के चिन्ह प्रारम्भिक अवस्था-जैसे एक साल की उम्र, में भी देखे जाते हैं। शाला से पूर्व की अवस्था में नेतृत्व कई रूपों में प्रकट हो सकता है। अपनी शासन करने की प्रबल मनोवृत्ति के कारण बच्चा नेता बन जाता है। इस प्रकार बालक अपनी इच्छा का दबाव दूसरों पर डालता है।

कभी-कभी कोई बच्चा अपनी सर्वप्रियता, सामाजिक गुण और बुद्धि के कारण नेतृत्व प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार वह दूसरों पर बिना अपनी इच्छा या दबाव के नेतृत्व ग्रहण कर सकता है। अपने आदर्श और अनुकरण करने लायक मनोहर बर्ताव के कारण वह नेता बन जाता है। यह स्थायी होता है जब कि प्रथम प्रकार का नेता क्षणिक होता है।

ऐसे कई बच्चों का, जो नेतृत्व के गुण प्रकट करते हैं, अध्ययन किया गया और यह देखा गया कि बच्चों में जो नेता होते हैं, वे औसत बच्चे से योग्यता में श्रेष्ठ होते हैं, विशेषकर उन क्षेत्रों में जिनमें वे नेता स्वीकार कर लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ—खेल के मैदान का नेता अच्छा खिलाड़ी होगा। इस प्रकार नेता का एक प्रधान गुण 'श्रेष्ठता' है।

अच्छे बाल-नेता के गुण

एक अच्छा नेता बनने के लिए बच्चे को एक अच्छा आज्ञा माननेवाला भी होना आवश्यक है, इस रूप में कि वह अपने साथियों की आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर दे सके। अपने सहपाठियों की आवश्यकताओं को समझने व उनके प्रति सहानुभूति दिखाने तथा उनकी जरूरतों को महसूस करने की योग्यता एक अच्छे नेता बनने का दूसरा मुख्य गुण है।

नेता और उसके माननेवालों के बीच का सम्बन्ध ही नेतृत्व है। नेतृत्व केवल नेता के गुणों पर पूर्ण रूप निर्भर नहीं रहता, वरन् अनुकरण करनेवालों की विशेषताओं तथा समय विशेष की परिस्थितियों पर भी आधारित रहता है। इस प्रकार कोई बच्चा, जो एक समूह का नेता है आवश्यक नहीं कि वह दूसरे समूह का भी नेता हो। इसी प्रकार एक समूह किसी बच्चे को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में नेता स्वीकार कर ले, किन्तु दूसरी परिस्थिति में उसे अस्वीकार भी कर सकता है। इस प्रकार नेतृत्व का भाव पूर्ण व स्थायी नहीं, वरन् परस्पर सम्बन्धित है।

बाल-नेतृत्व की प्रधान विशेषताएँ

नेतृत्व नेता के कुछ गुणों पर निर्भर होता है। खेल के मैदान पर एक बच्चा खेलों में निपुणता के कारण नेता हो सकता है, चाहे वह विद्या के क्षेत्र में कितना भी पिछड़ा हुआ क्यों न हो। शिक्षा की निम्न श्रेणियों में खेलों में निपुणता नेतृत्व का निर्धारण करती है।

दूसरी विशेषता है 'अनुभव'। स्कूल का पुराना छात्र कुछ समय के लिए नेतृत्व प्राप्त कर सकता है—

उदाहरणार्थ द्वितीय वर्ग के विद्यार्थी को नये प्रवेश लेनेवाले प्रथम वर्ग के विद्यार्थी की अपेक्षा अधिक फायदे हैं, किन्तु सम्भव है कि कुछ समय बाद वह इस नेतृत्व को खो बैठे।

शाला की नयी आवश्यकताएँ जैसे गणित में निपुणता सह-शैक्षणिक कार्यों के सगठन आदि भी चतुर और बुद्धिमान बच्चों को नेतृत्व का अवसर दे सकते हैं। मान लीजिए शाला में नये प्रोजेक्ट प्रारम्भ किये गये। एक बुद्धिमान बालक उन्हें जल्दी समझ लेता है और नेता बन जाता है किन्तु बाद म यह नेतत्व दूस े के पास भी जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह नेतृत्व परिवर्तनशील है। यह परिस्थितियो पर निर्भर रहता है। ये परिवतन सभी स्थितियों म दिखाई देते हैं।

देखा जाता है कि एक बच्चा जो आज्ञाकारी व समपण करनेवाला होता है तथा जिसमें स्वाधिकार प्रदर्शन की कमी होती है वह अनुकूल परिस्थितियो के बावजूद सम्भव है, नेता न हो सके। इस प्रकार नेतत्व परिस्थितिया से सम्बंधित है। जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदलती हैं—नेतृत्व भी बदल सकता है। उदाहरणार्थ—खेल के मैदान का नेता, बहुत सम्भव है कक्षा में विद्या के क्षेत्र में नेता न हो। बहुत अधिक सम्पर्क से उदासीनता घृणा का भाव उदय हो सकता है। अत यदि एक बच्चा नय स्थान में जाता है तो वह उस स्थान मे नेता हो सकता है जबकि पुराने स्थान में अत्यधिक सम्पर्क के कारण उसके गुणों की कीमत नही हो सकी। बदलते हुए वातावरण और परिस्थितियो के अनसार बच्चे के कार्याभिनय में भी परिवतन होता है।

नेतृत्व क्या है ?

नेतृत्व पर अनुकूल प्रभाव डालनेवाली परिस्थितियों की खोज करने के लिए विभिन्न उम्र के बच्चो का प्रयोगात्मक अध्ययन किया गया। इसमे देखा गया कि नेतृत्व विभिन्न प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। इसकी कई कलाएँ हैं। दो बच्चे नेता होते हैं किन्तु वे विभिन्न तरीकों के प्रयोग स नेतृत्व प्राप्त करते हैं जैसे—दवाव सहयोगिता की कला अथवा स्वय-युक्ति व उपाय।

दूसरे नेतृत्व परस्पर सम्बंधित भावप्रणाली है। कोई भी व्यक्ति प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियो में विश्वव्यापी नेता नही होता। नेतृत्व यथार्थ में नेता और उसके माननेवालो के बीच का सम्बन्ध होता है। कोई नेता बना या नही बहुत हद तक यह इस बात पर निर्भर रहता है कि वह कहाँ तक अपने समूह के लोगो की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार नेता को न केवल दूसरो की आवश्यकताएँ जानने, वरन् उन्हें पूरा करने के लिए अत्यधिक भावनाशील होना चाहिए। नेता ऐसा हो जो अपने अनुसरण करनेवाला के स्तर पर आ सके।

नेता और उसके माननेवालो में अधिक मानसिक अन्तर अच्छा नही होता। नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण है—बुद्धिमत्ता, सर्वप्रियता, आरम्भ करने की शक्ति, व्यक्तिगत आकषण, निपुणता इत्यादि।

एक प्रयोगात्मक अध्ययन

वातावरण से सम्बन्धित कुछ आवश्यक शर्तों की जानकारी प्राप्त करने के लिए नेताओ और गैरनेताओ के कौटुम्बिक वातावरण का अध्ययन किया गया। इसमें देखा गया कि लड़कियों में नेता उन घरो से निकलीं जिनमे बच्चों के लालन-पालन म माताएँ अपेक्षा स्वतत्र थी तथा जहाँ ये अनुदार और रूढ़िवादी न होकर अपने बच्चो को स्वतन्त्रता और अवसर देती थी।

इस प्रकार घर की 'स्वतन्त्रता' और 'अवसर' नेतृत्व से सम्बन्ध रखते है। इसके विपरीत लड़के-नेताओं व गैर-नेताओ के घरेलू वातावरण में कोई विशेष अन्तर नही दिखाई दिया। यह इसलिए सम्भव हो सकता है कि घरो में बालिकाओ की अपेक्षा बालको को स्वाभाविक रूप से अधिक स्वतत्रता दी जाती है।

समाज का वातावरण बालक-नेताओ के निर्माण में अधिक प्रभाव डालता है। घरेलू अनुशासन के कार्यक्रमो तथा नेतृत्व के गुणो में एक प्रकार का अच्छा सम्बन्ध प्रतीत होता है। अत्यधिक कठोर अनुशासन बालिका को अच्छा आज्ञाकारी बनाता है। इस प्रकार का लालन-पालन स्वेच्छा दृढ़ता और आरम्भिक शक्ति की अवनति करता है। बच्चे को आरम्भिकता का अवसर देने के पश्चात् इस बात की सम्भावना अधिक है कि वह भविष्य में इन गुणो का अधिक प्रदर्शन कर सकेगा।

अनुशासन की परिभाषा

एक कहावत है कि "दृढ़ इच्छा शक्तिवाले माता-पिता के बच्चे दुर्बल इच्छा शक्तिवाले होते हैं।" ऐसे बच्चे अपनी इच्छा के प्रदर्शन का अवसर नहीं पाते। अतः वे दुर्बल इच्छावाले होते हैं। जिस प्रकार अत्यधिक अनुशासन बुरा होता है बहुत कम अनुशासन भी अच्छा नहीं होता, क्योंकि इसमें बालक के बिना स्थिर आदतों के पूरे समय खेलने-कूदनेवाला हो जाने की सम्भावना है। ऐसा बच्चा बिगड़ा हुआ बच्चा निकल सकता है। अच्छे अनुशासन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—'बच्चा के प्रति यथोचित दृढ़ता तथा आवश्यक स्नेह जिसमें वे स्वयं चुनाव तथा कार्य कर सकें।" इस प्रकार 'अनुभव और अवसर' नेतृत्व की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

अमेरिका में बहुत से विद्यार्थियों में यह देखा गया कि उनके अधिकांश नेता छोटे हाई स्कूलों व कालेजों से निकलते हैं। ऐसा क्यों होता है? सम्भवतः इसलिए कि छोटे समाज अपने कार्यों को चलाने के प्रयत्न में 'अवसरों' का बँटवारा अधिक से अधिक व्यक्तियों में करते हैं। अतः सीखने की सुविधा और अनुभवों का संगठन ग्रामीण और छोटे क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।

शैक्षणिक महत्ता

नेतृत्व की परिवर्तनशीलता शिक्षा में व्यावहारिक महत्व रखती है। शालाओं में नेतृत्व के लिए यथाशक्ति विभिन्न प्रकार के अवसर प्रदान करना चाहिए, क्योंकि यह कोई स्वतन्त्र व सम्पूर्ण कार्य नहीं है। जितने ही विभिन्न प्रकार के सह शैक्षणिक कार्य होंगे उतने ही अवसर बच्चों को नेतृत्व प्राप्ति के लिए मिल सकेंगे। साल के साल छात्रों को एक ही शिक्षक के अधीन रखने की नीति अच्छी नहीं होती। अत्यधिक घनिष्ठता शिक्षक को बालक के नेतृत्व के गुणों को पहचानने में समर्थ नहीं रखेगी। छात्र को विभिन्न शिक्षकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलना चाहिए। विषयों का पाठ्यक्रम ऐसा व्यापक हो कि वह विद्यार्थियों की विभिन्न आवश्यकताओं के अनुकूल सिद्ध हो सके। इस दिशा में कुछ कार्य बहुद्देशीय माध्यमिक शालाओं में किया गया है। प्रत्येक छात्र नेता नहीं बन सकता, किन्तु प्रत्येक में दूसरे से आगे बढ़ने की तथा यथाशक्ति उत्तम कार्य करने की प्रवृत्ति होती है। अतः अच्छे व योग्य शिक्षक का एक गुण यह है कि वह बच्चे में नेतृत्व के गुणों को पहचाने व उन्हें प्रोत्साहित करे।

शिक्षक को प्रत्येक छात्र का पहले गहन अध्ययन करना चाहिए, उसकी विशिष्ट योग्यताओं व भावों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और तब बाद में उन्हें अपनी योग्यता के प्रदर्शन के अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिए। वह इस योग्य हो कि प्रत्येक बालक में, जो सर्वोत्तम हो उसे प्रकट करा सके, क्योंकि प्रत्येक में कुछ न कुछ योग्यता तो अवश्य रहती है। ●

शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता

देश के शैक्षिक ढाँचे में परिवर्तन होना चाहिए और यह परिवर्तन शैक्षिक ढाँचे के प्रत्येक स्तर पर होना चाहिए। हमारे यहाँ शिक्षा के मद में वित्तीय व्यवस्था बहुत कम है। यहाँ व्यक्ति-पीछे लगभग १० रुपए खर्च होते हैं, जबकि अमेरिका में १२०० रुपए।

अब तक यहाँ कृषि-विज्ञान पर भरपूर ध्यान नहीं दिया गया इसीलिए कृषि-क्षेत्र में विज्ञान और यन्त्र-शास्त्र के उपयोग से जो समृद्धि होनी है, उससे हम वंचित रहे हैं।

दुनिया के विकसित देश पिछले १०० वर्षों से अपने यहाँ विज्ञान और यान्त्रिकी का उपयोग करते आ रहे हैं। वे अपने यहाँ उच्च शिक्षा और शोधकार्यों पर विशेष ध्यान देते हैं। इन्हीं सब कारणों से आज विकसित और अविकसित देशों की हालत में भारी अन्तर है। डा० कोठारी ने ये बातें २ दिसम्बर, ६६ को आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण के समय कहीं।

खाद्य-समस्या का शैक्षिक पहलू

•

कालीदास कपूर

सम्पादक भारतीय शिक्षक

आजकल भारत में और विशेष रूप से विहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में लगभग भुखमरी की स्थिति है। हमारा पेट विदेश के अन्न से पल रहा है। जिस भूमि की उपज से विदेशों का पोषण होता था उसके जन आज अपनी पेट-पूजा के लिए विदेश के आश्रित हैं।

तथ्य यह है कि कृषि का क्षेत्र बढ़ रहा है। परन्तु प्रति बीघा उपज की मात्रा घट रही है। सामुदायिक विकास-योजनाओं पर सरकारी व्यय बढ़ता जा रहा है कृषि विभागों से उन्नत बीजों खादों और कीटनाशक औषधियों की विज्ञप्तियाँ निकलती रहती हैं बिजली और सिंचाई का जाल फैलता रहा है तो भी प्रति बीघा

क्यों घट रही है?

इसके कई कारण हैं। आजकल दलबन्द राजनीति की धूम है। ब्रिटेन से मिली यह विरासत अब गाँवों तक पहुँच गयी है। इस समय यह कष्टप्रद खेती से यहाँ अधिक जनप्रिय है। इस राजनीति के कारण ग्राम्य जीवन अत्यधिक अरक्षित हो गया है। बुद्धि या धन से युक्त वयस्क अब गाँव छोड़कर नगर में बसने लगे हैं। बुद्धि और अर्थ से विपन्न नर-नारी ही अब खेती के लिए विवश हैं।

देहाती युवकों की दौड़ नगरों की ओर

देहात के नर-नारियों को बुद्धि और ज्ञान का प्रकाश शिक्षालयों से मिलना चाहिए। देश के स्वतन्त्र होने पर इन शिक्षालयों का संचालन देश की भौगोलिक सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के अनुकूल बदलना चाहिए था। परन्तु इनका रवैया प्राय वही है जो तब था। दस बजे से चार बजे तक पढ़ाई साप्ताहिक छुट्टी धर्म के नाम पर अनियमित छुट्टियाँ और ग्रीष्म अवकाश। रटाई के रूप में पढ़ाई। इस पढ़ाई का उद्देश्य यही था कि विदेशी सरकार को आज्ञाकारी कर्मचारी प्रचुर मात्रा में मिल सकें। यह नहीं कि शिक्षा प्राप्त करके वे अपने पिता का या अन्य कोई धन्धा-कौशल उत्साह पूर्वक चला सकें। फलत देहाती पाठशालाओं की शिक्षा प्राप्त करके युवक जिस प्रकार तब नगरों की ओर नौकरी के लिए दौड़ते थे वही रवैया अब भी है। दौड़ की मात्रा बढ़ रही है क्योंकि गाँवों में शिक्षालयों की भी संख्या बाढ़ पर है। बहुत से छोटे कस्बों में तो हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट कालेज तक खुल गये हैं।

जब शिक्षा प्राप्त करने पर देहाती युवक खेती से विमुख हो जाते हैं और यह धन्धा बुद्धि तथा अर्थ से हीन देहाती वयस्कों के हाथ में रह जाता है तो कृषि-धन्धे की अवनति होनी स्वाभाविक है। भारतीय हृदय कृषक जीवन में है देहात में है। तो शिक्षितों को कृषि से घृणा क्यों होने लगी है?

भारतीय भूगोल हमारा जलवायु उष्णप्रधान बनाता है और हमारे धन्धों में कृषि को प्रधानता प्रदान करता है। यह ठीक है कि भूगर्भ से हमें कुछ खनिज प्राप्त हैं जो हिन्दमहासागरीय क्षेत्र के इस केन्द्रीय देश को आधुनिक व्यवसाय में भी आगे बढ़ा सकते हैं। परन्तु अन्ततोगत्वा भारत को कृषि प्रधान रहना है।

अनुन्नत खेती के दोष अबतक हमारी दृष्टि से ओझल रहे। अब अनुन्नत खेती देश की प्रतिरक्षा और स्वतन्त्रता की घातक हो सकती है—यह हृदयंगम करना आवश्यक है। उपस्थित खाद्य-समस्या को हल करने के लिए देश की प्रचलित शिक्षा प्रणाली में सुधार की

विवेचना यहाँ मानकर हमें करनी है कि देश की जनसंख्या बढ रही है और बढती रहेगी।

इस समस्या के सन्दर्भ में मेरा पहला प्रस्ताव यह यह है कि जब तक भौगोलिक तथा सामाजिक तथ्यो के अनुकूल हम अपने देश की शिक्षा प्रणाली का सुधार न कर लें, तबतक देहात में नये शिक्षालय खुलने बन्द रहें। यों कृषि पर जिस मात्रा मे चोट हो रही है वह तो बढने से रुकेगी ही।

ब्रिटेन और भारत में अन्तर

शीतप्रधान और ईसाई ब्रिटेन मे रविवार को भगवान आराम करते हैं। सूर्य ही मानव मात्र के प्रत्यक्ष भगवान है। सो इनकी कृपादृष्टि भी अँग्रेजो पर हमारे मुकाबले बहुत कम रहती है। दिनरात में २४ घण्टे यहाँ होते हैं और वहाँ भी। परन्तु यहाँ दिन रात में ४ घण्टे से अधिक फर्क नही रहता, तो वहाँ वह आठ-दस घण्टे तक पहुँचता है । दिन में भी सूर्य अपने दर्शन कभी-कभी ही देते हैं। अतएव वहाँ बाहर भीतर परिश्रम के घण्टे दोपहर के दोना ओर तीन चार घण्टे तक रहते हैं। ९ बजे तक अँग्रेज श्रमिक अपने घर ब्रेकफास्ट करके दफ्तर या कारखाने चले जाते हैं। एक बजे काम से निपट ही उनका लच होता है। उसके पश्चात् ४–५ बजे तक वे दैनिक श्रम से निवृत्त होते हैं।

वह बात यहाँ नही। यहाँ दोपहर का समय श्रम के नितान्त प्रतिकूल रहता है। दोपहर के दोना ओर दो घण्टे से तीन घण्टे तक यहाँ भोजन और विश्राम के लिए नितान्त आवश्यक हैं। सध्या के पहले ३–४ घण्टे फिर श्रम के अनुकूल हो जाते हैं।

श्रम और विश्राम की यह व्यवस्था सारे देश के लिए उपयुक्त है। नगरा में इसे चालू करना कदाचित् कठिन भी हो, परन्तु देहाती जीवनचर्या की प्रकृति से अनुकूलता नितान्त आवश्यक है । वहाँ शिक्षालया में इस तथ्य का अनुसरण न होने पर प्रकृति पर आधारित खेती की हानि निश्चित है।

देहात में शिक्षा के नाम पर अभीतक तथाकथित बुनियादी पाठशालाओं की प्रमुखता है। 'बुनियादी' नामकरण राष्ट्रपिता गाधी का स्मारक है। सविधान का आदेश तो यही है कि 'बुनियादी' पढाई आठ वर्ष तक अनिवार्य हो, परन्तु आर्थिक विवशताओ के कारण तथाकथित शिक्षा की अनिवार्यता पाँच वर्ष तक रह पायी है। इसे भी भगवत्कृपा मानिये। देश के शिक्षाविदो का वस चलता, तो खेती अवश्य चौपट ही हो जाती।

हमारे देश में शिक्षा की परम्परा यह थी कि शिक्षक ही पाठ्यक्रम बनाते थे वे ही दीक्षा देते थे । अँग्रेजो का देश पर राज हुआ, तो उनके दफ्तरो मे शिक्षा के पाठ्यक्रम बने, मासिक वेतन पर शिक्षक नियुक्त किये गये। उन्हें निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पढाने का आदेश मिला। उनपर निगरानी रखने के लिए निरीक्षको की नियुक्ति हुई। पढाना ही उनका काम रहा। दीक्षा का, पढाई के प्रमाणपत्र देने का अधिकार उन्हें नही दिया जा सकता था। विदेशी शासक विवश थे। वे सख्या में बहुत कम थे। शासिता की सख्या बहुत अधिक थी। परतत्र भारतीयो से काम लेना आवश्यक था, तो अधिकार उन्होंने अपने हाथ में रखे और कर्तव्य परतत्र भारतीय कर्मचारियो को सुपुर्द किया। यों वर्नाक्युलर फाइनल परीक्षा का सूत्रपात हुआ। अपने मौलिक रूप में इस परीक्षा से विद्यार्थियो के शिक्षको का कोई सरोकार न था। वे न प्रश्नपत्र बनाते, न उत्तर पुस्तको की जाँच के लिए नियुक्त होते और न ही उन्हें परीक्षा के प्रत्याशियो की निगरानी सुपुर्द की जाती। अँग्रेजो को भारत से गये उन्नीस वर्ष से अधिक हो गये। परन्तु उनकी विरासत अभी तक हमारे गले लगी है।

अँग्रेजो के देश की अधिकाश भूमि खेती-योग्य नही। खेती होती है, तो अल्पायु एक फसल से अधिक के लिए उपयुक्त नही। अप्रैल-मई से खेती प्रारम्भ होती है और सितम्बर-अक्तूबर से फसल कटती है। विद्यालयो में वहाँ तक लम्बी छुट्टी होती है, जब फसल कटने के दिन होते है ताकि खेती की सेवा में शिक्षक लगें और विद्यार्थी भी। वहाँ ईसाई-धर्म के प्रोटेस्टेट मत ही की मान्यता है जिसमें त्योहारो का बाहुल्य नही। इसलिए धार्मिक छुट्टियाँ कम ही होती हैं। ब्रिटिश विद्यार्थी भूखे नही पढते। कलेवा करके जाते हैं और विद्यालय में दूध समेत [illegible] मिलता है।

अँग्रेज यहाँ आये और उन्होंने दस बजे से चार-पाँच बजे तक दफ्तर चालू किये। स्वय तो नाश्ता करके दफ्तर पहुँचते थे और लच के लिए अपने बगले पहुँच जाते थे। परन्तु उनके भारतीय कर्मचारी भरपेट भोजन करके दफ्तर की दौड लगाते, छुट्टी पाने पर ही उन्हे भोजन नसीब होता।

छुट्टियों की माँग

विलायत की नकल पर दफ्तरो का कार्यक्रम यहाँ निश्चित हुआ, तो विद्यालय क्यो पीछे रहते। जिस मेल की शिक्षा चालू हुई उससे ऊबना विद्यार्थियो तथा शिक्षको के लिए स्वाभाविक था। अतएव छुट्टियों की माँग हुई। विलायत में लम्बी छुट्टी होती है तो यहाँ भी होनी चाहिए। अंग्रेजो के यहाँ आने के पहले भारत में हिल स्टेशन नही थे, अँग्रेजो को भी यहाँ गरमी नही लगती थी। शिमला से दार्जिलिंग तक हिल स्टेशनो के विजेता लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत की दस गरमियाँ (१८१३-२३) कलकत्ते ही में काट दी। अपने घर का रईस था, परन्तु उसमें यथेष्ट सहन-शक्ति थी। जब हिल स्टेशन बने, तो भारतीय गरमी अँग्रेजो के लिए असह्य हो गयी। तब हिन्दुस्तानियो को भी गरमी सताने लगी। यो अदालतो और विद्यालयो में गरमी की लम्बी छुट्टियाँ होने लगी। इन छुट्टियो का उत्पादक श्रम से कोई सम्बन्ध नहीं। ठण्डे देश के शासको के जमाने में ये छुट्टियाँ क्षम्य थी, यद्यपि उनका कोई उत्पादक उपयोग न था। परन्तु सारे भारत में वे अब भी चालू हैं यद्यपि राष्ट्र-निर्माता नेहरू ने केन्द्रीय शासन की बागडोर सँभालते ही उसकी शिमला-यात्रा बद कर दी।

मई-जून का शैक्षिक महत्व

वर्ष के कोई ऐसे दो महीने हैं जब ग्रामीण वयस्को और बालक-बालिकाओ का सघन शिक्षण होना चाहिए, तो वे हैं मई और जून जब उनके घर अन्न से पूर्ण होते है और खेत विश्राम करते हैं। इस बहुमूल्य समय में बालक-बालिकाओ की छुट्टी रहती है और वयस्क अपना समय ववाहिक उत्सवो मे लगाते हैं या मुकदमो में।

अँग्रेजी राज के पहले हिन्दुओ और मुसलमानो के जो त्योहार होते थे वे ही अँग्रेजी शासन में होते रहे। दुकानदारो और किसानो की जीवनचर्या नही बदली। परन्तु विदेशी दफ्तरो के भारतीय कर्मचारी और विद्यालयो के वैतनिक शिक्षक पहले से अधिक धार्मिक हो गये। अँग्रेजो ने शासन में धर्म निरपेक्ष नीति अपनायी। हिन्दू छुट्टियाँ हो और मुस्लिम भी, क्रिस्तानी तो हो ही। यो छुट्टियो की सख्या बेतरह बढ गयी। परन्तु इनसे विदेशी शासको को कोई हानि नही पहुँचती थी, क्योकि करदाता भारतीय ही थे। देश के स्वतत्र होने पर भी वर्ष में जितने कम दिन पढाई भारत मे होती है उतने कम ब्रिटिश राष्ट्र मडल के बाहर किसी उन्नतिशील देश में नही होती।

हमारे देश की वस्तुस्थिति

और यह तब है जब हमारा देश उष्णप्रधान है, जहाँ पुट्ठे और स्नायु अपेक्षाकृत शीघ्र थकते हैं और दैनिक श्रम की मात्रा शीतप्रधान देशो की अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए। भारतीय जलवायु का तकाजा है कि यहाँ दैनिक श्रम की अवधि कम हो, तो शीतप्रधान देशो के प्रति व्यक्ति के उत्पादन से मुकाबिला करने के लिए हमें वर्ष में छुट्टी के दिन उनसे कम मिलने चाहिएँ। छुट्टी की कटौती से घबराना नही चाहिए, क्योकि श्रम से क्षति की पूर्ति दैनिक विश्राम से होती रहती है। छुट्टियो के आधिक्य से स्वास्थ्य बनता नही।

देहात ही के विद्यालयो की बात यहाँ की गयी है जहाँ अनाजो का उत्पादन होता है या होना चाहिए। इस समय देश में भुखमरी का हगामा है, तो देहात की वस्तुस्थिति भी समझनी जरूरी है।

देश के अधिकाश गाँवो तक खनिज तेल की भी पहुँच नही है। किसी समय सरसो के तेल से दीपक जलता था। अब वह खाने के लिए नसीब नही तो उसके जलाने की बात बहुत दूर रह जाती है। वहाँ जीवनचर्या ब्राह्ममुहूर्त (सूर्योदय के डेढ घण्टे पहले) से प्रारम्भ होती है और रात की अँधेरी होने पर समाप्त हो जाती है। वहाँ ऋतु के अनुकूल किसान को श्रम करना होता है या उसे विश्राम मिलता है। यह ऋतु-परिवर्तन रविवार या सरकारी छुट्टियो की परवाह नही करता।

स्थूल रूप में किसान को प्रातः से ५-६ घंटों तक खेत पर कोई-न-कोई काम करना होता है। रसोई और सूक्ष्म विश्राम के पश्चात् रात की अँधेरी तक उसे फिर खेत की सेवा करनी होती है। कभी कभी फसल को पशुओं से बचाने के लिए उसे रात को भी खेत पर पहरा देना होता है।

किसान के बच्चे उसके श्रम में सहयोग कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि प्रातःकाल से तीन चार घण्टा तक उनके कक्षा की पढ़ाई हो। तत्पश्चात् उन्हें अपने माता पिता को उनके धन्धे में सक्रिय सहयोग देने का मौका मिले। दस बजे से चार बजे तक उनकी पढ़ाई होती है, तो वे माता-पिता को उनके श्रम में अपना सहयोग देने से वंचित रहते हैं कुछ समय तक तत्सम्बन्धित श्रम से वंचित रहने पर उस श्रम से विमुख भी हो जाते हैं।

छुट्टियाँ : आवश्यकताओं के प्रतिकूल

पढ़ाई के घण्टे तो बच्चा को अपने माता-पिता के श्रम में हाथ बँटाने से रोकते ही हैं, छुट्टियाँ भी कृषक माता-पिता की आवश्यकताओं के प्रतिकूल होती हैं। बच्चा को बुवाई और कटाई के सप्ताहों में छुट्टी नहीं मिलती जब उनके माता पिता को उनकी सहायता की विशेष आवश्यकता होती है। भारतीय देहात में कच्चे मार्ग अधिक वर्षा होने पर प्रायः बन्द हो जाते हैं। अतएव देहात की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का तकाजा है कि भारी वर्षा में कच्चे मार्गों के बन्द होने पर देहाती विद्यालय भी बन्द रहें। बुवाई और कटाई के सप्ताहों में छुट्टी हो और बच्चे अपने शिक्षक सहित किसानों की सेवा में लगें। स्थानीय मेलों के लिए भी छुट्टी हो जब शिक्षकों को बच्चों के अभिभावकों से मिलने जुलने का मौका मिले। मई-जून में देहाती विद्यालय अवश्य खुले रहें। जिन नगरवासी नेताओं को ग्राम-सेवा की तमन्ना हो, उन्हें चाहिए कि मई-जून के अवकाश का सदुपयोग गाँव में डेरे डालकर करें। तब भारतीय मैदान की रातें बहुत सुहावनी होती हैं। चाँदनी रात में रोशनी के बिना ही वे देहात के वयस्क नर-नारियों का ज्ञान-वर्द्धन कर सकते हैं। कठिन-से-कठिन ग्रीष्म में भी प्रातःकाल के कम-से-कम तीन घण्टे तो शिक्षण हो ही सकता है। यदि विद्यार्थियों को २४०-२५० दिन पढ़ाई के लिए मिल जायें, तो वर्गागत शिक्षण के लिए प्रतिदिन तीन-चार घण्टों का औसत पर्याप्त से अधिक होना चाहिए।

शिक्षण ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थी को सच्ची नागरिकता और उत्पादक तथा कुशल श्रम के लिए तैयार कर सके, रटाई पर आधारित परीक्षा के लिए नहीं। इस सम्बन्ध में भी वस्तुस्थिति का विवरण आवश्यक है।

पाठ्यक्रम का विश्लेषण

उत्तर प्रदेशीय जूनियर हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में आठ विषय हैं जिसमें बुनियादी शिल्प तथा सम्बन्धित कला को सात अन्य विषयों के ऊपर जगह मिली है। इस विषय की शिक्षा की अनुमति उन्हीं पाठशालाओं को मिली है जिन्हें खेती के लिए १० एकड़ भूमि प्राप्त है। कितनी पाठशालाओं को इतनी भूमि प्राप्त है और शिक्षा के लिए कृषि विशेषज्ञ भी—इन तथ्यों का मुझे पता नहीं।

उत्तर प्रदेश के कितने जूनियर हाई स्कूलों में कृषि की शिक्षा दी जाती है इसका अनुमान यों लगाया जा सकता है कि कितने स्कूलों के साथ दस एकड़ भूमि है। इन भूमि प्राप्त विद्यालयों में कितनों को कृषि विशेषज्ञ शिक्षक मिले हुए हैं। बुनियादी शिल्प शीर्षक विषय के अन्तर्गत आठ शिल्पों के भीतर एक ही शिल्प विद्यार्थियों को चुनना है। अतएव अनुमान है कि बहुत कम देहाती जूनियर हाई स्कूलों को कृषि शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त है।

शिल्प की शिक्षा कथनी से तो होती नहीं, करनी से होती है। पाठ्यक्रम में कृषि की प्रयोगात्मक शिक्षा का विवरण दिया हुआ है। परन्तु कितना प्रयोगात्मक शिक्षण हो पाता है, इसका अनुमान यों लगाया जा सकता है कि शिक्षकों और शिष्यों पर लिखित परीक्षा के लिए रटाई का कितना भार रहता है। कृषि पर पाठ्यपुस्तकों की पृष्ठ-संख्या का उल्लेख नहीं हुआ है। जिन विषयों पर पाठ्यपुस्तकों की पृष्ठ-संख्या का उल्लेख हुआ है उनका जोड़ लगभग ३००० तक जाता है।

सुधार के व्यावहारिक सुझाव

सुधार के व्यावहारिक सुझाव अन्त में दिये जाते हैं और सूत्र रूप में।

चार पांच हजार फुट ऊँचे पहाडी स्थानों पर बने विद्यालयों के अतिरिक्त सभी विद्यालय सूर्योदय के एक घण्टा भीतर खुल जायें और प्रथम आठ वर्षों तक कक्षागत पढाई का दैनिक कार्यक्रम ३ घण्टे से अधिक का न हो। यह आपत्ति हो सकती है कि बहुत से शिक्षकों को उपस्थिति के लिए दूर से आना पडता है तो उनका विद्यालय पहुँचना कठिन होगा। अभी यह स्थिति अवश्य है कि कूटनीतिक प्रपंचों के कारण बहुत से शिक्षक अपने निवास स्थान से दूर विद्यालयों में नियुक्त होते हैं। यह उनके प्रति अन्याय है। अब गांवों में शिक्षा बढ़ रही है तो विद्यालयों में नियुक्ति ऐसे ही शिक्षकों की हो जो विद्यालयों के निकट रहते भी हों।

● वर्ष में ३६५ दिन होते हैं। नगरों में तो रविवार तथा ग्रीष्म की छुट्टियाँ होती रहें। परन्तु जिन विद्यालयों के अधिकांश विद्यार्थी देहाती हों उनमें रविवार और ग्रीष्म की छुट्टी न हो।

● वर्ष के पढाई के दिनों की संख्या २४० से २५० तक रहे। त्यौहारों और मेलों की छुट्टियों की संख्या वर्ष में १५ से अधिक न हो।

● नगरों में ग्रीष्म के अतिरिक्त एक सप्ताह से दो सप्ताह तक का एक अवकाश हो जिसमें १२ से १५ वर्ष तक के विद्यार्थियों के अनुशासित श्रम की व्यवस्था हो या नगर के बाहर उनके शिविर लगें। तात्पर्य यह कि वे अपने अन्नदाताओं से परिचित हों देहात के प्रति उनकी श्रद्धा प्रेरित हो।

● देहात में फसल की बुवाई या कटाई की छुट्टियों में शिक्षक और विद्यार्थी अपने-अपने खेतों पर काम करें और यदि उनके खेत न हों तो वे अपनी सेवाएँ जरूरतमन्द किसानों को अर्पित करें।

● दैनिक पढाई प्रार्थना और सामूहिक व्यायाम से प्रारम्भ हो। विद्यालय की पढाई दोपहर तक समाप्त हो जाय। तीसरे पहर के उपयोग के लिए विद्यार्थियों के सामने नीचे लिखे विकल्प रहें —

● वे अपने अभिभावक से खेती या अन्य किसी धंधे में सक्रिय सहयोग करें। यों सीखने के साथ वे कमाई भी करते रहेंगे। इस प्रकार वे श्रम करने के आदी बने रहेंगे और विद्यालय से प्राप्त ज्ञान के उपयोग में सफल होंगे।

● वे सामूहिक खेलों में सम्मिलित हों। क्रिकेट के विरुद्ध सकेत करना है, क्योंकि यह खेल पूरा दिन मांगता है। सभी सामूहिक प्रतियोगी खेल, देशी हों या विदेशी, मान्य हों। परन्तु स्वदेशी खेलों को वरीयता रहे, क्योंकि ये अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं।

● वे नाटक या नृत्य-मण्डलियों के लिए संगठित हों।

● वे पाठशाला के प्रांगण में या गांव के भीतर किसी ऐसे रचनात्मक निर्माण में लगाये जायें जिसकी पूर्ति होने पर वे और उनके अभिभावक सुख-सुविधा या लाभ प्राप्त करें।

● वे किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी के लिए संगठित हों।

● उनके लिए किसी कला या शिल्प की व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

● यथेष्ट स्वस्थ और सम्पन्न बच्चों का स्काउटिंग या अर्द्ध सैनिकता के लिए प्रशिक्षण हो।

● निर्धन अभिभावकों के बच्चों को दो-तीन घण्टों की वैतनिक सेवा में लगा दिया जाय।

पुनर्व्यवस्था से लाभ

● कक्षागत शिक्षा के समय की इस प्रकार पुनर्व्यवस्था होने पर शिक्षालय भवन से दोपहर के पश्चात् गांव के लिए अन्य सामुदायिक सेवाएँ ली जा सकेंगी।

● शिक्षक तीसरे पहर का समय शिक्षा या किसी और सेवा को लेकर अपनी कमाई में वृद्धि कर सकेगा। उसे अपनी खेती या अन्य किसी धन्धे की देखभाल का भी मौका रहेगा।

इतना हमें याद रखना है कि हम कितनी भी योजनाएँ बनायें, प्रारम्भिक कक्षाओं के शिक्षक को इतना पारिश्रमिक न दे सकेंगे कि वह शिक्षण सेवा को अपना पूरा समय दे सके।

● किताबी पढाई के साथ विद्यार्थियों का व्यावहारिक शिक्षण भी चलता रहेगा जिसके परिणामस्वरूप उनकी नगर की ओर भागने की प्रवृत्ति में कमी होगी। ●

नयी तालीम संगोष्ठी

सर्व सेवा संघ-द्वारा गठित नयी तालीम समिति की पहली बैठक शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालय, कुण्डेश्वर में (जि० टीकमगढ़, मध्यप्रदेश) २२, २३ नवम्बर ,'६६ को हुई। बैठक की अध्यक्षता लोकसभा के सदस्य और गांधीग्राम, मदुराई के निदेशक श्री जी० रामचन्द्रन् ने की।

सदस्यों की उपस्थिति निम्न प्रकार रही—

१ श्री जी० रामचन्द्रन् २. श्री के० अरुणाचालम्
३ ,, के०एस०राधाकृष्णन् ४. ,, बनवारीलाल चौधरी
५. ,, काशिनाथ त्रिवेदी ६ ,, म० उ० पाटनकर
७ ,, वंशीधर श्रीवास्तव ८ ,, अ० कु० करण
९ ,, द्वारिका सिंह १०. ,, के० एस० आचार्लु
११. ,, आर० श्री निवासन् १२. ,, के० मुनियांडी

पृष्ठभूमि

कुण्डेश्वर की आह्लादकारी प्रकृति के प्रांगण में मौन प्रार्थना के साथ बैठक की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। संयोजक श्री के० एस० आचार्लु ने समिति का गठन किस परिस्थिति और पृष्ठभूमि में हुआ, इसे स्पष्ट किया तथा सर्व सेवा संघ के मंत्री का सगठन, सदस्यता एवं कृत्य-सम्बन्धी पत्र पढ़कर सुनाया। इसके बाद संयोजक ने १९६५-६६ के कार्यों का संक्षिप्त विवरण तथा सर्व-सेवा संघ-द्वारा समिति के लिए स्वीकृत धनराशि का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया।

वित्तीय-प्रश्न

जी० रामचन्द्रन्

समिति के खर्च के लिए आमदनी के क्या जरिये हों, इस पर विचार करते हुए यह महसूस किया गया कि राज्यों में नयी तालीम मण्डलों के संगठित और क्रियाशील होने के बाद ही इस दिशा में कुछ ठोस प्रयत्न किया जा सकेगा। नयी तालीम-संगोष्ठी, कुण्डेश्वर के खर्च के लिए दो हजार रुपए का अनुदान गांधी स्मारक निधि ने दिया, इसके लिए समिति की ओर से निधि के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी।

प्रादेशिक संगठन

नयी तालीम समिति-द्वारा जिन कार्यक्रमों को चलाने की बात सोची जा रही है उनके प्रभावकारी क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि हर प्रदेश में नयी तालीम मण्डल संगठित हों। कई राज्यों में इनका संगठन हुआ है, लेकिन जहाँ अबतक नहीं हो पाया है, वहाँ शीघ्र से शीघ्र नयी तालीम मण्डलों के संगठनार्थ आवश्यक प्रयास किये जायँ, यह महसूस किया गया।

मध्यप्रदेश, बिहार, पंजाब, उत्तरप्रदेश और हरियाणा में नयी तालीम मण्डल संगठित करने के लिए क्रमशः सर्वश्री नरेन्द्र दुबे, द्वारिका सिंह, वासुदेव कावरा, करणभाई और सरला चोपड़ा ने जिम्मेदारी ली।

करने योग्य काम

तय किया गया कि देश के सामने नयी तालीम का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने के लिए हर प्रदेश में पूर्व बुनियादी से उत्तर बुनियादी तक का एक सुन्दर नमूना या तो नयी संस्था बनाकर या पुरानी संस्था को पुनर्जीवित कर तैयार करना चाहिए।

आज देश में ग्रामदानी क्षेत्र नयी तालीम का प्रयोग करने के लिए एक साथ चुनौती और अवसर दोनों प्रस्तुत कर रहे हैं। उक्त क्षेत्रों में प्रभावकारी प्रौढ़-शिक्षण और समाज शिक्षण की असीम सम्भावनाएँ हैं। ग्रामदानी क्षेत्र के लोगों को नयी तालीम का समग्र-

सभामंच का एक दृश्य

विचार और जीवन के हर क्षेत्र के साथ की सम्बद्धता को समझाना नयी तालीम मण्डलों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक कार्यक्रम है। मण्डलों को चाहिए कि ग्रामदानी क्षेत्रों में ये कार्यक्रम चलाने की भरपूर चेष्टा करें।

साहित्य-निर्माण

उद्यम, कार्यानुभव, सामुदायिक संगठन, सामुदायिक जीवन, समाजसेवा आदि विषयों पर समवायी शिक्षण के लिए उत्तम निर्देशक साहित्य के निर्माण कराने की व्यवस्था नयी तालीम समिति को करनी चाहिए। यह समिति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृत्य है, ऐसा महसूस किया गया। इसके लिए निम्न व्यक्तियों का एक सम्पादन-मण्डल बनाया गया

श्री के० अरुणाचलम् (संयोजक),
श्री के० एस० राधाकृष्णन्,
श्री द्वारिका सिंह
श्री आर० श्री निवासन्,
श्री वंशीधर श्रीवास्तव,
श्री मिलापचन्द दुबे।

क्रियान्वयन

तय किया गया कि नयी तालीम सगोष्ठी, कुण्डेश्वर के निष्कर्षों तथा नयी तालीम के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए सर्वश्री जी० रामचन्द्रन्, उ० न० ढेबर, के० अरुणाचलम्, राधाकृष्णन, द्वारिका सिंह और के० एस० आचार्लु की एक उपसमिति योजना-आयोग के शिक्षा-विषयक सदस्य डा० वी० के० आर० वी० राव से ३ दिसम्बर, '६६ को नयी दिल्ली में मिले और तत्सम्बन्धी चर्चा करे।

देश की वर्तमान परिस्थिति और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नयी तालीम के मूल सिद्धान्तों—कार्यानुभव उत्पादनशीलता, शान्तिपूर्ण और सामुदायिक-जीवन, समाजसेवा, मातृभाषा का माध्यम, ज्ञान का अनुभव के साथ समवाय का लागू करने की अनुकूलता देश में पैदा हुई है। शिक्षा-आयोग ने प्रायः इन सभी कार्यक्रमों का समर्थन किया है, इसलिए प्रादेशिक मण्डलों को चाहिए कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में इन सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के प्रभावकारी क्रियान्वयन के लिए प्रदेशों में व्यापक प्रचार और प्रसार-कार्य करें।

नयी तालीम समिति राष्ट्रीय शिक्षा में नयी तालीम के मूल विचारों के क्रियान्वयन के लिए प्रेरित करने का प्रयास करे, और प्रादेशिक मण्डलों को सक्रिय बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाये। केन्द्र और राज्य के शिक्षा मंत्रणालयों शिक्षा-परिषदों से सम्पर्क करे।

संगोष्ठी-सम्मेलन

तय किया गया कि हर साल समिति एक अखिल भारतीय स्तर पर संगोष्ठी और दो साल में एक बार नयी तालीम सम्मेलन बुलाये। अखिल भारतीय स्तर के ठोस-संगठन के लिए एक सम्पूर्ण सुझाव समिति की ओर से सर्व सेवा संघ के लिए तैयार किया गया। ●

प्रतिनिधियों की विदाई

नयी तालीम संगोष्ठी की संस्तुतियाँ

शिक्षा-आयोग की संस्तुतियों पर विचार विमर्श करने के लिए नयी तालीम समिति ने नयी तालीम के कार्यकर्ताओं की एक संगोष्ठी २२-२३ नवम्बर १९६६ को शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय कुण्डेश्वर जिला टीकमगढ़ (म०प्र०) में आयोजित की। उद्घाटन-बैठक की अध्यक्षता गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर ने की और गोष्ठी का उद्घाटन गांधी ग्राम के निदेशक श्री जी. रामचन्द्रन ने किया।

संगोष्ठी ने अपना ध्यान निम्नांकित बड़े प्रश्नों पर केन्द्रित किया —

१ शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त,
२ स्कूल प्रणाली
    कार्य अनुभव
    कृषि का शिक्षा में स्थान
    नामावली
३ भाषा-नीति
४ प्रौढ़ व सामाजिक शिक्षा
५ शैक्षिक प्रशासन निरीक्षण व मूल्यांकन

उपर्युक्त विषयों पर अध्ययन-पत्र तैयार करके प्रतिनिधियों में वितरित कर दिये गये थे। अध्ययन व विचार विमर्श के आधार-रूप में शिक्षा के मूलभूत लक्ष्यों, शालेय ढाँचा, शिक्षा का विस्तार, शैक्षिक अवसरों का समानीकरण, स्कूली पाठ्यक्रम, शैक्षिक प्रशासन, मूल्यांकन व प्रौढ़ एवं सामाजिक शिक्षा—अध्ययन व विचार विमर्श के इन मुद्दों के सम्बन्ध में शिक्षा-आयोग के दृष्टिकोणों एवं संस्तुतियों पर भी विस्तार में नोट तैयार कर लिये गये थे।

नीचे लिखी संस्तुतियाँ जिनपर विचार विमर्श के बाद सर्वानुमति प्राप्त हो गयी थी २३ नवम्बर के तीसरे पहर पूरी संगोष्ठी के सामने रखी गयीं और स्वीकृत हुईं

आधारभूत सिद्धान्त

देश की सबसे ज्यादा आवश्यक व रुकावट पैदा करनेवाली समस्याओं में शिक्षा आयोग के तादात्म्य और लक्ष्यों के उक्त इस कथन से कि शैक्षिक विकास उत्पादन-वृद्धि सामाजिक व राष्ट्रीय एकता लोकतन्त्र में मजबूती आधुनिकीकरण में तेजी तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में वृद्धि लानेवाला हो साधारण तौर पर सहमति प्रकट करते हुए यह संगोष्ठी इस बात पर जोर डालना चाहती है कि राष्ट्रीय शिक्षा की किसी योजना का उद्देश्य व्यक्ति का सामंजस्यपूर्ण और सन्तुलित विकास होना चाहिए क्योंकि स्वतन्त्र, शान्तिपूर्ण एवं स्वस्थ समाज स्वयं अपने में ऐसे गुणों के विकास का लक्ष्य रखनेवाले मानवों पर ही अधिकतर निर्भर है।

जिसके लिए राष्ट्रपिता ने आवश्यक नींवें रखीं उस सत्य व अहिंसा पर आधारित समाज व्यवस्था की प्राप्ति के लिए प्रयास भारतीय शिक्षा का एक प्रमुख सिद्धान्त होना चाहिए। और यह तब विशेष रूप से होना चाहिए जब आयोग ने यह इच्छा प्रकट की है कि उद्देश्य पूर्णता, समृद्धि व आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि के एक नवीन स्तर की प्राप्ति के लिए विज्ञान व अहिंसा का मेल होना चाहिए। पाठ्यक्रम शाला-संगठन कार्य-अनुभव और विभिन्न अन्य कार्यक्रमों इन सभी को जीवन के उस अहिंसात्मक मार्ग की ओर उन्मुख होना चाहिए जो निर्भयता, प्रेम सहकार साझेदारी व समता की क्रियात्मक रूप से वृद्धि करेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्तावित दसवर्षीय शालेय-ढाँचे के सम्बन्ध में आयोग की संस्तुतियों का अनुमोदन करते हुए संगोष्ठी यह जोर देकर कहना चाहती है कि

● प्राइमरी स्तर का निचले व ऊँचले रूपों में तोड़ा जाना न तो मनोवैज्ञानिक है न शैक्षिक। और, स्कूल-प्रणाली सात या आठ वर्षों की अबाध इकाई हो, जिसका अनुगमन दो या तीन वर्षों का माध्यमिक शिक्षा-पाठ्यक्रम, जो अपनी सम्पूर्णता में जनता के लिए सार्वभौम, नि:शुल्क व अनिवार्य राष्ट्रीय शिक्षा का अन्ततोगत्वा नमूना माना जाय, करे।

● संगोष्ठी को यह कहते हुए खेद है कि उत्तर बुनियादी शिक्षा की परिकल्पना तथा उत्तर-बुनियादी विद्यालयों के (जहाँ उत्पादक क्रिया-अनुभव, सामुदायिक संगठन, समाज-सेवा तथा बौद्धिक कार्य के क्षेत्र में प्रभावोत्पादक व मूल्यवान शैक्षिक काफी पुष्ट हो रहा है) कार्य का शिक्षा-आयोग ने कोई ख्याल नहीं किया है और यह यह संस्तुति करती है कि शिक्षा-आयोग-द्वारा निर्धारित शिक्षा-मूल्यों के प्रति महत्वपूर्ण देन के रूप में उत्तर बुनियादी शिक्षा के चित्र का फिर से परीक्षण हो।

● शिक्षा के सभी स्तरों में कार्य-अनुभव के अभिन्न अंग के रूप में समावेश का संगोष्ठी स्वागत करती है। सम्यक रूप से संगठित होने पर यह कार्यक्रम अपनी शिक्षा-प्रणाली के पुनर्जीवन और उसके ढाँचे व उद्देश्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेवाला होना चाहिए।

कालेज व माध्यमिक विद्यालय-स्तर पर कार्य-अनुभव का समावेश एक बड़ा ही अच्छा प्रस्ताव है, केवल इसीलिए नहीं कि उच्चतर शिक्षा के स्तरों में बुनियादी शिक्षा के ही एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त का यह प्रसार है, बल्कि इसलिए भी कि यह कार्यक्रम शिक्षा को वास्तविकताओं के निकट लायगा। कार्य-अनुभव के समावेश से सम्बन्धित समस्याएँ अनेक हैं, और सफलता देश में सामान्य वातावरण-निर्माण, सम्पत्ति-स्रोतों की उपलब्धि, प्राप्य शिक्षकों की तैयारी और सामाजिक वास्तविक आवश्यकताओं से कार्य-अनुभव के अनुबन्ध की सीमा पर निर्भर है। कार्य-अनुभव की इस पूरी परिकल्पना का सावधानी से परीक्षण और उसकी विस्तार में व्याख्या महत्वपूर्ण है ताकि शक्तियों व स्रोतों की बरबादी, जिसका परिणाम और अधिक हताशा व निराशा हो, न हो। यह स्पष्टता के साथ माना जाना चाहिए कि साररूप में कार्य-अनुभव सामाजिक तौर पर उपादेय है और क्रमिक रूप से शिक्षार्थी को आत्म-विश्वास की ओर ले जानेवाला है। शिक्षार्थी की शिक्षा एवं उसके व्यक्तित्व की अभिवृद्धि से पूर्णत असम्बन्धित उत्पादक-क्रिया सर्वथा वांछनीय है।

बुनियादी शिक्षा के माध्यम से कार्य-अनुभव के शाला-स्तर पर समावेश का पिछले तीन दशकों में काफी गहरा अनुभव आया है। इस अनुभव और उससे सीखे पाठों का उपयोग किया और अनुभव के आगे के सूत्रों के निर्माण में होना चाहिए। इस अनुभव की उपेक्षा और नये सिरे से प्रारम्भ बुद्धि व विवेक के विरुद्ध होगा। उपादेय होने के लिए कार्य-अनुभव को शैक्षिक दृष्टि से पूर्ण, सामाजिक दृष्टि से लाभदायक और क्रियात्मक रूप से अबाध होना चाहिए। कार्य-अनुभव के सम्यक समावेश के लिए क्रियाओं और क्राफ्ट का ठीक चुनाव, हुनर के विकास के लिए उपयुक्त अवधि और क्रियाओं की प्रत्येक इकाई का पूरा किया जाना महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कार्य-अनुभव की उपादेयता इस बात पर निर्भर है कि बच्चे की शिक्षा से ये क्रियाएँ किस सीमा तक सम्बन्धित हैं। शिक्षा-प्रतिवेदन के विभिन्न कथनों से कार्य-अनुभव के उद्देश्यों व कार्यक्रमों का कुछ ठीक पता नहीं चलता। प्रतिवेदन में दर्शायी गयी समयावधि से प्रस्तावों की गम्भीरता के सम्बन्ध में केवल शंकाएँ ही उठ सकती हैं। इसलिए, बुनियादी शिक्षा में अनुभूत रेखाओं के अनुरूप शाला-स्तर पर ही परिकल्पना का स्पष्टीकरण, और साथ-साथ सामुदायिक आवश्यकताओं, उपादेय उत्पादन एवं संश्लिष्ट शिक्षा से उसका सम्बन्ध आवश्यक है। आज की आवश्यकता है कि इस कार्यक्रम में मजबूती व स्थायित्व लाया जाय और शाला-स्तर पर ही उपयुक्त नींव रखी जाय।

कृषि-शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षा-आयोग के प्रतिवेदन का सतर्क अध्ययन भारत की ग्रामीण जनसंख्या के अधिकाधिक भाग की (जिसके जीवन में कृषि का आज भी सर्वाधिक महत्व है) शैक्षिक आवश्यकताओं

की अवहेलना दर्शाता है। सम्भवत शहरी लोगों की शैक्षिक आवश्यकताओं के साथ अधिकाधिक व्यस्तता और साथ ही कृषि को एक विशिष्ट उत्पादक शापट के रूप में प्रयुक्त करनेवाले कुछ अच्छे-से अच्छे बुनियादी स्कूलों में उपलब्ध दशाओं व व्यवहारों की सीधी जानकारी के अभाव ने आयोग को इस कथन के लिए प्रेरित किया है

"प्राइमरी स्तर पर कृषि शिक्षा की शुरुआत करने से जीवन के एक मार्ग के रूप में लोगों में कृषि प्रेम बढ़ेगा, न इस बात की सम्भावना है और न इसी उद्देश्य प्राप्ति की कि ग्रामीण लोग जन्म भूमि छोड़कर स्थानान्तरण न करें। जो शिक्षा हम देते भी हैं उसके परिणाम-स्वरूप निरर्थक ऊब पैदा होती है और उससे शिक्षार्थियों के मन में कृषि के लिए अरुचि पैदा करने का ही काम होता है। इसलिए हम सारी शिक्षा प्रणाली को ही कृषि-उन्मुख बनाने की संस्तुति करते हैं।'

यह संगोष्ठी यह जोर देना चाहती है कि

● बच्चे का स्वाभाविक क्रिया प्रेम उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा तथा घर से बाहर के जीवन के प्रति आकर्षण और कृषि सम्बन्धी क्रियाओं के लिए गहरी रुचि व पसन्द उद्भूत करने के लिए पहिले से ही तत्त्व मौजूद हैं और जैसे-जैसे बच्चे की शारीरिक व मानसिक वृद्धि होती है वह उनके अनुरूप क्रिया-कलापों को अपनाता जाता है।

● उत्पादन के साथ सही रूप में जोड़े जाने पर कृषि सम्बन्धी क्रियाएँ ऊब व जुगुप्सा नहीं उत्पन्न करेंगी।

● कृषि सम्बन्धी उत्पादक श्रम की, जो बच्चे की सम्पूर्ण शिक्षा का एक वास्तविक वाहन है, कृषि उन्मुख कार्यक्रम द्वारा स्थान-पूर्ति व्यवहार्य नहीं है और वह बुनियादी शिक्षा के उत्पादन उन्मुख, कृषि-आधारित शिक्षा उद्देश्य से जो कुछ भी लाभ प्राप्य है उसे भी हल्का कर देता है।

● कृषि शिक्षा का उद्देश्य ग्राम्य-जीवन में एक स्वस्थ, उपादेय क्रान्ति लाना और खाद्य-पदार्थों की उत्पादन-वृद्धि तथा रोजगारी की अच्छी व्यवस्था के लिए कृषि-क्षेत्र में विज्ञान व तकनीक के विकसित ज्ञान का उपयोग है।

इसलिए यह संगोष्ठी निम्नांकित संस्तुतियाँ करती है

● सीखनेवाले की विकास-क्षमता के उपयुक्त निर्धारित उत्पादक कृषि सम्बन्धी क्रिया को (केवल कृषि उन्मुखता ही नहीं) प्राइमरी स्तर से ही शिक्षा का एक बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम बनना चाहिए।

● जहाँ कहीं सम्भव हो, शाला-कार्यक्रम को समुदाय के खाद्यान्न-वृद्धि के किसी कार्यक्रम से जोड़ना चाहिए।

● उत्पादन वृद्धि में सहायता देने के लिए विकासशील किसानों को बुनियादी स्कूलों के निकट सहकार में लाना चाहिए।

● प्रथम क्रियात्मक कदम के तौर पर, उन सभी स्कूलों को जिनके पास थोड़ी या ज्यादा कुछ भी भूमि है आपत्कालीन स्थिति के आधार पर उस भूमि को कृषि-उत्पादन सम्बन्धी क्रियाओं में इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए—छोटे किचन गार्डेनों से लेकर सामान्य माप के फार्मों तक।

बुनियादी शिक्षा की नामावली (नोमेनक्लेयर) का प्रतिरक्षण

शिक्षा-आयोग के द्वारा बुनियादी शिक्षा के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की स्वीकृति से नयी तालीम संगोष्ठी को कुछ सन्तोष हुआ है। जैसे खाद्य-उत्पादन की दृष्टि से *आत्म निर्भरता समुदाय जीवन सामुदायिक कल्याण* के कार्यक्रमों में हिस्सा लेना और अनुभव का समवाय।

लेकिन साथ ही, यह संगोष्ठी सरकार व जनता, दोनों को याद दिलाना चाहती है कि सरकारी व गैर-सरकारी, दोनों ही तौर पर बुनियादी शिक्षा की लगभग तीन दशकों की सुदृढ़ परम्परा व अनुभव है। केन्द्रीय सरकार-द्वारा बुनियादी शिक्षा की परिकल्पना को अपनी नीति के रूप में स्वीकृति तथा केन्द्र एवं राज्यस्तर पर इसकी कार्यान्विति के लिए प्रयुक्त विभिन्न उपाय, आकलन समिति की नियुक्ति, प्रशासकीय मशीन को मजबूत बनाने के लिए अपनाये गये उपाय, एन० आई० बी० ई० की स्थापना तथा सभी स्तरों पर नवीनीकरण पाठ्यक्रमों

का संगठन, समन्वित पाठ्यक्रमों का निर्माण और सभी प्राइमरी स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में तथा सभी टीचर ट्रेनिंग पाठ्यक्रमों को बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में बदलने के प्रस्ताव—ये सभी कदम उस त्वरा के निदर्शन हैं। जिसके साथ प्रारम्भिक शिक्षा के वर्तमान नमूने को बुनियादी शिक्षा की रेखाओं पर विकसित करने के लिए केन्द्र तथा राज्यों-द्वारा प्रयत्न किये गये। और, इन सबके सिरमौर-स्वरूप, शिक्षा-आयोग का यह सुनिश्चित मत है कि बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त इतने क्रान्तिकारी हैं कि वे शिक्षा-प्रणाली को सभी स्तरों पर मार्गदर्शन व रूप प्रदान कर सकते हैं।

इस सगोष्ठी को यह खेद है कि सारे देश में बुनियादी शिक्षा की योजनाओं की सार्वत्रिक पूर्ति के लिए प्रशासकीय और शैक्षिक प्रभावोत्पादक उपाय सुझाने के बदले आयोग ने सिद्धान्तों को उसी रूप में स्वीकार कर 'बुनियादी शिक्षा' नाम को ठुकरा दिया है, जिसे स्वीकार कर राष्ट्र-पिता ने देश को अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन के रूप में दिया था।

इसलिए, बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों में आस्था रखते हुए यह सगोष्ठी जोर देकर कहती है कि सभी शिक्षा, कम-से-कम दसवीं कक्षा तक, 'बुनियादी शिक्षा' कही जानी चाहिए और सही रूप में उसका कार्यान्वयन होना चाहिए।

भाषा-नीति

● यह सगोष्ठी शिक्षा-आयोग के परिवर्धित या ग्रेजुएटेड त्रिभाषा सूत्र से, जो राष्ट्र के सभी बच्चों के लिए देश की राजकीय भाषा का तथा सहायक राजकीय भाषा की स्थिति तक उसका अध्ययन अनिवार्य बनाता है, मोटे तौर पर सहमत है। लेकिन त्रि-भाषा सूत्र केवल संक्रान्ति-काल तक के लिए ही है और जितना शीघ्र सम्भव हो (लगभग दस वर्ष के अन्दर मान लीजिए) क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए सभी राज्यों को उत्सुकता के साथ प्रयास करना चाहिए और इस बात की भी परवाह रखनी चाहिए कि क्षेत्रीय भाषाएँ साथ-साथ राजकीय भाषाएँ भी बन जायें।

● आयोग के इस सुनिश्चित व जोर देकर कहे गये सुझाव का सगोष्ठी स्वागत करती है कि प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालयीय स्तर तक शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो तथा ५वीं कक्षा के पूर्व अँग्रेजी की पढाई शैक्षिक दृष्टि से ठीक नहीं है।

● यह सगोष्ठी शिक्षा-आयोग से इस बात में सहमत है कि अखिल भारतीय रूप रखनेवाले शिक्षण-सस्थानों में अँग्रेजी-माध्यम से पढने आनेवाले बच्चों के लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिएँ और ऐसे सस्थान यह माध्यम फिलहाल रख सकते हैं। फिर भी, चूँकि इन स्कूलों में विद्यार्थियों की अधिकाश सख्या स्थानीय जनसख्या से ही आयगी, इसलिए उन्हें क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से भी पढने की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिएँ।

● सगोष्ठी की यह राय है कि हिन्दुस्तान में स्थापित किये जानेवाले ५ या ६ बडे विश्वविद्यालयों में अँग्रेजी को शिक्षा का एक मात्र माध्यम नहीं होना चाहिए, बल्कि क्षेत्रीय भाषा को एक वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की भी सुविधा होनी चाहिए ताकि इन विश्वविद्यालयों के दरवाजे क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन करनेवाले मेधावी छात्रों के लिए खुले रहें और ये विश्वविद्यालय अपने-अपने क्षेत्रों से अलग न पड जायें।

● सगोष्ठी की दृष्टि में सस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा नये सस्कृत विश्वविद्यालयों के खोले जाने पर किसी प्रतिबन्ध की आवश्यकता नहीं है।

● लिपि के सम्बन्ध में सगोष्ठी की राय है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा के लिए यदि एक ही लिपि चुनी जाती है तो वह देवनागरी होनी चाहिए, और आदिवासी क्षेत्रों में, जहाँ रोमन लिपि इस्तेमाल होती है, उनकी एकता में सहायक होने के लिए इसके बदले क्षेत्रीय लिपियाँ प्रयुक्त होनी चाहिएँ।

प्रौढ एवं समाज-शिक्षा

● सगोष्ठी की राय है कि प्रौढों में व्याप्त वर्तमान निरक्षरता बडी ही गम्भीर समस्या है और

इस समस्या का पूरी उत्कटता के साथ सामना करने के लिए प्रभावोत्पादक और उपयुक्त व्यवस्था नहीं की गयी है। यह महत्वपूर्ण है कि रचनात्मक व समाज-सेवा में लगी संस्थाएँ सर्वांगीण सामाजिक शिक्षा की दिशा में साक्षरता की अभिवृद्धि करने की दृष्टि से सामने आयें और इस समस्या का हल करने के लिए अपना दिमाग और गम्भीरता से लगायें। लोगों के दिमाग में इस समस्या को हल करने के लिए त्वरा निर्माण तथा ज्ञान एवं विज्ञान के लिए भूख उत्पन्न करने की दृष्टि से शिविरों, परिसंवादों तथा गहरे प्रचार के बड़े स्तर पर आयोजन की आवश्यकता पड़ेगी। देश के युवकों को परिचालित व प्रेरित करना होगा ताकि वे उन लोगों के बीच जायें जो खेतों व कारखानों में काम करते हैं और उनके घरों में जाकर उनके काम और जीवन को एक नयी दिशा देने के लिए उनसे तादात्म्य स्थापित करें। ग्रामदान-आन्दोलन ने लोगों को शिक्षित करने की सम्भावनाओं से भरा काम का एक बड़ा जाल ही बिछाया है और सामाजिक शिक्षा के अपेक्षाकृत पूर्ण कार्यक्रम की पूर्ति के तौर पर इस आधार का पूरा उपयोग होना चाहिए। सामाजिक शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह संगोष्ठी सरकारी व गैरसरकारी संस्थाओं को आह्वान करती है कि वे इस अवसर का पूरा उपयोग करें। ●

दुनिया के बच्चो, एक हो जाओ

ऊँ—ऊँ···ऊँ ऊँ

आज पड़ोस से बच्चे के रोने के साथ पिता की डाँट फटकार और तमाचों की आवाज भी रह-रहकर आती, तो यह आवाज तीर की तरह कलेजे में पार हो जाती थी उसे छेद देती थी।

मेरे लिए, उठना बैठना, पढ़ना-लिखना खाना-पीना सब मुश्किल हो जाता था। आखिर मेरी सहनशीलता भी खतम हो गयी। मैं उठकर उनके पास गया। पूछा, 'भाईजी, क्या बात है? बच्चे पर इतने नाराज क्यों हो रहे हैं?'

वे कुछ सकुचाये तो, पर गुस्से में थे। बोले : 'अजी, क्या बताऊँ! अरुण बड़ा जिद्दी है। मैंने तय कर लिया है कि जिद छुड़ाकर ही मानूँगा।'

मैंने कहा : हे भगवन्, तब तो आप ही उससे बड़े जिद्दी साबित हुए न?'

वे बोले : 'अजी, मार के आगे भूत भागता है।'

'खैर, भूत के तो दिल और दिमाग दोनों नहीं होते, इसलिए वह जरूर भाग जाता होगा। पर आप कहते हैं—चुप हो जा, नहीं तो मारूँगा। आप तड़ातड़ पीटते भी जायें और वह फूल-सा बच्चा बेचारा रो भी न पाये। मालूम होता है 'मारें भी और रोने भी न दें' यह कहावत बच्चों पर माँ-बाप के जुल्मों के कारण ही बनी होगी।'

उनका गुस्सा काफूर हो चुका था, बात उनके दिल में उतरती जा रही थी। मैंने उनसे कहा : 'भाईजी, कभी-कभी मेरा मन होता है कि माँ-बाप के अज्ञान और अन्याय के खिलाफ बच्चों का विद्रोह संगठित किया जाय और उनसे कहा जाय—"दुनिया के बच्चो, एक हो जाओ।" वे हँस पड़े, पर तुरत गम्भीर हो गये। बोले : 'बात सोचने की है।'

—जवाहिरलाल जैन

घर का चिराग; घर में आग

"क्या आप विद्यार्थी हैं ?" मैंने पूछा।

"जी हाँ," उसने उत्तर दिया।

"कहाँ के ?"

"क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर के।"

"क्या हाल है आपके यहाँ ?"

"शान्ति है"

"कानपुर उपद्रव का केन्द्र, और आपके कालेज में शान्ति ! यह कैसे ?"

"इसलिए कि वहाँ पढने-लिखनेवाले लडके हैं।"

मैं थोडी देर के लिए चुप हो गया। सोचने लगा कि यह लडका खुद पढने-लिखनेवाला है, और अपने को न पढने-लिखनेवालों से अलग मानता है।

"क्या आपको मेरी बात सही नहीं मालूम होती ?" मुझे गम्भीर देखकर उसने पूछा।

"हाँ, कुछ आश्चर्य जरूर हो रहा है।... तो, उपद्रव किस कालेज में अधिक हुआ ?"

"... कालेज में।"

"क्या वहाँ पढने-लिखनेवाले लडके नहीं हैं ?"

"हैं, लेकिन जो नेता हैं वे विद्यार्थी ही नहीं हैं, कुछ और भी हैं।"

"वे कौन हैं ?"

"दिन में नौकरी करते हैं, रात को विद्यार्थी हो जाते हैं। रात को 'ला' क्लास होते हैं उनमें चले जाते हैं। और, क्लास में न भी गये तो क्या, एल० एल० बी० में पढना क्या रहता है ? मौज कर रहे हैं, बरसों से हास्टल में पडे हुए हैं। और उनका सम्बन्ध बाहर के लोगों से भी है—कुछ पार्टीवालों से, कुछ और तरह के लोगों से।"

"क्या छात्रों के नेता ये ही लोग हैं ?"

"जी हाँ। सब इनके पीछे-पीछे चलते हैं, और ये ही पुलिस से भिडते हैं। ये बच जाते हैं, और फँसते हैं बगुनाह !"

चर्चा और होती लेकिन इतने में गाडी आ गयी और हमलोग अलग हो गये। पर मेरे मन में उस नवयुवक की बातें चलती रहीं।

कानपुर से दिल्ली एक्सप्रेस चली और काफी देर तक चलने के बाद एक स्टेशन पर खडी हुई। डिब्बे में दो मुसाफिर आये। दोनों युवक थे। बैठ गये और आपस में बातें करने लगे। उनकी बातों से मुझे लगा कि इलाहाबाद में किसी सरकारी दफ्तर में काम करते हैं, लेकिन पढाई छोडे अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। ताजी चाय की तरह उनकी बातचीत में यूनिवर्सिटी का 'फ्लेवर' (जायका) था।

"पढते तो बुद्धू हैं," उनमें से एक ने दूसरे से कहा। दूसरे ने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि धीरे से जेब में हाथ डालकर एक डिबिया निकाली, और बोला, "यह देखो, चूना यानी 'प्रोज' (गद्य), और सुरती यानी 'पोएट्री' (पद्य)। प्रोज–पोएट्री साथ-साथ। दो साल मैंने यही पढाई पढी है।" इतना कहकर उसने सुरती में चूना मिलाया और मलने लगा। साथ-साथ बताता जाता था कि किस तरह क्लास में न जाने पर भी उसकी हाजिरी बनती थी, और किस तरह न पढने पर भी उसने इम्तहान पास किया था।

ये दोनों मस्त युवक इलाहाबाद स्टेशन पर उतर गये। अफसोस हुआ कि रहते तो कुछ और मजेदार बातें सुनने को मिलती। ●

छात्र-समस्या पर कुछ महत्वपूर्ण लेख

●

–उदय छात्रों में देश-व्यापी बेचैनी 'ग्रामराज' (सा०) १४ अक्तूबर, '६६, पेज—४

–उपाध्याय, रमेश छात्र-आन्दोलन असन्तोष, बाहरी हस्तक्षेप या अनुशासनहीनता साप्ताहिक हिन्दुस्तान' (सा०) १३ नवम्बर, '६६ पेज—१०

–जैनेन्द्र कुमार छात्र-आन्दोलन और गोलीकाण्ड 'अणुव्रत' (पा०) १ नवम्बर, '६६, पेज–८

–देसाई, मुरारजी छात्र-उपद्रव, राष्ट्रीय समस्या 'हिन्दुस्तान' (दै०) २८ अक्तूबर, '६६

–मेहता, सुरेश नयी पीढ़ी का आक्रोश 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' २७ नवम्बर, '६६, पेज–२७

–राष्ट्रभक्त छात्रों की समस्या पिछले पाप का फल 'आज' (दै०) १० अक्तूबर, '६६

–राव, वी० के० आर० वी० छात्रों की व्यापक अशांति का हल 'आज' १६ अक्तूबर, '६६

–व्यास, सूर्यनारायण प्रश्न कानून व व्यवस्था का नहीं 'हिन्दुस्तान' (दै०) ८ नवम्बर, '६६

–बियाणी, ब्रजलाल छात्रों में असन्तोष क्यों ? 'हिन्दुस्तान' ३० अक्तूबर, ६६

–शास्त्री, प्रकाशवीर वास्तविकता को समझे बिना समस्या का हल सम्भव नहीं 'संसार' (अर्ध साप्ताहिक) २७ अक्तूबर, '६६

–सच्चिदानन्द छात्रों की समस्या 'ग्रामोदय' (सा०) ३ नवम्बर, '६६, पेज–२

–सच्चिदानन्द यह सब क्यों ? 'ग्रामोदय' (सा०) ६ अक्तूबर, '६६, पेज–२

–सम्पूर्णानन्द छात्र-असन्तोष का समाधान हिन्दुस्तान' ३–११–'६६

–सम्पूर्णानन्द छात्रों को तोप का चारा बनाना खतरनाक 'हिन्दुस्तान' २७ अक्तूबर, '६६,

–सादिक अली छात्रों में व्यापक अशान्ति 'आर्थिक समीक्षा' (पा०) २५ अक्तूबर, '६६, पेज–३

– कुछ सिफारिशें, कुछ शिकायतें, कुछ मान्यताएँ, 'दिनमान २८ अक्तूबर, '६६, पेज–१५

– चिनगारी जो शोला बनी (मध्य प्रदेश में छात्र-आन्दोलन) 'दिनमान' ३० सितम्बर, '६६, पेज–२२

– छात्र-आन्दोलन (सम्पादक के नाम कुछ सुझाव के पत्र) 'दिनमान' ४ नवम्बर, '६६, पेज–४

– छात्र का झण्डा और पुलिस का डण्डा 'दिनमान' १४ अक्तूबर, '६६, पेज–१६

– छात्रों का असन्तोष 'भूदान यज्ञ' ४ नवम्बर, '६६, पेज–४२

– छात्रों का असन्तोष और सरकार 'भूदान-यज्ञ' १४ अक्तूबर, '६६, पेज–२

– छात्रों की अनुशासनहीनता या पुलिस की निदयता 'दिनमान' २८ अक्तूबर, '६६, पेज–२१

– पश्चिम बंगाल हिमालय की गोद में 'दिनमान' २८ अक्तूबर, '६६, पेज–२२

– राष्ट्रीय प्रदर्शन की तैयारी 'दिनमान' २१ अक्तूबर, '६६, पेज–१३

– विद्यार्थी, विराम या अर्धविराम 'दिनमान' २५ नवम्बर, '६६, पेज–२९

– समाजद्रोही कौन है ? 'दिनमान' १४ अक्तूबर, '६६, पेज–१२

–सर्व सेवा संघ के सन्दर्भ-विभाग से प्राप्त

अनुक्रम

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १५वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

अवश्य पढ़ें

आज के ये जीवित प्रश्न हैं—सम्पूर्ण मनुष्य के समग्र विकास की उन्नत भूमिका क्या हो ? किसान के लाभ और लोकतन्त्र के अवसर 'सर्व' के लिए कैसे सुलभ किये जायँ ? नये मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही साधनों और अवसरों का उपयोग कैसे हो ? समाज आज के बन्धनों—राज्यवाद, पूँजीवाद, सैनिकवाद और सम्प्रदायवाद से किस प्रकार मुक्ति पाये ? उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना कैसे सम्भव हो ? लोकतन्त्र और विज्ञान की भूमिका में संघर्षमुक्त क्रान्ति कैसे सम्भव होगी ? सार्वनिक अभय-भावना का निर्माण कैसे हो पायगा ? यही प्रश्न नहीं ऐसे ही अनेक अनेक प्रश्न आज के जन-मानस को उद्वेलित कर रहे है। अगर आप इन प्रश्नों के सम्बन्ध में जागरूक हैं, सोचते-विचारते है, भारतीय जन-जीवन के सम्बन्ध में गतानुगति से अलग हटकर विचार करने की अभिलाषा रखते हैं तो, ग्रामदान : प्रचार, प्राप्ति पुष्टि अवश्य पढ़े। इसको तैयार किया है आचार्य श्री राममूर्ति ने। मूल्य है मात्र एक रुपया।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१

नयी तालीम, दिसम्बर, '६६
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल. १७२३

'नयी तालीम'-विशेषांक
(अप्रेल-मई, १९६७)
विषय—शिक्षण के प्रारम्भिक १४ वर्ष

खण्ड १ —समाज में शिक्षण का रोल
—वैज्ञानिक शिक्षण की दृष्टि
—शिक्षा-दर्शन की भित्तियाँ
—शिक्षण के पहिले १४ वर्षो की शिक्षा का महत्व

खण्ड २ —माँ का मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक शिक्षण
—शिशु-जन्म, जन्म के बाद के महीने

खण्ड ३ —माँ की गोद में
—शिशु-विहार, स्वरूप और अपेक्षाएँ

खण्ड ४ —बच्चे के पहले दो साल
—अन्य अभिभावकों का रोल

खण्ड ५ —बालमन्दिर-३ से ६ साल
—संस्कार-शिक्षण
—परोक्ष शिक्षण के विभिन्न माध्यम
—बुनियादी शिक्षण
—जीवन के द्वारा
—जूनियर प्राइमरी
—सीनियर प्राइमरी

खण्ड ६ —प्रकृति, समाज और जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में बालक का शिक्षण
—उत्पादन-उन्मुख शिक्षण
—नागरिक जीवन की स्वयंपूर्ण इकाई बनने की क्षमता का विकास।

यह विशेषांक १०० पृष्ठों का होगा और १५ मई, '६७ को प्रकाशित हो जायगा। विशेषांक के लिए रचनाएँ १५ मार्च तक प्राप्त होनी चाहिएँ। —सं०

आवरण मुद्रक—वर्द्धमान प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २३,५००, इस मास छपी प्रतियाँ २३,५००

जनवरी, १९६०

हम भूल न जायँ
कि भारत को, शहरों और कस्बों से भिन्न, अपने सात लाख (आज करीब पाँच लाख) गावों की दृष्टि से सामाजिक नैतिक और आर्थिक आजादी अभी प्राप्त करना बाकी है। सच्ची लोकशाही की स्थापना के ध्येय की ओर बढने के मार्ग में सैनिक-शक्ति पर लोक-शक्ति की विजय का संघर्ष अनिवार्य है।

(२९ जनवरी १९४८)

× × ×

मेरे जाने के बाद कोई भी अकेला व्यक्ति पूर्णतः मेरा प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। लेकिन मेरा थोड़ा थोड़ा अंश बहुतों के अन्दर मौजूद रहेगा। अगर हरएक 'लक्ष्य' को प्रथम और 'खुद' को आखिर में रखेगा, तो मेरे चले जाने से जो रिक्तता पैदा होगी, वह बहुत हद तक भर सकेगी।

—महात्मा गांधी

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

बीता कल, आनेवाला कल

आराम के साथ बीता या तकलीफ के साथ, किसी तरह एक साल और बीत गया। अगर यह उम्मीद होती कि नये साल की तकलीफ आनेवाले साल में नहीं रहेगी तो बीते दिनों के दुख को आनेवाले दिनों की खुशी के लिए भुलाना आसान होता, लेकिन ऐसा होने की क्या उम्मीद है? इसलिए आनेवाले कल के लिए उमंग की जगह मन में नया भय पैदा होता है, और अन्दर से आवाज आती है कि यह साल तो किसी तरह बीता, मालूम नहीं अगला साल कैसे बीतेगा। हालत यह है कि जो भविष्य हर मृत्यु को नये जीवन और हर पराजय को नयी विजय का प्रारम्भ-विन्दु बनाता है उसका भय आज करोड़ों को खाये जा रहा है। और, कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम जी इसलिए रहे हैं कि मर नहीं रहे हैं।

१९६६ से बढ़कर १९६७ क्या लायगा? '६६ में पानी नहीं बरसा, फसलें नहीं हुई, अकाल रहा; क्या '६७ में भरपूर बारिश होगी, खूब अनाज होगा, और भरपेट खाने को मिलेगा? '६६ में चुनाव नहीं हुए, लेकिन उपद्रव खूब हुए, क्या '६७ में चुनाव होंगे, और उपद्रव नहीं होंगे? '६६ शिकायतों का साल था, क्या '६७ खुशियों और बधाइयों का साल होगा? आखिर, क्या-क्या नया होगा?

मालिक-मजदूर, व्यापारी-ग्राहक, शिक्षक-विद्यार्थी, अफसर-मातहत, नेता-जनता, सबको सरकार से शिकायत है। सरकार सबकी है, इसलिए सब उस पर अपना हक मानते हैं, और हक मानकर माँगें करते हैं, पूरी न होने पर नाराज होते हैं, और नाराजगी प्रकट करने में कोई बात उठा नहीं रखते। नहीं भूलती गाँव के उस अन्धे आदमी की बात जो उसने कुछ महीने पहले अपने ही गाँव की एक सभा में कही थी। उस वक्त एक विरोधी दल की ओर से जगह-जगह स्टेशनों पर तोड़-फोड़ की कार्रवाई की जा रही थी, और कुछ लोगों में इस तरह के कामों के लिए बड़ा उत्साह था। सभा में सर्वोदय के वयोवृद्ध नेता शिवमंगल बाबू समझा रहे थे कि रेल सरकार की नहीं है, देश की है, उन्हें बरबाद करना देश को बरबाद करना है। इसपर गाँव का एक आदमी बोल उठा . 'हमारे गाँव में भी तोड़-फोड़ करनेवाले दो-चार लोग

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ६

मौजूद है।' इतना सुनते ही वह अधेड आदमी उठ खडा हुआ। गुस्से से उसका चेहरा तमतमा गया। गरजकर बोला 'इन लोगो ने अठारह साल तक बरबाद किया है, तो क्या हमलोगो को, एक बार भी बरबाद करने का हक नही है?' तर्क सटीक है लेकिन इसका क्या तुक है कि शिकायत तो हो सरकार से और गुस्सा उतरे देश पर? १९६६ के अन्त तक हमलोगो को सरकार और देश का अन्तर नही समझ मे आया था, क्या १९६७ मे समझ मे आयगा?

१९६७ के शुरू म चनाव है। इसमे पुरानी सरकारे नयी होगी, और हो सकता है बिलकुल नयी सरकारें भी बनें। लेकिन इस चुनाव म पार्टियो की हार-जीत से ज्यादा बडी चीज की बाजी है। बाजी है उन सारे तरीको की जिन्हे हमने १९४७ म अपनाया—अपने सवालो को हल करने के तरीके, और अपनी शिकायतो को प्रकट करने के तरीके, व्यवस्था और विकास के तरीके, वे तमाम तरीके जिनसे देश का जीवन चलता है, और हमारे आपसी सम्बन्ध बनते और निभते हैं। एक शब्द मे कहना चाहे तो 'लोकतत्र' कह सकते है। हमने तय किया था कि सब सवाल मानकर और मनाकर हल करगे, लेकिन चलते-चलते १९६६ में हम यहाँ पहुँच गये कि बुद्धि और विवेक से ज्यादा शक्ति है विरोध में, उपद्रव मे, षडयन्त्र म। वैमनस्य, विरोध और उपद्रव ये जैसे हमारे धर्म बन गये है। हर जगह हर चीज का विरोध हो रहा है। लगता है जैसे एक राय होकर चलना मनुष्य की शोभा क विरुद्ध है। पहले कहा गया कि विरोध राजनीति मे जायज है, बाद को इसका यह मतलब निकाल लिया गया कि हर चीज की राजनीति बना लेना जायज ही नही, जरूरी है। आज तो धर्म, भाषा, राज्यो की सीमा, नदियो का पानी, गाय, सूखा, आदि कोई भी ऐसी चीज नही रह गयी है जिसको राजनीति से अलग रखकर देखा जाता हो।

चुनाव के बाद नयी सरकार बनेगी तो क्या होगा विरोध बढेगा या एकता? देश को एकता की जरूरत है, जब कि राजनीति को विरोध की आदत पड गयी है। दल सत्ता चाहता है और राजनीति को सत्ता की प्यास है। यह विरोध कैसे मिटेगा? और अगर यह विरोध न मिटा तो १९६६ से १९६७ किस अर्थ म भिन्न होगा?

१९६६ बीतते बीतते एक नयी बात पैदा हुई है जिसको आगे बढाने की जिम्मेदारी १९६७ पर होगी। वह क्या? वह यह कि बावजूद चुनाव और दलबन्दी के देश की दो जगहों को इस 'राजनीति' से मुक्त करना चाहिए — एक छोर पर दिल्ली को, दूसरे छोर पर गांव को। गांव विकास का स्रोत है और दिल्ली राष्ट्र का प्रतीक। दिल्ली म राष्ट्रीय सरकार हो और गांव में समता के आधार पर ग्राम-परिवार हो। गांव में भूमि की मालिकी मिटे, और दिल्ली में सरकार बनाने के लिए दलो की दीवाले ढहे।

यह हो तो गांव से लेकर दिल्ली तक एकता की धारा बहे, समता की चाह बढे, और शान्ति की शक्ति प्रकट हो। १९६६ मे जो कुछ हुआ इसके विपरीत हुआ, १९६७ में दिशा बदलनी चाहिए।

—राममूर्ति

अकाल की परिस्थिति में छात्रों का कर्तव्य

●

विनोबा

लगभग १५ साल से मैं बुनियादी क्रान्ति-कार्य में लगा हुआ हूँ। उसमें सफलता मिलती है तो उसमें भारत का, भारत सरकार की तालीम का और ग्रामव्यवस्था का पूरा स्वरूप बदल जाता है। ऐसे क्रान्ति के काम में उतार चढाव हुआ करते हैं। इस समय बडा जोरदार आन्दोलन चल रहा है। यहाँ, जहाँ हम बैठे हैं वहाँ, ८ प्रखण्डों का दान हुआ है। दान का मतलब है गाँव के लिए ऐच्छिक समर्पण—लोक सम्मत क्रान्ति। यह आन्दोलन बिहार में जोरों से चल रहा है। भारत के दूसरे प्रान्तों में भी (तमिलनाड पजाब वगैरह में) यह आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा है। ऐसी हालत में इधर उधर ध्यान देना मेरे स्वभाव में नहीं है। बिना एकाग्रता के ऐसे काम नहीं होते। यह ऐसा कार्य है जिसमें अगर विद्यार्थी लगें, उसके लिए सोचें, तो उनके लिए बडे पुरुषार्थ और पराक्रम का मौका है।

मिलजुलकर अकाल का मुकाबिला करें

इस साल बिहार में बडा अकाल पडा है। यह अकाल मामूली नहीं है। इसमें अगर उपेक्षा हुई, इसकी तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया गया, बिहार के सारे विद्यार्थियों, शिक्षकों, नागरिकों, मंत्रियों आदि की ताकत इसमें नहीं लगी, बिहार के बाहर के प्रान्तों से मदद नहीं मिली, केन्द्रीय सरकार पूरी तरह से मदद नहीं कर सकी और दुनिया से जरूरी मदद नहीं मिली तो आपको और हमको लाखों लोग फाका करके आँखों के सामने मरते हुए दिखाई पडेंगे।

पुरानी बात है सन् १९४३ की। द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। तब कलकत्ता में करीब ३० लाख लोग फाका करके मर गये। हम उस समय जेल में थे। हमारे दूसरे साथी कहते थे कि अंग्रेजों का राज है तो यह होना ही था। हम सब लोग "क्विट इंडिया"—भारत छोडो आन्दोलन में पकडे गये थे। जेल में थे तो सारा दोष अंग्रेज सरकार के सिर पर था। लेकिन आज अगर यह हालत बिहार में हो जाय तो आप और हम सब इसके दोषी हैं। ऐसी हालत में नागरिक को अन्य चीजों से ध्यान हटाकर इधर ध्यान देना होगा। गाँव-गाँव में जाकर ग्रामसभा बनानी होगी ग्रामकोष तैयार करना होगा, शान्ति से काम करना होगा अनाज का अच्छा वितरण करना होगा।

हमने अपनी जिन्दगी में ऐसा अकाल नहीं देखा था। यह तो हमारे सामने एक चुनौती है। उसमें से विद्यार्थी अलग नहीं हो सकते, क्योंकि उनको भी खाना पडता है। बिना खाये विद्या नहीं होती। इसके लिए उपनिषद ने बहुत पहले कह रखा है—"अन्न बहु कुर्वीत तद व्रतम्"। खाने को अन्न नहीं मिलेगा तो प्रेम दया, करुणा आदि सद्गुण ही खतम हो जायेंगे ब्रह्मविद्या की बुनियाद ही उखड जायगी। इसलिए उपनिषदों ने 'अन्न बढाओ' की बात बतायी। लेकिन इस बुनियादी काम को भी इतने दिनों में हम नहीं कर पाये। इसके लिए दोष देने में कोई सार नहीं है। हर भारतीय को जिसके मन में प्रेम है, उसे, उससे जो कुछ बन सकता है, वैसा प्रेम प्रदर्शन करने का मौका भगवान ने दिया है। सगठित रूप से इस अकाल का मुकाबिला करने का प्रसंग हमारे सामने उपस्थित है।

मुझे कहा गया था कि विद्यार्थियों के दंगे आजकल बहुत हुआ करते हैं। मैंने विनोद में पूछा कि 'दंगे किनके हैं? विद्यार्थियों के, कि परीक्षार्थियों के?' विद्यार्थी तो बाबा है वह रोज अध्ययन करता है। मेरा अध्ययन अध्यापन तो निरन्तर जारी ही है। इसलिए बाबा समझता है कि वह विद्यार्थी है। पदयात्रा के १३-१४ सालों में मैंने क्या-क्या नहीं सीखा? जापानी, जर्मन, चीनी, तथा

विद्यार्थी-जगत् को कौन सँभाले ?

•

काका कालेलकर

अस्वस्थता स्वयं एक रोग है जो बुद्धिशक्ति को क्षीण करता है। अनुभवी लोगों ने यह कहा ही है 'स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति'। जब चित्त का स्वास्थ्य स्थापित होता है तभी बुद्धि अपना काम करती है, दोषों के कारण ढूंढे जाते हैं और कठिनाई दूर करने के इलाज भी सूझते हैं।

अपनी कठिनाइयाँ और अपना असन्तोष विद्यार्थी लोग चिल्ला चिल्लाकर प्रकट करते हैं, व्यक्तिश: और इकट्ठा होकर प्रस्ताव करके भी। तो भी विद्यार्थी की अस्वस्थता का गहरा कारण समझ में नहीं आता। देश के शिक्षा शास्त्री, आचार्य, कुलपति कुलनायक आदि अधिकारी-वर्ग और देश के नेता भी अपना पृथक्करण पेश करते जाते हैं। विद्यार्थियों के साथ जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध है ऐसे विद्यार्थियों के माँ-बाप अभी तक चुप ही हैं। उन्होंने व्यक्तिश: अथवा संगठित रूप में कुछ कहा हो तो हमारे पढ़ने सुनने में नहीं आया।

असन्तोष का छूत

विद्यार्थी अपने-अपने हाईस्कूलों में और कालेजों में पढ़ते हैं। ये शिक्षा-संस्थाएँ अनेक राज्यों में काम करती हैं। हरएक स्थान पर स्थानिक सवाल अलग-अलग होते हैं। इसलिए हमें आश्चर्य इस बात का है कि देखते देखते विद्यार्थियों का असन्तोष छूत के रोग जैसा सर्वत्र क्यों फैल गया है? देश के मजदूर-दलों का संगठन हम समझ सकते हैं। उनको तनख्वाह कम मिलती है। काम करते उन्हें पूरा आराम नहीं मिलता है। उनके जीवन की अनिश्चितता उनको अखरती है। उनका संगठित होना स्वाभाविक है। अगर देश के किसान भी संगठित हो जायें तो उसमें आश्चर्य नहीं है। अब तो सरकारी कर्मचारी और पुलिस भी संगठित होने लगे हैं। संघे शक्तिः कलौ युगे। लेकिन विद्यार्थियों का अखिल राष्ट्रीय संगठन किस उद्देश्य से हो सकता है? उन्हें उनका खर्चा तो माँ-बाप से मिलता है। वजीफा की मदद भी मिलती है। थोड़े विद्यार्थी नौकरी करके कमाते हैं और पढ़ते भी हैं। अर्न व्हाइल यू लर्न यह है उनका सूत्र। लेकिन विद्यार्थियों का ऐसा व्यापक संगठन हमारे ध्यान में नहीं आता है। हमारे जमाने में देश की आजादी के लिए हम संगठित होते थे प्रकट रूप से या गुप्त रूप से। लेकिन उसका वायुमण्डल अलग था। आज का वायुमण्डल ही अलग है।

आज तो ऐसा दीख पड़ता है कि विद्यार्थी असन्तुष्ट होकर प्रथम संगठित होते हैं और बाद में अपने असन्तोष को कोई मजबूत बुनियाद देने के लिए कोई कारण या हेतु ढूंढने लगते हैं।

जब गांधीजी ने देश के असन्तोष को वाणी दे दी और असन्तुष्ट लोगों को संगठित किया और सत्याग्रह का तरीका बताया तब उन्होंने नागरिकता का प्रथम लक्षण लोगों के सामने रखा कि हम तनिक भी हिंसा न करें, कानून अपने हाथ में न लें और विजय पाने पर नम्र होकर कम-से-कम माँगें पेश करें और झगड़े के अन्त में मैत्री की स्थापना के लिए अनुकूल वायुमण्डल तैयार करें।

गांधी का अहिंसात्मक व्याकरण

गांधीजी ने कानून की नाफरमानी सिखायी सही, आज्ञा का भंग सिखाया सही, किन्तु उसके साथ सर्वोच्च सस्कारिता और सज्जनता जोड़ दी। डिसओबिडिएन्स सही लेकिन वह सिविल होना चाहिए। तभी वह वैध

गिना जायगा। आजकल इस अहिंसा का व्याकरण लोग भूल गये हैं। उसके प्रति लोगो के मन म विश्वास और आदर है नही। इसीसे सब कुछ बिगड गया है। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा ही था कि "ब्रिक बैट्स विल ग्रोनली इनवाइट बुलट्स" पुलिस पर अगर हम रोडा की बौछार करेंगे, तो जवाब में गोलियो की बौछार मिलेगी ही। गाधीजी भी यही कहते थे कि अगर हमने थोडी भी हिंसा की तो विरोधियों की सवाई हिंसा का, शतगुणी हिंसा का समथन होता है। इसलिए प्रोवाकेशन कुछ भी हो हमे पूर्णतया अहिंसक ही रहना है इसीम हमारी नैतिकता सिद्ध होगी और विजय भी निश्चित रूप से मिलेगी।

गाधीजी का यह अहिंसात्मक व्याकरण लोग भूल गये है। सरकार को और सरकार की पुलिस को हिंसात्मक इलाज ग्राजमाने के लिए बाध्य करने स सरकार की लोकप्रियता टूट जायगी और चुनाव मे हम जीत जायेंगे एसी ग्रन्धी नीति लोकप्रिय हो रही है। इसका फल कुछ भी हो। कई लोग नाहक मर जाते है और देश का वायुमण्डल विपाक्त होता है। इसमे देश के लिए बडा खतरा है।

जनता का मानस और सरकार

हम देखते है कि विद्यार्थियो को क्या चाहिए वे स्वय नही जानते। देश के सार्वत्रिक असन्तोष की प्रतिध्वनि ही उनकी अस्वस्थता के पीछे दीख पडती है। स्वराज्य पाने के बाद समाजसत्तावाद की जो बात श्री जवाहरलालजी ने चलायी उसके पीछे विश्वप्रवाह का अध्ययन था देशमानस का परिचय कम था। लोग इतना ही समझ गये कि अब सब कुछ जिम्मेदारी सरकार की है। जनता के लिए दो या तीन ही बातें रह जाती है चुनाव के दिनो मे वोट देना, सरकार मांगे वैसे टैक्स देना और सरकार की नुक्ताचीनी करनेवाले वचन सुनते रहना। जो कुछ भी करना हो, सरकार करे। हमे जो भी चाहिए, देने के लिए सरकार बाध्य है। प्रजा का काम करने की कुशलता और योग्यता सरकारी तन्त्र में हो या न हो सरकार के अधिकार बढते ही जाते है। सोशलिज्म की दीक्षा न जनता को मिल रही है न सरकारी कर्मचारियो को। सबकी सब कठिनाइयाँ इसी एक कमी के कारण खडी हुई है और नये जमाने के प्रतिनिधि विद्यार्थियो क जीवन मे एक भयानक पोलापन तैयार हुआ है। सामान्य मानस को आजीविका की चिन्ता काफी होती है। विद्यार्थियो में नया लहू होता है। महत्त्वाकाक्षा को पोषण देने की उनकी उम्र होती है। एसे समय उनके सामने कोई महान् जीवनोद्देश्य हो तो राष्ट्र देखते-देखते उन्नति कर सकता है। विद्यार्थियो के सामने आज कोई ऐसा जीवनोद्देश्य, मिशन अथवा पुरुषार्थ है नही। इसीलिए वह शून्यता और पोलापन तरह-तरह के विकृतरूप धारण करता है।

और राज्यतत्र भी ऊपर से नीचे तक नये आदर्श से प्रेरित हुआ नही दीख पडता है। आप हुक्म करते जाइए, हम निष्काम भाव से सफलता निष्फलता का खयाल किये बिना अमल करते जायेंगे यही वृत्ति दिख पडती है। राज्यतत्र की नये जमाने की नयी प्रेरणा राष्ट्र-जीवन के अतरग तक पहुँची नही है। नवजीवन की प्राणवान् प्रेरणा मे ही राष्ट्र सजीवन होगा। ●

विद्यार्थियो को राजनीति मे भाग नही लेना चाहिए। वे विद्यार्थी तथा शोधक है, न कि राजनीतिक।

× × ×

विद्यार्थी किसी दल का पक्ष क्यो ले! विद्यार्थियो का पक्ष है—विद्यार्थी तो विद्याभ्यास करते हैं, सारे मुल्क के लिए, अपने काम के लिए नही, अपना पेट भरने के लिए नही।

—गाधीजी

छात्र-असन्तोष का निराकरण

●

प्र० ना० कौशिक

उप-आचार्य, नेहरू शिक्षा महाविद्यालय, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया (राजस्थान)

विगत तीन मास से विद्यार्थियों में असन्तोष की प्रतिक्रिया का जो रूप देखने में आया है—उसे देखकर लगता है कि यदि इस स्थिति को सँभाला नहीं गया तो प्रजातन्त्र का भविष्य ही अनिश्चित हो जायगा। देश को स्वतन्त्र हुए दो दशक पूरे हो रहे हैं। इस अवधि में प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक में असन्तोष की इतनी व्यग्र लहर दौड़ रही है, जिसे सम्भालना मुश्किल हो गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् आज तक कई शिक्षा आयोगों ने जिस परिश्रम और लगन से निष्कर्ष निकाले, प्रतिवेदन प्रस्तुत किये, वे सब विद्वानों के ज्ञानपूर्ण प्रवचन से अधिक कुछ नहीं कहे जा सकते। न जाने उन्हें व्यावहारिक रूप क्यों नहीं प्रदान किया गया!

आज सम्पूर्ण शिक्षण-क्रम और उसके परिणामों को लेकर उभरनेवाले प्रश्न-चिह्न स्पष्ट हैं—सर्वांगीण विकास प्रदान करनेवाली शिक्षा आज जीवन के हर चरण में उपहासास्पद बन गयी है एवं विद्यालय व्यवस्थित अव्यवस्था के केन्द्र। जनसाधारण के समक्ष उपस्थित होनेवाले कुछ प्रमुख समाचार-पत्रों के शीर्षक नीचे प्रस्तुत हैं —

१ 'विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के हिंसात्मक प्रदर्शन के पश्चात् अनिश्चित काल के लिए बन्द।'

२ 'विश्वविद्यालय एवं अन्य राष्ट्रीय सम्पत्ति को विद्यार्थियों द्वारा बहुत बड़े स्तर पर क्षतिग्रस्त किया गया। यातायात ठप्प।'

३ 'हिंसात्मक कार्यवाही व अव्यवस्था को रोकने के लिए पुलिस द्वारा विद्यार्थियों पर लाठी चार्ज व गोलीवर्षा।'

४ 'विद्यार्थियों के गोली से मरने की संख्या पाँच, भारी संख्या में हताहत।'

५ 'विद्यार्थी आन्दोलन के पीछे राजनीतिक पार्टियाँ अपने स्वार्थ साधने में लगी हैं।'

६ 'पुलिस अधिकारियों व कुलपतियों का दो-दिवसीय अधिवेशन समाप्त।'

कर्म और भावना-पक्ष का लोप

राष्ट्रीय स्तर पर विद्यार्थियों के प्रदर्शन हों और उनको समझने की अपेक्षा दमनात्मक कदम उठाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। कोई भी आन्दोलन हो, उसका पूर्व आभास हो ही जाता है। कहते हैं कि इलाज से परहेज बेहतर है। हमारी शिक्षा भावना और व्यवहार से अलग परीक्षा पर ही केन्द्रीभूत हो गयी है। येनकेन प्रकारेण परीक्षा में सफलता मिलनी चाहिए। परीक्षा में सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कौन कितनी अधिक सूचना उत्तर में बताता है। जब सूचनाएँ मात्र व्यक्ति के भाग्य का निर्णय करेंगी तो कर्म और भावना-पक्ष का सर्वथा लोप हो जायगा। अकेला ज्ञान-पक्ष बौद्धिक खेल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जीवन में व्यवहार-पक्ष को दृढ़ करने हेतु यह आवश्यक है कि 'कर्म और भावना' पक्ष का विद्यार्थी में समुचित विकास हो।

आज तकनीकी शिक्षा के अतिरिक्त शेष शिक्षण उद्देश्यहीन दृष्टिगोचर हो रहा है। सामान्यबुद्धि या मन्द-बुद्धि बालक कला-विषय की ओर धकेल दिये जाते हैं, जब कि सही यह है कि केवल विलक्षणबुद्धि बालक ही कला और साहित्य की ओर अग्रसर होने चाहिए। कला क्षेत्र का साधारणबुद्धि बालक जब अपने जीवन के बीस वर्ष सामान्य सूचनाएँ प्राप्त करने तक ही अपने ज्ञान को सीमित रखता है तो व्यावहारिक जीवन में भी उसे यही अपना व्यवसाय दिखाई देने लगता है। मेकाले का प्रयोग ब्रिटिश शासन काल में सफल रहा। क्लिर्कों का यह

दल अध्यापन-व्यवसाय की ओर भी बड़ी तेजी से बढा और आज भी बढ रहा है। इस अनुचित चयन के कारण शिक्षा केवल सूचना प्राप्त करना मात्र रह गयी। देश में ऐसे अध्यापकों की कमी नहीं, जो एक चहा अपने पैर के नीचे दाबे बैठे हैं एवम् घात लगाये हैं चूजो पर। मौका लगा तो अवसरे चूह को वहीं छोड चूजो की जिन्दगी में गायब हो जायेंगे।

अध्यापन मे महत्व श्रेणी का नहीं, मनोवृत्ति का होना चाहिए—चयन के समय भावना का, अध्यापन में निष्ठा का। जबतक पाठ्यक्रम के सामाजिक मूल्यों का विद्यार्थी में दृढीकरण नहीं होगा यह दु:खद संघर्ष समाप्त नहीं होनेवाला है।

रोग और रोगी

शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी के माध्यम से समाज में विश्वास, निष्ठा, रहन सहन का उत्तम स्तर एवं सुखी भविष्य का निर्माण करती है। हमारे विद्यार्थियों के प्रदर्शन छोटे से छोटे व्यवसायी को नहीं छोडते, जो दिन-भर फिर फिरकर एक रुपये की मजदूरी करता है। रहडी लुट जाने पर सब्जीवाला अपने परिवार सहित भूखे पेट सो जाता है लगता है, हमारी शिक्षा ने विद्यार्थी में अनुभूति नहीं दी। सामाजिक संरक्षण की भावना उत्पन्न नहीं की, उन्हें वह दर्द नहीं दिया जो संतप्त प्राणी का सहारा दे। दैनिक जीवन में—बस के दो मिनट के सफर में किसी तरुणी के लिए अपना स्थान छोड़कर खड़े हो जानेवाले कितने ही ऐसे माई के लाल हैं, जो रेल-यात्रा में जागते हुए आँख बन्द किये लेटे रहेंगे—परन्तु जरा पैर सिकोड़कर दो घण्टे से खडी किसी वृद्धा को केवल बैठने-भर के लिए स्थान देने की शिष्टता न दर्शायेंगे।

आज हमारे प्रयास रोगी की चिकित्सा मात्र रह गये हैं, रोग का उन्मूलन नहीं। आवश्यकता है रोग के उन्मूलन की और यह उस समय तक सम्भव नहीं जबतक कि घर स्वयं सामाजिक संस्कार-सम्पन्न न हो। शिक्षा आज नैसर्गिक अनिवार्यता बन गयी है। विद्यार्थी का स्वतंत्र सामाजिक जीवन बिताने से पूर्व का जीवन किसी-न-किसी रूप में विद्यालय से नियमित होता रहता है।

विद्यालय में बालक अकेला नहीं रहता है। वहाँ एक संगठित समाज है। उसमें छात्रावास का जीवन परिवार के जीवन से भिन्न नहीं है। वह भिन्न भिन्न परिवारों से आये बालकों का परिवार है। जब विद्यार्थी सामाजिक जीवन में अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करता दृष्टिगोचर होता है तो स्पष्ट है कि विद्यालय का जीवन सर्वथा दोषपूर्ण चल रहा है। वहाँ बालकों में उन संस्कारों का निर्माण नहीं हो रहा है, जिससे सम्यक् जीवन का रूप निखरे। उन पर्वों या उत्सवों का आयोजन नहीं हो रहा है, जिससे बालकों के जीवन में सामाजिकता के प्रति आस्था हो। सामाजिक सौजन्यपूर्ण मूल्यों के सर्वथा अभाव ने विद्यार्थी-वर्ग के सामाजिक संस्कार सर्वथा समाप्त कर दिये हैं। उन्हें समाज एक उद्देश्यहीन यातायात से बढकर कुछ नहीं लगता, जिसका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है।

विद्यार्थी ही नहीं, समाज का हर प्राणी दूसरे की सहायता से अपने को खींचता है। सत्य तो यह है कि उसे अज्ञात भय घेरे रहता है कि वह अनिश्चित काल के लिए झगडे में फँस जायगा। हमारे देश में सामाजिकता से पलायन के बीज फूट चुके हैं। जिन सरकारी कर्मचारियों का समाज से सीधा सम्पर्क है—उनका व्यवहार प्रायः ऐसा देखने में आता है, जैसे वे ही जीवन-दाता हैं। यदि उनके अनुकूल कार्य नहीं किया गया तो जिन्दा निगल जायेंगे। एक ओर जहाँ विद्यार्थियों और अध्यापकों में सामाजिक संस्कार अपेक्षित हैं, वहाँ जन जीवन के सम्पर्क में आनेवाले पुलिस, रेल, बस, चिकित्सा एवं अन्यान्य कर्मचारियों को अपने संस्कारों में एक बात अवश्य बैठा लेनी चाहिए —

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्।'

(जिसे तुम अपने अनुकूल नहीं समझते उसे दूसरों के लिए कभी न करो।)

राष्ट्र की आधारशिला

राष्ट्रीय भावना का निराशास्पद और उदासीन रूप प्रतिदिन के आन्दोलनों में देखने को मिल ही रहा है—आग, दंगे, हिंसात्मक प्रदर्शन, लाठीचार्ज, गोलियाँ, कर्फ्यू। पूर्ण सरकारी नियंत्रण के पश्चात् भी इन सभी बातों की पुनरावृत्ति इस तेजी से हो रही है—मानो राष्ट्र से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, कोई ममत्व नहीं। बहुत बड़े-बड़े राष्ट्रीय स्तर के संगठन यथा—कांग्रेस, जनसंघ, प्रजा-समाजवादी आदि में बहुधा अव्यवस्थित रूप जब विद्यार्थी के

सामने आते हैं, वह समद में हाथापाई के समाचार पढ़ता है, बालक की उच्छृङ्खलता अवसर मिलते ही सहज फूट पड़ती है। विद्यार्थी किसी वर्ग या जाति का नहीं, वह सम्पूर्ण राष्ट्र का है। अत हम सबका सामूहिक दायित्व हो जाता है कि विद्यार्थियो के समक्ष व्यवस्थित एव नियन्त्रित आदर्श उपस्थित करें। आनेवाली पीढ़ियो में कम-से-कम एक भाव तो उत्पन्न करें जिससे वे अपना स्वार्थ राष्ट्र के हित में त्याग सकें, राष्ट्र के आह्वान पर एक-मत हो सकें। सम्पूर्ण राष्ट्र का कष्ट एव एक का कष्ट बन जाय और राष्ट्र की प्रसन्नता जन-जन की खुशी। राष्ट्र जीवन-रक्षा का ही नहीं, वरन् विकास का एक क्रम है। शिक्षा, राष्ट्रीय एकता, व्यावसायिक कुशलता, लोकहित भावना, चिन्तन और नैतिक शक्ति की आधार-शिला है।

विषय की अनिवार्यता (चाहे वह अँग्रेजी भाषा हो या एन सी सी) अपना महत्व समाप्त किये दे रही है। उसमें वह गम्भीरता नही रह गयी है, जिस पर गर्व किया जा सके। स्वतन्त्रता के बीस वर्ष बाद भी हम अपने को भारतीय कहने में कुछ सकोच का अनुभव करते है। हमारा राष्ट्रीय परिधान, राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय जीवन उभर नही पाया है। इन सबके मूल मे है राष्ट्रीय सस्कारो का अभाव। ब्रिटिश-शासनकाल में हमारे राष्ट्रीय सस्कार व्यक्तिगत भूख और शान्ति से ऊपर झलकने लगे, राष्ट्र सकीर्णता और स्वार्थ से ऊपर उठा तभी देश स्वतन्त्र हुआ। न्याय, सहानुभूति प्रेम, सहयोग, स्वतन्त्रता और विकास के समान अवसर प्रजातन्त्र के स्तम्भ हैं। प्रजातन्त्र की रक्षा मानवता की रक्षा है।

समय आ गया है—हम एक राष्ट्रीय आचार-सहिता का निर्माण करें और हमारे विद्यालय राष्ट्रीय सस्कार-मन्दिर बनें। जहाँ से न्याय, समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व की भावना का पाठ पढ़कर नेतृत्व और अनुगमन, त्याग, सहिष्णुता और सहकारिता एव कथनी और करनी में एकरूपता रखनेवाले विद्यार्थी और नागरिक निकलकर प्रजातन्त्र की महत्ता प्रकट करें।

सस्कारहीन शिक्षण

व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र बनते हैं। सस्कार व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं। सस्कार व्यक्ति में उच्च व्यवस्थित चरित्र-परम्परा का सम्बन्ध मान्यताओ से जोड़ते हैं। जीवन के मूल्यो को दृढ करते हैं। विद्यालय बालक में इतना विश्वास अवश्य ही पैदा कर दें कि उन्हें जो जीवन मिला है वह निरर्थक, अहम् एव झूठे बहकावो में आकर नष्ट कर देने की वस्तु नही। विद्यार्थी-जीवन सीखने और जानने की अवधि है।

वस्तुत सत्य और प्रत्यक्ष इकाई ही व्यक्ति है। विद्यार्थी अपने महत्व, उपयोगिता और सीमाओ को अवश्य जाने। साधारण-सी चूक विद्यार्थी को हमेशा के लिए निराश बना सकती है, अपग कर सकती है। घर, परिवार समाज और राष्ट्र से विमुख कर द्रोही बना सकती है। इसी चूक का अन्तिम रूप आत्महत्या है। लगता है आत्महत्या एक फैशन बन गया है। शायद इसकी तैयारियाँ परीक्षा से पूर्व ही हो जाती हैं और पूर्णता परीक्षा-परिणाम के निकलते ही प्राप्त होती है। बहुधा अखबार को ही अन्तिम सत्य मानकर प्राण त्याग दिये जाते हैं। विश्वविद्यालय से पुष्टि का भी सब्र नही होता।

विद्यार्थी का जीवन जहाँ व्यक्ति रूप मे उसका अपना जीवन है वहाँ उसपर सम्पूर्ण प्राणी-सृष्टि का अधिकार है। अत व्यक्ति रूप में विद्यार्थी का यह अधिकार नही है कि वह अपने शरीर को मनमाना बर्ते।

विद्यालय बालक में आत्मगौरव, कर्मनिष्ठता, सदाचरण के साथ दृढ सकल्प-बल प्रदान कर व्यक्तिनिष्ठ सस्कारो का विकास करे। उपरोक्त सस्कारो के अभाव में ही विद्यार्थी और व्यक्ति आज समाज और राष्ट्र में अनुत्तरदायित्वपूर्ण वातावरण बनाये हुए हैं।

शिक्षा-स्तर का ह्रास

इस सस्कार चतुष्टय की अन्तिम कड़ी है शिक्षा, जिसमें विषय, प्रणाली और अध्यापक आते हैं। सुसस्कृत मानवीय व्यवहार की आधारशिला शिक्षा है। परन्तु विषय का गलत चयन सर्वथा अहितकर है। हमारे देश मे कुछ ऐसी परिपाटी है जो माता-पिता नहीं बन सके वह अपने बालको को वैसा बना देने पर तुले है। चाहे बार-बार की असफलता से बालक का अध्यापन बन्द ही क्यो न करवाना पड़े। शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन सत्तर प्रतिशत से कम नही है। उत्तीर्ण प्रमाण-पत्र लिये विद्यार्थी उस स्तर की सामान्य योग्यता भी नही रखता।

विद्यालयों में तेजी से विस्तार के कारण शिक्षा-स्तर का सर्वथा ह्रास हो रहा है। पाठ्यक्रम का विद्यार्थी के जीवन, समाज और राष्ट्र के जीवन से मेल नहीं खा रहा है। पाठ्य-पुस्तकों का अभाव बना रहता है। मूल्यांकन-पद्धति पर विशेषज्ञ एकमत नहीं हो पा रहे हैं। दुख केवल एक ही है कि हमारे देश की आज की शिक्षा बालकों और उनके अभिभावकों में विश्वास पैदा नहीं कर सकी। समाज जो चाहता है हमारा पाठ्यक्रम दे नहीं सका। शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् विद्यार्थी के सामने उद्देश्य नहीं रहता। आज आन्दोलनों व प्रदर्शनों में अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करनेवाला कल नौकरी लगते ही दूसरों को बोध देने लगता है। आखिर एक रात में क्या परिवर्तन आ गया जो अबतक नहीं आ पाया था। सत्य तो यह है कि यह एक झलक मात्र है।

बालक के लिए नवम् कक्षा में विषय और विद्यालय-निर्धारण करते समय थोड़ी सूझ-बूझ से काम लें। बालक की शक्ति, रुचि और विषय-ग्राह्यता को अवश्य देखें। विज्ञान विषय दिलाने की भी एक लहर चल पड़ी है। यदि विद्यालय असमर्थता प्रकट करता है तो क्या अनपढ़ और क्या पढ़ा-लिखा अभिभावक दोनों बिना सोचे-समझे कह उठते हैं—आपका क्या? फेल होगा तो हमारा लड़का होगा। अनिच्छापूर्वक लदा विषय उसके जीवन में कितनी निराशा और उत्साहहीनता को जन्म देगा अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

शैक्षिक संस्कारों की सीमा मानवमात्र के कल्याण की ओर अग्रसर होने पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का गठन और शिवम् की उत्पत्ति होगी।

आज राष्ट्र के विद्यार्थियों में पाया जानेवाला असन्तोष हमारी साधारण-सी भूलों का जंगल बन गया है। 'जेहि पावक दीपक धुरयो ह्वयो सो तेहि गात' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी है।

विद्यार्थी असन्तोष ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्रीय असन्तोष पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार कर संस्कार-चतुष्टय की स्थापना करें। विद्यालयों को राष्ट्रीय संस्कार-मन्दिरों में परिवर्तित कर दें, जिससे समाज, राष्ट्र और मानव मात्र को अशान्ति के भय से मुक्ति मिले।

●

विद्यार्थी-समस्या : सामाजिक समस्या का अंग

●

जयप्रकाशनारायण

विद्यार्थी-समस्या पर आपलोगों के विचार सुने और मुझे प्रसन्नता हुई कि आपलोगों ने इस बैठक के लिए कुछ पूर्वचिन्तन भी किया है। यह एक शुभ लक्षण दीखता है कि विद्यार्थी-समाज में भी वर्तमान विद्यार्थी-समस्या को लेकर चिन्तन होने लगा है।

इस प्रश्न पर स्वयं विद्यार्थियों, शिक्षकों, पत्रकारों तथा अन्य चिन्तकों की ओर से समय-समय पर कितनी ही बातें प्रकाशित हुई हैं और इस समस्या के कारणों तथा

उनके निवारण के सुझाव भी बनाये गये हैं। आपलोगों ने भी इन कारणों पर अभी-अभी प्रकाश डाला है। मेरा ऐसा मानना है कि अलग-अलग प्रान्तों में या स्थानों पर इस समस्या के तात्कालिक कारण अलग-अलग हो सकते हैं। परन्तु कुछ लक्ष्य बहुत व्यापक हैं और सारी समस्या को इस दृष्टि से देखने से ही हमें सही निदान मिल सकता है। आज मैं चार मुख्य बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ—

१ आज का विद्यार्थी-आन्दोलन आज के समाज की व्यापक समस्याओं का ही एक अंग है। अगर समाज में व्यतिक्रम है तो समाज से अलग इस समस्या को सुलझाया जा सकता है, ऐसा मैं नहीं मानता। राजनीतिक दलों के सभी लोग ऐसे नहीं हैं—यद्यपि उनकी संख्या कम हो सकती है — जो विद्यार्थियों का अपने दलगत स्वार्थों के लिए उपयोग करना चाहते हों। वैसे इन तत्त्वों को एक स्थान पर लाया जाय जिससे देश के लिए समाज की दिशा बदलनेवाली शक्ति पैदा की जा सके, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इन बिखरे हुए तत्त्वों को एक जगह पर लाने में शायद सर्व सेवा संघ सहायता कर सकता है। इसके लिए नेतृत्व की आवश्यकता है। परन्तु समस्या सारे समाज को और सारी शिक्षा प्रणाली को बदलने की है। इसलिए सामूहिक प्रयत्न जरूरी है। केवल शिक्षा-विद् ही इस प्रश्न का हल ढूँढ सकते हैं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उनमें भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिनका हाथ वर्तमान समस्या को जटिल बनाने में आंशिक रूप से जरूर है।

२. समस्या का दूसरा पहलू कुछ तात्कालिक समस्याएँ हैं, जिनको लेकर बड़े-बड़े प्रदर्शन और झगड़े खड़े हो जाते हैं। इसके लिए एक ऐसी 'ग्रीवेन्स मशीनरी' (शिकायत-परीक्षण-तंत्र) का होना आवश्यक है जो शीघ्र ही विद्यार्थियों की शिकायतों की छानबीन करके अपना निर्णय दे सके। आज की परिस्थिति में यह मानना कि विद्यार्थी-समाज में बार-बार तूफान नहीं आयेंगे, शुतुर्मुर्ग की चाल चलनेवाली बात होगी। परन्तु 'ग्रीवेन्स मशीनरी' की मदद से विद्यार्थियों के प्रदर्शनों इत्यादि को कुछ कम अवश्य किया जा सकता है।

३ आज की परिस्थिति में संघर्ष होंगे। परन्तु सबसे मुख्य बात है, कि संघर्ष किस प्रकार के हों, आज की परिस्थिति में इनका स्वरूप क्या हो। हमारे देश में एक अजीब-सी बात है कि हमें तभी अपना कर्तव्य सूझता है, जब देश पर संकट हो।

बापू के देश में यह जानना मुश्किल नहीं है कि साधन का स्वरूप क्या हो। अमरीका में भी बहुत सारे विद्यार्थी मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में एक अहिंसक आन्दोलन चला रहे हैं। हमारे सामने इसके अनुभव और उदाहरण हैं। पूर्ण अहिंसा 'ऐब्सोल्यूट नान-वायलेंस' की बात मैं नहीं कर रहा हूँ। परन्तु अगर आपलोग गहराई से सोचें तो लगेगा कि आज के संघर्षों के साधन गलत हैं। मुझे ऐसा लगता है कि अगर विद्यार्थी इस अहिंसा के साधन को अपनाते हैं तो शिक्षकों में भी नैतिकता आयगी और शिक्षा-पद्धति में भी सुधार होगा।

४ मेरे जमाने में विद्यार्थियों को पारिवारिक वातावरण से समाज-कार्य के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिलती थी। सारा मध्यम-वर्ग विदेशी शासन की सृष्टि और उसी विदेशी शासन का भक्त भी था। फिर भी गांधी जी के आवाहन पर हजारों विद्यार्थी असहयोग आन्दोलनमें कूद पड़े। क्या आज के विद्यार्थियों को, वर्तमान समाज के सामने जो अनेक संकट और समस्याएँ हैं, उनके लिए कुछ करने की प्रेरणा मिलती है? अगर हमारा जीवन उद्देश्यपूर्ण है तो हमारा मार्ग विध्वंसात्मक नहीं होगा। उदाहरण के लिए बिहार के सूखे से उत्पन्न संकट को लें। अगर आज भी कालेज और विश्वविद्यालय के विद्यार्थी इस संकट के निवारण के कार्य में पड़ जायें तो कोई कारण नहीं कि खाद्यान्न के वितरण, मूल्य आदि में कोई धाँधली हो सके।

—छात्र-नेताओं के समक्ष किया गया
भाषण, पूसारोड

छात्र-आन्दोलन : कारण, निवारण

[अपने देश में हुए छात्र आन्दोलन ने देश के नेताओं, शिक्षा शास्त्रियों, स्वयं छात्रों तथा अभिभावकों को देश की समस्याओं और विशेष रूप से शिक्षा की समस्याओं पर सोचने के लिए विवश किया है। इस विषय पर पिछले कुछ महीनों में काफी चिंतन और विचारों का आदान प्रदान हुआ है। हम अपने पाठकों के लिए कई लेख 'नयी तालीम' में प्रकाशित करते रहे हैं। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विद्यार्थी-आन्दोलन के जो कारण और निवारण बताये गये हैं उन्हें एकत्र करके हम यहाँ पाठकों के चिंतन के लिए प्रकाशित कर रहे हैं। सं०]

कारण

छात्र आन्दोलन केवल भारत की समस्या नहीं है। यह एक विश्वव्यापी धारा है जो यह दर्शाती है कि संसार भर के नवयुवकों में पुरानी पीढ़ी के प्रति नव विचार पनप रहे हैं।

आज विश्व में दो पीढ़ियों के बीच संघर्ष है। यह स्पष्ट ज्ञान, मनोवृत्ति व्यवहार, एवं मूल्यों की बढ़ती हुई असमानता के कारण और भी तीव्र हो गया है।

● छात्रों की उचित शिकायतें भी अध्यापकों या प्रशासकों को ज्ञात नहीं हैं।

● कालेजों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होने से विद्यार्थी भली प्रकार समझ नहीं पाते हैं।

● उन युवकों की उपेक्षा की जाती है जो छात्र तो नहीं हैं लेकिन छात्र की उम्र के हैं।

● छात्र आन्दोलनों में राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप के कारण उसका शैक्षिक स्तर पर हल कठिन हो जाता है।

● छात्र अनुशासनहीनता के कारण सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक और शैक्षिक हैं।

—(डा० वी० के० आर० वी० राव)

● छात्रों को आवश्यक शैक्षिक एवं अन्य सामान्य सुविधाओं का न मिलना है।

● महँगाई समाज का बदलता हुआ ढाँचा, भविष्य के प्रति अनिश्चितता।

● प्राथमिक पाठशालाओं में अध्यापकों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि सत्तारूढ़ दल के लिए वोट बटोरने की योग्यता के आधार पर की जाती है। —(वाइस चांसलर प्रयाग विश्वविद्यालय)

● नगरीकरण के कारण नगर में बढ़ती हुई छात्र संख्या उपद्रव का कारण।

● जनतांत्रिक विद्यार्थी यूनियन बनाने की सुविधाओं की अनेक शिक्षण-संस्थाओं में कमी।

● विद्यार्थी यूनियनों के कार्यों की ओर अधिकारियों का ध्यान न देना।

● शिक्षण-कार्य के बहुत से केन्द्रों में बुरी तरह से प्रचलित भाई भतीजावाद और अन्य दुर्व्यवहार।

● छात्रावासों की महँगी और नाकाफी सुविधायें, और पूरे समय काम करनेवाले वार्डनों का अभाव।

● सार्वजनिक जीवन के विभिन्न स्तरों पर नेतृत्व का अभाव।

● उच्च आदर्शों और उचित उद्देश्यों का अभाव और विद्यार्थियों के दिमाग में देशभक्ति की ज्वलन्त भावना और समाज की सेवा के लिए समर्पण करने की भावना भरने में असफलता।

(पूना शहर में प्रशिक्षित छात्र-नेता)

- वर्तमान परिस्थिति के प्रति असन्तोष।
- छात्र निर्भय होकर उपद्रव कर सकते हैं जो दूसरे लोग नहीं कर सकते। इससे विद्यार्थियों में मिथ्या भावना पैदा हो जाती है कि वे कानून से ऊपर हैं। —(श्री सम्पूर्णानन्द)
- उपद्रव होने पर विद्यालयों को बन्द कर देना एक चुनौती है। इससे प्रतिक्रिया होती है।
- शिक्षा का उद्देश्य नौकरी दिलाना होगा तो परिणाम ऐसे ही प्रकट होंगे।—(श्री मोरारजी देसाई)
- शिक्षा में समानता का वातावरण समाजवादी समाज रचना का उद्घोष करनेवाली सरकार अभी तक स्थापित नहीं कर सकी।
- हमारी विश्वविद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है।
- विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा दी जा रही है उसमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जो शिक्षित जन समुदाय को समाजवादी जीवन-पद्धति को स्वीकार करने की प्रेरणा दे।
- हमारी सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था किसी निर्दिष्ट जीवन-दर्शन के अभाव में एक विचित्र भूल भुलैया बनकर रह गयी है।
- अभिजात के बच्चे लन्दन में पढ़ते हैं और गरीबों के बच्चे बुनियादी स्कूलों में पढ़ते हैं। शहरों में धनी लोगों के बच्चे पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं और गरीबों के बच्चे सेकेण्डरी स्कूलों में पढ़ते हैं। मन्त्रियों और धनी लोगों के बच्चे अंग्रेजी बोलने में कुशल हो जाते हैं और उन्हें ही बड़ी-बड़ी नौकरियाँ मिलती हैं।
- हमारे स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकें ब्रिटेन की पाठ्य पुस्तकों की तरह होती हैं।
- हमारी पाठ्य-पुस्तकें इतनी निकम्मी होती हैं कि उनमें राष्ट्रीयता की भावना नहीं जागृत होती।
—(श्रीमती रेणु चक्रवर्ती)
- हर साल पाठ्य-पुस्तकों के बदल जाने के कारण छात्रों और उनके अभिभावकों को बहुत परेशानी होती है। —(श्री प्रकाशवीर शास्त्री)
- स्कूल-कालेजों में प्रवेश न पाना, परीक्षा में ज्यादा प्रतिशत छात्रों को अनुत्तीर्ण कर देना, इसके बाद भारी बेकारी।
- पढ़ाई के लिए फीस न जुटा पाना—(डा० लोहिया)
- छात्रों की समस्याएँ शैक्षणिक ही नहीं हैं, बल्कि माँ-बाप के सामने जो समस्याएँ हैं उनके भी वे साझीदार हैं।
- सरकार ने शिक्षा में सुधार के लिए नियुक्त किये गये आयोगों और समितियों में से किसी की एक भी सिफारिश पर अमल नहीं किया।
—(श्री ए० के० गोपालन)
- अनुचित बल प्रयोग करनेवाली पुलिस के विरुद्ध तत्काल कार्यवाही न होना।
- विज्ञान और तकनीक की पढ़ाई ने जीवन के पुराने मूल्यों का नाश किया और नये मूल्यों की स्थापना नहीं हुई। ईश्वर और धर्मनिष्ठा की श्रद्धा समाप्त हो गयी।
- गांधीजी की विकेन्द्रित औद्योगिक नीति और शिक्षा-नीति की उपेक्षा।
- अध्यापकों की नेतृत्व शक्ति का ह्रास हुआ है।
- शिक्षा-व्यवस्था पाठ्यक्रम और परीक्षा के क्षेत्र अध्यापकों के प्रभाव के बाहर हैं। इसके कारण छात्र अध्यापक की प्रतिष्ठा नहीं करते।
—(श्री वंशीधर श्रीवास्तव)
- आज का विद्यार्थी आन्दोलन आज के समाज की व्यापक समस्याओं का ही एक अंग है।
- शिक्षाविदों में भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनका हाथ वर्तमान समस्या को जटिल बनाने में आंशिक रूप से अवश्य है। —(श्री जयप्रकाश नारायण)
- विद्यार्थी को बचपन से ही दण्ड का इतना सुव्यवस्थित शिक्षण तथा भय और हिंसा का इतना सम्पूर्ण, व्यापक दर्शन होता है कि वह समझने लगता है कि बिना उपद्रव के किसी भी समस्या का समाधान असम्भव है।
- एन०सी०सी० के प्रशिक्षण के कारण भी विद्यार्थियों के मन पर यह असर पड़ा कि बिना बूट और बन्दूक के मनुष्य का आचरण नहीं सुधरेगा।
- गुलामी के दिनों से लेकर आजतक शिक्षा ऐसे ही लोगों को पैदा कर रही है जो सरकार की छाया में पल सकें।

- आज शिक्षितों की कुल खिसियाहट ही इस बात की है कि सरकार सारे शिक्षित समुदाय को ऊँची कुर्सियाँ क्या नहीं देती उसको समाज में उपर क्या नहीं मानती ?
- जबतक शिक्षा शासन द्वारा संचालित होगी, उसमें अनुशासन की समस्या बनी ही रहेगी।
- मौजूदा निकम्मी शिक्षा देश के प्रति बहुत बड़ा अपराध है। स्वराज्य के बाद भी शिक्षा नहीं बदली।
- देश के नेता जनता की बड़ी बातों को भूलकर अपनी छोटी-छोटी बातों में फँसे हुए है।—(श्री राममूर्ति)
- आर्थिक समृद्धि के कारण बहुत सारे परिवार अपने बच्चों को स्कूल-कालेजों में भेजने लगे हैं। ऐसे परिवारों में संगठित समाज के लिए आवश्यक भाषा और व्यवहार के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इन्हें जब गलत ढंग से पेश आता है या उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचायी जाती है तो वे आवेश में आकर उचित अनुचित का भेद भूल जाते हैं। अनुशासन उन्हें अखरता है।
- अधिक भीड़ भाड़ के कारण स्नायुओं पर जो जोर पड़ता है वह अनुशासनहीनता के रूप में फूट पड़ता है।
- खेल तथा मनोरंजन की सुविधाएँ नहीं के बराबर है।
- विश्वविद्यालयों में शराब पीने की आदत बढ़ती जा रही है।
- विश्वविद्यालयों में सादा जीवन और मितव्ययिता का कोई वातावरण नहीं है।
- सही दिशा का अभाव–घर में भी और स्कूल-कालेज में भी।
- अध्यापक पार्टी प्रपंच में पड़े रहते है।
- वृद्ध अध्यापक चरित्र और नैतिकता में गिरे हुए हैं।
- शिक्षा-संस्थाओं में अध्ययन सन्तोषप्रद नहीं है।

—(श्री श्रीमन्नारायण व्यास)

- विद्यार्थियों की दैनिक गतिविधियों से उनके अभिभावक अनभिज्ञ रहते हैं।
- देश के शासन ने विद्यार्थियों और उनकी प्रगति को ध्यान [illegible] दिया।
- शिक्षकों का आर्थिक स्तर गिरा हुआ होने से उनकी समाज में प्रतिष्ठा कम हुई।
- भारत की सिनेमा-सृष्टि देश की जनता और विद्यार्थियों का स्तर गिरा रही है।
- देश की अन्य किसी भी समस्या के हल के लिए जो हिंसात्मक और गलत रास्ते अपनाये गये उनका भी छात्रों पर असर हुआ।
- उपकुलपतियों की नियुक्ति राजनीति के आधार पर होती है।
- विरोधी दलों ने विद्यार्थियों को उकसाया है।

—(श्री ब्रजलाल बियाणी)

निवारण

- विश्वविद्यालय बन्द करके छात्र आन्दोलनों को बन्द नहीं किया जा सकता।
- छात्रों की समस्याओं और उनके आन्दोलनों के समाधान के लिए पुलिस को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
- छात्रों की समस्याओं का समाधान छात्र और अध्यापक मिलकर ही कर सकते है। प्राध्यापक और छात्रों की मिली जुली समिति बने। आवश्यकतानुसार छात्रों के अभिभावकों को भी शामिल कर सकते है।
- विश्वविद्यालयों में छात्रों की भीड़ कम करने के लिए डिग्री कालेज बढ़ाये जायँ। डिग्री कालेजों में एम० ए० तथा एल० एल० बी० की सुविधा भी जाय।
- विश्वविद्यालय में केवल उन छात्रों को आना चाहिए जिन्हें शोध करना हो। लक्ष्यविहीन छात्रों को विश्वविद्यालयों में भेजना अनुचित है।
- विद्यालयों आफिसों, उद्योगों, रेलों और अन्य व्यावसायिक संस्थाओं में कार्य करने के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। उनके लिए पेशेवर विद्यालय का डिप्लोमा ही पर्याप्त होना चाहिए।
- छात्रों की दैनिक कठिनाइयों और उनके भविष्य-निर्माण के लिए भी सम्पूर्ण समय देकर काम करनेवाले प्राध्यापकों की व्यवस्था होनी चाहिए।

- प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों तक की दशा में सुधार करने के बाद ही इसका समाधान हो पायगा।
—(वाइस चान्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय)
- यदि सरकार वास्तव में इस समस्या का हल चाहती है तो वरिष्ठ शिक्षा शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, समाज विज्ञानिकों, सार्वजनिक व्यक्तियों के साथ बुद्ध धर्म में विश्वास रखनेवाले व्यक्तियों की संस्था बनायी जाय।
- जिस दिन स्कूल कालेज की पढ़ाई नौकरी के लिए पासपोर्ट नहीं रह जायगी, उस दिन अनुशासन की समस्या बहुत कुछ या ही हल हो जायगी।
- हर विद्यालय अपना अलग अलग सर्टिफिकेट दे और नौकरी के लिए अलग परीक्षा हो।
- देश में शिक्षा का प्रश्न राजनीति और व्यवसाय के स्थान पर शिक्षा को मुख्य सामाजिक शक्ति बनाने का है।
- शिक्षा को बदलने के लिए समाज की ओर से जोर डाला जाना चाहिए। —(श्री राममूर्ति)
- छात्रों को प्रारम्भिक स्तर से ही किसी समाजोपयोगी उद्योग की वैज्ञानिक शिक्षा दी जाय जिससे माध्यमिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते उनमें कोई समाजोपयोगी धन्धा करने की क्षमता आ जाय।
- प्रत्येक नगर और उपनगर में और नगर बड़ा है तो कुछ मुहल्लों को मिलाकर, ऐसे अध्यापकों और प्रधानाध्यापकों की, जो अपनी योग्यता और उत्तम चरित्र के कारण छात्रप्रिय हैं, एक ऐसी समिति बनायी जाय, जो छात्र-नेताओं की परामर्शदात्री समिति के रूप में काम करे।
- छात्र-संगठनों का अधिकाधिक प्रजातन्त्रीकरण किया जाय और विद्यालय तथा विश्वविद्यालय के प्रशासन में उन्हें अधिकाधिक उत्तरदायित्व दिया जाय।
- अंग्रेजी किसी भी स्तर पर शिक्षा और परीक्षा का माध्यम न रहे। —(श्री वंशीधर श्रीवास्तव)
- विद्या मन्दिरों में ट्रेड यूनियन की भावना नहीं आनी चाहिए।
- शिक्षा-संस्थाओं में बाहरी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
- विश्वविद्यालय की डिग्री शिक्षक बनने के लिए पर्याप्त नहीं है। शिक्षक मानव-स्वभाव का पारखी हो।
- वरिष्ठ कनिष्ठ प्रधानाचार्य, उपकुलपति, प्रोफेसर, रीडर व प्राध्यापकों के मध्य अधिक स्वच्छन्द मेलजोल व सम्पर्क होना चाहिए।
- विश्वविद्यालय के जीवन तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर प्रायः वादविवाद होना चाहिए। सार्वजनिक सम्पत्ति के विनाश और तोड़फोड़ के विरुद्ध एक विशेष कानून बनाया जाना चाहिए। सभी विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं में प्राक्टर मजिस्ट्रेट नियुक्त करने की पद्धति पुनः लागू की जाय।
- जब छात्र हड़ताल करना चाहते हैं तो एक संघर्ष समिति बन जाती है और अधिकारियों को उनसे समझौते की बातचीत करनी पड़ती है। यह परम्परा समाप्त होनी चाहिए। शिक्षण संस्था के प्रधानाचार्य के समान स्तर पर बात करनेवाले किसी भी गुट या व्यक्ति को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए।
- छात्र-संघों की अनिवार्य सदस्यता समाप्त की जानी चाहिए।
- मुख्य मंत्रियों ने एक निर्णय यह लिया था कि विश्वविद्यालयों को राजनीतिक आन्दोलन का भरती केन्द्र न बनने दिया जाय। इसपर यथाशीघ्र अमल होना चाहिए।
- प्रधानाचार्य को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिएँ ताकि वे विश्वविद्यालय के क्षेत्र में अनिच्छुक व्यक्तियों को न घुसने दें। —(श्री सम्पूर्णानन्द)
- शिक्षा पूर्णतः समाज का विषय हो। इसका राष्ट्रीयकरण करने की या केन्द्रीय विषय बनाने की जो चर्चा चलायी जाती है, वह तो खड्ड में से निकलकर कुएँ में गिरने जैसी है।
- अध्ययनकाल में छात्रों को व्यस्त दिनचर्या और पथ प्रदर्शन मिले तो उपद्रव होने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

- शिक्षक का छात्र के साथ अधिकारी सा व्यवहार नहीं होना चाहिए। —(श्री मोरारजी देसाई)
- केन्द्रीय शिक्षा मत्रणालय का पुनर्गठन किया जाना चाहिए और राज्यो मे भी सूझ-बूझवाले लोगो को इस मत्रणालय में लाना चाहिए।
- उपकुलपतियो से छात्रो के असन्तोष को दूर करने के लिए कदम उठाने के लिए कहा जाय।
- विश्वविद्यालयों में ऐसे छात्रो को नही रहने दिया जाय जो राजनीतिक दलो का प्रचार करने के लिए वर्षों तक फेल होकर या पास होकर रहते है। २५ वर्ष से अधिक उम्र के छात्रो को पूरा स्थान नही दिया जाय, वे सलग्न छात्र के रूप में रहें।
- छात्रो, अभिभावको और शिक्षको के बीच सहयोग बढाया जाय। —(श्री हरिश्चन्द्र माथुर)
- छात्रो, अभिभावको और शिक्षको का एक सगठन बने और यह सगठन छात्रो की शिकायतें सुने। —(श्री एन० जी० रगा)
- छात्र-आन्दोलनो को समझने के लिए भारत सरकार एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त करे। इसका अध्यक्ष कोई भारतीय समाजशास्त्री हो।
- सरकार या अन्य सस्थाओ द्वारा उन युवको के लिए, जो छात्र नही है, सास्कृतिक एव खेल की सुविधाएँ प्रदान की जायें।
- सभी दल मिलकर छात्र अनुशासनहीनता के प्रश्न को मिलकर सुलझाने का समझौता कर लें।
- छात्रो की आचार-सहिता हो, जिसमे निर्धारित हो कि अध्यापको, शिक्षण-सस्थाओ के प्रशासको, सहपाठियो तथा सरकार के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिएँ। प्रदर्शन शान्तिपूर्ण हो, सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट न किया जाय। —(डा० वी० के० आर० वी० राव)
- विश्वविद्यालय का क्षेत्र पुलिस से अलिप्त रखा जाय।
- शिक्षा शास्त्रियो को दण्ड देने का अधिकार दिया जाय।
- शासन को हर क्षेत्र मे मजबूत बनाने की आवश्यकता है। विद्यालयो मे इसकी छूट न हो। —(श्री बृजलाल बियाणी)
- विद्यार्थी अहिंसा के साधन को अपनाते है तो शिक्षको मे भी नैतिकता आयगी और शिक्षा-पद्धति में सुधार होगा।
- जीवन उद्देश्यपूर्ण होगा तो मार्ग विघ्नमय नही होगा।
- विद्यार्थियो को सूखे से उत्पन्न सकट के निवारण के कार्य में लगना चाहिए। —(श्री जयप्रकाशनारायण)
- देश के लिए ५ लाख विद्यार्थी देश की सेवा के लिए बाहर आयें तो सच्ची बगावत होगी और शिक्षा में तथा समाज मे परिवर्तन होगा।
- विद्यार्थियो में सकल्प शक्ति बढे।
- विद्यार्थियो के दिमाग से प्रान्तीय भावना निकलनी चाहिए। —(आचार्य विनोबा)

●

विद्यार्थियों के लिए न समाजवाद है, न कम्यूनिज्म है, और काग्रेस भी नही। उनका एक ही काम है–विद्याभ्यास करना जिससे ज्ञान की वृद्धि हो।

× × ×

हड़ताल विद्यार्थियो के लिए निकम्मी है। यह सबके लिए घातक है।

—गांधीजी

हम बालकों में किन मूल्यों का विकास करें?

•

डा० दयालशरण वर्मा

अध्यापक, अर्थशास्त्र, क्वीन्स कालेज, वाराणसी

शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के समक्ष यह प्रश्न प्राय आता है कि हम बालकों में किन मूल्यों का विकास करें। प्रश्न कुछ टेढ़ा तो है ही साथ ही कुछ अस्पष्ट भी है। यह आवश्यक है कि इसकी अस्पष्टता को प्रारम्भ में ही समझ लिया जाय अन्यथा उससे उत्पन्न भ्रम इस प्रश्न से सम्बन्धित हमारी समीक्षा को मूल में ही दूषित कर देगा। क्या कुछ मूल्य ऐसे भी हैं, जिन्हें मूल्यों की सूची में स्थान तो मिलता है परन्तु जिन्हें बालकों में विकसित करने की आवश्यकता नहीं है? क्या हमें मूल्यों में से कुछ को स्वीकार करना एवं कुछ को त्यागना है? इस प्रश्न का स्वीकारात्मक उत्तर असंगत होगा, क्योंकि मूल्यों का सार-लक्षण इसी तथ्य में निहित है कि हम उन्हें मूल्यवान समझते हैं। दूसरी ओर यदि हम यह कहें कि हमें बालकों में उन सभी मूल्यों का विकास करना है जिनकी सूची ऋषियों, मुनियों तथा नीतिविदों ने हमें दी है, तो इस प्रकार का प्रश्न कभी उठना ही नहीं चाहिए कि हम बालकों में किन मूल्यों का विकास करें। सत्यता यह है कि जब हम इस प्रकार का प्रश्न उठाते हैं तो हम यह जानना चाहते हैं कि आज की स्थिति में ऐसे मूल्य कौन से हैं जिन पर हम दूसरे मूल्यों की तुलना में अधिक गौरव देना चाहते हैं। हम तमाम मूल्यों को उनके महत्व की दृष्टि से श्रेणियों में विभाजित करना चाहते हैं, ऐसी श्रेणियाँ, जो स्थापित श्रेणियों से अवश्य ही भिन्न हैं। चूंकि राष्ट्रीय निर्माण में यह प्रश्न अत्यधिक महत्व का है (विशेष रूप से शिक्षकों के लिए) अत हमारा दृष्टिकोण अनिवार्यतः व्यावहारिक एवं रचनात्मक होना चाहिए।

परिवर्तन की जड़ें

बालक का परिवार से समाज की ओर अवस्थान्तर एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक के व्यवहार के स्वरूप तथा उसकी संवेगात्मक एवं बौद्धिक उपलब्धि में कुछ निश्चित गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न करती है। ये परिवर्तन केवल उन व्यक्तियों की इच्छा पर (शिक्षक माता पिता आदि पर) निर्भर नहीं करते, जिन्हें प्राय इन परिवर्तनों को उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार माना जाता है। इन परिवर्तनों की जड़ें उस विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई के गत्यात्मक रूप में जमी होती हैं जिसका बालक एक सदस्य है। उनके नियन्त्रक तत्त्व आर्थिक राजनीतिक निर्धारक तो होते ही हैं साथ ही, वे सामाजिक आदर्शों से (समाज के सामूहिक अनुभव एवं उसकी महत्वाकांक्षाओं से) भी प्रभावित होते हैं। मूल्यों का प्रश्न समाज के इन सभी पक्षों से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है।

एक बालक कुछ वर्ष बाद समाज का एक परिपक्व सदस्य बनता है। आज के बालक जिस समाज के सदस्य बनेंगे उसका स्वरूप क्या होगा? उस समाज की तस्वीर हमारे सामने स्पष्ट होनी चाहिए। भारतराष्ट्र की एक प्रमुख आकांक्षा यह है कि वह एक धर्म निरपेक्ष, प्रजातान्त्रिक समाज के रूप में अपना विकास करे। इस आकांक्षा में कुछ आदर्शवाद की अतिशयता प्रतीत होती है, परन्तु हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि इस आदर्श की उपलब्धि की सीमा हमारे शिक्षकों की क्षमता की सीमा पर निर्भर करती है। उस समाज में विभिन्न पक्षों को शिक्षक कितना समझते हैं और किस सीमा तक उसके समर्थन में आने के लिए वे तैयार हैं यही इसका फैसला करेगा कि राष्ट्र की यह आकांक्षा किस सीमा तक पूरी होगी। एक 'खुला समाज' (मैं कार्ल पापर द्वारा अपनी पुस्तक दि ओपन सोसाइटी एण्ड इट्स एनिमीज' में प्रयुक्त शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ) जिसे चारों ओर से अधिनायकवाद (बन्द समाजों) की भीड़ ने घेर रक्खा है, अपने सदस्यों से कुछ विशेष आशाएँ रखता है। इस समाज के ऐसे सदस्य जो रूढ़ि के अर्थ में चाहे ईमानदार एवं सत्यवादी हों परन्तु यदि वे सामाजिक प्रश्नों के प्रति निरासक्त एवं निष्क्रिय हैं तथा 'सन्तोष

को अपना आध्यात्मिक लक्ष्य मानकर किसी धार्मिक या दार्शनिक स्वर्ग में अपने मोक्ष का महल बना रहे हैं तो न तो वे समाज की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं और न सही अर्थ में ईमानदार तथा सत्यवादी ही बन सकते हैं। ऐसे आध्यात्मिक व्यक्ति सामाजिक जीवन की यथार्थता से अलग रहते हैं। उनके अध्यात्म की दुनिया दार्शनिक धार्मिक दृष्टि से व्यापकतम परन्तु व्यवहार की दृष्टि से अत्यन्त कूप मण्डूक होती है।

प्रजातान्त्रिक समाज की कुछ अनिवार्य आवश्यकताएँ होती हैं और उन आवश्यकताओं में सामाजिक चेतना तथा समाज के जीवन में एच्छिक सहयोग का स्थान प्रमुख है। एक गांधीवादी विचारक के दृष्टिकोण से अन्तिम विश्लेषण में प्रजातन्त्र का सार लक्षण समाज के प्रत्येक सदस्य के द्वारा सभी दूसरे सदस्यों के साथ जीवन के उपयोग में एच्छिक सहयोग करना है (देखिए जी० रामनाथन लिखित एजूकेशन फ्राम डवी टु गांधी पृ० २९१)। एच्छिक सहयोग की सफल दीक्षा तभी दी जा सकती है तथा बालकों में एक सक्रिय सामुदायिक भावना का विकास तभी हो सकता है जब उनमें समाज के लक्ष्यों के प्रति पर्याप्त जागरूकता हो एवं उनके एच्छिक सहकार के प्रारम्भिक प्रयत्नों को व्यापक क्षेत्र मिले।

ऐच्छिक साझेदारी

सामाजिक जीवन में एच्छिक साझेदारी की धारणा इधर एक बड़ा चर्चित विषय है परन्तु इस धारणा में कौन-कौन से मूल्य निहित हैं इस दृष्टि से इसका पर्याप्त विश्लेषण नहीं हुआ है। यह कहना कि एच्छिक साझेदारी स्वेच्छा से अपने सामाजिक कर्तव्यों को स्वीकार कर लेना है केवल पुनरावृत्ति मात्र होगा। सही बात यह है कि एच्छिक साझेदारी व्यक्तियों के 'इनिशियटिव' को एक विशेष प्रकार से संगठित करना है। इस प्रकार का संगठन तभी प्राप्त किया जा सकता है जब आरम्भ से ही हम बालकों में अग्रणी होने तथा एक टीम के रूप में काम करने की प्रवृत्तियों को विकसित करें। बालकों में अग्रणी होने की क्षमता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि उनमें आत्म अनुशासन आत्म-संचालन एवं आत्म मूल्यांकन की शक्ति हो। अग्रणी वे बालक ही हो सकेंगे जो जीवन को एक खिलाड़ी की दृष्टि से देखते होंगे और जो खतरों को उठाने के आनन्द से भलीभाँति परिचित होंगे। हमें देखना है कि बालक इन दिशाओं में किस सीमा तक आगे बढ़ रहे हैं।

टीम की भावना से काम करने का इनिशियटिव होने से या अग्रणी होने से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि टीम भावना का अभाव होने पर कोई भी सफलतापूर्वक अग्रणी न हो सकेगा। औद्योगिक समाज के विरोध में बहुत कुछ कहा गया है। कहा गया है कि यह समाज मानव जीवन को यान्त्रिक बनाकर उसकी सृजनात्मक शक्तियों को नष्ट कर देता है कि यह समाज मनुष्य में भौतिक जीवन के प्रति मृगमरीचिका उत्पन्न करता है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि औद्योगिक समाज आया और रहेगा।

खुले समाज की आवश्यकताएँ

हमें औद्योगिक क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त करनी है। परन्तु यह सफलता केवल यन्त्रों को प्राप्त कर लेने से ही नहीं मिल जायगी। उसकी सफलता के पीछे एक दूसरा तथ्य और है जिसे पीटर एफ० ड्रकर सामूहिक कार्य के लिए लोगों को संगठित करने का सामान्य सिद्धान्त के नाम से पुकारता है (देखिए उसकी पुस्तक दि न्यू सोसाइटी)। इस प्रकार का संगठन किसी सामाजिक हेतु के लिए चाहे वह सामूहिक उत्पादन ही क्या न हो व्यक्ति विशेष की योग्यताओं को लगभग उसी रूप में अनुशासित करना होता है जिस रूप में मशीन के पुर्जे मशीन में अनुशासित किये जाते हैं।

चाहे वह औद्योगिक संस्थान हो या वैज्ञानिक अन्वेषण *प्रशासनिक व्यवस्था हो या शिक्षा-संस्था* विभिन्न विशेष योग्यतावान व्यक्तियों को एक टीम में संगठित करने का सिद्धान्त सर्वत्र लागू होगा। भविष्य के समाज में यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी भलीभाँति प्रयुक्त होगा इसका प्रमाण विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रों के सहयोग के उदाहरणों से आज भी हमें मिल रहा है। तो प्रश्न उठता है कि क्या हम बालकों में इस प्रकार की क्षमताएँ उत्पन्न कर रहे हैं? आज की विद्यार्थी स्कूली व्यवस्था से बाहर आने के बाद क्या समाज का—इनिशियटिव विहीन एवं सामाजिक घटनाओं के प्रति उदासीन समाज

का-सदस्य नहीं बनता ? उसमें किसी भी प्रकार की सग-ठनात्मक इकाई स्थापित करने की आशा हम कैसे रखते हैं ? क्या हमने उसे इसके लिए शिक्षित किया है ?

हमारा राष्ट्र खेतिहर है, परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा बीसवी शताब्दी का खेतिहर राष्ट्र है। आज कोई ग्राम राजनीतिक, आर्थिक एव सांस्कृतिक दृष्टि से अपनी उन्नति नहीं कर सकता यदि वह एक सुसगठित इकाई के रूप में एक टीम की भाँति काम करने के लिए तैयार नहीं है। यहाँ भी 'इनिशियेटिव' तथा मानव-सगठन के वे ही सामान्य नियम कार्य करते हैं जो किसी औद्योगिक सस्थान में। यह तथ्य लगभग सभी पडोसी देशो ने स्वीकार कर लिया है परन्तु 'बद्ध समाज' होने के कारण वे कभी इसे सफलतापूर्वक नहीं अपना सकते। यह सत्य है कि केवल प्रजातन्त्र समाज ही ऐच्छिक सहकार एव सगठन की सफलता की कल्पना कर सकते है। अत प्रजातन्त्रीय विधि से स्थापित अधिकारो एव अपने कर्तव्यों के प्रति आदर तथा निष्ठा एव विवेकशील आज्ञापालन इस प्रकार के खुले सगठन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। बालको में इनका विकास आवश्यक है।

ऊपर जिन मूल्यो पर जोर दिया गया है उनका सीधा सम्बन्ध समाज के उस राजनीतिक आर्थिक सरचना के स्वरूप की पुष्टि से है, जिसे हमने अपनी जीवन-पद्धति के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु बालक का परिवार से समाज की ओर अवस्थान्तर राजनीतिक आर्थिक अनु-कूलन के अतिरिक्त कुछ और भी है। आदर्श तो यही है कि व्यक्तिवीकरण एव समाजीकरण में निहित मूल्यो में पूर्ण सामजस्य हो।

संस्कृति की परिभाषा

सामाजीकरण की प्रक्रिया समाज की संस्कृति के माध्यम से होती है अत संस्कृति के प्रश्न पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। 'संस्कृति' एक ऐसा पद है जो अनेक परिभाषाएँ होने के कारण बडा भ्रामक है। परन्तु यहाँ मैं उस पद का एक निश्चित अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ और वह अर्थ डा० देवराज प्रदत्त संस्कृति की निम्न परिभाषा के अत्यधिक निकट है 'संस्कृति वस्तु जगत् के उन पहलुओं की जीवन्त एव शक्तिपूर्ण चेतना है जो उपयोगी न होते हुए भी अर्थवान होते हैं एव लाभदायक न होते हुए भी महत्व रखते हैं' (देखिए संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ० १७६)।

एक कलात्मक चित्र, नैतिक महानता से युक्त एक व्यक्तित्व, मधुर सगीत आदि निस्सन्देह इस उपयोगिता-वादी दृष्टि से उपयोगी नहीं होते परन्तु उनमें जीवन का एक तत्व है। वे महत्वपूर्ण हैं और इसी महत्व के प्रकार में किसी सांस्कृतिक समुदाय का सत्व निहित होता है। इस सांस्कृतिक चेतना की तीव्रता का अर्थ होता है मानव जीवन का एक उच्चतर गुणात्मक स्तर। इससे हमें जीवन मूल्यो को समझने की एव उनमें सूक्ष्म भेद करने की योग्यता तथा न्याय को अन्याय से अलग करने का विवेक प्राप्त होता है। जब हम इस सांस्कृतिक चेतना को मूल्य के रूप में स्वीकार करते हैं तो उसका एक अर्थ यह भी है कि यह चेतना सीमित सस्कृतियों से ही बँधी नहीं है यह स्थानीय तत्वों से ऊपर उठकर मानव की व्यापक तथा शाश्वत अनुभूतियों को स्पर्श करती है। यह प्रान्तीय संस्कृति राष्ट्रीय संस्कृति आदि को एक भिन्न इकाई के रूप में स्वीकार नहीं करती। इसके अनुसार ये सब एक महान् सस्कृति व्यवस्था (मानव सस्कृति-व्यवस्था) का आवश्यक अग हैं।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बालको के पाठ्य क्रम में मानव के सांस्कृतिक इतिहास पर कुछ पाठ हम और जोड दें। हाँ, इसका तात्पर्य यह अवश्य है कि हमें बालको में एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित करना है जो उनमें मानवीय उपलब्धियों के प्रति, और इस प्रकार मानवता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करे। यदि हम आज के मनुष्य के मन में बसे विक्षोभ का विश्लेषण करें तो इस श्रद्धा की आव श्यकता के महत्व को समझ सकेंगे—उस सन्देहवादी मनुष्य के मन में जिसके स्वरूप का निर्माण तृतीय युद्ध की छाया में डार्विन तथा फ्रायड जैसे एकपक्षीय पर बडे प्रभावशाली व्यक्तियों के सिद्धान्तों की नीवें पर हो रहा है।

आज एक सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता है, और जबतक हम इसके लिए समाज की जडो को उसी प्रकार नहीं सीचते, जिस प्रकार गाधी ने सीचा था, तबतक हम मानव में खोये हुए विश्वास को पुन जगा नहीं सकते, और न इस 'सर्वहारीकरण' (मार्क्स के अर्थ में नहीं

बल्कि आर्नल्ड टायनबी के अर्थ में) मानवता को और आशा दे सकते हैं।

मूल्यों की कसौटी

जब हम संस्कृति की बात करते हैं तो स्वभावतः भारत की परम्परागत संस्कृति का प्रश्न उठता है। प्राचीन संस्कृति को लेकर इस देश में प्रायः बड़ा आवेश से भरा विवाद उठ खड़ा होता है। एक वस्तुगत दृष्टिकोण ही इसमें हमारी सहायता कर सकता है।

आधुनिक जीवन के परिवर्तन की तीव्रता के प्रति आँख मूंद लेना बड़ा घातक होगा। यह जेट-स्पीड की दुनिया है। तकनीकी विकास ने सामाजिक इंजीनियरिंग तथा सामाजिक टेकनालाजी जैसे विषयों को जन्म दिया है। परम्पराओं की हम उपेक्षा तो नहीं कर सकते परन्तु उन्हें हम वहीं तक स्वीकार कर सकते हैं जहाँ तक वे हमारे आज के जीवन की समस्याओं के समाधान में हमारी सहायता कर सकती हैं। परम्परागत मूल्य वहीं तक मूल्य हैं जहाँ तक वे हमारी आज की अनुभूतियों को समझने में मूल्यवान हैं। अतः उनमें से कौन से और कितने हमारे लिए आज मूल्यवान हैं इसको देखने के लिए हमें अपने आज के जीवन को देखना होगा प्राचीन जीवन को नहीं।

आज के ही, कुछ महत्वपूर्ण शिक्षा-केन्द्रों द्वारा या लगभग सभी महत्व के शिक्षा-केन्द्रों द्वारा पाश्चात्य मूल्यों को प्रमुखता देने की प्रवृत्ति का भी हमें प्रतिकार करना है। अपने सामाजिक आदर्शों का स्वरूप हमें आज भी विदेशी क्यों लगता है? इसीलिए कि उन आदर्शों के ढाँचों में हमने आज भी विदेशी तत्त्व भर रखा है। प्रायः एक सांस्कृतिक-सामाजिक इकाई में किये गये अनुसन्धान के परिणामों को दूसरी इकाई में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, परन्तु आश्चर्य है कि भारत की शिक्षा तथा समाजशास्त्र के तमाम अनुसन्धानों की पीठिका विदेशी होती है।

हमारे तमाम विद्यालयों में विदेशी पुस्तकों की बाढ़ है और वे प्रायः अप्रासंगिक विश्लेषण का काम करती हैं। प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में यह ठीक माना जा सकता है क्योंकि पश्चिमी देश यांत्रिक प्रगति में तथा प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसन्धान में हमसे आगे हैं परन्तु समाजशास्त्रीय क्षेत्र में भी ऐसा क्यों माना जाय इसका उत्तर समाजशास्त्री ही देंगे।

संवेगात्मक राष्ट्रीय एकता का मार्ग

ऊपर जिन तर्कों को प्रस्तुत किया गया है उनसे ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि पश्चिमी तथा पूर्वी संस्कृतियों में किसी प्रतिद्वन्द्विता की ओर संकेत कर रहा हूँ। फिर भी हमसे यह आशा की जाती है कि हम अपने सांस्कृतिक जीवन की आत्मा को पहचानें तथा उसके महत्वपूर्ण पक्षों को विश्व के सामने रखें एवं दूसरों को भी उनसे लाभ उठाने दें। यह कोई संकुचित राष्ट्रीयता नहीं है वरन् मानव-संस्कृति-व्यवस्था के प्रति एक स्थानीय एवं प्राचीन संस्कृति का कर्तव्य पालन होगा। दृष्टिकोण की व्यापकता को बिना अपनाये हम कल से ही मानव की भूमि पर उतार न सकेंगे। अतः बालकों में सांस्कृतिक चेतना के विकास की बात कहने का अर्थ केवल यही है कि उनमें अपने राष्ट्र की सृजनात्मक क्षमता में—विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्र के अग्रणी व्यक्तियों की तथा जनता की उपलब्धियों के प्रति—गर्व होना चाहिए। यहाँ यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि यही राष्ट्र के संवेगात्मक ऐक्य को स्थिर रखने का सही ढंग होगा। मैंने जानबूझकर उन मूल्यों को नहीं लिया है जिन्हें आध्यात्मिक अथवा धार्मिक मूल्यों के नाम से पुकारा जा सकता है। इसका कारण यह नहीं है कि वे मूल्यवान नहीं हैं वरन् मेरा लक्ष्य कुछ विशेष दिशाओं की ओर इंगित करना है कुछ विशेष मूल्यों के महत्व को स्पष्ट करना। इसका एक दूसरा कारण यह भी है कि एक ऐसे समाज में जहाँ धार्मिक मूल्यों के नाम पर खोखला बनावटी, रूढ़िवादी एवं दम्भी जीवन को पाला-पोसा जाता है सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि बालकों में इस खोखलेपन के प्रति तिरस्कार की भावना उत्पन्न की जाय।

गांधी ने धार्मिक मूल्यों के भ्रष्टीकरण की ओर हमारा ध्यान बारम्बार आकर्षित किया था। उनके जाने के बाद हम फिर उसी खोखलेपन की ओर बढ़ रहे हैं। यह एक रोगी मन का लक्षण है ऐसा मन जिसमें कर्तृत्व शक्ति का अभाव होता है तथा संकल्प की दृढ़ता नहीं होती। समाज के इस रोगी मन का उपचार शिक्षा को करना है। ●

(२) प्रोजेक्ट-पाठ या योजना पाठ

प्रोजेक्ट अथवा योजना पाठ में छात्र अपने अध्यापकों अथवा एक दूसरे की सलाह से कोई सोद्देश्य योजना चुनते हैं, जिसका शैक्षिक महत्त्व होता है। उदाहरणार्थ–घर बनाने की योजना, विद्यालय में दीपावली मनाने की योजना, राष्ट्रीय सप्ताह मनाने की योजना आदि। किसी योजना को सफल बनाने के लिए क्रिया के अतिरिक्त छात्रों को इतिहास, भूगोल, विज्ञान गणित-सम्बन्धी कई प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार सीखने की एक परिस्थिति पैदा होती है और सीखने की प्रक्रिया सोद्देश्य और प्रेरणात्मक बन जाती है। चूंकि योजना का एक विशेष केन्द्र होता है, इसलिए अर्जित ज्ञान अधिक सुसंगत और अर्थपूर्ण हो जाता है।

(३) इकाई-पाठ (यूनिट-पाठ)

इसमें शैक्षिक महत्व की कोई भी इकाई चुन ली जाती है और उससे सम्बन्धित विषयों के कई पाठ पढ़ाये जाते हैं। उदाहरणार्थ–लद्दाख को एक इकाई माना जा सकता है। अब लद्दाख का भूगोल, उस स्थान की ऊँचाई और तापक्रम का रेखाचित्र, वहाँ के निवासियों के धर्म तथा रीतिरिवाज, स्थान का सामरिक महत्व इत्यादि कई विषयों पर पाठ पढ़ाये जा सकते हैं। ये पाठ लद्दाख इकाई से सम्बन्धित इकाई पाठ कहलायेंगे।

टिप्पणी —बी० टी० सी० के पाठ्यक्रम में समवायित पाठों, योजना तथा इकाई पाठों की जो संख्या निर्धारित की गयी है, वह संख्या कुल पाठों की संख्या है अर्थात् कताई शिल्प की एक प्रक्रिया से स्वाभाविक रूप से सम्बन्धित तीन पाठ गणित, भूगोल और भाषा पर पढ़ाये जायें तो तीन पाठ गिने जायेंगे, एक नहीं। इसी प्रकार किसी एक योजना (प्रोजेक्ट) से अथवा इकाई से सम्बन्धित यदि भाषा, संगीत, गणित, इतिहास, भूगोल पर पाँच पाठ पढ़ाये जायें, तो पाँच पाठ गिने जायेंगे, एक नहीं।

कृत्रिम अनुबन्ध

समवायित पाठों में अनुबन्ध स्वाभाविक होना चाहिए, कृत्रिम नहीं। कृत्रिम अनुबन्ध का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है —

अध्यापक—कल पहले घण्टे में तुमने क्या किया था ?
विद्यार्थी—कताई।
अध्यापक—कताई किस चीज से कर रहे थे ?
विद्यार्थी—रुई से।
अध्यापक—रुई कहाँ पैदा होती है ?
विद्यार्थी—खेत में।
अध्यापक—खेत में और क्या-क्या पैदा होता है ?
विद्यार्थी—गेहूँ, चावल आदि।
अध्यापक—और फूल कौन कौन से पैदा होते हैं ?
विद्यार्थी—गेंदा, गुलाब आदि।
अध्यापक—गुलाब से क्या क्या बनता है ?
विद्यार्थी—गुलाब जल, गुलाब का इत्र आदि।
अध्यापक—गुलाब के इत्र का पहले पहल किसने आविष्कार किया था ?
(कोई उत्तर नहीं)
अध्यापक—अच्छा मैं बताता हूँ,
नूरजहाँ ने।
आज हम नूरजहाँ का इतिहास पढ़ेंगे।

कताई-बुनाई

अनुबन्धित पाठ-संकेत

दिनांक... कक्षा ५ समय ८० मिनट

मुख्य क्रिया–कताई
उप क्रिया–हाथ ओटनी द्वारा कपास ओटना।
समवायित विषय–अंकगणित
प्रसंग–प्रतिशत के प्रश्नों का अभ्यास करना।

उद्देश्य

१ सोद्देश्य तथा उत्पादक क्रियाओं द्वारा बालकों की व्यावहारिक क्षमता का विकास करना।
२ हाथ ओटनी द्वारा कपास की ओटाई करना।

३ ओटाई की प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रतिशत के प्रश्नों का अभ्यास कराना।

आवश्यक सामग्री

कपास दस्ती, तुला और बाट तथा हाथ ओटनी।

पूर्व ज्ञान

१—बालक कपास की ओटाई फिरकी बनाकर हाथ की चुटकी द्वारा कर चुके हैं तथा हाथ ओटनी के विभिन्न भागों से परिचित हैं।

२—बालकों को क्विंटल किलो ग्राम, ग्राम आदि का ज्ञान है।

३—छात्र प्रतिशत का साधारण ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं।

विचार विमर्श

१—रुई और कपास में क्या अन्तर है?
(बिनौला निकली हुई कपास रुई कहलाती है)

२—कपास को रुई में किस प्रकार बदलोगे?
(ओटाई करके)

३—कपास की ओटाई कैसे करोगे? (समस्या)

उद्देश्य कथन

आज हम लोग हाथ ओटनी द्वारा कपास की ओटाई करना सीखेंगे।

प्रस्तुतीकरण

ओटनी की ओर संकेत करके अध्यापक निम्नांकित प्रश्नों को पूछेगा —

१ ओटनी के मुख्य भाग कौन होते हैं?

२ लाट बेलना तथा हत्था का क्या काम है?

३ हत्था किस हाथ से घुमाया जाता है?
(दायें हाथ से)

४ कपास किस हाथ से पकड़ायी जाती है?
(बायें हाथ से)

आदर्श प्रदर्शन

अध्यापक निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए बच्चों के समक्ष आदर्श प्रदर्शन करेगा तथा निम्नलिखित आवश्यक बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करेगा।

१—हत्था दायें हाथ से घुमाना चाहिए और कपास बायें हाथ से लगानी चाहिए।

२—बेलने के दोनों ओर २.५ सें० मी० का भाग खाली छोड़ देना चाहिए जिससे कपास या रुई खम्भा की ओर न जा सके।

३—कपास के फँसन पर उसका कुछ भाग खींचकर फिर तुरत ही दूसरे स्थान पर लगा देना चाहिए।

४—ओटते समय बिनौले टूटने नहीं चाहिएँ।

५—ओटने से पहले चरखी में तेल डालना चाहिए।

बोध प्रश्न

१—चरखी का हत्था किस हाथ से घुमाना चाहिए?

२—चरखी में कपास किस हाथ से लगानी चाहिए?

३—ओटते समय किन किन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए?

श्यामपट्ट सारांश

बोध प्रश्नों पर उत्तर लिखा जायगा।

सामग्री वितरण

तत्पश्चात अध्यापक बच्चों की सहायता से प्रत्येक बालक के लिए २५ ग्राम कपास दस्ती तथा हाथ ओटनी का वितरण करवायगा।

क्रियाशीलन एवं निरीक्षण

अध्यापक के आदेशानुसार बच्चे अपने-अपने स्थान पर यथाविधि कार्य आरम्भ करेंगे। अध्यापक उनके कार्य का निरीक्षण करेगा तथा आवश्यकतानुसार सहायता भी देगा। ओटाई करने के पश्चात अध्यापक बिनौले और रुई को अलग अलग एकत्र करने का आदेश देगा और उनका वजन करवायगा।

मूल्यांकन एवं नवीन पाठ समस्या

१—आज तुमलोगों ने कौन-सा कार्य किया?
(ओटाई)

२—तुमलोगों ने कितनी कपास की ओटाई की?
(२५० ग्राम)

३–आटाई करने पर कुल कितनी रुई निकली ?

(६० ग्राम)

४–तो रुई का प्रतिशत क्या हुआ ?

(समस्या)

सम्बन्धित पाठ

प्रतिशत पर इबारती प्रश्न

प्रस्तुतीकरण

१–कुल कितनी कपास आटी गयी ?

(२५० ग्राम)

२–कितनी रुई निकली ? (६० ग्राम)

पहला प्रश्न

यदि २५० ग्राम कपास म ६० ग्राम रुई निकली तो १०० ग्राम कपास म कितनी रुई निकलेगी ?

$$\left(\frac{६०\times१००}{२५०}\right) \text{ ग्राम}$$

= २४ ग्राम

रुई का प्रतिशत क्या आया ? (२४ प्रतिशत)

दूसरा प्रश्न

यदि कपास को आटने पर २४ प्रतिशत रुई निकलती है तो १२५.५ कि० ग्राम कपास आटने पर कितनी रुई एवं बिनौला निकलेगा ?

१–तुम्हें कुल कितनी कपास आटनी है ?

(१२५.५ कि० ग्राम)

२–१२५.५ कि० ग्राम कपास आटने पर कितनी रुई निकलगी ?

उत्तर न मिलने पर अध्यापक निम्नांकित प्रश्न करेगा —

३–कपास स रुई किस दर स निकलती है ?

(१०० पर २४)

४–यदि १०० कि० ग्राम कपास म २४ कि० ग्राम रुई निकलती है तो १२५.५ कि० ग्राम से कितनी रुई निकलगी ?

५–इसे निकालने के लिए पहले क्या ज्ञात करोगे ?

(एक कि० ग्राम कपास में कितनी रुई प्राप्त होगी)

६–१ कि० ग्राम स कितनी रुई प्राप्त होगी ?

$$\frac{२४}{१००}$$

७–१२५.५ कि० ग्राम कपास से कितनी रुई प्राप्त होगी ?

$$\frac{२४}{१००}\times १२५.५ \text{ कि० ग्राम} = ३०.१२ \text{ कि० ग्राम}$$

८–यदि ३०.१२ कि० ग्राम रुई निकली तो बिनौला कितना निकला ?

(१२५.५–३०.१२) = ९५.३८ कि० ग्रा०

श्यामपट्ट कार्य

(अ) २५० ग्राम कपास स ६० ग्राम रुई प्राप्त होती है

इसलिए १ ग्राम कपास से $\frac{६०}{२५०}$ ग्राम रुई प्राप्त होगी

इसलिए १०० ग्राम कपास से $\frac{६०}{२५०}\times १००$ ग्राम

=२४ ग्राम

उत्तर २४ प्रतिशत

(ब) १०० कि० ग्राम कपास से २४ कि० ग्राम रुई निकलती है

१ कि०ग्रा० कपास से $\frac{२४}{१००}$ कि० ग्राम रुई निकलती है।

१२५.५ कि०ग्रा० कपास से $\frac{१२५.५\times२४}{१००}$ कि० ग्राम

$=\frac{१५०.६}{५}$ कि० ग्राम

=३०.१२ कि० ग्राम

अत बिनौल की मात्रा= १२५.५–३०.१२=९५.३८ कि० ग्राम।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१–यदि कपास को आटने पर ३० प्रतिशत रुई निकलती है तो २ क्विटल १५ कि० ग्राम कपास को ओटने पर कितनी रुई निकलगी ?

२–यदि कपास आटने पर ७५ प्रतिशत बिनौला निकलता है तो १ क्विटल ७५ कि० ग्राम कपास आटने पर कितना बिनौला निकलगा ?

निरीक्षण एवं संशोधन-कार्य

अध्यापक बालकों के कार्य का निरीक्षण करेगा तथा आवश्यकतानुसार उनकी व्यक्तिगत सहायता करेगा। अन्त में अभ्यास-पुस्तिकाओं को एकत्र कर अशुद्धि परिमार्जन करेगा।

कृषि

अनुबन्धित पाठ

दिनांक.....	कक्षा	समय
	६	८० मिनट

क्रिया – अरुई की बोआई
समवायित विषय – सामान्य विज्ञान
प्रसंग – भूमिगत तने

उद्देश्य

१–उत्पादक शिल्प के शिक्षण द्वारा छात्रों की व्यावहारिक क्षमता का विकास करना।
२–बालकों को अरुई बोने की वैज्ञानिक विधि से अवगत कराना।
३–उन्हें विभिन्न प्रकार के भूमिगत तनों से अवगत कराना।

आवश्यक सामग्री

१–फावड़ा, रस्सी, अरुई के बीज।

सहायक सामग्री

२–साधारण पौधे का तना, लहसुन, प्याज, आलू के पौधे, सूरन, अदरक और हल्दी।

पूर्व ज्ञान

१–बालक रबी की तरकारियों की बोआई कर चुके हैं तथा जायद की कुछ सब्जियों से परिचित हैं।
२–बालक यह भी जानते हैं कि तना पौधे का एक भाग होता है।

प्रस्तावना

१–आजकल (मार्च में) कौन-कौन सी तरकारियाँ बोई जाती हैं?
(अरुई, भिण्डी, तरोई, लौकी आदि जायद की तरकारियाँ)।
२–अरुई तुम किस प्रकार बोओगे? (समस्या)

उद्देश्य का कथन

आज हम लोग क्यारी में वैज्ञानिक विधि से अरुई बोयेंगे।

प्रस्तुतीकरण

अध्यापक श्यामपट्ट पर क्यारी की एक रूप-रेखा बनायगा इस रेखा-चित्र में चौड़ाई की एक भुजा की ओर सिंचाई की नाली बनायगा और इस सिंचाई की नाली के लम्बवत साठ-साठ से० मी० की दूरी पर अरुई का बीज बोने के लिए रेखाएँ (क्यारियाँ) बनायगा। बीज से बीज की दूरी के लिए ४५ सेन्टीमीटर पर चिन्ह बनायगा। फिर निम्नांकित प्रश्नों द्वारा क्रिया को स्पष्ट करेगा –

१–अरुई बोने के लिए पंक्तियाँ साठ-साठ सेन्टीमीटर की दूरी पर क्या बनायी जाती हैं? (जिससे अरुई के पौधों को फैलने के लिए पर्याप्त स्थान मिल सके)।
२–कितने कितने फासले पर अरुई बोयेंगे? (४५, ४५ से० मी०)
३–बीज को कितनी गहराई में बोना चाहिए? (१० से० मी०)

आदर्श प्रदर्शन

अध्यापक छात्रों को एक पंक्ति में कक्षा से क्यारी तक ले जायगा। पहले अध्यापक स्वयं क्यारी गोड़ेगा और साठ-साठ से० मी० की दूरी पर दस-दस से० मी० गहरी लाइनें बनाकर तथा ४५ से० मी० की दूरी पर अरुई की गाँठे बोकर आदर्श प्रदर्शन करेगा तथा निम्नलिखित निर्देश देगा —

१–पंक्ति से पंक्ति की दूरी साठ से० मी० होनी चाहिए।

२–४५ ४५ से० मी० की दूरी पर १० से० मी० की गहराई में बीज बोना चाहिए।
३–यंत्रों का उपयोग सावधानी से करना चाहिए।
४–पंक्तियाँ सीधी होनी चाहिएँ।

क्रियाशीलन

अध्यापक छात्रों की सहायता से यन्त्रों का बँटवारा कर देगा तथा उन्हें कार्य प्रारम्भ करने का आदेश देगा। अध्यापक छात्रों के साथ स्वयं काम करेगा, उनके कार्य का निरीक्षण करेगा और यथासम्भव व्यक्तिगत सहायता भी पहुँचायगा।

कक्षा हेतु-प्रस्थान

क्रिया समाप्त होने के पश्चात् छात्र अपनी शारीरिक सफाई करने के पश्चात् पंक्तिबद्ध होकर कक्षा में जायेंगे।

पुनरावृत्ति और श्यामपट्ट-सारांश

अध्यापक निम्नलिखित प्रश्नों की सहायता से श्याम पट्ट-सारांश लिखेगा —

१–अरई बोने के लिए पंक्ति की आपस की दूरी कितनी होनी चाहिए ?
२–एक पंक्ति में कितनी दूरी पर अरई का बीज बोना चाहिए ?
३–अरई कितनी गहराई में बोना चाहिए ?

नवीन पाठ की समस्या

१–अरई उगाने के लिए हम बीज के रूप में किस वस्तु का प्रयोग करते हैं ?
(अरई का)

२–अरई पौधे का कौन-सा भाग है ? (समस्या)

प्रस्तुतीकरण

अध्यापक बालकों को एक साधारण पौधे का तना दिखलाकर निम्न प्रश्न करेगा —

१–पौधे के प्रमुख भाग कौन-कौन से हैं ?
(जड़, तना, पत्ती आदि)

२–तने की क्या विशेषता होती है ?

सतोषजनक उत्तर न मिलने पर अध्यापक तने की विशेषताओं के विषय में निम्न प्रश्न पूछेगा —

१–तने पर उठे भागों को क्या कहते हैं ?
(गाँठें)

२–गाँठों को किस विशेष नाम से पुकारते हैं ?
(नोड)

३–दो गाँठों के बीच के खाली स्थान को क्या कहते हैं ? (पर्व)

४–पत्ती तने के किस भाग से निकलती है ?
(गाँठ से)

५–पत्ती तथा तने के कोण के बीच में क्या है ?
(कली)

६–कली का क्या कार्य है ?

सतोषजनक उत्तर न मिलने पर अध्यापक बतलायगा कि यही कली आगे चलकर शाखा का रूप धारण कर लेती है।

अब अध्यापक छात्रों की सहायता से कक्षा में अरई वितरित करायगा तथा निरीक्षण करने को कहेगा। फिर अरई के भूरे छिलके की ओर संकेत करके निम्नांकित प्रश्न करेगा —

१–इस भूरे छिलके को क्या कहते हैं ?
(पत्ती रूपी छिलका)

कली की ओर संकेत करके प्रश्न करेगा।

२–इस भाग को क्या कहते हैं ?
(कली)

३–इसलिए अरई पौधे का कौन-सा भाग कहलायगी ?
(तना)

४–अरई की भाँति मिट्टी के अन्दर रहनेवाले अन्य तनों के नाम बताओ ?
(अदरक, आलू, प्याज, लहसुन आदि)

पुनरावृत्ति

१–तने की क्या विशेषता होती है ?
२–अरई को तुम तना क्या कहते हो ?
३–कुछ भूमिगत तना के नाम बताओ।

श्यामपट्ट

पुनरावृत्ति द्वारा प्राप्त प्रश्नों के उत्तर की सहायता से श्यामपट्ट कार्य प्रस्तुत किया जायगा।

गृह शिल्प

अनुबन्धित पाठ

दिनाक ..	कक्षा	घण्टा	समय
	७	५ एव ६	१ घण्टा २० मिनट

मुख्यक्रिया—छ कली का पेटी कोट सीना

उपक्रिया—कागज पर इसकी ड्राफ्टिंग बनाना

समवायित विषय—बीजगणित (समीकरण)

उद्देश्य

१—छात्रा को गृह शिल्प एव व्यावहारिक ज्ञान देना।

२—छात्राओ को पेटीकोट की सीट अथवा १ कली का नाप बताकर बीजगणित के समीकरण द्वारा तर्कसगत ढग से सोचकर तथा निर्णय करने कली एव सीट का नाप ज्ञात करने की योग्यता प्रदान करना।

३—दिये हुए माप के अनुसार कागज पर छह् कली के पेटीकोट की ड्राफ्टिंग कराना।

पूर्व ज्ञान

बालिकाएँ पेटीकोट के माप का नाप लेना जानती है।

आवश्यक सामग्री

१—ब्राउन का कागज, रगीन चॉक, रबर, पैमाना, कैंची तथा टैप।

सहायक सामग्री

१—नाप लेने के स्थान का चार्ट।

२—पेटीकोट के नाप की सूची —

पेटीकोट की लम्बाई = ८७ सेन्टीमीटर

पेटीकोट की सीट=८१ सेन्टीमीटर

पेटीकोट की कमर (बेल्ट)=६६ सेन्टीमीटर

३—एक पेटीकोट की ड्राफ्टिंग का चार्ट।

४—कई प्रकार के सिले हुए पेटीकोट।

प्रस्तावना

१—पेटीकोट कितने तरह के होते हैं ?

(अ) सादा घेरेदार पेटीकोट।

(ब) कलीदार पेटीकोट।

२—कलीदार पेटीकोट कितने तरह के होते हैं ?

(अ) चार कली का पेटीकोट।

(ब) छह कली का पेटीकोट।

३—उपर्युक्त पेटीकोटो में से कौन सा पेटीकोट अधिक उपयोगी है ?

छात्राओ के उत्तर न दे सकने पर अध्यापिका विभिन्न प्रकार के पेटीकोट दिखायगी तब वे बतायेंगी कि छह् कली का पेटीकोट अधिक उपयोगी होता है क्योंकि इसकी घेर तथा बेल्ट कम होती है।

उद्देश्य कथन

आज हम लोग छह् कली के पटीकोट की कागज पर ड्राफ्टिग करेंगे।

प्रस्तुतीकरण

१—छह् कली का पटीकोट बनाने के लिए किन किन नापो की जरूरत पडेगी ?

(कमर सीट, लम्बाई)

(अ) पेटीकोट के लिए कितना लम्बा कपडा लोगी ?

(लम्बाई का दुगुना)

यदि पेटीकोट की लम्बाई ८७ से० मी० रखनी है तो तुम्हें १७४ से० मी० कपडा लेना होगा। (अध्यापिका एक चार्ट दिखाकर इसे स्पष्ट करेगी।)

(ब) पेटीकोट के लिए कितना चौडा कपडा लोगी ?

(सीट के नाप के बराबर)

(स) पेटीकोट की बेल्ट कितनी लम्बी रखोगी ?

(कमर का नाप + १० सेन्टीमीटर)

(द) बेल्ट कितनी चौड़ी रखोगी ?

(१० सेन्टीमीटर)

अध्यापिका फिर प्रश्न करेगी —

(अ) पेटीकोट के लिए कितना लम्बा चौड़ा कपड़ा लेते हैं ?

(ब) बेल्ट के लिए किस हिसाब से कपड़ा लेते हैं ?

२–तुम किस नाप का पेटीकोट बनाना चाहती हो ?

(सम्भावित उत्तर)

छात्राओं के उत्तर विभिन्न प्रकार के होंगे, अतः अध्यापिका कहेगी कि वह निम्नलिखित माप के अनुसार ड्राफ्टिंग तथा माप की सूची छात्राओं के सम्मुख प्रस्तुत करेगी।

३–पेटीकोट बनाने के लिए कपड़े को किस प्रकार रखना चाहिए ?

कपड़े को लम्बाई में दोहराकर दिया। दोहरा करने से कपड़े की लम्बाई—जितनी दी हुई है और कपड़े की चौड़ाई – जितना सीट का नाप है, उतनी ही होगी। इसी हिसाब से ड्राफ्टिंग के कागज को भी रखना होगा।

४–ड्राफ्टिंग में क्या पैमाना मानोगी ?

उत्तर न मिलने पर अध्यापिका चार्ट दिखायगी जिसपर पैमाना ५ से० मी० – १ से० मी० माना गया है।

आदर्श प्रश्न

५–पैमाने के अनुसार पेटीकोट की लम्बाई कितनी होगी ?

(१७.४ सेन्टीमीटर)

६–पेटीकोट की सीट कितनी दी हुई है ?

(८१ सेन्टीमीटर)

७–पैमाने के अनुसार सीट की नाप क्या होगी ?

(१६.२ से० मी)

८–कली की चौड़ाई कितनी रखोगी ?

उत्तर न दे सकने पर अध्यापिका बतायगी कि जितनी सीट की चौड़ाई दी हुई है उसमें सिलाई एवं मिलाई के लिए ९ से० मी० और जोड़ा। छह कली का बनाना है इसलिए ६ से भाग दो। भाग देने के बाद चुनटों के लिए ५ से० मी० जोड़ दो।

९–इस प्रकार कली की चौड़ाई कितनी हुई ?

$$\frac{\text{सीट}+९}{६}+५=\text{कली की चौड़ाई}$$

या

$$\frac{८१+९}{६}+५=१५+५=२०$$

=२० से० मी० कली की चौड़ाई।

अध्यापिका श्यामपट्ट पर कलियों के चिन्ह लगाकर दिखायगी—

पहिले बीच में १० से० मी० का निशान लगाया, फिर इसकी विपरीत दिशा में दायीं एवं बायीं ओर भी १० से० मी० का चिन्ह लगाया। ऊपर एवं नीचे लगाये चिन्हों को तिरछी लाईन द्वारा मिलाया। इस तिरछी लाइन पर लम्बाई के बराबर नापकर दायीं एवं बायीं ओर ऊपर घेर में गोलाई का चिन्ह लगाया। इसी प्रकार नीचे भी लम्बाई के बराबर नापकर गोलाई कर दी।

१०–बेल्ट का नाप क्या रखोगी ?

(६६+४=७० से० मी० लम्बाई–१० से० मी० चौड़ाई)

श्यामपट्टकार्य

अध्यापिका पेटीकोट के दिये हुए माप के अनुसार श्यामपट्ट पर ड्राफ्टिंग करके दिखायेगी।

पुनरावृत्ति

१–छह कली के पेटी कोट बनाने के लिए कितना कपड़ा लिया है ?

२–पेटीकोट की बेल्ट के लिए कितना कपड़ा लिया है ?

३–कली की चौड़ाई कैसे निकाली है ?

सामग्री वितरण

अध्यापिका एक बालिका द्वारा ड्राफ्टिंग के लिए ब्रॉम का कागज पैमाना तथा रंगीन खड़िया वितरित करेगी।

अभ्यास-कार्य

अध्यापिका छात्रा से श्यामपट्टांकित माप के अनुसार ड्राफ्टिंग करने को कहेगी। छात्राएँ करेंगी।

निरीक्षण एवं संशोधनकार्य

छात्राएं ने ड्राफ्टिंग करते समय निरीक्षण करते हुए अध्यापिका आवश्यकतानुसार व्यक्तिगत सहायता प्रदान करेगी।

समवायित विषय–गणित

(बीजगणित—समीकरण)

प्रस्तावना

१–पेटीकोट की ड्राफ्टिंग में कली की चौड़ाई कैसे निकालते हैं ?

$\left(\frac{\text{सीट}+९ \text{ से॰ मी॰}}{६}+५=\text{कली की चौड़ाई}\right)$

२–उस पेटीकोट की सीट क्या होगी जिसकी कली की माप से सीट का माप ७५ से॰ मी॰ अधिक है ?

(इस प्रश्न को अध्यापिका श्यामपट्ट पर लिख देगी फिर निम्नांकित प्रश्न करेगी —

प्रस्तुतीकरण

१–इस प्रश्न में क्या ज्ञात करना है ? (सीट)

२–इस प्रश्न में क्या दिया हुआ है ?
(कली तथा सीट का सम्बन्ध)

३–इस प्रश्न में कली एवं सीट का क्या सम्बन्ध दिया है ?
(कली से सीट ७५ से॰ मी॰ अधिक है)

४–कली का माप क्या है ? (अज्ञात)

५–अज्ञात राशि के लिए क्या करोगी ?
(कली को 'क' मानेंगे)

६–कली जब 'क' है तो सीट क्या होगी ?
('क'+७५ से॰ मी॰)

७–सीट ज्ञात हो जाने पर कली की चौड़ाई किस फार्मूला से निकालती हो ?

$\left(\frac{\text{सीट}+९}{६}+५=\text{कली की चौड़ाई}\right)$

८–यदि सीट 'क'+७५ से॰ मी॰ है तो कली की चौड़ाई क्या होगी ?

(अ) सीट में कितने सेन्टीमीटर जोड़ती हो ?
(९ सेन्टीमीटर)

(ब) 'क'+७५ में ९ जोड़ने पर कितना आया ?
('क'+७५)+९

(स) कली की चौड़ाई क्या होगी ?

$\frac{(\text{'क'}+७५)+९}{६}+५$

९–कली की चौड़ाई तुमने क्या मानी है ? ('क')

१०–$\frac{(\text{'क'}+७५)+९}{६}+५$ और क में क्या सम्बन्ध है ? (बराबर है)

११–इसको किस प्रकार लिखोगी ?

$\frac{(\text{'क'}+७५)+९}{६}+५=\text{क}$

(अध्यापिका बतलायगी कि इसको समीकरण कहते हैं।

१२–इस प्रश्न में तुम्हें क्या ज्ञात करना है ?
('क' का मान)

१३–'क' का मान कैसे ज्ञात करोगी ?
(समीकरण हल करके)

१४–(अ) समीकरण कैसे सरल करोगी ?
(६ से दोनों ओर गुणा करके)

(ब) ६ से गुणा करने पर कितना आया ?
'क'+७५+९+३०=६'क'

१५–ज्ञात और अज्ञात राशियों को पक्षान्तर करने पर क्या आयगा ?
–५'क'=–११४

१६–'क' का मान क्या होगा ?

$\left(\text{'क'}=\frac{-११४}{-५}=२२.८ \text{ से॰मी॰}\right)$

१७–'क' तुमने किसका नाप माना था ?
(कली का)

१८–'क' का मान कितना आया ?
(२२.८ से॰ मी॰)

१९–कली का माप कितना हुआ ?
(२२.८ से॰ मी॰)

२०–सीट कली से कितनी अधिक है ?
(७५ से॰ मी॰)

मानव-जाति की दुश्मन : सत्ता

•

डा० रोनाल्ड सैम्सन

[प्राध्यापक राजनीति विभाग, ब्रिस्टल विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड]

[जबकि सारे भारत में सर्वत्र अणुबम बनाने-न बनाने के बारे में चर्चा चल रही है, इस मौके पर पश्चिमी विचारक डा० रोनाल्ड सैम्सन का यह लेख विचार करने में सहायक सिद्ध होगा।—सम्पादक]

तीन वर्ष पहले के एक अनुमान के अनुसार दुनिया में प्रति व्यक्ति २० टन आणविक शस्त्रों का सम्भार आज मौजूद है। दुनिया के विभिन्न देशों की सेनाओं में इस समय दो करोड़ सिपाही हैं। अमरिका अपने कुल बजट का ४० प्रतिशत 'सुरक्षा' पर खर्च करता है। इस प्रकार कमोबेश मात्रा में हर राष्ट्र सेना और शस्त्रों पर खर्च कर रहा है। यह सब उस दुनिया में हो रहा है जिसमें करोड़ों भूखे अशिक्षित और निराधार लोगों की जिम्मेदारी हमपर है।

हमलोग इतने बड़े भयानक अपराध तथा मानव विद्रोह के कबतक मूक दर्शक और साक्षी रहेंगे ? हमलोग अपनी खुद की सुरक्षा के लिए सारी मानव जाति का अस्तित्व खतरे में डालने के लिए क्या उद्यत हैं ? हमें किसका डर है ? पूंजीवादियों का, साम्राज्यवादियों का, कम्यूनिस्टों का, अंग्रेजों का, चीनियों का ... ?' हम पृथ्वी के किस देश में रहते हैं और किस रंग या जाति के हैं उसके अनुसार हमारा यह भूत होता है—सच्चा या काल्पनिक। लेकिन जो बात हम सबको समान रूप से लागू होती है वह यह कि हम सब अपने अपने डर से इतने अभिभूत हैं कि हम उन डरों के बारे में तर्क-बुद्धि से सोच भी नहीं सकते।

यह ठीक है कि हमारे ये डर, या हमारे पीछे लगे हुए ये भूत कुछ माने में ही हैं। विशाल सेनाओं से सुसज्जित सरकारें निरन्तर किसी-न-किसी के लिए खतरा पैदा करती रहती हैं। दुनिया की ताकतवर सरकारों में से कोई भी ऐसी नहीं है जो इस माने में निर्दोष हो।

कोई भी शस्त्र बचाव के लिए है यह बात ही गलत है। इतना ही है कि सामनेवाले के शस्त्रों के कारण मेरा भी शस्त्र रखना जायज हो जाता है।

इस घातक चक्रव्यूह में से निकलने का कोई भी रास्ता नहीं है। जबतक कि लोग यह न समझ लें कि हमारा असली दुश्मन साम्यवाद काला या गोरा, अंग्रेज या जर्मन, रूसी या अमरीकी—न है न कभी रहा है। असली दुश्मन बाहर कहीं नहीं है वह तो ठेठ यहीं, जहाँ मैं हूँ मौजूद है और यहीं उसके साथ मुकाबिला करना है। वह दुश्मन है सत्ता की हमारी भूख क्योंकि वह अनिवार्यत उनलोगों में जिनपर वह चलायी जाती है जाने या अनजाने डर और प्रतिरोध पैदा करती है।

अगर हम सर्वनाश से बचना चाहते हैं तो हम यह डर अपने दिल से निकाल देना होगा और सत्ता के सामने खड़े हो जाना होगा। लोगों में हिम्मत की कमी नहीं है लेकिन हम असली दुश्मन को अभी तक पहचान नहीं पाये हैं।

हम काल्पनिक और झूठे भूतों और राक्षसों के पीछे पड़े हैं जो लोगों द्वारा हमारे सामने खड़े किये गये हैं तथा जो असली दुश्मन की ओर से हमारा ध्यान हटाना चाहते हैं। हर मुल्क में ऐसे कुछ लोग हैं जो दूसरों पर सत्ता चलाते हैं जो किसी पर सत्ता चलाना नहीं चाहते हैं वे सत्ता में जा भी नहीं पाते हैं।

सत्ता की यह आकांक्षा केवल राजनीतिक नेताओं में ही हो सो बात नहीं है। जिनके हाथ में राज्य की सर्वोच्च सत्ता है और जिनका उसपर काबू है वे तो उस सीढ़ी के सबसे ऊँचे पाये पर हैं। लेकिन उस सीढ़ी के नीचे के पायों पर भी यानी नौकरशाही में, सेना में, अदालतों में मन्दिरों

में उद्योग-व्यापार में श्रमिक संगठनों में अखबारी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में —सब जगह सत्ता की कशमकश चलती रहती है।

सत्ता के इन छोटे बड़े केन्द्रों में जो लोग हैं वे यह न समझते हो सो बात नहीं है। लेकिन सत्ता के औचित्य के बारे में अगर वे शंका उठाते हैं तो उनकी पद की स्थिति खतरे में पड जाती है यह वे मन में समझते हैं। बार बार मैंने लोगों से सुना है— जहा तक मेरी निजी राय का सवाल है मैं आपसे सहमत हूँ। लेकिन आप जानते हैं कि मैं जिस परिस्थिति में हूँ उसमें और वह आवाज लुप्त हो जाती है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हमारा भविष्य या सर्वनाश टाला नहीं जा सकता। लोग मूल में बुरे बेवकूफ या अंध नहीं हैं। दुनिया के जो करोड़ों सामान्य लोग हैं उनको सिर्फ थोड़ी सी हिम्मत या ईमानदारी की आवश्यकता है ताकि वे इस परिस्थिति को बदलने के लिए आवश्यक पहला कदम उठा सकें।

हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में घर में काम पर दफ्तर में कारखाने में मन्दिर मस्जिद या स्कूल कालेज में—हमको दूसरों के दबाव से डरना छोड़ देना चाहिए। हमें नम्रतापूर्वक लेकिन दृढ़ता से और साफ साफ यह जाहिर कर देना चाहिए कि हम इससे आगे सत्ता के इस जाल में जो हिंसा और दमन के विनाशक शस्त्र संभार पर टिका हुआ है न तो साझीदार होंगे न उससे दबेंगे।

ऐसा करने में हम दूसरों को भी—देश विदेश में—भय के ऊपर उठने में मदद करेंगे। दूसरे जो लोग इसी तरह मौत के डर से आजाद होने के लिए संघर्ष कर रहे होंगे उनके साथ सम्बन्ध जोड़कर हम अब भी दुनिया में समानता के आधार पर मानवीय सम्बन्धों की स्थापना में सफल हो सकेंगे।

इस प्रकार हम सरकारों के लिए यह असम्भव बना देंगे कि वे अपनी आक्रमणकारी शक्तियों के द्वारा मनुष्यों की जिन्दगी को खतरे में डाल सकें या नष्ट कर सकें।

—अनु०—श्री सिद्धराज ढड्ढा

अगर आप वोटर हैं

•

राममूर्ति

इस मौके पर राजनीतिक कलह नहीं राजनीतिक सुलह (पालिटिकल ट्रस) चाहिए। यह मांग १६ नवम्बर को प्रधानमंत्री ने अपने रेडियो भाषण में की और काफी दर्द के साथ की।

एक ओर सभी राजनीतिक दल फरवरी में होनेवाले चुनाव में एक-दूसरे को पछाड़ने की पैंतरेबाजी में लगे हों और दूसरी ओर उनके सामने सुलह की बात रखी जाय यह सचमुच कितनी बेमेल बात है। लेकिन अकाल की परिस्थिति की विवशता के कारण चुनाव को थोड़ी देर के लिए अलग रखकर प्रधानमंत्री को कहना पड़ा कि ऐसे संकट के समय भूख को राजनीति का विषय न बनाया जाय। जब देश के कई भागों में भयंकर सूखे के कारण करोड़ों लोगों के सामने जीने मरने का सवाल पैदा हो गया हो तो दल की बातें छोड़कर दिल की बात कहनी चाहिए। क्यों? इसलिए कि मनुष्य की जीविका और भोजन राजनीति से परे है। राजनीति दिलों को तोड़ती है इस वक्त दिलों को जोड़नेवाली चीज चाहिए।

राजनीति किसलिए?

जीविका और भोजन ही क्यों जब देश की प्रतिरक्षा (डिफेन्स) का प्रश्न सामने आता है तो कहा जाता है कि यह किसी दल का नहीं पूरे राष्ट्र का प्रश्न है। जब विद्यार्थी विद्यालयों में उपद्रव करते हैं तो जोर दिया जाता है कि शिक्षण को दलबन्दी से अलग रखना चाहिए। जब भ्रष्टाचार मिटाने की बात होती है तो फिर वही बात दुहरायी जाती है कि भ्रष्टाचार मिटाने के लिए समस्त जनता की सम्मिलित शक्ति चाहिए यह काम किसी एक दल या केवल सरकार का नहीं है। इतना ही नहीं गाँव की पंचायतों में राजनीतिक दल अपनी ओर से उम्मीदवार न खड़े करें यह बात भी दलों की

ओर से बार-बार दुहरायी गयी है, भले ही मानी न गयी हो। और, धर्म का तो राजनीति से अछूता रहने की बात है ही।

इन बातों से कुल मिलाकर एक अजीब स्थिति सामने आती है। भोजन में राजनीति नहीं, प्रतिरक्षा में राजनीति नहीं, शिक्षण में राजनीति नहीं, भ्रष्टाचार में राजनीति नहीं, पंचायत में राजनीति नहीं, धर्म में राजनीति नहीं, तो सोचने की बात है कि हमारे देश में राजनीति से किसी समस्या का हल होता नहीं दिखायी देता, तो राजनीति है किसलिए ? देश के जीवन का कौन-सा पहलू बच गया है, जिसके लिए यह राजनीति चलायी जा रही है ? केवल सरकार बनाने के लिए ? क्या सरकार बनाने का कोई दूसरा तरीका नहीं है ? क्या हम मात्र सरकार बनाने और चलाने के लिए दलबन्दी की राजनीति के दुष्परिणामों को भोगते रहना चाहते हैं ? लोग कहते हैं कि अगर दल नहीं रहेंगे, और चुनकर चुनाव नहीं होंगे, तो लोकतंत्र कैसे चलेगा ? बात भी सही है कि अगर चुनावबाजी के बिना जनता की सरकार न बन सके, और देश में लोकतंत्र न चल सके, तो दलबन्दी की राजनीति में चाहे जितनी बुराइयां हों, और उनके कारण देश को चाहे जो मूल्य चुकाने पड़ें, राजनीति को बनाये रखना चाहिए – इस आशा में कि किसी दिन राजनीति का ऊपरी मैल कट जायगा, और नीचे से लोक-जीवन का साफ, स्वादिष्ट, जल निकल आयगा।

शासन नहीं, सुव्यवस्था

पिछले उन्नीस वर्षों में हमने भरपूर दल बनाये हैं, पंचायत से लेकर पार्लियामेंट तक के चुनाव लड़े हैं, और दिल खोलकर राजनीति का खेल खेला है। लेकिन इन सबका क्या परिणाम हुआ है ? हमारा ही नहीं, पूरे एशिया और अफ्रीका के नये, स्वतंत्र देशों में क्या हुआ है ? हर जगह दल बने, चुनाव लड़े गये, और उनकी नींवों पर ऊपर से लोकतंत्र का सरकारी ढांचा खड़ा किया गया, लेकिन एक के बाद दूसरे देश में वह ढांचा टूटता ही चला गया, और किसी न किसी तरह की डिक्टेटरशिप कायम होती चली गयी। जिस लोकतंत्र को नेताओं ने जनता की स्वतंत्रता और उसके मूल अधिकारों के नाम में कायम किया था, उसे उस जनता ने स्वयं अपनी मुक्ति के लिए सेना और डिक्टेटर को सौंप दिया। इस वक्त भारत अकेला देश बच गया है, जहाँ यह ढांचा अभी भी कायम है, लेकिन जहाँ तक समाज की समस्याओं का सम्बन्ध है, हमारा यह नेताशाही और नौकरशाही के दो पैरों पर चलनेवाला राजनीति और प्रशासन का ढांचा साफ-साफ निकम्मा साबित हो चुका है।

पंचायत गांव को—एक इकाई के रूप में गांव को—आगे नहीं बढ़ा सकी है, और न तो असेम्बली राज्य को, या पार्लियामेंट देश को ही आगे बढ़ा सकी है। बल्कि लोगों में यह धारणा तेजी के साथ बढ़ रही है कि यह भारी भरकम ढांचा, जो दलबन्दी की राजनीति पर खड़ा है, देश को बहुत पीछे ले गया है, और तेजी के साथ ले जा रहा है। इतनी बात लोग अब समझ गये हैं। यह दूसरी बात है कि इस चिन्ता से निकलने का रास्ता न सूझता हो, या अगर किसी को कहीं सूझा भी है, तो अभी सवमान्य नहीं हुआ है। साथ ही शायद यह बात भी है कि हमारी समझ में भी अभी कमी है। हमने पश्चिम के कुछ देशों की देखा-देखी यह तो सीख लिया कि चुनाव में बहुमत के आधार पर सरकार कैसे बनायी जाती है, लेकिन हमने यह नहीं सोचा कि हमारे जैसे गरीब, पिछड़े, अशिक्षित, और सामाजिक दृष्टि से टूटे और बिखरे हुए देश को अगर वह लोकतंत्र चाहता है तो – शासन नहीं, सुव्यवस्था की जरूरत है, और, सुव्यवस्था बहु के मत से नहीं, सब की सम्मति और सब की शक्ति से कायम होती है।

दमन की शक्ति से सरकार चले, और समाज की की शक्ति से सुव्यवस्था चले, दोनों में बहुत अन्तर है। एशिया और अफ्रीका के राजनीतिक नेताओं ने पश्चिम के लोकतंत्र की चकाचौंध में आकर, या शायद शासन करने की लिप्सा में पड़कर, इस अन्तर को समझा नहीं, या समझकर भी भुला दिया। भुला दिया तो उसका परिणाम भी भरपूर भोगने को मिल रहा है। हर जगह लोकतंत्र की कब्र पर सैनिकतंत्र नाच रहा है। और, भारत के लोकतंत्र में तो 'तंत्र' ही 'तंत्र' रह गया है, 'लोक' करीब-करीब अधमरा हो चुका है।

सशक्त शासन : पंगु समाज

गांधीजी ने इस अन्तर को पहचाना था। स्वराज्य के बाद उन्होंने कांग्रेस को सलाह दी थी कि वह राजनीति

में उन लोगों को जाने दे, जो जाना चाहें, और खुद 'लोक' में चली जाय। किसलिए ? लोक की शक्ति विकसित करने के लिए ताकि समाज स्वयं अपनी शक्ति से चले और सरकार केवल पूरक शक्ति के रूप में रहे। लेकिन गांधीजी की वह सलाह नहीं मानी गयी। इंगलैंड के नमूने पर यहाँ भी वोट की सरकार कायम की गयी, और यह कहा गया कि देश सरकार की शक्ति से चलेगा, बढ़ेगा। इसका नतीजा यह हुआ कि शक्ति समाज से निरन्तर सरकार में चली गयी, समाज पंगु हो गया, और अपनी सभी समस्याओं को हल करने की शक्ति खो बैठा। चुनाव की हार जीत के कुचक्र में पड़कर समाज की रचना में छिपे हुए सब अन्तर्विरोध प्रकट हो गये, और एक-एक गाँव आपसी तनावों और संघर्षों का अखाड़ा बन गया। हम जिसे समाज समझ रहे हैं, वह वास्तव में समाज नहीं, मानवता का जंगल है, जिसमें जातिगत दमन और वर्गगत शोषण की प्रलय-लीला चल रही है।

मालिक-मजदूर का विरोध : राजनीति की पूंजी

हमने स्वराज्य में दलों की हार-जीत की जो राजनीति चलायी, वह समाज के अन्तर्विरोधों से पोषण प्राप्त करती है, और पोषण प्राप्त करते-करते उन्हें बढ़ावा देती है, तथा संगठित करती जाती है। उदाहरण के लिए अपने समाज को देखिए। समाज में मालिक हैं, मजदूर हैं। पूरा समाज ही मालिक-मजदूर के सम्बन्धों से बना हुआ है। मालिक के पास पूंजी है, बुद्धि है; मजदूर के पास मेहनत है, पेट है। मालिक अधिक-से-अधिक काम लेना चाहता है, और कम-से-कम दाम देना चाहता है, और दूसरी ओर मजदूर कम-से-कम काम करके अधिक-से-अधिक दाम चाहता है। यही दोनों का विरोध है। राजनीति ने इस विरोध को अपनी पूंजी बनाया है, और उसे एक सिद्धान्त का नाम देकर प्रतिष्ठित किया है। कहा गया है कि लोकतन्त्र में दोनों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए—मालिक का भी, मजदूर का भी। दोनों के प्रतिनिधित्व का अर्थ यह है कि समाज के संघर्ष के कंधों से राजनीति की गाड़ी चले। मालिक की बात कहनेवाली राजनीति 'राइट' की, मजदूर की कहनेवाली 'लेफ्ट' की, और कभी एक की, कभी दूसरे की कहनेवाली 'बीच' की राजनीति है।

यही है राजनीति का गोरख-धन्धा। दिलों को तोड़नेवाली, और समाज के संघर्षों को बढ़ानेवाली उस राजनीति से बनी हुई सरकार से समाज की समस्याएँ कैसे हल होंगी ? समस्याओं के हल के लिए समाज की सहकार शक्ति चाहिए, संघर्ष की राजनीति नहीं। पूंजी और श्रम का सहकार क्यों नहीं हो सकता, जब पूंजी श्रम के बिना नहीं टिक सकती, और श्रम पूंजी के बिना नहीं चल सकता ? लेकिन यह सहकार तब सम्भव है, जब पूंजीपति (भूमिपति) पूंजी की मालिकी छोड़े, और मजदूर अपने श्रम की मालिकी छोड़े। मालिकी छोड़कर दोनों मनुष्य बन जायँ, और मनुष्य बनकर एक-दूसरे के सहकार से ईमान की रोटी खाने और इज्जत की जिन्दगी बिताने का अधिकार प्राप्त करें।

राजनीति से मुक्ति का मार्ग : ग्रामदान

आज की राजनीति उसी सर्वनाश की मोहक प्रक्रिया है। वोट से हम उस लीला में शरीक होते हैं। लेकिन किया क्या जाय ? आज वह लीला इतनी जबर-दस्त है कि समझ में नहीं आता, उससे छुटकारा कैसे मिलेगा। ग्रामदान ने मुक्ति का एक मार्ग दिखाया है—सर्व की शक्ति से सर्व की मुक्ति का। ग्रामदान आज की सम्पूर्ण परिस्थिति से 'लोक' के विद्रोह का अभियान है, सत्ता और सम्पत्ति की राजनीति के नागपाश को काटने का क्रान्तिकारी पराक्रम है। इसके विपरीत राजनीति 'विरोध' का बहाना दिखाकर हमारे क्षोभों का सौदा करती है। क्षोभों को उभाड़कर वोट लेती है, और हमारा ध्यान क्रान्ति से हटाकर सत्ता के गाटक पर केन्द्रित कर देती है, आज सवाल सत्ता के बदलने का नहीं, समाज के बदलने का है। ग्रामदान और प्रखण्डदान के आन्दोलन से यह स्पष्ट हो रहा है कि दल और चुनाव से मुक्त व्यवस्था तथा संघर्ष से मुक्त क्रान्ति की कल्पना व्यावहारिक है।

फरवरी में चुनाव होंगे। चुनाव की आँधी में हम सब उड़ेंगे। जाति के, धर्म के, दल के, भाषा के नारों से हमारी वासनाएँ जगेंगी, हमारे क्षोभ उमड़ेंगे। एक ओर हम विवेक खोकर वोट दें, और दूसरी ओर चाहें कि अच्छी सरकार बने ‐ भला यह कैसे होगा ? ●

चुनाव और लोकशिक्षण

•

दादा धर्माधिकारी

जिस प्रकार विज्ञापन एक कला है, उसी प्रकार मत जुटाना और चुनाव जीतना भी एक आधुनिक कला है, इसीलिए कहा जाता है कि 'फलां शख्स चुनाव का मैदान जीतने और जिताने में बड़ा सिद्धहस्त है।' मत प्राप्ति करानेवाले निपुण व्यक्तियों को ही चुनाव की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। उसमें उद्देश्य लोकशिक्षण का नहीं होता है। बल्कि मतदाता अगर गाफिल हो तो यह भी कोशिश करनी होती है कि वह बहुत सचेत न हो। पर यह नीति जनतंत्र की दृष्टि से हरगिज लाभकारी नहीं है, उलटे वह घातक एवं नाशकारी भी है।

मतदाता का शिक्षण

इंगलैण्ड में जब धीरे-धीरे जनतन्त्र विकसित होने लगा, तो उम्मीदवार ही यह महसूस करने लगे कि उनके विचार मतदाता सुनें, समझें। वहाँ के लोगों का स्वभाव, उनकी मनोरचना ही ऐसी है कि वे जिनके प्रतिनिधि बनना चाहते हैं, उनको पहले पूरी बात समझा देना चाहते हैं। इसीलिए वे फौरन महसूस करने लगे कि बगैर लोकशिक्षण के जनता उनकी बात ठीक-ठीक नहीं समझ पायगी। प्रचार के दो तरीके होते हैं —एक को दृष्टिगोचर—व्हिजुअल—एवं दूसरे को —श्रवणगोचर—ऑडाइबल—कहते हैं। लोक शिक्षण के लिए इन दोनों का उपयोग चुनाव में होता है। लेकिन जहाँ जनता में अक्षरज्ञान भी न हो, वहाँ श्रवणात्मक एवं चित्रात्मक उपायों का ही अवलम्बन करना पड़ता है। उस हालत में विज्ञापन, अखबार, भित्ति-पत्रक (पोस्टर) आदि का उपयोग कम मात्रा में हो पाता है। स्वभावतः यह जरूरत महसूस की जाती है कि मत-दाता लिखा पढ़ा हो, वह केवल अक्षरज्ञानवाला ही न हो, सुशिक्षित भी हो।

इसलिए सन् १८६१ में इगलैण्ड के शिक्षा विभाग ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत प्रसंग में स्वीकृत किया, जो शिक्षण-समिति के उपाध्यक्ष रावर्ट लो का था, जिसमें कहा गया था कि मतदाता हमारे मालिक हैं और मालिक समझकर ही हम उन्हें शिक्षण दें। मतदाता यदि लिखा-पढ़ा और सुशिक्षित न हो, तो जनतंत्र सफल नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षण विभाग का ध्यान साक्षरता प्रचार की तरफ गया।

चुनाव-कार्य और लोकशिक्षक

चुनाव के पूर्व या पश्चात्—अथवा ठीक चुनाव के समय पर भी, हम अपनी भूमिका शिक्षक की रखकर जनता को समझाते रहना चाहिए। चुनाव का मैदान जीतने-वाले लोग सभाएँ मात्र करते हैं। लोकशिक्षण का काम नहीं करते। वे अपना इतना ही कर्तव्य समझते हैं कि बहस में सामनेवाले का सफाया कर दें। एक पक्ष दूसरे पक्ष का मुँहतोड़ जवाब देता है और उसे निरुत्तर कर देता है। निरुत्तर करने का अर्थ दूसरे के मन में अपनी बात जमा देना नहीं है। उसकी बुद्धि का समाधान करना नहीं है। उस प्रसंग में न किसी को इतनी फुरसत होती है और न वृत्ति ही होती है। अपनी बातें लोगों के गले उतरें, उनकी बुद्धि का समाधान हो, इसकी किसी को चिन्ता नहीं होती, केवल मत-प्राप्ति की होड़ चलती है। दरअसल लोकशिक्षण का कोई अवसर उस समय पर नहीं रह पाता। कम-से-कम, चुनाव जीतने की कोशिश करनेवाले ऐसा कभी नहीं कर पाते। इसलिए लोकशिक्षण का काम करनेवालों को तो तटस्थ और सत्ता निरपेक्ष ही रहना चाहिए।

तटस्थता का अर्थ

तटस्थ और निष्पक्ष रहने के मानी इतने ही हैं कि सत्ता की राजनीति से हम अलिप्त रहें। जो सत्ता और

सम्पत्ति की होड में शामिल होता है, वह सत्ता और सम्पत्ति का निराकरण नहीं कर सकता। मान लीजिए कि एक शख्स धन की होड में शामिल है। अगर हमें सावजनिक सम्पत्ति किसी के पास रखनी हो, तो ऐसे शख्स के पास उसे रखने में हम हिचकेंगे, क्योंकि वह आदमी सम्पत्ति का निराकरण नहीं कर सकेगा, क्योंकि वह स्वय सम्पत्ति की स्पर्धा में शामिल है। अत सम्पत्ति की स्पर्धा में शामिल होनेवाला के पास राष्ट्र की या सस्था की सम्पत्ति न रखी जाय, इसके बारे में करीब सभी दल हमराय हैं, कुछ जोण मतवादी ही अपवाद हो सकते हैं।

सत्ताकांक्षी लोकशिक्षक नहीं बनेगा

इसी तरह जो सत्ता की स्पर्धा में शामिल होता है वह भी लोकशिक्षण देने योग्य नहीं रह पाता। वह मत मात्र मांगता है, मत का महत्व समझाने की चिन्ता उसे नहीं होती। व्यक्तिगत रूप में कुछ लोग ऐसा करते हैं, परन्तु इस प्रकार का कोई भी समुदाय या पक्ष नहीं है। ऐसे कुछ व्यक्ति सभी दलों में होते हैं। पर लोकशिक्षण का महत्व समझनेवाले एव तदनुसार शिक्षण देनेवाले लोग तटस्थ एव सहृदय हों तो ही वे जनता को समझा सकेंगे। मान लीजिए कि एक शख्स जनता में प्रभावशाली शब्दों में कहता है कि जनतन्त्र में मत का महत्व उतना ही है, जितना कि नारी के लिए उसके सतीत्व का है जितना कि सम्भाजी और गुरु गोविन्दसिंह के लिए धर्म का महत्व है जितना कि एक स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए उसके ईमान का महत्व है जितना कि देशाभिमानी व्यक्ति के लिए स्वतत्रता का महत्व है,' तो लोग समझेंगे कि यह बिलकुल ठीक कहता है। लेकिन यह सब कहने के बाद वह यदि कह दे कि 'इसीलिए आप अपना कीमती वोट मुझे ही दें,' तो लोग कहेंगे कि इसकी इतनी सारी रामायण मुट्ठीभर चढोत्री के चावलो के लिए ही थी। आखिर उसे नैवेद्य से ही मतलब था। इसलिए लोगो पर उसकी बात का असर ही नहीं होगा।

लेकिन इसके मानी ये नहीं होते कि लोकशिक्षण देनेवाले कार्यकर्त्ता औरों से पवित्र और श्रेष्ठ हैं। राजनीतिवाले दिग्गज हैं, पर उनका व्यवसाय ही भिन्न है। अत वे बडे हों तो भी शिक्षक, मास्टरजी बनने लायक नहीं हैं, अत लोकसेवकों को दलगत एव सत्तागत राजनीति से अलग रहकर ही लोकशिक्षण का काम करना होगा।

मतदाता का महत्व

लोगों के हृदय में इस चीज का महसास होना चाहिए कि जिस प्रकार के लोकराज्य का निर्माण करना है, उसका जन्म जनता की कोख से होनेवाला है। इसलिए साधारण नागरिक को यह महसूस होना चाहिए कि जनतन्त्र का जनक वह खुद है। पर आज स्थिति ही उलटी है। मतदान का मूल्य हम समझ ही नहीं पा रहे हैं। मतदान से तो आज राज्यों का निर्माण होता है एव राज्य बदले जा सकते हैं। अत जनता को बताना होगा कि ऐसा कीमती वोट कोई हडप न ले जाय। ●

पूर्ण स्वराज्य से हमारा आशय क्या है और उसके द्वारा हम क्या पाना चाहते हैं? अगर हम चाहते हैं कि जनता में जागृति होनी चाहिए, उन्हें अपने हित का सच्चा ज्ञान होना चाहिए और सारी दुनिया के विरोध का सामना करके भी उस हित की सिद्धि के लिए कोशिश करने की योग्यता होनी चाहिए तथा पूर्ण स्वराज्य के मार्फत हम सुमेल, भीतरी या बाहरी आक्रमण से रक्षा, जनता की आर्थिक हालत में बराबर सुधार चाहते हों, तो हम, सत्ता जिनके हाथ में हो, उनपर सीधा प्रभाव डालकर अपना उद्देश्य पूरा कर सकते हैं।

—म० गांधी

कृषिउन्मुख शिक्षा

•

विश्वबन्धु चटर्जी

गांधी विद्या स्थान, राजघाट, वाराणसी

शिक्षा आयोग इस तथ्य को मानता है कि सिंचाई, उर्वरक, खादो, कृषि-कीट-नाशक रसायनों, बीजों, सरक्षण तथा वितरण विकसित प्रचार, विद्युतीकरण आदि के लिए विस्तृत पैमाने पर पूंजी का विनियोग खेती के भिन्न भिन्न तरीकों के द्वारा खेती की उपज को दुगुना बढ़ाने के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपरिहार्य है। आयोग इस तथ्य को भी स्वीकार करता है कि राष्ट्रीय शिक्षा की महती योजना का सबसे प्रमुख उद्देश्य एवं जिम्मेदारी कृषि शिक्षा हो ताकि कृषि विकास, उत्पादन के विकसित तरीकों और ग्रामीण जीवन में आमूल परिवर्तन की प्रक्रिया को अत्यावश्यक प्रोत्साहन मिले।

शिक्षा आयोग का यह मत है कि कुछ राज्यों के बुनियादी विद्यालयों में प्रमुख शिल्प के रूप में कृषि का समारम्भ कृषि-कर्म को सफलतापूर्वक अपनाने के निमित्त युवकों को प्रशिक्षण की आवश्यक व्यावसायिक योग्यता प्रदान करने में असफल रहा है।

'प्रारम्भिक स्तर पर कृषि शिक्षा के समारम्भ के द्वारा जीवनोपयोगी धन्धे के रूप में कृषि में रुचि फैलाना अथवा देश की ग्रामीण जनता का प्रव्रजन (शहर की ओर जाना) रोकने के लक्ष्यों को प्राप्त करना सम्भव नहीं है। जो कृषि शिक्षा हम देते हैं वह व्यर्थ और नीरस कठोर श्रम में परिणत होती है तथा विद्यार्थियों के मन में कृषिकर्म में अरुचि उत्पन्न करने में ही सहायक होती है। अतः हम समग्र शिक्षा-व्यवस्था को कृषिउन्मुख होने का सुझाव देते हैं।'

निम्न माध्यमिक स्तर पर कृषि के स्थान के सम्बन्ध में कृषिआयोग का विचार ऐसा ही है। आयोग के अनुसार यह अवधि ठोस सामान्य शिक्षा में बीतनी चाहिए और गणित विज्ञानों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए जो आयोग के अनुसार हमारे देश की कृषि के भविष्य के लिए सर्वोत्तम तैयारी है।

इन सब तर्कों के बाद शिक्षा आयोग यह विचार प्रकट करता है कि 'शिक्षा की कृषिउन्मुखता न केवल निम्न तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर, बल्कि विश्वविद्यालय तथा सभी शिक्षक प्रशिक्षण स्तर पर समग्र सामान्य शिक्षा का अविच्छिन्न अंग है। अर्थात प्रत्येक नागरिक को कृषक ग्रामीण जीवन की समस्याओं से अवगत किया जाय और उसकी शिक्षा के अंग के रूप में उसे कृषि-शिक्षा दी जाय। इस प्रकार उसे कृषक की समस्याओं की जानकारी और कृषि-कर्म के लिए आवश्यक कौशलों तथा विज्ञान एवं यंत्र विज्ञान द्वारा उन्मुक्त किये गये नवीन क्षेत्रों की सम्यक् अनुभूति होगी। इसके द्वारा कृषि-पेशे के प्रति युवकों में रुचि और सहज झुकाव की भावना जाग्रत होगी।

शिक्षा-आयोग का अन्तिम सुझाव यह है कि—

'सभी प्राथमिक विद्यालय (शहर के विद्यालय भी) ग्रामीण वातावरण और उसकी समस्याओं के अनुरूप विज्ञान, प्राणि विज्ञान, सामाजिक शास्त्रों आदि के वर्तमान पाठ्यक्रमों में सुधार और परिवर्तन करके अपने कार्यक्रमों को कृषिउन्मुख बनायें। इस प्रकार कृषि को अरुचि पैदा करनेवाले नीरस और कष्टसाध्य धन्धे के बदले कार्यानुभव का महत्वपूर्ण अंग बनाया जा सकता है।"

शिक्षा-आयोग द्वारा अपनायी गयी विचार धारा के सम्यक् अध्ययन करने पर उसमें निश्चित उसकी कुछ असंगतियाँ और परिसीमाएँ स्पष्ट हो जायेंगी।

सभी क्रियाएँ रुचि और आनन्द के साथ देखते हैं। यही बात कुछ अन्यान्य शिल्पकारियों के लिए लागू है। मुख्य समस्या तो यह है कि कृषि क्रियाओं की विभिन्न अवस्थाओं में बच्चों की पृथक्-पृथक् सामर्थ्य के अनुसार प्राथमिक स्तर से ही उन्हें वास्तविक जीवन के कार्य अनुभव का शिक्षण दिया जाय। इसके सही ढंग से किये जाने के उपरान्त ही अरुचि और घृणा के बदले, कृषि एवं सम्बद्ध कार्यों की सभी क्रियाओं में चाह, आनन्द और कार्य-परितोष होगा, जो जीवन में आगे चलकर एक बड़ी भारी सम्पदा होगी। आयोग जिस भय और अरुचि का सकेत कर रहा है सौभाग्यवश वह काल्पनिक ही है, इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं, यदि हम यह याद रखें कि उस भारत की जनसंख्या के ७५ प्रतिशत की शिक्षा की बात कर रहे हैं, जिनका जीवन ही वर्षभर कृषि के कार्यों में गुँथा हुआ रहता है।

इसका मतलब यह नहीं कि बुनियादी विद्यालय की कृषि शिक्षा की पद्धति और कार्यक्रम की क्रियात्मकता और सगठन में विकास का क्षेत्र नहीं है। विकास निम्न आधारों के अनुसार हो सकता है—

१—विद्यालयों में कार्य अनुभव को इस प्रकार रखना होगा कि वे कृषि उत्पादन को बढ़ाने में माननीय प्रदान करने में समर्थ हो सकें।

२—भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, गणित आदि विविध नामोंवाले इतने विषयों की शिक्षा के साथ कृषि से लिये गये उदाहरणों को कृत्रिम रूप से जोड़ने के बदले, कृषि को मुख्य विषय बनाया जाय जिसके चारों ओर विज्ञानों तथा अन्य विषयों को स्वाभाविक रूप से विकसित होने दिया जाय।

३—कृषि पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत तथ्यों, साथ ही साथ अन्य पाठ्य विषयों से सम्बद्ध तथ्यों का सरलतम से जटिलतम (अर्थात् छोटे बच्चों द्वारा छोटे पौधों की सिंचाई से लेकर निम्न माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों द्वारा कीटनाशक औषधियों की सही मात्रा छोड़ने तक) सार्थक सक्रियता, दवाइयों अथवा क्रियात्मक दवाइयों की सही क्रमबद्ध श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाय।

४—परिवेश के जीवन को विद्यालय के क्रियाकलाप के निकट लाने के उद्देश्य से इसकी कृषि-शिक्षा के कार्य-क्रम को निम्न तथ्यों के साथ भलीभाँति समन्वित करना होगा.

(क) गाँव में होनेवाली फसली खेती एवं सम्बद्ध क्रियाएँ।

(ख) पड़ोस के गाँवों के समूहों में सामुदायिक प्रखण्ड के प्रसार-कार्यक्रम। और

(ग) ग्रामदानी गाँव की ग्रामसभा, साधारण गाँव की ग्राम पंचायत, स्वयंसेवी संस्था, शान्ति-सेना दल आदि के द्वारा अपनायी गयी विशिष्ट कृषि अथवा सम्बद्ध परियोजनाएँ, जिनमें सामुदायिक योगदान की आवश्यकता होती है।

५—सुसज्जित विद्यालय अपने ही प्रयत्न और प्रयास से समूचे गाँव के कृषि-उत्पादन को लाभ पहुँचानेवाली परियोजनाएँ आरम्भ करें।

६—विद्यालय के खेतों और कृषि में, जहाँ पर्याप्त साधन उपलब्ध हों, बीजों, उर्वरकों, सांस्कृतिक आदतों आदि में नये प्रयोग अपनाये जायँ। और

७—बुनियादी विद्यालयों में उन्नत और प्रगतिशील कृषकों का अवैतनिक परामर्शदाता और शिक्षकों के रूप में उपयोग किया जाय। फिर उनमें प्रदर्शनियों, सैरों, परामर्श निरीक्षणों, प्रदर्शनों, निमंत्रणों आदि का आयोजन किया जाय।

ऊपर वर्गीकृत सभी कार्यकलापों में विभिन्न श्रेणियोंवाले विद्यार्थियों तथा उनके शिक्षकों से वांछित और प्रत्याशित योगदान का वास्तविक परिमाण सावधानी के साथ निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसी अन्यान्य बातें, यथा प्रत्येक सार्थक कार्यानुभव इकाई के पहले और बाद प्रदान करने योग्य सैद्धान्तिक ज्ञान, वे कौशल जिनमें विकसित करने की सम्भावना है, अन्य ज्ञान के क्षेत्रों का एकीकरण और समन्वय का क्षेत्र इन सबका ध्यान रखना होगा। अन्त में, विद्यालय को बच्चों के लिए सजीव रसायनशाला बनाया जा सकता है और बनाना होगा, जिसमें वे अपनी बढ़ती हुई सामर्थ्य, रुचि, झुकाव, अभिप्राय (उद्देश्य), व्यक्तित्व और जीवन के उदीयमान लक्ष्य के अनुसार आनन्दपूर्ण सार्थक और सन्तोषप्रद कार्य-अनुभव के जरिये सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त कर सकें। ●

अनुक्रम

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा ६ रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

"गाँव-गाँव में कुएँ"

बनवारीलाल चौधरी

बड़े बड़े बाँध बने, नहरें बनीं, नलकूप बने, बिजली से पानी मिलने लगा, *लेकिन लाखों एकड़ खेती सूखी ही रह जाती है।*

जबतक गाँव-गाँव और खेत-खेत में कुएँ नहीं होंगे, तबतक किसान दिल खोलकर सिचाई नही कर सकेगा और फसल नही मिलेगी।

इस पुस्तक में सस्ते, सुलभ साधनों से कम खर्च में कुएँ तैयार करने के तरीके बताये गये हैं। हर खेतिहर और मकानवाले के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। मूल्य—दो रुपए।

"तूफान यात्रा"

सुरेश राम

सन् '६५ में विनोबाजी की तूफान यात्रा बिहार में शुरू हुई। अपने ढंग की अनोखी यात्रा—मोटर पर थी, पर रूपरंग पैदल था। ग्रामदान-आन्दोलन तूफान की गति से आगे बढ़ चला। श्री सुरेश-रामभाई ने इस यात्रा का दैनन्दिन चित्रण अपनी मोहक और प्रभावपूर्ण शैली में किया है। पढ़ते-पढ़ते पाठक यात्रा के अन्तरंग में प्रवेश करता ही है, विनोबाजी के विचारों की अमृत-प्रसादी भी पदे-पदे प्राप्त करता है। पृष्ठ—३२०, मूल्य—तीन रुपए।

"प्रखण्डदान"

विनोबा

भूदान से ग्रामदान और ग्रामदान से प्रखण्डदान।

प्रखण्डदान क्या है, उसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं, उसमें गाँवों का क्या दायित्व है, और प्रखण्डदान के बाद लोकशक्ति किस तरह जाग्रत होती है, इसका विवेचन कार्यकर्ताओं तथा ग्रामवासियों के लिए मार्गदर्शक है। मूल्य—एक रुपया

अनुक्रम

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

मुट्ठी भर चावल !

पति, पत्नी, तीन बच्चे। पति रोगी। खेत में काम नही, घर में अनाज नही। बेचारी औरत किसके पास जाय, किससे कहे ? मदद कौन करे, कर्ज भी कौन दे ?

कानो-कान खबर फैली कि हरिदास के घर तीन दिन से चूल्हा नही जला है। किसी ने आकर आश्रम पर कहा। वहाँ भी चिन्ता हुई कि कोई जाय भी तो क्या लेकर जाय ? भूखे के सामने खाली हाथ जाने से क्या लाभ ?

एक कार्यकर्ता उठा। दौड़कर अपने घर से एक मुट्ठी चावल लाया। बोला ' आश्रम में जितने परिवार रहते है, सब एक एक मुट्ठी चावल या दूसरा कोई अनाज दे दें।'' नही कहने की हिम्मत नही, टालने का वक्त नही, देखते-देखते पचीस मुट्ठी चावल इकट्ठा हो गया, कुल सवा तीन सेर ! चार साथी हरिदास के घर पहुच गये। चूल्हा जल गया हाडी चढ गयी।

हरिदास के दरवाजे पर आश्रम के लोग आये हैं यह देखकर गाँव के भी पचास साठ लोग आ गये। साथियो ने उनसे कहा 'इतना बडा गाँव है अगर आप घर घर से कुछ ले आते तो इस परिवार के मरने की नौबत न आती।'' लेकिन, यह सीधी बात किसी को सूझी ही नही। अब तो यह है कि मुखिया सुने और बी० डी० ओ० से कहे। सहानुभूति बरतने का ढग बदल गया। पडोसी पडोसी का दुख सुनकर दौड पडे, यह बात केवल कहने-सुनने की रह गयी।

ब्लाक को खबर भेजी गयी। वहाँ से दूसरे दिन लाल कार्ड आ गया। लेकिन गाँव में और पड़ोस मे चर्चा है कि एक-एक मुट्ठी चावल ने एक परिवार की जान बचा ली। सहानुभूति का चावल था न !

—राममूर्ति

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर वाराणसी।

नयी तालीम
सर्व सेवा संघ की मासिकी
23 FEB
फरवरी,

जब किसी क्षेत्र में चुनाव होता है तो उसके लिए अनेक उम्मीदवार संघर्ष करते हैं। जो व्यक्ति सफल होता है उसके लिए सब लोग मतदान नहीं करते। उसे केवल बहुमत प्राप्त होता है। परन्तु वह उस क्षेत्र के सभी मतदाताओं का प्रतिनिधि माना जाता है। अतः इन चुनावों के बाद इस प्रकार के प्रयत्न किये जायें जिसमें विभिन्न प्रतिनिधि अपनी दलगतता का त्याग करके अपने-आप को केवल लोक-प्रतिनिधि ही स्वीकार करें, तथा पुनः एकत्रित होकर एक नेता का चयन करें जो बाद में मन्त्रिमण्डल का निर्माण करें। राष्ट्रीय नेता को भी चाहिए कि वह मंत्रिमण्डल का चुनाव दलीय स्नेह से अलग होकर करे। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि विभिन्न राजनीतिक दलों को अपना पार्टी-लेबुल उतारकर राष्ट्रीय सरकार का गठन करना चाहिए। —जयप्रकाश नारायण

सरकारीकरण, राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण

इस समय शिक्षण-जगत में दो नारे लगाये जा रहे हैं। एक ओर यह कहा जा रहा है कि सरकार विश्वविद्यालयों से अलग रहे, और ऊँची शिक्षा को सही विकास के लिए स्वतंत्र छोड़ दे। इसके ठीक विपरीत प्राथमिक और माध्यमिक के शिक्षकों की माँग है कि पूरे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण का राष्ट्रीयकरण हो जाय और उसे सरकार अपने हाथ में ले ले। इस माँग में यह मान लिया गया है कि सरकार और राष्ट्र एक ही चीज है, इसलिए शिक्षण के सरकारीकरण का अर्थ है शिक्षण का राष्ट्रीयकरण।

सचमुच सारा शिक्षण नीचे से ऊपर तक एक है। उसे अलग-अलग टुकड़ों में बाँटकर सोचना सरासर गलत है। इस टुकड़ीकरण से देश का जो असीम अहित हो चुका है उसे देखते हुए अब सोचने का पुराना तरीका हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। फिर भी यह सोचने की बात तो है ही कि क्या कारण है कि ऊपर के शिक्षण के लिए सरकार से मुक्ति की माँग हो रही है, तथा मध्य और नीचे के लिए सरकार के आश्रय की। एक ही सरकार एक जगह विष, और दूसरी जगह अमृत मानी जा रही है। जाहिर है कि इसमें सवाल सिद्धान्त का नहीं है, बल्कि सिर्फ इतना है कि इस वक्त माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षण की जो हालत है उसमें शिक्षक अपने को असहाय पा रहा है। वह स्कूल के मैनेजर या जिला-परिषद से इतना परेशान है कि सरकार की शरण में जाने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं देख रहा है। न इज्जत की जिन्दगी, न ईमान की भरपेट रोटी, जब अर्द्धसरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं में दो में से एक भी मयस्सर नहीं है तो शिक्षक ऊबकर सरकार का संरक्षण चाह रहा है। सरकार के सिवाय आज दूसरी शक्ति भी कहाँ है जिसके पास वह भरोसे के साथ जा सके? सरकार कितनी भी बुरी हो, दूसरों से भली है। सरकार में 'प' (वेतन), 'प्रमोशन' (तरक्की) और पेंशन, तीनों की सुविधा है, और सम्मान तथा सुरक्षा भी है। जिला-परिषदों और मैनेजिंग कमिटियों की जो हालत है उसे देखते हुए कौन कह सकता है कि शिक्षक का यह सोचना गलत है? अगर

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ७

यह मान लिया जाय कि शिक्षक एक 'नौकर' से ज्यादा और कुछ नहीं है तो जरूर वह वहाँ जायगा जहाँ उसे नौकरी की शर्तें हर जगह से अच्छी मिलेंगी। इसमें शक नहीं कि आज शिक्षक बुरी तरह 'नौकर' है, लेकिन इसमें भी शक नहीं कि उसका 'नौकर' रहना देश के भविष्य के लिए जितना खतरनाक है उससे ज्यादा खतरनाक दूसरी कोई चीज नहीं है। श्रमिक, स्त्री और शिक्षक की मुक्ति एक साथ जरूरी है, लेकिन अगर इनमें से किसी एक को मुक्ति के लिए सबसे पहले चुनना हो तो शिक्षक को ही चुनना पड़ेगा। पहले के जमाने की तरह शिक्षण अब जीवन का शृङ्गार नहीं है, बल्कि समाज के सही, स्थायी, और समग्र विकास के लिए शिक्षण के सिवाय अब दूसरा कोई माध्यम ही नहीं है। इसलिए जिस तरह उच्च माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षण को अलग-अलग सोचना गलत है, उसी तरह शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षण को भी एक दूसरे से अलग करना गलत है—सर्वथा अवैज्ञानिक, अराष्ट्रीय, अविवेकपूर्ण है। तीनों की सम्मिलित इकाई का ही नाम शिक्षण है, और हमेशा तीनों को मिलाकर ही सोचना चाहिए।

अगर पूरा शिक्षण सरकार के हाथ में चला जाय तो क्या होगा? हमारे देश में क्या किसी भी देश में—सरकार राष्ट्र नहीं है। सरकार बदलती रहती है। आज एक दल की सरकार है, कल दूसरे की होगी। एक राज्य में एक दल की सरकार है, तो दूसरे में उसके विरोधी दल की। कोई दल पूंजीवादी है तो कोई समाजवादी, या साम्यवादी, कोई लोकतन्त्र को मानता है, तो कोई तानाशाही को। हर दल चाहता है कि शिक्षण उसके हाथ में रहे। शिक्षण की मुट्ठी में समाज का दिमाग रहता है। दल जानता है कि अगर शिक्षण हाथ में रहेगा तो समाज का दिमाग हाथ में रहेगा, और वह अपनी सत्ता को कायम रखने के लिए जो चाहेगा दिमाग में घुसा सकेगा। समाज की 'ब्रेन वाशिंग' के लिए, युवकों को चेतनाशून्य बनाकर अपनी पूंजी का गुलाम बना लेने के लिए शिक्षण को कंट्रोल कर लेने से बढ़कर दूसरा तरीका नहीं है। शिक्षण को किस तरह सत्ता का दास बनाया जा सकता है उसकी कला पूंजीवादी, फासिस्टवादी, साम्यवादी सभी देशों में विकसित हुई है। इसलिए अब शिक्षण को सरकार-मुक्त करना सम्पूर्ण समाज की मुक्ति का प्रश्न बन गया है। जबतक शिक्षण सरकार से मुक्त नहीं होगा, तबतक समाज विज्ञान और लोकतन्त्र के इस जमाने में पूंजीवाद, सैनिकवाद और राज्यवाद के तिहरे फौलादी पंजे से कभी मुक्त नहीं हो सकता। सरकार का स्वार्थ राष्ट्र और समाज का हित नहीं है। राष्ट्र के लिए शिक्षण को सरकार से स्वतन्त्र होना ही चाहिए।

इस विचार को मान्य करते हुए भी शिक्षक पूछ सकता है कि जब देश अपने हित को नहीं समझ रहा है, और शिक्षक को नौकर बनाये रखने में ही सन्तोष मान रहा है, तो वह कब तक अपना पेट दबाकर रहे? आखिर वह क्या करे?

आज की स्थिति मे एक उपाय सुझाया जा सकता है। वह यह है कि शिक्षक विद्यालय का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए तैयार हो। हर विद्यालय के शिक्षकों की यह तैयारी और माँग होनी चाहिए कि उसका प्रबन्ध सम्मिलित रूप से उन्हे दे दिया जाय। शिक्षक, अभिभावक और विद्यार्थी तीनो मिलकर विद्यालय के शिक्षण और व्यवस्था, दोनो की जिम्मेदारी ले। विद्यालय एक सहकारी इकाई बन जाय। अगर खेती सहकारी हो सकती है और कारखाने सहकारी ढग से चलाये जा सकते है, तो कोई कारण नही कि विद्यालय न चलाये जा सकें। तब विद्यालय मे शिक्षक अपने श्रम, समाज के प्रेम और सरकार की सहायता की कमाइ खायगा—भरपूर खायगा, और इज्जत भी पायगा। तब विद्यालय का जीवन बदलेगा, शिक्षण की पद्धति बदलेगी, समाज के मूल्य बदलग। यह निश्चित है कि शिक्षक के इस निर्णय के साथ समाज की पूरी सहानुभूति होगी और सरकार भी इस माग को अस्वीकार नही कर सकेगी।

एक बात और है। श्रमिक स्त्री और शिक्षक की गुलामी आज की शोषण प्रधान व्यवस्था का सबसे बडा लक्षण है। जबतक समाज का यह ढाँचा रहेगा, तबतक ये तीनो 'गुलाम' रहेंगे और समाज की बुनियादी समस्याएँ बनी ही नही रहेगी, बल्कि बढती चली जायेंगी। इसलिए शिक्षक को स्थायी मुक्ति के लिए समाज-परिवर्तन के—केवल सरकार परिवर्तन से क्या होगा ?—अभियान में आगे आना चाहिए। सत्ता और सम्पत्ति की प्रचलित व्यवस्था को जड से बदल देने की जरूरत है और उसकी जगह समता की व्यवस्था कायम करनी है। राजनीति और व्यवसाय की जगह शिक्षण को प्रतिष्ठित करना है। यह विज्ञान और लोकतत्र के इस नये जमाने की माँग है। हमारे देश के लिए दमन और शोषण से मुक्त होने के लिए दूसरा रास्ता नही है। शिक्षक अगर अपनी माँग को जमाने की मांग के साथ जोड सके तो उसे अपनी मुक्ति तो मिलेगी ही, वह समाज को भी मुक्त कर सकेगा।

नये समाज में विकास की दृष्टि से ऊँचे से ऊँचे शिक्षण को गाँव गाँव म पहुँचाने की जरूरत होगी। हर कारखाना, निर्माण, अस्पताल और कार्यालय तकनीकी शिक्षण-प्रशिक्षण का केन्द्र होगा। ऐसी व्यवस्था म समाज की इकाई और शिक्षण की इकाई में अन्तर नही रह जायगा। जीवन जीने की क्रिया शिक्षण की प्रक्रिया बन जायगी। उस हालत में सही अर्थ में शिक्षण का समाजीकरण होगा। तबतक शिक्षक राष्ट्र के शासकों का मुंह देखना छोडे और अपने को राष्ट्र का सेवक मानकर सगठित शक्ति से अपने पैरो पर खडा हो। हम मान लें कि जो सहकारी पुरुषार्थ का मार्ग है वही सम्मान और सुरक्षा का मार्ग भी है।

विनोबाजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार

●

['शिक्षण-विचार' नामक ग्रन्थ में विनोबाजी के शिक्षण-सम्बन्धी निबन्ध और भाषण इकट्ठा प्रकाशित किये गये हैं। यहां हम उसी ग्रन्थ के आधार पर 'विनोबाजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार' प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रस्तुतकर्ता श्री के० एम० आचारलु हैं।—स०]

भारतीय परम्परा में शिक्षा को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया था और शिक्षक (आचार्य) को सर्वश्रेष्ठ पुरुष माना गया था।

राजा आश्रम को गायें दे सकता था, जमीन दे सकता था, लेकिन गुरुकुल पर उसकी सत्ता नहीं चलती थी। क्या तालीम दी जाय और क्या सिखाया जाय यह सब गुरु तय करता था और वही तालीम देता था।

उसके बारे में राजा से पूछना नहीं पड़ता था।

राजकुमार और गरीब विद्यार्थी एक साथ, एक ही गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरो . कर्मातिशेषेण—यानी गुरु के सौंपे हुए—लकड़ी चीरना, गाय दुहना आदि काम गुरु-सेवा के तौर पर करना पड़ता था, तब उनको विद्या प्राप्त होती थी।

राजा-महाराजा शिक्षकों से सलाह लिया करते थे।

आचार्य का ज्ञान-प्रकाश सारे समाज में फैलता था और वह सामाजिक और नैतिक क्रान्ति का अधिष्ठाता होता था।

राष्ट्र में शिक्षा कैसी हो, इस विषय में यदि कोई सर्वोत्तम ग्रन्थ है, तो वह भगवद्गीता है।

नयी तालीम के सिद्धान्त :

शिक्षा में क्रान्ति का समावेश होना चाहिए जिससे कर्म और ज्ञान का समन्वय हो सके।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कर्म और ज्ञान का समन्वय सधना चाहिए। वरना समाज दो टुकड़ों में विभाजित होगा और वह सुखी नहीं होगा।

ज्ञान और कर्म के मेल का नाम ही शिक्षण है, जिससे आनन्द निर्माण होता है। नयी तालीम में सत्‌चित् आनन्द होगा, कर्म, ज्ञान और आनन्द एकरूप होगा।

दोनों अलग-अलग नहीं हैं। ज्ञान से कर्म श्रेष्ठ या कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ कहना गलत है। दोनों एक ही हैं। इसी आधार पर जो तालीम दी जाती है वह नयी तालीम है।

ज्ञान-प्राप्ति का एक स्वाभाविक तरीका यह है कि हम जो भी कार्य करते हैं, उसके साथ-साथ ज्ञान भी हासिल होता रहे। ज्ञानशून्य कर्म कर्म नहीं है और कर्मशून्य ज्ञान ज्ञान नहीं है।

शारीरिक और बौद्धिक, दोनों काम प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। दोनों के समग्र और समन्वित विकास की सारी क्षमता सबमें पैदा करनी चाहिए।

आज शिक्षण में ज्ञान और कर्म को अलग कर दिया गया है। दोनों के मेल में से ही आत्मविकास सम्भव है।

शिक्षा में उद्योग और ब्रह्मविद्या दोनों का समावेश होना चाहिए, एक से शरीर को पोषण मिलता है और दूसरे से आत्मा को।

आज की समाज-रचना के ज्यों की त्यों बनाये रखने से नयी तालीम का प्रवेश नहीं कराया जा सकता। नयी तालीम उत्पादक श्रम पर आधारित है; यह सामाजिक मूल्य बदलने, और नयी समाज-रचना का काम है।

ज्ञान और कर्म का समन्वय किये बिना नयी समाज-रचना करना असम्भव है।

समाज में जबतक कुछ लोग केवल पढ़ते रहेंगे और कुछ लोग काम करते रहेंगे—ऊपरवाला हेड और नीचेवाला हैंड ही रहेगा—तबतक समाज सुखी नहीं होगा। ●

योजना पाठ

•

वंशीधर श्रीवास्तव

प्राचार्य, बेसिक ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी

स्वयं काम करके अपने अनुभव से सीखने की पद्धति ही योजना-पद्धति है। डिवी के शिक्षा सिद्धान्त के आधार पर उनके अनुयायी किलपैट्रिक ने योजना-पद्धति का विकास किया, जिसे बालक निष्क्रिय श्रोता बनकर केवल सूचनाएँ ही संग्रह न करें, बल्कि स्वयं सक्रिय रहकर रुचि पूर्वक ज्ञान प्राप्त करें और उस ज्ञान को अपने व्यवहार में ला सकें। यह तभी सम्भव होगा जब बालक उत्साह-पूर्वक कोई ऐसा काम करें जिसका उनके लिए कोई मूल्य हो। अच्छा हो, अगर यह काम उनके सामने समस्या बनकर आये। तब वे समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के काम करेंगे, जिन्हें वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण करने के लिए उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होगी। इस प्रकार ज्ञानार्जन की क्रिया रुचिकर बन जायगी। अतः योजना (प्रोजेक्ट) उस समस्यामूलक कार्य को कहते हैं, जिसे यथार्थ परिस्थितियों में पूरा किया जाता है। प्रोफेसर स्टीवेन्सन द्वारा दी हुई योजना की यह परिभाषा अधिक मान्य है। "वास्तविक सामाजिक वातावरण में सम्पन्न होनेवाली उद्देश्यपूर्ण सोत्साह क्रिया को ही योजना कहते हैं।"

योजना के पाँच लक्षण

१ योजना बालक के सामने समस्या के रूप में आती है। बालक के सम्मुख समस्या के समाधान का उद्देश्य स्पष्ट रहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही वह काम करता है। अतः उद्देश्य अथवा प्रयोजन योजना का पहला लक्षण है।

२ योजना का दूसरा लक्षण है यथार्थता। वास्तविक प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण में क्रिया की जाती है, खेल के काल्पनिक वातावरण में नहीं। जिस वातावरण में काम किया जाता है, जिन साधनों से काम लिया जाता है, जिस ढंग से काम किया जाता है, सब यथार्थ होते हैं, वैसे ही जैसे जीवन में होते हैं।

३ योजना का तीसरा लक्षण है क्रियाशीलता। यहाँ बालक प्रारम्भ से अन्त तक क्रियाशील रहता है। समस्या के समाधान के लिए उसे काम करना पड़ता है और काम वैज्ञानिक ढंग से शीघ्रतापूर्वक, परन्तु व्यवस्था-पूर्ण ढंग से कैसे हो, इसके लिए उसे विचार और तर्क करना पड़ता है। अतः यह कहना अधिक ठीक होगा कि विचारमूलक, विचारप्रेरक क्रियाशीलता योजना का लक्षण है।

४ योजना का चौथा लक्षण है उपयोगिता। मनुष्य प्रयोजनहीन काम नहीं करता। योजना पद्धति में बालक जो काम करता है उसकी उपयोगिता है, क्योंकि इससे उसकी समस्याओं का तत्काल समाधान होता है। अतः क्रिया और ज्ञान का उसके लिए प्रयोजन अथवा उपयोगिता है।

५ योजना-पद्धति का पाँचवा लक्षण है स्वतंत्रता। बालक योजना चुनने में स्वतंत्र रहता है। अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार ही वह तय करता है कि वह कौन-सी योजना लेगा। उसके संचालन में भी वह स्वतंत्र ही रहता है। अध्यापक तो पथ प्रदर्शक मात्र ही रहता है। योजना के समाप्त होने पर वह निर्भीकतापूर्वक उसका मूल्यांकन करता है। और यह निश्चय करता है कि योजना में उसे कितनी और कैसी सफलता मिली है। इस प्रकार कार्य करने और विचार करने की स्वतंत्रता अर्थात् आत्माभिव्यक्ति योजना-पद्धति का महत्वपूर्ण

लक्षण है। अत योजना के सचालन मे ऐसा कुछ भी नही होना चाहिए जिससे बालको की स्वतत्र अभिव्यक्ति मे कही बाधा पडे।

योजनाओ की दो श्रेणियाँ—१ सरल योजनाएँ, २ बहुमुखी योजनाएँ।

१ सरल योजनाएँ वे योजनाएँ है, जिनमे एक ही समस्या होती है और समस्या के समाधान के लिए ही काम होता है, मिठाई बनाना, पतग बनाना, किसी घटना के लिए विज्ञापन चित्र बनाना अथवा एकाकी नाटक लिखना, विवाह तथा किसी विशेष अवसर के लिए वस्त्र तैयार करना आदि सरल योजनाओ के उदाहरण है।

२ बहुमुखी योजनाएँ वे योजनाएँ है जिनमें प्रमुख समस्या तो एक ही होती है, परन्तु उस समस्या को हल करने में दूसरी अनेक समस्याएँ खडी हो जाती हैं, जिनका समाधान करने मे नाना प्रकार के काम करने पडते है तथा नाना विषयो का ज्ञान अर्जन करना पडता है। ये योजनाएँ महीनो चल सकती हैं। डाकघर की योजना, गुडिया का विवाह, स्कूल में अतिथिशाला का निर्माण, मुर्गीखाना बनाना आदि बहुमुखी योजनाओ के उदाहरण हैं।

योजना-पद्धति के सोपान

योजना-पद्धति क्रिया-प्रधान है, और इसका केन्द्र बालक होता है। अत इस पद्धति के अध्यापन के सोपान हर्बार्ट के पचपदीय सोपान से कुछ भिन्न है। डाक्टर जाकिर हुसैन लिखते है कि शिक्षाप्रद योजना के चार चरण होते है। पहला यह समझना कि काम करना है। दूसरा काम करनेकी योजना बनाना अर्थात् यह सोचना कि काम को पूरा करने के लिए कौन-कौन से साधन चाहिए और उन्हें जुटाना और किस क्रम से काम किया जाय, इसे सोचना और तय करना। तीसरा चरण है काम करना-अर्थात् योजना का कार्यान्वियन और चौथा चरण है कार्य की समाप्ति के बाद उसकी परखना और यह देखना कि उसमें कितनी सफलता मिली है और कितनी कोर-कसर रह गयी है। योजना के इन चार चरणो को (१) अभिप्रेरणा, (२) नियोजन, (३) कार्यान्वयन और (४) मूल्यांकन भी कहते हैं। इन्हीं चरणो में योजना के पाठ-सकेत बनाये जाते हैं।

अभिप्रेरणा

योजना-पद्धति के अध्यापक का सबसे पहला काम है बालको को योजना-सम्पन्न करने के लिए अभिप्रेरित करना। कक्षा में बातचीत-द्वारा अथवा किसी और ढग से अध्यापक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करे जिससे विद्यार्थी उस योजना को स्वय चुने, जिसे वह कक्षा-द्वारा सम्पन्न कराना चाहता है। इस सोपान का लक्ष्य है है बालको को योजना की ओर आकर्पित करना। यह तभी सम्भव होगा जब ऐसी योजनाएँ चुनी जायँ जो बालको की रुचि, क्षमता और बौद्धिक स्तर के अनुरूप हो और जिनसे उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति होती हो। ऐसा होगा तभी बालक योजनाओ को सम्पन्न करने मे उत्साह दिखलायेंगे। योजनाओ को सम्पन्न करने की प्रेरणा देना ही इस सोपान का लक्ष्य है।

विद्यार्थियो पर कोई योजना अपनी ओर से थोपनी नही चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी नयी योजना प्रस्तुत करेगा। लेकिन अध्यापक को वही योजना स्वीकार करनी चाहिए जो सर्वमान्य हो और जिसमें शिक्षा की अधिकाधिक सम्भावनाएँ हो।

नियोजन

योजना चुन लेने के बाद उसे सम्पन्न करने के लिए कार्यक्रम बनाना पडता है। यह काम भी विद्यार्थी के सहयोग मे ही करना चाहिए। अध्यापक विद्यार्थियो से बातचीत करके उनकी राय से यह निश्चित करे कि योजना को सम्पन्न करने के लिए क्या काम करना होगा और उसके लिए किन-किन साधनो की आवश्यकता पडेगी। कौन विद्यार्थी क्या काम करेंगे यह भी उसी समय निश्चित कर देना चाहिए। अगर कोई ऐसी योजना ली जाय जिसमें एक से अधिक कक्षा के विद्यार्थी काम कर रहे हैं तो विभिन्न कक्षा के विद्यार्थियो की योग्यता अनुसार ही काम देना चाहिए। योजना की सफलता नियोजन पर निर्भर करती है। यदि नियोजन त्रुटिपूर्ण हुआ तो सफलता नहीं मिलेगी। अत योजना

बहुत समझ बूझकर बनानी चाहिए । अध्यापक को चाहिए कि बालक स्वतः योजना बनायें और वह केवल उनका पथ प्रदर्शन करे । कार्यक्रम बनाने में ही विद्यार्थियों की बहुत बड़ी शिक्षा हो जाती है । इसीलिए योजना-पद्धति में नियोजन का बहुत बड़ा मूल्य है ।

कार्यान्वयन

नियोजन के उपरान्त बालक साधन संग्रह करते हैं और योजना को सम्पन्न करने के लिए पूर्व नियोजन के अनुसार कार्य करते हैं । काम करते करते वे अपने अनुभव से सीखते हैं । निश्चित काम को पूर्ण करने के लिए विद्यार्थियों को अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है, लिखना-पढ़ना पड़ता है हिसाब करना होता है विज्ञान की प्रवृत्तियों से अवगत होना पड़ता है । अनेक सामाजिक और देश-सेवा की संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है और उनकी सहायता से काम करना पड़ता है । इस प्रकार विद्यार्थी स्वयं काम करके अपने अनुभव से सीखते हैं । अध्यापक को चाहिए कि वह उनकी देख रेख करता रहे और आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करे । अध्यापक को न तो हस्तक्षेप करना चाहिए और न बिना माँग सहायता देनी चाहिए। काम पूरा करने की जल्दी में जो अध्यापक स्वयं काम करने लग जाते हैं वे योजना-पद्धति की आत्मा को नहीं समझते। यदि आवश्यकता हो तो नियोजन में परिवर्तन भी किया जा सकता है परन्तु अध्यापक को केवल सुझाव देना चाहिए । परिवर्तन का काम तो विद्यार्थी ही करेंगे ।

मूल्यांकन

योजना के समाप्त होने पर विद्यार्थी फिर एक साथ बैठकर यह देखेंगे कि काम कैसा हुआ और उसमें कितनी कोर-कसर रह गयी । इस प्रकार अपने काम की अच्छाइयाँ-बुराइयाँ उनके सामने आती हैं और वे अपनी त्रुटियों का सुधार करना सीखते हैं । उनमें किसी समस्या पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने की आदत भी पड़ती है ।

एक योजना का उदाहरण

योजना—स्कूल में डाकघर की व्यवस्था करना

(क) उपयोजनाएँ अथवा उपक्रियाएँ

१ पास के डाकघर का निरीक्षण ।

२ डाकघर के विभिन्न भागों के लिए तख्तियाँ बनाना, अर्थात् टिकटघर, बचत बैंक, रजिस्ट्री, मनीआर्डर आदि ।

३ डाकघर के विभिन्न कर्मचारियों के लिए कुर्सी-मेज, कलम-दावात, पेंसिल तथा दूसरे आवश्यक फार्मों तथा सामग्रियों की व्यवस्था करना ।

४ लेटर-बाक्स बनाना ।

५ एक कमरे से दूसरे कमरे के लिए टेलीफोन बनाना ।

६ पोस्टकार्ड और लिफाफे तथा बधाई-कार्ड बनाना।

७ स्टाम्प एकत्र करना और चिपकाना ।

(ख) उपक्रियाओं से सम्बन्धित ज्ञान

१ भाषा—(क) मौखिक कार्य — पोस्टमैन का और उसके कार्य का वर्णन । देखे हुए डाकघर का वर्णन, डाकघर पर बातचीत, डाक व्यवस्था में सुधार पर सुझाव सम्बन्धी बातचीत पोस्टमास्टर द्वारा भाषण और छात्रों द्वारा प्रश्न ।

(ख) पढ़ना — पत्र-पत्रिकाओं अथवा पुस्तकों से डाकघर और डाकप्रणाली के विषय में पढ़ना । डाकघर में प्रयुक्त होनेवाले मनीआर्डर अथवा रजिस्ट्री आदि फार्मों को पढ़ना । स्कूल के डाकघर द्वारा प्राप्त पत्र, बधाई-कार्ड आदि पढ़ना ।

(ग) लिखना — मनीआर्डर फार्म भरना, आवश्यक सामग्रियाँ मँगाने अथवा क्रय करने के लिए प्रधानाध्यापक को, दूकानदार को अथवा पोस्टमास्टर को पत्र लिखना । स्कूल के डाकघर-द्वारा वितरण के लिए मित्रों को पत्र लिखना । ईद, दिवाली, बड़ा दिन आदि

के बधाई-कार्ड तैयार करना । योजना का विवरण लिखना ।

२ गणित–मनीआर्डर भेजने के प्रसंग में और बचत बैंक के प्रसंग में गणित (सूद और लाभ-हानि, प्रतिशत आदि) के प्रश्न । टिकट, मनीआर्डर की फीस आदि का हिसाब । पोस्टकार्ड और लिफाफा तथा बधाई पत्र आदि बनाने के लिए कागज का हिसाब और उन्हें बनाने के प्रसंग में ज्यामिति के प्रश्न । विभिन्न देशों के लिए विभिन्न टिकटदर तथा विभिन्न वस्तुओं के पार्सलों पर विभिन्न दरें सम्बन्धित हिसाब ।

३ इतिहास–डाक प्रणाली का विकास, डाक-सेवा का इतिहास ।

४ भूगोल–देश के विभिन्न भागों और विदेश में जानेवाले पत्रों का मार्ग, जैसे वाराणसी से दिल्ली, अमृतसर, बम्बई, मद्रास आदि अथवा वाराणसी से लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क, मास्को, काहिरा आदि । नगर के किसी डाकघर से रेलवे स्टेशन तक का मार्ग ।

५. नागरिकशास्त्र–पत्रों का तत्काल उत्तर देना, भूल से प्राप्त पत्रों पर उचित मूल्य के स्टाम्प लगाना, व्यवहृत टिकटों का पुनः प्रयोग न करना ।

६ कला—बधाई-पत्र के प्रसंग में विभिन्न डिजाइन और चित्र ।

योजना पाठ-संकेत

दिनांक	कक्षा–६	समय–८० मिनट	
योजना–पत्रालय योजना	उपयोजना–लिफाफा बनाना	ज्ञानात्मक विषय–गणित	प्रसंग–दशमलव का गुणा

उद्देश्य —(क) कार्य-सम्बन्धी

१ एक समन्वयात्मक कार्य-द्वारा बालकों को यथार्थ वातावरण में व्यावहारिक ज्ञान देना ।

२ लिफाफा बनाना सिखाना और इस प्रकार उनमें आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न करना ।

(ख) ज्ञान-सम्बन्धी गणित

छात्रों को लिफाफे का मूल्य निकालने के प्रसंग में दशमलव का गुणा सिखाना ।

सहायक सामग्री

कार्य-सम्बन्धी—कागज, पटरी, पेंसिल, काटने के लिए ब्लेड या कैंची, विभिन्न प्रकार के लिफाफों का नमूना ।

ज्ञान-सम्बन्धी—चार्ट ।

पूर्व ज्ञान

कार्य-सम्बन्धी—छात्रों ने पोस्टकार्ड बनाया है । उन्होंने लिफाफा देखा है ।

ज्ञान सम्बन्धी—छात्रों को दशमलव के जोड़-बाकी का ज्ञान है ।

अभिप्रेरणा

अध्यापक निम्नांकित प्रश्नों द्वारा छात्रों को कार्य के लिए प्रेरणा देगा—

१ दूसरे नगर में रहनेवाले अपने मित्र या सम्बन्धी का समाचार तुम कैसे ज्ञात करोगे ? (पत्र-द्वारा)

२ पत्र भेजने के लिफाफा कैसे बनाओगे ? (समस्या)

उद्देश्य-कथन

आज हमलोग लिफाफा बनायेंगे ।

नियोजन

इसके बाद छात्राध्यापक बालकों की सहायता से लिफाफा बनाने के लिए आवश्यक सामग्री एवं क्रियाओं को निर्धारित करेंगे । यह कार्य प्रश्नोत्तर-विधि द्वारा होगा ।

१ लिफाफा बनाने के लिए किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी ? (कागज, पटरी-पेंसिल और लेई)

२. सबसे पहले कौन-सी क्रिया करोगे ?

(लिफाफे की लम्बाई चौड़ाई नापकर निशान लगायेंगे)

३ लिफाफे को बनाने के लिए कितने कागज की आवश्यकता होगी ? (८ × १० कागज की)

५ कागज को लिफाफा के रूप में किस प्रकार बदलोगे ?

उत्तर न मिलने पर अध्यापक एक लिफाफा खोल कर दिखायगा और फ्लैप की ओर संकेत करके प्रश्न करेगा, यह कौन-सी चीज है ? (फ्लैप)

६ लम्बाईवाले फ्लैप को दिखाकर यह कितना चौड़ा है ? (२½)

७ चौड़ाईवाले फ्लैप की चौड़ाई कितनी है ? (२½)

८ फ्लैप के नोकों की चौड़ाई कितनी है ? (½)

९ इन फ्लैपों को किस प्रकार बनाओगे ?

उत्तर न मिलने पर छात्राध्यापक बतलायगा कि लम्बाई चौड़ाई रेखाओं के समानान्तर खींची जायेंगी जो २½ का त्रिभुज बनाती हुई रेखाएँ एक दूसरे को काटेंगी। यही क्रिया चारों ओर करेंगे। त्रिभुज के नोक को ½ चौड़ा काट देंगे। इस प्रकार फ्लैप तैयार हो जायगा। फ्लैप को आपस में चिपका देंगे।

१० अभी लिफाफे में कौन सा कार्य बाकी रह गया है ? (टिकट लगाना)

११ टिकट क्यों लगाते हैं ?

(डाक व्यय अदा करने के लिए)

श्यामपट्ट कार्य

इस नियोजन के अन्तर्गत बतायी गयी बातें छात्राध्यापक श्यामपट्ट पर लिखेगा।

आदर्श प्रदर्शन

सर्व प्रथम छात्राध्यापक छात्रों को एक-एक लिफाफा निरीक्षण करने के लिए देगा। इसके बाद वह उपरोक्त वर्णित विधि के अनुसार लिफाफा बनाने की क्रिया का आदर्श प्रदर्शन करेगा।

सावधानियाँ

आदर्श प्रदर्शन के समय छात्राध्यापक बालकों का ध्यान निम्नलिखित सावधानियों की ओर आकर्षित करेगा—

१ लिफाफा आयताकार हो।

२ नाप ठीक हो।

३ रेखाएँ तथा फ्लैप ठीक हो।

४ किनारे साफ तथा सीधे कटे हों।

५ टिकट उपयुक्त स्थान पर सीधा लगा हो।

पुनरावृत्ति के प्रश्न

१ लिफाफे के लिए किन किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी ?

२ लिफाफा के लिए कितने कागज की आवश्यकता होगी ?

३ लिफाफा बनाने में किस बात की सावधानी रखोगे ?

४ टिकट किस स्थान पर लगाओगे ?

कार्यान्वयन

इन सावधानियों की ओर छात्रों का ध्यान आकर्षित करने के बाद अध्यापक छात्रों की सहायता से कक्षा में अन्य आवश्यक सामान वितरित करेगा। इसके बाद छात्र उपरोक्त वर्णित विधि के अनुसार कार्य करेंगे।

निरीक्षण एवं सहायता

जब छात्र कार्य करते रहेंगे उस समय छात्राध्यापक घूम घूमकर उनके कार्य-कलापों का निरीक्षण करेगा। उस समय उनके बैठने के आसन तथा सामान पकड़ने के ढंग पर विशेष ध्यान दिया जायगा और यथास्थान उन्हें व्यक्तिगत सहायता पहुँचायी जायगी।

यदि कक्षा में सामान्य त्रुटि हो रही होगी तो अध्यापक सभी बालकों को रोककर सामूहिक रूप से उस गलती का सुधार करेगा और पुनः कार्य करने का आदेश देगा।

सामान एकत्र करना

कार्य समाप्त हो जाने पर सामान एकत्र कर लिया जायगा। इस कार्य को अध्यापक बालकों की सहायता से करेगा।

इसके बाद अध्यापक मूल्यांकन के लिए निम्न लिखित प्रश्न करेगा —

मूल्यांकन

१ आज तुम लोगों ने कौन सा कार्य किया ?

२ लिफाफे की लम्बाई चौड़ाई कितनी होगी ?

३ टिकट क्यों लगाते हैं ?

श्यामपट्ट कार्य

१ लिफाफे की लम्बाई चौडाई ४७ × ३७ होती है।

२ टिकट का मूल्य डाक खर्च के रूप में अदा करना पडता है।

नवीन पाठ समस्या

१ आज तुमलोगो ने कौन सा कार्य किया ?

२ लिफाफे के लिए कितने कागज की आवश्यकता होती है ? (२५ से० मी० × २० से० मी०)

३ यदि तुमको ७४५ लिफाफे बनाने हो तो कितने मूल्य का कागज लगेगा जब कि एक ताव कागज का मूल्य ४५ पै० है और कागज के ताव की लम्बाई चौडाई ७५ से० मी०×६० से० मी० है। (समस्या)

प्रस्तुतीकरण

१ इस प्रश्न में क्या ज्ञात करना है ?

२ यह कैसे ज्ञात करोगे ?

३ प्रश्न में क्या ज्ञात है ?

४ एक लिफाफे में कितना कागज लगता है ? (२५ से० मी० × २० से० मी०)

५ एक ताव कागज में इस प्रकार के कितने टुकडे होगे किस प्रकार ज्ञात करोगे ?

अध्यापक श्यामपट्ट पर कागज के ताव का चित्र बनाकर उसको टुकडो की सहायता से विभाजित करेगा तथा पुन प्रश्न करेगा कि कितने टुकडे होगे ? (९ टुकडे)

६ एक ताव कागज का क्षेत्रफल कितना होगा ? (७५ से०मी० × ६०से०मी० = ४५०० वर्ग से०मी०)

७ एक लिफाफे के लिए कितने वर्ग से० मी० का टुकडा लगेगा ? (२५ × २० से० मी० = ५०० वर्ग से० मी०)

८ एक ताव कागज में कितने लिफाफे बनेंगे ?

$$\left(\frac{४५००}{५००} = ९\right)$$

९ प्रश्न में तुमको क्या ज्ञात करना है ? (कागज का मूल्य)

१० किस दर से ज्ञात करोगे ?
उत्तर न मिलने पर अध्यापक प्रश्न करेगा।

११ एक ताव कागज का मूल्य कितना है ? (४५ रु०)

१२ एक ताव मे कितने लिफाफे बनेंगे ? (९)

१३ एक लिफाफे का कितना मूल्य हुआ ? (०५ रुपये)

१४ ७४५ लिफाफे का मूल्य किस प्रकार निकालोगे ? (७४५ × ०५ रु०)

१५ गुणनफल कितना आया ? (३७२५ रु०)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ ५२५ पोस्टकार्ड बनाने मे कितना व्यय होगा जब कि एक ताव कागज का दाम १२ रु० है और ताव की लम्बाई १४० से० मी० और चौ० ६० से० मी० है। पोस्टकार्ड की लम्बाई चौडाई १४ से० मी० × २० से० मी० है।

२ यदि ७४५ लिफाफो म ३७२५ रुपये व्यय लगते है तो एक ताव कागज का दाम क्या होगा जब कि एक ताव कागज की लम्बाई ७५ से० मी० चौडाई ६० से० मी० और लिफाफे की लम्बाई १२ से० मी० तथा चौडाई १० से० मी० है।

श्यामपट्ट कार्य

एक ताव कागज की लम्बाई चौडाई ७५ × ६० से० मी० लिफाफे के लिए कागज २५ से० मी० × २० से० मी० का लिया जायगा एक ताव में टुकडो की संख्या

$$\frac{७५ \times ६०}{२५ \times २०} = ९$$

एक ताव का दाम ४५ रुपये
एक लिफाफे का मूल्य ०५ रुपये
७४५ लिफाफे का मूल्य ७४५ × ०५ = ३७२५ रुपये होगा।

स्कूल-रिकार्ड रखने में असुविधाएँ

•

शमसुद्दीन

शालाओं में क्युमुलेटिव रिकार्ड प्रारम्भ करने में जिन कठिनाइयों का अनुभव किया गया है उनके सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विभिन्न मत निम्न अनुसार है —

१ आवासिक (रेसीडेंशियल) स्कूलों में ही रिकार्ड रखना सम्भव है क्योंकि वहाँ छात्रों के गुणों की बारीकी से परख हो सकती है।

२ पालकों की अधिकारी वर्ग से सहयोग में उदासीनता रिकार्ड रखने में बहुत बड़ी बाधा है। छात्र अपनी सच्ची जानकारी नही देते ।

३ शिक्षकों को वेतन बहुत कम मिलता है अतः वे रिकार्ड रखने के कार्य में उत्साह नही लेते।

४ रिकार्ड रखने में काफी समय लगता है और चूँकि शिक्षकों पर कार्य भार बहुत अधिक हो गया है वे इस काम में समय व्यय करना नही चाहते।

५ ४० छात्रों की एक बड़ी कक्षा में रिकार्ड रखना एक कठिन समस्या है।

६ सरकार ने रिकार्ड रखना अनिवार्य नही किया है।

७ पाठ्य विषयों की बहुलता, अपर्याप्त शिक्षक तथा अर्थ की कमी भी रिकार्ड रखने में बाधाएँ हैं।

८ प्रशिक्षित शिक्षक कम है तथा प्रशिक्षण विद्यालयो में रिकार्ड रखने में प्रशिक्षण की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता।

९ योग्यता की परख के वर्गीकरण का कोई निश्चित योग्य प्रमाण प्राप्त नही है ।

उपर्युक्त कठिनाइयों की विस्तृत सूची निम्नलिखित कुछ मुख्य श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है —

१ उपयुक्त व योग्य वातावरण का अभाव जिसमें क्रमांक १ और २ आ जाते हैं।

२ साज-सामग्री का अभाव जिसे दो भागों में बाँटा जा सकता है—प्रथम व्यावहारिक रूप, जिसमें क्रमांक ३ ४ ५ ६ और ७ आ जाते है तथा द्वितीय पारिभाषिक या सैद्धान्तिक रूप, जिसमें क्रमांक ८ और ९ आते है।

ऊपर दर्शायी गयी कई कठिनाइयाँ सचमुच बड़ी गम्भीर है किन्तु वे ऐसी नही कि जिनपर विजय न पायी जा सके। कुछ थोड़े से परिवर्तन और सामंजस्य से रिकार्डों का प्रारम्भ किया जा सकता है।

उपयुक्त वातावरण का अभाव

प्रधान अध्यापकों के एक वर्ग का मत है कि रिकार्ड रखना आवासिक स्कूलों में ही सम्भव हो सकता है। यह कुछ हद तक मान्य भी है क्योंकि ऐसी शालाएँ बच्चों के शिक्षण में अधिक योग्य व प्रभावशाली होती हैं। यह सच है कि आवासिक स्कूलों में बच्चों के हित व उन्नति की दृष्टि से वातावरण और परिस्थितियाँ अधिक अच्छी तरह से नियंत्रित की जा सकती हैं किन्तु यह तो क्युमुलेटिव रिकार्डस के द्वारा वांछित हमारे ध्येय से एक कदम आगे की बात है। अतः क्युमुलेटिव रिकार्ड रखने के लिए इस प्रकार की शर्त रखना अनावश्यक है। यथार्थ में इन रिकार्डों का ध्येय छात्रों की कमजोरियों और शक्तियों को प्रकाश में लाना है जिनके आधार पर शैक्षणिक व अन्य प्रकार का मार्गदर्शन किया जाता है। इनका उद्देश्य बच्चों की वास्तविक प्रवृत्तियों की पहचान

अत्यधिक कार्यभार व अन्य कारण उपस्थित न होंगे। ऐसी अवस्था में शिक्षकों का अच्छा वेतन दिया जा सकेगा तथा शिक्षकों की संख्या में वृद्धि करके उनके कार्य का भार भी हल्का किया जा सकेगा। इस प्रकार सारा कार्य सरल हो जायगा। किन्तु वास्तव में स्थिति ऐसी नहीं है।

हमें इस बात का भी ध्यान रखना है कि आर्थिक स्थिति एक दिन में सुधरने की चीज नहीं। अत प्रश्न यह है कि आर्थिक सकटों के बावजूद ऊपर दर्शाये गये कारण क्या इतनी बड़ी कठिनाइयाँ हैं कि रिकार्ड प्रारम्भ करना ही असम्भव है?

शिक्षकों की वेतन वृद्धि

'शिक्षकों के वेतन में वृद्धि हो'—यह आज लोगों का एक नारा ही हो गया है। यह हास्यास्पद बात है कि शिक्षा के क्षेत्र के किसी भी दोष के लिए इस नारे को बुलन्द किया जाता है तथा इसे न केवल उसका कारण बताया जाता है वरन उसके अस्तित्व के लिए इसका न्यायपूर्ण पक्ष लिया जाता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि शिक्षा-सरीखे महत्त्वपूर्ण व्यवसाय में इतना कम वेतन दिया जाता है किन्तु साथ ही यह कोई कारण भी नहीं कि शिक्षक अपने पवित्र व्यवसाय के प्रति अपने कर्तव्य में उदासीनता दिखलाये।

मेरा अपना विश्वास है कि शिक्षक अपने महान व्यवसाय की अन्य उत्तम बातों की अवहेलना कर केवल कक्षा के अध्यापन पर ही अपनी दृष्टि इसलिए केन्द्रित नहीं करता कि उसे वेतन कम मिलता है वरन् इसलिए कि वह स्वयं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतना अपूर्ण है कि अपने व्यवसाय का वास्तविक रूप ही नहीं समझता।

अध्यापन-करना अन्य व्यवसायों से इस बात में भिन्न है कि इसमें कोई विशिष्ट शैक्षणिक तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि इस क्षेत्र में व्यक्ति की शैक्षणिक योग्यताओं की अपेक्षा व्यक्ति का ही अधिक महत्त्व है। जैसा कि हनरी वेन ड्यूक ने कहा है—'विद्या भले ही पुस्तकों से प्राप्त की जा सके किन्तु विद्या के प्रति प्रेम व्यक्तिगत सम्पर्क से ही पनपता है।'

अत वास्तविक प्रश्न यह है कि हम उन व्यक्तियों का चुनाव करें जिनकी प्रवृत्तियाँ शिक्षण कार्य के अनुकूल हों। इस व्यवसाय के लिए लोगों का चुनाव करते समय उम्मीदवारों की शैक्षणिक योग्यता के साथ-साथ उनके हित, मानसिक झुकाव व अन्य व्यक्तिगत मनोवृत्तियों को भी ध्यान में रखा जाय। शिक्षक का व्यक्तित्व एक अनुपम और विशिष्ट व्यक्तित्व है। कोई भी साधारण व्यक्ति जिसने डिग्री प्राप्त कर ली है, अध्यापन के योग्य नहीं हो सकता। इस दृष्टि से प्रशिक्षण संस्थाओं पर गहरी जिम्मेदारी है। वे शिक्षकों के चुनाव की उत्तम प्रणाली निर्माण कर न केवल उन्हें अध्यापन-योग्यता से परिपूर्ण कर सकती हैं वरन उनपर पौर्वात्य संस्कृति की छाप भी डाल सकती हैं।

क्युमुलेटिव रिकार्ड्स

क्युमुलेटिव रिकार्ड्स से सम्बन्धित कक्षा के वृहद आकार तथा शिक्षकों के अत्यधिक कार्य भार के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाय कम ही है। ये स्वयं बहुत बड़ी बुराइयाँ हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है, किन्तु यदि हम क्युमुलेटिव रिकार्ड प्रारम्भ करने का दृढ़ निश्चय कर लें तो ये इतनी बड़ी बाधाएं नहीं हैं जो दूर न की जा सकें।

यह मानना गलत है कि एक व्यक्ति जो कक्षा शिक्षक है, उसी पर अपनी कक्षा के सम्पूर्ण रिकार्ड रखने की जिम्मेदारी छोड़ दी जाय। यह गृह-कार्य देखने अथवा परीक्षा की कापियाँ जाँचने जैसा नहीं है। फार्मों के कई खानें निम्नलिखित बातों के आधार पर भरे जायेंगे—

१—जाँच-परीक्षा के परिणाम—डाक्टरी शैक्षणिक व मनोवैज्ञानिक, जैसे डाक्टरी रिपोर्ट, शैक्षणिक योग्यताओं के प्रमाण-पत्र, व्यक्तिगत सूचना पत्र, भावी कार्यक्रम इत्यादि।

२—माता पिता और अभिभावकों से एकत्रित की गयी सूचना, जैसे पारिवारिक इतिहास, व्यक्तित्व सूचना पत्र आदि।

ये सूचनाएँ समय समय पर भरी जायेंगी जिससे शिक्षक के दैनिक कार्य में इनसे कोई बाधा उपस्थित न होगी। कुछ थोड़े से फार्म, जैसे आचरण-लेखा आदि आवश्यक हैं जिन्हें प्रतिदिन भरना पड़ेगा।

यहाँ समय इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना शिक्षक का छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क तथा उनमें रुचि और

कार्यानुभव और शिक्षा-आयोग

•

एच. बी. मजूमदार

अध्यक्ष, बेसिक शिक्षा विभाग, नेशनल इन्स्टीट्यूट आव एजुकेशन, नयी दिल्ली।

सार्वजनिक क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के लिए कोठारी-कमीशन ने कई मुद्दे उठाये हैं, जिनमें से कार्य अनुभव भी एक है। इस कमीशन की रिपोर्ट पहिले की सभी रिपोर्टों से भिन्न है क्योंकि इसमें कई तरह के विचारों को लिया गया है और एक बड़े खाके को ध्यान में रखकर शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं का स्पर्श किया गया है। इसमें राष्ट्रीय विकास को भी शामिल किया गया है। लेकिन इस रिपोर्ट का भी कहीं वही हाल न हो, जो इसके पहिले की रिपोर्टों का हुआ है, इसलिए इसमें जो सिफारिशें की गयी हैं, उनके पीछे जो दृष्टि है, और उन्हें पूरा करने का जो मतलब है इन सबको समझने की जरूरत है। जो सिफारिशें की गयी हैं उन्हें अपनाने के पहिले यह जरूरी है कि उन्हें पिछले अनुभवों के प्रकाश में समझ लिया जाय और साथ ही, आगे के लिए व्यावहारिक ढंग से सोचा जाय।

कार्य-अनुभव भी एक क्षेत्र है जिसपर कोठारी कमीशन ने जोर दिया है। यह समझना जरूरी है कि बेसिक शिक्षा में उत्पादक श्रम का जो विचार है उसके मुकाबिले कार्य-अनुभव की क्या विशेषता है और इसे उपलब्ध साधनों से किस तरह अमल में लाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में जो मुद्दे सामने आते हैं उनपर विचार करने के पहले यह जरूरी है कि कोठारी-कमीशन ने शिक्षा के जो उद्देश्य और उन्हें प्राप्त करने के जो कार्यक्रम सुझाये हैं उनपर गौर कर लिया जाय।

रिपोर्ट में यह बताया गया है कि खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता, आर्थिक विकास और पूरी रोजगारी, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता, राजनीतिक विकास, भारत तथा औद्योगिक दृष्टि से विकसित अन्य देशों के बीच दूरी कम करना और जीवनमान उठाने आदि की राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए दो खास कार्यक्रम अपनाये जा सकते हैं, यानी, प्राकृतिक साधनों का विकास और मानवीय साधनों की उन्नति। इनमें से पहली चीज, कृषि को आधुनिक बनाकर व तेजी से औद्योगीकरण करके, और दूसरी, शिक्षा के जरिये की जा सकती है। इन दोनों में से मानवीय साधनों की उन्नति ज्यादा महत्व-पूर्ण है।

जो सामाजिक आर्थिक परिवर्तन लाने की मंशा है उसके लिए यह कहा गया है कि शिक्षा लोगों की जिन्दगी, उनकी जरूरतों व आकांक्षाओं से सम्बन्धित हो। साथ ही, खेती को महत्व दिया जाय, शिक्षा को उत्पादन से जोड़ा जाय। स्कूल-कालेज राष्ट्रीय निर्माण में हिस्सा लें और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता बढ़ायें। जीवन में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य आयें इसकी भी कोशिश की जाय।

शिक्षा को उत्पादन से जोड़ने के लिए रिपोर्ट में नीचे का कार्यक्रम सुझाया गया है और आगे इस बात की सिफारिश की गयी है कि शैक्षिक पुनर्निर्माण में इसे अधिक महत्व दिया जाय "

१ विज्ञान की शिक्षा व संस्कृति का बुनियादी तत्व बनाया जाय।

२ कार्य-अनुभव सामान्य-शिक्षा का अविच्छिन्न अंग हो।

३. शिक्षा में, खासकर सेकेण्डरी स्कूल-स्तर पर, पेशों की शिक्षा शामिल की जाय, ताकि उद्योग, कृषि व व्यापार सम्बन्धी जरूरतें पूरी हों।

लेना आवश्यक है कि कार्य अनुभव की शुरुआत के पहले विस्तार से उसका कार्यक्रम शोध करनेवाले कार्यकर्ताओं द्वारा तैयार कर लिया जाना चाहिए या नहीं। अब तो अपने देश में नेशनल इंस्टीट्यूट आव एजूकेशन यानी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान है जिसमें बेसिक एजूकेशन तथा अन्य विभाग हैं, देश के चौदह राज्यों में शिक्षा के राजकीय संस्थान हैं और कई राज्यों में पाठ्यक्रम बनानेवाले संगठन भी हैं। इन सबके अलावा गैर सरकारी संगठन भी हैं जो बेसिक शिक्षा में अच्छा काम कर रहे हैं। इन सभी के द्वारा समवायी पाठों के विस्तृत कार्यक्रम तैयार किये जा सकते हैं। लेकिन उन्हें तैयार करने में ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि कार्यक्रम वास्तविक दशाओं के अनुरूप हो और वे क्षेत्र के कार्यकर्ताओं द्वारा अमल में लाये जा सकें।

३. क्या कार्य-अनुभव और उत्पादक-श्रम के उद्देश्यों में भिन्नता है ?

रिपोर्ट में कहा गया है कि कमीशन द्वारा निर्धारित कार्य अनुभव तथा बेसिक शिक्षा द्वारा प्रतिपादित उत्पादक-श्रम की परिकल्पनाओं में समानता है। प्राइमरी-स्तर पर तो दोनों कार्यक्रमों में निकट समानता है। इस परिकल्पना को सेकेण्डरी व उच्च शिक्षा में भी स्थान दिया गया है, क्योंकि ऊँची शिक्षा की संस्थाएँ व विश्वविद्यालय शिक्षा-सम्बन्धी पूरे कार्य को प्रभावित करते हैं। इस बात पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है कि बेसिक शिक्षा के कार्यक्रम को उस समाज की आवश्यकताओं की ओर उन्मुख किया जाय जिसे विज्ञान व तकनीक की सहायता से बदलना है। दूसरे शब्दों में, नये समाज की विशेषता अक्षुण्ण रखते हुए कार्य अनुभव को आनेवाले भविष्य का ध्यान रखना चाहिए।

कार्य अनुभव का जो कार्यक्रम सुझाया गया है वह तकनीकी योग्यता के विकास पर जोर देता है। यह कार्यक्रम विज्ञान के प्रयोग व उसकी उत्पादक प्रक्रिया में गहराई तक जाने पर भी बल देता है।

यह एक विचार करने की बात है कि बेसिक शिक्षा में ऊँचे स्तरों पर भी उत्पादक-श्रम द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था थी या नहीं। साथ ही हुनरों के विकास, उत्पादक क्रियाओं, विज्ञान के इस्तेमाल, आदि के सम्बन्ध में गहरी जानकारी की भी व्यवस्था थी या नहीं। यदि ऐसा है तो क्या कार्य-अनुभव के उद्देश्यों का अपना लेने पर हम बेसिक शिक्षा के दर्शन से दूर हो जायेंगे ?

४. बेसिक शिक्षा में उत्पादक-श्रम को प्रगतिशील कैसे बनाया जाय ?

रिपोर्ट में कई जगह यह कहा गया है कि कार्य-अनुभव की परिकल्पना मूलतः वही है जो बेसिक शिक्षा में उत्पादक अनुभव की है। फर्क केवल यही है कि इसे सभी स्कूल-स्तरों पर लागू करने की बात कही गयी है और इसे आधुनिक बनाया गया है ताकि जो समाज औद्योगीकरण को अपना चुका है उसकी जरूरतें पूरी हों।

इस सम्बन्ध में जो प्रश्न उठता है वह यह है कि शिक्षा का जीवन से जोड़ने के सिद्धान्त की रक्षा करते हुए यह आधुनिक रूप दिया कैसे जाय ?

रिपोर्ट में ही यह कहा गया है कि यह सही है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादक कार्य अनुभव अधिकतर कृषि के ही चारों ओर केन्द्रित होगा फिर भी उद्योग व सरल तकनीक-प्रधान कार्यक्रम अधिकतर ग्रामीण स्कूलों में चालू किया जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि बीच की स्थिति यानी संक्रान्ति काल में अधिकतर बच्चे उत्पादन के उन्हीं परम्परागत कार्यक्रम में अनुभव प्राप्त करेंगे जिन्हें समुदाय व्यवहार में लाता है। इस योजना को लागू करने में जो कठिनाई है वह भी महसूस की गयी है। इसीलिए कार्यक्रम को क्रम से एक के बाद दूसरे स्तरों में लागू करने का सुझाव दिया गया है।

स्पष्ट है कि अलग अलग परिस्थितियों में कार्य अनुभव के अलग अलग नमूने होंगे। और परिस्थिति की अनुकूलता के साथ-साथ ये नमूने भी बदलने चाहिएँ ताकि गन्तव्य तक पहुँचा जा सके। कार्यक्रम शुरू करने के करीब बीस वर्षों बाद गैर-बेसिक स्कूलों को बेसिक स्कूलों की तरह बना देने का विचार सूझा। इसपर भी विचार करना जरूरी है कि अलग अलग परिस्थितियों के बीच हम कितने नमूने रख सकते हैं।

५ कार्य-अनुभव में क्या स्वावलम्बन के पहलू का भी समावेश है ?

कमीशन ने उत्पादक-श्रम द्वारा जीविका पर भी जोर दिया है। उसमें कहा गया है 'अच्छी तरह

बेसिक शिक्षा में तो उत्पादक-श्रम को भोजन, वस्त्र व आवास-जैसी प्रारम्भिक आवश्यकताओं से जोड़ा गया था। उद्योग के चुनाव के लिए एक आवश्यक सिद्धान्त यह भी रखा गया था कि उसके टुकड़े न किये जायें, बल्कि, जैसे-जैसे बच्चा बढ़े उसका भी विकास होता जाय। साथ ही, उद्योग में ऊँची शिक्षा देने की भी सामर्थ्य हो।

कमीशन ने विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न प्रारूपों की सिफारिश की है। निचले माध्यमिक स्तर के लिए मॉडेल बनाने, साबुन बनाने, बिजली-मरम्मत, क्लीनो-कटिंग, पच्चीकारी, भूमि की देखभाल आदि क्रियाएँ भी शामिल की गयी है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए यह कहा गया है कि निचले माध्यमिक स्तर पर रखी गयी क्रियाओं में से कई इस स्तर पर भी चलेंगी लेकिन ज्यादा जोर कार्यशाला के अभ्यास या औद्योगिक व व्यापारिक फर्मों में या खेतों पर वास्तविक कार्य अनुभव पर दिया जायगा। ये सभी क्रियाएँ उत्पादन प्रधान रहेंगी।

निचले प्राइमरी स्तर को हम अनुसन्धान का वह स्तर मान सकते हैं जहाँ बच्चे विभिन्न प्रकार की चीजों से परिचय प्राप्त करेंगे और उन्हें अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए इस्तेमाल करेंगे। कुछ भी हो साधारण तौर पर इस बात पर लोग सहमत हैं कि उच्चतर प्राइमरी स्तर पर क्राफ्ट गम्भीरता से शुरू होना चाहिए। जो क्रियाएँ ऊपर गिनायी गयी हैं उनकी शैक्षिक क्षमता सीमित है और उनकी व्याप्ति भी सँकरी है। इसपर विचार किया जा सकता है कि इन क्रियाओं की जो शैक्षिक प्राप्ति होगी वह बेसिक शिक्षा के उत्पादक श्रम की ही तरह प्रभावपूर्ण होगी या नहीं।

९ कार्य-अनुभव को कितना महत्व दिया जाय ?

किसी चीज को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लेना एक रिवाज हो गया है लेकिन जब उसे व्यवहार में लाने की बात होती है तो क्रान्तिकारी परिवर्तनों से मेल बैठाना मुश्किल हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि सिद्धान्त व व्यवहार में ताल-मेल नहीं रहता। कार्य अनुभव को वैसे बहुत अधिक महत्व दिया गया है लेकिन व्यवहार में हो सकता है, केवल नाम के लिए ही इसे थोड़ा स्वीकार कर लिया जाय, और बाकी चीज छोड़ दी जाय। कार्य अनुभव को महत्व कितना मिलता है यह इस बात से जाना जा सकता है कि उसके लिए समय कितना दिया जाता है, और किसी क्षेत्र विशेष के शिक्षकों को कितनी इज्जत दी जाती है। अभी तक आधिकारिक रूप से यह पता नहीं चला है कि कार्य-अनुभव को समय व अंकों का क्या प्रतिशत दिया गया है। फिर भी, इस मुद्दे पर विचार करना व कुछ सीमाएँ निश्चित कर लेना ठीक होगा।

१० वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे हो ?

कार्य अनुभव का कार्यक्रम शुरू करने पर काफी खर्च की जरूरत होगी। बेसिक शिक्षा को सन्तोषप्रद रूप से लागू न किये जा सकने के पीछे एक कारण यह भी था कि शुरू में उसमें पैसा खर्च करने की जरूरत थी। एक तरह से सभी योजनाओं में जितनी उम्मीद होती है उससे कम ही नतीजा सामने आता है। इसमें शक नहीं कि बेसिक शिक्षा का पूरा दर्शन ही स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर आधारित था, लेकिन इस पहल की पूर्ति के लिए उन सभी सुझावों को मानने की जरूरत थी जो दिये गये थे। लेकिन वह किया नहीं गया। आज भी स्थिति बहुत भिन्न नहीं होगी। योजना-आयोग के एक जिम्मेदार सदस्य ने यह कहा है कि जो सिफारिशें की गयी हैं उनको पूरा खर्च नहीं भी मिल सकता है। इस तथ्य का ध्यान रखते हुए हमें यह सोचना चाहिए कि हमारे पास जो साधन हैं उनका ही ठीक इस्तेमाल कैसे हो और अगर जरूरी हो तो उपलब्ध साधनों में ही अनुरूप कार्यक्रम कैसे बनाया जाय ?

११ शिक्षक-नवीनीकरण व शिक्षक प्रशिक्षण की समस्या का हल कैसे हो ?

किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम की सफलता इस बात पर काफी निर्भर रहती है कि उचित ढंग से प्रशिक्षित शिक्षक कितने मिलते हैं। बेसिक शिक्षा को अमल में लाने में एक कठिनाई यह भी थी कि उपयुक्त शिक्षकों की कमी थी। विभिन्न राज्यों ने मौजूदा शिक्षकों के नवीनीकरण व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार की कोशिश की जरूर, लेकिन नतीजा कोई बहुत सन्तोषजनक नहीं हुआ। कार्य अनुभव कार्यक्रम को भी अन्तिम रूप दे दिये जाने

के बाद यह जरूरी है कि शिक्षक-नवीनीकरण व शिक्षक-प्रशिक्षण-कार्यक्रम को विस्तार में तय कर लिया जाय। क्या ज्ञान देना है और क्या हुनर सिखाना है उसे भी तय कर लिया जाय। यदि यह काम एक से अधिक सगठनों द्वारा हाथ में लिया जाता है जैसी कि जरूरत पड़ेगी ही, तो क्या उन कार्यक्रमों को तय करने के लिए मार्ग-दर्शन की कुछ रेखाएँ निश्चित कर ली जानी चाहिएँ ? कौन कौन सस्थाएँ ये काम उठायेंगी उन्हे भी निश्चित कर लेना चाहिए।

१२ उचित साहित्य निर्माण

उपयोगी साहित्य की कमी के कारण भी शिक्षा पुनर्निर्माण की किसी भी योजना को हानि उठानी पड़ती है। यह चीज बेसिक शिक्षा के भी साथ हुई। व्यक्तिगत प्रयास से काफी उपयोगी साहित्य निर्माण हुआ भी, फिर भी, आकलन-समिति ने यह राय दी कि यदि प्रत्येक शाला से और फिर अखिल भारतीय रूप में उपयोगी साहित्य की खोज-बीन होती और फिर उसका सम्पादन होता तो शिक्षक के मार्गदर्शन के लिए बहुत उपयोगी साहित्य मिलता। इस सम्बन्ध में कैसे काम किया जाय इसके लिए कोई निर्णय कर लेना जरूरी है। किस साहित्य का निर्माण किया जाय, उसे कैसे छापा और कैसे वितरित किया जाय आदि बातें तय कर लेनी चाहिएँ।

१३ जहाँ काम हो रहा है उस वास्तविक स्थिति का अनुभव कैसे कराया जाय ?

कार्य अनुभव को एक दिशा यह भी दी गयी है कि कारखाना या खेत में जहाँ वास्तविक उत्पादन कार्य हो रहा है उसका अनुभव कराया जाय। यदि जनसख्या के एक छोटे हिस्से का यह अनुभव कराना सम्भव भी हो तो दूसरे विकल्प क्या है ? स्पष्ट हमें हस्त कलाओ कुटीर उद्योगों व ग्राम-उद्योगों जैसे उत्पादन के अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ेगा। जापान की तरह पूरी देश-व्यापी एक योजना शुरू की जा सकती है, लेकिन उस पर निर्णय अन्य विभागों से भी सम्बन्धित होगा और इस सरकार ही कर सकेगी। स्वयं शिक्षा-आयोग ने १९६७ ६८ में केवल एक प्रतिशत स्कूलों में कार्य अनुभव के चालू किये जाने की सिफारिश की है।

१४ उत्पादित वस्तुओं की खपत कैसे हो ?

उत्पादन व आर्थिक विनियोग के सिद्धान्त के साथ उत्पादित वस्तुओं के विक्रय का सवाल जुडा हुआ है। अगर ठीक से काम हो तो कार्य अनुभव-क्षेत्र में भी उत्पादन-सम्बन्धी समस्या खड़ी होगी, जैसी कि बेसिक शिक्षा में हुई। इस प्रश्न पर कोई निश्चित नीति निर्धारित की जानी चाहिए और सारी जिम्मेदारी अन्ततोगत्वा शिक्षकों पर ही नहीं छोड़ देनी चाहिए। सरकार द्वारा खादी को राहत देने की बात हमारे सामने है। कुछ दूसरी सहायताओं के अभाव मे सरकार की इस स्कीम को किस विकट स्थिति का सामना करना पड रहा है यह हमें मालूम है। उत्पादित वस्तुओं की खपत के लिए फिर कौन से कदम उठाये जायँ ? स्पष्ट है कि कुछ उपाय करने पडेंगे। कई ऐसे सगठन हैं जो बहुत-सी वस्तुओं की थोक खरीद करते है। अगर सरकारी तौर पर यह प्रबन्ध हो जाय कि इसमें से कुछ चीजों का उत्पादन केवल स्कूलों में ही होगा तो खपत की समस्या काफी सीमा तक हल हो सकती है।

१५ कार्य-अनुभव-कार्यक्रम को पूरा करने के लिए कौन-सा प्रशासकीय ढाँचा चाहिए ?

किसी योजना की सफलता उपयुक्त प्रशासकीय ढाँचे पर भी निर्भर है। बेसिक शिक्षा के लिए नियुक्त आकलन समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि बेसिक शिक्षा की गति धीमी होने गलत ढग से चलाये जाने और उसका विकास मारे जाने के दुखद अनुभव का एकमात्र कारण यही था कि बेसिक शिक्षा गलत प्रशासकीय ढाँचे के अन्तर्गत सगठित की गयी थी।

जिन लोगों ने प्रचलित शिक्षा-पद्धति में शिक्षा पायी है और जिन्हें श्रम के प्रति गलत मूल्यों की शिक्षा मिली है उनके लिए कार्य अनुभव की सही जानकारी कठिन है। फिर भी इस कार्यक्रम में पूरे समुदाय के सहकार और विभिन्न सगठनों के प्रयास की आवश्यकता है।

इस बात पर भी विचार की जरूरत है कि कार्य अनुभव कार्यक्रम की पूर्ति के लिए किस प्रकार का प्रशासकीय सगठन हो।

—(नयी तालीम गोष्ठी कुरुक्षेत्र के लिए तैयार किया गया निबन्ध)

आत्म-समीक्षा

नयी तालीम विद्यालय (शिवदासपुरा) में परीक्षा-पद्धति के बदले समीक्षा की एक विशेष पद्धति है। समीक्षा के लिए शिक्षक साल के प्रारम्भ से ही प्रस्तुत रहते हैं। समीक्षा के लिए एक समीक्षा-समिति है। समीक्षा-समिति के सामने सालभर का काम याने शिक्षक की डायरी, हर लड़के की हर विषय की साल भर की कापियाँ, दैनिक समय-विभाग-चक्र के उद्योगों की रिपोर्ट, त्रैमासिक प्रगति-पत्रक आदि हर लड़के के सालभर के रेकार्ड तथा वार्षिक अभिमत शिक्षक प्रस्तुत करते हैं। समीक्षा-समिति उस लड़के के बारे में वर्ग-शिक्षक के साथ एकमत होकर निर्णय लेती है। वह अन्तिम निर्णय होता है।

इस लेख में आप ७वीं कक्षा के एक विद्यार्थी की आत्म-समीक्षा पढ़ें। बालक ने अपनी सालभर की समीक्षा की है। वह खुद अपने बारे में क्या अनुभव करता है। सालभर में क्या प्रगति की है, किसमें कमी है और उसकी पूर्ति कैसे होगी, इत्यादि मुद्दों पर अपनी ही भाषा में विद्यार्थी ने लिखा है। उसीकी भाषा में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। —सुशील कुमार

१ राइटिंग खराब है। दो महीनों में अच्छी लिखने की कोशिश करूँगा।

२ गणित में थोड़ा पीछे हूँ। २ महीना में मैं गणित में ठीक हो जाऊँगा।

३ नक्शा बनाने में कुछ पीछे हूँ। आशा है दो महीनें में ठीक हो जाऊँगा।

४ कताई में मैंने १४ गुण्डी कात दी है। मुझे और अधिक कताई करनी चाहिए। मैं हर सप्ताह १½ गुण्डी १००० तार की गुण्डी बनाकर दे दूँगा।

५ निबन्ध ३ पृष्ठ का लिख लेता हूँ। ठीक है।

६ श्रुतिलेख में एक पृष्ठ में ३ ४ गलतियाँ होती हैं। श्रुतिलेख ठीक है।

७ इंगलिश में ठीक नहीं हूँ। हिन्दी में ठीक हूँ। साईन्स भी करीब-करीब ठीक है।

८ भूगोल मे कमजोर हूँ। २ माह मे ठीक हो जाऊँगा।

९ ट्रासलेशन मे कमजोर हूँ। ट्रासलेशन समझ मे नही आता है।

१० सस्कृत में बहुत ज्यादा कमजोर हूँ। हमें ७ वी कक्षा की किताबें पढानी चाहिएँ, नही तो अगली कक्षा मे नही जा सकूँगा।

११ चित्रकला मे रुचि नही है, इसलिए इसके सब प्रश्न दिमाग में घूमा करते हैं। कुछ समझ में नही आता।

१२ मेरा स्वभाव ठीक नही है। गुस्सा आता है। किसी भी बात को लेकर बहस करने की आदत है। मैं अब अपने स्वभाव को देखकर लिखता हूँ कि धीरे धीरे ठीक होता जा रहा हूँ। आशा है दो महीने में स्वभाव ठीक हो जायगा।

१३ मैं भाई साहब को जवाब देता हूँ। ऐसे जवाब नही देना चाहिए, लेकिन अब मैं जबान को सँभालकर बोलने की कोशिश करता हूँ। पर कभी-कभी जवाब दे देता हूँ। शायद अगले दो माह मे व्यक्तित्व को ठीक प्रकार रखूँगा।

१४ अन्य बात—मैं डायरी नियमित लिखता हूँ। भजन नियमित करता हूँ और नाखून भी काटकर आता हूँ।

१५ टट्टी घर की सफाई करूँगा। पेशाब घर की सफाई, टट्टी की सफाई करना व बाहर की चौक की सफाई करना अच्छी तरह आता है। पर, कभी मूड नही बनता है तो फिर अच्छी सफाई नही होती है।

१६ शारीरिक सफाई—कपड़ो की सफाई अच्छी तरह करना, कपड़े सुखाना भी आता है। तेल मालिश करनी चाहिए, लेकिन मालिश करने की इच्छा नहीं होती है। नहाते समय साबुन लगाकर नहाता हूँ।

१७ चड्डी व टावेल साफ करता हूँ। पर कभी-कभी साबुन, बाल्टी, चाबी, कपड़े आदि सामान कुएँ पर ही भूल जाता हूँ। चप्पल भी भूल जाता हूँ। बहुत ढूँढना पड़ता है।

—राजेन्द्र कुमार पहाड़िया

छात्र, नयी तालीम विद्यालय, शिवदासपुरा, जयपुर।

सम्पादक के नाम चिट्ठी

बुनियादी तालीम : कार्यानुभव

बुनियादी तालीम के विरोध में जो अभियान शुरू किया गया था उसका उपसंहार हुआ है शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित 'कार्यानुभव' में। लेकिन साथ ही आयोग ने यह आश्वासन जरूर दिया है कि जिस तरह नेहरूजी के शरीर की पवित्र भस्मी हिन्दुस्तान के खेतों में बिखेर दी गयी थी ताकि वह इस देश की मिट्टी में व्याप्त हो जाय, उसी तरह बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों की पवित्र राख भी आयोग की सम्पूर्ण योजना में सर्वत्र छितरायी गयी है ताकि वह समस्त शिक्षा-क्षेत्र में परिव्याप्त हो सके।

यह छिड़काव और यह परिव्याप्ति अपने साथ नये धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्य भी लेकर आयी है अतः यद्यपि कितना भी ध्यान से पढ़ा है फिर भी यह सारा विषय अब अधिक रहस्यमय लगने लगा है। इन विचारों से अगर शिक्षा आयोग की योजना को एक रहस्यवादी और आध्यात्मिक दस्तावेज मान लिया जाय तो भी गलत नहीं होगा क्योंकि यह अनन्त विभिन्न दृष्टिकोणों का एक गुणनात्मक परिवेष्टन है।

शिक्षा आयोग के सदस्यों की प्रतिभा की दाद [illegible] उनके दस्तावेज को भी देनी ही पड़ेगी क्योंकि जिस गुरुकुलों में उत्थान विश्वविद्यालय विषया पर बनारस में टाँग दिया है वह हमारे सामने आधुनिक अमूर्त कला का ही एक उत्कृष्ट दृष्टान्त है।

वस्तुतः बुनियादी तालीम भी अब एक अमूर्त कला बना दी गयी है चाहे हम उसे समझ सकें या नहीं। अकहानी, अकविता, और अनालोचना के युग में बुनियादी तालीम को भी अगर एक कदम आगे बढ़कर अतालीम बना दिया हो तो आधुनिक चिन्तन को क्या एतराज हो सकता है ?

मुझे चूँकि लेटेस्ट का शौक है अतः मैं तो केवल प्रशंसा ही करूँगा, चाहे अमूर्त कला मेरी अनुभूतियों में कोई रस-संवेदना उत्पन्न करे या नहीं क्योंकि रसानुभूति एक आउटडेटेड फैंड है।

अस्तु। कार्यानुभव के पक्ष में मेरी दलीलें निम्नलिखित हैं—

१ बेसिक शिक्षा को स्वयं गांधीजी ने उसी दिन दफना दिया था या तज दिया था जिस दिन उन्होंने यह घोषणा की थी, 'मेरा राजनीतिक उत्तराधिकारी तो जवाहरलाल है।' सचमुच उसी दिन गांधी-विचार भी रिटायर हो गया था। इतिहास में इस भूल को मोहपाश की संज्ञा दी जायगी। यह ''मोहनीय कर्म'' का उदाहरण था।

२ बेसिक शिक्षा को याद में प्लानिंग कमीशन की नीतियों ने जमींदोज कर दिया।

३ इस तथ्य को डा० कालूलाल श्रीमाली ने देखा और दुर्भाग्यवश खुद उठाने भी स्वीकार कर लिया।

४ डा० कालूलाल श्रीमाली की घोषणा का घोष उन बहरे कानों को सुनाई नहीं दिया—जो शायद जन्मजात बहरे हैं।

५ बेसिक शिक्षा पर पुनर्विचार करने की माँग की गयी थी, लेकिन उसपर भी गौर नहीं किया गया।

एक विषयान्तर

तो क्या अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत ?' यही सत्य है ?

यह सत्य तो नहीं परन्तु तथ्य जरूर है। क्योंकि जॉन ड्यूई ने कहा था कि सत्य को हम कहीं ढूँढ नहीं सकते, उसका तो हम निर्माण करते हैं। इसीलिए सत्य की स्थापना करनी होती है।

सत्य की साधना के दो पक्ष हैं। सत्य ही साधन और सत्य ही साध्य। वही है सत्य-साधन।

पुनश्च——

६ इस परिस्थिति का पूर्वाभास भारत में सिर्फ खादी-ग्राम, मुंगेर में अनुभव किया गया और श्री धीरेन्द्रभाई तथा श्री राममूर्तिजी ने लोकशिक्षण का नारा बुलन्द किया, आचार्य विनोबा ने भी।

आज तो यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि जब तक जनता में, लोकमानस में, बुनियादी तालीम के प्रति आस्था उत्पन्न नहीं होगी तबतक सरकारी या गैर सरकारी प्रयास असफल ही होते रहेंगे।

लेकिन फिर भी *बुनियादी तालीम या नयी तालीम* की मशाल को तो जलाये ता रखना ही होगा। इस दृष्टिकोण से भी विद्यालय चलाये जाते रहें, जिनकी सार्थकता असन्दिग्ध है। ऐसे प्रयोग भी होते रहे हैं, जो यथार्थ वर्तमान में से आगे का मार्ग ढूंढने के उद्देश्य से किये गये और उनका योगदान ऐतिहासिक सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।

७ कुल मिलाकर जो अनुभव प्राप्त हुए है, उनका लेखा जोखा कर लेने का अब वक्त आ गया है। और ठीक अवसर पर 'कार्यानुभव' की नयी थ्योरी भी हमारे सामने आयी है। इस प्रकार बुनियादी तालीम पर ही पुनर्विचार कर लेने का यह ऐतिहासिक अवसर है, जो सम्भवत श्रेष्ठतम भी है। अगर हम ठीक ठीक और सही (वैज्ञानिक) परिप्रेक्ष्य म, एक सन्तुलित और यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार कर सकें तो परिणाम जो भी आयगा वह सत्य साधन की दिशा में एक अगला कदम ही होगा, प्रतिगामी नहीं।

अतएव यदि हम इस अवसर पर बुनियादी तालीम के स्वरूप पर ही नहीं, सिद्धान्तों पर भी पुनर्विचार करें तो गलत नहीं होगा।

कुछ पुनर्विचारणीय विषय

१ स्वावलम्बन का सिद्धान्त और लक्ष्यांक ?

२ शिक्षण का माध्यम उद्योग ? अथवा, सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश ? या तीनों, और उनमें केन्द्रीय स्थान किसका ?

३ आग्रह किसका, और किस किस का ?
अ—क्या नाम का ? ब—क्या कताई और खादी का ? स—क्या श्रम अथवा कार्य का ? द—क्या एक विशेष दृष्टिकोण का ?

४ अब जबकि बुनियादी तालीम एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली नहीं रही है तो फिर भारतवर्ष की सभी खादी संस्थाओं का यह दायित्व है कि वे अपने कार्य-क्षेत्र में बुनियादी तालीम के विद्यालय चलायें। क्या यह नीति सर्व सेवा संघ को मान्य करना चाहिए ?

५ बुनियादी तालीम का एक नया घोषणा पत्र बनाया और प्रकाशित किया जाय तथा जाकिर हुसैन समिति के ८ साल के शिक्षाक्रम म सशोधन किये जायें।

बदले हुए सन्दर्भ

परिस्थितियों और देश के वातावरण में जो परिवर्तन आ गये हैं उनको देखना समझना और स्वीकार किया जाना शेष है। उसी पृष्ठभूमि में बुनियादी तालीम को अब नयी तालीम में रूपान्तरित होना है। कार्यानुभव तो बुनियादी तालीम का प्रारम्भिक सूत्र है, लेकिन बुनियादी तालीम केवल वहीं तक सीमित नहीं रह सकती। वह कुछ अधिक और कुछ विशेष की साधना करती है। कुछ अधिक और कुछ विशेष क्या है क्या होना चाहिए, यह नये सिरे से स्पष्ट करना आवश्यक है।

यदि हममें साहस हो लक्ष्य में अडिग विश्वास हो, असफलताओं की आशका न हो, और निष्काम धर्म की निष्ठा हो, तो हम अब भी, सब काम *बिलकुल नये सिरे से फिर शुरू कर सकते हैं। यहाँ तक कि* हम कार्यानुभव से शुरू करके भी नयी तालीम की मंजिलों तक पहुँच सकते हैं।

जो कुछ नहीं हो सका उस पर आँसू बहाना बेवकूफी है, सवाल तो अब यह कि हम नये सिरे से नया प्रयास शुरू करें, और अपने ध्येय और लक्ष्य की ओर अविराम गति से बढ़ते जायें।—प्रवीणचन्द्र कासलीवाल

परायेपन में सांस लेनेवाली पीढी

अरे बटू देख दीदी आयी तेरी दीदी आयी मां और बड़ी बहन के इन वाक्यों को सुनकर बटू बाहर आने की जगह सोफा में मुंह छिपा लेता है। मां सोफा पर बैठते हुए प्यार से बटू को अपनी ओर खींचते हुए कह रही है तेरी दीदी से आज तेरी शिकायत करूंगी बटू निपिल चूसता रहता है खाना खाते समय पलथी लगाकर बैठता नहीं पैर फैलाये रहता है।

दीदी की ओर मुखातिब होकर बटू की मां ने कहा यह आपके यहां तो पलथी लगाकर बैठता है न! हम तो बार-बार कहकर थक जाते हैं सुनता नहीं उलटे जवाब देता है दीदी तो आसन देती है मां तुम भी आसन मंगा दो तो पलथी लगाकर बैठूं।

एक बार नहीं अनेक बार बटू यह मांग पेश कर चुका है!

मांग में कहां अनौचित्य है? —मैंने पूछा तो मां खिलखिलाकर हंस पड़ी।

बटू एक साधन-सम्पन्न नेटम्ड फैशन के शौकीन माता पिता की सन्तान है। जिसे सब खिलौने उसे मिल सकते हैं परन्तु उसकी आसन की मांग क्या नहीं पूरी होगी?

वह मां-बाप की आशा-आकांक्षा का केन्द्र बिंदु है पर उसकी अपनी आकांक्षा का भी कोई अस्तित्व है या नहीं? बालक की आकांक्षा के अस्तित्व का ही केवल सवाल नहीं पर स्वयं बच्चे का अस्तित्व घर में कहां है यह पता नहीं चलता। मां-बाप की आंखों का तारा वह है इसमें शक नहीं।

मां-बाप की प्रतिष्ठा उनकी आकांक्षा की पूर्ति के लिए ही मानो बच्चे का जन्म है जीवन है। उसकी अपनी हस्ती यह नहीं है कि वह बिना रोक-टोक कुछ कर सके। जो घर पिता के मित्रों का स्वागत करता है मां की सहेलियों को आदर देता है दादी की पूजा के लिए भी जहां स्थान सुरक्षित रहता है उस घर में एक कोना भी नहीं मिलेगा जिसे बालक अपना कह सके अपने ढंग से जिसे सजा सके बिगाड़ सके जहां बच्चा अपने दोस्तों के साथ मनमानी धूम मचा सके उछल कूद कर सके।

जन्म से लेकर मृत्युतक जीवनभर एक प्रकार के परायेपन में ही सांस लेनेवाली पीढ़ी से आने वाला युग अपेक्षा रखे उदारता की मानवता की मित्रता की सहकार की—यह कहांतक शक्य है—सवाल ही है।

घर का उपेक्षित सदस्य

सुशील की मां और बाप की फरियाद है कि खाना परोसना और तैयार करना एक आफत है पूरे समय सुशील मुझे दे दो मुझे दे दो की रट लगाये रहता है।

परोसने का काम सुशील से कराया यह सुझाव मां के गले उतरा नहीं। उनके मेहमानों के सामने सुशील आये यह उन्हें पसन्द नहीं। क्योंकि अभी सुशील का शऊर नहीं है तहजीब नहीं है। यह तो उसके हाथ में मिठाई की प्लेट थमाकर उसे अलग ही बैठा देना पसन्द करता है।

सुशील को यह अलगाव पसन्द नहीं। वह मां-बाप के साथ शामिल होना चाहता है। मांग पूरी नहीं होती तो वह परेशान करता है।

सुशील के पिताजी ने कुछ सोचा-समझा और दोस्तों के लिए नाश्ता लाने का काम बेटे के सुपुर्द कर दिया। सुशील अपना मांगना भूल गया और उत्साह से पानी का गिलास नाश्ते की प्लेट लाने लगा।

आज भी जब-जब मां-बाप मूड में रहते तब सुशील की उपेक्षा नहीं हुई उसे घर का एक सदस्य माना गया।

छह माह बाद एक दिन सुशील के पिताजी मित्र और प्रसन्नता के साथ बोले कि अब तो सुशील खाना

परोसे जाने पर भी खाने की जल्दी नहीं करता, कहता रहता है, "माँ को आने दो, तब खायेंगे।"

बाल-भारत में ५० बच्चों को परोसने तक प्रतीक्षा करना, और परोसने के बाद भी 'साथ ही खेलें, साथ ही खायें, साथ ही करते सारा काम' शान्ति मंत्र को प्रतिदिन दुहराना, सुशील के मन पर एक संस्कार डाल रहा है और माँ-बाप का बदला हुआ व्यवहार भी सुशील के मन की दूरी को कम कर रहा है। वह अपनापन महसूस करने लगा है।

भय नहीं, प्यार

नाहीद एक शर्मीली लजीली लड़की, कभी किसी प्रवृत्ति में भाग नहीं लेती, बच्चों के साथ भी न रहकर अकेले-अकेले, दूर-दूर खड़ी रहती, बैठी रहेगी। जब सारे बच्चे आँगन में गेंद खेलेंगे, झूला झूलेंगे, स्लाइडर पर फिसलेंगे या पौधों को पानी पिला रहे होंगे तो नाहीदजी कमरे में रखना-पेटी, दफ्ती पेटी के साथ मशगूल होगी।

"चना बोने, काटनेवाला अभिनय करेंगे," बच्चों ने माँग की। नये बच्चों को भी सिखाया जाय यह विचार आना सहज था।

नाहीद, नीरा, मुमहुम, पप्पू और बब्बू को भी पुकारा। नीरा और नाहीद नाम सुनते ही अपने आप में सिमट गयीं। प्रोत्साहित किया। अन्य साथियों के आगे बढ़ जाने और उनके पीछे रह जाने की बात भी बतायी। पर वे छुई-मुई के पत्तों की तरह सिमटती ही चली गयीं।

हमने आपस में तय किया कि आज नाहीद के घर चलेंगे, इसकी अम्मी को बतायेंगे कि नाहीद किसी प्रवृत्ति में भाग नहीं लेती।

शाम को नाहीद के घर गये। अबतक सर्वत्र का अनुभव था कि हमको घर आये देखकर बच्चे खुशी से नाचने लगते थे, पर नाहीद तो गला फाड़कर रोने लगी।

अम्मी और अब्बा देते थे रुदन का कारण समझ न सके, पर हमें समझते देर न लगी।

मैंने सवाल किया, 'क्या आप नाहीद को बहुत पीटती हैं?'

अम्मीजान मुस्कराकर बोली, "शरारत पर पीटी ही जाती है।"

"इतनी मासूम बच्चे को पीटना आपका दिल बरदाश्त कैसे करता है? यह आपकी पिटाई का ही डर है कि नाहीद घबडाकर रो रही है।"

अम्मीजान क्यों मानने लगी, "नहीं साहब, मैंने कहाँ इस समय कुछ भी कहा है, आपके घर में घुसते ही न इसने रोना शुरू किया है!"

"आपने अभी तो कुछ नहीं कहा, पर आपकी लड़की की याददाश्त तो अच्छी है। उसे याद है कि आप शरारत पर पीटा करती हैं आपकी मशा पूरी न हो तो आप पीटती हैं, यही सब सोच सोचकर वह रो रही है।"

नाहीद माँ की गोद में बैठी, घबरायी आँसू-भरी निगाहों से हमारी ओर ताकती जाती थी, बातें सुनती जाती थी, रोती भी जाती थी।

तभी पहुँचे नाहीद के अब्बा, और प्रकट की उत्सुकता नाहीद के बारे में जानने की। हमने दोनों की उपस्थिति में उपर्युक्त घटना कह सुनायी।

वे लोग भी असलियत को पकड़ सके। उन्होंने महसूस किया कि नाहीद का मार के ही डर से दिल बैठा जा रहा है। वह सोच रही है कि दीदी शिकायत करेगी और मरम्मत शुरू हो जायगी।

इस प्रसंग को आधार बनाकर देर तक गपशप हुई, और मार-मारकर अपनी मशा पूरी कराने की आदत छोड़ दें यह समझौता करने की कोशिश भी की। इससे बालक डरपोक, भोंदू और आत्मभीरु हो जाता है, यह भी समझाया।

बातचीत के दौरान मेज पर प्लेटें आ गयीं—केला सेब और अंगूर।

हमने नाहीद की अम्मी और अब्बा के साथ नाहीद को भी हठपूर्वक नाश्ते में शामिल किया। किस बच्चे को माँ-बाप के मेहमान के साथ खाने-पीने का अवसर मिलता है!

नाहीद ने मुहब्बत का एहसास किया। आज तीसरे चौथे दिन देखा कि नाहीदजी अपनी टोली के साथ पैर में घुंघरू बाँधकर, घाघरा पहनकर, ओढ़नी ओढ़कर अभिनय के मंच पर उतरी हैं। शान्ति बाला
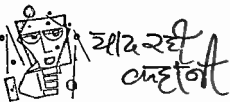
मन की बोली

●

सैयद मुहम्मद टोंकी

सर्दी का मौसम। फरवरी का महीना। सवेरे-सवेरे बच्चा ने नीबू के नीचे कुछ पडा देखा। पास गये तो फाख्ता के दो बच्चे थे। एक ने कहा, मैं देखूं, दूसरे ने कहा, 'मैं देखूं', तीसरे ने कहा, 'क्या बचेंगे, मर जायेंगे', चौथे ने कहा, "इनमें जान तो है।'

बच्चा की नानी (अम्मा) साहिबा पलंग से उठीं। बच्चा को हाथ में लिया। बड़े प्यार से दूसरा हाथ उनपर फेरा, प्यार किया और कहा, ' ये तो बच जायेंगे'। बच्चा ने कहा, "दाना तो चुग नहीं सकते, क्या बचेंगे"। अम्मा ने कहा, 'देख लेना जी जायेंगे'। यह कहकर दोनों को नरम सी रजाई के कोना में में लपेट लिया। अंगीठी जलाके उनकी सेंकाई की। प्यार की जोत, रजाई की गर्मी, अंगारों की लपक लगी तो आँखें खोल दीं। थोडी देर पीछे और तो नाश्ता करने लगे और अम्मा मुँह में नेवाला चबाने लगीं। खूब चबा लिया तो बच्चा की चोंच खोल के, एक एक दाना डालके उनको खिलाया, प्यार किया। शाम तक कई बार यही किया। एक तो सँभल गया, मगर दूसरे की हालत बिगड गयी। बच्चा को विश्वास कि मर जायेंगे। अम्मा का उतना ही विश्वास कि जी जायेंगे।

दूसरे दिन सवेरा होते ही बच्चा ने फाख्ता के बच्चा के बारे में पूछा। देखा तो एक चल बसा था। उसे गाड़ दिया। दूसरा ठीक था, उसका नाम 'मुन्नन' रख दिया। देख-भाल से दो-एक दिन में मुन्नन फुदकने लगा। मगर फुदकता चारपाई के आस-पास ही और फिर अम्मा के हाथ पर आके बैठ जाता। बच्चे सुबह शाम पूछते कि 'मुन्नन' कैसा है? और अम्मा को खुश करने के लिए उसकी तारीफ भी करते।

होते होते एक दिन मुन्नन ने उडान की और टहनी पर बैठ के अपनी सेहत और आजादी का एलान किया। अम्मा खुश हो के बोली-'मेरा 'मुन्नन' उड़ने लगा।" थोडी देर तकती रही और फिर बोली 'मुन्नन'। सुनते ही मुन्नन उडा और उनके सर पर जा बैठा। "मेरा मटरू मुन्नन आ गया" कहके अम्मा ने उसे हाथ में लिया और प्यार किया।

अब तो उडना और बुलाने पर आना मुन्नन की आदत हो गयी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मुन्नन की उडान लम्बी और ऊँची होती गयी। नीबू से छत, छत से पडोस की ऊँचे पेडों की टहनियों-टहनियों तमाम मुहल्ले का फेरा करता, पर भूख या रात के समय आ जाता। बीच में आता, उनको सोता देखता तो बैठ जाता। जागती रहती तो हाथ फैलाके मुन्नन को ले लेतीं। भूखा होता तो चोंच मारता और झोले में से निकालकर झट दाना दिया जाता। एक बार मुन्नन परदेश की सैर को चला गया। ऐसा गया कि बहुत दिन तक न आया। बच्चों ने कहा, "अम्मा, मुन्नन तो गया, अब नहीं आयेगा।" अम्मा ने बाहर आके आसमान की ओर देखा। बहुत-सी चिड़ियाँ उड रही थीं। उन्होंने कहा-"मुन्नन, तू चला गया। इतना खफा मत हो जा। आ जा।" एक मिनट नहीं हुआ था कि मुन्नन घर की छत पर था और चन्द सेकण्ड में उनके हाथ पर और फिर उनका प्यार और दाल, चावल, मुरमुरे का खाजा। घर में सब खुश कि "मुन्नन आ गया, मुन्नन आ गया।"

फाख्ता के बच्चे की बात ही नहीं। मन की बोली तो हर एक समझता है। कुछ दिन पीछे बिल्ली का बच्चा पाला गया। जब बढ गया तो यह साईदा के साथ फिरती। उसीसे भोजन माँगती। होते होते बच्चे दिये। बिल्ली सफेद थी, बच्चे सब चितकबरे। सफेद खाल पर काली चित्तियाँ। अभी बच्चा ने आँख भी नहीं खोली थी कि बिल्ली घर से निकली और फिर घर न आयी। पड़ोसिया ने मार डाला होगा। सईदा ने पहले माँ को पाला था अब उसके बच्चे का। रोटी को दूध में भिगो भिगो के उनको दूध पिलाया जाता। होते होते आँख खोलने और इधर-उधर फिरने लगे। घर में रौनक हो गयी। फिर इनके नाम रक्खे गये।

एक को पहलवान, दूसरे को प्रोफेसर, तीसरे को गोजी वगैरह। और सबको तो मुहल्लेवाले ले गये, गोजी घर ही में रहा।

घर मे मुर्गियाँ भी थी। मुर्गियो के बच्चे निकले थे। गोजी बडा हुआ तो उनपर गुर्राने और लपकने लगा। आवाज आयी—"अब आयगा मजा"। दूसरे ने अलापा—"अजी गोजी के मजे है, चूजे, मुर्ग पुलाव, जो चाहे यहाँ उसके लिए है।"

सईदा ने तेवर बदलके गोजी की तरफ देखा और जब वह वहाँ से हिला नही तो जोर से कहा—'हाय गोजी' और लपक के गोद में उठा लिया। दो-तीन दिन यही रहा कि इधर दरबे से बच्चे निकले और गोजी की राल टपकी। गो करके छलाग मारने के लिए बदन तोला और 'हाय गोजी' कहकर सईदा ने गोद में ले लिया। फिर गोजी ने न गा थी, न झपटा। वह दिन है और आज का दिन। कई बरस हो गये मुर्गियाँ यह नही जानती कि घर में बिल्ला है और गोजी को यह खबर नही कि घर म मुर्गियाँ। हाँ यह पता है कि कौन उससे मुहब्बत करता है। मन की बोली समझता है।

हमारे देश में पैंतालिस करोड आदमी बसते हैं, जो हिन्दी, उर्दू, तमिल, तेलगू, मराठी, पजाबी, गुजराती, मलयाली, असामी, कन्नडी वगैरह जबानें बोलते है। तमिल बोलनेवाले उर्दू नही समझते, हिन्दी बोलनेवाले बगला। हिन्दुस्तान से बाहर पूरी दुनिया मे तीन अरब लोग बसते हैं। मगर हस्पानवी (स्पेनी) बोलनेवाले अंग्रेजी नही समझते, अमरीकी अरबी, ईरानी चीनी नही समझते। दुनियाभर में यही हाल है कि एक दूसरे की बोली नही समझते।

जो कुछ लिखा गया वह आँखा देखा और कानो सुना है। इसलिए मन की बोली तो हर एक समझता है। जब दिल की बात कही जाती है, इसमें प्रेम की गर्मी होती है, जो दूसरा के दिल को, चाहे वह आदमी हो या चिडिया, प्रेम से गर्माती हैं। गोया बिजली की लहर है, जो एक के दिल से निकलकर दूसरे के मन में जाती है और दोनों का कनक्शन मिला के रोशनी—प्रेम की रोशनी, दोस्ती की रोशनी, इन्सानियत की रोशनी पैदा करती है। तुम्हारा दिल चमक उठता है, दूसरे का दिल जगमगा उठता है, मन की बोली से।

प्राइमरी कक्षाओं में कर्म-प्रधान शिक्षण

जुगतराम दवे

अगर प्राइमरी वर्गों म कृषि के अतिरिक्त कई उद्योगो का शिक्षण होना चाहिए। कताई के काम को सबसे अधिक महत्व दिया जाय। इन कामा मे से बालक कुछ न कुछ कमाई करे ऐसा प्रबन्ध हो।

सफाई-काम को आरम्भ से सिखाया जाय। ऐसा करने से कोई काम नीचा नही है, ऐसा सस्कार देश के बालको में आयगा। सफाई-काम कृषि का ही एक भाग है। सफाई का काम शिक्षा मे लेने से विज्ञान शिक्षण आसान होगा।

समाज-सेवा

प्राथमिक कक्षा से ही कुछ न कुछ रूप में समाज-सेवा को पाठ्यक्रम का अनिवाय अग बनाया जाय। प्राथमिक निम्न कक्षाओ में प्रति मास चार दिन नजदीक के समाजवासो को दिखाने की व्यवस्था की जाय।

प्राथमिक ऊपरी कक्षाओ में प्रति मास चार दिन सफाई, खेल, आदि कार्यक्रम समाज में जाकर किया जाय। माध्यमिक निम्न कक्षाओ में भी इसी प्रकार हो। माध्यमिक ऊपरी कक्षाओ में वर्ष मे १५ दिन श्रम-यज्ञ के कार्य किये जायें। उच्च निम्न कक्षाओ में वार्षिक समाज-सेवा वर्ष में १५ दिन की हो। उच्च ऊपरी कक्षाओ में वार्षिक ३० दिन समाज-सेवा, कैम्प-जीवन आदि हो।

भाषा-नीति

बोध भाषा के लिए नीचे से ऊपर तक के सारे शिक्षण में प्रादेशिक भाषाओं को ही स्थान देने की कमीशन की सिफारिश उचित और वास्तविक है। हिन्दी का शिक्षण राष्ट्र-भाषा के रूप में उत्साह के साथ आगे बढ़ाया जाय, लेकिन सारे राष्ट्र के लिए बोध-भाषा समान होनी चाहिए यह विचार स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। हिन्दी-भाषा को हिन्दी भाषी प्रदेश में तथा केन्द्रीय सरकार में दिन प्रतिदिन अधिक स्थान दिया जायगा तो देश में हिन्दी का शिक्षण उत्तेजन प्राप्त करेगा।

दक्षिण के राज्यों में आज की परिस्थिति में इंगलिश का महत्व जारी रहेगा, यह अनिवार्य सा है। लेकिन उत्तर में हिन्दी को दबाकर अंग्रेजी को उत्तेजन देना आवश्यक नहीं है। कई वर्षों में दक्षिणात्य प्रदेशों में भी हिन्दी सीखने का उत्साह पुनः जागृत होगा ही।

उच्च शिक्षण की कक्षाओं में पूर्व तथा पश्चिम की प्रमुख भाषाओं के खास विद्यालय चलाना आवश्यक है। विदेश जानेवाले तथा विदेशों से व्यवहार रखनेवाले लोग अपनी जरूरत के अनुसार इन विद्यालयों का लाभ उठाते रहेंगे। सरकार के विदेशी विभाग एवं विदेशों से व्यापारादि सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाएँ अपने लोगों को इन विद्यालयों में भाषा शिक्षण के लिए भेजती रहेंगी। समय बीतने पर विदेशी भाषाओं को अपना-अपना योग्य महत्व मिल जायगा। और इंगलिश को भी उसका उचित महत्व आ जायगा।

सारे उच्च शिक्षण में जानेवाले सभी विद्यार्थियों के लिए इंगलिश आवश्यक बनाने के बजाय इंगलिश के विशेष शिक्षण के लिए इस प्रकार के विद्यालय उच्च शिक्षा की कक्षा में जितनी भी जरूरत हो उतना खोलना यही हम ठीक समझते हैं।

उच्च शिक्षा की कक्षा में इसी प्रकार के भारत की प्रमुख भाषाओं के तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी के विशेष अभ्यास के लिए खास विद्यालय चलाना भी बहुत ही उपयुक्त है।

भारत में कई लोग बालवाड़ी से इंगलिश शुरू करते हैं। सरकार की ऐसी प्रवृत्ति को उत्तेजन देना अयोग्य है। ऐसी संस्थाओं को सरकारी सहायता देना अयोग्य है। सरकार की ओर से इस प्रकार की संस्था चलाना भी अत्यन्त अयोग्य है।

कमीशन ने भारत की भाषाओं के लिए समान लिपि रखने के बारे में चर्चा की है। सब भाषाओं में अपनी मातृभाषा की लिपि तथा देवनागरी इन दोनों लिपियों का शिक्षण देना चाहिए। इससे भारतीय बच्चों के लिए भारत की भाषाएँ समझना, सीखना आसान हो जायगा।

समान लिपि के तौर पर रोमन लिपि का उपयोग करने की कल्पना विदेशी मिशनरियों की चलायी हुई है और उत्तेजन के योग्य नहीं है।

बुनियादी शिक्षा

कमीशन ने बताया है कि बेसिक शिक्षा के प्रधान सिद्धान्तों को पूरे शिक्षाक्रम में स्वीकार कर लिया है। ये उसने इस प्रकार बताये हैं —

(१) शिक्षा में उत्पादक प्रवृत्ति

(२) समवाय

(३) स्कूल और समाज का सम्पर्क

ऊपर के इन तीन तत्त्वों को स्वीकार किया गया है। यह उचित ही है। बेसिक का एक अत्यन्त बड़ा तत्त्व इसमें बढ़ा लेना चाहिए, वह है—देशभक्ति, स्वदेशी, स्वावलम्बन, शौर्य त्याग आदि। समाज सेवा की प्रवृत्तियाँ ली गयी हैं। लेकिन खास लक्ष्य रखा जायगा तभी ये राष्ट्रधर्म के गुण बच्चों में आ सकेंगे। इस प्रकार की समाज सेवा की प्रवृत्तियाँ भी हो सकती हैं, जो देशभक्ति आदि के ऊपर जोर दिये बिना ही चल सकती है।

महात्मा गांधीजी के दिनों में सब प्रवृत्तियाँ स्वातन्त्र्य-संग्राम के ऊपर केन्द्रित थी। यह संग्राम अब २० वर्ष पुराना हो चुका है। आधुनिक बच्चों के जीवन में ये पुराने संस्कार नहीं रहे हैं। आज के समाज में राष्ट्रभक्ति, त्याग आदि गुणों के बदले धनमान स्वार्थ आदि विचार दृष्टि के सामने अधिक रूप में रहते हैं। इसलिए राष्ट्रीय आचार विचार शिक्षा में उतारने के लिए विशेष प्रयत्न हमारे पाठ्यक्रम में करना जरूरी है। अगर यह किया न जायेगा तो बेसिक शिक्षा का चारित्र्य-गठन का यह प्रधान तत्त्व अस्पष्ट रह जायगा।

—(नयी तालीम गोष्ठी [illegible] के लिए प्रेषित निबन्ध)

विज्ञान-प्रदर्शनी

•

जे डी. वैश्य

उपशिक्षा-निदेशक राजस्थान

आजकल के इस प्रगतिशील ससार में जहाँ चारो ओर परमाणु शक्ति, राकेट जेट प्लेन कृत्रिम चाँद आदि का बोल बाला है शिक्षा ससार में समग्र विज्ञान शिक्षण पर अधिक बल दिया जा रहा है। विज्ञान शिक्षण के लिए सब प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाता है विशेष अनुदान दिया जाता है। इसी क्रम में केन्द्रीय नेशनल काउंसिल ऑव एजूकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग ने 'विज्ञान क्लबों' की स्थापना भारत के सभी राज्यों के अच्छे अच्छे उच्च माध्यमिक अथवा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में की है। अबतक ९०० से अधिक विज्ञान क्लब स्थापित हो चुके है। राजस्थान में चालीस से अधिक क्लब बन चुके है।

प्रदर्शनी

शिक्षा के क्षेत्र में प्रदर्शनी की उपयोगिता बहुत समय से मानी जा रही है। ऐसी प्रदर्शनियाँ समय समय पर छात्रों और जनता के लाभ के लिए लगायी जाती रही है।

विज्ञान प्रदर्शनी विज्ञान शिक्षण की दिशा में एक नया कदम है। विज्ञान शिक्षण को बल देने के लिए, छात्रों और जनता में जिज्ञासा पैदा करने के लिए विज्ञान प्रदर्शनी का एक विशेष स्थान है।

विज्ञान-प्रदर्शनी के उद्देश्य

- छात्रों को प्रोत्साहित करना और बढ़ावा देना कि वे अपने विचारो को एक साकार रूप दे सकें।
- छात्र जो कुछ कक्षा में पढ़ते हैं उसको क्रियात्मक रूप में सजाकर दिखला सकें।
- छात्रों को इस बात का अवसर मिल सके कि वे अपने साथियों की कार्य कुशलता को कार्य रूप में देख सकें और उससे उत्साहित हो सकें।
- छात्रों के कार्य का सबके सामने प्रदर्शन जिससे उस कार्य का स्तर दिनोदिन ऊँचा करने में छात्रों को सुविधा आसानी और प्रोत्साहन मिल सके।
- उन कुशाग्र बुद्धिवाले छात्रों को पहचाना जा सके जिनके अन्दर विज्ञान शिक्षण के सजीव व क्रिया त्मक तत्त्व मौजूद हैं।
- भारत के भावी वैज्ञानिकों को प्रारम्भिक अवस्था में पहचाना जा सके।
- छात्रों के अभिभावकों में और जनता में विज्ञान के प्रति लगाव पैदा करना।
- छात्रों के अन्दर वैज्ञानिक क्रियाओं के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा जगाना।
- विज्ञान-क्लब के कार्य के लिए आधार सामग्री और आधार विचारों का सकलन।
- अभिभावकों और जनता को छात्रों अध्यापकों विद्यालय और उनके विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी कार्य-कलापों के सम्पर्क में लाना।

विज्ञान प्रदर्शनी के लिए उचित स्थान

- विज्ञान प्रदर्शनी की सफलता कुछ हद तक इस बात पर भी निर्भर है कि विज्ञान प्रदर्शनी उचित स्थान पर लगायी जाय।
- धरातल का क्षेत्रफल इतना होना चाहिए कि प्रदर्शनी-सामग्री व उपकरणों को उचित प्रकार से प्रदर्शित किया जा सके, दर्शकों को आने-जाने और प्रदर्शित सामग्री को देखने में सुविधा रहे।

इस काम के लिए कमरों के अलावा बरामदों की भी विशेष उपयोगिता है ।

- प्रदर्शनी-स्थल में रोशनी का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए—चाहे सूर्य का प्रकाश हो अथवा बिजली, गैस या लालटेन का ।
- यह आरम्भ से ही निश्चित कर लेना चाहिए कि किधर से आना होगा, किधर जाना होगा और अन्त में किस दरवाजे से बाहर निकलना होगा ।
- बिजली का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए । कहाँ पर रोशनी के लिए बल्ब व ट्यूब-लाइट लगानी है । प्रदर्शनी के विभिन्न उपकरणों के लिए कहाँ से बिजली लेनी है उसके लिए प्लग या सुविधाजनक स्थान पर होना आवश्यक है ।
- केवल प्रदर्शनी-कार्य के लिए पानी का उचित प्रबन्ध होना पर्याप्त नहीं है, दर्शकों के लिए पीने के पानी का भी प्रबन्ध होना चाहिए ।
- प्रदर्शनी-सामग्री व उपकरण एक ही स्थान पर आवश्यकता से अधिक इकट्ठे न किये जायँ ।
- प्रदर्शनी-सामग्री व उपकरणों के रखने के लिए जो फर्नीचर काम में लाया जाय वह सुन्दरता से सजाया जाय । जहाँतक हो वह एक-सा होना चाहिए ।

प्रदर्शनी की तैयारी

विज्ञान-प्रदर्शनी बिना पूर्व तैयारी के अधिक सफल नहीं हो सकती । इस समय अधिकांश विज्ञान-प्रदर्शनियों की असफलता का अथवा सफल न होने का मुख्य कारण यही है कि हम उनकी ओर आरम्भ से ध्यान नहीं देते । जब उच्च कार्यालय से प्रदर्शनी लगाने के बारे में परिपत्र प्राप्त होता है तो जल्दी-जल्दी में जो कुछ हो पाता है, कर लेते हैं । यह ठीक नहीं । इस समय प्रत्येक उच्च अथवा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को यह मानकर चलना चाहिए कि विज्ञान-प्रदर्शनी प्रति वर्ष होगी और प्रत्येक विद्यालय को उसमें भाग लेना होगा ।

सामग्री की खरीद

विद्यालय का नया बजट आते ही विज्ञान-प्रदर्शनी की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए । विद्यालय-बजट का किस प्रकार व किस काम के लिए उपयोग किया जायगा, ऐसा सोचते समय विज्ञान-प्रदर्शनी का ध्यान रखना परम आवश्यक है । यदि उस सामान की सूची बन गयी जो स्कूल को खरीदना है और उसमें उन वस्तुओं का समावेश नहीं किया गया जो स्कूल को विज्ञान-प्रदर्शनी के लिए आनी चाहिएँ, तो स्कूल को विज्ञान-प्रदर्शनी में सफलता प्राप्त न हो सकेगी । इसलिए उन वस्तुओं, उपकरणों, पुस्तकों आदि का खरीदना स्कूल के लिए आवश्यक है, जिनकी आवश्यकता विज्ञान-प्रदर्शनी में स्पष्ट ज्ञात होती है ।

प्रयोग व प्रोजेक्टों का चुनाव

विज्ञान-प्रदर्शनी-हेतु उपयुक्त प्रयोग व प्रोजेक्टों की तलाश निरन्तर होती रहनी चाहिए । विज्ञान-प्रयोगशाला में एक रजिस्टर रखा जाय जिसमें इनको अंकित करते रहना चाहिए ।

प्रयोग व प्रोजेक्ट कैसे हों—(१) कुछ ऐसे हों जिनसे मनोरंजन हो सके, (२) कुछ ऐसे हों जिनसे मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो, (३) कुछ ऐसे हों जिनसे मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन आकर्षक व मनोरंजक ढंग से हो सके, (४) कुछ ऐसे हों जिनमें दैनिक काम की वस्तुओं से सस्ती व सुलभ वस्तुओं से काम-चलाऊ सुन्दर उपकरण बन सकें जो, कीमती उपकरणों का स्थान ले सकें ।

प्रयोग व प्रोजेक्टों की तैयारी

प्रयोग व प्रोजेक्ट चुनने के बाद उसकी तैयारी होनी चाहिए । बढ़ई व लोहारी के साधारण औजारों का स्कूल में होना बहुत लाभदायक सिद्ध होता है ।

कुछ प्रयोग व प्रोजेक्ट ऐसे होंगे कि अध्यापक का उनके बारे में सब बातें छात्र को बतलाना पर्याप्त होगा ।

कुछ प्रयोग व प्रोजेक्ट ऐसे होते हैं कि अध्यापक उनको अपनी निगरानी में छात्रों से करवायें ।

कुछ प्रयोग व प्रोजेक्ट ऐसे होते हैं कि अध्यापक को उनको स्वयं ही छात्रों के सामने तैयार करना चाहिए ।

छात्रों की तैयारी

विज्ञान प्रदर्शनी में छात्रों को क्या-क्या काम करना है इसकी एक तालिका बना लेनी चाहिए—(१) प्रदर्शनी हो रही है इसका प्रचार, (२) प्रदर्शनी के निमन्त्रण-पत्र बाँटना, (३) प्रदर्शनी-स्थल में लोगों का मार्ग-दर्शन करना, (४) प्रदर्शित सामग्री व उपकरणों की क्रियाओं को करना व उनको समझाना, (५) प्रदर्शनी में प्रदर्शनी पुस्तिका, परिपत्र आदि का बाँटना अथवा बेचना और (६) प्रदर्शनी-उद्घाटन का प्रबन्ध।

१ प्रचार—आजकल के युग में छोटे बड़े सभी कामों के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा-क्षेत्र में प्राय कार्य कम होता है, लेकिन हम उस काम को जनता और सम्बन्धित व्यक्तियों के सामने नहीं ला पाते, क्योंकि हम समुचित प्रचार की ओर कभी ध्यान नहीं देते। हम भूल जाते हैं कि एक नवीन विचार-धारा अथवा सर्व उपयोगी कार्यक्रम को इससे बहुत बल मिलता है कि वह विचार-धारा स्थान-स्थान पर अपनायी जाय अथवा उस उपयोगी कार्यक्रम का एक जाल-सा दूर-दूर तक फैल जाय। इसलिए इस समय जब कि हम विज्ञान प्रदर्शनी कार्यक्रम को फैलाना चाहते हैं तो प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रचार-कार्य में कुछ बातों का ध्यान रखना उपयोगी सिद्ध होता है, जैसे—

- विज्ञान-प्रदर्शनी की तारीखें और स्थान का चुनाव कम-से-कम दो माह पूर्व हो जाना चाहिए और सम्बन्धित स्कूलों को उसकी सूचना भेज देनी चाहिए ताकि वे तैयारी कर सकें।
- प्रदर्शनी सम्बन्धी सब बातें स्पष्ट रूप से लिखकर विद्यालयों को भेजी जानी चाहिएँ।
- कितने इनाम दिये जायेंगे और वे किस किस प्रकार के सामान, उपकरण और प्रयोगों पर, यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए।
- उन विद्यालयों को क्या-क्या सुविधाएँ दी जायेंगी इसका भी उल्लेख होना आवश्यक है।
- स्थानीय समाचार-पत्रों में और विज्ञापन-बोर्डों पर विज्ञप्ति प्रदर्शित की जानी चाहिए।
- माइक-द्वारा ताँगे या कार या जीप में बैठकर सारे शहर में प्रदर्शनी की घोषणा की जाय।

२ निमन्त्रण-पत्र—स्थानीय अथवा अन्य संस्थाओं व व्यक्तियों को निमन्त्रण पत्र भेजने चाहिएँ। सूची बनाने का काम ऐसे दो-तीन व्यक्तियों को सौंपना चाहिए जिनको संस्थाओं और व्यक्तियों की पूरी जानकारी हो। स्थानीय लोगों को निमन्त्रण-पत्र छात्रों द्वारा बहुत आसानी से बँटवाये जा सकते हैं, बाहर के पत्र डाक से भेजे जा सकते हैं।

३ मार्ग-दर्शन—प्रदर्शनी स्थल में दर्शकों की सुविधा के लिए कहीं पर दरवाजे बनाने आवश्यक हो सकते हैं, रस्सी बाँधने की जरूरत पड़ सकती है, रास्ता बताते हुए संकेत-पट्टियों की भी आवश्यकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ छात्रों को स्थान-स्थान पर तैनात करना चाहिए जिससे दर्शकों को सुविधा रहे।

४ समझाना—प्रदर्शनी चाहे जितनी अच्छी हो, यदि छात्रों की तैयारी में इस दिशा में चूक हो गयी है तो प्रदर्शनी का सारा मजा किरकिरा हो जायगा और उपयोगिता समाप्त सी हो जायगी। जो छात्र प्रदर्शित सामग्री व उपकरण की क्रियाओं को करेगा व समझायेगा, उसको केवल सामग्री व उपकरण की ही पूरी जानकारी नहीं होनी चाहिए बल्कि उसके पीछे जो वैज्ञानिक तथ्य तथा सिद्धान्त हैं उनकी भी कामचलाऊ जानकारी तो अवश्य होनी चाहिए। कभी कभी हम यह मानकर चलने लगते हैं कि यदि प्रयोग ठीक प्रकार लग गया है, सामग्री व उपकरण ठीक बन गये हैं तो छात्र उसको अच्छी प्रकार समझा सकेगा। यह ठीक नहीं। इसके लिए कई बार पूर्व अभ्यास की आवश्यकता है। छात्र क्या कहे इसके साथ यह भी आवश्यक है कि वह कैसे कहे। कुछ प्रयोगों में प्रयोग के साथ अथवा प्रयोग से पहले एक मनोरंजक और आकर्षक कहानी का सुनाना लाभदायक सिद्ध होता है। दृष्टान्त के लिए मान लें प्रयोग है मोमबत्ती का खाना। यह प्रयोग बिना कहानी के कुछ भी आकर्षण नहीं रखता। छात्र कह सकता है, "महिलाओ और सज्जनो, मैं आपका ध्यान एक अनोखी वैज्ञानिक खोज की ओर दिलाना चाहता हूँ। मेरा एक मित्र कुछ दिन हुए अफ्रीका गया, उसको वहाँ के जंगलों में कुछ खोज

करनी थी। उन जंगलो में खाने की वस्तुओं की बहुत कमी थी। कुछ दिनो तो वह बहुत परेशान रहा। फिर उसने एक नयी प्रकार की मोमबत्ती का आविष्कार किया। ये मोमबत्तियाँ रात को रोशनी का काम देती थीं और दिन में आवश्यकता पड़ने पर खायी भी जा सकती थी। उन मोमबत्तियों में से एक मोमबत्ती मेरे हाथ भी लग गयी है। (मोमबत्ती जलायी जाती है) देखिए मोमबत्ती जल रही है, यह मोमबत्ती का रात्रि का काम है, अब मैं उसको खाकर दिखलाता हूँ (मोमबत्ती बुझाकर छात्र उसे खा जाता है)।"

दूसरा 'दृष्टान्त —प्रयोग है आक्सीजन और कार्बन-डाइ आक्साइड के मोमबत्ती को जलाने और बुझाने के गुण—छात्र कह सकता है, "महिलाओ और सज्जनो, पुरातनकाल से देव और असुर, देव और शैतान का संघर्ष चल रहा है। जो देवता करते हैं शैतान उसको नष्ट करने की चेष्टा करता है। देखिए इस मोमबत्ती को मैंने बुझा दिया है। अब देवता की कृपा से यह जीवित हो जाती है (आक्सीजन की जेट के पास लाते ही लौ जल उठती है)। लेकिन शैतान को यह बरदाश्त नही वह इसका उलटा कर देता है (कार्बनडाइ आक्साइड की जेट के पास लाते ही लौ बुझ जाती है)। अब देवता इसमें फिर जान डाल देते है।".

प्रत्येक प्रयोग व उपकरण के प्रदर्शित करने व समझाने के लिए छात्र को क्या कहना चाहिए इसके लिए विज्ञान शिक्षक को छात्र की पूरी सहायता करनी चाहिए फिर उसका कई बार पूर्व अभ्यास भी करा लेना चाहिए।●

भरोसा किसका ?

गांधीजी एक छोटे-से गाँव में ठहरे हुए थे। एक रोज, सुबह होते ही गांधीजी ने देखा कि गाँववालों का दल गाते-बजाते उनकी कुटिया की ओर चला आ रहा है। कुछ लोगों के हाथों में फल फूल थे, तो कुछ लोगों के हाथों में जल के कलश। गांधीजी ने समझा कि ये लोग पास के किसी मन्दिर में पूजा करने जा रहे है।

लेकिन थोड़ी ही देर में पूरे दलबल के साथ गाँववाले गांधीजी की कुटिया पर आ धमके। उनको बड़ा अचरज हुआ।

गांधीजी ने अपनी यात्रा में, धूमधाम की मनाही कर दी थी। लेकिन गाँववाले गांधीजी को भेंट करने के लिए पूजा का बहुत सा कीमती सामान और रुपये लाये थे। उन्होंने सारा सामान गांधीजी के चरणों पर डाल दिया।

गाँववालों में से एक बूढ़े आदमी ने कहा, "महात्माजी आप तो ईश्वर हैं। भगवान के अवतार है। इसलिए हम आपकी पूजा करने आये हैं। हमारे गाँव में पिछले पाँच साल से वर्षा नहीं हुई थी। कुएँ सूख गये थे। लेकिन हमारे गाँव में आप के पाँव पड़ते ही कुओं में जल भर आया है। यह आप के चरणों की धूलि का प्रभाव है।"

गांधीजी के मन में गाँववालो की श्रद्धा और प्रेम का आदर था। भेंट तो उन्होंने स्वीकार की, लेकिन साथ ही गाँववालो को समझाया—'मेरे यहाँ आने से कुओं में पानी आ गया है, यह तो दैवी-संयोग की बात है। सामने जो ताड़ का पेड़ है, उसे आपलोग देख रहे हो न ? यदि उस पर एक कौआ आकर बैठ जाय, और उसके बैठने के कुछ ही पल बाद ताड़ का वह पेड़ गिर पड़े तो क्या आप लोग मानोगे कि कौए के बैठने से ताड़ का पेड़ गिर गया ? ठीक यही बात यहाँ हुई है। आपलोगों के कुएँ में पानी आ गया, यह दैवयोग की बात है।'

—अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

मौजूदा अराजक परिस्थिति में हम क्या करें ?

●

श्री धीरेन्द्र मजूमदार

प्रश्न —देश में हड़तालों, उपद्रवों, प्रदर्शनों का सिलसिला जोरों से बढ़ रहा है। प्राय: हररोज किसी न किसी छोटी-बड़ी बात को लेकर जुलूस निकलते हैं, तोड़-फोड़ की कार्यवाई होती है, और पुलिस-द्वारा स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए अश्रुगैस, लाठीचार्ज, गोलीबारी का क्रम चलता है। इस प्रकार की कार्यवाइयों के पीछे मुख्य रूप से शहरी मध्यम वर्ग के पढ़े लिखे और समझदार कहे जानेवाले लोगों का हाथ होता है। सरकार-द्वारा स्थिति को सँभालने के जो प्रयास होते हैं, वे भी अक्सर उत्तेजना को बढ़ानेवाले होते हैं। दोनो प्रकार की कार्यवाईयों से जो अशान्ति, अव्यवस्था पैदा होती है, उससे आम जनता परेशान होती है। गाँवों के काम करनेवाले कार्यकर्ता इस स्थिति से मुक्ति पाने के लिए जनता को क्या उपाय बताएं ?

उत्तर इस प्रसंग पर कार्यकर्ताओं की स्थिति कठिन है। क्योंकि ये सारे उपद्रव जो आज दिखाई दे रहे हैं, वे समाज के एक मूलरोग की अभिव्यक्ति मात्र हैं। हर रोग का लक्षण रोग की वृद्धि के साथ-साथ अधिक तेजी से सामने आता है। समाज में उत्पादक-वर्ग तथा व्यवस्थापक और सेवक-वर्ग के रूप में जो वर्ग विभाजन प्राचीन काल से चला आ रहा है उसके कारण एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण की परिस्थिति बनी रहती है आज उसकी पराकाष्ठा का दर्शन हो रहा है। आपने जिस स्थिति का बयान किया है उसका निराकरण तो वर्गभेद के निराकरण के बिना नहीं हो सकता। आखिर ये उपद्रव मचानेवाले कौन हैं ? आप ही कह रहे हैं कि ये सब पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के लोग हैं। ये सब तो वे ही हैं, जिन्हें अनुत्पादक उपभोक्ता-वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं। आप थोड़ी देर के लिए इनकी माँगों का विश्लेषण करें तो स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

जितने लोग वेतन वृद्धि के लिए तोड़ फोड़ के साथ आन्दोलन चला रहे हैं, वे सबके सब समाज की सामान्य जन की आमदनी से १०-२०-२५–१००-५०० गुना ज्यादा पाते हैं और इससे भी अधिक माँगते हैं। साथ ही-साथ उनकी यह भी माँग है कि अनाज तथा दूसरे उपभोग्य सामग्रियों की कीमत घटे। अर्थात उत्पादक वर्ग की आमदनी कम हो। इसे शुद्ध निलज्ज स्वार्थ की अभिव्यक्ति न कहें तो क्या कहें ? कार्यकर्ता के सामने दिक्कत यह है कि जनता चाहती है—कि 'वर्तमान समाज-पद्धति के अन्दर ही मुक्ति का मार्ग बताया जाए।' अर्थात जनता कार्यकर्ता से पूछती है कि हम अपने गाँव के तालाब में आग लगाना चाहते हैं उपाय बताइए। उसका उत्तर तो यही होगा कि आप तालाब को सुखा डालिए, फिर उसके अन्दर की सूखी हुई वनस्पति में आग लगा दीजिए।

अगर आज जनता इस परिस्थिति से मुक्त होना चाहती है तो समाज की प्रचलित दूषित पद्धति को सुखा डालना पड़ेगा। फिर नये समाज को नये ढंग से बनाना

पडेगा। सेवक और व्यवस्थापक रूपी मेहरबानों को अस्वीकार करना होगा और अपने सामूहिक चिन्तन, सामूहिक-निर्णय, सामूहिक सकल्प तथा सामूहिक-पुरुषार्थ से स्वावलम्बी समाज कायम करना होगा।

जनता को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि देश में तोड फोड आदि के रूप में अशान्ति उमड रही है, यह सब उन्हीं का शोषण तथा उन्हीं पर दमन के लिए अवसर प्राप्त करनेवालों की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता का कारण है। वह पट्टीदारी की लड़ाई है। आज जनता की सेवा तथा भलाई करनेवाले एक दूसरे से लड़कर जनता को बताना चाहते हैं कि वे उनकी भलाई करने के लिए अधिक समर्थ हैं। जनता भी इनके-उनके भुलावे में आ जाती है, और उनमें से किसी एक को अपनी भलाई करनेवाली मान बैठती है। मुझे आश्चर्य इस बात का होता है कि जो जनता कार्यकर्ताओं से इतनी विविध प्रकार की चर्चाएँ करती है इतने प्रश्न पूछती है, वह इन भलाई करनेवाले पट्टीदारों से क्या नहीं पूछती है— 'भाई, आप सभी हमारी भलाई करने के लिए इतने व्याकुल हैं, तो सब मिलकर अधिक भलाई क्यों नहीं करते हैं? लड़ते क्यों हैं?'

समाज की दूषित पद्धति काफी पुरानी है। लेकिन पहले इतनी अशान्ति नहीं होती थी। उसका एक विशेष कारण है। वह यह कि पहले समाज में करीब करीब सब लोग उत्पादन का काम करते थे, और कुछ थोड़े लोग सेवा तथा व्यवस्था का काम करते थे। वैसी परिस्थिति में सभी को शोषण का हिस्सा ठीक-ठीक मिल जाता था। लेकिन समाजवाद तथा पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ सेवकों और व्यवस्थापकों की सख्या बढ़ती गयी है। इसके उपरान्त वर्तमान शिक्षा पद्धति के प्रभाव के फलस्वरूप उत्पादन-कार्य से अनभ्यस्त तथा अशक्त और शोषण-द्वारा जीविका चलाने के आकांक्षी शिक्षित मनुष्यों की सख्या बेहद बढ़ गयी है। इसलिए उस क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता आज अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है। आज जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब इसी प्रतिद्वन्द्विता की परिणति-मात्र है।

अतएव कार्यकर्ताओं को आज दोनों फ्रण्ट पर काम करना होगा। सेवक और व्यवस्थापक वर्ग के लोगों को समझाना होगा कि हर चीज की एक आयु होती है, एक हद होती है, अनुत्पादक उपभोक्ता का जमाना अब समाप्त हो रहा है। अब सबको शरीर-श्रम से उत्पादन करना होगा और सबका शिक्षित तथा बुद्धिमान बनना होगा। रोटी के लिए बुद्धिपूर्वक वैज्ञानिक श्रम करना होगा, केवल बुद्धि और लोकसेवा अब गुजारे का माध्यम तथा पेशा न बनकर आत्म विकास की शक्ति और आधार होंगे। उत्पादक जनता को समझाना होगा कि अब तक आपने अपने आत्मविकास के लिए अपने ऊपर भरोसा नहीं किया, जिसके कारण आप शोषित एव निर्दलित होते रहे हैं। आपने हमेशा यही अपेक्षा रखी कि कोई दूसरा आपको अपने कन्धे पर बैठाकर वैतरणी पार करा दे। राजा और सामन्तों से समाधान नहीं हुआ, तो नेताओं पर भरोसा किया, फिर भी आपकी दुर्दशा का अन्त नहीं हुआ, बल्कि उसमें इजाफा ही हुआ। अब आप कोई दूसरे लोकसेवक की तलाश में हैं, जिसकी पँछ पकड़कर पार उतर सकें। लेकिन स्पष्ट रूप से समझना होगा कि जिसका भी सहारा लेंगे, उस सहारे की फीस चुकाने में ही आप कगाल बन जायेंगे। इसलिए अब आपको स्वराज्य की स्थापना करनी होगी, यानी आपको अपने भरोसे अपना विकास करना होगा।

कार्यकर्ताओं को समझ लेना चाहिए कि इस परिस्थिति में ग्रामस्वराज्य और ग्रामदान-आन्दोलन की तीव्रता ही वर्तमान परिस्थिति से मुक्ति का एकमात्र मार्ग है और सबको एकाग्रता के साथ उसी में लगना चाहिए।●

शिक्षक-प्रशिक्षक महाविद्यालय, कुण्डेश्वर : एक झांकी

•

अनिकेत

'परम आजादी की शिक्षा पाते हैं हम यहां।' बात चीत के सिलसिले में एक युवक प्रशिक्षार्थी ने उमंगभरी मुस्कराहट के साथ कहा।

'परन्तु स्वतन्त्र न सिर पर काहू।' मेरे मित्र ने हल्के व्यंग्य के साथ विनोद किया।

नहीं भाई साहब मेरे कहने का मतलब यह थोड़े ही था।' व्यंग्य सुनकर युवक के चेहरे पर हलके दुःख की परछाई दिखी।

'नहीं भाई बुरा न मानना। मेरे मित्र का आशय था कि आपलोग जो सुबह से शाम तक काम में जुटे रहते हैं उसमें आपके शिक्षक लोगों का मार्गदर्शन और प्रत्यक्ष सहयोग भी मिलता है पर ।'

'हमें हर काम करने की पूरी दीक्षा मिलती है साहब, झाड़ू लगाने से लेकर लिखने-पढ़ने तक की। खुद हमारे प्रिंसिपल साहब (श्री प्रेमनारायण हसिया) हमारे साथ काम करते हैं।' व्याघात पर प्रलेप करनेवाली मेरी बात को बीच में काटते हुए युवक ने कहा।

छात्रों के तनावपूर्ण सम्बन्धों, संघर्षों और प्रदर्शनों के कारण ऊबे और कुछ हद तक दुःखी मन को कुण्डेश्वर आकर बहुत राहत मिली। रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह देशभर में शायद बहुत थोड़े गिने-चुने शिक्षण-केन्द्र होंगे, जहां छात्रों और शिक्षण-संस्थाओं के सम्बन्ध तनावपूर्ण नहीं स्नेहपूर्ण होंगे। यहां के वातावरण में शिक्षार्थी, शिक्षक और शिक्षण-केन्द्रों के सम्बन्धों का जो माधुर्य है उसके साथ कुछ क्षणों का सामीप्य भी कुण्डेश्वरस्थित इस प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्रति मन में मोह पैदा कर देता है।

यहां की प्रकृति शान्त है। मशीनी युग की अन्धी गति का एक बहुत ही हल्का झोंका बीच-बीच में, सड़क से गुजरनेवाली बसें या कारें लेकर आती हैं और लिये ही चली जाती हैं। फिर सब कुछ निस्तब्ध रह जाता है। यमचला जमडार नदी और उसके किनारे का नीरव अरण्य न जाने कैसा विराग बनकर मन में पैठता है, और फिर अपने प्रति एक मोहक यादगार-सी छोड़ देता है।

प्राचीनता की यादगार

सच ही यह स्थल तपस्वियों के विराग के प्यार के लायक है।

१८ अक्तूबर'३७ को सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रकार और वृद्ध-कुद्ध राजनीतिक श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने कुण्डेश्वर को अपना आवास स्थल बनाया। साहित्यिक सेवाओं से आगे बढ़कर समाज की रचनात्मक प्रवृत्तियों तक श्री चतुर्वेदी जी की निगाह दौड़ी और निर्माण की बुनियाद बनाने के लिए १९५२ में बुनियादी तालीम का काम उन्होंने शुरू किया। आज मध्यप्रदेश की बुनियादी तालीम का काम करनेवाली संस्थाओं में कुण्डेश्वर का नाम अग्रणी है।

संस्थापक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजी के शब्दों में कुण्डेश्वर का यह महाविद्यालय चट्टान पर स्थित है और अपने इस छोटे-से जीवन में उसने कई तूफानों का सफलतापूर्वक मुकाबिला किया है और यह आशा है कि भविष्य में भी वह दृढ़तापूर्वक ऐसा करता रहेगा। प्रिंसिपल श्री रूसियाजी ने हमलोगों के आग्रह पर अपने जो संस्मरण सुनाये उसे सुनकर हम विद्यालय के इतिहास की ज्वार भाटे-सी कहानी अब भी आँखों के सामने नाचने लगती है।

छोटी छोटी उम्र की लम्बी कहानियों के साथ १२०० से अधिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का जीवित सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इन कहानियों ने इस महा

आदर्श विद्यालय का वन

विद्यालय का इतिहास बनाया है और आज भी उस इतिहास में नित नये अध्याय जुड़ते जा रहे हैं।

यों तो यहां की मुख्य प्रवृत्ति है म० प्र० सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा संचालित बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय का द्विवर्षीय पाठ्यक्रम। लेकिन सरकार द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों की जड़ता यहां ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी। प्रकृति का प्रत्यक्ष सान्निध्य कृषि गोपालन और विविध उत्पादन की प्रवृत्तियां १०-१२ मील तक फैले गांव का मुख्यतः शैक्षिक समस्याओं से अनुबंध प्रशिक्षण विद्यालय के पाठ्यक्रम को नित्य नूतनता प्रदान करते हैं।

प्रशिक्षण विद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था प्रशिक्षणार्थियों की समितियां करती हैं बोझरूप में नहीं शैक्षिक भूमिका में पूरी उमंग के साथ। नौकर मालिक का सम्बन्ध अहाते के किसी कोने में दिखाई नहीं देगा। दैनिक जीवन के आवश्यक कार्य प्राध्यापक प्रशिक्षक मिल जुलकर कर लेते हैं। यद्यपि नया सत्र शुरू होने पर शुरू में एक दो महीने तक सफेदपोशी की तालीम पाये हुए प्रशिक्षणार्थियों का अपना हर काम (टट्टी सफाई से लेकर भोजन पकाने तक) खुद करने में बहुत हिचक होती है परेशानी और चिढ़ होती है लेकिन प्राध्यापकों का सौहार्दपूर्ण सहयोग और विद्यालय का वातावरण उन्हें नये जीवन की ओर बढ़ने को प्रोत्साहित करते हैं और तीसरे महीने तक तो उन्हें अपने स्वावलम्बी जीवन के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। इस जीवन के प्रति उनके लगाव की पराकाष्ठा देखनी हो तो कोई इनका सत्रान्त समारोह देखने आये। बच्चों सा फूट फूट कर रोते हैं यह तरुण प्रशिक्षणार्थी!

इतना भावपूर्ण सम्बन्ध आपलोगों का प्रशिक्षणार्थियों के साथ जुड़ता है और दो साल के बाद टूट जाता है। क्या दो साल की इस जोड़तोड़ से आगे कुछ सम्बन्धों के स्थायित्व के बारे में आपलोग नहीं सोचते? शिक्षण की दृष्टि से यदि क्षेत्र में स्कूल चलानेवाले इन प्रशिक्षित शिक्षकों के साथ का आपका स्थायी सम्बन्ध अगर किसी रूप में जुड़ा रह सके तो बहुत उपयोगी होगा। क्या आप लोग इस दिशा में ।

है न। प्रिंसिपल महोदय ने मेरा आशय समझकर

बीच में ही बात काटते हुए कहा, "सात जिलों में हमारे यहाँ के प्रशिक्षित विद्यार्थी शिक्षण का काम कर रहे हैं। औसत लगभग ३० पत्र उनके रोज आते हैं। साल में एक बार तो उनकी हमारी मुलाकात हो ही जाती है। या तो वे हमारे यहाँ आते हैं, या हमारे यहाँ से कोई उनके यहाँ जाता है। उनकी हर प्रकार की समस्याओं की जानकारी उनके पत्रों-द्वारा हमें मिलती रहती है और यथासम्भव उनकी मदद करते हैं। इस पत्र-व्यवहार का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हम शिक्षण के काम में शिक्षकों के सामने आनेवाली अगणित समस्याओं के अनुबन्ध में प्रशिक्षण दे पाते हैं। मुख्य-मुख्य और समान रूप से सबके सामने आनेवाले शैक्षिक समस्याओं के समाधानार्थ हम न्यूजलेटर छपवाकर सबके पास भेजते हैं।"

"तब तो बहुत अच्छी बात है। क्या शिक्षकों के अलावा आसपास के गाँवों से भी आपकी संस्था का सम्बन्ध है?"

"अजी साहब, आप कभी हमारे यहाँ आइए जब हमारा त्यौहार होता है मटकी फोड़ने का। हम गाँव में जाते हैं, गाँववाले हमारे यहाँ आते हैं, उस समय का 'बाधार' लोकनृत्य देखकर आप झूम उठेंगे। और साहब, हमलोग शिक्षण का काम करते हैं तो लोकजीवन के निकट जाने का सांस्कृतिक माध्यम हमारे लिए सहज होता है। लेकिन आत्मीयता बढ़ी है, तो धीरे-धीरे ग्रामीण जीवन की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से भी हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क आता ही रहता है। और, आज इस क्षेत्र के लोकजीवन में विद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है। लोग हमसे अपनी उलझनें खुलकर कहते हैं, और हम भरसक उन्हें समाधान सुझाते हैं।" मेरे प्रश्न के उत्तर में प्रिंसिपल साहब ने सोत्साह बताया।

हमने टीकमगढ़ के कुछ पूर्व बुनियादी और बुनियादी विद्यालयों में जाकर उनकी शिक्षण-व्यवस्था और अभ्यासक्रम को भी देखा। कुण्डेश्वर विद्यालय की प्रसारसेवा से

बच्चों की संसद का दृश्य

इन विद्यालयों को पर्याप्त मार्गदर्शन मिलता है। पाठ्यक्रम और अनुबन्ध की दृष्टि से समानरूपता की ओर सहज खिंच जाना, नित्य नयी तालीम के विचार के लिए एक जबरदस्त चुनौती है। यह चुनौती हमें यहाँ भी झलकती हुई दिखाई दी। किसी प्रकार का बाहरी ढाँचा विद्यार्थी पर न लदे और उसकी आन्तरिक चेतना निरन्तर प्रखर होती जाय, इस बात की सतर्कता समवाय-पाठ तैयार करते समय रखनी चाहिए। आशा है कुण्डेश्वर-विद्यालय की ओर से इस दिशा की कोई नयी चीज भी प्रकाश में आयगी।

निःसन्देह कुण्डेश्वर एक जड़ संस्था नहीं, सक्रिय सम्बन्धों पर निर्मित बुनियादी शिक्षण की एक जागृत प्रयोगशाला है, और उस प्रयोगशाला से शिक्षण में, खासकर बुनियादी शिक्षण में रुचि रखनेवालों को बड़ी उम्मीदें हैं। ●

विकसित राष्ट्रों में सम्पन्नता, विज्ञान और तकनीकी-प्रगति ने कई समस्याएँ खड़ी कर दी हैं। हमारे राष्ट्र में विषमता और विपन्नता की समस्याएँ हैं। जहाँतक विज्ञान और तकनीकी ज्ञान का प्रश्न है, उन्होंने यहाँ बहुत-सी समस्याएँ खड़ी कर दी हैं पर उनसे अधिक समस्याएँ जीवन में दूसरी सभ्यताओं से उधार लिये गये जीवन के तौर-तरीकों ने उत्पन्न कर दी हैं, जिन्हें हमने तकनीकी दृष्टि से प्रगतिशील देशों से ली है। इससे पीढ़ियों की दूरी बढ़ी है। इस प्रकार टूटी हुई कड़ियाँ विभिन्न कारणों से पैदा हुई हैं, जिनमें परम्परागत जीवन के मूल्य, पारिवारिक नियंत्रण और सामुदायिक जीवन ने ऐसे जगत का निर्माण किया जिसमें आज का युवक पूर्णतया खो गया है और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है। —जयप्रकाश नारायण

बुनियादी महाविद्यालय का सामुदायिक शिविर

सामुदायिक कार्य बेसिक शिक्षा का अभिन्न अंग है। सामुदायिक कार्य का लक्ष्य छात्रों को स्थानीय समुदाय के जीवन से परिचित कराना तथा उनके कार्य-कलापों में सम्मिलित होकर पाठशाला और समुदाय को एक दूसरे के निकट लाना है। इसी लक्ष्य को लेकर प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में सामुदायिक कार्य को अनिवार्य रूप से रखा गया है। इस कार्य के अन्तर्गत प्रशिक्षण-विद्यालयों के सत्र में १५ दिन का शिविर ग्रामीण क्षेत्रों में आयोजित किया जाता है।

इस वर्ष राजकीय बुनियादी प्रशिक्षण-विद्यालय, वाराणसी का सामुदायिक शिविर सारनाथ में १९ नवम्बर से ३० नवम्बर तक सम्पन्न हुआ। शिविर में भाग लेनेवालों की कुल संख्या १३० थी—११४ छात्राध्यापक और १६ प्राध्यापक। दैनिक कार्यक्रम प्रार्थना, सूत्र यज्ञ, स्वल्पाहार, सफाई, रचनात्मक कार्य, भोजन, विश्राम, खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्य रहता था। छात्राध्यापक ५ दलों में विभक्त थे। हर दल के साथ तीन प्राध्यापक मार्गदर्शन के लिए थे। शिविर की सारी व्यवस्था प्राध्यापकों के पथ प्रदर्शन में छात्राध्यापक स्वयं करते थे। प्रतिदिन एक दल बारी-बारी से भोजन बनाता था। शेष दल रचनात्मक कार्य के लिए प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक गाँव में जाता था। इस वर्ष २.५ किलोमीटर सड़क का निर्माण किया गया, जिसके द्वारा सदहा गाँव का सारनाथ स्टेशन से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। सदहा वाराणसी-गाजीपुर मार्ग पर स्थित है। सड़क बनने के पूर्व यहाँ के ग्रामवासियों को सारनाथ स्टेशन आने के लिए ८ किलो मीटर का चक्कर लगाना पड़ता था। यह इस क्षेत्र में जन-कल्याण का अपूर्व कार्य हुआ है और ग्रामनिवासियों को इस योजना से बहुत लाभ होगा।

सड़क बनाने का काम गत वर्ष ही प्रारम्भ किया गया था। चिरईगाँव विकास प्रखण्ड के बी० डी० ओ०-प्रखण्ड प्रमुख तथा सदहा ग्राम के सभापति के विचार-विमर्श के पश्चात् इस योजना को लिया गया। जैसा अधिकांश योजनाओं के आरम्भ में होता है, सभी को यह काम कठिन जान पड़ा। आरम्भ में इसका सम्पन्न होना असम्भव ज्ञात होता था। बी० डी० ओ० ने तो अपने इस विचार को व्यक्त भी किया था। परन्तु आज सड़क का निर्माण हो जाने पर सभी प्रसन्न हैं, और इस कठिन काम को सफलतापूर्वक कर दिखाने के लिए विद्यालय के लोग बधाई और आशीर्वाद के हकदार हैं। गाँववालों के मानस-पटल पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस कार्य की गुरुता एवं महत्ता छात्रों के अदम्य उत्साह, परिश्रम एवं धैर्य का सही अनुमान वे ही लगा सकते हैं, जिन्होंने उस पगडण्डी को—जिसने अब सड़क का रूप धारण कर लिया है, पहले देखा हो और आज वहाँ जाने तथा देखने का कष्ट करें। सड़क, सारनाथ (स्टेशन के पास) वाराणसी-गाजीपुर वाली पक्की सड़क तक २.५ कि० मी० लम्बी तथा २४० से० मी० चौड़ी है। लगभग आधी सड़क को ९० से० मी० या कहीं-कहीं पर १२० से० मी० ऊँचा किया गया है।

समाज और शिक्षण-शालाओं का जागृत सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है, जब कि स्थानीय समस्याओं के साथ छात्राध्यापकों का निकटतम लगाव हो। तभी शिक्षण को, समुदाय के लिए सर्वथा उपयोगी बनाने की, सही दिशा भी मिल सकेगी। इस दृष्टि से ऐसे आयोजन बहुत महत्वपूर्ण हैं। अगर इन कार्यक्रमों में छात्राध्यापकों की लगन और उमंग के साथ स्थानीय नागरिकों का भी पुरुषार्थ सक्रिय होने लगे, तो सोने में सुगन्ध आ जायगी। हमें आशा है कि राजकीय प्रशिक्षण विद्यालय-वाराणसी अपने सात इस दिशा में भी प्रयत्नशील होगा और अन्य शिक्षण-संस्थाओं को भी प्रेरित करेगा।

—प्रतिनिधि,
'नयी तालीम'

चार का आना : चार का जाना

●

राकेशकुमार

एक मनुष्य जंगल में जा रहा था। उसे चार स्त्रियाँ मिलीं। उसने पहली से पूछा—"बहिन! तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने कहा—"बुद्धि।"

"कहाँ रहती हो ?"

"मनुष्य के दिमाग में।"

दूसरी स्त्री से पूछा—"बहन तुम्हारा नाम क्या है ?"

"लज्जा।"

"तुम कहाँ रहती हो ?"

"आँख में।"

तीसरी से पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"हिम्मत।"

"कहाँ रहती हो ?"

"हृदय में।"

चौथी से पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"तन्दुरुस्ती।"

"कहाँ रहती हो ?"

"पेट में।"

वह मनुष्य थोड़ा आगे बढ़ा। उसे चार पुरुष मिले। उसने पहले पुरुष से पूछा—"भाई! तुम्हारा क्या नाम है ?"

"क्रोध।"

"कहाँ रहते हो ?"

"दिमाग में।"

"दिमाग में बुद्धि रहती है, तुम कैसे रहते हो ?"

"जब मैं आता हूँ तब बुद्धि वहाँ से विदा हो जाती है।"

दूसरे पुरुष से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"लोभ।"

"कहाँ रहते हो ?"

"आँख में।"

"आँख में लज्जा रहती है, तुम कैसे रहते हो ?"

"जब मैं आता हूँ, तब लज्जा वहाँ से प्रस्थान कर देती है।"

तीसरे से पूछा—"भाई! तुम्हारा क्या नाम है ?"

"भय।"

"कहाँ रहते हो ?"

"हृदय में।"

"हृदय में हिम्मत रहती है, तुम कैसे रहते हो ?"

"जब मैं आता हूँ तब हिम्मत वहाँ से नौ दो ग्यारह हो जाती है।"

चौथे से पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"रोग।"

"कहाँ रहते हो ?"

"पेट में।"

"पेट में तन्दुरुस्ती रहती है, तुम कैसे रहते हो ?"

"जब मैं आता हूँ, तब तन्दुरुस्ती वहाँ से रवाना हो जाती है।" ●

बुनियादी महाविद्यालय का सामुदायिक शिविर

सामुदायिक कार्य बेसिक शिक्षा का अभिन्न अंग है। सामुदायिक कार्य का लक्ष्य छात्रों को स्थानीय समुदाय के जीवन से परिचित कराना तथा उनके कार्य-कलापों में सम्मिलित होकर पाठशाला और समुदाय को एक दूसरे के निकट लाना है। इसी लक्ष्य को लेकर प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रम में सामुदायिक कार्य को अनिवार्य रूप से रखा गया है। इस कार्य के अन्तर्गत प्रशिक्षण-विद्यालयों के सत्र में १५ दिन का शिविर ग्रामीण क्षेत्रों में आयोजित किया जाता है।

इस वर्ष राजकीय बुनियादी प्रशिक्षण-विद्यालय, वाराणसी का सामुदायिक शिविर सारनाथ में १९ नवम्बर से ३० नवम्बर तक सम्पन्न हुआ। शिविर में भाग लेनेवालों की कुल संख्या १३० थी—११४ छात्राध्यापक और १६ प्राध्यापक। दैनिक कार्यक्रम प्रार्थना, सूत्र यज्ञ, स्वल्पाहार, सफाई, रचनात्मक कार्य, भोजन, विश्राम, खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्य रहता था। छात्राध्यापक ५ दलों में विभक्त थे। हर दल के साथ तीन प्राध्यापक मार्गदर्शन के लिए थे। शिविर की सारी व्यवस्था प्राध्यापकों के पथ प्रदर्शन में छात्राध्यापक स्वयं करते थे। प्रतिदिन एक दल बारी-बारी से भोजन बनाता था। शेष दल रचनात्मक कार्य के लिए प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक गाँव में जाता था। इस वर्ष २.५ किलोमीटर सड़क का निर्माण किया गया, जिसके द्वारा सदहा गाँव का सारनाथ स्टेशन से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। सदहा वाराणसी-गाजीपुर मार्ग पर स्थित है। सड़क बनने के पूर्व यहाँ के ग्रामवासियों को सारनाथ स्टेशन आने के लिए ८ किलो मीटर का चक्कर लगाना पड़ता था। यह इस क्षेत्र में जन-कल्याण का अपूर्व कार्य हुआ है और ग्रामनिवासियों को इस योजना से बहुत लाभ होगा।

सड़क बनाने का काम गत वर्ष ही प्रारम्भ किया गया था। चिरईगाँव विकास प्रखण्ड के बी० डी० ओ०-प्रखण्ड प्रमुख तथा सदहा ग्राम के सभापति के विचार-विमर्श के पश्चात् इस योजना को लिया गया। जैसा अधिकांश योजनाओं के आरम्भ में होता है, सभी को यह काम कठिन जान पड़ा। प्रारम्भ में इसका सम्पन्न होना असम्भव ज्ञात होता था। बी० डी० ओ० ने तो अपने इस विचार को व्यक्त भी किया था। परन्तु आज सड़क का निर्माण हो जाने पर सभी प्रसन्न हैं, और इस कठिन काम को सफलतापूर्वक कर दिखाने के लिए विद्यालय के लोग बधाई और आशीर्वाद के हकदार हैं। गाँववालों के मानस-पटल पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस कार्य की गुरुता एवं महत्ता छात्रों के अदम्य उत्साह, परिश्रम एवं धैर्य का सही अनुमान वे ही लगा सकते हैं, जिन्होंने उस पगडण्डी को—जिसने अब सड़क का रूप धारण कर लिया है, पहले देखा हो और आज वहाँ जाने तथा देखने का कष्ट करें। सड़क, सारनाथ (स्टेशन के पास) वाराणसी–गाजीपुर वाली पक्की सड़क तक २.५ कि० मी० लम्बी तथा २४० से० मी० चौड़ी है। लगभग आधी सड़क को ९० से० मी० या कहीं-कहीं पर १२० से० मी० ऊँचा किया गया है।

समाज और शिक्षण-शालाओं का जागृत सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है, जब कि स्थानीय समस्याओं के साथ छात्राध्यापकों का निकटतम लगाव हो। तभी शिक्षण को, समुदाय के लिए सर्वथा उपयोगी बनाने की, सही दिशा भी मिल सकेगी। इस दृष्टि से ऐसे आयोजन बहुत महत्वपूर्ण हैं। अगर इन कार्यक्रमों में छात्राध्यापकों की लगन और उमंग के साथ स्थानीय नागरिकों का भी पुरुषार्थ सक्रिय होने लगे, तो सोने में सुगन्ध आ जायगी। हमें आशा है कि राजकीय प्रशिक्षण विद्यालय-वाराणसी अगले साल इस दिशा में भी प्रयत्नशील होगा और अन्य शिक्षण-संस्थाओं को भी प्रेरित करेगा।

—प्रतिनिधि,
'नयी तालीम'

शिक्षण और शान्ति

श्री जयप्रकाश नारायण

आज का मानव सच्चा मानव कैसे बने, उसके ज्ञान और विज्ञान का सामजस्य कैसे हो, इन प्रश्नो पर विचार करते हुए लेखक ने इस पुस्तक में देश के स्नातको से अनुरोध किया है कि वे शान्ति की समस्या को बौद्धिक और वैज्ञानिक स्तर पर हल करने के प्रयत्न में लगें। शान्ति, अहिंसा और मानवता की प्रेरणा देनेवाली यह पुस्तक लोक-शिक्षण के लिए उच्च कोटि की है। पृष्ठ–२७, मूल्य–५० पैसे

ग्रामसभा : स्वरूप और संगठन

रामचन्द्र राही

भूदान ग्रामदान होता हुआ प्रखण्डदान तक पहुँच गया है और इसके आगे के रास्ते भी दिखाई देने लगे है। अब जरूरत है कि बदले हुए सन्दर्भ में ग्रामसभाएँ तेजी के साथ संगठित हो और गाँव ग्रामस्वराज्य की यात्रा पर चल पड़ें। ग्रामसभा के स्वरूप तथा संगठन के बारे में इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा की गयी है। ग्रामसभा बनाने के पहले इस पुस्तक को पढ लेना आवश्यक है। कम से कम प्रत्येक ग्रामदानी गाँव में तो इसे पहुँचना ही चाहिए। पृष्ठ–३६, मूल्य–४० पैसे

जापान के कृषि-औजार

मोहन भाई परीख

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, परन्तु कृषि की उन्नति में वह बहुत पिछडा हुआ है। कृषि में जहाँ खाद, बीज, पानी का जितना महत्व है उतना ही महत्व औजारो का भी है। आज खेती के औजारो में बहुत सुधार हुए हैं पर उनका इस्तेमाल नही के बराबर है। वही पुराने औजार आज भी काम में लाये जाते हैं जिनसे बहुत कम काम हो पाता है। इस पुस्तक में आधुनिक औजारो की जानकारी दी गयी है। भारतवर्ष में करोड़ो किसान इस पुस्तक का लाभ उठा सकते हैं।

सचित्र पुस्तक का मूल्य–३·०० रुपये।

पाठको को सूचना

हमारे स्टाक में 'नयी तालीम' के कुछ पुराने अंक बचे हुए हैं। यदि पाठक चाहें तो प्रति अंक के लिए १० पैसे का डाक-टिकट भेजकर अंक प्राप्त कर सकते हैं। सिर्फ डाक-टिकट भेजकर एक साथ तीन अंक से अधिक नही मँगाये जा सकते।

वर्ष		अंक
१९६४	—	सितम्बर, नवम्बर
१९६५	—	अगस्त, अप्रैल, मई, सितम्बर
१९६६	—	अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

अनुक्रम

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

नयी तालीम
मार्च-१९६७
● इकाई - प्रणाली
● शिक्षा की खोखली नींवें
● शिक्षा-आयोग की भाषा-नीति
● शहर व देहात का बाल-शिक्षण
● क्या अब शिक्षा भी बदलेगी ?

नयी तालीम, फरवरी '६७

पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल, १७२३

चुनाव-कुण्डलियाँ

गद्दी की खातिर यहां, हुआ शुरू फिर जंग ।
पांच साल पर फिर मचा, यह चुनाव-हुडदंग ।
यह चुनाव-हुड़दंग, वोट सब मांग रहे हैं ।
जाति, धर्म, रिश्ते का झण्डा टाँग रहे हैं ।
इन पर जूते पड़ें, मिले या गाली भद्दी ।
पर जैसे तैसे इनको लेनी है गद्दी ।

पाँच साल के बाद फिर आया है संयोग ।
फिर चुनाव के पर्व पर दौड़े नेता लोग ।
दौड़ें नेता लोग हाथ जनता से जोड़ें ।
झूठे पर मीठे वादों का घोड़ा छोड़ें ।
पछताना होगा बिन समझे वोट डाल के ।
फिर न मिलेगा अवसर पहले पाँच साल के ।

नेता सच्चा है वही उसे दीजिए वोट ।
सम्प्रदाय, दल, जाति की नहीं हृदय मे खोट ।
नहीं हृदय मे खोट, सभी को अपना माने ।
अपने सुख-दुख-सा सबका सुख-दुख पहचाने ।
वोट उसे दें, जो सुख दुख मे हिस्सा लेता ।
वोट न दीजे मिले नहीं यदि सच्चा नेता ।

श्यामबहादुर सिंह 'नम्र'

आवरण मुद्रक—खण्डेलवाल प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी ।
गत मास छपी प्रतियाँ—२,००० इस मास छपी प्रतियाँ—२ ०००

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

क्या अब शिक्षा भी बदलेगी ?

इस चुनाव से इतनी बात पक्की हो गयी कि देश परिवर्तन चाहता है। कैसा परिवर्तन, और कितना परिवर्तन चाहता है, इसके बारे में राय अभी साफ नहीं हुई है। अभी ज्यादा चाह एक अच्छे शासन की है ताकि पिछले वर्षों में नित-दिन के जीवन में सरकार और बाजार से जो परेशानियाँ पैदा हो गयी हैं वे दूर हो जायें।

किसी राज्य की सरकार बदले, और उसके काम से समाज को कुछ राहत मिले, यह बात भी कम नहीं है, लेकिन जो लोग समस्याओं को गहराई से समझते हैं वे जानते हैं कि अपने देश में जो बुनियादी सवाल पैदा हो गये हैं उनका सही हल केवल सरकार-परिवर्तन से नहीं निकलेगा। उसके लिए तो समाज-परिवर्तन चाहिए। अगर सरकार चाहे तो समाज-परिवर्तन में सहायक हो सकती है, लेकिन अकसर ऐसा नहीं होता कि कोई अच्छी सरकार समाज-परिवर्तन के काम में आगे बढ़े। क्यों ? कारण साफ है। बात यह है कि अच्छी सरकार जनता की भलाई के काम कर सकती है, और करती भी है, लेकिन वह यह नहीं चाहती कि उसकी अखण्ड सत्ता पर जरा भी आँच आये, इसलिए वह यह नहीं चाहती कि उसके सिवाय समाज में कोई दूसरी शक्ति पैदा हो जो उसके मुकाबिले में खड़ी हो सके। इसके विपरीत समाज परिवर्तन का अर्थ ही यह है कि आज जिन तत्त्वों के हाथ में सत्ता है उनसे निकलकर व्यापक समाज के हाथ में आये ताकि समाज सरकार की शक्ति से अलग अपनी सहकार शक्ति के भरोसे आगे बढ़े। हजारों वर्षों का यह अनुभव है कि जो समाज अपनी शक्ति खो देता है उसकी सरकार, चाहे उसमें कितने भी अच्छे लोग हों, स्वार्थी और निकम्मी हो जाती है।

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ८

शिक्षा ही सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का साधन है। अगर हमें सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के लिए कार्य करना है नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की अभिवृद्धि करनी है और खेतों तथा कल-कारखानों का उत्पादन बढ़ाना है, तो हमें शिक्षा का उचित ढंग से उपयोग करना होगा। विज्ञान और टेकनोलाजी हमें भूख और गरीबी, रोग और निरक्षरता, अन्धविश्वास और रूढ़िग्रस्तता की जकड़ से उबारने में सहायक होंगे। इन्हीं के द्वारा हमारे गरीब निवासियों वाले समृद्ध देश के विशाल साधन व्यर्थ जाने से बचेंगे। हमें उस शिथिलता और अयोग्यता से बचना है जिसके कारण हमारे विकास के कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ पाते। सभी स्तरों पर हमारा प्रशासन विशुद्ध और कुशल होना चाहिए।

—डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

विनोबाजी के शिक्षण-सम्बन्धी विचार

['शिक्षण विचार' नामक ग्रन्थ में विनोबाजी के शिक्षण सम्बन्धी निबन्ध और भाषण इकट्ठा प्रकाशित किये गये हैं। यहाँ हम उसी ग्रन्थ के आधार पर विनोबाजी के शिक्षण-सम्बन्धी विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रस्तुतकर्ता श्री के. एस. आचारलु हैं।—सं०]

- समाज में नये जीवन-मूल्यों की स्थापना करना नयी तालीम का उद्देश्य है।
- नयी तालीम अहिंसा की तालीम है।
- वह स्वतन्त्रता और सहयोग पर आधारित है।
- नयी तालीम से विद्यार्थियों में यह कहने की शक्ति निर्माण होनी चाहिए कि अहिंसा से देश की रक्षा की जा सकती है।
- शिक्षा का उद्देश्य सयमुक्ति है।
- शिक्षा से त्रिविध स्वावलम्बन सधना चाहिए—एक, अपने शरीरश्रम से जीविका प्राप्त की जा सके दो, स्वतन्त्र विचार की शक्ति विकसित हो और तीन आध्यात्मिक प्रगति के लिए उपयोगी ज्ञान अर्जन करने की शक्ति पैदा हो।
- चारित्र्य निर्माण नयी तालीम का प्रमुख लक्ष्य है।
- शिक्षा से बच्चों में सामूहिक भावना और एक साथ मिलकर काम करने की वृत्ति निर्माण होनी चाहिए।
- लोकतन्त्र ठीक से चलाने के लिए शिक्षा जरूरी है।
- प्राणिमात्र के प्रति समदृष्टि निर्माण करना नयी तालीम का मुख्य उद्देश्य है।
- मानवसेवा ही सच्चा शिक्षण है।
- शिक्षा का सम्बन्ध कुदरत और जीवन दोनों से रहना चाहिए।
- छात्रों को कुदरत की सेवा करनी चाहिए और जीवन कुदरती बनाना चाहिए।
- आसपास की प्राकृतिक सृष्टि का ज्ञान अनिवार्य है।
- जीवन खेती से जुड़ा न हो तो वह अपूर्ण है। हमें धरती के सम्पर्क में रहना चाहिए। इससे हम सृष्टि के साथ एकरूप बनते हैं।
- पाठशाला एक आदर्श परिवार के समान चलनी चाहिए।
- सुख-सुविधाओं के साथ-साथ विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती। (सुखार्थिनः कुतो विद्या)
- तालीम का जहाँ अच्छा सिलसिला है वहाँ हर एक नागरिक में अपने पर अंकुश रखने का गुण-संयम आना ही चाहिए।
- नयी तालीम एक ऐसी पद्धति है जो सतत जारी रहती है और सदा ताजा रहती है। उसका कोई बना-बनाया ढाँचा नहीं हो सकता जो सर्वत्र समानरूप से लागू किया जा सके।
- रोज रोज के अनुभव से तालीम बदलती रहती है अतः हर प्रदेश की अपनी अलग अलग तालीम होगी।
- नयी तालीम नित्य नयी तालीम है।
- छोटे बच्चों को एक विषय का शिक्षण देना या अनेक विषयों का बोझ लादना नयी तालीम नहीं है। नयी तालीम जीवन विकास की प्रक्रिया है।
- नयी तालीम केवल गाँवों के लिए ही नहीं है प्रत्येक के लिए है और जीवन की प्रत्येक अवस्था के लिए है। नयी तालीम केवल पढ़ाई की एक पद्धति नहीं है, और न वह केवल उद्योग शिक्षण ही है।
- डाल्टन-पद्धति या प्रोजेक्ट-पद्धति के समान यह कोई पद्धति विशेष नहीं है।
- यह एक जीवन विचार है जीवनक्रम है। यह एक नयी दृष्टि है नयी प्रक्रिया है। ●

शहर व देहात का बाल-शिक्षण

•

विनोबा

प्रश्नकर्ता—आज जिस प्रकार की बुनियादी तालीम हम दे रहे हैं, वह देहातों के लिए ठीक है। शहरों के बच्चों के लिए आप उसमें क्या परिवर्तन सुझायेंगे ?

विनोबा—आपको कौन सा परिवर्तन आवश्यक लगता है ? शहर और गांव में क्या फर्क है ? दोनों जगह वे ही चांद-सूरज हैं, माता पिता का वातावरण भी वैसा ही है। एक जगह दीया है दूसरी जगह बिजली। लेकिन यह तो नाम का फर्क है। आपको दोनों जगह क्या फर्क मालूम होता है बताइए।

प्रश्नकर्ता—शहर में शोषण का वातावरण रहता है, जिसके संस्कार बच्चों पर भी पड़ते हैं। शहर में रहनेवाले माता पिता बच्चों को अधिक समय भी नहीं दे सकते।

विनोबा—यह किसने कहा कि देहात में रहने वाले माता पिता अधिक समय देते है ?

प्रश्नकर्ता—शहर में यांत्रिक वातावरण है।

विनोबा—उससे क्या फर्क पडता है ? एक बालक मोटर में बैठता है एक बैलगाडी में। एक पेट्रोल और इंजिन के बारे में जानेगा दूसरा चक्के और बैल के बारे में। आखिर मुख्य बात यही है कि आस-पास जो वातावरण होगा, उसके जरिये बालक का विकास होगा, उन साधनों के जरिये उन्हें ज्ञान दिया जा सकेगा। और फिर देहात-देहात में भी तो फर्क होता ही है। महाराष्ट्र का बालक ज्वार का खेत देखता है कोकण वाला धान देखता है। इसी तरह शहर और देहात के फर्क को भी देखना चाहिए।

प्रश्नकर्ता—देहात का लड़का स्वावलम्बी होगा, शहरवाला नहीं होगा।

विनोबा—क्यों नहीं होगा ? मान लीजिए कि एक होटलवाला है। वह रसोई के जरिये बालक को शिक्षण देता है। हमारा उसूल तो यही है न कि ज्ञान को आस-पास के वातावरण से तोड़ना नहीं है। शहर और देहात, दोनों के लिए यह सिद्धान्त समान रूप से लागू है। खाना दोनों जगह चाहिए। एक जगह लकड़ी पर पकेगा तो दूसरी जगह कोयले पर। इससे तालीम में कोई फर्क नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता—लेकिन एकदम छोटे लड़कों के काम का प्रारम्भ शहरों में कैसे किया जाय ?

विनोबा—हमें तो कोई दिक्कत नजर नहीं आती। दोनों जगह पानी, हवा, प्रकाश, सबका सम्बन्ध समान रूप से है। इन्द्रियों का सम्बन्ध भी वैसे ही है। चढ़ना उतरना दोनों जगह समान है। एक जगह टीला होगा, तो दूसरी जगह दस मंजिलवाला मकान होगा, इतना ही फर्क है।

प्रश्नकर्ता—दोनों की भूमिका एक कैसी मानी जाय ?

विनोबा—अगर आपने दोनों को भलाई सिखायी है तो वहां शहर और गांव की भूमिका एक ही है, दोनों का वहां मेल है। भूखे के लिए रोटी मुहैया करा देने की विद्या दोनों जगह समान मिलनी चाहिए। अगर तालीम ऐसी मिले कि देहातवाले तो मेहमानों की कद्र और फिक्र करते हैं और शहरवाले उनके बारे में लापरवाह बनते हैं तो समझना चाहिए कि यहां रास्ता भिन्न हो रहा है।

प्रश्न—लेकिन आप तो गांववालों को चरखा चलाने की बात कहते हैं, जो शहरवालों की समझ में ही नहीं आती।

विनोबा—तो मैं शहरवालों को क्यों कहूंगा ?

गाँववाला को तो कपड़ा पहनना है, इसलिए कहता हूँ कि कातो।

प्रश्नकर्ता—लेकिन कपड़ा तो हमें भी पहनना है न ?

विनोबा—यह तो हम नहीं जानते। अगर पहनना होगा तो कातेंगे भी।

प्रश्नकर्ता—लेकिन हम तो मिलों से ज्यादा कपड़ा बनवा लेंगे।

विनोबा—मिलों का हाल आपको मालूम है ?

प्रश्नकर्ता—जी नहीं।

विनोबा—बम्बई में रहते हुए तो आपको उनका हाल जानना चाहिए था। युद्ध के पहले व सत्रह गज कपड़ा देतीं थी, आज फी आदमी ग्यारह गज ही दे रही हैं।

भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ

प्रश्नकर्ता—बाल-शिक्षण में आजकल भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ चल रही हैं। आप कौन-सी ठीक समझते हैं।

विनोबा—आप कौन-कौन पद्धतियाँ जानते हैं ?

प्रश्नकर्ता—कहीं-कहीं नयी तालीम चल रही है। हमारे यहाँ, बम्बई में, मांटेसरी पद्धति चलती है, कहीं-कहीं किंडरगार्टन भी चलती है।

विनोबा—इन सबमें क्या फर्क है, हमें समझाइए।

प्रश्नकर्ता—आप सब जानते हैं।

विनोबा—हम तो यही जानते हैं कि एक सेवाग्राम-पद्धति है, एक पवनार-पद्धति है, एक वर्धा-पद्धति है, एक नागपुर पद्धति है, एक बम्बई पद्धति है इत्यादि-इत्यादि।

प्रश्नकर्ता—बच्चों के लिए किंडर गार्टनवाले आकर्षण उत्पन्न कराते हैं ?

विनोबा—क्या आपलोग आकर्षण नहीं उत्पन्न कराते ?

प्रश्नकर्ता—वे कृत्रिम आकर्षण निर्माण करते हैं।

विनोबा—अब 'कृत्रिम' शब्द आया। अच्छा बताइए, आपलोग बच्चों को मिठाई देते हैं या नहीं ?

प्रश्नकर्ता—जी हाँ, देते हैं।

विनोबा—तब दोनों में क्या फर्क है ?

प्रश्नकर्ता—हम शिक्षण के लिए मिठाई नहीं देते।

विनोबा—क्यों नहीं देते ? जो चीज सामने हो, उसके द्वारा शिक्षण देना चाहिए। अगर पानी सामने हो, तो पानी द्वारा शिक्षण देना चाहिए। हर चीज का उपयोग शिक्षण के लिए होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता—जी हाँ, हमारा मतलब यह था कि किंडर गार्टनवाले पढ़ने की लालच बच्चों में पैदा हो, इस दृष्टि से बच्चों को मिठाई देते हैं। हमलोग तो मिठाई के लिए मिठाई देते हैं। गीत के लिए गीत सिखाते हैं, भूगोल के लिए भूगोल, भूगोल के लिए गीत नहीं सिखाते।

विनोबा—इसमें बुद्धि की कुशलता का सवाल है। शिक्षण-पद्धतियों में साधारणतया कोई खास फर्क नहीं होता। परिस्थिति-भेद के अनुसार वस्तु-दर्शन का भेद हो जाता है। लालच के लिए किसी तरह का वातावरण निर्माण करने या कोई चीज देने की बात तो वे भी नहीं कहेंगे। वे भी यही कहेंगे कि बालकों को वहाँ पदार्थ-पाठ मिल सके इस लिए अनुकूल वातावरण निर्माण करता है।

प्रश्नकर्ता—लेकिन जिस तरह हमारे यहाँ के बालक आजादी से अपना विकास साधते हुए दिखाई देते हैं, किंडर-गार्टन-पद्धति से वे नहीं दिखाई दे सकते।

विनोबा—लेकिन अगर किंडर-गार्टनवालों से आप पूछें तो वह इसे स्वीकार नहीं करेंगे कि बच्चों को उनके यहाँ ठीक अवसर नहीं मिलता। वे यही कहेंगे कि उनके यहाँ बच्चे आजाद हैं।

साधनों का प्रश्न

प्रश्नकर्ता—हमारे यहाँ इन्द्रिय विकास (सेंस डेवलपमेंट) का जो तत्र है, उससे बुनियादी तालीम का तत्र कुछ निराला है। हमें अपने यहाँ का क्रम अधिक शास्त्रीय मालूम होता है। साधन जितने व्यवस्थित होंगे, उतना ही विकास ठीक होगा। लेकिन ऐसे शास्त्रीय साधनों का विदेशों के नाम पर निषेध किया जाता है।

विनोबा—तो क्या छोटे बच्चों के शिक्षण के लिए विदेशी साधनों की जरूरत पड़ती है ?

प्रश्नकर्ता—साधन विदेशी नहीं हैं। वे तो यहीं के बने हुए हैं, लेकिन कल्पना विदेशी है, डा० मैडम मांटेसरी की है।

विनोबा—कल्पना भी क्यों विदेशी-स्वदेशी होनी

है ? लेकिन हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि अगर वातावरण में कुछ साधन सहज ही में उपलब्ध हों तो शास्त्रीयता के नाम पर दूसरे कृत्रिम साधनों की आवश्यकता नहीं महसूस होनी चाहिए। अगर सामने नदी पड़ी है तो तैरने की कला द्वारा बालक का विकास क्यों नहीं सध सकना चाहिए ? क्या इन्द्रिय विकास के लिए देहात का स्वाभाविक वातावरण अनुकूल नहीं है ? वहाँ माटेसरी-साधनों की आवश्यकता क्यों महसूस होनी चाहिए ? क्या गोबर चुनना और बेर बटोरना आदि साधन नहीं माने जायेंगे ?

प्रश्नकर्ता—गोबर चुनने या बेर बटोरने में माटेसरी का विरोध नहीं है। पर कुछ साधनों के लिए उनका आग्रह है कि उनपर जोर देने से बालक आगे कुदरत में ज्यादा अच्छा काम करेगा, क्योंकि उसकी वे इन्द्रियाँ पहले अच्छी विकसित हो जायेंगी।

विनोबा—हम आपसे एक ही सवाल पूछते हैं। साधनहीन किसी गाँव में आपको भेज दें तो आप काम कर सकेंगे या नहीं ?

प्रश्नकर्ता—हाँ, कर सकेंगे।

विनोबा—फिर हमारा आपसे कोई झगड़ा नहीं है। फिर हर प्रकार के ज्ञान का आज ही परिचय करा देना चाहिए, इसकी जरूरत नहीं होती। जिस ज्ञान की आज जरूरत नहीं है, उसकी आगे कभी जरूरत पड़ेगी, इस ख्याल से बच्चा की बुद्धि पर उसका बोझ लादने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। जो ज्ञान हम बच्चों को देना चाहते हैं, वह हम चाहते हैं इसलिए देते हैं, या बच्चा को उस की जरूरत है इसलिए देते हैं ? आँख के लिए बच्चों को प्रकाश की जरूरत है जीभ के लिए स्वाद की, कान के लिए स्वर की। इस तरह आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक ज्ञान दिया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता—लेकिन सूक्ष्म ज्ञान के लिए शास्त्रीय साधनों का प्रयोजन है।

विनोबा—ठीक है, लेकिन शास्त्रीय साधना के नाम पर कृत्रिमता कैसे प्रवेश कर जाती है, इधर हमें ख्याल देना चाहिए। हारमोनियम से स्वर का सूक्ष्म ज्ञान हो सकता है ऐसा दावा कोई नहीं कर सकता। फिर भी हारमोनियम चल रहा है। जिसे शक्कर के बिना दूध पीने की आदत नहीं है, वह दूध का मूल स्वाद जान ही नहीं सकता। इसलिए स्वाद की दृष्टि से चीजें मूल स्वरूप में ही खानी चाहिए। इस तरह आप सोचेंगे तो सारा सवाल हल हो जायगा। आपको योग्यायोग्यता का ख्याल रखना चाहिए। सेन्स डेवलपमेंट तो जानवरों का भी होता है। शेर को क्या माटेसरी सिखाने जाती है ? लेकिन उसकी इन्द्रियों का विकास कम नहीं हुआ होता। उसे और जानवरों की तरह विशेष अनुकूलताएँ उपलब्ध नहीं हैं। उसकी सुराख दौड़ती रहती है तो उसकी नाक, उसके नाखून ज्यादा काम करते हैं। इस तरह आप देखेंगे कि विषम परिस्थितियों में विकास अधिक कमाल हासिल करता है।

इसलिए इन्द्रिय-शक्ति का विकास कोई बड़ी बात नहीं है। नैसर्गिक जीवन से वह सहज सधती है। लेकिन शिक्षण के लिहाज से आवश्यक और बड़ी बात है, इन्द्रियों को अभिरुचि परिशुद्ध बनाने की। कृत्रिम जीवन से इन्द्रियाँ परिशुद्ध नहीं होतीं, बिगड़ती ही हैं और यह बिगाड़ने का काम शहर और देहात, दोनों जगह हो रहा है। खाने-पीने में मसालों का प्रयोग दोनों जगह होता है। ऐसी और भी मिसालें दी जा सकती हैं।

प्रश्नकर्ता—मसाले भी तो कुदरत ने ही बनाये हैं न ?

विनोबा—कुदरत ने तो गोबर भी बनाया है पर कोई गोबर नहीं खाता। उसी तरह कोई बच्चा अपनी इच्छा से मिर्च नहीं खाता। मीठा फल वह सहज खा लेता है।

प्रश्नकर्ता—योग्यायोग्यता का प्रश्न अलग है। इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने का प्रश्न आता है। केमिस्ट वस्तु को कैसे पहिचानता है ?

विनोबा—जिस केमिस्ट की नाक बिगड़ी हो, वह वस्तु को ठीक नहीं पहचान पाता। योग्यायोग्यता और इन्द्रिय शक्ति विकास अलग चीजें नहीं हैं। इन्द्रियों का दुरुपयोग करनेवाले की इन्द्रिय शक्ति बढ़ नहीं सकती, वह तो क्षीण हो सकती है। कहा ही है—सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।●

शिक्षा-आयोग की भाषा-नीति

•

वंशीधर श्रीवास्तव

आचार्य, राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी

१९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो देश में अंग्रेजी का एकछत्र राज्य था। वह केन्द्र और प्रदेशों के शासन की भाषा थी। देश के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी ही थी। विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले इस बड़े देश की सम्पर्क भाषा भी वही थी। इसलिए अंग्रेजी का बहुत महत्व था और लोगों ने महसूस किया कि अगर अंग्रेजी छोड़ दी गयी तो देश बिखर जायगा और उसकी एकता नष्ट हो जायगी।

परन्तु स्वतन्त्र भारत ने यह भी महसूस किया कि स्वतन्त्र देश की राष्ट्रभाषा कोई देशी भाषा ही होनी चाहिए। हिन्दी देश के बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी, अतः उसे विधान में राजभाषा स्वीकार किया गया और चूँकि अभी वह विकसित नहीं थी, अर्थात् उसमें विज्ञान, टेकनालोजी, कानून, आदि आधुनिक विषयों के लिए पारिभाषिक शब्द नहीं थे और इन विषयों पर प्रामाणिक ग्रन्थ भी नहीं थे, अतः यह निश्चित किया गया कि १९६५ ई० तक उसे विकसित किया जाय और तबतक अंग्रेजी राजभाषा बनी रहे।

त्रिभाषा सूत्र

परन्तु पीछे कुछ रक्षित स्वार्थों के कारण, हिन्दी-अहिन्दी का झगड़ा छिड़ गया और लगा कि भाषा के प्रश्न को लेकर देश की एकता खतरे में पड़ सकती है। अतः देश की भावनात्मक एकता कायम रखने के लिए १९५६ ई० में शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भाषाओं की शिक्षा की समस्या पर विचार किया और समस्या का एक हल ढूँढा, जिसको 'त्रिभाषा सूत्र' कहते हैं। इस सूत्र के अनुसार प्रत्येक प्रदेश के बालकों के लिए तीन भाषाओं का पढ़ना अनिवार्य किया गया। १९६१ में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में इस सूत्र को किंचित परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया। यह त्रिभाषा सूत्र निम्न प्रकार है* —

(क) क्षेत्रीय भाषा और मातृभाषा, जब मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा से भिन्न है।
(ख) हिन्दी अथवा हिन्दी भाषी क्षेत्रों में एक दूसरी भारतीय भाषा (जिनकी सूची भारतीय विधान के ८ वें शेड्यूल में दी गयी है)
(ग) अंग्रेजी अथवा एक दूसरी आधुनिक यूरोपीय भाषा

इस भाषा-नीति के उद्देश्य थे —

(क) मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा की शिक्षा द्वारा अपने क्षेत्र के जन-जीवन और जन-संस्कृति से सम्पर्क।
(ख) अपनी मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा की शिक्षा के अतिरिक्त एक दूसरी भारतीय भाषा की शिक्षा द्वारा देश में भावनात्मक एकता का सृजन।
(ग) राष्ट्रभाषा हिन्दी की शिक्षा द्वारा देश में एक सामान्य सम्पर्क भाषा का विकास, जिससे अंग्रेजी के हट जाने पर भी देश की एकता बनी रहे।
(घ) अंग्रेजी अथवा एक दूसरी आधुनिक यूरोपीय भाषा की शिक्षा द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की शिक्षा, जिससे उन्नत विज्ञान एवं टेकनालाजी

* नेशनल इंटीग्रेशन (अंग्रेजी) पैरा ९ पृष्ठ १५।

और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के ज्ञान का प्रचार सम्भव हो और प्रगतिशील पाश्चात्य देशों से सम्बन्ध बना रहे।

त्रिभाषा सूत्र का उद्देश्य

राज्यों द्वारा इस भाषा-नीति का जिस प्रकार कार्यान्वयन हुआ उससे इनमें से किसी भी उद्देश्य की सिद्धि नहीं हुई। इस त्रिभाषा सूत्र का सबसे बड़ा उद्देश्य था देश में भावनात्मक एकता का सृजन। सूत्र तो साधन मात्र था, साध्य तो था देश की एकता। उद्देश्य था कि देश के अहिन्दी भाषी क्षेत्रोंवाले, विशेषत दक्षिण क्षेत्र-वाले, अनिवार्य रूप से हिन्दी सीखकर हिन्दी भाषी प्रदेशों के समीप आयें और हिन्दी भाषी क्षेत्रोंवाले अनिवार्य रूप से भारत के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की कोई एक भाषा सीखकर, विशेषत दक्षिण की कोई भाषा सीखकर, उनके समीप आयें और इस प्रकार देश की भावनात्मक एकता बढ़े। परन्तु सूत्र के कार्यान्वयन से इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई। कारण नीचे दिया जा रहा है।

भारतीय विधान के आठवें शेड्यूल के अन्तर्गत दी गयी भाषाओं में एक प्राचीन भाषा संस्कृत और एक आधुनिक, किन्तु अक्षेत्रीय, भाषा उर्दू भी सम्मिलित है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में, जब उस त्रिभाषा सूत्र का कार्यान्वयन हुआ तो आधुनिक भारतीय भाषाओं (अथवा दक्षिण की किसी भाषा) के विकल्प में संस्कृत और उर्दू के आ जाने से इन क्षेत्रों के लगभग सभी छात्रों ने तीसरी भाषा के स्थान पर संस्कृत अथवा उर्दू ले लिया क्योंकि यही उनके लिए सरल था*। इसी तरह अहिन्दी भाषी प्रदेशों ने हिन्दी को रखते हुए भी उसे परीक्षा का विषय नहीं रखा, जिससे छात्रों ने उसे मनोयोग से नहीं सीखा। इस प्रकार चूँकि हिन्दी भाषी क्षेत्रों ने अपने छात्रों की सुविधा के लिए संस्कृत अथवा उर्दू का विकल्प ढूँढ़ लिया और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों ने भी हिन्दी की अवहेलना की, अत देश की एकता की बात पीछे पड़ गयी और सुविधा तथा सरलता की बात आगे आ गयी।

* १९६३-६४ की गणनानुसार वाराणसी मण्डल (उत्तरप्रदेश) के जूनियर हाई स्कूल (आयोग की भाषा में उच्चतर प्रारम्भिक स्तर) के ८०,००० छात्रों में से केवल १३ छात्रों ने दक्षिण की भाषाएँ पढ़ी थीं।

इसी प्रकार मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा के शिक्षण के लक्ष्य की भी प्राप्ति इसलिए नहीं हुई क्योंकि लगभग सभी राज्यों में प्रारम्भिक कक्षाओं से ही (कक्षा ३ से) अंग्रेजी पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। बुनियादी शिक्षा ने, जिसे प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय प्रणाली मान लिया गया था, बेसिक स्तर पर (कक्षा ७ तथा ८ तक) अंग्रेजी न पढ़ाने की बात कही थी। लेकिन अंग्रेजी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर और उच्चशिक्षा के लिए उसे ही एकमात्र माध्यम पाकर, लोगों ने प्रारम्भिक स्तर से ही अंग्रेजी पढ़ाने की माँग की। फलत कक्षा ३ से फिर अंग्रेजी आ गयी और मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं की वैसी ही अवहेलना प्रारम्भ हो गयी जैसी ब्रिटिश शासनकाल में हुई थी।

अंग्रेजी के प्रभाव का परिणाम

परन्तु इस त्रिभाषा सूत्र द्वारा अंग्रेजी के प्रचार और प्रसार को बल मिला। जब लोगों ने देखा कि अंग्रेजी शासन की भाषा बनी हुई है और शासन में नौकरियाँ उन्हीं को मिलती हैं जिनके पास विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ होती हैं, जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है, तो सभी ने अपने बालकों को अंग्रेजी पढ़ाना चाहा। इससे देश में उन अत्यन्त अल्प संख्यक सम्पन्न लोगों का प्रभाव बढ़ा जो ब्रिटिश शासन-काल से प्रभावशाली थे, और देश के ऊपर नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) का शिकंजा कसता गया, जो प्रत्येक दृष्टि से समाजवादी वसूलों के खिलाफ है। किसी भी प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र में जनता और शासन की भाषा में भेद नहीं होना चाहिए, विशेषत उस देश में जो समाजवादी बनने के लिए प्रतिश्रुत है। इस नीति से २० वर्षों में यह भेद और भी दृढ़ हुआ है। इस प्रकार अंग्रेजी का यह प्रचार भी एक प्रकार से भाषा नीति की असफलता ही है, क्योंकि उद्देश्य तो १९६५ ई० तक अंग्रेजी के स्थानपर हिन्दी को प्रतिष्ठित करना था जिसमें सफलता नहीं मिली।

आयोग ने इस सूत्र की असफलता के निम्नांकित कारण बतलाये हैं —

(१) स्कूल के पाठ्यक्रम में तीन भाषाओं का भारी बोझ।

(२) हिन्दी क्षेत्रों में एक दूसरी भारतीय भाषा, विशेषत दक्षिण की कोई भाषा सीखने के लिए प्रेरणा का अभाव।

(३) अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का विरोध।

(४) ५ या ६ वर्ष तक (कक्षा ६ से कक्षा १० या ११ तक) दो अतिरिक्त भाषा पढाने का भारी खर्च।

(५) इस भाषा-नीति के कार्यान्वयन के लिए दूषित नियोजन जिसके कारण पर्याप्त साधनों का दुरुपयोग और धन का अपव्यय हुआ है। साथ ही जिन परिस्थितियों में तीसरी भाषा का अध्ययन हुआ उससे क्षेत्रों को इस भाषा का अधकचरा ज्ञान हुआ है, जिसका कोई मूल्य नहीं है।

आयोग की भाषा-नीति

इसलिए आयोग ने इस भाषा-नीति में परिवर्तन किया है। यह परिवर्तन इसलिए और भी आवश्यक हो गया है कि अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए सहयोगी राजभाषा स्वीकार कर लिया गया है, वह भी इस शर्त पर कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों की सहमति के बिना इस नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। फलत आयोग ने त्रिभाषा सूत्र में इस प्रकार परिवर्तन किये हैं जिससे असफलताओं और खामियों से बचा जा सके और तीन भाषाओं के पढाने से राष्ट्र की एकता दृढ हो। आयोग द्वारा संस्तुत भाषा-नीति के अन्तर्गत छात्र तीन भाषाएँ पढेंगे*।

(१) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा।

(२) संघ की राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा, जबतक वह है। और

(३) एक आधुनिक भारतीय भाषा अथवा विदेशी भाषा जो १ या २ के अन्तर्गत न ली गयी हो।

आयोग ने इस सूत्र की व्याख्या निम्न भाँति की है —

लोअर प्रारम्भिक स्तर पर (कक्षा १ से ४ तक) अनिवार्य रूप से केवल एक ही भाषा पढी जायगी— मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, जिसका विकल्प छात्र की इच्छा पर होगा। अधिकतर छात्रों के लिए यह भाषा क्षेत्रीय भाषा होगी, जो उनकी मातृभाषा भी होगी। कुछ भाषायी अल्पसंख्यक जातियों के छात्र भी क्षेत्रीय भाषा ही पढना चाहेंगे क्योंकि इससे अनेक लाभ हैं। परन्तु भारतीय विधान के अनुसार उन्हें अपनी मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा पाने का अधिकार है और यदि इस प्रकार के छात्रों की संख्या किसी कक्षा में १० अथवा स्कूल में ४० हो जाती है तो उन्हें अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबन्ध करना होगा। लेकिन यह वाछनीय है कि इन छात्रों का क्षेत्रीय भाषाओं का भी ज्ञान हो। अत कक्षा ३ से ही वैकल्पिक आधार पर क्षेत्रीय भाषाओं के पढने की सुविधा भी दी जाय, परन्तु हम इस स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं करना चाहते। हमलोग इस स्तर पर एक दूसरी भाषा, अंग्रेजी पढाने के भी पक्ष में नहीं है। (अध्याय-८-पैरा-८, ३५।)

उच्चतर प्रारम्भिक स्तर पर (कक्षा ५ से ७ तक) केवल अनिवार्य रूप से दो भाषाएँ पढी जायँगी (१) मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा और (२) संघ की राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा। हिन्दी क्षेत्रों के लगभग सभी छात्रों के लिए और अहिन्दी क्षेत्रों के बहुसंख्यक छात्रों के लिए यह दूसरी भाषा अंग्रेजी होगी लेकिन अहिन्दी क्षेत्रों के अनेक छात्र हिन्दी ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस स्तर पर वैकल्पिक आधार पर एक तीसरी भाषा के पढाने का भी प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे हिन्दी क्षेत्र के वे बच्चे, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और अहिन्दी क्षेत्र के वे बच्चे जिन्होंने अंग्रेजी दूसरी भाषा के रूप में ले ली है यदि चाहे तो राजभाषा हिन्दी पढ सकेंगे। (पैरा ८, ३६)

निम्न माध्यमिक स्तर (कक्षा ८ से १० तक) पर तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए और छात्र को अनिवार्यत राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा पढनी चाहिए, जिसे उसने उच्चतर प्रारम्भिक स्तर पर नहीं चुना था। अधिकाशत (इस स्तर पर) हिन्दी क्षेत्रों के विद्यार्थी हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा और अहिन्दी क्षेत्रों के बहुसंख्यक विद्यार्थी क्षेत्रीय भाषा अंग्रेजी और हिन्दी पढेंगे। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में आधुनिक भारतीय भाषाओं के चुनाव में प्रेरणा ही चुनाव की कसौटी होनी चाहिए, उदाहरणार्थ किसी क्षेत्र के सीमावर्ती लोग अपनी सीमा के पार के

* आयोग का प्रतिवेदन अध्याय ८—पैरा,३४ पृ० १९२

क्षेत्र की भाषा सीखना चाहते है, अत वे इसे तीसरी भाषा के रूप मे चुने। (पैरा-८-३९)

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में (कक्षा ११ तथा १२ मे), जहां शिक्षा उच्च शिक्षा की तैयारी होगी, केवल दो भाषाएँ ही अनिवार्यत पढी जायेंगी और छात्र को पहले पढी हुई तीन भाषाओ में से किन्ही दो को लेने का अधिकार हो अथवा वह नीचे लिखे समूह में कोई दो भाषाएँ ले ले —

(१) आधुनिक भारतीय भाषाएँ।
(२) आधुनिक विदेशी भाषाएँ।
(३) प्राचीन भाषाएँ–भारतीय और विदेशी।

परन्तु यदि छात्र एक तीसरी अतिरिक्त भाषा भी पढना चाहे तो कोई रुकावट नही है। (पैरा ८-३९)

आयोग आगे लिखता है कि यद्यपि यह सच है भारत के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पुस्तकालय-भाषा अँग्रेजी होगी, परन्तु हमारा सुझाव है कि रूस, जर्मन, फ्रेन्च, स्पेनिश, चीनी और जापानी भाषाओ को भी प्रोत्साहन देना चाहिए और छात्र उन्हें अँग्रेजी अथवा हिन्दी के स्थान पर पढे। उसी तरह अहिन्दी भाषी क्षेत्रो में हिन्दी के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओ के अध्ययन का प्रबन्ध होना चाहिए और छात्र इनका अध्ययन अँग्रेजी अथवा हिन्दी के विकल्प में कर सकें।

आयोग की सदस्य कुमारी पनान्दिकर आयोग की इस भाषा-नीति से सन्तुष्ट नही है। उनकी राय है कि तीन भाषाओ का अध्ययन उच्चतर प्रारंभिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए। और यह तीन भाषाएँ मातृभाषा, हिन्दी और अँग्रेजी होनी चाहिए। हिन्दी केवल राजभाषा ही नही है वरन् उसे एक राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा बनना है। अत यह वाछनीय है कि उसकी पढाई का प्रबन्ध शिक्षा के अनिवार्य स्तर पर किया जाय।

कुमारी पनान्दिकर के इस मत से आयोग सहमत नही है। उसका यह दृढ विचार है कि प्रारम्भिक स्तर पर तीन भाषाएँ न पढायी जायँ, क्योकि इस स्तर की शिक्षा का लक्ष्य अपनी मातृभाषा पर ही अधिकाधिक अधिकार प्रदान करना होना चाहिए। तीसरी भाषा के आ जाने से इस कार्य में बाधा पडती है और व्यय भी बहुत बढ जाता है क्योकि बहुत बडी सख्या में योग्य अध्यापको की आवश्यकता पडती है। माध्यमिक स्तर पर यह परिस्थिति बदल जाती है क्योंकि छात्र की बुद्धि का विकास हो जाने से वह प्रेरणा के अभाव में भी तीसरी भाषा पढ सकता है और स्कूलों की सख्या कम होने से व्यय भी कम हो जाता है। इसलिए आयोग ने माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओ के पढने की सस्तुति की है। आयोग-का तर्क है कि ससार के दूसरे देशो में भी, जिनकी तालिका रिपोर्ट में दी गयी है (सप्लीमेण्टरी नोट।।। पृष्ठ २१७ से २२३ तक) माध्यमिक स्तर पर दो या दो से अधिक भाषाएँ तो पढायी जाती हैं, परन्तु किसी भी देश में प्रारम्भिक स्तर पर तीन भाषाओं की शिक्षा अनिवार्य नही है।

आयोग की दलीलें सही है और मैं मानता हूँ कि प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा का प्रमुख ध्येय बालको को अपनी मातृभाषा पर अधिकाधिक अधिकार देना है और इस स्तर पर केवल एक ही भाषा पढायी जाय—मातृभाषा (अथवा क्षेत्रीय भाषा)। परन्तु अगर किन्ही कारणो से (जैसे देश की भावनात्मक एकता की वृद्धि के लिए) दो भाषाएँ पढ़ाना ही पडे तो वे दो भाषाएँ इस विषय पर कुछ भी कहने के पहले मैं आपका ध्यान आयोग की भाषा-सम्बन्धी उस सस्तुति की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसे मैं आयोग की भाषा-सम्बन्धी सस्तुतियो में सबसे अधिक क्रान्तिकारी और महत्वपूर्ण सस्तुति मानता हूँ। हम इसी सस्तुति के सदर्भ में आयोग द्वारा सस्तुत त्रिभाषा सूत्र की समीक्षा करेंगे।

आयोग सस्तुति करता है कि स्वस्थ शिक्षानीति की दृष्टि से स्कूल और उच्च शिक्षा का माध्यम एक ही होना चाहिए। — 'चूंकि हमलोगो ने स्कूल में क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया है, अत हमें उसे ही उच्च शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए* ।

'हमलोगो का क्षेत्रीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षा देने के लाभ में विश्वास है। देश की सामान्य प्रगति के लिए और शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए हम क्षेत्रीय भाषाओ का विकास आवश्यक समझते है। अत समस्या के महत्व को देखते हुए हम सस्तुति करते है कि विश्व-

* अध्याय १—पैरा—१ ५१ पृष्ठ १३

विद्यालय अनुदान आयोग और विश्वविद्यालय मिलकर, प्रत्येक विद्यालय के अथवा विश्वविद्यालयों के एक ग्रुप के लिए कार्यक्रम बना लें, जिससे जितना शीघ्र सम्भव हो यह परिवर्तन हो सके, करें और किसी भी दशा में १० वर्ष में तो हो ही जाय।"[१]

आयोग ने यह भी संस्तुति की है कि "यथा शीघ्र क्षेत्रीय भाषाओं को सम्बन्धित क्षेत्रों की राजभाषा बना दिया जाय, जिससे जो क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ते है, वे ऊंची नौकरियों से वंचित न रहें। जब ऐसा होगा और वे नौकरियाँ, जिन्हें पाने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक होता है, उनको भी मिलने लगेंगी, जो क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से पढ़े हैं, तो विश्वविद्यालय भी क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लेंगे।

अगर आयोग की यह संस्तुतियाँ केन्द्र और राज्यों द्वारा तत्काल स्वीकार कर ली गयी (और आशा है कि राष्ट्र के हित में स्वीकार भी कर ली जायेंगी और हमारी नौकरशाही, जिसमें अंग्रेजीवाले ही हैं हमें इस बार धोखा नहीं देंगी), तो इसका अर्थ यह होगा कि जो छात्र १९६७ में कक्षा १ में भरती होंगे वे १२ वर्ष के बाद जब विश्वविद्यालयों में पहुँचेंगे तो उन्हें उन क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से ही शिक्षा दी जायगी जिन्हें वे प्रारम्भिक स्तर से ही सीखते आये हैं और उन्हें अंग्रेजी के माध्यम से कुछ भी नहीं सीखना होगा। तो फिर इन छात्रों पर किसी भी स्तर पर (प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक) अंग्रेजी का बोझ लादा जाय और राष्ट्र का धन, एक ऐसी विदेशी भाषा के ऊपर, ऐसे छात्रों के लिए जो उसका उपयोग जीवन में कभी नहीं कर सकेंगे, क्यों व्यय किया जाय?"[२]

अत: १९६७ ई० से कक्षा १ में भरती होनेवाले छात्रों के लिए समस्या किसी भी स्तर पर अधिकाधिक दो भाषाएँ ही सिखाने की है—(१) प्रारम्भिक स्तर पर मातृभाषा और वैकल्पिक रूप से क्षेत्रीय भाषा, और—२—माध्यमिक स्तर पर हिन्दी क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा और कोई आधुनिक भारतीय भाषा तथा अहिन्दी क्षेत्रों में, क्षेत्रीय भाषा और देश की राजभाषा। जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा नहीं है वे छात्र माध्यमिक स्तर पर अपनी मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा (इच्छानुसार) हिन्दी क्षेत्र के छात्र यदि अहिन्दी क्षेत्र में पढ़ रहे हैं, तो वे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कोई आधुनिक भारतीय भाषा पढ़ेंगे और राजभाषा पढ़ेंगे। माध्यमिक स्तर पर छात्र इच्छानुसार कोई तीसरी भाषा पढ़ सकते हैं, जिसका प्राविधान होना चाहिए। इस प्रकार आयोग द्वारा संस्तुत भाषा-नीति के स्थान पर दो भाषाओं की यह नीति अपनायी जाय।

इस भाषा नीति के अनुसार प्रत्येक छात्र को मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा बारह वर्ष तक और राजभाषा अथवा आधुनिक भारतीय भाषा ५ वर्ष तक पढ़ने का अवसर मिल जायगा। जिन छात्रों की मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा नहीं है उन्हें प्रारम्भिक स्तर पर वैकल्पिक रूप से ५ वर्ष तक क्षेत्रीय भाषा पढ़ने का अवसर मिलेगा। इस प्रकार यह स्थिति प्रत्येक दृष्टि से (शिक्षा और व्यय की दृष्टि से) पूर्णत: सन्तोषजनक है।

ऊपर जो तर्क प्रस्तुत किया गया उससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता कि जिस त्रिभाषा सूत्र की संस्तुति आयोग ने की है वह एक संक्रमणकालीन व्यवस्था है और उन्हीं छात्रों पर लागू की जाय जो कक्षा ८ में १९७४ से पहले और विश्वविद्यालयों में १९७९ के पहले पहुँचेंगे क्योंकि उन्हें ही अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ना पड़ सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट कर दिया जाय कि त्रिभाषा सूत्र यानी अनिवार्यत: तीन भाषाएँ पढ़ने की यह नीति स्थायी भाषा-नीति नहीं है और सन् १९७९-८० में समाप्त हो जायगी और इसके स्थान पर उपर्युक्त दो भाषा-नीति चलेगी।

आयोग की भाषा-नीति का सम्यक् मूल्यांकन करने के लिए हमें आयोग की उस संस्तुति पर भी विचार करना होगा, जिसमें देश में ५-६ ऐसे विशिष्ट बड़े विश्वविद्यालय विकसित करने की बात कही गयी है जहाँ प्रथम कोटि का स्नातकोत्तर कार्य और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शोध सम्भव हो। आयोग की संस्तुति है—'उच्च शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार देश में ऐसे ५-६ बड़े विश्वविद्यालय विकसित करना है, जहाँ अखिल भारतीय

१—अध्याय—१, पैरा—१—५४, (१) और (२), पृष्ठ—१४।
२—अध्याय—१, पैरा—१—५६, पृष्ठ—१५।

स्तर पर प्रतिभाशाली छात्रों और प्रतिष्ठित प्रवक्ताओं द्वारा प्रथम श्रेणी का स्नातकोत्तर कार्य और शोध सम्भव हो सके। इन संस्थाओं का स्तर इनके समकक्ष संसार की दूसरी अच्छी से अच्छी संस्थाओं के मुकाबिले का हो जिससे प्रतिभा-सम्पन्न छात्रों को इस कार्य के लिए देश से बाहर न जाना पड़े।[1]

"देश की उच्च शिक्षा के इन ५-६ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखना आवश्यक होगा, क्योंकि इन संस्थाओं में पूरे देश से छात्र और छात्राध्यापक आयेंगे।"[2] आयोग आगे लिखता है कि क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बना देने का अर्थ विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का महत्व कम कर देना न लगाया जाय। विश्वविद्यालय की पहली डिग्री प्राप्त करने के लिए छात्र को अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए, जिससे वह अपने भावों को अंग्रेजी में सरलतापूर्वक प्रकाशित कर सके, अंग्रेजी में दिये गये व्याख्यानों को भलीभाँति समझ सके और उपलब्ध अंग्रेजी-साहित्य प्रयोग कर सके। अतः भाषा की दृष्टि से अंग्रेजी के अध्ययन पर स्कूल स्तर से ही पर्याप्त बल दिया जाय।"[3]

इसलिए क्षेत्रीय भाषाओं को दस वर्ष के भीतर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा का माध्यम बना देने के साथ साथ आयोग संस्तुति करता है कि "अखिल भारतीय शिक्षा-संस्थाएँ, जिनमें देशभर के विद्यार्थी आते हैं और जिनमें अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम है, अंग्रेजी माध्यम का निर्विघ्न प्रयोग करती रहें।"[4]

आयोग का यह भी तर्क है कि "अंग्रेजी इस देश की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकालयी भाषा (ऐसी भाषा जिसके माध्यम से विश्व का बढ़ता हुआ ज्ञान प्राप्त किया जा सके) रहेगी, और इस हैसियत से उच्च शिक्षा में उसकी आवश्यकता पड़ेगी। अतः इस भाषा का दृढ़ आधार स्कूलों में ही रखा जाय और अंग्रेजी कक्षा ५ से पढ़ायी जाय।"[5] (आयोग कक्षा ३ से अंग्रेजी पढ़ाने के पक्ष में नहीं है।)

आयोग की यह भाषा-नीति "क्षेत्रीय भाषा सम्बन्धी नीति" की विरोधी है। इसके कार्यान्वयन से क्षेत्रीय भाषाओं के स्कूल स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा और परीक्षा का माध्यम कठिन बनाना हो जायगा और सामान्य-विद्यालय (कामन स्कूल) स्थापित करने की नीति में भी सफलता नहीं मिलेगी एवं आयोग शिक्षा में क्रान्ति करने के जिस लक्ष्य को लेकर चला था उसकी प्राप्ति भी नहीं होगी। संक्षेप में अगर आयोग की इस भाषा-नीति का कार्यान्वयन हुआ तो इसके नीचे लिखे परिणाम होंगे, जो समाजवादी राष्ट्र के हित में नहीं होंगे —

- देश में शिक्षा की दो धाराएँ एक साथ बहेंगी—एक सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य धारा, जिसमें क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम रहेंगी, और दूसरी उच्च शिक्षा की विशिष्ट धारा, जिसमें अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम रहेगी।
- चूँकि इन विशिष्ट विश्वविद्यालयों में अध्ययन और अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी रहेगी, अतः अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान आवश्यक होगा और अंग्रेजी का पठन-पाठन स्कूल स्तर से ही निरन्तर चलेगा इसलिए आयोग ने कक्षा ५ से अथवा उच्च प्राइमरी स्तर से अंग्रेजी प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है।
- अगर बालक में प्रतिभा है और उसकी आकांक्षा और क्षमता अध्ययन और शोध करने की है, तो उसे इन विशिष्ट अखिल भारतीय विश्वविद्यालयों में जाना होगा और इसके लिए अंग्रेजी को अपनाना और मातृभाषा को छोड़ना होगा, छोड़ना नहीं तो गौण स्थान अवश्य देना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि मातृभाषा की शिक्षा के साथ हीन भावना जुड़ जायगी, जैसी आज भी है।
- फलतः समाज में सदा के लिए दो वर्ग बन जायेंगे—अंग्रेजी पढ़े लिखे तथाकथित प्रतिभा सम्पन्न लोगों का विशिष्ट वर्ग और भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करनेवालों का निम्नवर्ग। इस प्रकार के दो वर्ग लार्ड मेकाले की शिक्षा-नीति के फलस्वरूप देश में अंग्रेजों के समय से ही बन गये थे। गांधीजी ने जब राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा का प्रवर्तन किया, तो

१—अध्याय ११ पैरा ११, १९ पृष्ठ २७९।
२—अध्याय ११ पैरा ११, ६१ पृष्ठ २९३।
३—अध्याय १ पैरा १, ५७ पृष्ठ १५।
४—अध्याय १ पैरा १, ५१ पृष्ठ १४।
५—अध्याय ८ पैरा ८, ४६ पृष्ठ १९७।

उनके सामने भी ये दोनों वर्ग थे, और बुनियादी शिक्षा-पद्धति से जहाँ उन्होंने अनेक आशाएँ की थी वहाँ एक आशा यह भी थी कि उससे यह वर्ग सदा के लिए समाप्त हो जायगा। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अब देश में समाजवाद की स्थापना की नीति अपनायी गयी तो यह विचार और भी गहरा हो गया कि अन्ततोगत्वा ये दोनों वर्ग मिट जायेंगे। परन्तु आयोग की इन सस्तुतियों का यदि कार्यान्वयन हुआ तो देश में सदा के लिए दो वर्ग बन जायेंगे। यह कार्य समाजवाद की सकल्पना के विरुद्ध होगा और अनन्त काल तक देश में समाजवाद की भावना नही पनपेगी।

देश में अंग्रेजी पढे-लिखे लोगो का जो विशिष्ट वर्ग है और जिसके हाथ में इस समय शासन का सूत्र है, मानो उसीकी आकाक्षाओं की मुखर अभिव्यक्ति इन प्रस्तावो में हुई है। अंग्रेजी पढने से इस वर्ग को जो विशेषाधिकार प्राप्त हो गये है, वे उस समय समाप्त हो जायेंगे, जब प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा और परीक्षा का माध्यम बन जायेंगी। जबतक अंग्रेजी की प्रभुता बनी रहेगी, तबतक उनके विशेषाधिकार अक्षुण्ण रहेंगे, यह बात यह वर्ग भली-भाँति जानता है और इसीलिए अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार अंग्रेजी की प्रभुता बनाये रखना चाहता है। इस युक्ति से अगर अंग्रेजी की प्रभुता बनी रही, तो हिन्दी सौ वर्ष में भी देश की राज-भाषा नही बन सकेगी।

● साधारण नागरिकों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाने के साथ बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना द्वारा विशिष्ट मेधावी व्यक्तित्व विकसित करने का जो सुझाव आयोग ने दिया है, उससे सामान्य जीवन-धारा से निरपेक्ष और विमुख ऐसे व्यक्तियों का सृजन होगा जो 'अतिमानव' होते हुए भी समाजवादी देश में नही खप सकेंगे। वैसे तो समाजवादी देशो में भी मेधावी और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व का विकास वाछनीय माना जाता है। परन्तु इस प्रकार का व्यक्तित्व न तो कर्मभूमि से अलग किसी शीशमहल में विकसित किया जाता है और न उसे विकसित करने के लिए सार्वजनिक शिक्षा पद्धति से अलग किसी विशेष पद्धति का सहारा लिया जाता है, जैसा आयोग ने किया है।

आयोग ने तो दो ध्रुवो की कल्पना कर ली है — एक ध्रुव है उन विलक्षण मेधावियो का जिनमे बौद्धिक एव शास्त्रीय अध्ययन तथा शोध करने की जन्मजात प्रतिभा है और दूसरे ध्रुव पर वे साधारण जन है, जिनकी बुद्धि का सामान्य स्तर उन्हें कर्म भूमि के साधारण व्यावहारिक नागरिक बनने की क्षमता से अधिक कुछ नही प्रदान करता। दो ध्रुवों का यह सिद्धान्त हजारो वर्ष पुराना है। यूनान के शिक्षाशास्त्री प्लेटो ने भी इन्ही दो ध्रुवो की कल्पना की थी। उसका सिद्धान्त था कि साधारण जनता बुद्धि-शून्य होती है और उसमें सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य नही होती। अत समाज के शिक्षार्थियो में से मेधावी छात्रो को अलग छाँटकर उन्हें उच्चतम दार्शनिक शिक्षा देकर समाज का नेतृत्व करने योग्य बनाना चाहिए। किन्तु प्लेटो का यह सिद्धान्त नही चला और आज समाजवाद के युग में, और उस देश में जो समाजवाद लाने के लिए प्रतिश्रुत है, आयोग का यह सिद्धान्त निश्चय ही नही चलेगा। इसका सक्रिय विरोध होना चाहिए।

● यदि आयोग की इस भाषा-नीति का विरोध न किया गया तो भारतीय भाषाओ पर सदा के लिए हीनता की मुहर लग जायगी। आयोग ने शिक्षा के एक स्वर्ण शिखर की बात की है, तो सभी उस स्वर्ण शिखर तक पहुँचना चाहेंगे और यदि वहाँ तक पहुँचने की क्षमता अंग्रेजी पढे बिना नही प्राप्त होगी तो अंग्रेजी पढेंगे। प्रतिभाशाली व्यक्ति भी भले ही क्षेत्रीय भाषाओ को पढकर अपने प्रदेश की बडी-से-बडी नौकरी भी प्राप्त कर ले, परन्तु उनके मुकाबिले में तो हीन बने ही रहेंगे जिनपर अखिल भारतीयता की स्वर्ण-मुहर अंग्रेजी ने लगी है। यदि अंग्रेजी 'मेधा', 'प्रतिभा' 'अखिल भारतीयता' का प्रतीक है, तो कौन ऐसा होगा जो क्षेत्रीय भाषाओं को पढकर गूँगा और हीनता के गर्त में पडा रहेगा ? यदि उसे अंग्रेजी पढने की सुविधा है तो वह अंग्रेजी की सीढियों पर चढकर उस स्वर्ण शिखर पर पहुँचेगा, जहाँ से वे सब छोटे दिखाई पडेंगे जिनके पास केवल भारतीय

भापाग्रा का सम्वल रहा है। स्वतत्र देश मे यह स्थिति नही ग्रानी चाहिए।

● यदि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई तो ऐसे ग्रराष्ट्रीय तत्वों का जन्म होगा जिनसे इस देश की सस्कृति सदा के लिए नष्ट हो जायगी। भापा का सम्बन्ध सस्कृति से है। भापा तो सस्कृति-विशेष की मुखर ग्रभिव्यक्ति मात्र है, ग्रत ग्रंग्रेजी के शीशमहल में पले हुए लोगा से भारतीयता की रक्षा नही होगी। जिस भापा-विशेष के माध्यम द्वारा किसी सस्कृति-विशेष ने ग्रपनी ग्रभिव्यक्ति की है, उसी भापा के द्वारा उसका पोपण ग्रौर श्रृगार होता है। भारतीय सस्कृति ग्रौर जीवन-पद्धति का पोपण भी भारतीय भापाग्रा के माध्यम से ही होगा, किसी विदेशी भापा के माध्यम से नही। ग्रत ग्रंग्रेजी भापा को शिक्षा का माध्यम रखने की सस्तुति करके ग्रायाग ग्रपने उस सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य को ही भूल गया है जो उसकी सारी हलचलो के मूल में रहा है, ग्रर्थात् शिक्षा को भारतीय जन-जीवन से सम्बन्धित करना। ग्रायोग ने रिपार्ट के प्रथम ग्रध्याय के प्रथम ग्रनुच्छेद में लिखा है कि 'ग्राज की शिक्षा में जो सुधार सबसे महत्वपूर्ण ग्रौर ग्रावश्यक है, वह है उसमे परिवर्तन करना ग्रौर उसको जन-जीवन ग्रौर जनता की ग्रावश्यकताग्रो एव ग्राकाक्षाग्रा से जोडना जिससे शिक्षा सामाजिक, ग्रार्थिक ग्रौर सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन बने, ताकि राष्ट्रीय लक्ष्यो की प्राप्ति हो सके।' परन्तु शिक्षा को भारतीय जन-जीवन ग्रौर उसकी ग्रावश्यकताग्रो ग्रौर ग्राकाक्षाग्रो को भारतीय भापाग्रो के माध्यम से ही जोडा जा सकता है, विदेशी भापा के माध्यम से नही। किसी देश में ऐसा नही हुग्रा है, ग्रत यदि यहाँ ऐसा हुग्रा तो शिक्षा भारतीय सस्कृति ग्रौर भारतीय जनजीवन से पृथक ही रहेगी। जो यह बात नही समझते, वे स्वार्थ की भापा बोलते है, राष्ट्र के ग्रमगल की भापा बोलते है। इस तथ्य को जितना शीघ्र समझ लिया जाय उतना ही ग्रच्छा है।

मेरा सुझाव है कि सगठित रूप से इस सस्तुति के विरुद्ध ग्रान्दोलन करना चाहिए। किसी भी कीमत पर देश मे ऐसे ६ विशिष्ट विश्वविद्यालय न खुले, जिनमें केवल ग्रंग्रेजी शिक्षा का माध्यम हो। यह ठोक है कि ग्रन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा के महाविद्यालय खुलें, जिनमें उच्च श्रेणी का ग्रन्वेषण, ग्रध्यापन हो, परन्तु ऐसे विद्यालय प्रत्येक राज्य में हो ग्रौर उनमें शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भापाएँ ही हो। प्रारम्भ में यदि ग्रंग्रेजी रहे तो हिन्दी ग्रथवा क्षेत्रीय भापाग्रा का विकल्प ग्रवश्य रहे। ऐसा होगा तभी, सामान्य शिक्षा ग्रौर विशिष्ट शिक्षा समन्वय हा सकेगा। ग्रायोग ने खुद यह स्वीकार किया है कि ग्रगर किसी विश्वविद्यालय में वाछित योग्यता के छात्र ग्रौर ग्रध्यापक उपलब्ध है तो वह क्षेत्रीय भापाग्रो मे यह प्रयोग करे। ग्रायोग इसके विरुद्ध नही है।

(ग्रध्याय–११, पैरा–११–६१, पृष्ठ–२९३) ●

नयी तालीम परिषद, कुन्डेश्वर के लिए प्रेषित सन्दर्भ लेख

खेल कबड्डी खेलते, राजनीति के लोग।
बड़े खिलाडी मर गये, यह देखो सयोग।
यह देखो संयोग उन्हें छोटो ने पटका।
बना मोर्चा, दिया विरोधी दल ने झटका।
शासक-दल की फूट तोडती पसली हड्डी।
नया मोड ले रहा देखिए खेल कबड्डी।

—'नम्र'

शिक्षा की खोखली नींवें

•

विवेकी राय

प्राध्यापक डिग्री कालेज गाजीपुर
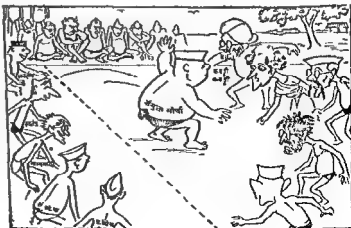
राष्टीय शिक्षा की समस्या सबसे बडी है। ईति भीति और दैन्य-दुर्भिक्ष से सतत प्रताडित पिछड क्षत्रो को उठान क लिए जिस प्रकार का प्रभावशाली शिक्षा सयोजन होना चाहिए वह नहा दष्टिगोचर हो रहा है।

शिक्षा प्रसार का ढाँचा तो विशाल है पर उसक भीतर झाँककर देखन पर शिक्षा क परिणामो क पर खन पर प्रश्न हाता है कि आखिर शिक्षा हो ती भी है या नही ? एक आलाचक न लिखा है— शिक्षा क नाम पर साक्षरता और प्रगति क नाम पर छात्रो की उमर बढ जाती है। सर्वांगीण विकास का जो शैक्षिक वातावरण स्कूलो में होना चाहिए वह कहाँ है ? सारा काय यान्त्रिक पद्धति पर चल रहा है। एक मशान अध्यापक है और अनगि नत मशीन छात्रा की चल रहा है।

शिक्षा क बाद की समस्या

प्रत्यक विद्यार्थी क मन म नौकरी—कोई भी नौकरी—की कामना या कल्पना है। इससे बडा शिक्षा की निस्सारता का प्रमाण और क्या होगा ? शिक्षित बकारो की सेना दिन प्रतिदिन बढकर भार हो रहा है। इसस एक और समस्या यह उत्पन्न हुई कि शिक्षा पूणतया निरुद्देश्य हो गयी। पहले एक टूटा फूटा उद्देश्य (नौकरीवाला) था लेकिन आज शिक्षा प्राप्त लोगो की बहाली देखकर शिक्षा-साधना में लग लोगो में चरम सीमा की नैराश्य भावना उदित हो गयी है। पढकर व क्या करेंगे इस प्रश्न पर बहुत सोचकर भी विद्यार्थी कुछ नही सोच पाते।

गरीबी और शिक्षा

गरीबी सबस भारी शिक्षा-समस्या है। जिनक यहाँ अन्न के एक-एक दाने के लाले पड है व क्या अपन बच्चा को शिक्षा दिलवा सकते है ? आज शिक्षा ऐसी महँगी हो गयी है जिसे देखकर लगता है मानो गरीबो का गरीबी स उठन न देने का कुचक्र है। स्कूलो म जाकर देखा जा सकता है कि कितने लडको के पास पाठ्य-पुस्तकें है ? शुल्क का दुलघ्य गिरि उनके सामन खडा है। आज गरीबो क लडक साहस करके प्राइमरी क बाद माध्यमिक स्कूलो में जाते है। होता क्या है ? सातवी आठवी कक्षा तक जाते-जाते किसी प्रकार ठल ठालकर चलती हुई गाडी गरीबी क गहरे कीचड म धसकर गति शून्य हो जाती है।

उत्तरप्रदेश म आठवी कक्षा तक नि शुल्क शिक्षा की घोषणा हुई। छठी कक्षा में कार्यान्वित हुई और सातवी तक आते आते ताक पर रख दी गयी। शिक्षा के नाम पर जिस प्रकार अँग्रेजी राज में बजट नही होता था कुछ वैसी ही बात अपन राज म भी पा रह है।

वातावरण भी गरीब

जैसा यह गरीब देश है वैसा ही यहाँ का समस्त शैक्षिक वातावरण भी गरीब है। शिक्षा के उपकरण गरीब है। शिक्षालयो की यह गरीबी देखकर भारी खेद होता है। कठिनाई से ऐसे विद्यालय मिलेंगे जिनकी इमारत देखकर कहा जा सके कि यह स्कूल है। गाँवो में खँडहर क रूप में अनेक विद्यालय दिखाई पडते है। ऐसे भी गाँव बहुतायत से मिलेंगे जहाँ दो सौ से ऊपर छात्र है तीन अध्यापक है परन्तु इमारत नाम की कोई चीज नही है। किसी गृहस्थ क दरवाज पर पढाई होती है।

हायर सेकेण्डरी स्कूलो में इमारत-सम्बन्धी दुर्दशा देखते हैं। शायद ही किसी जिले में एक दो विद्यालय

हों, जिनके पास ठीक इमारत हो। व्यापारिक पद्धति पर चलनेवाले इन विद्यालयो में किसी प्रकार काम चलाया जाता है। कही पिंजडे के समान, कही अन्न-गोदाम के समान, कही फौज की बैरक के समान और कही दरबे के समान इमारते है। पण्डित कहते थे—"इमारत बनाने की क्या जरूरत है? लडके पेडो के नीचे पढ लेंगे।" परन्तु यह सन्तोषजनक समाधान नही है। आश्रम बनाने के लिए पूरे शिक्षातंत्र को बदलना पडेगा। फिर, प्रयोगशाला तो रहेगी? यहाँ फिर इमारत का सवाल आया। यहाँ तो प्रश्न है किसी प्रकार टीन या खपरैल से छाकर या एक झोपडी खडी कर स्कूलो पर छात्रों को बिठाकर सनद देनेवाले कारखाने खुल गये हैं। उच्च सुरुचि के लिए उच्च और सुन्दर परिवेश आवश्यक होता है। सामूहिक रूप से, प्राइमरी से लेकर कालेजों तक के कक्षा-भवनों का यह अभाव, दैन्य और श्रीहीन स्वरूप किस ओर सकेत करता है?

छात्रावासो की समस्या

"मूलो नास्ति कुतो शाखा?" जब कक्षा भवन के प्रश्न का मुँह खुला का खुला रह जाता है तो छात्रावास की क्या बात है? किसी भी विद्यालय की पूर्णता छात्रावास में है। शिक्षा एकागी होने का एक यह रहस्य है कि छात्र छात्रावास में नही रहते। ६ घण्टे स्कूल में व्यतीत कर वे अपने घर चले जाते हैं। यह तो 'समिति' का रूप हुआ। पूर्ण 'समाज' का रूप तब होता है, जब छात्र स्कूल के सरक्षण में अपना सारा समय व्यतीत करते है। पढे-लिखे लोगों में सामाजिकता के विकास का अभाव यही से शुरू होता है। देखने में आता है कि 'कामचलाऊ इमारत' वाले कालिजो में पास 'कामचलाऊ' ढग के भी छात्रावास नही है। यह उन कालेजों की बात है, जिनके चलते बीस-पचीस वर्ष का एक युग बीत गया।

दिखाऊ पुस्तकालय

और पुस्तकालय? इसका हाल पूछना नही है। व्यवस्था ने आँखें मूँद ली। शिक्षक मशीन हो गया और छात्र विद्यार्थी से अर्थार्थी हो गये। अब पुस्तकालय से क्या लेना देना है? छात्र दिन रात पाठ्य-पुस्तक और कुजियों के चारों ओर कोल्हू के बैल की भाँति आँख बन्द-कर चक्कर काटा करते हैं। उन्हें किसी प्रकार परीक्षा पास करनी है। आमतौर से कहते सुने जाते है कि जितना वक्त 'बाहरी पुस्तकों' के पढने में लगायेंगे उतना समय अपनी पाठ्यपुस्तकों को देंगे तो लाभ होगा। फिर पुस्तकालय में है क्या? कब पाठ्य-पुस्तकें और सस्ती तथा अनुपयोगी पुस्तकें नम्बर गिनाने के लिए पडी हैं। ये पुस्तकालय पूरे दिखाऊ हैं। विरले ही स्कूल हैं, जिनके पास सामान्य स्तर का पुस्तकालय है और छात्रों में पठन-पाठन का भाव उत्पन्न कर दिया गया है। कही पृथक पुस्तकालयाध्यक्ष नही है। अध्यापक ही यह काम करते हैं। इस अतिरिक्त कार्य के बदले उन्हें कुछ मिलता तो है नही, हाँ, पुस्तकों के खो जाने पर दण्ड अवश्य भुगतना पडता है।

स्कूलों में वाचनालय भी नाम के हैं। छात्र समाचार-पत्र और पत्रिकाओं से दूर रह जाते हैं। इस प्रकार कालेजों से निकलकर भी वे 'जग'-गति और 'युग'-गति से परम अपरिचित रह जाते हैं। ऐसे छात्र अगर माउण्ट एवरेस्ट को यूरोप की एक नदी बताते हैं तो क्या आश्चर्य?

व्यावसायिक स्वरूप

व्यक्ति विशेष के प्रबन्ध से चलनेवाले हायर सेकेण्डरी स्कूल और कालेज एक भारी समस्या हैं। इनकी अव्यवस्थाओं के विषय समय समय पर समाचार-पत्रों में काफी लिखा गया है। उत्तरप्रदेश में जहाँ उद्योग-व्यवसाय नाम-मात्र का भी नही, जहाँ की जनता अपढ और गरीब है तथा जहाँ उद्बुद्ध जनमत का एकान्त अभाव है, शिक्षा के क्षेत्र में ये स्कूल शिक्षितों की एक ऐसी पीढी तैयार कर रहे है, जिनमें जीवन नही, आशा-उल्लास नही, विकासोन्मुख छात्रत्व नही, और नागरिक चेतना नहीं। कुछ आर्थिक विवशताओं के कारण, कुछ सकीर्ण मनोवृत्तियों के फलस्वरूप और कुछ स्वार्थवश ये विद्यालय व्यावसायिक स्तर पर चल रहे हैं। बालकों की शिक्षा पर यहाँ उतना ध्यान नही दिया जाता जितना आर्थिक हानि-लाभ पर। प्रबन्धकारिणी समितियों का प्रमुख दृष्टिकोण शैक्षिक न होकर स्वार्थपरक होता है।

मूल समस्या अध्यापकों की

मूल समस्या अध्यापकों की है, उनके मर्यादित जीवन की है, उनकी स्वतन्त्रताओं और सुविधाओं की है।

माध्यमिक शिक्षा-स्तर पर प्रतिभा की छानबीन

•

रामनयनसिंह

प्राध्यापक मनोविज्ञान विभाग, डिग्री कालेज, गाजीपुर।

किसी भी समाज की वैज्ञानिक, सामाजिक, औद्योगिक, कलात्मक साहित्यिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक प्रगति प्रतिभावान व्यक्तियों पर निर्भर करती है। जितना ही अच्छा अवसर और सुविधा ऐसे व्यक्तियों को दी जाती है उतना ही अधिक समाज धनी होता है। दुर्लभ रेडियो धर्मी तत्वों की तरह प्रतिभा भी दुलभ है। जहाँ भी इसके होने का संकेत मिले वहाँ इसकी ओर विशिष्ट ध्यान देने और उचित रख रखाव की आवश्यकता है। अपने देश में इस दुलभ तत्व को ढूँढ निकालने के लिए और इसके पालन-पोषण के लिए हम क्या कर रहे हैं ?

प्रतिभावान विद्यार्थियों के प्रति हमलोगों की शैक्षिक प्रणाली उदासीन मालूम पड़ती है। सामान्यतया स्कूलों और कालेजों में पदाधिकारी इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उनके यहाँ उत्तीर्ण छात्रों का प्रतिशत बढ़ जाय। स्कूलों की कुशलता का माप मात्र यही है। आज भारतीय शैक्षिक संस्थाएँ कारखाना बन गयी हैं, जहाँ सर्टिफिकेट प्राप्त व्यक्तियों का उत्पादन होता है। कुछ संस्थाओं में पिछड़े हुए और मन्द छात्रों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनके लिए अतिरिक्त कक्षाएँ चलायी जाती हैं। उनमें अतिरिक्त समय, शक्ति लगायी जाती है, ताकि उनको सर्टिफिकेट मिल सके, लेकिन प्रतिभावान छात्रों के लिए क्या होता है ? उनके बारे में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, क्योंकि पिछड़े और मन्द छात्रों की तरह उनसे स्कूल के कथित उद्देश्य में बाधा नहीं पहुँचती।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारी शिक्षण-संस्थाएँ निम्नलिखित कदम उठायें—

- प्रारम्भ से ही प्रतिभावान छात्रों की छानबीन की जाय।
- समाज और प्रतिभावान छात्र की आवश्यकताओं के अनुसार शैक्षिक कार्यक्रम को नियोजित किया जाय।
- प्रतिभावान छात्रों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि वे ऐसे कार्यक्रमों से लाभ उठायें।

इस योजना से सम्बन्धित समस्याओं को निम्न भागों में बाँट सकते हैं—

- इस स्कीम को प्रारम्भ करने की समस्या,
- प्रतिभावान छात्रों के छानबीन की समस्याएँ,
- पाठ्यक्रम की व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएँ,
- शिक्षण विधि और सहायक सामग्री से सम्बन्धित समस्याएँ, और
- उपयुक्त अध्यापकों के चुनाव की समस्याएँ।

स्कीम को प्रारम्भ करने की समस्या

इस सम्बन्ध में स्कूल और कालेजों के पदाधिकारियों की उदासीनता की ओर अभी संकेत किया गया है। ऐसी स्थिति में पहला प्रश्न यह है कि वर्तमान शैक्षिक कार्यक्रम में इस प्रोग्राम को कैसे स्थान दिलाया जाय ?

हमारा राष्ट्र प्रजातांत्रिक है, लेकिन हममें सफल प्रजातंत्र के लिए आवश्यक पहल करने के गुण की कमी है। यह अतीत की अधिकारवादी प्रणाली और संस्कृति की देन है। किसी दिशा में स्वयं पहल करने की अपेक्षा ऊपर से निर्देश या आज्ञा पाने की प्रतीक्षा के हम आदी हैं। इसलिए वर्तमान परिस्थिति में इस दिशा में या तो सरकार पहल करे या ऐसी प्रोत्साहन परिस्थिति उत्पन्न

करें कि शिक्षा संस्थाएँ इस दिशा में स्वयं पहल करने की अभिलाषा करें।

भारतीय शिक्षा का स्वरूप पाठ्यक्रम-केन्द्रित है। अध्यापक का मुख्य उद्देश्य होता है निर्धारित समय में कोर्स समाप्त कर देना। इससे शिक्षा के स्वरूप में कड़ापन आ गया है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के स्वरूप में कुछ अंश तक नम्यता लायी जाय, ताकि वह छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप मोड़ी जा सके।

अब प्रश्न है धन का। प्रतिभावान विद्यार्थियों के लिए अलग से किसी स्कीम को लागू करने से संस्थाओं की जेब पर बोझा बढ़ जायगा। शिक्षण-संस्थाएँ तो पहले से ही आर्थिक भूख से तड़प रही हैं। सरकार और समाज के उदारमना व्यक्तियों को यहाँ आगे बढ़कर बोझा सँभालना है। प्रतिभावान छात्रों के माता पिता, समाज के दान शील व्यक्तियों और सरकार का संयुक्त प्रयत्न इस बाधा को दूर करने में सहायक हो सकता है।

प्रतिभावान छात्रों की छानबीन की समस्या

प्रतिभावान छात्रों की विशेष शिक्षा की दिशा में कोई स्कीम चालू करने में दूसरा प्रश्न है कि इस कार्यक्रम में किन छात्रों को सम्मिलित किया जाय। किस बालक को प्रतिभावान कहा जाय? मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रमाणीकृत बुद्धि-परीक्षाओं में (विशेषकर स्टैन्फोर्ड बिने बुद्धि-परीक्षा में) जो व्यक्ति १४० या इससे अधिक बुद्धि-लब्धांक प्राप्त करता है वह प्रतिभावान कहा जाता है। छात्रों के चुनाव की संख्या के अनुसार इस सीमा को बढ़ाया घटाया जा सकता है। बुद्धि-लब्धांक निर्धारित करने के लिए प्रमाणीकृत बुद्धि-परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है। सावधानी के लिए शाब्दिक, अशाब्दिक और क्रियात्मक परीक्षाओं पर अलग-अलग प्राप्तांक निकालकर विचार करना अधिक उपयोगी होगा। अध्यापकों की संस्तुति और पूर्व उपलब्धि के स्तर पर विचार करके प्रारम्भिक छँटनी की जा सकती है।

रचनात्मक कार्य के लिए अधिक बुद्धि के अतिरिक्त परिश्रम, मौलिकता और प्रेरणा के उच्च स्तर की आवश्यकता होती है। अतः चुनाव करते समय व्यक्तित्व के इन विशिष्ट गुणों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

बुद्धि और व्यक्तित्व-परीक्षण-सम्बन्धी खोजों और मनोवैज्ञानिक साहित्य के प्रचार की आवश्यकता है। इस दिशा में लोगों के विश्वास को जीतने के लिए विश्वसनीय और यथार्थ परीक्षाओं और कुशल परीक्षकों की आवश्यकता होगी।

पाठ्यक्रम की व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याएँ

इस समस्या के दो पहलू हैं। पहला है पाठ्यक्रम में क्या सम्मिलित किया जाय और दूसरा है कैसे इसे कार्यरूप में परिणत किया जाय। पाठ्यक्रम का चुनाव उस उद्देश्य से प्रभावित होगा, जो निर्धारित किया जायगा। निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करने लायक हैं —

- छात्रों के ज्ञान और प्रवीणता की सीमा को निर्धारित करना,
- पहल करना और रचनात्मक शक्ति का विकास करना,
- आलोचनात्मक चिन्तन का अभ्यास देना,
- स्वतंत्र रूप से कार्य करने, योजना बनाने, योजना को कार्यान्वित करने और निर्णय लेने की योग्यता का विकास करना, और
- सहयोग और नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण देना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित कार्य चलाये जा सकते हैं —

- साहित्यिक कार्य—लेख, नाटक, कहानी आदि लिखना, पुस्तकों की समीक्षा प्रस्तुत करना, सम्पादकीय लिखना, नाटक खेलना आदि।
- वैज्ञानिक कार्य—विभिन्न प्रयोग करना, रचनात्मक कार्य करना, विभिन्न प्रश्नों का प्रयोग द्वारा उत्तर ढूँढ़ना, प्राकृतिक घटनाओं का निरीक्षण करना और उसके आधार पर रिपोर्ट तैयार करना।
- अध्ययन गोष्ठियाँ चलाना।
- विभिन्न प्रवीणताओं में प्रशिक्षण—जैसे, टाइप करना, फोटोग्रैफी।

यहाँ मुख्य बात ध्यान रखने की यह है कि पूरा वातावरण बाध्यता से मुक्त हो। कार्य का प्रकार और उसकी जटिलता विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। इस प्रकार के कार्यक्रम के संचालक के सम्मुख एक जटिल समस्या विद्यार्थियों को इस प्रकार के कार्यक्रम में सक्रिय

भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के सम्बन्ध में आयगी। इस समस्या के हल के लिए अध्यापक का व्यक्तित्व, विद्यार्थियों से उसका स्नेहपूर्ण लगाव की आवश्यकता है और दूसरे प्रकार के प्रोत्साहनों की मदद भी ली जा सकती है।

जहांतक पूर्वकथित समस्या के दूसरे पहलू का प्रश्न है, निम्नलिखित रूपों में स्कूल के कार्यक्रम की व्यवस्था की जा सकती है—

- योग्यता के आधार पर छात्रों का वर्गीकरण किया जाय और उसके अनुरूप पाठ्यक्रम रखा जाय।
- प्रतिभा सम्पन्न छात्रों को समूह से अलग वर्गीकृत न किया जाय, लेकिन अतिरिक्त समय में परिसंवाद और विशिष्ट कक्षाओं या अन्य आवश्यक कार्यक्रमों का संचालन किया जाय। ऐसे स्कूलों में, जिनके छात्र छात्रावासों में रहते हैं इस प्रकार के कार्यक्रम के लिए विशेष सुविधा होगी।
- प्रतिभावान छात्रों के लिए अलग से स्कूल चलाने का विचार भी विचारणीय है। हर जिले में ऐसे विद्यार्थियों के लिए कम-से-कम एक संस्था हो। प्राइमरी शिक्षा पूरा करने पर चुने हुए छात्र इस संस्था में लिये जायँ। प्राइमरी शिक्षा की अवधि में बालकों के निरीक्षण का पर्याप्त अवसर भी मिल जायगा।

शिक्षण-विधि और सहायक सामग्री से सम्बन्धित समस्याएँ

उचित निर्देशन के लिए हर प्रतिभावान छात्र का ब्यौरेवार अध्ययन किया जाय। उसके घर, स्कूल, स्वास्थ्य, साथी, रुचि आदि से सम्बन्धित तथ्य इकट्ठा करके बालक को समझने का प्रयत्न किया जाय। इससे बालक के लिए दिशा निर्देशन में सहायता मिलेगी।

इन विशिष्ट कक्षाओं या संस्थाओं में अध्यापक को एक निर्देशक और सामंजस्य स्थापक के रूप में कार्य करना होगा। उसे छात्रों का सामना चुनौती देनेवाली समस्याओं से कराना होगा। निम्न प्रश्नों का उत्तर ढूंढने में अध्यापक का नेतृत्व करना होगा।

१ विशिष्ट समस्या को हल करने के लिए किन सूचनाओं की आवश्यकता होगी?

२ उन सूचनाओं और तथ्यों को कैसे एकत्र किया जायगा?

३ समस्या पर नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जायगा?

इस विश्लेषण के बाद छात्रों को अपने से कार्य करने के लिए छोड़ा जा सकता है विधि चाहे जो अपनायी जाय। अध्यापक को सब कुछ कह देने के लोभ का संवरण करना होगा।

यहां यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की किसी स्कीम में पुस्तकों और यंत्रों की पर्याप्त सुविधा होनी चाहिए।

उपयुक्त अध्यापकों के चुनाव की समस्याएँ

अन्त में, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न, ऐसे अध्यापकों के चुनाव से सम्बन्धित है, जो इस प्रकार की स्कीमों को चला सकें। ऐसे कार्यक्रमों की सफलता या असफलता का श्रेय अध्यापक को होगा। प्रतिभावान छात्रों के अध्यापक में निम्न गुण होने चाहिएँ—

१ उच्च बौद्धिक स्तर, २ बृहत् और बहुमुखी ज्ञान-कोष, ३ बहुमुखी रुचि, ४ अनुसन्धानात्मक मेधा, ५ दूसरों को अनुप्राणित करने और उकसाने की योग्यता, ६ शालीनता, ७ व्यक्तिगत और सामाजिक उत्तर-दायित्वपूर्णता, ८ प्रतिभावान छात्रों के प्रति सहानुभूति रखनेवाला, ९ आलोचना के प्रति सहनशील, १० मौलिक, और ११ आकर्षक व्यक्तित्व।

ऐसे अध्यापकों के चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। इस प्रकार के कार्यक्रम में अध्यापक का विश्वास और उत्साह होना आवश्यक है। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण मिलना चाहिए।

उच्च बौद्धिक छात्रों की शिक्षा के लिए विशेष स्कीम बना देने से ही स्कूल के पदाधिकारियों की जिम्मेदारी नहीं समाप्त होनी चाहिए, बल्कि स्कूल छोड़ने के बाद भी ऐसे बालकों से सम्पर्क बनाये रखना चाहिए, ताकि यह ज्ञान हो सके कि आगे चलकर ऐसे बालकों का क्या हुआ? प्राचीन छात्र परिषद् इस दिशा में विशेष उपयोगी होगी। ●
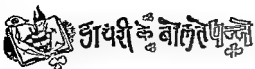
तुम्हारे माँ-बाप हैं कि नहीं ?

दिन के दो बजे हम चार-पांच लोग चले बैलगाड़ी पर चढकर, चरखा पूनी लेकर गांव से बाहर खेतों में उस पार एक बड़े-से मैदान में खड़ी एक शाला की ओर। सभा का आयोजन था। धूप की तेजी याद दिलाती थी धूनीवाले साधु की। आग की उस ज्वाला के आगे यह ताप कम ही था, बस मन वर्तमान से हटा तो तन उतना विद्रोह नहीं करता।

चरमर चूँ, चरमर चूँ करती, धूल उड़ाती गाड़ी पहुँची शाला के सामने। हम सब उतरे। शिक्षक दो-तीन आसन लेकर दौड़े। बच्चे कुतूहल से देखने लगे। जो दूर थे वे पास आकर खड़े हुए, जो जरा निकट थे वे सकुचाकर पीछे खिसक गये, कुछ का पेड़ के चबूतरे पर चढकर देखने की इच्छा हुई, तो कुछ को क्लास की सीढ़ियों पर दरवाजों के सहारे खड़े रहने में समाधान था। देखने की क्रिया समान थी, तभी शिक्षकों के आदेश—"जाओ, अपने अपने घर, कहना सभा है, बबल भाई मेहता आये हैं। उठो, दौड़ो। अबे सुनता है कि नहीं, जल्दी जा।

हमलोग बैठे। चरखे खोले। कातना शुरू किया। बच्चों के लिए हमलोग आकर्षण थे। चरखा ने उस आकर्षण को और बढ़ा दिया। शिक्षकों के आदेश से बच्चों ने पैर उठाये कि फिर रुक गये, हाथ कमर पर टिकाकर पैर जमाकर खड़े रहना चाहते थे कि पुनः वही आवाज "अरे जाते क्यों नहीं, फिर रुक गये ? दौड़ो, जल्दी जाओ, जाओ, माँ-बाप को बुला लाओ कहना बबल भाई आये हैं, सभा है।'

बच्चा का दौड़ने के सिवा कोई चारा नहीं था सब अपनी-अपनी झोपड़ी की ओर दौड़े। तीन चार लड़के दस कदम पर जाकर ठहरे। पीछे मुड़कर हमलोगों की ओर देखने लगे। पुनः वही आवाज, और तेजी के साथ 'क्यों तुम खड़े हो गये ? तुम्हारे माँ-बाप हैं कि नहीं ?"

यह वाक्य मर्माहत करनेवाला था—'अरे माँ-बाप तो हैं। एक आवाज।

'माँ-बाप हैं कि नहीं' सुनकर वे तीन चार बच्चे भी चल पड़े। दौड़ गये। जबतक दिखाई दिये, आँखें देखती रही। क्या बच्चों की जिज्ञासा, कि आनेवाले कैसे हैं क्या हैं क्या पहने हैं क्या लाये हैं बाल कैसे हैं क्या आये हैं आदि के खिलाफ यह आदेश नहीं था ? अगर ५ १० मिनट बच्चों की जिज्ञासा के लिए देकर, माँ-बाप को बुलाने भेजा होता तो क्या इतने में सभा में बहुत देर हो जाती ? सभा का समय तो कभी का बीत चुका, फिर यह उतावली काहे की ? नहीं, उतावली सभा की नहीं, यही अपना स्वभाव है संस्कार है।

आदेश देने के पहले यह समझने का अभ्यास न शिक्षक का है न माता पिता का, कि जिसे आदेश दे रहे हैं, उसका मन-बुद्धि किस दिशा में है। बच्चे का मन अलग विषय में उलझा है तो वह हमारी बात सुनेगा ? सुनेगा भी तो समझ सकेगा ? समझेगा भी तो उत्साहपूर्वक कर सकेगा ? ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर दिखाई देता है आज के प्रौढ जीवन में। उनमें कुछ भी सीखने की, जानने की वृत्ति दिखायी नहीं देती। जो कुछ अब तक कहा जा चुका उसके प्रति कोई शोध की उत्कंठा नहीं। व्यक्तियों के प्रति, प्रकृति के प्रति, विचारों के प्रति कोई उत्सुकता नहीं। बस एक प्रवाह बह रहा है, उसीमें बहते चले जाते हैं। क्योंकि बचपन में बड़ों के द्वारा उनकी सारी उत्सुकता, जिज्ञासा का दमन कर दिया गया है। दमन की हुई चीज कभी समूल नष्ट नहीं होती। विकृत रूप में प्रकट होती है। इस तरह प्रतिहिंसा खून में समा जाती है। कभी-कभी मामूली से प्रसंगों पर ज्वालामुखी का रूप ले लेती है। बात है छोटी-से छोटी, पर परिणाम हैं बड़े-से-बड़े।

—कान्तिबाला

इकाई-प्रणाली (यूनिट टेक्नीक)

●

वंशीधर श्रीवास्तव

आचार्य, राजकीय ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी

इकाई के लिए अन्वित शब्द का भी व्यवहार होता है। अँग्रेजी का शब्द है 'यूनिट', जिसका हिन्दी पर्याय है इकाई। इकाई प्रणाली वास्तव में अध्ययन की पद्धति नहीं है। वह तो पाठ्यक्रम के सगठन की एक प्रणाली है। इसमें पाठ्यवस्तु के विभिन्न तत्वों को एक विशेष ढग से एक सूत्र में पिरोया जाता है।

परम्परागत पाठ्यक्रम विभिन्न विषयों के अन्तर्गत आनेवाली पाठ्य-सामग्री का सग्रहमात्र होता है। सग्रह के इस काम को करते समय बालकों की रुचि और आवश्यकता का ध्यान न रखकर, केवल उसके बौद्धिक स्तर का ध्यान रखा जाता है। भाषा, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि जिन विषयों का ज्ञान कक्षा १ से ८ या १० तक के लिए आवश्यक समझा जाता है, उसे कठिनाई के क्रम से आठ या दस कक्षाओं में वितरित अथवा सगठित कर दिया जाता है। पाठ्यक्रम का यह ढग मनोवैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि इसमें बालक की रुचियों अथवा आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा जाता। इसके विपरीत इकाई प्रणाली में पाठ्य-सामग्री को बालकों की रुचियों, अनुभवों, आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार उद्देश्यपूर्ण इकाइयों में वितरित अथवा सगठित किया जाता है, जिससे ज्ञानार्जन की क्रिया रुचिकर बनी रहे। इन इकाइयों का सम्बन्ध बालक की आवश्यकताओं से होता है। इसीलिए वे उपादेय भी होती हैं। चूंकि पाठ्य-सामग्री को ज्ञान और अनुभव की उद्देश्यपूर्ण उपादेय इकाइयों में बाँटा जाता है इसलिए पाठ्य-वस्तु के सगठन के इस ढग को 'इकाई प्रणाली' कहते हैं। इस प्रणाली में पाठ्य वस्तु को अलग अलग पाठों में प्रस्तुत करने के स्थान पर ज्ञान अनुभव क्रिया की सम्बन्धित इकाइयों में प्रस्तुत किया जाता है।

इकाई-प्रणाली पाठ्यक्रम सगठन की मनोवैज्ञानिक आधुनिकतम प्रणाली है। इस प्रणाली में अध्यापन की सुविधा के लिए डाल्टन प्रोजेक्ट आदि सभी विधियों का उपयोग किया जाता है, जिससे शिक्षण प्रभावकारी हो सके और छात्रों का अधिक-से अधिक लाभ हो सके।

इकाई-योजना की रूपरेखा

इकाई-प्रणाली की योजना लचीली होती है। नीचे इकाई प्रणाली से अध्यापन की एक योजना दी जा रही है। लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से इस रूपरेखा में परिवर्तन किया जा सकता है।

१—इकाई का शीर्षक —इकाई का शीर्षक क्या है? इस इकाई के अन्तर्गत किस विषय का अध्ययन किया जायगा? प्रधान इकाई के सम्यक् अध्ययन के लिए इकाई को जिन उप-शीर्षकों में बाँटा जायगा, उन्हें भी यहाँ लिखना चाहिए।

२—कक्षा—स्तर जैसे सीनियर बेसिक अथवा हाई स्कूल स्तर।

३—समय— इकाई के अध्ययन में कितने घन्टे अथवा दिन लगेंगे।

४—सामान्य लक्ष्य—इस इकाई के अध्ययन से छात्रों को किन लक्ष्यों की प्राप्ति होगी

अर्थात् उनमें किन गुणों, कौशलों और आदतों का विकास होगा अथवा उन्हें किन अनुभवों की प्राप्ति होगी ?

५—पद्धति-निरूपण— इस इकाई के अध्ययन के लिए किस विशेष पद्धति का अनुसरण लाभप्रद होगा, जैसे—समस्या-पद्धति का, डाल्टन-पद्धति का, प्रोजेक्ट (योजना)-पद्धति का अथवा परम्परित पद्धति का। जिस उपशीर्षक के लिए जो पद्धति उत्तम हो उसका निश्चय कर लेना चाहिए। यह भी निश्चय कर लेना चाहिए कि इकाई का विकास अधिकाशतः अध्यापक द्वारा किया जाय अथवा छात्रों द्वारा अथवा दोनों के सहयोग से।

६—पाठ्यवस्तु— छात्र इस इकाई के अध्ययन-काल में जिन विषयों का अध्ययन करेंगे उनकी रूप-रेखा।

७—कार्य— अध्यापक प्रवृत्तियाँ (क्रियाएँ) इकाई के सफल अध्ययन के लिए छात्र और अध्यापक कौन-कौन-सी क्रियाएँ करेंगे ? छोटी-बड़ी योजनाएँ सम्पादित करना, रिपोर्ट तैयार करना, बुलेटिन-बोर्डों का प्रदर्शन करना, पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करना, कक्षा में वाद विवाद करना, भाषण देना, निरीक्षण, सर्वेक्षण और पर्यटन करना, सामग्री संग्रह करना, नये-नये प्रयोग करना, आदि कौन-कौन-सी क्रियाएँ वे करेंगे ? अध्यापक क्या करें जिससे इकाई के अध्ययन द्वारा छात्रों का अधिक-धिक लाभ हो ? इन्हें विस्तार-पूर्वक लिखना चाहिए।

८—अध्ययन के उपकरण—अध्ययन के लिए जिन वस्तुओं, नमूनों, पुस्तक-पुस्तिकाओं, चित्रों, चलचित्रों, चार्टों, पत्र-पत्रिकाओं, स्थानीय व्यक्तियों के भाषणों, विद्यालय के भीतर अथवा बाहर रहनेवाले व्यक्तियों के साक्षात्कार का प्रयोग हो सकता है, इनकी सूची बनानी चाहिए।

९—कार्यविधि प्रयोग—कक्षा में इकाई को कैसे प्रस्तुत करें जिससे छात्रों की रुचि, अवधान और उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त हो।

१०—प्रतिदिन के पाठ—प्रतिदिन कितना पढ़ाया जाय, कौन-कौन-सी क्रियाएँ की जायँ, किन किन साधनों का प्रयोग किया जाय, किस प्रकार के गृह-कार्य दिये जायँ, जिससे प्रतिदिन के निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाय।

११—समापन — इकाई का प्रभावपूर्ण ढंग से समापन कैसे किया जाय ? सबसे महत्त्वपूर्ण सूचनाओं अनुभवों और कौशलों को किस प्रकार प्रदर्शित किया जाय, जिससे छात्र उन्हें पूर्णतया आत्मसात् कर लें। फिर इकाई का समापन कैसे किया जाय, कि वर्तमान इकाई का अध्ययन आगामी इकाइयों के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करे ?

१२—मूल्यांकन — इकाई के अध्ययन से छात्र जो ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं अथवा जिन गुणों और कौशलों को सीख रहे हैं। उन्होंने पूर्णतया आत्मसात् कर लिया है, इसका

समय समय पर कैसे मूल्यांकन किया जाय ? जैसे-जैसे इकाई के प्रमुख उपखण्ड समाप्त होते जायें, वैसे वैसे उन्हें किस प्रकार के अभ्यास, प्रश्न अथवा टेस्ट दिये जायें, अथवा इकाई की परिसमाप्ति पर कैसे परीक्षा ली जाय, जिससे यह जाँच हो जाय कि वांछित उपलब्धियों की प्राप्ति हो गयी है।

इकाई-योजना का एक उदाहरण

इकाई शीर्षक—परिवहन और संचरण के आधुनिक साधन।

कक्षा—सीनियर बेसिक स्तर।

समय—एक सप्ताह नित्य ३५ मिनट के ६ पीरियड।

लक्ष्य—

(१) छात्रों को इस बात का ज्ञान देना कि यातायात के आधुनिक उन्नत साधनों से संसार के दूर देशों के रहनेवाले एक दूसरे के नजदीक आ जाते हैं।

(२) उन्हें यातायात और संचार के विभिन्न साधनों से परिचित कराना और उन साधनों का सापेक्षिक महत्व बताना।

(३) देश, विदेश के प्रमुख जल, थल और वायु-मार्गों का ज्ञान देना।

(४) मनुष्य-जाति के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति में संचरण और यातायात के अच्छे साधनों का मूल्य बतलाना।

(५) उनको यातायात और संचरण के साधनों में सुधार में विज्ञान और टेकनालोजी की देन से अवगत कराना।

(६) मानचित्र, चार्ट, रेखाचित्र आदि बनाने का अवसर देना।

(७) निरीक्षण, सर्वेक्षण, प्रयोग आदि के द्वारा छात्रों की विचार और तर्क-शक्ति को विकसित करना।

पद्धति-निरूपण

कक्षा ६ तक में आते आते छात्र अपने देश के यातायात और संचरण के विषय में पर्याप्त जान जाते हैं। आधुनिक साधनों के विषय में भी उनको ज्ञान है, अतः इस शीर्षक-सम्बन्धी कतिपय समस्याओं को उनके सम्मुख रखा जायगा तथा अध्ययन को आगे बढ़ाया जायगा। बच्चों को नक्शा बनाने और रेखाचित्र खींचने का कुछ अभ्यास है। अतः इकाई के अध्ययन में, इसका प्रयोग भी किया जायगा। स्थानीय और पास पड़ोस के यातायात और संचरण के कार्यालयों और कार्य विधियों के निरीक्षण और सर्वेक्षण के लिए योजनाएँ (प्रोजेक्ट्स) बनायी जायेंगी, जिससे अध्ययन मनोवैज्ञानिक हो सकेगा। अध्ययन को लाभप्रद बनाने के लिए छात्र वाद विवाद करेंगे और रिपोर्ट तैयार करेंगे।

अध्यापक छात्रों के अध्ययन, वाद विवाद आदि का निर्देशन करेगा और योजना के नियोजन और कार्यान्वयन में सहायता करेगा।

पाठ्यवस्तु

निम्नलिखित पाठ्य-विषयों का अध्ययन होगा –

(१) समाज की प्रगति के लिए अच्छे परिवहन और संचरण साधनों की आवश्यकता।

(२) परिवहन और संचरण के विभिन्न साधन, उनके विकास की कहानी। उनका सापेक्षिक महत्व।

(३) हमारे देश में इन साधनों की स्थिति और उसमें सुधार की हमारी योजनाएँ। (क) स्थल (ख) जल (ग) वायु (घ) तार-फोन (च) बेतार के तार आदि।

अध्यापक की क्रियाएँ

१–निम्नलिखित विषयों के अध्ययन के लिए उपकरण तैयार कर उन्हें बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करना–

(क) युगों में यातायात और यात्रा।

(ख) यातायात के साधनों के विकास के महत्वपूर्ण स्थान।

(ग) संसार के कुछ प्रतिनिधि देशों में यातायात और पर्यटन।

२–छात्रों के लिए पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, चित्र, फिल्म आदि संग्रह करना।

३–परिवहन और संचरण विभाग के अधिकारियों से मिलकर पर्यटन के लिए सामग्री एकत्र करना।

४–सामूहिक कार्य के लिए टोलियों का संगठन।

छात्रों की क्रियाएँ

(१) स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण

(२) स्थानीय रेलवे स्टेशन, डाक-घर, हवाई अड्डा, रेडियो-स्टेशन का निरीक्षण।

(३) मानचित्र, चार्ट, रेखाचित्र बनाना और उनमें निम्नांकित को भरना।
१–प्रमुख परिवहन मार्ग, २–रेलवे स्टेशन, ३–हवाई अड्डे का स्थान, ४–यातायात और संचरण के साधनों के विकास के रेखाचित्र।

(४) विषय से सम्बन्धित चित्र पत्र-पत्रिकाओं से काट कर संग्रह करना।

(५) निम्न के मॉडल बनाना –
१–बन्दरगाह का अथवा नदी के स्टीमर-घाट का।

(६) प्रदर्शनी लगाना।

अध्ययन की सामग्री

(१) मानचित्र, चार्ट एवं रेखाचित्र।

(२) पुस्तकें, रेल, जहाज, हवाई जहाज-सम्बन्धी किताबें।

(३) प्रकाशन विभाग की तृतीय पंचवर्षीय योजना।

(४) रेलवे मंत्रालय द्वारा प्रकाशित योजना, टाइम टेबुल और पैम्फलेट, रेलवे पत्रिकाएँ।

(५) फिल्म और फिल्मस्ट्रिप।

विधि

नीचे लिखी बातों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करते हुए इकाई का अध्ययन आरम्भ किया जायगा।

(क) यातायात और संचरण के साधनों के विकास और सुधार पर बल क्यों?

(ख) सरकार की इस सम्बन्ध में योजनाएँ।

१–कक्षा के साथ इकाई के अध्ययन की योजना बनाना—सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन के लिए।

२–व्यक्तिगत और सामूहिक कार्य–जिसमें रिपोर्ट लिखना, मानचित्र बनाना, मॉडल बनाना प्रदर्शनी का आयोजन करना, आदि कार्य होंगे।

३–योजना और समन्वित शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया जायगा।

प्रतिदिन के पाठ

१–(क) इकाई का आरम्भ – प्रस्तावना, पंचवर्षीय योजनाओं में यातायात-सम्बन्धी विकास-कार्य पर बल। क्यों?

(ख) कक्षा की सहायता से अध्ययन के लिए इकाई योजना का नियोजन तैयार करना, वाद-विवाद और अध्ययन की योजना को अन्तिम रूप देना।

२–यातायात और संचरण की आवश्यकता और साधनों के महत्व का अध्ययन – व्यापार, उद्योग, प्रशासन, सुरक्षा, सामाजिक सम्पर्क, शिक्षा और मनोरंजन के क्षेत्र में।

(क) समस्याएँ और उत्तर वाद विवाद।

(ख) अध्ययन के लिए निर्दिष्ट पाठ।

(ग) गृहकार्य – विगत दस सौ वर्षों में गति वृद्धि का रेखाचित्र बनाना – चार्ट और ग्राफ बनाना।

३–यातायात के विभिन्न साधन —

(क) यातायात के विभिन्न साधनों और मार्गों का अध्ययन और उनका तुलनात्मक महत्व।

(ख) विभिन्न प्रकार के वाहन और उनकी उपयोगिता, विभिन्न प्रकार के मार्ग—विज्ञान और टेक्नालोजी का प्रभाव, भूमि-क्षेत्र का प्रभाव।

(ग) अध्ययन के लिए निर्दिष्ट पाठ – रेलगाड़ियों, जहाजों, हवाई जहाजों-सम्बन्धी पुस्तकों से पहाड़ों, हिमागारों, बरफ से घिरे समुद्रों और रेगिस्तानों की यात्रा विवरणों से।

(घ) क्रियाएँ —

(क) स्थानीय यातायात की सुविधाओं का सर्वेक्षण।

(ख) *यातायात के विभिन्न साधनों के मार्ग चलानेवाले एलबम बनाना और बुलेटिन बोर्ड के लिए उपकरण सामग्री तैयार करना।*

४—स्थलीय यातायात (I)

(क) स्थल-यातायात के विभिन्न साधनों का अध्ययन, रेल और सड़कों का एक दूसरे का पूरक सम्बन्ध, लम्बाई, यात्रा और आय के हिसाब से एक दूसरे से तुलना। एशिया महाद्वीप को मिलानेवाली रेलें और इस युग में भी सबसे पृथक् रह गये स्थानों का अध्ययन और इस विषय पर वाद-विवाद।

(ख) निर्दिष्ट कार्य — विभिन्न देशों को मिलानेवाली रेलों का मानचित्र बनाना और उन क्षेत्रों का नक्शा बनाना, जहाँ यातायात के साधन बहुत कम हैं।

(ग) बुलेटिन-बोर्ड पर प्रदर्शन के लिए सामग्री एकत्र करना।

(घ) निर्दिष्ट पाठ — हमारी रेलें, प्रकाशन विभाग की पुस्तिका।

५—स्थलीय यातायात (II)

(१) दुरूह क्षेत्रों में स्थल यातायात का अध्ययन, जैसे पहाड़ों में अथवा दलदलों और बर्फीले मैदानों में।

(क) समस्या के समाधान के लिए सामग्री एकत्र करना।

(ख) निर्दिष्ट पाठ—१—विश्वकोशों से इस सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्र करना। २—देश और उनके निवासी (लैण्ड एण्ड पीपुल) नाम की पुस्तक सीरीज से सम्बन्धित भागों का अध्ययन।

(ग) निर्दिष्ट कार्य—१—पहाड़ी रेलों और झूले के पुलों का निर्माण, २—चित्र एकत्र कर एलबम बनाना।

६—स्थलीय यातायात (III)

भारत के यातायात का अध्ययन, वर्तमान सुविधाएँ और उनमें सुधार — पंचवर्षीय योजनाओं में प्रमुख रेलें और सड़कें।

(क) निर्दिष्ट कार्य —

१—भारत में पहाड़ों की रेल के विकास पर *रिपोर्ट तैयार करना।*

२—देहात के यातायात की सुविधाओं पर *रिपोर्ट तैयार करना।*

३—भारत की प्रमुख रेलों और सड़कों का मानचित्र बनाना।

(ख) निर्दिष्ट पाठ —

भारत में माल-यातायात, प्रकाशन विभाग की पुस्तक।

७—जलीय यातायात (I)

(क) युगों युगों में जल-परिवहन — विभिन्न जल-परिवहन का विकास।

(ख) आधुनिक युग-परिवर्तन — वाष्प और शक्ति *सचालित बड़े-बड़े जहाज — उनके प्रकार,* बन्दरगाह और बड़ी-बड़ी नहरें।

(ग) चौड़ी गहरी नदियों में जहाजरानी — भारी बोझों को ढोने के लिए।

(घ) समुद्री यातायात — संसार के प्रमुख जलमार्ग और बन्दरगाह।

१—अध्यापक द्वारा अध्ययन के लिए सूचनाएँ देना और छात्रों द्वारा सामूहिक कार्य, टोलियों में।

(ख) स्वेज नहर का महत्व — उसकी कहानी— निर्दिष्ट कार्य— (१) जलमार्ग के मानचित्र। (२) स्वेज और पनामा नहरों के रेखाचित्र, मॉडल। निर्दिष्ट पाठ— स्वेज और पनामा-सम्बन्धी साहित्य।

८—जलमार्ग (II)

भारत के जल-यातायात का अध्ययन —

(क) समुद्री मार्ग और नदी के परिवहन मार्ग का अध्ययन—अध्यापक द्वारा प्रस्तुतीकरण और इन सुविधाओं का पंचवर्षीय योजनाओं में विकास इस विषय पर बातचीत।

(ख) निर्दिष्ट काम—(१) प्रमुख बन्दरगाहों का मानचित्र बनाना। (२)—बम्बई कलकत्ता के बन्दरगाहों का मॉडल बनाना।

(ग) निर्दिष्ट पाठ—पंचवर्षीय योजनाओं में सम्बन्धित अंश को पढ़ना।

९—वायु-यातायात —

१—(क) मन्द—गहन अधिक गति।

(ख) उच्च स्तम्भ पहाड़ आदि विघ्नों को दूर करने का सर्वोत्तम साधन।

(ग) संसार के प्रमुख वायुमार्ग।

(घ) वायु—यातायात की बाधायें।

२—निर्दिष्ट पाठ —

(क) वायु यातायात की कहानी।

(ख) विभिन्न प्रकार के वायुयान।

(ग) संसार के प्रमुख वायुमार्ग।

(घ) भारत के प्रमुख वायुमार्ग।

३—निर्दिष्ट काम —

(क) विभिन्न प्रकार के वायुयानों के चित्र एकत्र कर एलबम बनाना।

(ख) भारत और संसार के वायुमार्गों के मानचित्र।

१०—संचरण के साधन —

संचरण के आधुनिक सुविधाओं का अध्ययन और उद्योग-व्यापार और मानव-सम्बन्धों के विकास में उनका हाथ।

(क) डाक-तार-व्यवस्था टेलीफोन और बेतार के तार की सुविधाओं का अध्ययन और इनका तुलनात्मक महत्व और पंचवर्षीय योजनाओं में इन साधनों का विकास।

(ख) निर्दिष्ट पाठ—सम्बन्धित साहित्य पढ़ना।

(ग) निर्दिष्ट काम—

१—भारत के वायरलेस स्टेशनों का मानचित्र।

२—संसार के मुख्य तार लाइनों की सूची बनाना।

३—संसार के प्रमुख देशों की संचरण-सुविधा का चार्ट बनाना।

११—यातायात और संचरण की सुविधाओं का मनुष्य की बस्तियों पर प्रभाव।

(क) यातायात की सुविधा के कारण बड़े-बड़े नगर कम कम बसते हैं?

(ख) कुछ प्रतिनिधि नगरों के उदाहरण।

१२—यातायात और संचरण की सुविधाओं का उद्योगों की स्थापना में महत्व —

(क) यातायात की सुविधाओं का समिति में कुछ प्रमुख उद्योगों और औद्योगिक नगरों का अध्ययन —विशेषतः — १—लोहा और इस्पात २—वस्त्र ३—जूट और पेट्रोलियम।

(ख) यातायात के द्वारा नए समाज का सृजन सामयिकियों का उदाहरण।

(ग) निर्दिष्ट काम —

(क) भारत और विश्व के लोहे और इस्पात के कारखानों के मॉडल और मानचित्र बनाना।

(ख) सन पावर कारखानों का रेखाचित्र बनाना।

(ग) जूट कपड़े और लोहा तथा इस्पात के उद्योग पर निबंध तैयार करना।

विचार-विमर्श के लिए कुछ समस्यायें

१—किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश का आर्थिक और सामाजिक प्रगति वहां के यातायात और संचरण की सुविधा पर निर्भर करता है। क्यों?

२—उत्पादन और उपभोक्ताओं का समीप लाना आवश्यक है। क्यों और कैसे?

३—यातायात के उन्नत आधुनिक साधनों के साथ आज भी प्राचीन साधनों का उपयोग हो रहा है। क्यों?

समापन — प्रदर्शनी का आयोजन करना।

१—नीचे लिखे चार्टों और मॉडलों का प्रदर्शन —

(क) युगों-युगों में यातायात और यात्रा का विकास।

(ख) यातायात और संचरण के आधुनिक साधन।

(ग) भारत के विभिन्न प्रदेशों के साधनों का तुलनात्मक चार्ट।

२–काल्पनिक यात्राओं और भ्रमणों की कुछ कहानियाँ तथा निबन्ध।

३–टोलियों की रिपोर्ट।

४–बुलेटिन-बोर्ड पर प्रदर्शित सामग्री।

मूल्यांकन —

(क) परीक्षण – निबन्धात्मक और आधुनिक प्रणालियों के द्वारा।

(ख) प्रदर्शन आदि के लिए की गयी क्रियाओं के मूल्यांकन द्वारा।

नमूने के कुछ प्रश्न —

१–सिकुड़ते संसार का क्या अर्थ है ?

२–जल यातायात थल यातायात से सस्ता क्यों है ?

३–यातायात की सुविधा से औद्योगीकरण का विकास क्या और कैसे होता है ?

४–निम्नांकित के कारण बताओ —

(क) रेगिस्तानों, पहाड़ों और वनों से भरे क्षेत्र में यातायात की असुविधा।

(ख) वायुयात्रा के लिए ध्रुव-प्रदेशों का महत्व।

(ग) स्वेज अथवा पनामा-नहरों का निर्माण।

(घ) कांडला बन्दरगाह का निर्माण।

५–निम्नांकित पर कम से कम सौ शब्दों की टिप्पणियाँ लिखिए —

(क) स्टीमर और जहाज का अन्तर।

(ख) राष्ट्रीय राजपथ।

(ग) ट्रान्स साइबेरियन रेलवे।

(घ) एयर इण्डिया इन्टरनेशनल (अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय वायुमार्ग)

(ङ) झूला मार्ग (रोप-वे)

(च) संचार साधन को दोहरा रूप देती है।

६–जलमार्ग द्वारा संसार में सबसे अधिक यातायात किन देशों के बीच होता है।

यूरोप और भारत

या

उत्तरी पश्चिमी यूरोप और उत्तर पूर्व अमेरिका।

या

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और जापान ?

ऐसा क्यों ?

अधिक जनसंख्या के कारण

अथवा

दो महान राष्ट्रों के कारण

अथवा

औद्योगिक दृष्टि से प्रगति के कारण ?

७–नक्शे में नीचे लिखे स्थानों को मिलानेवाले मार्गों को दिखाइए —

(क) बम्बई, केपटाउन, जन्जीबार, मूलान, एथेन्स, रियोडी जेनिरियो (जलमार्ग)

(ख) कलकत्ता, हांगकांग, जकार्ता, सैनफ्रांसिसको और टोकियो (वायुमार्ग)

(ग) दिल्ली, भोपाल और बम्बई तथा मद्रास (रेल मार्ग)

(घ) दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता (सड़क)। ●

नयी तालीम के बिना हिन्दुस्तान के करोड़ों बालकों को शिक्षा देना लगभग असम्भव है, यह चीज आज सर्वमान्य हो गयी कही जा सकती है। इसलिए ग्रामसेवक को उसका ज्ञान होना चाहिए।— गांधीजी

परीक्षा-मुक्त जीवन-शिक्षण

●

नत्थूलाल मान्धाता

(कार्यानुभव द्वारा बच्चों को व्यावहारिक ज्ञान दिलाने के एक सद्‌प्रयास का विवरण। सं०)

लोकभारती, शिवदासपुरा में बुनियादी शिक्षा के आधारों पर पूर्व बुनियादी से लेकर ७ वें वर्ग तक शिक्षण का कार्य नयी तालीम विद्यालय द्वारा चल रहा है। इसमें पढ़नेवाले बालकों का शिक्षण बँधे-बँधाये किताबी शिक्षण से भिन्न प्रकृति, सामाजिक स्थिति, तथा उद्योगों के प्रसंगों के माध्यम होता है। बालक अपने वर्ग के पुस्तकालय से प्रसंगानुसार पुस्तकें चयन कर पढ़ते हैं। इसलिए कोई निश्चित व निर्धारित पाठ्यपुस्तकें नहीं हैं, तथा कोई भी त्रैमासिक व वार्षिक परीक्षाएँ नहीं होती हैं। इसलिए बालक की प्रगति को आँकने तथा शिक्षा-क्रम के अनुसार बालक के स्तर से अनुबन्धित शिक्षण का कार्य चल रहा है। इसको देखने के लिए हर वर्ग-शिक्षक चार माह में (ऋतुओं के अनुसार), जो कुछ उसने पढ़ाया है, उसका विवरण तैयार करता है तथा उसके अनुसार हर बालक की प्रगति का लेखा जोखा लेता है।

विद्यालय में हमलोग बालकों की प्रगति के मूल्यांकन का जो तरीका निकाल सके हैं इससे शिक्षक और शिक्षार्थी को बड़ा लाभ हुआ है तथा शिक्षक के मन में बालक के प्रति सहानुभूति, स्नेह, सजगता का संचार हुआ है। जब स्टाफ मीटिंग होती है तो हर शिक्षक अपने वर्ग के बालकों का वकील बनकर आता है। चूँकि हर क्लास में साथ रहनेवाला शिक्षक उसकी प्रगति से सुपरिचित रहता है अतः वह हर बालक का केस सफलता-पूर्वक मीटिंग के सामने रखता है। बालक में अन्य स्टाफ के लोगों की रुचि पैदा हो सके इसके लिए वह प्रयत्न करता है।

जो विषय पढ़ाये जाते हैं उनका हर चार महीने में लेखा-जोखा लेकर विवरण तैयार किया जाता है। उसका एक नमूना नीचे दिया जा रहा है —

वर्ग ४ के शिक्षण का विवरण

विषय—भाषा (हिन्दी)

लेखन—कक्षा ३ से अबतक दैनिक विवरण लिखने में छात्रों ने प्रगति की है। श्यामपट्ट या पुस्तकों से प्रतिलेख लिखते समय शुद्ध लिखने का अभ्यास हो गया है। लेखन के नियमों की विधि का ध्यान रखते हैं। दावात एवं होल्डर का सही प्रयोग करना, डेस्क पर लिखते समय हाथ को सही स्थिति में रखना और निब का ठीक कोण बनाकर चलाने का अभ्यास कराया गया है—जिससे लेखन में आशातीत सुधार हुआ।

अक्षर-सुधार— वर्ग में अक्षरों को सुंदर रूप से लिखने का, अक्षर की सुंदर बनावट का अभ्यास सुन्दर लेखों के द्वारा किया गया है। इस अवधि में बालक ने औसतन तीस सुंदर लेख लिखे हैं। प्रसंगों के अनुसार निबन्ध, वर्णन और जीवनी लिखने का अभ्यास किया गया। जैसे १—मौसम का वर्णन २—खेत और किसान, ३—जंगल का दृश्य, ४—बाग की सुन्दरता। कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर कृष्ण, दशहरे के प्रसंग से राम, और ११ सितम्बर का विनोबा, तथा २ अक्तूबर को गांधीजी का जीवन-चरित्र बताया गया। बालकों ने इनके जीवन की

इमी के साथ सुन्दर लेख का अभ्यास चलता है। इस कार्य में बच्चे रुचि से भाग लेते हैं। कलम का पकड़ना, उसे कागज पर चलाना, स्याही किस तरह की हो, तथा बैठने का तरीका क्या हो, बतलाया गया।

स्वास्थ्य और सफाई

व्यक्तिगत—कक्षा में सफाई बनाये रखना, साफ स्थानों को साफ रखने का ध्यान रखना, नित्य नियम की आदत डालना, कपड़े धोना, स्नान करना, कपड़े पहनना आदि बातों का ज्ञान प्राप्त कराया गया। अपने द्वारा प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं को साफ रखना एवं कार्य होने पर यथास्थान रखने की आदत डाली गयी।

छुट्टी के दिन अपने अपने मकानों की सफाई करना, बिस्तरों को धूप में डालना, उठाना, और उससे लाभ के बारे में समझाया गया।

सामूहिक—शाला एवं अपने कमरे की सफाई करना, कचरा उठाकर कचरा-पेटी में तथा गड्ढे में डालना, शाला के प्रांगण, टट्टी-पेशाब घरों, पानी पीने की टंकिया आदि स्थानों की सफाई करने का अच्छी तरह अभ्यास हो गया है।

स्वास्थ्य—अपना वजन तौलना, घटने बढ़ने की जानकारी रखना, स्वस्थ रहने के नियमों की जानकारी प्राप्त करना, आठ रोज में नाखून काटना, प्रतिदिन मंजन करना, या दातुन से दांतों की सफाई करना, साफ कपड़े पहनना तथा उनका मन पर प्रभाव, मौसम के अनुसार कपड़े पहिनना आदि की जानकारी दी गयी।

ग्रामदानी गांवों में पदयात्रा के समय फोड़े, फुंसी, बुखार, आदि के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी करायी गयी। बीमारों की सेवा करने का तरीका बतलाया गया।

कताई

पूनियां बनाना—बालकों को इस कार्य की जानकारी अच्छी तरह प्राप्त है। स्वयं सब प्रक्रियाएँ कर उत्तम पूनी बनाना जानते हैं।

कताई—पेटी चर्खे पर सब बालक अच्छी तरह सूत कातना जानते हैं। धुनाई, बुनाई, के यंत्रों की जानकारी है।

वर्षान्त में हमारी उत्तम गति १ घंटे में १६० मीटर थी। वर्तमान समय में औसत कताई की गति १९७ मीटर प्रतिघंटा है।

कृषि बागवानी—हम लोगों ने सामूहिक कृषि कार्य में दो खेतों को तैयार किया। इन खेतों में झाड़ियाँ काटना, कचरा साफ करना, हल से तैयार खेत का घासपात निकालना, बीज डालना, तथा बीजों की पहिचान आदि का ज्ञान प्रत्यक्ष में किया गया है।

तिलहन, चँवला, मक्का, ज्वार, बाजरा, के बीज बोये। बीज बोने के तरीके, कौन-सा बीज कितनी दूरी पर बोया जाता है उसकी जानकारी बालकों ने परिश्रम-पूर्वक प्राप्त की।

कृषि—फूल उगाने की दृष्टि से नयी तालीम-विद्यालय के अहाते के अन्दर की क्यारियों में टट्टी की खाद देकर क्यारियाँ तैयार की गयी। उसमें कद्दू, लौकी, ग्वार, बालौर, तोरई आदि सब्जियां बोयी गयी।

इसी समय ग्रामदानी गांवों की पदयात्रा के साथ फसलों का अवलोकन किया गया। बाजरा, ग्वार, उड़द, चँवला, मूँगफली, मूंग, मक्का, आदि फसलें, जो कुछ तैयार हो पायी थी, देखने का मिली। परन्तु पर्याप्त वृष्टि न होने से खड़ी की खड़ी फसल सूखते या जलते देखी गयी। किसानों से खेत में ही फसलों के सूखने के बारे में बालकों को समझाया गया।

किसानों से बातचीत करते समय सबके मन में गहरा दुःख था, इसका असर उन्हें बालको पर भी हुआ। ठंड के दिनों में मिलनेवाली सब्जियों के खेत तैयार किये गये। गोबर, अमोनियम, सल्फेट, जिप्सम, यूरिया, रासायनिक खादों को डालकर क्यारियाँ तैयार की गयी। खादों की पहिचान, मात्रा का ज्ञान, एवं फायदे आदि के बारे में जानकारी दी गयी।

पिछले वर्षों से इस वर्ष वर्षा बहुत कम रही। कुल पाँच इंच बरसात हुई। वर्षा मापक यंत्र द्वारा प्रत्यक्ष में वर्षा का पानी मापकर दिखाया गया। उसकी बनावट एवं पानी भरने के बारे में समझाया गया।

शिक्षक
नयी तालीम विद्यालय
शिवदासपुरा, जयपुर,
राजस्थान।

चौथे आम चुनाव पर जर्मन समाचार-पत्रों की टिप्पणी

विकल्प की खोज

श्री एफ० केनन, 'डीवेल्ट' जर्मन राष्ट्रीय दैनिक—

भारत के आम चुनाव एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। आशंकाओं और भीतरी तथा बाहरी दबावों से उत्पन्न नाना प्रकार की चेतावनियों के बावजूद ये आम चुनाव हुए। इन चुनावों का सफलतापूर्वक समाप्त हो जाना और मतदान के समय शान्ति रहना यह साबित करता है कि भारत में लोकतन्त्र का मूल उद्देश्य पूरा हुआ है। मतदाता को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने मताधिकार के प्रयोग का अवसर देना और २५ करोड मतदाताओं के लिए अनुशासित और व्यवस्थित ढंग से यह अवसर प्रदान कर देना वास्तव में एक बहुत बडी बात है।

चुनाव परिणामों ने यह साबित किया है कि भारत की जनता या ही अन्धाधुन्ध पीछे चलनेवाली नहीं है बल्कि अपनी सहायता आप करने की भावना से वह विकल्प की खोज में है। चुनावों के परिणामों के बारे में पहले से जो धारणा बना ली गयी थी, मतदाताओं ने उसे भले ही गलत सिद्ध कर दिया हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि इन चुनावों ने लोकतन्त्र के परिपालन की सम्भावनाओं को और भी चमका दिया है। भारत के राजनीतिक तत्त्व इन सम्भावनाओं का कहाँ तक पूरा पूरा लाभ उठायेंगे यह तो आगे की घटनाओं से ही सिद्ध होगा।

लोकतन्त्र की गहरी जडें

श्री के० मेटार्प 'फ्राक फुर्तर अलगोमाइने' जर्मन राष्ट्रीय दैनिक

भारतीय आम चुनावों के ये तीन पक्ष बहुत प्रभावित करनेवाले हैं —

१ लोगों का चुनावों के कडे मुकाबिले में गहरी रुचि लेना यह साबित करता है कि भारत में लोकतन्त्र की जडें जम चुकी हैं।

२ दूर-दूर के छोटे गाँवों में भी चुनाव नियमों का भली प्रकार पालन किया गया। देश का आकार और मतदाताओं की इतनी बडी संख्या देखते हुए यह कोई कम महत्व की बात नहीं है कि देश में सभी जगह चुनाव शान्तिपूर्वक और इतने कम समय में पूरे हो गये।

३ जहाँ तक परिणामों का सम्बन्ध है यह वाकई बहुत बडी बात है कि विभिन्न मतदान केन्द्रों पर मतदाताओं के विभिन्न रुख होते हुए भी केन्द्रीय संसद में कांग्रेस को बहुमत में आने का अवसर मिल रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में प्रतिपक्ष विभिन्न गुटों में बँटा हुआ है। कुछ राज्यों में स्थिति का बदलना अगले आम चुनावों में केन्द्रीय संसद में कांग्रेस के लिए खतरे की चेतावनी देता है। हाँ ! यह जरूर है कि इन वर्षों में कांग्रेस के काम पर इस खतरे का कम और ज्यादा होना बहुत कुछ निर्भर करेगा।

विशेषज्ञों के अनुमान सही

ओ० डब्लू० ऐशके 'नेशनल प्रेस एजेंसी'

राजनीति के पण्डितों ने इसबार कांग्रेस पार्टी की जबर्दस्त हार, कांग्रेसप्रधान श्री कामराज के लिए कठिनाइयाँ,

और केरल में संयुक्त प्रतिपक्ष मोर्चे के विजय की जो भविष्यवाणी की थी वह सच निकली।

नयी दिल्ली में मौजूद विदेशी प्रेक्षक इस बात से विशेष तौर पर प्रभावित थे कि लोग इतनी बड़ी संख्या में मतदान में भाग ले रहे हैं। अमेरिका–जैसे बड़े देश के चुनावों से इन चुनावों की बड़ी अच्छी तरह तुलना की जा सकती है। संसार के बड़े लोकतंत्र का यह चुनाव इस बात का बेहतर सबूत था कि भारत में लोकतंत्र अपनी जड़ें जमा चुका है।

एक महत्वपूर्ण सबक

कार्ल वाइस जर्मन टी० वी० सर्विस द्वितीय चैनेल

देश की व्यापकता और लोगों की अनेक समस्याओं के सन्दर्भ में भारत के आम चुनावों के बारे में यही कहा जायगा कि बहुत अनुशासित और व्यवस्थित ढंग से वे सम्पन्न हुए। मतदाताओं की इतनी बड़ी संख्या और उम्मीदवारों के बड़े मुकाबिले के कारण चुनावों में लोगों की अधिक से अधिक दिलचस्पी के कारण यदि इधर-उधर कुछ थोड़ी बहुत गड़बड़ी भी हुई तो उसे व्यवस्थित चुनाव-कार्यक्रम में कोई बाधा नहीं माना जाना चाहिए।

साधारण से साधारण लोग भी इस बारे में बहुत स्पष्ट थे कि उन्हें किस उम्मीदवार को किस उद्देश्य के लिए वोट देना है। भारत की इस मिसाल के आधार पर भारतीय चुनावों को देखते रहनेवाले अन्य देशों के लोगों को यूरोपीय इतिहास के सन्दर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि लिख और पढ़ लेने की योग्यता प्राप्त कर लेने से ही राजनीतिक सूझबूझ नहीं आ जाती। यह भारत के इन आम चुनावों का एक महत्वपूर्ण सबक है जो इतिहास के विद्यार्थियों, राजनीतिज्ञों और नेताओं को सीखना चाहिए। ●

चमत्कार नहीं श्रद्धा

बचपन में हमने एक सुन्दर कहानी पढ़ी थी। एक गरीब किसान का लड़का बीमार था। किसान ने खूब औषधोपचार किया लेकिन लड़का अच्छा नहीं हुआ। आखिर उसके पैसे भी खतम हुए। एक दिन उसने लड़के से कहा 'कल तुम्हारे लिए मैं वैद्यराज लानेवाला हूँ।' सुनते ही लड़के को प्रसन्नता मालूम हुई।

दूसरे दिन सुबह उसने कमरे के दरवाजे और खिड़कियों को खोल दिया बिस्तर वगैरह साफ कर दिया और लड़के से कहा 'बैठो, वैद्यराज आयगा।" इतने में भगवान् सूयनारायण आये और उनकी किरणें लड़के के चेहरे पर पड़ी। पिता ने कहा 'देखो, वैद्यराज आये हैं। अब तुम्हारे सब रोग खतम हो जायेंगे।'

ठीक वैसा ही हुआ। उसका रोग खतम हुआ। यह केवल सूर्यनारायण का चमत्कार नहीं श्रद्धा का भी चमत्कार है। लड़के को जब लगा कि अब वैद्यराज आ गया, तो रोग भी खतम हो जायगा।

—विनोबा

●

नयी तालीम मासिकी का प्रकाशन-वक्तव्य

फार्म ४, नियम ८

प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
प्रकाशन-काल	मासिकी
मुद्रक व प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी-१
सम्पादक का नाम	धीरेन्द्र मजूमदार
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी १
पत्रिका के मालिक	सर्व सेवा संघ (वर्धा) राजघाट, वाराणसी १

(सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट १८६० के सेक्शन २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था)

रजिस्टर्ड नं० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट, यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

२८ फरवरी, '६७ —श्रीकृष्णदत्त भट्ट

प्रशिक्षण-विद्यालयों का पाठ्यक्रम : एक विश्लेपण

●

जे० डी० वैश्य

डिप्टी डायरेक्टर, राज्य शिक्षा संस्थान (एस आई ई)
फतेहपुरा, उदयपुर (राजस्थान)

यह निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण पर पर्याप्त बल देने की आवश्यकता है। शिक्षकों के प्रशिक्षण पर प्रत्येक राज्य-सरकार काफी धन व्यय कर रही है। इस समय राजस्थान में दो प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ चल रही हैं। एक तो प्रशिक्षण महाविद्यालय जिनमें बी० एड० एम० एड० के छात्राध्यापक लिये जाते हैं और दूसरे एस० टी० सी० स्कूल हैं जिनमें न्यूनतम हाईस्कूल पास अध्यापक लिये जाते हैं।

सन् १९४७ के बाद स्कूलों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। विकास का यह कार्यक्रम इतनी तेजी से चला है कि प्रशिक्षण-संस्थाएँ साथ-साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकी। यही वजह है कि आज भी उनका पाठ्य क्रम और उनकी प्रणाली ६० वर्ष पुरानी है।

वर्तमान दशा

आज के प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक को कक्षा में पढ़ाते देखकर अधिकतर निराशा ही होती है। यदि हम ३० वर्ष पहले के प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक का चित्र अपने मस्तिष्क में रखकर वर्तमान अध्यापक की कक्षा में जाते हैं तो निराशा और भी बढ़ जाती है। इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। हमको पहली और वर्तमान परिस्थिति की तुलना करनी होगी और सोचना होगा कि ऐसा क्यों है।

यह कटु सत्य है कि छात्राध्यापक सुबह से शाम तक परिश्रम में जुटा रहता है। उसके अध्यापक स्वयं बहुत मेहनत करते हैं। इतना होते हुए भी हमारे एस०टी० सी० विद्यालयों से सफल अध्यापक नहीं निकल रहे हैं।

आज छात्राध्यापक को एस० टी० सी० प्रशिक्षण-विद्यालय में हम जो कुछ सिखलाते हैं उससे वह न तो स्कूल की पूरी जानकारी कर पाता है न बालकों की। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान प्रशिक्षण विद्यालयों से निकला हुआ छात्राध्यापक न तो बालकों के दृष्टिकोण से उपयोगी बन पाता है और न स्कूल के।

पाठ्यक्रम का खोखलापन

आजकल जो पाठ्यक्रम एस० टी० सी० प्रशिक्षण विद्यालयों में चालू है वह भानुमती का विचित्र पिटारा बना हुआ है। इस बात को सब जानते हैं कि एस० टी० सी० प्रशिक्षण विद्यालय से निकलकर छात्राध्यापक प्राथमिक शालाओं में अध्यापन का कार्य करेंगे। इसलिए एस० टी० सी० प्रशिक्षण विद्यालय में उनको इन स्कूलों में कार्य करने की दक्षता हासिल करने में सहायता दी जाय।

इसी प्रकार हमारा छात्राध्यापक दरी बनाना सीखता है। क्या प्राथमिक शालाओं में इसके साधन होते हैं? नहीं। कोई बिरला ही ऐसा स्कूल होगा जिसमें ये साधन हों। प्रशिक्षण विद्यालयों में छात्राध्यापकों को उन चीजों के बारे में बताते हैं जिनको अध्यापक स्कूल में जाकर शायद ही कभी पढ़ाता हो।

इन सपनों के कारण हम अपनी वर्तमान शालाओं की वास्तविक आवश्यकताओं को देखकर शिक्षक प्रशिक्षण की ओर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं।

पाठ-अभ्यास की कमियाँ

छात्राध्यापक जिस प्रकार की परिस्थिति में पाठ पढ़ाने का अभ्यास करते हैं वे परिस्थितियाँ वास्तविकता से बहुत दूर होती हैं। इन छात्राध्यापकों को अधिकतर प्राथमिक शालाओं में जाना होगा। इन प्राथमिक

शालाओं में इ ह एक से अधिक कक्षाएँ एक साथ पढानी पड़ेगी। हम प्रशिक्षण विद्यालय में इस ओर बिलकुल ध्यान नही देते और जितने पाठ अभ्यास होते हैं वे सब इस धारणा पर अवलम्बित होते है कि शिक्षक एक ही कक्षा एक बार पढायगा और छात्रों को बैठने की बहुत अच्छी सुविधा प्राप्त होगी। इसका फल यह होता है कि छात्राध्यापक प्रशिक्षण समाप्त कर जब स्कूल में जाता है तो स्कूल की सारी बातें उसे अटपटी मालूम होती है। इस प्रकार प्रशिक्षण विद्यालय वर्तमान प्राथमिक शाला के लिए उपयुक्त अध्यापक तैयार नही कर रहे है।

छात्राध्यापक शाला प्रबन्ध के नाम से प्रशिक्षण विद्यालय में बहुत कुछ पढता है और सुविधाएं प्राप्त करता है लेकिन वे सुविधाएं हमारी वर्तमान प्राथमिक शालाओं में उपलब्ध नही होती। प्रशिक्षण विद्यालय में ऐसी शाला के प्रबन्ध का चित्र उसके सामने खींचा जाता है जिसमें सुन्दर कमरे होते हैं और प्रत्येक कक्षा के छात्र अलग-अलग कमरों में बैठते है। उसको इस बात की न तो शिक्षा दी जाती है और न अभ्यास कराया जाता है कि बरामदे में दो कक्षाएं बैठी हों तो उन्हें कैसे बैठाया जाय तथा उनका समय विभाजक कैसे बनाया जाय।

राजस्थान के प्रशिक्षण विद्यालयों में जो व्यक्ति प्रशिक्षण पाते हैं उनमें से अधिकांश को राज्य के स्कूलों में स्थान मिलेगा अथवा पंचायत समितियों के स्कूलों में। पंचायत समितियों के स्कूलों में भी प्रायः प्रशासन के नियम वही हैं जो राज्य के स्कूलों में होते हैं। शाला प्रबन्ध के अन्तर्गत हम न तो सरकारी पत्र लिखना बतलाते हैं, न अन्य स्कूलों के कार्यालयों की बात। रजिस्टर कैसे भरने चाहिएँ इसका उसे कुछ भी ज्ञान नही हो पाता। स्कूल-पुस्तकालय में पुस्तकें आती हैं उनको रजिस्टर में कैसे दर्ज करना चाहिए कहाँ नम्बर डालना चाहिए विभागीय पत्र किस तरह लिखना चाहिए इन सब बातों की जानकारी शायद ही कोई प्रशिक्षण विद्यालय करता हो। फलतः छात्राध्यापक जिस समय स्कूल में पहुँचता है व्यावहारिक जानकारी में कोरा ही होता है।

पाठ्यक्रम की दूसरी कमी

पाठ्यक्रम में एक और कमी मालूम होती है। यह कमी उस समय अध्यापक के सामने आती है जब कि वह एक पाठ ही नहीं बल्कि सारी पुस्तक को अपने सामने देखता है। उसकी समझ में नही आता कि वह सारी पुस्तक छात्रों को पढाकर परीक्षा के लिए कैसे तैयार करे। इसका एक मात्र उपाय यह है कि प्रशिक्षण विद्यालय में ऐसी पाठन विधि धीरे धीरे बतलायी जाय जिसका प्रयोग में लाने पर पाठ्यपुस्तक भली प्रकार समय से पढायी जा सके और उस पाठन विधि के द्वारा बच्चों को परीक्षा के लिए भली प्रकार तैयार किया जा सके।

आजकल जिस पाठन विधि पर हम जोर देते हैं उसके द्वारा न तो सारी पाठ्य पुस्तक ही पढाया जा सकता है न छात्र को परीक्षा के लिए पूरा तैयार किया जा सकता है। परिणाम यह होता है कि छात्राध्यापक अध्यापक बनते ही यह समझने लगता है कि विभिन्न पाठ्य विधियाँ केवल प्रदर्शन मात्र के लिए हैं स्कूल में उनसे काम नहीं लिया जा सकता।

वह समय गुजर चुका है, जब अध्यापक केवल कक्षा पाठ को ही शिक्षा समझता था। आजकल छात्राध्यापक सम्पर्क छात्रों की विभिन्न अतिरिक्त प्रवृत्तियों छात्र की विभिन्न आदतों अच्छाइयों बुराइयों कठिनाइयों और परीक्षण को हम शिक्षा के क्षेत्र में ही मानते है। इस समय भी प्रशिक्षण विद्यालय केवल कक्षा पाठ का ही अभ्यास कराते है। प्रशिक्षण विद्यालय में नयी धारा विकासयुक्त चेतना को कहीं भी स्थान नहीं। यही कारण है कि हमारे अधिकांश वर्तमान प्रशिक्षण अध्यापक स्कूल की विभिन्न प्रवृत्तियों में सफल नहीं होते।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षण विद्यालय का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह छात्राध्यापकों को उन सभी चीजों का अभ्यास कराये जो कि उसको बाद में स्कूलों में करना पडेगा। यह सब अभ्यास हमारे स्कूल के वास्तविक वातावरण में ही होना चाहिए। सारा पाठ्यक्रम इस दृष्टिकोण के अनुरूप संशोधित करना आवश्यक है। बिना इसके हम अपने प्रशिक्षण विद्यालय में छात्राध्यापकों को एक काल्पनिक स्कूल और एक काल्पनिक बालक-समुदाय के लिए तैयार करते रहेंगे।

पिछले कुछ वर्षों से प्रशिक्षण-संस्थाओं में शैक्षिक यात्रा (एजुकेशन टूर) और ड्राइंग की ओर आवश्यकता

से अधिक बल दिया जा रहा है। क्या इससे छात्राध्यापकों को कोई विशेष लाभ पहुँचता है ?

यह ठीक है कि इस प्रकार की सैर अपना महत्व रखती है, लेकिन एक छात्राध्यापक के लिए, जिसको एक सफल अध्यापक बनने की शिक्षा दी जा रही है कुछ और ही अनुभव चाहिए। प्रशिक्षण-विद्यालय में हाईक और एजुकेशन टूर के अन्तर्गत गाँव की सैर की जाय। ऐसी शालाओं का निरीक्षण किया जाय, जिनमें कुछ विशेषताएँ हों, अपने डिवीजन या अपने प्रान्त की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। जबतक एजुकेशन टूर व हाईक के प्रति हमारा दृष्टिकोण नहीं बदलता है तब तक यह केवल सस्ते दामवाले सैर-सपाटे और मनोरंजन का कार्यक्रम रह जाता है। उसके द्वारा छात्राध्यापकों को ऐसा अनुभव प्राप्त नहीं होता, जिसके द्वारा उनको सफल अध्यापक बनने में सहायता मिल सके।

समाज की अध्यापक से आशा

- बालक-बालिकाओं के माता पिता को इस बात के लिए जाग्रत करना कि वे अपनी सन्तान को पढ़ने भेजें। बालक-बालिकाओं की शाला में भरती होने के पश्चात, ऐसी सम्हाल करना कि—
  - (क) वह अनुपस्थित न रहा करे।
  - (ख) वह दिन प्रतिदिन इन बातों में प्रगति करे।
- अपनी और अपनी वस्तुओं की सम्हाल।
- अपने साथियों से पारस्परिक सद्व्यवहार।
- पढ़ने लिखने व हिसाब किताब में कुशलता।
- अपने माता पिता की घर के कामों में सहायता।
- अपने परिवार के धन्धे में भाग लेना और अपनी पढ़ाई से उन धन्धों में उन्नति करना।
- समाज की यह आशा सफल नहीं हुई क्योंकि—
  - (क) बहुत से माता-पिता अपने बालक-बालिकाओं को पढ़ने नहीं भेजते हैं।
  - (ख) जो भरती होते हैं वे बहुत अनुपस्थित रहते हैं।
  - (ग) फिर वे फेल होते हैं और स्कूल आना छोड़ देते हैं।
  - (घ) शाला में आनेवाले बालक घर के कामों में दिलचस्पी नहीं लेते हैं।
  - (ङ) माता पिता को पढ़ाने का विशेष लाभ दिखाई नहीं देता है।

माता-पिता की मजबूरी

(क) गरीबी के कारण पढ़ाई का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते।

(ख) खर्च न भी हो तो भी वे बालक-बालिकाओं को इस कारण नहीं भेजते हैं कि बालक-बालिकाएँ—

- छोटी-मोटी मजदूरी करके कुछ कमाने लगती हैं।
- घास काटना, ढोर चराना, जंगल से लकड़ी लाना आदि काम करने लगती हैं।
- घर के काम-काज में मदद करती हैं, जैसे छोटे बच्चों को सम्भालना, झाड़ू-बुहारू, बर्तन साफ करना, रसोई बनाना आदि।
- फिर भी यदि व भेज दी तो यह होता है कि बड़े होकर बालक-बालिकाएँ गृहस्थ और पैतृक धन्धों में दिलचस्पी नहीं लेती हैं और खेती, पशुपालन आदि के लायक नहीं रहती।

समस्या का हल

(क) पढ़ाई को इतनी सस्ती करना कि उसके कारण गरीब माता पिता पर बोझ न पड़े।

(ख) पढ़ाई दिन के ऐसे समय करना जब माता-पिता बालक-बालिकाओं को सुविधा से स्कूल भेज सकें।

(ग) छुट्टियाँ उन दिनों में हों जब माता पिता को बालक-बालिकाओं की अधिक आवश्यकता हो, जैसे गुड़ाई निराई के समय, फसल काटने के समय आदि।

●

ग्रामदान से ग्राम-गुरुकुल

•

बद्रीप्रसाद स्वामी

राजस्थान समग्र सेवा संघ, जयपुर।

आज हम सब चाहते हैं कि अपने देश का प्रत्येक गाँव एक परिवार की तरह रहे। सबमें आपस में प्रेम हो। एक दूसरे के सुख-दुख का बँटवारा हो। मेरी तेरी की भावना समाप्त हो। सबका नैतिक एव भौतिक विकास हो। सब सब प्रकार से सुखी हो। सर्वत्र शान्ति हो और सबकी समृद्धि हो। न कोई शोषित हो और न कोई शासित। बल्कि सब अपनी व्यवस्था व विकास में स्वावलम्बी हो ताकि सभी स्वतन्त्रता, समता एव बन्धुता का उपयोग कर सकें। धरती पर ऐसा स्वर्ग सब देखना चाहते हैं और जल्दी से जल्दी हो यह भी चाहते हैं। परन्तु इसकी सिद्धि कैसे हो ?

एक व्यक्ति या दल विशेष की कल्पना को साकार करना सम्भव है। वह कानून या कत्ल से समाज को जैसा ढालना चाहे ढाल सकता है। परन्तु उससे व्यक्ति एव समष्टि का वास्तविक विकास तो सम्भव नही। असख्य व्यक्तियों के विचार एव व्यक्तित्व को दबाकर एक व्यक्ति के विचार कुछ हद तक बाह्य रूप में साकार हो सकते है। परन्तु आन्तरिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को घोर असन्तोष होगा, तथा असहयोग और विद्रोह की भूमिका बनेगी, क्योंकि कुल समाज पर एक व्यक्ति या दल विशेष ने दड, दमन व दबाव से अपने विचार व कल्पना को जोर-जबरदस्ती से लादकर अपने स्वप्न को साकार करने का प्रयत्न किया है। आज तक समाज में युग-युग से इस दिशा में असख्य असफल प्रयोग हुए हैं। भौतिक विकास के हिमायतियों ने नैतिकता खोकर भौतिक विकास का प्रयत्न किया और नैतिक विकास की आकाक्षा रखनेवालों ने भौतिक विकास को भूलकर ससार से सन्यास के उपदेश दिये, जिसके फलस्वरूप आज तक देश व दुनियाँ में न समग्र भौतिक विकास हो पाया है और न आध्यात्मिक और नैतिक विकास ही।

इस धरती पर एक ऐसा पुनीत सन्त पैदा हुआ है जो ससार के सामने यह तथ्य रख रहा है कि प्रकृति और पुरुष के भौतिक विकास का मूलाधार विज्ञान है और विज्ञान का सही विकास तथा सही दिशा में गति देने का मूलाधार आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त सही मति है। अर्थात् आज के युग का तकाजा यही है कि हम अगर जड विज्ञान की गति का लाभ कुल समाज के लिए उठाना चाहते है तो आत्मज्ञान द्वारा मति यानि अपनी बुद्धि और विवेक शक्ति को विकसित करना होगा। तब ही वह विज्ञान का विकास कर सकेगी तथा उसे सही दिशा दिला सकेगी। इस महापुरुष के आत्मज्ञान और विज्ञान के समन्वय के महान सिद्धान्त के आधार पर ही नये इनसान और नयी समाज की रचना हो सकती है।

नयी तालीम का पहला पाठ

नये इन्सान और नयी समाज की रचना न तलवार से सम्भव है न कानून से। इसका एकमात्र तरीका नयी-तालीम ही हो सकती है। युग पुरुष सन्त विनोबा द्वारा आविष्कृत ग्रामदान नयीतालीम का पहला पाठ है और ग्राम स्वराज्य नयी समाज रचना का पहला कदम। ग्रामदान से गाँव के सभी परिवार अपने नैतिक एव भौतिक विकास के लिए स्वेच्छापूर्वक सकल्प करते हैं। यानी अपनी व्यक्तिगत मालकियत, सग्रह तथा व्यक्तिगत स्वार्थ के विचारो के बदले सामूहिक मालकियत, सामूहिक हित और परस्पर सहयोग के विचार का स्वीकार करते है। व्यक्ति या समूह जब अपने पुराने विचार समझ-बूझ कर छोडता है और नये जीवन व समाज के नये विचार स्वीकार करता है तभी से नये इनसान व नये समाज

का नवनिर्माण शुरू हो जाता है। परन्तु व्यक्ति या समूह अपने नये विचार पर तबतक कायम नहीं रह सकता और न व्यवहार ही कर सकता है जबतक कि उन विचारों के अनुसार उसकी वृत्ति न बन जाय। वृत्ति निर्माण से ही पुरानी वृत्ति की जड़ कट सकेगी और पुराने व्यवहार व व्यवस्था की समाप्ति हो सकेगी। इसीलिए हमें हर ग्रामदान को एक गुरुकुल मानकर सतत समग्र शिक्षण की प्रक्रिया विकसित करनी होगी। अन्यथा ग्रामदान तो लाखों की तादाद में हो जायेंगे। क्योंकि परिस्थितियों का तकाजा है और युग की पुकार है। परन्तु सतत समग्र नयी तालीम के अभाव में न ग्राम-स्वराज्य साकार हो सकेगा और न सर्वोदय-समाज ही बन सकेगा।

शुरुआत यहाँ से

नयी समाज रचना के लिए नया इनसान चाहिए और नये इनसान के लिए नयी तालीम चाहिए। पुराने विचार, वृत्ति, व्यवहार और व्यवस्था में आज भी कई व्यक्ति पड़े हैं। उनके द्वारा नयी समाज रचना कदापि सम्भव नहीं हो सकती। इसलिए जो व्यक्ति नयी तालीम के आधार पर नयी समाज-रचना चाहते हैं उन्हें सर्व प्रथम अपने से शुरुआत करनी होगी। जिन जीवन मूल्यों को हम समाज में विकसित होते देखना चाहते हैं उन मूल्यों के आधार पर साथियों को सहयोगी व स्वावलम्बी जीवन जीते हुए स्वयं का सतत शिक्षित करना होगा।

हमारे जीवन के मूल आधार कृषि, गोपालन व ग्रामोद्योग हैं। इनके आधार पर गाँव-गाँव या ग्राम समूहों के बीच जगह-जगह सर्वोदय साधना-केन्द्र या आश्रम हों, जहाँ नवजीवन-साधना के साथी आत्मज्ञान और विज्ञान के समन्वय के आधार पर अपने स्वावलम्बी एवं सहयोगी जीवन की साधना करते हुए आसपास के गाँवों के नवयुवकों को सहजीवन, सहयोगी एवं स्वावलम्बी जीवन का शिक्षण दें ताकि वे ग्रामीण नवयुवक नये जीवन की नयी तालीम लेकर अपने अपने गाँव को ग्राम-गुरुकुल मानकर सतत समग्र शिक्षण की शुरुआत करें।

ग्राम-गुरुकुलों में गाँव का बच्चा और बूढ़ा, प्रत्येक बारी-बारी एक दूसरे का शिक्षक भी होगा और शिक्षार्थी भी। गाँव के प्राप्त साधन शिक्षण के साधन होंगे। और गाँव का सेवक नवजीवन में सबका सहायक होगा। सबको सुनेगा, समझेगा और नम्रतापूर्वक सतत समझायेगा। उनकी सभाओं में शामिल होकर उन्हें सुनेगा, आपस में सहयोग करके उन्हें समझेगा और सत्संग द्वारा उन्हें समझायेगा तथा सतत संकट में सहायक साबित होकर सेवा द्वारा सबका स्नेह प्राप्त करेगा। स्वयं के नवजीवन से सबको प्रेरित करेगा। ऐसा होगा तो अवश्य ही हर ग्रामदानी गाँव द्वारा अपने-अपने यहाँ नवजीवन-व्यवस्था का विकास कर नयी समाज-रचना की दिशा में आगे बढ़ सकेगा।

इसलिए अगर हम चाहते हैं कि व्यक्ति और समष्टि का अपनी ही शक्ति से समग्र विकास हो और कुल समाज शासन और शोषण से मुक्त होकर स्वतंत्रता, समता और बन्धुता का विकास कर सके तो नवजीवन के नये विचारों के आधार पर नयी तालीम द्वारा नयी समाज-रचना हेतु जगह-जगह सर्वोदय साधना-केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिएँ, ताकि वहाँ सर्वोदय-कार्यकर्ता स्वयं भी अपने जीवन को नये विचार और मूल्यों के अनुसार ढाल कर सहयोगी व स्वावलम्बी जीवन को साध सकें। वे ग्रामदानी गाँवों के अध्यक्षों, नवयुवकों, शान्ति-सेवक व सैनिकों को ग्राम-स्वराज्य की सिद्धि का शिक्षण भी दे सकें, गाँव ग्राम-गुरुकुल के सतत शिक्षण द्वारा ग्राम स्वराज्य साकार कर सकें एवं देश में सर्वोदय समाज-रचना की सिद्धि दिखा सकें। ●

पाठकों को सूचना

'नयी तालीम' का अप्रैल व मई '६७ का अंक संयुक्तांक और विशेषांक के रूप में १५ मई को प्रकाशित होगा। अतः अप्रैल में कोई अंक पाठकों के पास नहीं जायगा। —स०

अनुक्रम

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

फरवरी मास के कुछ प्रकाशन

१—आओ हम बनें नम्र और सेवापरायण

लेखक—श्रीकृष्णदत्त भट्ट

दोरंगी सचित्र छपाई, मोटा टाइप, बड़े आकार के ४० पृष्ठ। नम्र और सेवा-परायण बनने की प्रेरणा देनेवाली जीती-जागती उद्बोधक कथाएँ।

मूल्य १ ००

२—समन्वय संस्कृति की ओर

लेखक—काका साहब कालेलकर

गांधी तत्त्व विचार के प्रमुख व्याख्याता और विभिन्न धर्म संस्कृतियों के तल-स्पर्शी मनीषी काका साहब ने इस ग्रन्थ में सर्व धर्म समभाव और सब धर्म की समन्वय मूलक दृष्टि से विचार किया है। हमें विश्व की एकता के लिए संस्कृतियों का संगम करना है। जातीयता प्रान्तीयता कट्टर पान्थिकता आदि भेदों से उठाकर मानवी एकता का पदार्थ पाठ देनेवाली तात्त्विक रचना है।

पृष्ठ २२५, मूल्य ४ ००

३—सर्वोदय की सुनो कहानी

लेखक—बबल भाई मेहता

पहले यह पुस्तक पाँच भागों में प्रकाशित हुई थी। अब बड़े आकार में एक ही भाग में चुनी हुई उपयोगी कहानियों का यह संकलन तैयार किया गया है

पृष्ठ ४०, मूल्य १ ००

४—सुनो कहानी मनफर की

लेखक—प्रेमभाई

मनफर विहार का एक ग्रामदानी गाँव है। प्रत्यक्षदर्शी श्री प्रेमभाई ने इस गाँव की स्थिति, प्रगति और उतार-चढ़ाव का वर्णन नपी-तुली और घरेलू भाषा में किया है पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

सूची पत्र के लिए लिखिए

सर्व सेवा संघ प्रकाशन • राजघाट, वाराणसी-१

नयीतालीम, मार्च, '६७
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमती प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० सं० एल १७२३

'चनरिका'

दुबली-पतली-सूखी
हड्डियो का एक ढांचा,
मुरझाई हुई
खिचडी मूँछोवाला उतरा चेहरा
मेरी स्मृतियो को झकझोरता है,
कसमसाती,
ऐंठती हुई उसकी जवानी याद आती है—
गलियो से गुजरते
उसके टखने चटखते थे,
जिस पालकी में कन्धा लगाता
हवा में उड़ती-उछलती चलती थी।
मैं पूछता हूँ–
'चनरिका तुम्हारा क्या हाल हो गया ?'
'बाबू मेरा नही जमाने का कहिए,
तब काम करता था, पेट भरता था,
काम अब भी करता हूँ, लेकिन पेट.
चनरिका की अनकही बातें
रह रहकर याद आती है,
चुभ जाती हैं।

—*अनिकेत*

आवरण मुद्रक—खण्डलवाल प्रेस मानमंदिर, वाराणसी।
गत मास छपी प्रतियाँ २००० इस मास छपी प्रतियाँ–२०००

विशेषांक
पच्चों की शिक्षा के पहले १४ वर्ष
अप्रैल–मई १९६७

बच्चे की शिक्षा के पहले १४ वर्ष

यह विशेषांक

जन्म से चौदह साल की आयु तक बच्चे को तीन मंजिलें पार करनी पड़ती हैं–शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था। हर अवस्था अपने में पूर्ण, हर एक का अपना महत्व है। हर एक जीवन की एक मंजिल है। लेकिन हमारे शिक्षण के लिए सबसे अधिक महत्व पुस्तक और परीक्षा का है। मुक्त शिक्षण परीक्षा और पाठशाला तक सीमित नही रहेगा। जीवन की हर क्रिया उसके अन्तर्गत रहेगी। पूरा जीवन शिक्षणमय होगा।

इस सन्दर्भ में शिक्षण चलाना हो तो शैशव, बचपन और किशोरावस्था के अभ्यासक्रम अलग-अलग होंगे, लेकिन धारा एक होगी; दिशा और वातावरण एक होगा। बच्चा शुरू से अन्त तक अपने को तीन तत्वों के साथ जोड़ता चलेगा–पेट, पड़ोसी और प्रकृति। पेट यानी आर्थिक प्रश्न, पड़ोसी यानी सामाजिक सम्बन्ध, प्रकृति यानी सांस्कृतिक विकास। उत्पादक बनकर बच्चा पड़ोसी से जुड़ता है, शासक या शोषक बनकर नही; और, पड़ोसी से जुड़कर प्रकृति से पोषण पाता है, और स्वयं प्रकृति को परिष्कृत करता है। यह नयी तालीम की त्रयी है। यह उसके अनुबन्ध का त्रिविध स्वरूप है। यही उसके शिक्षण-शास्त्र का मूल और मौलिक तत्व है। इसी को केन्द्र मानकर यह विशेषांक पाठकों के सामने प्रस्तुत है। –सं०

अनुक्रम

खण्ड चार

पूर्व बुनियादी शिक्षण (३ से ६ वर्ष)

खण्ड पाँच

बुनियादी शिक्षण (७ से १४ वर्ष)

समापन

नयी तालीम	वर्ष—पन्द्रह
सर्व सेवा संघ की मासिकी	अंक—९ १०

हमारे विशेषांक

१९६५—लोकतान्त्रिक समाजवाद और शिक्षा

१९६६—राष्ट्रीय विकास और शिक्षा

१९६७—बच्चे की शिक्षा के पहले १४ वर्ष

●

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १५वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार के समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

तुम्हारी सन्ताने तुम्हारी नहीं,
'जीवन' की अपनी अभिलाषाओं की सन्तान हैं,
वे तुम्हारे माध्यम से आती हैं, निमित्त से नहीं
और यद्यपि वे तुम्हारे साथ हैं लेकिन तुम्हारी नहीं।
तुम उन्हें अपना अनुराग दे सकते हो, विचार नहीं,
क्योंकि उनके पास उनके अपने विचार हैं।
तुम उनकी काया को आवास द सकते हो, आत्मा को नहीं,
क्योंकि उनकी आत्माएँ भविष्य के भवन में निवास करती हैं,
जहाँ तुम पहुँच नहीं सकते, स्वप्न में भी नहीं।
तुम उनकी तरह होने का प्रयास कर सकते हो,
किन्तु उनको अपने जैसा बनाने का प्रयत्न मत करना,
क्योंकि जीवन पीछे नहीं लौटता,
न तो अतीत के साथ ठहरता है।
तुम वह धनुष हो
जहाँ से तुम्हारी सन्तान सजीव बाणों की तरह आगे की ओर
प्रेषित है।

धनुर्धर के हाथों में तुम्हारा नमना आनन्द के लिए हो।

—खलील जिब्रान
अनु०-अनिकेत

खण्ड एक

बच्चा अपने लिए या हमारे लिए ?

बच्चा किसके लिए ?, कमजोर क्यों जीयें ?, युद्ध और बच्चे का महत्व, सामन्तवाद और बच्चा, 'सायर-मैडम' की जगह 'पापा और मामा', माँ की ममता कहाँ थी ?, बच्चा मूक शहीद, बच्चा सभ्यता की कसौटी, बच्चे पर किसी की मालिकी नहीं, मुक्त जीवन-शिक्षण, शिक्षण ही समस्याओं का हल।

बच्चा किसके लिए ?

बच्चा किसके लिए पैदा होता है ? माता पिता के लिए या अपने लिए ? क्या दोनों में कोई विरोध है ?

किसे विश्वास होगा कि इस छोटे से प्रश्न का उत्तर ढूंढने में मनुष्य को हजारों वर्ष लगे हैं ? और आज इतनी सदियों के बाद भी इसका उत्तर नहीं मिला है, और अगर मिला भी है तो सबने स्वीकार नहीं किया है ?

इसी प्रश्न के उत्तर में शिक्षण की समस्या समायी हुई है क्योंकि उस उत्तर की बुनियाद पर नया शिक्षण शास्त्र बनेगा—उसका मनोविज्ञान समाज शास्त्र, लक्ष्य पद्धति सब।

पुराने लोगों के सामने यह प्रश्न था ही नहीं। उन्होंने मान लिया था कि सन्तान माता पिता के लिए है, उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसे उन्हीं के लिए जीना है और अगर वे चाहें तो मर भी जाना है। इस मूल मान्यता पर उनके पूरे पारिवारिक सम्बन्ध विकसित हुए थे और उस समय बच्चों की जो भी शिक्षा-दीक्षा होती थी उसकी जड़ में यही मान्यता थी।

राममूर्ति

इसके विपरीत आज विज्ञान की नयी रोशनी के जो लोग हैं उनके सामने भी यह प्रश्न नहीं है क्योंकि विज्ञान के अनुसार

वे मानने लग है कि बच्चा अपने में एक पूर्ण व्यक्तित्व है। पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों के बीच रहता हुआ भी वह जिस प्रतिभा को लेकर पैदा हुआ है उसे विकसित करने का अधिकार उसे मनुष्य होने के नाते प्राप्त है। लेकिन मुश्किल यह है कि समाज के अधिकांश लोग न नये होते हैं न पुराने वे बीच के होते हैं। जमाने के साथ साथ उनकी कई आकांक्षाएँ तो नयी हो जाती हैं लेकिन संस्कार परम्परा में अटके रहते हैं। इस कारण हमेशा एक खींचतान की स्थिति बनी रहती है। अन्य चीजों से कहीं अधिक हमारा शिक्षण पुराने और नये की इस खींचतान का शिकार बना हुआ है जिसके कारण न उसकी दिशा बन पा रही है न पद्धति।

बच्चे माता पिता के लिए या अपने लिए इन दोनों में अन्तर क्या है? उत्तर के लिए थोड़ा इतिहास में जाना पड़ेगा।

कमजोर क्यों जीयें?

इतिहास को ऐसा कोई युग नहीं मालूम है जिसमें मनुष्य ने संतान की इच्छा न रखी हो। बांझ स्त्रियां हमेशा घृणा की पात्र रही हैं और सन्ततिविहीन पिता अभागा समझा जाता रहा है। अति अतीत में कई समुदाय ऐसे भी थे जिनमें विवाह के पहले ही देख लिया जाता था कि लड़की संतान देनेवाली है या नहीं। बच्चे के साथ पति के घर जाना शुभ माना जाता था। संतान के लिए विशेष स्थिति में पति के अलावा दूसरे पुरुष के सम्बन्ध जायज था। आज भी पुरोहित से वीर्य दान प्राप्त किया जा सकता है यद्यपि यह छूट अब बहुत कम हो गयी है। इन उपायों के अलावा गोद लेने का रिवाज तो रहा ही है और आज भी है।

विवाह था ही संतति के लिए। विवाह से बच्चे को संरक्षण मिला घर बसा पुरुष का स्त्री पर प्रभुत्व कायम हुआ और लैंगिक क्रिया ऊपर उठकर एक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्कार बनी। विवाह की सन्तति ने मृत माता पिता की आत्मा का संरक्षण किया और प्राप्त परम्परा को आगे बढ़ाया। विवाह ने संतान पर यह दुहरी जिम्मेदारी डाली। लेकिन जैसे जैसे संस्कृति पुरानी विस्तृत और संगठित हुई वैसे-वैसे माता पिता की माँग बढ़ती गयी। इस तरह की व्यूह रचना की गयी कि बच्चे उनकी मर्जी तथा परिवार और समुदाय की बनी-बनायी लकीर से जरा भी दाहिने-बायें न जाने पायें। लकीर की फकीरी (कन्फार्मिटी) ने इस रूख ने आजतक शिक्षण को एक खास ढांचे में ढाल रखा है यहाँतक कि अभी भी माता पिता शिक्षक और शासक का सबसे अधिक जोर कन्फार्मिटी पर ही रहता है। उसे संस्कृति शिक्षण और सदाचार का लक्षण माना जाता है।

जब मनुष्य में शुरू से ही सन्तति की इतनी चाह थी तो गर्भ-पात, भ्रूणहत्या और बच्चे को यों ही कहीं छोड़ देने का रिवाज कैसे पैदा हुआ ? इसके दो कारण मुख्य थे—एक, परिवार के पास जितना भोजन था उससे अधिक खानेवाला का होना, दूसरा, जीवन-संघर्ष की कठोरता। ऐसी हालत में जो बच्चा जन्म से शरीर से कमजोर था उसे जिलाने से क्या फायदा था ? उसका भार कौन उठाता ? उसे जीने का अधिकार क्या था ? कई जगह तो बच्चे को नाम तब दिया जाता था जब वह काफी बड़ा होकर सिद्ध कर देता था कि सचमुच अपनी शक्ति से कुछ करने लायक है। इसीलिए बच्चे बहुत छोटी उम्र में—चार-पांच साल में भी !—काम पर लगा दिये जाते थे। बच्चे के सामने प्रायः खेलने-कूदने के पहले ही जीवन की कठोरता आ खड़ी होती थी। आज भी लाखों मजदूरों के बच्चों का क्या हाल है ? उनके माता पिता की परिस्थिति ऐसी है कि खुद छोटे होते हुए भी उन्हें अपने से छोटे बच्चों को देखना पड़ता है, बकरी चरानी पड़ती है, घास छीलना पड़ता है, यानी कुछ न कुछ करके उन्हें अपने को शुरू से ही परिवार की व्यवस्था में उपयोगी होना पड़ता है।

जाहिर है कि जब जीवन आज से कहीं अधिक कठोर था तो बच्चे का कुल 'शिक्षण' यह था कि वह परिवार के जीवन-संघर्ष में शरीक हो, और अपने ऊपर अपने बड़ों का प्रभुत्व स्वीकार करे। उसका अपना कोई व्यक्तित्व है, जिसका विकास हो सकता है, और होना चाहिए, इसकी न किसी को कोई कल्पना थी और न जरूरत। बल्कि योजनापूर्वक कोशिश यह की जाती थी कि किसी बच्चे के दिमाग में व्यक्तित्व या स्वतंत्रता का अंकुर न उगने पाये। उसका उपाय था कठोर यातना।

युद्ध और बच्चे का महत्व

आदिवासियों के समाज में सन्तति के प्रति जो रुख विकसित हुआ वह बाद के सभ्य समाज में भी कायम रहा। आदिवासी से अधिक सभ्य मनुष्य ने लड़के के जन्म पर खुश होना तो सीखा, लेकिन भ्रूणहत्या को कानूनी समर्थन दिया। जन्म के समय जो बच्चा जरा भी कमजोर दीखा वह समाप्त कर दिया जाता था। पहले गला घोटकर या पानी में डुबाकर मार दिया जाता था, बाद को कहीं बाहर छोड़ दिया जाने लगा। ग्रीस देश के स्पार्टा में तो स्वयं राज्य के निर्देश में ऐसा होता था। ऐसे छोड़े हुए बच्चे को कोई अपरिचित व्यक्ति उठाकर पाल सकता था। बाद को तो बच्चे जानबूझकर मन्दिर के दरवाजे पर या किसी ऐसी जगह पर छोड़ जाने लगे जहाँ लोगों की निगाह पड़े और कोई उन्हें उठा ले।

युद्ध ने बच्चे का मूल्य बढ़ाया। सन्तान के प्रेम से अधिक बलवती सिपाही की उपयोगिता सिद्ध हुई। सबसे पहले रोम के रोमुलस बादशाह ने आदेश दिया

कि लडका—सिवाय उनके जो जन्म से कमजोर हो—और कम से कम पहली लडकी को पाला जाय। ईसा मसीह के समय के सम्राट अगस्टस ने यतीम बच्चों को पालन के लिए पारितोषिक घोषित किया। ९७ ई० में नर्वा ने उन तमाम लोगों की सहायता देना शुरू किया जो गरीबी के कारण अपने बच्चों को नहीं पाल सकते थे। ईसाई धर्म के प्रभाव में ३१५ ई० में कांसटेनटाइन महान ने उस प्रकार की सहायता को बहुत बढाया। ३७४ ई० में सम्राट वैलेंटीनियन ने शिशुओं को बाहर फेंकना निषिद्ध कर दिया। चौथी शताब्दी से ईसाई चर्च ने इस दिशा में ध्यान दिया। शिशुओं को छोडनेवाले माता पिता के लिए चर्च ने दण्ड की घोषणा की और ऐसे शिशुओं की देखभाल के लिए संस्थाएँ कायम कीं। ४२५ ई० में गाँवों में शिशु आश्रय-गृह (विलेज असाइलम) बनाने की व्यवस्था हुई।

लेकिन बावजूद इन कारवाइयों के बच्चों की स्थिति में इतना ही सुधार हुआ—अगर सचमुच इसे सुधार कहें—कि बडे पैमाने पर बच्चों की बिक्री शुरू हुई। बिक्री ज्यादातर गरीबी के कारण और कर्ज की अदायगी के लिए होती थी। इस तरह चीन, जापान, रोमन साम्राज्य और भारत में भी बच्चा भयंकर शोषण और असमय मौत का शिकार बना। वह अपने पिता की सम्पत्ति था। पिता उसे अपनी मर्जी से बेच सकता था। देश की सरकार भी पिता के इस अधिकार को पूरे तौर पर मान्य करती थी। रोम में तो पिता का यह अधिकार पराकाष्ठा को पहुँच गया था। बच्चों को छोड देना, बेचना, उत्तराधिकार से वंचित कर देना, अपनी मर्जी से उनकी शादी करना, अंगभंग करना, यहाँ तक कि मार डालना—ये सभी अधिकार पिता को प्राप्त थे। सन्तान की आयु चाहे जो हो पिता इस अधिकार के अनुसार उससे मनचाहा वर्ताव कर सकता था। परिवार के बाहर नागरिक की हैसियत से उसके कई अधिकार थे लेकिन पुत्र की हैसियत से वह पशु और गुलाम से भिन्न नहीं था। आदि युग की तरह प्राचीन युग ने भी बच्चे के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को अस्वीकार ही किया। भारत में ध्रुव और प्रह्लाद को भी विद्रोह की कीमत चुकानी ही पडी।

सामन्तवाद और बच्चा—डण्डे का शासन—

मध्ययुग में सामन्तवादी समाज रचना और संस्कृति में कई नये प्रभाव पैदा हुए। ईसाई धर्म गुरुओं ने भ्रूण हत्या की निन्दा की लेकिन बच्चों का बहुतायत के साथ पैदा होना और आसानी के साथ मरना जारी रहा। विवाह जल्दी होता था आम तौर पर लडके की १४ की आयु में और लडकी की १२ की आयु में। बच्चे बहुत कम आयु में काम में लगा दिये जाते थे। हर बच्चे के लिए जरूरी था कि जल्द से जल्द किसी कमाई के काम में लग जाय। अत्यन्त छोटी उम्र में

बच्चा 'श्रमिक' हो जाता था। आज भी मुरादाबाद में बर्तनों पर नक्काशी करते हुए छोटे बच्चे देखे जाते हैं। ऊपर के वर्ग के बच्चे अमीरों के घर में रहकर सामन्तवाद की मान्यताओं के अनुसार शस्त्र चलाना, और सभ्य समाज के शिष्टाचार आदि सीखते थे। सामान्य वर्ग के बच्चे किसी गुणी आदमी के पास रहकर कोई कारीगरी सीखते थे या मालिक के खेत पर खेती करते थे। गरीबों के इन बच्चों का बुरा हाल था। वे तरह-तरह के कामों में निर्दयतापूर्वक लगा दिये जाते थे। यह सारी व्यवस्था 'अपरेन्टिस सिस्टम' के नाम से प्रसिद्ध है। धीरे-धीरे इस पद्धति को कानूनी मान्यता मिल गयी, यहाँतक कि सोलहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड में ऐसा हुआ कि कानून के अनुसार हर बच्चे के लिए अपरेंटिस बनकर कोई कारीगरी खेती या व्यवसाय सीखना अनिवार्य हो गया। बहुत बड़े धनियों के बच्चे ही इससे मुक्त होते थे।

मध्य युग में एक खास बात यह थी कि बच्चों पर अत्यन्त कठोर—कठोर ही नहीं, निर्दयतापूर्ण — अनुशासन लागू किया जाता था। यह आम मान्यता थी कि बच्चे के सुधार के लिए कठोर दण्ड (करेक्टिव डिसिप्लिन) आवश्यक है। उस वक्त आज्ञा पालन सबसे बड़ा गुण माना जाता था और अवज्ञा (डिज ओबिडियम) सबसे बड़ा अपराध। आज्ञापालक राम आदर्श पुत्र समझे जाते हैं, और प्रह्लाद के 'विद्रोह' का यह औचित्य था कि उनका पिता मानव की कोटि में नहीं था। क्या कोई आज विश्वास करेगा कि ९ साल की उम्र में फ्रांस का सम्राट् होनेवाले हेनरी चतुर्थ को पहले पहल कोड़े की सजा उस वक्त मिली थी जब वह २ साल का था! और किसलिए लगी थी? भोजन के वक्त जरा मचलने के लिए। राज तिलक के बाद भी समय समय पर उसे कोड़े लगते ही रहे। कठोरता के पीछे विचार और विश्वास यह था कि दण्ड से बच्चे के अन्दर जो शैतान है वह निकल जायगा, और उसकी बुद्धि वैसी ही हो जायगी जैसी बड़ों की है। पिता-पुत्र, गुरु शिष्य राजा प्रजा, मालिक मजदूर महाजन-गृहस्थ, आदि समाज के सारे सम्बन्धों में दण्ड की प्रधानता थी। सुधार की सबसे बड़ी शक्ति दण्ड में थी। उसके सिवाय सुधार का दूसरा उपाय क्या था? विद्याभ्यास में भी दण्ड का भरपूर इस्तेमाल होता था। डण्डा बन्द हुआ तो बच्चा बिगड़ा यह कहावत पुरानी है, और उसके पीछे सदियों की प्रतिष्ठित परम्परा है।

'सायर—मैडम' की जगह 'पापा और मामा'

१८ वीं शताब्दी में इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के कारण कुछ लोगों के द्वारा कुछ नया चिन्तन शुरू हुआ। कहीं-कहीं मानवता की कुछ पुकार सुनाई देने लगी। उस दिन कितना बड़ा परिवर्तन हुआ जिस दिन धनियों के बच्चे माता पिता को 'सायर' और 'मैडम' — ये शब्द आदर और भय के थे। — के

बदले 'पापा' और 'मामा' कहने लगे। पापा और मामा के इन दो शब्दों में प्यार की कितनी नयी उमंग रही होगी। लेकिन यह नयी लहर बहुत हल्की थी, और ऊपर के कुछ वर्गों तक ही सीमित थी। सामान्य नियम जोर-जुल्म का ही था। और, बचपन था ही कितने दिनों का? कितने बच्चों को बचपन का सुख मयस्सर था? आठ साल की उम्र में मालिक के साथ बच्चे की कठोर अपरेन्टिसी शुरू हो जाती थी। औद्योगिक क्रान्ति में जो नये कल-कारखाने खुल रहे थे उनमें बच्चे लगा दिये जाते थे, क्योंकि उनका श्रम सस्ता था। कारखानों में वे चौदह से सोलह घंटे काम करते थे। कानून में भी उनका संरक्षण नहीं था। ६ से १४ साल के बच्चों को छोटी मोटी चोरी के लिए फांसी की सजा दी जाती थी। इसके विपरित एक स्त्री को जो पंगु बच्चों से भीख मँगवाने का पेशा करती थी तेरह बच्चों की आँखें निकाल लेने के लिए सिर्फ दो वर्ष का जेल मिला था।

माँ की ममता कहाँ थी?

एक प्रश्न उठता है कि क्या उस जमाने में लोगों के दिलों में — खुद माता-पिता के दिलों में — बच्चों के लिए प्रेम नहीं था? छानबीन की जाय तो कई बातें सामने आती हैं। उस जमाने में जीवन का जो सन्दर्भ था उसे सामने रखकर सोचना चाहिए। एक बात यह थी कि उस वक्त खूब बच्चे पैदा होते थे, और खूब मरते थे इसलिए आबादी धीमी गति से बढ़ती थी। ऐसी स्थिति में बच्चा एक सस्ती सामग्री था। उसके पैदा होने या मरने का महत्व कम था। परिवार बड़े थे। १०—१२ से लेकर २०—३० बच्चे तक एक पिता के होते थे, हाँ, माताएँ बदलती जाती थीं। एक से अधिक पत्नियों—प्राय एक के बाद दूसरी—का आम रिवाज था। व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं था—न बच्चे का, न स्त्री का। जिस समाज में व्यक्ति का मूल्य नहीं होता उसमें लोकतंत्र का महत्व नहीं रहता। यही कारण है कि एक सीमा के बाद जनसंख्या के बढ़ने से लोकतान्त्रिक भावनाएँ नरम हो जाती हैं, और उनका स्थान अधिकारवाद और अधिनायकवाद ले लेता है।

बच्चों के अनियन्त्रित जन्म मृत्यु से एक बात और पैदा हुई। प्रसव के बोझ से एक पत्नी के मरने पर दूसरी आती थी और सौतेले बच्चों की संख्या बढ़ती जाती थी जिससे परिवार में वातावरण बच्चों का मूल्य घटानेवाला होता था। उनका उसी हद तक मूल्य था जिस हदतक वे परिवार के लिए जीविका प्राप्त करने में सहायक हो सकते थे। और, जब जीवन-संघर्ष में अस्तित्व का प्रश्न उठता था तो प्रौढ़ के मुकाबिले में बच्चे को ही खत्म होना पड़ता था।

बच्चों के प्रति होनेवाली इस नृशंसता ने मातृ हृदय को कैसे प्रभावित किया? माताओं ने कैसे इसे बर्दाश्त किया? यह हो सकता है कि असह्य अभाव के कारण कुछ परिवारों ने शुरू में नवजात शिशु का गला घोंटा होगा, लेकिन समय के साथ

रिवाज सा बन गया। पर समाज के बडो ने क्या कहकर माता को समझाया होगा। प्राचीन समाज का विकास इस बात का साक्षी है कि अदृश्य शक्तियो के भय ने मनुष्य के आचार विचार को सबसे अधिक प्रभावित किया है। तो अगुवा लोगो ने माताओ से कुछ इसी तरह की बात कही होगी दुख क्या करती हो ? देवताओ को तुम्हारे बच्चे की जरूरत है। अगर तुम आना-कानी करोगी तो देवता नाराज हो जायेंगे और हम सबलोगो को उनकी नाराजगी का शिकार होना पडेगा। बस क्या था इतना सुनकर माता का भीरु हृदय दब गया। क्रूरता को दैवी शक्तियो का समर्थन मिल गया और वह पूरे समाज की रुचि का विषय बन गयी। जीवन का संघर्ष अज्ञान बहुपत्नीत्व अदृश्य का भय आदि सबने मिलकर धर्म की छुरी बनायी और उसको बच्चे के गले पर फेर दी। सौतेली माँ और सौतेले बच्चो के परिवार में इतनी शक्ति कहा थी कि धर्म और समाज की सम्मिलित माँग को टाल सके।

बच्चा मूक शहीद—विज्ञान का नया जमाना

न जाने कितनी सदियो तक बच्चा असीम क्रूरताओ का शिकार रहा है — पिता के हाथो मालिक के हाथो कारीगर और गुरु के हाथो। आज जो पाश्चात्य जगत नयी सभ्यता के नये नये आकर्षण प्रस्तुत कर रहा है उसमे डेढ सौ साल पहले क्या हाल था ? दास प्रथा अभियुक्तो पर जुल्म बच्चो के साथ बर्बरता गरीबी और गरीबो की उपेक्षा स्त्रियो का दमन मानसिक रोगियो और पागलो के साथ क्रूर व्यवहार — पश्चिम के देशो में यह सब प्रचलित था। पिछले सौ वर्षो में हालत बहुत सुधरी है। बावजूद इसके कि हिंसा की नगी तलवार आज भी अबाध गति से चलती चली जा रही है शिक्षण के क्षेत्र में तथा अन्य कई दूसरे क्षेत्रो में मानवीय मूल्य तेजी के साथ विकसित हुए हैं। विज्ञान ने जीवन के हर क्षेत्र को गहराई से प्रभावित किया है। मानव मन और समाज का विस्तृत अध्ययन हुआ है। समाज-कल्याण की पद्धतियाँ विकसित हुई हैं। डारविन के समय से हर चीज विकास की भूमिका में देखी जाने लगी है। इस तरह देखने पर मनुष्य के जीवन में बचपन का महत्व प्रकट हुआ है। अब यह बात मान ली गयी है कि मनुष्य बचपन के ही वर्षो में बनता है। आज यह बात सामान्य मालूम होती है लेकिन इस छोटी-सी बात में एक क्रान्ति छिपी हुई है जो विज्ञान के पहले के युग को विज्ञान के युग से अलग कर देती है। पुराने लोग मानते थे कि बचपन के वर्ष 'पाप' के वर्ष है जो दण्ड से ही निकाला जा सकता है आज का विज्ञान बचपन को सारे जीवन का आधार मानता है इसलिए उसके विकास को महत्व देता है। अब समाज की चेतना में बच्चे का दूसरा ही स्थान है और शिक्षण तो बच्चा

केन्द्रित हो ही गया है, भले ही व्यवहार में अपूर्णताएँ हो। विज्ञान ने मान्यताए बदल दी है।

लोकतन्त्र मे व्यक्ति की प्रतिष्ठा

लोकतन्त्र ने भी समाज मे बच्चे को उचित स्थान दिलाने में बहुत बडा काम किया है। लोकतन्त्र के कारण समता की भावना बढी है, माता पिता का बच्चे के ऊपर स्वामित्व गया है पुरुष की प्रधानता घटी है स्त्री सामने आयी है, और व्यक्ति की प्रतिष्ठा मान्य हुई है। स्वभावत बच्चे के प्रति आदर बढा है, उसके व्यक्तित्व का रक्षण और विकास लोकतन्त्र के विकास के साथ जोडा गया है। जो व्यक्ति लोकतन्त्र की इकाई, आधार और शक्ति है, उसी का प्रारम्भिक रूप तो बच्चा है।

विज्ञान और लोकतन्त्र के युग के परिवार के जीवन में भी पिछले दशकों मे बडे परिवर्तन हुए है। आज परिवार में पहले से कही अधिक मुक्त मिलन है, और परिवार आर्थिक दृष्टि से पहले से कही अधिक समृद्ध और सुरक्षित है। स्त्री का स्थान अब यही नही है कि पुरुष की चाकरी करे और सन्तान पैदा करे। पहले परिवार ही सब कुछ था अब उसके बाहर भी बहुत कुछ है। कल्याणकारी राज्य की अनेक सस्थाओ और स्कूल के विकास के साथ साथ परिवार का महत्व बहुत घट गया है। पहले की तरह परिवार के लोगो की कमाई परिवार तक ही नही रह गयी है। स्त्रियो की स्वतन्त्र कमाई होने लगी है। परिवार में घरेलू काम के साधन बढते जा रहे है और बडे सयुक्त परिवार के स्थान पर छोटे परिवार बनते जा रहे है। इस क्रम में पारिवारिक जीवन की कठोरताएँ भी बहुत कम होती जा रही है। बच्चे के लिए कई चीजो मे परिवार का स्थान स्कूल ले रहा है। माता पिता स्कूल के पूरक रह गये है, मुख्य नही है। छोटे परिवार होने के कारण बच्चे को अधिक ध्यान मिल रहा है। स्वभावत बच्चा आज समाज और सरकार की एक मुख्य चिन्ता है और उसे केन्द्र मानकर नयी-नयी सस्थाएँ और योजनाएँ बनती जा रही है।

विज्ञान और लोकतन्त्र बनाम सत्ता और सम्पत्ति

यह सही है कि विज्ञान और लोकतन्त्र ने मनुष्य के सोचने और काम करने के तरीको मे जबरदस्त परिवर्तन किया है। लेकिन समाज की रचना में सत्ता और सम्पत्ति का इतना जबरदस्त सगठन है और मनुष्य के सस्कारो में कुछ ऐसे तत्त्व है कि विज्ञान और लोकतन्त्र से मनुष्य की मुक्ति की जो आशा जगी थी वह पूरी नही हो पा रही है। सत्ता और सम्पत्ति के हाथो में पडकर विज्ञान और लोकतन्त्र स्वय दमन और शोषण के नये माध्यम बनते जा रहे है और सामान्य

मनुष्य की आशाएँ और आकांक्षाएँ विफल होती जा रही हैं। सोचने की बात है कि जहाँ पिछले सौ वर्षों में जब विज्ञान और लोकतंत्र का सबसे अधिक विकास हुआ है, वहाँ संगठित हिंसा भी हमेशा से कहीं अधिक हुई है। और, अभी तक उसका अन्त भी नहीं दिखायी देता। दुनिया सर्वनाश के कगार पर पहुँच गयी है। एक ओर जीवन के कुछ पहलुओं में व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए इतना आदर, इतनी चिन्ता, और दूसरी ओर दूसरे पहलुओं में उसी व्यक्तित्व पर नृशंस आघात तथा वर्ग, वर्ण, जाति और राष्ट्र के नाम में पूरे-पूरे समुदायों का विनाश यह आज की दुनिया का विरोधाभास है जिससे निकलने का उपाय ढूँढना मनुष्य की बुद्धि की सबसे बड़ी चुनौती है। यह मनुष्य-जाति के अस्तित्व का प्रश्न है।

मनुष्य की बुद्धि की चुनौती कौन स्वीकार करेगा? धर्म, शासन, शिक्षण? तीनों में से कौन? विज्ञान ने मनुष्य की बुद्धि को मुक्त किया था और लोकतंत्र ने हृदय को खोल देने का उपाय किया था, लेकिन सत्ता और सम्पत्ति ने कुछ दूसरी ही रचना कर दी। जो शिक्षण मनुष्य की मुक्ति की शक्ति रखता था, क्योंकि उसमें विज्ञान और लोकतंत्र दोनों का वाहन बनने की सामर्थ्य थी, वह सत्ता और सम्पत्ति के हाथ में पड़ गया। बुद्धि की शक्ति नीचे पड़ गयी शस्त्र और धन की शक्ति को वह अभी तक दबा नहीं सकी है। हिटलर के हाथ में शिक्षण ने फासिस्ट पैदा किये, स्टालिन के हाथ में पड़कर कम्यूनिस्ट, और अब माओ स्कूलों में 'रेडगार्ड' की सृष्टि कर रहा है। दूसरी तरफ पूँजीवादी अमेरिका प्रचार और शिक्षण के द्वारा अपने विज्ञान और लोकतंत्र पर सैनिकवाद का गाढ़ा रंग चढ़ा रहा है। यह देखकर कहना पड़ता है कि अगर पहले के युगों में बच्चा परिस्थिति और अज्ञान की वेदी पर शहीद हुआ, तो आज वह सत्ता की वेदी पर शहीद हो रहा है। किसी-न किसी रूप में उसके व्यक्तित्व का दमन और शोषण चल ही रहा है। जिसके हाथ में सत्ता है वह लाखों-लाख बच्चों को एक साथ शासन के साँचे में ढाँचे में ढालता है, और उन्हें जाति, धर्म, वर्ग और राष्ट्र के तरह-तरह के मादक नारे सिखाकर सत्ता की सिद्धि का साधन बनाता है। बहुत कुछ हुआ, लेकिन नये जमाने में भी शिक्षण शासन और संगठित स्वार्थों से मुक्त नहीं हो सका। जब शिक्षण स्वयं मुक्त नहीं है, तो वह मनुष्य को मुक्त कैसे करेगा? वास्तव में मनुष्य की मुक्ति शिक्षण की मुक्ति का प्रश्न बन गयी है। शिक्षण की पूरी शक्ति तब प्रकट होगी जब समाज में राजनीति (पॉलिटिक्स) और व्यवसाय (बिजिनेस) के स्थान पर शिक्षण (एजुकेशन) का नेतृत्व कायम होगा।

बच्चा सभ्यता की कसौटी

दुर्भाग्य यह है कि मनुष्य की दुर्बुद्धि का दुष्परिणाम सबसे पहले तीन को भोगना पड़ता है—स्त्री, श्रमिक और बच्चे को। युद्ध, उपद्रव, दंगा या दुर्भिक्ष, जहाँ

किसी दूसरी चीज मे नहीं है। यह नयी तालीम का नया समाज शास्त्र और मानस-शास्त्र है।

इस सन्दर्भ में शिक्षण चलाना हो तो शैशव, बचपन और किशोरावस्था के अभ्यासक्रम अलग अलग होंगे, लेकिन धारा एक होगी, दिशा और वातावरण एक होगा। बच्चा शुरू से अन्त तक अपने को तीन तत्वों के साथ जोड़ता चलेगा —पेट, पडोसी और प्रकृति। पेट यानी आर्थिक प्रश्न, पड़ोसी यानी सामाजिक सम्बन्ध, प्रकृति यानी सांस्कृतिक विकास। उत्पादक बनकर बच्चा पड़ोसी से जुडता है शासक या शोषक बनकर नहीं, और पडोसी से जुड़कर प्रकृति से पोषण पाता है और स्वयं प्रकृति को परिष्कृत करता है। यह नयी तालीम की नयी दृ। यह उसके अनुबन्ध का त्रिविध स्वरूप है। यही उसके शिक्षण शास्त्र का मूल और मौलिक तत्त्व है।

अगर ये तत्त्व मान्य हो तो समाज का सारा जीवन एक ही समग्र योजना के अन्तर्गत आ जाता है। परिवार, पडोस और स्कूल अलग अलग न रहकर एक धागे में पिरो उठते हैं। पूरा गाँव या मुहल्ला स्कूल बन जाता है, और वहाँ की हर क्रिया शिक्षण की प्रक्रिया हो जाती है। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होगा तो बच्चे को जीवन शिक्षण न मिलकर केवल पुस्तक शिक्षण मिलेगा। पुस्तक शिक्षण का पूरक साधन है, जीवन का विकल्प नहीं है। और, जीवन के मंच पर शिक्षक सहायक और साथी है, जिसके साथ बच्चा जीवन जीता है, और जीते-जीते उन्नत जीवन जीने का अभ्यास करता है। तब इतिहास, भूगोल, भाषा, गणित आदि विषय जीवन वृक्ष के पत्तों के रूप में दिखाई देने लगते हैं। आज ये वृक्ष बने हुए हैं।

विज्ञान 'सत्य' को सर्वोपरि मानता है। विज्ञान में आग्रह नहीं है। लोक-तंत्र में व्यक्ति समाज की बुनियादी इकाई है। लोकतंत्र के ऐसे व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध में हिंसा अथवा संघर्ष के लिए स्थान नहीं है। इसलिए विज्ञान और लोकतंत्र का शिक्षण असत्य और हिंसा से मुक्त होगा। आज की राजनीति असत्य और हिंसा की राजनीति है, इसलिए विज्ञान और लोकतंत्र के शिक्षण की पहली शर्त है कि वह राजनीति, यानी शासन से मुक्त हो। अच्छे शासन के शिक्षण में कुछ अच्छे तत्त्व हो सकते हैं, लेकिन वह लोकतंत्र और विज्ञान का शिक्षण नहीं हो सकता। नये युग के बच्चों के शिक्षण में यह पहली बात ध्यान में रखने की है।

दूसरी बात कि बच्चा विषय याद करने के लिए नहीं पैदा हुआ है। वह सार्थक जीवन जीने के लिए पैदा हुआ है। उसके लिए उसे आवश्यक ज्ञान,

विज्ञान, और हुनर का अभ्यास चाहिए। ऐसा कोई ज्ञान विज्ञान या हुनर नहीं है जो जीवन जाल की क्रिया प्रक्रिया में जाना न जा सके।

तीसरी बात कि जीवन के लिए जीविका आवश्यक है इसलिए बच्चे में अपने प्रत्यक्ष श्रम और हुनर से जीविका प्राप्त करने की क्षमता होनी ही चाहिए। स्वाश्रयी जीविका के बिना शोषण से छुटकारा नहीं मिल सकता। प्रचलित समाज में जो अनीति है उसकी जड़ में शोषण ही है जिसके मिटे बिना सुखी जीवन सम्भव नहीं। सुखी जीवन में व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता सहज हो आ जाती है।

चौथी बात यह है कि बच्चे के साथ साथ प्रौढ़ों का शिक्षण भी चलता रहना चाहिए ताकि आज का समाज बदले और कल का समाज बने। दोनों क्रियाएँ साथ साथ हों।

इतनी बातें सामने रहेंगी तो हम नयी तालीम का विराट स्वरूप देख सकेंगे। तब हमें बच्चे और प्रौढ़ का परिवार समाज और स्कूल का दूसरा ही स्वरूप दिखाई देगा। आज हमारा शिक्षण सम्बन्धी चिन्तन बहुत कुछ इसी में उलझकर रह जाता है कि कितनी कक्षाएँ हों कौन पुस्तक पढ़ायी जाय और कब कब परीक्षाएँ ली जायें। परीक्षा का अर्थ शिक्षण की समाप्ति। यह सरासर गलत है।

नयी तालीम का अर्थ है तालीम की नयी बुनियादें। वे बुनियादें हैं विज्ञान (सत्य) और लोकतन्त्र (अहिंसा)। इन बुनियादों के दो अभ्यास हैं—हृदय परिवर्तन (विवेकनिष्ठ बुद्धि) और समाज परिवर्तन (व्यक्तिनिष्ठ समाज)।

इस तालीम का स्कूल कहाँ होगा? हर जगह जहाँ जीवन होगा। खेत खलिहान रसोईघर कारखाना दूकान दफ्तर और स्टेशन। शिक्षक कौन होगा? जो नयी बुनियादों को स्वीकार करे जिसके पास देने को कुछ हो।

अभ्यास के विषय क्या होंगे? टट्टी पेशाब पानी रसोई खेती उद्योग यानी अपना शरीर पास का समाज आर-पार और फैली विविध विशाल प्रकृति।

शिक्षण का नया समाज शास्त्र इसी दिशा में जा रहा है। अगर हम बच्चे को सामने बिठाकर सोचेंगे तो हम भी इसी दिशा में चलने का संकल्प करेंगे। समाज शास्त्र मान्य हो जाय तो शिक्षण की अन्य बारीकियाँ तय की जा सकती हैं।

सदियों सदियों तक कुविचार और स्वार्थ के हाथों शहीद होकर बच्चे ने रक्षण पोषण और शिक्षण का अधिकार प्राप्त किया है। अब फिर हम उसे उसके हाथों से न छीनें। हम यह मान लें बच्चा आज के समाज को और हमारे गलत तौर-तरीकों को स्वीकार करने के लिए नहीं पैदा हुआ है बल्कि इसे बदलना और बेहतर बनाना उसका काम है। प्रह्लाद की तरह उसके विद्रोह में उसकी शक्ति है। ●

बुनियादी तालीम की बुनियादें

पहली बुनियाद सत्यशोधन की पद्धति, मूल्य-प्रश्न के बुनियादी कारण, गांधी का ईश्वर, सत्यशोधन की प्रायोगिक पद्धति, श्रद्धा का स्थान, सत्य की परख कैसे, अहिंसा का साक्षात्कार, शब्द और अनुभूति, बुनियादी परिवर्तन का तात्कालिक पहलू।

बुनियादी तालीम भारत के राष्ट्रीय जन जीवन का एक ठोस कार्यक्रम है। प्रत्येक कार्यक्रम में दो तत्वों का समन्वय होता है। एक होता है जीवनदर्शन, दूसरा होता है बाह्य परिस्थिति। दर्शन नैतिक आत्मपक्षी पहलू है, परिस्थिति भौतिक या सामाजिक वस्तुपक्षी पहलू है। जबतक वस्तुपक्षी समस्या की चुनौती का जवाब मनुष्य अपने नैतिक दर्शन के बल बूते पर नहीं देता तबतक मनुष्य पर वस्तुस्थिति हावी रहती है। जब मानवीय दर्शन वस्तुस्थिति की ललकार का समुचित उत्तर दे देता है तब क्रान्ति होती है, मानवीय नैतिक सत्ता की विजय होती है।

विश्लेषण की इस दृष्टि से बुनियादी तालीम भारत की विशिष्ट वस्तुस्थिति में उपस्थित शिक्षा समस्या का गांधी दर्शन-द्वारा प्रस्तुत किया गया उत्तर है।

गांधीजी दार्शनिक नहीं थे, आजीवन सत्य के प्रयोगों में व्यस्त जीवन-विज्ञानी थे। सैद्धान्तिक वाद विवादों को वे बुनियादी नहीं समझते थे। जीवन को बुनियादी मानते थे। अतः उन्होंने कहा था—आचार जीवन, आचार वाणी—मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।

पहली बुनियाद : सत्यशोधन की पद्धति

बुनियादी तालीम का कोई भी प्रयोग ठीक उसी मात्रा में बुनियादी माना जायगा, जिस मात्रा में गांधीजी की सत्यशोधन की पद्धति बच्चों को सहज उपलब्ध करायी जाती हो और जिस मात्रा में कर्ममय जीवन में वैचारिक ज्ञान की ठोस नींवें डाली जाती हों।

प्रबोध चोकसी
गांधी विद्या संस्थान,
वाराणसी

गांधीजी कहा करते थे कि सत्य ही ईश्वर है । यह सत्य क्या है ? बच्चों को सत्य की पहचान बालवाड़ी में ही करायी जानी चाहिए । उत्तर बुनियादी तक पहुंचते-पहुंचते सत्य के आजीवन शोध के रस का चस्का उन्हें लग जाना चाहिए । विनोबाजी की व्याख्यानुसार उन्हें यह विश्वास हो जाना चाहिए कि — 'जीवनं सत्यशोधनम्' — (जीवन सत्य के शोध का नाम है) । शोध के दोनों अर्थ हैं, खोज और शुद्धि । सत्यशोधन कोई आगमनिगम की ऐसी गूढ़ बात नहीं है जो ऋषि मुनियों के ही काम की हो । जो केवल ऋषि मुनियों के ही काम की हो वैसी तो अहिंसा भी गांधीजी को त्याज्य थी । जो सब साधारण जन के काम की वस्तु हो वही गांधीजी को इष्ट था । क्योंकि वे यह भी मानते थे कि करोड़ों मूक जन के दिल में जो बसता है वही सत्य उनका परमात्मा है । गांधीजी की सत्यनिष्ठा लोकनिष्ठा से अविरुद्ध एकरूप थी ।

वस्तुतः सत्य शोधन एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसकी सब मनुष्यों को सब दिन आवश्यकता है, जिसके सहारे उसका दैनन्दिन जीवन आगे बढ़ सकता है । ऐसी जीवन-पद्धति (मेथाडालॉजी ऑव लाइफ) बच्चों को सुलभ कर देना यह बुनियादी तालीम की पहली और अंतिम बुनियाद है ।

मूल्य प्रलय के बुनियादी कारण

बाह्य विश्व के विषय में विविध ज्ञान (इन्फार्मेशन) देना यही इन दिनों शिक्षा का प्रधान कार्य हो गया है । ऐसा भौतिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है अतः साथ में नैतिक ज्ञान देना भी बहुत जरूरी है — इस प्रकार का एक विवाद आजकल चलता रहता है । किन्तु नैतिक ज्ञान क्या दिया जाय ? किस धर्म के आधार पर दिया जाय ? सब धर्मों के समान तत्वों को निकालकर दिया जाय तब भी क्या उसका हमारे सम्प्रदाय निरपेक्ष एवं विज्ञान परायण मूल्यों से मेल खायगा ? ऐसे कई प्रश्न उपस्थित होते रहते हैं । इनका सर्वमान्य समाधान नहीं हो पाता इसलिए नीति निरपेक्ष भौतिक ज्ञान छात्रों के दिमागों में भरकर हमारी शिक्षा समाप्त हो जाती है ।

ऐसी शिक्षा पिछले दो दशकों में चल रही है । स्वराज्य संघर्ष के दिनों में एक सार्वभौमिक आदर्श के कारण कुछ सर्व साधारण मूल्य-दीक्षा विद्यालय के बाहर छात्रों को मिल भी जाती थी । किन्तु इन बीस वर्षों में तो वह युगादर्श भी समाप्त हो गया । इधर शिक्षा में मूल्य निर्णय का कोई नया साधन उपलब्ध नहीं कराया जा सका । फलतः छात्र जगत में एक मूल्य प्रलय सा आ गया है । मूल्यों की एक रिक्तता सी स्थान हो गया है जिसकी पूर्ति छात्र भी शेष जनता की ही तरह आहार विहार और विचार के स्तर पर ओछे जीवन के मूल्यों से कर रहे हैं । परन्तु स्थिति ऊपर ऊपर से जितनी खराब दीखती है उतनी दरअसल है नहीं ।

इन्हीं छात्रों में समाज में व्याप्त सभ्य दाम्भिकताओं के प्रति उग्र रोष भावना स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी खण्डनात्मक प्रवृत्तियों में भी एक अस्पष्ट किन्तु भावात्मक प्रतिपादन की झलक दिखाई देती है। यही है सरल युवा मानव हृदय में स्वयमेव सदा जाग्रत होनेवाली सत्य की आकांक्षा, अर्थात गांधी के 'ईश्वर' की आकांक्षा।

गांधी का ईश्वर

गांधी का सत्य किसी धर्म विशेष या गूढ़ अनुभूति विशेष पर आधारित नहीं है। गांधी का ईश्वर कोई आसमान में रहनेवाला अद्भुत व्यक्ति नहीं है, परन्तु सम्पूर्ण सृष्टि की विविध कक्षाओं की गतिविधियों के जो नियम हैं, उनका एक सकुल सरल प्रतीक है। गांधी का ईश्वर वैज्ञानिक है ज्ञात अज्ञात विश्व की परिभाषा है।

सत्य के स्पष्ट तीन अंग हैं भौतिक, प्राणिक और मानवीय। गांधी इन सबका ईश्वर शब्द में समाहार करते हैं।

अब जड़ प्रकृति जिन नियमों के अनुसार चलती है वह सृष्टि के भौतिक सत्य हैं जिसे तथ्य कहते हैं। उस देखने समझने में अपनी इच्छाएँ पसन्द-नापसन्द की भावना काम नहीं देती। बच्चे को यह अनेक निजी अनुभवों और उदाहरणों से समझाया जा सकता है। विविध कक्षानुसार इसका प्रायोगिक पाठ्यक्रम बन सकता है। ऐसी भौतिक विज्ञान की दृष्टि सत्यशोधनमय जीवन-पद्धति में प्राथमिक महत्व रखती है। पुराने वहमों और मुग्ध आस्थाओं का इससे निरसन किया जाय।

प्राणि सृष्टि में इन भौतिक नियमों के अलावा कुछ विशेष नियम काम करते हुए नजर आते हैं। प्राणि भूख प्यास भय लोभ, प्यार-दुश्मनी आदि हेतु-स्वरूप प्रेरणाओं के आधार पर व्यवहार करते हैं। उनके व्यवहार (बिहेवियर) का अनुमान लगाया जा सकता है उसमें कुछ व्यावहारिक चिकित्सा (बिहेवियरल थैरेपी) से परिवर्तन भी लाया जा सकता है। यह अब सिद्ध वस्तु है। सोदाहरण यह तथ्य विद्यार्थी के ध्यान में लाना सत्य शोधनपद्धति का दूसरा हिस्सा है।

मानव में जड़ सृष्टि तथा प्राणि सृष्टि दोनों के नियम एक हद तक काम करते हैं यह हम सभी अनुभव करते हैं। साथ ही यह भी देखते हैं कि इन दोनों प्रकार के नियमों से अपने व्यवहार को मुक्त करने का मानव का लाक्षणिक स्वभाव है। उदाहरणार्थ पृथ्वी गुरुत्वाकर्षण से खींचती है तो मानव विमान और राकेट बनाकर आकाश में उड़ता है। प्राणियों में बलवान राजा बनता है किन्तु मनुष्य में कमजोर से कमजोर सन्त का लोहा बड़े बड़े राजा भी मानते हैं इत्यादि।

मानवीय सत्य कसे भौतिक एवं दैहिक (प्राणिक) सत्यों से भिन्न है यह बुनियादी तालीम का विज्ञान सीखेगा और सिखायेगा। और खासतौर से इस सत्य के शोध की क्या विशिष्ट पद्धति है यह भी सिखायेगा। क्योंकि विज्ञान शास्त्र से प्राप्त ज्ञान का समुच्चय उतना अभिप्रेत नहीं है जितना कि ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति है।

सत्यशोधन की प्रायोगिक पद्धति

इतु प्रधान मानवीय क्षेत्र में गांधीजी की सत्य शोधन की पद्धति प्रायोगिक (एक्सपेरिमेंटल) थी। भारत में प्राचीन काल में कई महापुरुषों ने मानवीय क्षेत्र में भांति भांति के प्रयोग किये और उनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर चिरंतन मानवीय सत्यों और व्रतों का आविष्कार किया। ये यम नियम विख्यात हैं। गांधीजी का जो विशेष योगदान है वह यह है कि उन्होंने अपने प्रयोगों को व्यापक से व्यापक क्षेत्र में चलाया। आध्यात्मिक तथ्यों को सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में आजमाया और अपने उन प्रयोगों के आधार पर उन्होंने अपने समय के अनुरूप एक राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यक्रम चलाया।

कार्यक्रम समय के बदलने और जीवन के बदलने के कारण जर्जर एवं काल ग्रस्त हो सकते हैं किन्तु गांधी की प्रायोगिक पद्धति तुलना में चिरंजीव है क्योंकि उससे नये जमाने में नये जीवन में सत्य शोधन का एक परखा हुआ साधन हमें प्राप्त हुआ है।

गांधी के कार्यक्रम से भिन्न उनकी पद्धति क्या थी? सरल शुद्ध हृदय में जो इस क्षण सही मालूम हुआ वही बोलना वही करना। ऐसे सत्य पर श्रद्धा रखकर प्रत्यक्ष जीवन में प्रयोग करना। फिर प्रयोग से जो परिणाम निकले तदनुसार सत्य की मूल कल्पना में आवश्यक परिवर्तन करना और पुनः उस संशोधित सत्य पर श्रद्धा रखकर नया प्रयोग करना। इस प्रकार सतत सत्य की कल्पना का संशोधन प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर करते चले जाना और प्रत्येक प्रयोग के लिए उस सापेक्ष सत्य पर श्रद्धा रखना। श्रद्धा का अर्थ है पूरी शक्ति से आचरण करने का निश्चय। किंतु प्रत्यक्ष आचरण प्रायोगिक होगा इसलिए सापेक्ष सत्य अनुभव के आधार पर बदलता चला जायगा और श्रद्धा का कदम भी आगे बढ़ता चला जायगा।

श्रद्धा का स्थान

ऐसी श्रद्धा कच्ची नहीं हो सकती क्योंकि यह ज्ञान प्राप्त करनेवाले कार्य का आधार है। भूमिति आदि विज्ञानों में जिसे हाइपोथिसिस कहते हैं वैसा ही कुछ

मुख्य स्थान गांधी के सत्य प्रयोग में 'श्रद्धा' का है। और 'सत्य' के आधार पर प्रत्यक्ष कर्म और कर्म के अनुभव के आधार पर सत्य का संशोधन यह जो निरन्तर सत्य-विकास का स्वयंपूर्ण कर्मकारी चक्र है वह आधुनिकतम विज्ञान में स्वयंभरण (साइबरनेटिक्स) नाम से मशहूर सिद्धान्त का ही मानवीय जीवन में विनियोग है। अनवरत विकास का गतिमान (डाइनेमिक्स) इस स्वयंभरण की वैज्ञानिक पद्धति का उद्दिष्ट है।

अब सवाल यह उठता है कि सत्य का विकास हुआ कब माना जाय और ह्रास कब हुआ माना जाय? उस विकास की दिशाएँ कैसे तय हों? उसकी नाप कैसे की जाय?

यहाँ गांधी की पद्धति में 'सत्य' का परम या निरपेक्ष स्वरूप सामने आता है, 'परम सत्य', जिसे गांधी 'परमात्मा' भी कहते हैं, यह यूक्लिड की रेखा, बिन्दु, अनन्त आदि की भौमितिक व्याख्या के जैसा है। वह सिद्ध नहीं किया जा सकता, परन्तु उसे माने बिना प्रत्यक्ष बिन्दु व रेखा खींची नहीं जा सकती। गांधी कहते हैं कि परम सत्य इस देह में रहते हुए कभी प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु उसे प्रत्यक्ष देखने के अदम्य उत्साह के बिना जीवन में सत्य के प्रयोग रूप कर्म किये नहीं जा सकते।

यह परम सत्य एक ऐसा काल्पनिक केन्द्र है जहाँ मानव-जीवन के विविध सापेक्ष सत्य मिल जाते हैं—जैसे समानान्तर रेखाएँ अनन्त में—और उस केन्द्र में सारे भौतिक सत्य भी मानवीय सत्य से एकरूप हो जाते हैं। जड़ चेतन सकल सृष्टि के एकमेव नियम के केन्द्ररूप उस सत्य की कल्पना है। उस परम सत्य के आधार पर यहाँ हमारे प्रत्यक्ष जीवन में सापेक्ष सत्य के विकास-ह्रास की दिशा का निश्चय होता है और विकास-यात्रा का शुद्ध मूल्यांकन किया जा सकता है।

सत्य की परख कैसे

किन्तु जो हमें सत्य लगता है वह सत्य ही है इसकी परख कैसे की जाय? क्या सबको या बहुजन को जो सत्य भासित होता है वही सत्य माना जाय? नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का सत्य भिन्न होता है—जैसे प्रत्येक लट्टू की अपनी अपनी कील होती है प्रत्येक पदार्थ का अपना अपना गुरुत्व बिंदु (सेंटर आव ग्रेविटी) होता है। एक लट्टू दूसरे लट्टू की कील पर घूम नहीं सकता। कोई वस्तु दूसरी वस्तु के गुरुत्व बिन्दु के अनुसार गति नहीं कर सकती। वैसे प्रत्येक व्यक्ति को अपना सत्य स्वयं अपने ही में प्राप्त करना है और तदनुसार अपना सत्याचरण करना है। तब व्यक्ति कैसे निश्चय कर पाये कि यह जो मुझे प्रतीत होता है वह मेरा सत्य है, असत्य नहीं है?

मान्किल का पहिया जब टेढ़ा हो जाता है तब मान्किल की गति ऊबड़-खाबड़ हो जाती है जिसे प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। जब पहिए की पूरी परिधि अपने केन्द्र में सही (ट) होता है तब मान्किल सरल-सुगम और प्रवाही गति में दौड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य जब अपने आप में सही (ई.) होता है तब वह सरल शान्त प्रवाही गति का अनुभव करता है अन्यथा विशेष दशा असन्तुष्ट अनिश्चित अवस्था अनुभव करता है। सत्य असत्य का स्वधर्म परधर्म का यही परख है। सत्य में ऋजुता और आनन्द की सहज अनुभूति होती है। सत्य के प्रयोग के लिए ऐसी अनुभूति का दर्शन और परखने की शिक्षा वृद्धि की इसी पद्धति है। बुनियादी तालीम की यही बुनियादी पाठ है जिसमें सिला बुनाई-बनाई आदि क्रियायें अंश अपने में बारीं तालीम अर्थ नहीं रखते। इसके बाद का उत्तर बुनियादी तालीम करते तक अपने प्रति धर्म सहा बनना सब अच्छी तरह से आ जाना चाहिए। इस दृष्टि से चिन्तन हो प्रयोग करके चिन्तन मंथन करके शरुआत भाषा में सत्य के प्रयोगों की एक पाठावली बनानी होगी। गाथा कविता तो है ही और भी उपनिषदादि साहित्य है। परन्तु इस पाठावली में ऐसे प्रयोग होने चाहिए जिसे बच्चा स्वयं आजमा करके अपने आपस अपने मन के सत्य असत्य का निर्णय करने की तालीम पा सके।

अहिंसा का साक्षात्कार

तब सवाल पैदा होगा कि मेरा सत्य जब दूसरे के सत्य से भिन्न हो विरोधी भी साबित हो तब क्या करना ? ऐसी समस्या को लेकर गांधीजी ने वैज्ञानिक उत्तर खोजा तो उन्हें अहिंसा हाथ लगा। एक ही कक्षा में कई छात्र अपने सत्य देख रहे हैं तदनुसार क्या करना क्या नहीं करना इस कर्तव्य का निश्चय कर रहे हैं। अब उस अवस्था में मैं अपने सत्य-ज्ञान के अनुसार दूसरों के सत्य प्रयोगों में खलल पहुंचाने लगा उनको तोड़ने लगा तब तो पूरी कक्षा में सत्य के प्रयोग चल ही नहीं पायेंगे। मैं समर्थ हूं तो कक्षा पर मेरा साम्राज्य छा जायगा। अन्य सब छात्रों का अनुसरण करना होगा और मेरी अपनी ऋजुता और शान्ति भी खतम हो जायगी। तो सत्य के प्रयोग में पर मत-सहिष्णुता अहिंसा सामाजिकता प्रेम शान्ति की अनिवार्यता मेरे ध्यान में आयगी। फिर प्रेम का विशेष परिचय होगा। आपसे मेरा आग्रह स्नेह है और मैं आपके व्यवहार को विचार को अपने स्नेह की शक्ति से बदलता हूं। जितना प्रेम है उतना मैं अपने सत्य का आग्रह करता चला जाता हूं। आपके प्रेम के अनुपात में आपके सत्य का मुझपर प्रभाव होता चला जाता है। अन्त में दोनों के प्रेम के कारण दोनों के सत्य का विकास होते होते दोनों के सत्य एक

ही हो जाते हैं और फिर दोनों मिलकर उस सत्य के उत्तरोत्तर शोधन की या विकास की प्रक्रिया में लग जाते हैं।

यह सत्याग्रह की समाज शास्त्रीय-पद्धति (सोशियालाजिकल मेथड) गांधी की विशिष्ट वस्तु है। हम बुनियादी तालीम को वहाँतक पहुँचा दें तब वह पूर्ण होगी।

शब्द और अनुभूति

बुनियादी तालीम में माना गया है कि क्रिया ज्ञान का आधार है। इसमें जो तथ्य है वह भी ऊपर कथित सत्यशोधन-पद्धति का ही एक अंश है। किसी ग्रन्थ में पढ़ा, किसी से सुना कि गुड़ 'मीठा है, या झूठ बोलने से दिल जलता' है। किन्तु उसमें मीठा और दिल जलना इन शब्दों का अर्थ क्या होता है? छात्र को उसका अर्थ तब समझ में आता है जब उसने गुड़ खाया है या झूठ बोलकर उसकी बेचैनी महसूस की है। कुछ ऐसी बातें सुनते हैं जो अनुभव में नहीं आयी तो उसे अनुभव करके तब समझते हैं। तो शब्द में अर्थ अनुभूति से उत्पन्न होता है अर्थात् कर्म से जीवन से। जीवन की अनेक क्रियाएँ नये सन्दर्भों में नयी दृष्टि से, नये नये अनुभव देती है और तब नयी नयी संज्ञा हम उन्हें देते हैं। तो अर्थ साक्षात्कार के लिए स्वानुभव एवं मनन अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में दृष्टिपूर्वक की गयी क्रिया से ज्ञान प्राप्त होता है।

अब यह नयी तालीम का अथवा जीवनमूलक शिक्षा का एक ऐसा सर्वदर्शीय तथ्य है जो किसी न किसी रूप में हर तरह की शिक्षा पद्धति में प्रकट प्रच्छन्नरूप से उपस्थित होता ही है। नयी तालीम की विशेष देन इतनी ही है कि वह इस सिद्धान्त को स्पष्ट करके उसे समस्त शिक्षाओं में जाग्रत भाव से काम में लाने पर बल देती है ताकि शिक्षा सार्थक हो। इसके बिना शिक्षा तोते की पढ़ाई की तरह विधिमात्र हो जाती है, वह निर्णय बुद्धि देनेवाली वास्तविक शिक्षा नहीं बनती।

बुनियादी परिवर्तन का तात्कालिक पहलू

इस वैज्ञानिक तथ्य को भारत की समस्त शिक्षा की बुनियाद के रूप में अब शीघ्र ही प्रस्थापित कर देना चाहिए। जिन्हें अनुभव है, उन्हें आवश्यक बौद्धिक ज्ञान देकर शिक्षित बना देना चाहिए। जिन्हें ग्रन्थ ज्ञान है उन्हें प्रत्यक्ष कार्यरूप अनुभव किये बिना शिक्षित नहीं मानना चाहिए। यह बात डाक्टरी, आडिट, वकालत आदि विषयों में तो एक हद तक स्वीकृत हो चुकी है। किन्तु अन्य सभी क्षेत्रों में अब कैसे इस तथ्य का प्रसार किया जाय यह देखना चाहिए। सरकार तो इसे करे ही, पर नयी तालीम में लगे लोगों का भी अब यह कर्तव्य हो जाता है कि अपने खास विशिष्ट कार्यक्रमात्मक रूप को छोड़कर देश में प्रचलित शिक्षा में इस तथ्य को व्यापक रूप से कार्यान्वित कराने के लिए आवश्यक प्रयोग करें और ठोस सुझाव दें।

जीवन के विविध व्यावसायिक क्षेत्रों में हम देखते हैं कि कितने ही बढ़ई, लोहार, मछुए, किसान आदि अपने-अपने काम अच्छी तरह से करते रहते हैं। उनमें कुछ तो बड़े ही कुशल होते हैं जो अपनी कार्यपद्धति एव साधनों में सुधार भी करते हैं। ऐसे अनुभवी तज्ञों को अल्प प्रान-मायकालीन पाठ्यक्रम देकर देश में मान्यता-प्राप्त विज्ञानवेत्ताओं की सख्या में वृद्धि करनी चाहिए। इसके विपरीत अनुभव-रहित विज्ञान-वेत्ताओं को मान्यता न देनी चाहिए, अर्थात अनुभव लेने के लिए बाध्य करना चाहिए। विशुद्ध सैद्धान्तिक विद्याक्षेत्र को छोड़कर शेष सारे शिक्षाक्षेत्र में ज्ञान-कर्म का ऐसा समन्वय कराने का बीड़ा नयी तालीम को उठा लेना होगा। वर्गविहीन समाज-रचना के लिए भी यह अनिवार्य है।

इस समय तो प्रचलित और वास्तविक शिक्षा में एक ऐसी खाई बन गयी है कि भारतीय समाज में दो वर्ग ही खड़े हो गये हैं। शिक्षित को ऊँचे स्थान मिलते हैं, अच्छी तनख्वाहें दी जाती हैं, पर वे व्यवहार में बहुत कम ही कर पाते हैं, क्योंकि उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। अशिक्षितों के पास अनुभव है, परन्तु वे नीचे माने जाते हैं, उनकी कमाई भी थोड़ी ही होती है। इस प्रकार कर्म और ज्ञान के विच्छेद के कारण एक ऐसा कृत्रिम नया वर्ग-भेद इस देश में खड़ा हो रहा है जिसके चलते देश के उत्पादन के विकास में बाधा पड़ रही है, और मुद्रास्फीति और महँगी को खूब बढ़ावा मिल रहा है। अब तो इसके आर्थिक परिणाम इतनी भयावनी हद तक आगे बढ़ चुके हैं कि उससे राजनीतिक अस्थिरता भी पैदा हो गयी है। और देश के जनतंत्र और स्वातन्त्र्य पर ही खतरा छा रहा है।

• अत: अब गाधी-निर्दिष्ट यह समस्या तार्किक वाद-विवाद का ही विषय नहीं रह गयी है। इसको हमारे वर्तमान राष्ट्रीय सकट के अनुबन्ध में देखना चाहिए और तब बुनियादी तालीम की इन दोनों बुनियादों पर इस देश के भविष्य का आधार कैसे है, कितना है, यह स्वयमेव प्रकट हो जायगा और उस प्रतीति से राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति की इन बुनियादों के आधार पर मौलिक पुन-निर्माण करने की वृत्ति और शक्ति पैदा होगी।

सो इस छोटे से लेख में हमने गाधीजी की बुनियादी तालीम की दो महत्व-पूर्ण बुनियादों का किंचित् विश्लेषण किया एक तो सत्य शोधन की उनकी पद्धति का और दूसरा ज्ञान को वास्तविक बनाने के लिए कर्म की अनिवार्यता का। एक पर जनतंत्र और मानव-स्वातन्त्र्य निर्भर करता है, दूसरे पर भारत का आर्थिक विकास। हम उम्मीद करें कि यहाँ जो विश्लेषण पेश किया गया है, उससे हमारी शिक्षा के नवोन्मेष में सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जायेगा। ●

खण्ड दो

माँ का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण

बचपन का महत्व, माँ के प्रशिक्षण का महत्व, माँ के मनोवैज्ञानिक ज्ञान की रूपरेखा, मनोवैज्ञानिक शोध की आवश्यकता।

बालक को प्रौढ़ का लघु रूप कहा गया है। प्रौढ़ व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से प्राप्त तथ्य को बालक के व्यवहार को समझने के लिए पर्याप्त माना जाता रहा है। बालक के प्रशिक्षण में उसे देखने पर बल दिया जाता रहा है उसे सुनने और समझने पर नहीं। हाल के वर्षों में इन धारणाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। फ्रायड और उनके अनुयायियों ने प्रभावशाली ढंग से यह तथ्य उपस्थित किया है कि बचपन के अति सामान्य समझे जानेवाले अनुभव भी बालक की जीवन शैली को व्यापक रूप में प्रभावित करते हैं। फ्रायड ने तो यहाँ तक कहा है कि प्रारम्भ के पाँच या छः वर्ष तक का जीवन व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का निर्णायक काल है। यद्यपि अधिकांश मनोवैज्ञानिक जीवन के इस प्रारम्भिक काल को ही सम्पूर्ण महत्व देने को तैयार नहीं हैं और ऐसे तथ्य उपस्थित किये गये हैं जिनसे जीवन के अन्य भागों में भी महत्वपूर्ण क्रान्ति होने के संकेत मिलते हैं फिर भी सभी मनोवैज्ञानिक एक स्वर से बचपन को जीवन की आधार शिला मानते हैं।

बचपन का महत्व

साधारणतया व्यक्ति की मानसिक रचना—मनोवृत्ति आदत व्यक्तित्व और व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं की जड़ बाल्यावस्था के अनुभवों में ही पायी जाती है। व्यावहारिक स्वरूप ही नहीं शारीरिक स्वरूप भी इस काल के प्रभावों से अछूता नहीं रहता। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों का ध्यान बचपन की ओर गया है और बाल मनोविज्ञान अथवा विकासात्मक मनोविज्ञान की एक

रामनयन सिंह
प्राध्यापक मनोविज्ञान विभाग
डिग्री कालेज गाजीपुर

शाखा ही निकल पड़ी है। मनोविज्ञान की इस शाखा में विकास के विभिन्न पहलुओं और विकास को प्रभावित करनेवाले विभिन्न कारकों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। सामान्यतया यह सिद्धान्त स्थापित हो गया है कि मानव-जीवन के विकास में नैसर्गिक आधार ('जीन्स' जन्मजात गुणों के आधार माने जाते हैं। ये रजकण और वीर्यकण में उपस्थित रहते हैं) परिवेश और सीख का प्रमुख रोल होता है। विकास के विभिन्न स्वरूपों को ये तत्त्व विभिन्न अंशों में प्रभावित करते हैं। जैसे पौधे की स्वस्थ वृद्धि और विकास के लिए उपयुक्त बीज के अतिरिक्त अन्य पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है और उचित रख-रखाव करना पड़ता है इसी तरह बालक के स्वस्थ विकास के लिए भी उपयुक्त परिवेश और पालन की आवश्यकता है। जैसे कृषक को पौधों की वृद्धि और विकास-सम्बन्धी सिद्धान्तों को जानना आवश्यक है, डाक्टर को शरीर-शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है, उसी तरह बालक के माता-पिता तथा शिक्षकों को मानव-विकास-सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान अपरिहार्य है।

माँ के प्रशिक्षण का महत्व

बालक के पालकों में माँ का स्थान प्रमुख है। प्रारम्भ में माँ के सम्पर्क में ही शिशु का अधिक समय व्यतीत होता है। फलस्वरूप जो उसके अनुभव होते हैं वे ही उसकी मानस-रचना का आधार प्रस्तुत करते हैं। अतः माँ को बालक के पालन-पोषण-सम्बन्धी वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी आवश्यक है।

माँ के मनोवैज्ञानिक ज्ञान की रूपरेखा

माँ के मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण की आवश्यकता और स्वरूप का स्पष्ट बोध कराने के लिए विकास-सम्बन्धी निम्नलिखित तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) विकास के हर पहलू में व्यक्तिगत भेद पाया जाता है। यह भेद विशिष्ट पहलू में विभिन्न अंश का होता है। मानसिक योग्यताओं की अपेक्षा शारीरिक बनावट में कम भिन्नता होती है। मानसिक योग्यताओं और शारीरिक बनावट की अपेक्षा व्यक्तित्व में और भी अधिक भिन्नता होती है। अभिरुचियों (एप्टीट्यूड्स) में सबसे अधिक भिन्नता होती है। व्यक्तिगत भिन्नता दो प्रकार के प्रमुख कारणों से उत्पन्न होती है—वंशानुक्रम-द्वारा प्राप्त सामर्थ्य और स्वरूप तथा पर्यावरण से सम्बन्धित तत्त्व।

व्यक्तिगत भिन्नता एक स्थापित तथ्य है। लेकिन इस तथ्य को जीवन के विकास का आधार बनाना लोग प्रायः भूल जाते हैं। यह धारणा प्रचलित-सी प्रतीत होती है कि हर व्यक्ति हर काम कुशलतापूर्वक कर सकता है। जब हम एक लड़के की तुलना दूसरे लड़के से करते हैं अथवा लड़के के लिए लक्ष्य निर्धारित

करते हैं तो व्यक्तिगत भिन्नता के तथ्य को ध्यान में भी नहीं लाते। तुलना और प्रतियोगिता पर आधारित शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के जीवन के लिए घातक है। इसमें अस्थायी तात्कालिक लाभ भले होता दिखाई देता हो लेकिन व्यक्ति का जीवन टूट जाता है। उसमें कुरूपता आ जाती है। फिर वही कुरूपता समाज में दिखाई देती है। अतएव ऐसी शिक्षा समाज को सुन्दर रूप नहीं दे सकी है। शिक्षा की असफलता के विभिन्न कारणों में से एक प्रमुख कारण है व्यक्तिगत भिन्नता के तथ्य का निरादर।

(२) बालक के पालन पोषण से सम्बन्धित हर व्यक्ति को यह जानने की आवश्यकता है कि विकास की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं और हर अवस्था के अपने विशिष्ट लक्षण होते हैं। विकास-काल को इन विशेषताओं के आधार पर निम्न स्तरों में बाँटा गया है —

(१)	जन्म के पूर्व की अवस्था	— गर्भाधान से २८० दिन या ९ माह तक
(२)	शैशवावस्था	— जन्म से १४ दिन तक
(३)	बचपन अवस्था	— २ वर्ष तक
(४)	बाल्यावस्था	—१० वर्ष तक
(५)	किशोरावस्था	—१८ वर्ष तक

इन विभिन्न स्तरों की विशेषताएँ उस काल के लिए सामान्य होती हैं चाहे वे प्रौढ़ों की सामाजिक दृष्टि से अवांछित ही क्यों न हों। इन सामान्य विशेषताओं को भी बहुधा माता पिता असामान्य मान लेते हैं और बालक के साथ कड़ा व्यवहार करते हैं जिससे बालक के जीवन में जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। पालकों को यह समझना आवश्यक है कि यदि किसी स्तर पर कोई बालक तथाकथित अवांछित क्रिया को बार बार करता है तो इसका यह मतलब नहीं कि उसे वह आदत के रूप में परिणत कर रहा है। चलने के पहले वह रेंगता है लेकिन रेंगना चलने की क्रिया में बाधा नहीं डालता। रेंगना तो विशिष्ट आयु की सामान्य क्रिया है। दूसरी आयु पर स्वतः ही उसका लोप हो जाता है। इसी तरह पाँच छः वर्ष का बालक प्रौढ़ों की भाषा में विवादी उद्धत और धृष्ट होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह बिगड़ रहा है। यह तो उस आयु का सामान्य व्यवहार है। अवस्था बदलने ही वह दूसरे रूप में ढल जायगा। हाँ यदि उसे कठोरता से बदलने का प्रयत्न किया जायगा तो अवश्य बालक का जीवन समस्यात्मक हो जायगा।

(३) आज मनोवैज्ञानिकों की एक सामान्य धारणा बन गयी है कि बालक समस्यात्मक नहीं होता बल्कि माता पिता ही समस्यात्मक होते हैं। सामान्य जीवन में माता पिता, शिक्षक, नेता आदि बराबर यह दोष देते रहते हैं कि आज के बालक बिगड़ते जा रहे हैं। बालकों की अनुशासनहीनता की जिम्मेवारी बालकों पर ही डाली जाती है। उन्हें कोसा जाता है और अनुशासित जीवन व्यतीत करने

का उपदेश दिया जाता ह। यदि पाठकों को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का बोध होता कि बालक के समस्यात्मक हो जाने की जिम्मेवारी स्वय उन्ही की है तो समाज का रूप कुछ दूसरा ही होता।

बालक के विकास पर माता पिता के प्रभाव के सम्बन्ध में जो मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं उनमे प्रमुख रूप से चार प्रकार के प्रभावों की छानबीन की गयी है—

(१) माता पिता के व्यक्तित्व के स्वरूप का प्रभाव
(२) बालक के प्रति उनकी मनोवृत्ति
(३) उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति
(४) माता पिता का आपसी सम्बन्ध

क्लीनिक में समस्यात्मक बालकों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि माता पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव बालक पर पड़ता है। निराश व्यक्ति बहुधा अपने लड़कों से बड़ी-बड़ी आशाएँ करने लगते हैं जिससे लड़के को असफलता और कुंठा का सामना करना पड़ता है और वह पलायनवादी हो जाता है। बाध्यतासक्त व्यक्तित्ववाले माता पिता के कारण बालक में भी बाध्यता का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। माता पिता के कर्तव्य के बारे में उनकी धारणा का प्रभाव बालक के प्रति उनके व्यवहार पर पड़ता है। अनुशासन के लिए प्रभुतात्मिक पद्धति अपनाने पर बालक या तो भयग्रस्त विद्रोही और आक्रमणकारी हो जाता है या अति विनीत आज्ञाकारी पराश्रयी लज्जायुक्त या दीनभावयुक्त हो जाता है। जनतान्त्रिक पद्धति अपनाने पर बालक निर्भय स्वावलम्बी और सामाजिक होता है।

बालक के प्रति माता पिता की विभिन्न मनोवृत्तियाँ पायी जाती हैं जिनमे विभिन्न अंश में स्वीकारने या तिरस्कारने की भावना मिली रहती है। माता पिता का अत्यधिक सुरक्षाभाव उनके बालक में अत्यधिक सम्पर्क के रूप में प्रकट होता है। ऐसे माता पिता अधिक समय तक बालक की सहायता करते रहते हैं। माता पिता के इस प्रकार के व्यवहार के कारण बालकों में कई दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है—परावलम्बन घबराहट की प्रवृत्ति परिश्रम और उत्तरदायित्व की कमी सहनशीलता की कमी। तिरस्कृत बालक में आक्रमणकारिता या दीनभाव या दोनों का मिश्रण पाया जाता है। इन दोषों के अलावा कुछ गुण भी प्रकट होते हैं जैसे आत्मनिर्भरता यथार्थवादिता और होशियारी आदि। जिन घरों में बालकों को सम्यक प्रेम निर्देशन अधिकार और आवश्यकताओं की पूर्ति मिलती है उन घरों के बालकों का सम्यक विकास होता है।

माता पिता के जोड़े में समरूपता न होने के कारण उनके सम्बन्ध में गड़बड़ी रहती है जिससे बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। घर में सम्यक अनुशासन का वातावरण नहीं रह पाता। बालक को तिरस्कार और उपेक्षा की अनुभूति होती है। दोनों में अत्यधिक तनाव के कारण कभी-कभी सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

ऐसी स्थिति में बालक का नैतिक विकास पिछड़ जाता है और उसमें अनेक व्यवहार-सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

मनोवैज्ञानिक शोध की आवश्यकता

इस प्रकार स्पष्ट है कि बालक के पालकों और विशेषकर उसकी माता को जीवन-विकास के तथ्यों का बोध होना आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिकाधिक शोध-कार्य की आवश्यकता है। आज जो भी मनोवैज्ञानिक तथ्य हम लोगों को ज्ञात हैं उनका स्रोत पश्चिम के देशों (विशेषरूप से अमेरिका) में हुए शोध-कार्य हैं। भारत में इस दिशा में नहीं के बराबर कार्य हुआ है। भौतिकता के विकास के लिए योजनाएँ बनती हैं। साधन जुटाये जाते हैं। लेकिन मानव-जीवन-विकास के सम्बन्ध में लोगों का ध्यान कम है। बिना व्यक्ति के बदले समाज नहीं बदल सकता। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक सुधार पैवन्द का ही काम करते हैं। ऐसे सुधारों के बाद भी बार-बार सुधार की जरूरत पड़ती ही रहती है। इसलिए वास्तविक सामाजिक क्रान्ति तो तब होगी जब व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो; उसकी जीवन शैली में परिवर्तन हो। तभी भौतिक विकास व्यक्ति और समाज के लिए शुभ होगा। अन्यथा वह अभिशाप ही बनकर रह जायगा। अत जीवन-विकास-सम्बन्धी अनुसन्धान की आज भारी आवश्यकता है। इस प्रकार की छानबीन में प्राप्त तथ्य पर शिक्षा (चाहे घर की हो या स्कूल की) आधारित होनी चाहिए। ●

मातृत्व की शिक्षा

मानव-शिशु और प्राणी, सामाजिकता की शिक्षा, नारी के बदलते रूप, कुटुम्ब-द्वारा मातृत्व की शिक्षा, आधुनिक जीवन, सोचने का देहाती ढंग, यौन-क्रिया और मातृत्व, बच्चे का जन्म, माँ के मन की तैयारी, माँ का स्वास्थ्य, परिपूर्ण शिशु की अपेक्षा, शिक्षा का कार्य, परिवार-नियोजन के आयाम, शिशु-जन्म—एक तान्त्रिकता।

मानव-शिशु और प्राणी

हमें जो शरीर मिला है वह प्राकृतिक घटकों—कीटाणुओं का एक सामूहिक आयोजन है। उसकी प्रत्येक क्रिया में प्राकृतिक नियमों का अनुसरण है, परन्तु हमारी प्राकृतिक शक्तियों का सहज वृत्तियों का किस तरह उपयोग करके अपने तथा अन्यों के अनुकूल बनाया जा सकता है, यह हमें अपने अर्जित ज्ञान से जानना होता है। अतः शिक्षा हमारे जन्म से ही नहीं, उससे पूर्व ही शुरू हो जाती है। हम प्राकृतिक देन और अर्जित प्रवृत्तियों के मेल से ही अपने जीवन को सम्पूर्ण बना सकते हैं।

नये जीवन के जन्म की प्रारम्भिक घटनाओं से तो यही पता चलता है कि मानव-शिशु की गर्भ-ग्रन्थियों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। परन्तु हजारों वर्षों से मानव की अर्जित प्रवृत्तियों को सहज प्रवृत्तियों में ढालने की प्रक्रिया ने उन विशेष प्रवृत्तियों को मानव-शिशु के लिए प्राकृतिक-सा बना दिया है और इस तरह जन्म के बाद उसमें तथा प्राणी के बच्चे में फर्क दिखाई देता है। यदि एक नवजात शिशु को माँ से अलग करके केवल प्राकृतिक वातावरण में रखकर पाला-पोसा जाय तो वह केवल प्राणी बनेगा, मानव-शिशु नहीं,

ताहेर मो० कापुसवाल
लेक्चरर, कालेज आव् नर्सिंग
ए० एफ० एम० सी०,
पूना—१

क्योंकि उसे अपने अर्जित गुणों का विकास करने का कोई मौका नहीं मिलता।

सामाजिकता की शिक्षा

मानव सामाजिक प्राणी है। गर्भ से निकलते ही उसका सबसे पहला सम्बन्ध अपनी माता से तथा आसपास के वातावरण से आता है। उसका अस्तित्व समाज में कई नये सम्बन्ध पैदा कर देता है—एक पत्नी को माता बना देता है, एक पति को पिता। उसकी हर क्रिया में एक बुलावा होता है, आकर्षण होता है। उसके आने से परिवार के अन्य बच्चों में एक प्रतिक्रिया जागती है, जो कभी सर्जनात्मक, तो कभी ध्वंसात्मक होती है। तब माता पिता ने उसे कैसी सामाजिकता सिखायी है उसका पता चल जाता है। आरम्भ से ही बच्चे को सामाजिक बनाना माता का विशेष कार्य होता है।

नारी के बदलते रूप

मानव समाज के आदिकाल से आज तक स्त्री का महत्व रहा है क्योंकि उसके जीवन में कितने ही परिवर्तन आते हैं। वह बालिका से किशोरी और किशोरी से युवती बनती है। जब उसके ब्याह की चिन्ता होती है, तब उसमें असीम लाज भर जाती है, जिससे उसे अपने तथा अपने सामाजिक जीवन को समझने का कोई खास मौका नहीं मिल पाता। यौन सम्बन्धी बातें बच्चों को समझाते माँ-बाप शरमाते हैं और बच्चों को डरा धमकाकर चुप कर देने से इन बातों को बच्चे गलत समझने लगते हैं। कुछ लड़कियाँ इधर उधर से थोड़ा-बहुत जान पाती हैं, बाकी तब तक पत्नी बन जाती हैं। अबतक सभी भारतीय लड़कियाँ स्कूल की शिक्षा का पूर्ण लाभ उठा नहीं सकी, जिसके बहुत से कारण हैं। पत्नी बनने की तथा बाद में माता बनने की शिक्षा प्राप्त करने की बात तो वे सोच भी नहीं सकती।

भारत में ब्याही जानेवाली लड़कियों में १८ प्रतिशत लड़कियों की उम्र ० से १४ वर्ष की ही होती है। उस समय उनकी स्कूल की शिक्षा बाकी रहती है। ऐसी अवस्था में वे अपना संसार आरम्भ नहीं कर सकती हैं। वे संयुक्त परिवार में नये वातावरण में आ जाती हैं और संयोग हुआ तो छोटी ही उम्र में माँ भी बन जाती हैं।

कुटुम्ब-द्वारा मातृत्व-शिक्षा

हमारी स्कूली शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह जीवन-स्पर्शी नहीं है, उसका आधार है बाहरी सुख-सुविधा। इसी से सहशिक्षा में तथा लड़कियों के स्वतंत्र स्कूलों में भी ज्ञान विज्ञान तथा भाषाओं के नाम पर वे बातें

लड़कियों के माथे पर मढ़ दी जाती है, जिससे वे अपनी संस्कृति और अपना नारीत्व भूल जाती है। जिस मातृत्व की शिक्षा पर माता का तथा अपनी सन्तानों का जीवन आधारित है उसकी आवश्यक और पूरी जानकारी हमारी किशोरियों को नहीं मिल पाती। इस शिक्षा का महत्व प्राचीन काल में इसलिए नहीं समझा गया था, कि तब समाज अत्यन्त संगठित था और हरएक कुटुम्ब एक बड़ा संयुक्त कुटुम्ब था, हर कुटुम्ब की प्रौढ़ स्त्रियाँ ये बातें समय-समय पर लड़कियों को समझाया करती थीं।

आधुनिक जीवन

आज की नवीन सभ्यता के व्यक्तिवाद तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य ने व्यक्ति को स्वतंत्र बनाकर बहुत लूला-लगड़ा भी कर दिया है। विभक्त कुटुम्ब और नारी के संकुचित परिवार के विचारों ने उसे न केवल एकाकी बना दिया है, अपितु उसे मातृत्व की शिक्षा के बारे में असहाय भी कर दिया है। शहरों में रहनेवाली स्त्रियों, पढ़ी-लिखी स्त्रियों, नौकरी करनेवाली स्त्रियों, अमीर स्त्रियों और गरीब स्त्रियों के 'मातृत्व'-विषयक दृष्टिकोणों में काफी अन्तर आ गया है। सरकार तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं पर आधारित रहने के कारण आधुनिक नारी कुछ लापरवाह हो गयी है। शहरों के संघर्षपूर्ण जीवन में तथा महँगाई के कारण मातृत्व के निकट आनेवाली नारी या तो उसके प्रति निराश हो जाती है या लापरवाह हो जाती है, या फिर कुछ किताबों का सहारा लेकर समस्या हल करना चाहती है। इस तरह अर्जित ज्ञान से वह अधिक दुर्भावनाओं में फँसकर रह जाती है।

सोचने का देहाती ढंग

आज से सौ साल पहले, शिशु-जन्म और शिशु-संवर्धन तथा घर-गृहस्थी चलाना ही नारी-जीवन और नारी के अस्तित्व का मुख्य-प्रयोजन माना जाता था। परन्तु आज देहातियों में शहर में बसने की तथा आधुनिक जीवन जीने की उत्कट इच्छा जाग गयी है। ऐसी अवस्था में गाँवों की उन्नति तथा वहाँ की महिलाओं की ओर ध्यान देना भुला दिया गया है। देहाती स्त्रियाँ संकोच के कारण दवाखानों में तथा समाज-कल्याण-केन्द्रों में जाने से कतराती हैं। अतः गर्भ रहने के तीन चार महीने तक तो वे किसी अस्पताल में जाना आवश्यक नहीं समझतीं।

यही दशा शहरों में कुछ अलग रूप में मौजूद है। मातृत्व के प्रति एक उदासी है, एक बोझ की भावना है। सन्तान की अनिच्छा के बावजूद गर्भाधान के कारण चिड़चिड़ाहट होती है। सन्तान के लालन-पालन की झंझट का भय तथा आर्थिक कठिनाई के कारण सुशिक्षित नारी भी गर्भधारण की आरम्भिक अवस्था में कुछ लापरवाह हो जाती है। कभी कुछ डर जाती है।

यौन-क्रिया और मातृत्व

हमारे जीवन के दुर्भाग्य की बात यही है कि यौन-सुख के साथ मातृत्व के आरम्भ का अश जुडा हुआ है। यह प्रकृति का अपना नियम है जो जीवो में परस्पर इस तरह आकर्षण पैदा कराकर जीव वृद्धि करा देता है। इसलिए हमारे समाज मे तथा हमारी शिक्षा पद्धति मे बहुत गलतफहमियाँ घर कर गयी है। यौन-क्रिया को समाज ने आरम्भ से ही गोपनीय बना दिया है और माँ-बाप भी ये बाते अपने बच्चो से छिपाते है। वास्तव मे बच्चा के मन मे यौन सम्बन्धी बुरे विचार नही होते। वे तो प्राकृतिक रीति मे बडे होते जाते है। हम माँ-बाप के ही मन मे इन बातो का विशेष डर होता है, और फिर वही सकोच और गोपनीयता बच्चो मे पैदा की जाती है।

शिक्षा शास्त्री भी मातृत्व और यौन-सम्बन्धी सामाजिक विकृत ज्ञान के कारण उन बातो को पूर्ण रूप से शिक्षा में नही ले पाते। और, मातृत्व की शिक्षा छोटी लडकियों की शिक्षा का विषय नही बनाया जाता। तब वे अपनी हमजोलियो से यौन-सम्बन्धी उत्तेजक बाते जान लेती है और फिर कामुक साहित्य उन्हे एकान्त मे खीचकर कुछ ऐसा प्रभाव उनपर जमा देता है कि पवित्र मातृत्व की अत्यावश्यक जानकारी एकदम लुप्त हो जाती है। यहाँ तक कि पति-पत्नी भी आपस मे इन बातो की चर्चा करने मे शरमाते है और पति पत्नी को पूरा बोझ उठाने के लिए छोड देता है।

बच्चे का जन्म

भौतिक रूप मे जिस दिन बच्चा माँ के पेट से निकलकर अलग रूप धारण करता है उस दिन 'बच्चे का जन्म हुआ' यह माना जाता है। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से बच्चे का जन्म उस दिन से बहुत दिनो पहले हुआ है, यह माना जायगा। हमारे पुरातत्त्व शास्त्रो मे तो इसकी बहुत गहराई से चर्चा की गयी है। वहाँ दिन मास और वर्ष का भी हिसाब लगाया गया है कि शुक्राणु-बीजाणु-मिलन का समय भी पैदा होनेवाले बच्चे के जीवन पर असर डालता है।

माँ के मन की तैयारी

विगत सभ्यता मे माँ बननेवाली स्त्रियो के लिए मान-सम्मान था, उनकी उचित देखभाल की जाती थी, उन्हे उपयोगी सलाह दी जाती थी तथा आवश्यक सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी। आज आसपास के लोग गर्भवती को देखकर कनखियों से इशारा करके यही ताना कसते है कि आबादी में घोर वृद्धि हुई। मतलब कि आज माँ बनना उतना उत्साहवर्द्धक नही समझा जाता है, जितना आज से सौ साल पहले समझा जाता था। देहातो मे यह बात कम है।

जब स्त्री को पता चल जाता है कि वह गर्भधारण कर चुकी है तब उसे चिन्ता होती है। अपनी शारीरिक अवस्था में परिवर्तन से वह कुछ घबरा जाती है। उसके मन में बेचैनी बढ़ जाती है। उस समय अनुभवी स्त्रियों या डाक्टरों को उसे हिम्मत बंधाना चाहिए।

दूसरे तथा तीसरे दोनों जगहों में इस शारीरिक विकास को प्रकृति के हाथ में मान लिया जाता है और पहले चार पाँच महीने जो कुछ ख़ास बातें नहीं हुई हैं उन्हें समाप्त किया जाता है। सरकारी काम काज में लगी स्त्रियाँ भी बाद के अन्तिम चार महीनों में छुट्टियाँ लेती हैं जबकि शारीरिक बाह्य रूपों में तो बच्चे की बाढ़ ही होती है उसके अंगों की रचना तो पहले तीन महीनों में ही हो गयी होती है। अतः यह बहुत जरूरी हो जाता है कि जब भी स्त्री को मालूम हो जाय कि गर्भधारण हो चुका है उसे अस्पताल में जाकर फ़ौरन अपना इलाज शुरू करा देना चाहिए।

विदेशों में तो गर्भवती स्त्रियों की शिक्षा के लिए हर अस्पताल में क्लास चलाये जाते हैं जहाँ दिन दिन की प्रगति के साथ उन्हें हर एक बात बताया जाता है और उनके मन की भी तैयारी करा दी जाती है। वहाँ उनकी हफ़्तावार जाँच होती है तथा बच्चे की गर्भाशय में विधायक वृद्धि हो रही है या नहीं यह भी देखा जाता है। इन क्लासों में आनेवाली स्त्रियाँ अपने को प्रसव के लिए समर्थ पाती हैं और उनमें आनेवाली तकलीफ़ का सामना करने की पूर्ण शक्ति भी आ जाती है।

माँ का स्वास्थ्य

सुशिक्षित और हर छोटी मोटी बात में डाक्टर की सलाह लेनेवाले लोगों की स्त्रियाँ अपने को जरूरत से अधिक नाजुक बना लेती हैं और आराम लेने के सिवाय और काम नहीं करना चाहतीं। अतः उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। प्रसव में पीड़ा भी अधिक होती है।

गर्भवती स्त्री को अपने तथा अपने बच्चे के स्वास्थ्य के लिए क्या-क्या करना चाहिए इसकी जानकारी समाज कल्याण-केन्द्रों या स्वास्थ्य-केन्द्रों से मिलती है। कुछ बड़े-बड़े अस्पतालों में हर हफ़्ते में एक दिन इन स्त्रियों को बुलाकर व्यक्तिगत जाँच करके समझाया अवश्य जाता है पर सामूहिक इलाज की कोई ख़ास व्यवस्था नहीं है।

खुली हवा, आवश्यक और योग्य मात्रा में आहार तथा व्यायाम के उपयोग की जानकारी साधारण स्त्रियों को नहीं रहती है।

इससे भी गम्भीर स्थिति उन स्त्रियों की मानी जा सकती है जो आदि से अन्त तक की सभी विकास की सीढ़ियाँ अपने देहात में ही पूर्ण कर लेती हैं। ग्रामीण

दायी के हाथा प्रसूति भी हो जाती है और आग बच्च का पूण सगोपन भी उन्हीं के हाथा होता है। मान लिया कि वर्षो से उन अनुभवी हाथा न कई बच्चों को जन्म दिया है परन्तु जब विज्ञान न हम शास्त्रशुद्ध स्वास्थ्यपूण तरीके दिय है ता फिर हम देहातिया के बच्चो को अच्छ ढग से जन्म लेन का मौका क्या न दें ?

परिपूर्ण शिशु की अपक्षा

अब समय आ गया है कि हम बच्चा के पैदा होने की तथा जन्म देन की क्रियाआ की शिक्षा पर से ध्यान हटाकर अच्छे मानववश की उत्पत्ति के लिए भी प्रयत्न करें।

स्पाटन मस्कृति म स्वस्थ और सुदृढ बच्चो का ही पालन होता था। शप बच्चो को टायजटस पहाड की चट्टाना पर खुला छाड दिया जाता था। मान लिया जाय कि इस व्यवहार म कुछ निदयता थी परन्तु इसके पीछ भावना यही थी कि अत्यन्त योग्य बच्चे ही अपना तथा ससार का भला करते हुए सफल जीवन जी सकते हैं।

आज ससार म हर दिन १ ६५ ००० बच्चे पैदा हो जाते है और ससार की आबादी इस्वी १९९९ तक आज से दुगुनी होन की सम्भावना है। अब हमारा यह अत्यन्त गम्भीर प्रश्न हो जाता है कि हम सख्यात्मक प्रगति को रोककर गुणात्मक प्रगति की ओर ध्यान दें। शिक्षा ही एक एसा साधन है जिसके द्वारा हम अधिक पैदाइश रोक सकते है और बच्चा को अधिक सम्पूण और सुदृढ बना सकते है।

शिक्षा का कार्य

गभवती माता की शिक्षा का काय तथा नव दम्पत्ति के जीवन व्यवहार की मूल शिक्षा का काय करनवाली सस्थाआ की अत्यन्त आवश्यकता है। स्कूली शिक्षा से इस समस्या को इसलिए नहा सुलझाया जा सकता कि यह काय ठीक स्कूली शिक्षा के बाद जीवन के खुले मच पर शुरू होता है। इसम करते करते सीखन की प्रवृत्ति अधिक होती है।

इसलिए लडकी के पत्नी होन क पहल पाठशाला म उसे मा बनन की जानकारी नही दी जा सकती। अस्पताला म रोग निदान और रोगी के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों की ही इतनी अधिकता है कि वे मातृत्व शिक्षा का भार नही उठा सकते। हमार विश्वविद्यालया का विद्यार्थी के विवाहित अविवाहित होन से कोई सम्बन्ध नहा है। वहा उपयागितावादी यान्त्रिक व साहित्यिक ज्ञान की वृद्धि के सामन जीवन के नवनिर्माण की बात को खास महत्व नही दिया जाता। तब अपनी सरकार की ओर हमारा ध्यान जाना है और लोक स्वास्थ्य विभाग कुछ कर सकता है एसा लगता है परन्तु आज जनता के सामान्य स्वास्थ्य तथा अपाद व काम का ही व बहुत कम कर पात हैं ता भविष्य में आनवाली जनता की सुदृढता के बारे म व क्या कर सकत है।

तब हमारा ध्यान परिवार नियोजन संस्थाओं की ओर जाता है जो सरकार द्वारा चलाया जानेवाली दुकाना जैसी हैं जहाँ ग्राहक न चाहा तो वह मात मुफ्त में लेने चला गया नहीं तो माल पडा रहा जानकारी सडती रहा।

अत परिवार नियोजन के प्रति लोगों का मरजी अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना होगा ।

यह काम आसान नहीं है। उसको पूर्ण रूप देने के लिए हमें स्कूल कालेजो की तरह परिवार नियोजन शालाओं की नयी विचार श्रेणी तथा कार्यपद्धति का प्रस्थापना करनी पडेगी। मानव की शिक्षा को भी तात्विक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पार्श्वभूमि वाला शुद्ध ज्ञान बनाकर उसे संस्था-द्वारा परिवारो तक पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है ।

शिशु-जन्म एक तात्विकता

मशीनें बनाना बडी-बडी इमारत बनाना तथा शहर बसाना और कारखाना की बडी-बडी योजना बनाना जितना हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में महत्व का स्थान पाता है उतना शायद नये बच्चो को जन्म देने की तात्विकता पर नहीं सोचा गया होगा। वह अधिकतर प्रकृति तथा सम्प्रदायों के हाथों सौंप दिया गया है। इस तात्विकता की शिक्षा की मा-बाप को आवश्यकता है। और नये शिशु को मां अपनी आनुवंशिक सम्पत्ति स्वच्छ वातावरण तथा स्वच्छ भोजन की (जन्म पूर्व और जन्म-पश्चात) अत्यन्त आवश्यकता है यह समाज को सोचना चाहिए। इस तरह जीवन के जन्म की मूलभूत तात्विकता को भूलकर जीवन की भौतिक आवश्यकता की ओर ही हमारा अधिक ध्यान केन्द्रित हुआ है। इसीलिए भौतिक परिस्थिति में तो प्रगति हो पायी है लेकिन मन स्थिति में मस्तक उपेक्षा ही उपेक्षा दिखाई देती है। हमें माँ की मन स्थिति को परिस्फुटित करना है और परिस्थिति के अधिक अनुकूल बनाना है। मां को शिशु-जन्म का तत्व भी मालूम होना चाहिए और शिशु को योग्य जीवन दिलाने का मंत्र भी ज्ञात होना चाहिए।

माँ के कदमों के नीचे स्वर्ग है पर माँ के पांव तो दलदल में फंसे हैं गरीबी बेबसी अन्धश्रद्धा और गुलामी की जंजीरो से जकडे हैं। उन पांवों को आजाद करो और उनके रास्तों पर फूल बिखेर दो फिर सचमुच माँ के पाँवों के नीचे हर शिशु के लिए स्वर्ग हो जायगा।

●

खण्ड तीन

बच्चे के पहले दो साल का शिक्षण

जन्म के पूर्व और बाद का वातावरण, शारीरिक विकास कुछ आदतें बौद्धिक विकास, भावात्मक विकास, सामाजिक विकास विकास म बाधक तत्व, विकास को आँकना, स्वस्थ विकास के लिए क्या करें ?

मानव जीवन के प्रथम दो वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसलिए कि इस समय के संस्कार आगे के जीवन के मूल आधार बनते हैं। जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का विकास यहीं से प्रारम्भ होता है। यहीं से आदतें भी बनने लगती हैं।

शिशु पर वातावरण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। जन्म के समय के कुछ मिनटों का प्रभाव भी इतना गहरा होता है कि वह ससार के प्रति उसके रुख का निर्धारण करता है।

जन्म से पूर्व और बाद का वातावरण

जन्म के पूर्व शिशु माता के गर्भ में रहता है। वहाँ निविड़ अन्धकार होता है। शिशु के चक्षु भी बन्द रहते हैं। अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ भी क्रियाशील नहीं होतीं। फेफड़े भी काम नहीं करते। शिशु का शरीर एक तरल पदार्थ से घिरा रहता है। मानो विष्णुरूपी वह अवतार क्षीर सागर में निवास कर रहा हो। यहाँ का तापमान माता के शरीर के तापमान के समान रहता है। वहाँ किसी प्रकार का कोई हल्ला-गुल्ला नहीं होता। पूर्ण शान्ति का साम्राज्य होता है। बाहरी सर्दी गरमी या अन्य किसी प्रकार के वातावरण का वहाँ कोई प्रभाव नहीं पहुँचता।

अब इसकी तुलना बाहर के वातावरण से कीजिए। सूर्य तथा दीपकों का प्रखर प्रकाश

प्रतापसिंह सुराणा
विद्या भवन सोसायटी
उदयपुर राजस्थान

विविध प्रकार का शोर-गुल, अत्यन्त शीत, गरमी, हवा, तूफान, वर्षा आदि। फेफडों में वायु भरे बिना और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के समुचित उपयोग के बिना जीवन सम्भव नहीं। व्यक्तियों से सम्पर्क भी आवश्यक होता है। इस प्रकार यह वातावरण गर्भाशय के वातावरण से नितान्त भिन्न है। शिशु के लिए यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है।

परिवर्तन के समय व्यक्ति पर एक विशेष प्रभाव पडता है जिसकी परिणति दो मुख्य अनुभवों में होती है—सुख या दुख। परिवर्तन या तो सुखद होता है या दुखद। जन्म के समय शिशु की सँभाल यदि ठीक तरह नहीं की गयी तो उसको कष्ट होता है। कुछ शिशु गर्भाशय से बाहर आते समय उलझ जाते हैं। उन्हें असह्य वेदना होती है। धात्री (दाई) यदि अनुभवी न हुई तो शिशु को सँभालने में असावधानियाँ हो सकती हैं। बाहर कडाके की सर्दी या झुलसानेवाली गरमी हुई तो उसका भी प्रभाव शिशु को कष्टदायक हो सकता है। नहलाने का पानी अधिक गरम या ठंडा होना, माता के स्तनों में दूध न आना, बिछौने में कोई वस्तु चुभना या जूँ खटमल आदि का काटना आदि का प्रभाव दुखद है।

सर्वप्रथम पडनेवाले ऐसे प्रभावों की दुखद अनुभूति तत्काल जन्म लेनेवाले शिशु को होती है। इतना ही नहीं यह प्रभाव चिरस्थायी होता है। शिशु इस ससार को दुख का स्थान समझने लगता है। इस समय का मन में बैठा यह सस्कार आगे के जीवन में उसको अज्ञात रूप से निराश और उदास बनाये रहता है। ऐसा व्यक्ति इस ससार से परे किसी सुखद लोक की कल्पना में दिवास्वप्न देखता रहता है। इसके विपरीत जिस शिशु की जन्म के समय अच्छी सँभाल होती है उसका दृष्टिकोण ससार के प्रति आशाजनक तथा सुखद होता है।

जन्म के समय के प्रथम कुछ क्षणों के प्रभाव भी जब जीवन का दृष्टिकोण बनाने में इतना महत्त्व रखते हो तब प्रथम दो वर्षों का प्रभाव तो इतना दृढ हो सकता है कि आगे के जीवन में उसमें अधिक परिवर्तन लाना अत्यन्त कठिन, कभी-कभी असम्भव सा हो जाता है।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर, अधिक सैद्धान्तिक चर्चा में न पडकर प्रथम दो वर्ष की कुछ विशेष समस्याओं का व्यावहारिक हल प्रस्तुत करने का प्रयत्न आगे की पक्तियों में किया जा रहा है—

शारीरिक विकास

प्रथम दो वर्ष की आयु में शिशु का शारीरिक विकास तेज गति से होता है। अनुपात में उतना अधिक विकास आगे के वर्षों में नहीं होता।

भोजन—लगभग नौ माह तक तो शिशु माता का दूध ही पीता है। इन

समय माता को सुपाच्य और पोषक भोजन मिलना चाहिए। उसे अपने को प्रसन्न तथा स्वस्थ रखना चाहिए। अन्य भोज्य पदार्थों के साथ ताजा फल और शाक-भाजियाँ अवश्य ली जायँ। इनसे जीवन-तत्त्व (विटामिन्स) और प्राकृतिक खनिज लवण प्राप्त होते रहेंगे जिनका स्वास्थ्यकारी प्रभाव उसके दूध में भी रहेगा।

शिशु को स्तनपान कराने के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ—

निश्चित समय पर स्तन-पान कराया जाय। आयु के अनुसार स्तनपान का साधारण क्रम इस प्रकार रह सकता है —

पहले दो दिन दूध की आवश्यकता नहीं रहती। शरीर में संग्रहीत भोजन से ही काम चल जाता है। ये दो दिन आँतों की सफाई के हैं। गर्भकाल में जो मल आँतों में एकत्रित हो जाता है उसकी सफाई में सहायता पहुँचाने के लिए प्रकृति ने भी स्तनों में दूध-जैसे एक विशेष पदार्थ की रचना की है जो रेचक है।

स्तनों को गरम पानी से स्वच्छ करके पहली बार दो-तीन मिनिट स्तनपान कराना चाहिए। उसके लगभग छ घंटे बाद प्रत्येक स्तन से पाँच-पाँच मिनट स्तनपान कराना पर्याप्त है। इस रेचक पदार्थ की इतनी ही आवश्यकता रहती है। दूसरे दिन चार चार घंटे बाद स्तनपान कराया जाय।

तीसरे दिन से शरीर-निर्माता दूध प्रकट होता है। लगभग नौ माह की आयु तक यही शिशु का पूर्ण भोजन होता है। इसको पिलाने का समय निश्चित होना चाहिए। आरम्भ में जल्दी-जल्दी दूध पिलाना पड़ता है क्योंकि एक बार में शिशु पूरा दूध नहीं पी सकता। अतः तीसरे दिन एक बार दूध पिलाने के बाद डेढ, दो घंटा बाद दूध पिलाया जाय। धीरे-धीरे ज्यों ज्यों शिशु दूध पीने में अभ्यस्त होता जाय त्यों-त्यों समय की अवधि भी बढ़ायी जाय। एक बार में एक स्तन से लगभग दस मिनट स्तनपान करने से उसको पर्याप्त दूध मिल जाता है। ऐसी स्थिति में साढ़े तीन से चार घंटे का समय निश्चित किया जा सकता है।

स्तनपान की समस्या का अध्ययन करनेवालों का कहना है कि अधिकांश शिशु स्वयं अपना समय निश्चित कर लेते हैं। जब उनको भूख लगती है तब वे रोकर या अन्य कोई संकेत करके अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं। थोड़ा-सा ध्यान रखने पर माताएँ उसको समझ जाती हैं। समय बाँधने की झंझट उनको नहीं करनी पड़ती। भूख समय पर ही लगती है। अतः निर्धारित समय के बीच में रोने का अन्य कोई कारण हो सकता है। इसलिए जब भी शिशु रोने लगे उसको उठाकर स्तन पर लगा देना उचित नहीं। बेसमय दूध पिलाने से अपच, अतिसार आदि रोग होकर शरीर के विकास में बाधा पड़ती है।

साधारणतया लगभग दस माह की आयु में शिशु को ऊपरी दूध दिया जाता है। कभी-कभी माता के अस्वस्थ होने से या स्तनों में दूध पूरा न होने पर प्रारम्भ में ही ऊपरी दूध देने की आवश्यकता हो सकती है। ऊपरी दूध माता के दूध से भिन्न कोटि का होता है। प्रत्येक प्राणी के दूध में कुछ विशेषता होती है। गाय का दूध माता के दूध से कुछ मेल खाता है पर पूरा नहीं। उसे माता के दूध के समकक्ष लाने के लिए उसमें पानी चीनी आदि मिलाकर कुछ फेर फार करना पड़ता है। कीटाणुरहित करने के लिए उबालना भी पड़ता है। इससे उसके जीवनतत्त्व नष्ट या न्यून हो जाते हैं। इन कारणों से ऊपरी दूध देने का समय सब परिस्थितियों में समान रूप से निश्चित नहीं किया जा सकता। पर साधारण क्रम में स्तनपान छुड़ाकर जब भी ऊपरी दूध शुरू किया जाय तब विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। कुछ ध्यान देने योग्य बातें निम्न लिखित हैं —

- यथासम्भव गाय का दूध दिया जाय। उसको एक उफान तक उबाल लिया जाय। प्रारम्भ में उबला हुआ तथा छना हुआ पानी बराबर मात्रा में मिलाया जाय। एक एक दो-दो सप्ताह बाद ज्यों-ज्यों वह पचने लगे पानी की मात्रा कम करके दूध की मात्रा बढ़ायी जाय।
- दूध पिलाने का समय निश्चित हो।
- चूंकि उबालने से दूध के जीवनतत्त्व नष्ट या न्यून हो जाते हैं इसलिए उनकी पूर्ति के लिए फलों का रस दिया जाय। मौसम्बी गाजर टमाटर का रस पानी मिलाकर देना चाहिए।
- बीच बीच में पानी भी पिलाना चाहिए।
- डिब्बाबन्द दूध यथासम्भव कम से कम दिया जाय। डिब्बों पर उस दूध की प्रशंसा बहुत लिखी रहती है पर वह माता के दूध तथा ताजा गौ दुग्ध की तुलना में अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। कभी यह हानिकारक यहाँ तक कि घातक भी सिद्ध हुआ है। डिब्बे के दूध में कृत्रिम रूप से शरीर फुलाने का आकर्षण है। इससे प्रारम्भ में बच्चे के स्वस्थ होने का भ्रम होता है पर दूरगामी परिणाम अच्छे नहीं होते।

स्तनपान छुड़ाना एक अप्रिय घटना—स्तनपान छुड़ाना एक अप्रिय घटना है दस माह तक माता और शिशु का जो स्नेहमय शारीरिक सम्बन्ध रहा है उसका विच्छेद है। कई माताएं स्तनपान छुड़ाने की ऐसी विधि अपनाती हैं जिससे शिशु की भावनाओं को आघात पहुंचता है। जैसे स्तनों को हौआ बताकर डराना स्तनों पर अफीम नीम जैसी कड़वी वस्तुओं का लेप करना। जब शिशु के मुंह में कड़वाहट पहुंचती है तो उसके मन पर करारी चोट पड़ती है। जिन स्तनों से

शिशु का अब तक मधुर सम्बन्ध रहा है, जो उसको मीठा दूध पीने को देते रहे हैं वे अचानक इतने कटु कैसे हो गये ? उसपर इसका यह प्रभाव पड़ता है कि यह संसार धोखेबाज है। यहाँ मीठी वस्तु भी कड़वी हो जाती है। सुख देनेवाली वस्तु दुखद बन जाती है। इससे संसार के प्रति दुविधा की भावना उसके मन में घर करती है। आगे चलकर वह अपने कुटुम्बियों तथा मित्रों के स्नेह-सम्बन्धों में अविश्वास करने लगता है। उसके मन में आशंका बनी रहती है कि वे उसे कभी धोखा न दे जायँ। स्तनपान छुड़ाना यों ही एक अप्रिय घटना है। ऊपरी वस्तुओं के उपयोग से उसको अधिक अप्रिय नहीं बनाना चाहिए।

स्तनपान छुड़ाने की विधि—साधारणतया दो विधियाँ इस कार्य के लिए अपनायी जाती हैं—(१) एकदम स्तनपान छुड़ाना, (२) धीरे धीरे स्तनपान छुड़ाना। प्रथम विधि उन्हीं माताओं को अपनाना चाहिए जो अपने निश्चय पर दृढ़ रह सकें। एक बार स्तनपान रोकने पर फिर कभी न पिलायें—चाहे शिशु कितना ही मचले रोये और बीमार सा हो जाय। उतनी दृढ़ता न हो तो दूसरी विधि ठीक रहती है।

चौबीस घंटों में जितनी बार स्तन पिलाने का समय हो उसमें एक बार स्तन का दूध न पिला कर ऊपर का दूध पिलाया जाय। इस पर कुछ दिन जमने के बाद दो बार ऊपरी दूध दे। इस क्रम से लगभग डेढ़ माह में पूरा ऊपरी दूध देने लग जायें।

भोजन की अन्य वस्तुएँ—दो वर्ष तक की आयु के शिशु का मुख्य भोजन दूध और फल ही होना चाहिए। अन्य वस्तुएँ कम मात्रा में धीरे धीरे ही दी जायँ। मैदे की तली भुनी वस्तुएँ मिठाइयाँ आदि कम से कम दी जायँ। ताजा फल सब्जियाँ, खजूर किशमिश मुनक्का तथा अन्य सूखे मेवे शिशु के लिए उपयोगी खाद्य-पदार्थ हैं।

खेल खिलौने—शिशु के विकास के लिए खेल खिलौने भी अच्छे तथा आवश्यक माध्यम हैं। लगभग एक माह की आयु के बाद शिशु की दृष्टि वस्तुओं पर टिकने लगती है। तभी से वह खिलौने की ओर भी आकृष्ट होने लगता है। पलंग पर लटके हुए खिलौने को देखकर वह प्रसन्न होता है और हाथ पैर चलाता है। खिलौने के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें ध्यान में रखिए—

- खिलौना के रंग पक्के हों, मुह में डालने पर भी न छूटें।
- खिलौने रबर, लकड़ी या धातु के हों काँच, चीनी मिट्टी आदि के टूटनेवाले न हों।
- नुकीले, तेज धारवाले या चमड़ी छीलनेवाले न हों।
- ऐसे हों कि मुँह में डालकर चूस तो जा सकें पर गले में न फँस सकें।

- ऐसे हो जिनको ऊपर तले रखकर कुछ बनाया जा सके। कुछ जोड़ तोड़ किया जा सके।
- कुछ पहियेवाले ऐसे भी हो जिनके सहारे से शिशु को चलने में सहारा मिले।
- आंगन के किसी कोने में रेत तथा गीली मिट्टी में खेलने की सुविधा हो।

खड़े होना और चलना—शिशु पहले सहारे से खड़ा होता और सहारे से ही चलता है। बिना सहारे संतुलन प्राप्त करने में समय लगता है। बड़े चाहते हैं कि वह जल्दी खड़ा हो और चलना सीखे। पर जबतक उसके पैरों में इन कार्यों के लिए पूरी शक्ति न आ जाय तबतक जल्दी न की जाय। जल्दी करने से पैर टेढ़े हो जाते हैं और चाल बिगड़ जाती है।

जब वह चलना सीखता है तो उसको उसमें इतना आनन्द आता है कि सारा ध्यान इसी क्रिया पर केंद्रित हो जाता है। इधर उधर का ध्यान नहीं रहता। ऐसे समय मार्ग में यदि कोई बाधा हो तो उससे उसको हानि पहुंच सकती है। अतः माता पिता को मार्ग की बाधा हटा देनी चाहिए और उसके प्रयत्न में बाधा नहीं डालनी चाहिए।

मालिश और धूप-स्नान—स्वास्थ्य के लिए ये दोनों क्रियाएं अति महत्वपूर्ण हैं। इस आयु में अस्थियां दृढ़ और विकसित होती हैं। दांत निकलते हैं। दो वर्ष में आठ ऊपर के तथा आठ नीचे के दांत प्रकट हो जाते हैं। दांतों तथा अस्थियों के निर्माण में चूने के तत्त्व का उपयोग होता है। भोजन में जो चूने का तत्त्व रहता है उसका शरीर में पाचन तभी होता है जब जीवन तत्त्व डी भी शरीर में मौजूद हो। मालिश तथा धूप-स्नान से पर्याप्त मात्रा में यह जीवन तत्त्व शरीर में बनता है।

- मालिश किसी अच्छे वानस्पतिक तेल की करनी चाहिए।
- रीढ़ पर अच्छी मालिश की जाय। इससे स्नायु-संस्थान सशक्त बनता है।
- मालिश के बाद खुले बदन धूप में खेलने दीजिए। गरमी में तेज धूप से सिर को बचाने के लिए टोपी पहना दीजिए।
- मालिश के तेल को चौड़ी तश्तरी में भरकर कुछ समय धूप में रख दिया जाय तो वह अधिक गुणकारी हो जाता है।
- नहलाने में तेल लगे शरीर पर साबुन का उपयोग न करके सूखे आंवले तथा चने का बेसन उपयोग में लाइए। इससे चमड़ी चमकदार स्वच्छ और सुंदर बनेगी।

नींद और विश्राम—शिशु के स्वस्थ विकास के लिए पर्याप्त नींद तथा विश्राम आवश्यक है। नींद का साधारण नियम यह है—प्रथम दो दिन लगभग २२ घंटा।

प्रथम तीन माह लगभग १९ घण्टा। ३ से ६ माह लगभग १७ घण्टा। ६ से १२ माह लगभग १५ घण्टा। १ से २ वर्ष लगभग १४ घण्टा।

आयु के अनुसार इतना नींद यदि नहीं आती हो या अत्यधिक आती हो तो दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं हैं। नींद के बाद भी सुस्त बने रहना रोग का लक्षण है। शिशु को स्वाभाविक रूप से चंचल होना चाहिए।

कुछ आदतें

यहीं प्रारम्भ और बार बार के अभ्यास का प्रतिफल है आदत। जो आदत शिशु में डालना चाहें उसपर प्रारम्भ से ही ध्यान देना चाहिए।

शौच की आदत—जन्म के बाद जितनी जल्दी इस पर ध्यान दिया जाय उतना ही अच्छा। शिशु प्रायः दिन में कई बार करते रहते हैं। आवश्यकता होने पर शिशु विशेष प्रकार की ध्वनि या संकेत करता है। माताएँ अनुभव से समझ समझती हैं। यदि वे आलस्य न करें और इशारा पाते ही शिशु को बिस्तर से उठाकर शौच करवा दें तो स्वस्थ दशा में शायद ही कभी ऐसा अवसर आये जब वह बिस्तर खराब करे। मूत्र-त्याग के सम्बन्ध में कभी गफलत भी हो सकती है पर मल त्याग की आदत तो डाली ही जा सकती है।

खाने की आदत—भूख समय पर लगती है। भोजन समय पर ही देना चाहिए। दो भोजनों के बीच कम से कम चार घंटा का अंतर हो। बीच में जल या फलों का रस दिया जा सकता है। हर समय खाने की कोई वस्तु पकड़ाते रहना रोग को निमंत्रण देना है।

सोने की आदत—शिशु को निश्चित समय पर सुला देना चाहिए। उस समय यथासम्भव घर में शोरगुल न हो। रोशनी भी हल्की कर दी जाय। कुछ दिन ध्यान रखने से समय पर नींद आने लगती।

बोलने की आदत—एक बार अशुद्ध बोलना सीखने पर उसे शुद्ध करना कठिन हो जाता है। इसलिए प्रारम्भ से ही शुद्ध बोलना सिखाना चाहिए। भाषा के सम्बन्ध में कुछ विचार अगली पंक्तियों में मिलेंगे।

बौद्धिक विकास

शिशु का बौद्धिक विकास भी इस आयु में तेज गति से होता है। उसकी जानकारी तथा शब्द भण्डार बढ़ने लगता है। जिज्ञासा तीव्र होती है। कल्पना के अंकुर उठने लगते हैं।

एक वर्ष की आयु में अपने दुःख सुख का अनुभव शिशु को होने लगता है। दुखद क्रियाओं में परिवर्तन करके उनको अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न वह करने लगता है। चटकीले रंग तथा नये शब्दों की ओर आकर्षित होता है।

दूसरे वर्ष में अन्य लोगों के साथ अपने सम्बन्धों को समझने लगता है। दूसरों को अपनी बात कहने तथा उनके कथनानुसार कार्य करने का प्रयत्न करता है। छोटे छोटे प्रश्न पूछने लगता है। अपना कार्य स्वयं ही करना चाहता है। एक दो तीन गिनने लगता है।

भाषा-ज्ञान—प्रारम्भ से ही उसके भाषा ज्ञान पर ध्यान देना चाहिए। एक वर्ष के पूर्व तक उसकी ध्वनियां निरर्थक होती हैं। एक वर्ष के बाद दो तीन सार्थक शब्दों का उच्चारण सम्भव होता है। पर इसके काफी पहले वह शब्दों के अर्थ समझने लगता है। गिलास लाओ कहने से गिलास ले आता है। पर स्वयं बोल नहीं सकता। डेढ़ वर्ष की आयु में कुछ छोटे मोटे पूरे वाक्य बोल सकता है। दो वर्ष की आयु तक वाक्य रचना में विशेष प्रगति होती है। भाषा के शुद्ध ज्ञान के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए—

- बच्चों को धीरे धीरे शुद्ध उच्चारण के साथ साफ स्पष्ट शब्दों में और छोटे वाक्यों में अपनी बात कहनी चाहिए जिससे प्रारम्भ में बच्चे शुद्ध बोली का अनुकरण कर सकें।
- नये-नयी वस्तुओं के नाम बताइए। अशुद्ध बोलने पर ठीक कीजिए।
- छोटी छोटी कहानियां सुनाइए। बाल-गीतों की पंक्तियां दोहराइए। इससे शब्द भण्डार बढ़ेगा तथा वाक्य रचना में सहायता मिलेगी।

भावात्मक विकास

भावनाओं का मन के उस भाग से सम्बन्ध है जिसको साधारणतया हृदय नाम दिया गया है। हृदय की अपनी ही भाषा होती है। हृदय की बात हृदय से ही जानी जाती है, सीखी जाती है। जिस वातावरण में स्नेह, सहानुभूति, सहयोग, सहिष्णुता, सच्चाई, सुरक्षा होती है वहां इन सद्गुणों का प्रभाव शिशु के हृदय भी ग्रहण करता है। बच्चों का आपसी व्यवहार ही ऐसा वातावरण बनाता है। शिशु के साथ भी उनके व्यवहार का बड़ा महत्व है। मूक भाषा द्वारा वही प्रभाव शिशु की भावनाओं का निर्माण करता है।

दो वर्ष तक के शिशु का वातावरण उसका घर तथा कुटुम्ब ही होता है। जैसा उच्च कोटि का जीवन हम बड़े अपना बना सकेंगे उतना ही हृदय की भाषा द्वारा तथा अनुकरण-द्वारा शिशु का जीवन प्रभावित होगा। केवल उपदेश यह काम नहीं कर सकते।

सामाजिक विकास

इसको यहां इसी अर्थ में लिया गया है कि व्यक्ति एकाकी तथा स्वार्थी न बनकर परोपकारी तथा समाज-परायण बने। समाज से वह लेता है तो समाज को दे

भी । समाज के विकास में अपना विकास समझे । समाजोन्नति में अपना सहयोग दे ।

दो वर्ष का शिशु एकाकी ही होता है । वह अकेला खेलना अधिक पसन्द करता है । कभी कभी घण्टों किसी खेल में तल्लीन हो जाता है । पर इसी समय उसका सामाजिक दायरा भी फैलने लगता है । पास-पड़ोस के बच्चों के साथ खेलना, अन्य लोगों को पहचानना, उनसे मिलना-जुलना आदि । इस फैलाव में उसकी सामाजिक भावना का विकास हो इसका ध्यान रखना चाहिए

- ऐसे खिलौने दीजिए जिनसे खेलने में साथी की जरूरत पड़े ।
- बाहर ले जाइए जहाँ वह अन्य बच्चों से मिल सके ।
- कोई खाने की वस्तु देकर उससे अन्य लोगों को वितरित कराइए ।
- ऐसी स्थिति लाइए कि वह अपने खिलौनों से दूसरों को खेलने दे तथा अपनी वस्तुओं का उपयोग दूसरों को करने दे ।

विकास में बाधक तत्व

विकास में सहायक कुछ मुख्य बातों का उल्लेख करने के बाद यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ ऐसी बातों का भी उल्लेख किया जाय जो विकास में बाधक हो सकती हैं, यदि सावधानी न रखी जाय —

भाई-बहन का जन्म—कुछ शिशुओं को दो वर्ष की आयु में भाई या बहन के दर्शन हो जाते हैं । इस कारण वर्तमान शिशु को माता की गोद से अलग होना पड़ता है । प्रसूति में माता उससे अलग हो जाती है । प्रसूति के बाद वह देखता है कि माता की उस गोद में कोई दूसरा शिशु आ गया है जिसपर उसका एकछत्र साम्राज्य था । यह देखकर उसके हृदय को भारी आघात लगता है । मानो उसका सर्वस्व छिन गया हो । उसका मन नये शिशु के प्रति घृणा, ईर्ष्या तथा प्रतिहिंसा की भावना से भर जाता है । वह अपना स्थान पुनः प्राप्त करना चाहता है । भयंकर परेशानी में पड़ जाता है । उसका विकास रुक जाता है । पर यदि माता सावधानी रखे तो इस कुप्रभाव को टाला जा सकता है ।

- नये शिशु के जन्म के पूर्व ही पहले शिशु के मन में पास-पड़ोस के शिशुओं में दिलचस्पी पैदा की जाय ।
- पिता तथा अन्य कुटुम्बियों से शिशु का सम्पर्क बढ़ाया जाय । माता धीरे-धीरे अपना सम्पर्क कम करे ।
- नये शिशु को जब पहली बार उसे दिखाया जाय तो वह माता की गोद में न हो । अलग बिस्तर पर हो ।
- प्रसूति के बाद, नये शिशु को दिखाने के पूर्व माता बड़े शिशु को उसी प्रकार स्नेह से अपनी गोद में बिठाये जिस प्रकार सदैव बिठाती रही है ।

● नए शिशु को दिखाकर उसमें उसकी रुचि पैदा करें।

● बाद में भी वह दोनों पर समान रूप से ध्यान दें। स्नेह से देखभाल करें।

शिशु का प्रदर्शन—साधारणतया माता पिता शिशु को अपना खिलौना समझते हैं। वे आगन्तुकों के सामने उसका प्रदर्शन करते हैं। उसको यह कर वह कर, कहकर तंग करते हैं। उसकी स्वतन्त्रता तथा आराम में व्यवधान डालते हैं।

अतः कभी-कभी विशेष अवसरों के अतिरिक्त बच्चे का प्रदर्शन की वस्तु नहीं बनाना चाहिए। इससे उसमें दिखावटीपना आता है। अनुचित प्रशंसा प्राप्त होने से उसके विकास में बाधा पड़ती है।

अनुचित सहायता—शिशु को अपने अनेक कार्यों में बड़ों की सहायता की आवश्यकता रहती है। जहां आवश्यक हो वहां सहायता देनी चाहिए। परन्तु जो काम वह स्वयं कर सकता हो या करने का प्रयत्न कर रहा हो उसमें सहायता नहीं देना चाहिए या कम से कम दी जाय। उसको स्वयं करके सीखने दें। करके ही सीखना सम्भव होता है।

जिस शिशु को अनावश्यक सहायता दी जाती है वह पराश्रयी बनता है। अपना अधिकाधिक काम दूसरों से करवाना चाहता है। बड़ा होने पर भी वही आशा दूसरों से रखता है। इससे वह अकर्मण्य बनता है। उसकी प्रगति में बाधा पड़ती है। अतः प्रारम्भ से ही अधिकाधिक काम उसे करने देना चाहिए।

विकास की जांच

शिशु का विकास ठीक हो रहा है या नहीं इसको आंकने के लिए कुछ संकेत यहां दिये जा रहे हैं। आयु के अनुसार यदि ये बातें दिखाई न पड़ें तो शिशु पर विशेष ध्यान देना तथा किसी से परामर्श करना आवश्यक हो जाता है—

एक माह — सिर उठाना, आंखें चलाना, दूसरों के शब्दों पर ध्यान जाना।

तीन माह — हाथ को मुंह तक लाना, करवट बदलना, सिर को उठाकर सिर रख सकना, वस्तुओं को पकड़ने का प्रयत्न।

छः माह — वस्तुओं को पकड़कर मुंह में रखना, पीठ से पेट के बल लेटना। लोगों को पहचानना, उनको देखकर मुस्कराना, क्रोध, भय, प्रसन्नता आदि भावों को प्रकट करना।

नौ माह — बैठ सकना, अपने हाथ से खाना, दोनों हाथों से दो भिन्न प्रकार की क्रियाएं कर सकना जैसे एक हाथ से खिलौना पकड़ना दूसरे हाथ से दूसरे खिलौने को धक्का देना।

एक वर्ष — सहारे से अपने आप खड़े होना और चलना, पेंसिल, खड़िया आदि पकड़कर लिखने का प्रयत्न।

डेढ़ वर्ष — थोड़ी ऊँचाई से उतरना चढ़ना, डोरी खींचना, वस्तुएँ लुढ़काना और फेंकना, बिना सहारे के चलना।

दो वर्ष — स्वयं चलने का विशेष आग्रह, वस्तुओं को ऊपर तले जमाना, कई कार्य स्वयं करना, दौड़ना, शरीर के अंगों और वस्तुओं के नाम बताना, नयी वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना, तालू की धड़कन बन्द होना।

स्वस्थ विकास के लिए क्या करें ?

- शिशु को घूमने ले जाइए। नयी नयी वस्तुएँ दिखाइए। उनके नाम तथा उनके बारे में बताइए।
- चोट आदि का ध्यान रखते हुए उसको अधिकांश कार्य स्वयं करने दीजिए। करके सीखने दीजिए।
- नुकीली, धारवाली, विषैली और हानिकारक वस्तुओं को उसकी पहुँच से दूर रखिए।
- प्रगति का लेखा रखिए जिससे विकास सम्बन्धी जानकारी मिलती रहे।
- रोग या शारीरिक दोषों पर शीघ्र ध्यान दीजिए।
- औषधियों का उपयोग कम से कम कीजिए। उचित खान पान और रहन सहन द्वारा स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखने का प्रयत्न कीजिए।
- शिशु को एक स्वतन्त्र व्यक्ति समझिए। उसके व्यक्तित्व के विशेष गुणों को विकसित होने का अवसर दीजिए।
- अच्छा से अच्छा वातावरण देने का प्रयत्न कीजिए। इसके लिए अपने में भी वांछनीय परिवर्तन लाइए।
- दण्ड, ताड़ना और नकारात्मक आदेशों के अवसर कम से कम आने दीजिए, इनसे कुछ बनता नहीं। ●

शिक्षा का मूल आधार : जाग्रत परिवार

बच्चे की पहली पाठशाला मा की गोद, दूसरी पाठशाला परिवार, बच्चे का शारीरिक विकास मधुर भावनाओ का प्रशिक्षण, सौन्दर्य-बुद्धि का विकास ।

शिक्षा के विभिन्न स्वरूपो के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमें शिक्षा के लिए मात्र विद्यालयो महाविद्यालयो पर ही निर्भर नही करना चाहिए। इनके अतिरिक्त अन्य संस्थाएं भी शिक्षा प्रक्रिया म सहयोग देती रहती है। ऐसी संस्थाओ म परिवार का प्रमुख स्थान है।

शिक्षा का उद्देश्य है सर्वांगीण विकास। सर्वांगीण विकास का अर्थ होता है विद्यार्थी के शरीर मन तथा हृदय के सभी तत्वो का विकास उसमें नैतिक आचार तथा आध्यात्मिक विचार का विकास और अपनी सभी शक्तियो का समाज तथा राज्य के कल्याण के निमित्त उत्सर्ग कर देने की प्रवृत्ति का विकास।

बच्चे की पहली पाठशाला माँ की गोद

विकास के इन कार्यों का शुभारम्भ माँ की गोद म होता है। जीवन के आरम्भिक दो वर्षों में माता शिशु को जितना सिखा पाती है उस अनुपात म कोई भी शिक्षक उसके भावी जीवन में नही सिखा पाता। उस अवधि में मा बच्चे के शरीर की रक्षा करती है तथा समुचित पोषण द्वारा उसके विकास का प्रयास करती रहती है। बच्चा इसी अवधि म घर के अन्य सदस्यो को नित्य उपयोग में लायी जानेवाली वस्तुओ को पालतू पशु पक्षियो को खान-खलन के सामानो को बहुत कुछ पहचानने लगता है। यह उसके बौद्धिक विकास का प्रमाण है। बच्चे को माता पिता का भाई-बहनो का परिवार के अन्य लोगो का प्यार-दुलार मिलता है और उसके हृदय

सत्यनारायण लाल
व्याख्याता राज्य शिक्षा संस्थान
पटना—६

दिये जायँ। अपने शरीर को स्वच्छ रखने की उसकी आदत हो जायगी। यह आदत जीवन भर रहेगी और उसे अनेकानेक आधि-व्याधियों से बचाती रहेगी।

(ख) वस्त्र की स्वच्छता—शरीर तबतक स्वच्छ नहीं रह सकता, जबतक पहनने के कपड़े साफ-सुथरे नहीं हों। अतः साबुन, सोडा, सज्जी, काली मिट्टी, राख, बालू, जो भी मिल सके, उससे बच्चे के कपड़ों की सफाई कर लेनी चाहिए। इस कार्य में यथाशक्ति बच्चा भी साथ दे। यह कार्य सप्ताह में कम-से-कम एक बार अवश्य हो। इसका तात्कालिक लाभ तो यह होगा कि बच्चा साफ-सुथरा वस्त्र पहनकर प्रसन्न होगा, उसका स्वास्थ्य बढ़ेगा, जहाँ कहीं जायगा आदर पायगा और गन्दगी के कारण होनेवाली बीमारियों से बचेगा। किन्तु इससे भी अधिक लाभ यह होगा कि वह स्वच्छ वस्त्र धारण करने का अभ्यासी हो जायगा।

(ग) अन्य वस्तुओं की स्वच्छता—शरीर तथा वस्त्र की स्वच्छता के साथ ही उन खिलौनों तथा अन्य सामानों की भी स्वच्छता अपेक्षित है, जिनका बच्चा नित्य उपयोग करता है। जिन बर्तनों में बच्चा नित्य भोजन करता है तथा जिस बिछौने पर वह सोता है, वे भी स्वच्छ रहें। यदि सम्भव हो, तो स्वच्छता-निर्वाह के इन समस्त व्यापारों में बच्चे का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जाय।

(घ) सजावट—सफाई के साथ-साथ सजावट भी आवश्यक है। मकान चाहे ईंट का हो या मिट्टी का, छतवाला हो या खपरैल, उसे साफ-सुथरा रखा जाय, उसे फूल-पौधों से सजाया जाय। घर की सभी वस्तुओं के लिए स्थान नियत हो और वे अपने ही स्थान पर रखी जायँ।

यदि परिवार में स्वच्छता और सजावट का यह स्तर बना रहे तो बालक का शरीर स्वच्छ होगा, उसकी रुचि परिष्कृत होगी, उसका मन प्रसन्न होगा। सबसे अधिक लाभ यह होगा कि वह एक ऐसे नागरिक के रूप में विकसित होगा, जो अस्वच्छता तथा अव्यवस्था को सहन नहीं कर सकेगा। वह जहाँ-कहीं भी रहेगा, अपने साथ स्वच्छता और व्यवस्था का वातावरण बनाये रखेगा। ऐसे नागरिक से राष्ट्र को व्यवस्था में अपेक्षित सहयोग प्राप्त होगा।

समतोल भोजन की अप्राप्ति के कारण के विस्तार में न जाकर हमें यह विचार करना है कि क्या साधारण से साधारण परिवार भी अपने बालकों को समतोल भोजन दे सकता है। उत्तर कठिन अवश्य है, क्योंकि भारत के सामान्य जन की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह आसानी से इसकी व्यवस्था कर सके। किन्तु उत्तर उतना कठिन नहीं है जितना पहली बार प्रतीत होता है। यदि सामान्य भारतीयों के खान-पान, रहन-सहन का अवलोकन ध्यान-पूर्वक किया जाय, तो स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विवशता से कहीं अधिक हमारी गलत आदतें और भ्रम-पूर्ण धारणाएँ समतोल भोजन की अप्राप्ति के कारण हैं।

पोषक तत्वों की सहज उपलब्धि—यदि परिवार थोडा विचारवान बन जाय—चाय-पान, मिर्च मसाले तथा चटपटी चीजों से परहेज करने लगे—तो सम्पन्नों की तो बात ही नहीं, विपन्न भी बहुत हद तक पुष्ट भोजन अपने बच्चों के लिए उपलब्ध कर सकते हैं, किन्तु उन्हें स्वास्थ्य के लिए खाना खिलाना होगा, स्वाद के लिए नहीं।

भोजन में यदि थोडी सी दाल भी नित्य मिल जाया करे तो प्रोटीन की प्राप्ति हो जायगी। प्राय सभी किसान कुछ-न-कुछ दलहन का उपयोग करते हैं। यदि दूध न भी मिल सके तो बच्चा को मट्ठा अवश्य दिया जाय, थोडा ही सही। यदि मिल सके और धर्म जाने की आशंका नहीं हो तो एक अण्डा नित्य वर्धनशील बालक के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। चर्बी शरीर में गरमी और ताकत देनेवाली वस्तु है। सबसे अच्छी चर्बी मक्खन की होती है। उसके बाद क्रमश घी मूगफली, जैतून नारियल इत्यादि की। अभिभावक, इनमें से जो भी सुलभ हो, अपने बच्चे को दें। यदि इनमें से कुछ भी न मिले, तो यथासाध्य दूध मट्ठे की मात्रा बढाकर काम चलाया जा सकता है।

लवण शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह भोजन को न केवल स्वादिष्ट बना देता है, बल्कि सुपाच्य भी। हरी तरकारियाँ—गाजर मूली, टमाटर, प्याज, मेथी बथुआ, पालक, इमली अमरूद, जामुन, करौंदा, केला, आम, पपीता, बेर, संतरा नींबू गोभी, ककडी, खीरा इत्यादि में यह लवण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। इनमें से ऋतु के अनुसार जब जो मिले, बच्चा को खिलाया जाय। इनमें न केवल सब प्रकार के लवणों की प्राप्ति हो जाती है बल्कि इनसे सब प्रकार के विटामिनों की भी उपलब्धि हो जाती है।

भोजन की सामग्री के समान ही भोजन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में सावधानी की अपेक्षा है। बच्चा ठीक समय पर, हाथ पाँव धोकर, चबा चबाकर भोजन करे। जब-तब, जहाँ-तहाँ, जो कुछ भी मिल जाय, मुह में न डाल ले। वह बाजार की गन्दी, सडी गली चटपटी, मसालेदार चीजें न खाय। पालक अपने आचरण व आदेश से इस दिशा में बच्चों का मार्गदर्शन करें, तो अत्युत्तम हो।

खेल-व्यायाम

खेल व्यायाम को अभिभावक शिक्षा प्राप्ति में बाधक न मानें। बच्चे की अवस्था, साधन, सुविधा और मौसम के अनुसार उसे खेलने की छूट दें, उसकी व्यवस्था करें।

गाँवों में लडके कबड्डी चिक्का, डोल्हापाती और गुदीवल, लम्बी ऊँची कूद जैसी अनेक क्रीडाओं-द्वारा शरीर विकास करते हैं। इनमें व्यय कुछ भी नहीं, और लाभ लाखों-लाख का होता है। अभिभावकों को केवल सावधान रहना है कि खेल में बच्चे समय और शक्ति का सीमातिक्रमण न करने पायें।

प्राकृतिक वातावरण से शरीर-कान्ति में निखार—बालकों के शारीरिक विकास के लिए सवेरे की धूप तथा शुद्ध वायु भी कम आवश्यक नहीं । खुला आसमान, विस्तृत मैदान, न केवल उनकी शक्तियों को अपेक्षित स्फूर्ति प्रदान करते हैं, बल्कि उनकी कल्पना में भी पंख जोड़ते हैं, जो उनकी भावी सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । कई पालक बच्चों को शीत, धूप, वर्षा से बचाने में आवश्यकता से बहुत अधिक सावधान रहते हैं । उन्हें प्रकृति पर विश्वास करना चाहिए और बच्चों को थोड़ा-बहुत शीत, धूप, वर्षा का सामना करने देना चाहिए । इससे उनकी त्वचा प्रशिक्षित होती है । शरीर की प्रतिरक्षा-शक्ति वृद्धि पाती है और साहस, सहिष्णुता, आत्मविश्वास-जैसे दुर्लभ गुणों का विकास होता है ।

बौद्धिक विकास

शिक्षा-प्राप्ति का सर्व-सम्मत लक्षण बौद्धिक विकास है । इसे हम मानसिक विकास भी कह सकते हैं । मनुष्य के पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा । ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय से सम्बद्ध ज्ञान मानस में पहुँचाती हैं, जहाँ उसकी पहचान और संचय हुआ करता है । हमें यहाँ इस प्रक्रिया के विस्तार में नहीं जाना है । हमें तो मात्र यह देखना है कि परिवार किस प्रकार इन ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण देता है और किस प्रकार अधिक-से-अधिक उपयोगी ढंग से दे सकता है ।

इन्द्रियों का प्रशिक्षण—बच्चा जब बिलकुल छोटा रहता है, उठ-बैठ नहीं सकता, तभी से यह कार्य प्रारम्भ हो जाता है । उसके सामने लाल, हरे, नीले, पीले खिलौने टाँग देते हैं । ये खिलौने झूलते रहते हैं । बच्चे की आँख उनके साथ डोर-बँधी-सी घूमती रहती है । उसके मानस में भीतर-ही-भीतर पहचान की प्रक्रिया चलती रहती है । यह एक उदाहरण हुआ । इस प्रकार के अनेक कार्य होते रहते हैं । बच्चे की पहचानने की शक्ति बढ़ती जाती है । बच्चे को चाँद दिखाया जाता है । उसके सुन्दर चमकीले रूप से आकृष्ट बच्चे की आँखें उधर देर तक लगी रहती हैं । वह चाँद को पहचानने लगता है, जो सुन्दर है, आकर्षक है, आँखों को अच्छा लगता है । जब पूछा जाता है, "चाँद किधर है ?" बच्चा उधर आँखें कर देता है, ऊँगली बढ़ा देता है । अपनी सफलता से वह खुश रहता है ।

बच्चे के सामने झुनझुना आता है । उससे एक विशेष प्रकार की ध्वनि निकलती है । वह ध्वनि बच्चे को आकर्षक प्रतीत होती है । जब वह रोता है, उसकी माँ, बहन, या भाई झुनझुना बजा देता है, उसके हाथ में पकड़ा देता है, वह खुश हो जाता है । कोई 'बच्चा' 'बच्ची' 'मुन्ना' अथवा इसी प्रकार कुछ नाम लेकर

पुकारता है, वह पुकारनेवाले की तरफ देखने लगता है। इस प्रकार उसके कान का प्रशिक्षण होता है।

अनुकूल वातावरण—किसी भी कार्य के सम्पादनार्थ अनुकूल वातावरण की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। बच्चे के बौद्धिक विकास के लिए भी परिवार में अनुकूल वातावरण होना चाहिए। अभी तो अधिकांश ऐसे ही परिवार हैं, जहाँ विपरीत ही स्थिति है। यदि अपढ़ अशिक्षितों की बात छोड़ भी दी जाय तो भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। माता-पिता, पालक, अभिभावक अपने-अपने कार्यों में सही-गलत तरीके से इस प्रकार संलग्न और उलझे होते हैं कि बच्चों की ओर ध्यान देने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। परन्तु जो जागरूक पालक हैं, वे अपने परिवारमें ही पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद तथा गाने-बजाने का ऐसा सन्तुलित वातावरण बनाये रखते हैं कि बच्चों का विकास स्वाभाविक रूप से होता चलता है। बूढ़ी दादी की कहानी उसकी कल्पना शक्ति और कुतूहल को बढ़ाती चलती है।

ऐसे अभिभावक स्वयं भी पढ़ते लिखते हैं। विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकें उनके घर की शोभा बढ़ाती रहती हैं, साथ ही उनके मानस को भी तृप्त करती रहती हैं। जो अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं, किन्तु विवेकी हैं, विचारवान् हैं, वे रामचरितमानस, हनुमान चालीसा, शिव चालीसा, दान-लीला, नागलीला-जैसी धार्मिक तथा समाज-शिक्षा-समिति द्वारा प्रकाशित सरल भाषा में लिखित जीवनोपयोगी पुस्तकों का संग्रह और अध्ययन करते हैं। कोमलमति, अनुकरण-शील प्रवृत्ति बालबालिकाओं को इससे बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता है। वे अध्ययनोन्मुख हो जाते हैं।

बाल-साहित्य की उपलब्धि—इस पृष्ठभूमि पर जागरूक और कुशल पालक अपने घरों में बाल-साहित्य का प्रवेश कराते हैं। जब बाहर जाते हैं, कोई न कोई पुस्तक कोई न कोई पत्रिका, कोई न कोई चित्र, कार्ड अवश्य लाते हैं, जिनमें बच्चों का मन रमता है, जो बच्चों के लिए ज्ञानप्रद और उपयोगी होते हैं। उत्तर-दायित्वहीन पालक अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार बहुत-सी अनुपयोगी वस्तुएँ ला लायेंगे, किन्तु जब बच्चा अपनी पुस्तक के सम्बन्ध में याद दिलायेगा या मचलेगा तो अर्थाभाव, विस्मरण इत्यादि का बहाना बनाकर टाल देंगे या डाँट देंगे। इस तरह के पालकों को अपने कुशल सहयोगियों से सीख लेनी चाहिए।

पालक का सक्रिय सहयोग—साहित्य उपलब्ध कराने के साथ ही कुशल अभि-भावक समय-समय पर बच्चों के साथ उनकी शिक्षा, विद्यालय, उद्योग, प्रदर्शनी, वनभोज इत्यादि के सम्बन्ध में बातें करते हैं। इससे बच्चों को प्रोत्साहन मिलता है। वे समझते हैं कि उनके पिता, चाचा या भैया उनके कामों में दिलचस्पी

लते हैं। अपने बड़ों को प्रसन्न रखने के लिए बच्चे अपने काम अधिक मन लगाकर अधिक सावधानी और अधिक कुशलता के साथ करते हैं। कभी-कभी घर के दो चार बच्चों के बीच अपनी देख रेख में प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जा सकता है। इसके लिए अन्त्याक्षरी शब्द निर्माण लघु भाषण तथा कविता पाठ बड़े ही उपयोगी प्रमाणित हुए हैं।

नैतिक विकास

१७—१८ वर्ष की अवस्था तक विद्यार्थी चार पांच घंटे विद्यालय में रहता है। शेष अवधि वह अपने घर पर बिताता है। सबको विदित है कि चोर डकैत जुआरी तथा शराबी की सन्तान पर उसके माता पिता का बुरा प्रभाव पड़कर ही रहता है। इसी प्रकार सदाचारी की सन्तान अपवाद रूप से ही भ्रष्ट पायी जाती है। अतः अपनी सन्तान के लिए प्रत्येक परिवार में सत्य का आचरण होना चाहिए। माता पिता स्वयं सत्य बोलें उनके प्रत्येक व्यवहार में सत्य का समावेश हो। सदाचारिता उनकी मार्ग दर्शिका हो। नियम निष्ठा उदारता सद्-व्यवहार उनके जीवन के अंग हों। उनकी जीविका का आधार उद्योग या कृषि सेवा हो वे डाक्टर वकील या व्यापारी हों वे चाहे जो हों उनमें अपने काम के प्रति पूरी ईमानदारी तन्मयता और निष्ठा होनी चाहिए। इसका प्रभाव बच्चे के अपने काम पर पड़ता है। उसका यह दृष्टिकोण न केवल उसे नैतिकता की प्रेरणा देता है बल्कि भावी जीवन में जो भी काम वह हाथ में लेता है उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त करता है।

हृदय तत्त्व का विकास

हृदय-तत्त्व से हमारा तात्पर्य मधुर भावनाओं से है। भावनाएं जो व्यक्ति को व्यक्ति से समाज को समाज से और राष्ट्र को राष्ट्र से जोड़ती हैं वे ये हैं— स्नेह श्रद्धा सद्भाव सहयोग सहकारिता सेवा सहानुभूति और समर्पण।

हृदय-तत्त्व के विकास के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वह व्यवहार है जो बच्चे के प्रति उसके परिवार में किया जाता है। यदि बच्चे को भरपूर प्यार मिलता है तो वह दूसरों को प्यार करेगा। यदि उसे सम्मान मिलता है तो वह भी दूसरों का सम्मान करेगा। बच्चे का हृदय कोमल होता है बच्चा अत्यन्त भावुक होता है। तनिक से प्यार पुचकार से वह फूल सा खिल जाता है। तनिक सा उपेक्षा उसकी कोमल भावनाओं को मसल डालती हैं। अतः बच्चों को प्यार कीजिए उसके व्यक्तित्व का सम्मान कीजिए उसकी मधुर भावनाएं जागरूक होंगी।

मधुर भावनाओं का प्रशिक्षण

परिवार में कुछ लोग बच्चों से बड़े होते हैं और कुछ छोटे। बच्चा बड़ों को प्रणाम करे उनसे विनयपूर्वक बात करे और छोटों से स्नेह करे उनको दुलारे

पुचकार, इसके अनुकूल परिवार में वातावरण होना चाहिए। पालतू जानवर भी बच्चा के स्नेह को उभारने मे सफल सिद्ध होते हैं। यदि परिवार मे कोई बीमार पड़े तो बच्चे की अवस्था के अनुसार उसकी सेवाएँ ली जायँ। बच्चा काम करके खुश होता है यदि काम लेने का ढंग ठीक हो। इन सभी क्रियाओं म जो एक बात ध्यान देने की है वह यह कि बच्चा अनुकरणशील होता है। आप उससे कहकर कुछ नही करा सकते, करके सब कुछ करा सकते हैं।

सौन्दर्य-बुद्धि का विकास

बच्चा स्वभाव से ही सौन्दर्यप्रिय होता है। वह चाँद को देखता है, फूल नोचता है खिलाने से खेलता है। प्रत्येक रंगीन, चमकीली भड़कीली वस्तु उसे पसन्द होती है। संगीत का स्वर उसे खींचता है। अब यह परिवार का कर्तव्य है कि वह उसकी सौन्दर्य बुद्धि को पूर्ण रूप से विकसित होने की परिस्थिति उत्पन्न करे।

यदि घर की सभी वस्तुएँ सजी सजायी रहें व्यवस्थित रहें, घर के सामने कुछ फूल पौधे लगे रहें, अपनी शक्ति और सुविधा के अनुसार चित्र और मूर्तियाँ सजायी जायँ तो बच्चे की सौन्दर्य बुद्धि विकसित हो और उसकी रुचि परिष्कृत हो।

पर्व त्यौहारों और सामाजिक उत्सवों के अवसर पर जो सफाई सजावट की जाय उसमें अवस्थानुसार बच्चों का सक्रिय सहयोग उनमें उत्साह और प्रेरणा भरता है। इससे उनकी सौन्दर्य बुद्धि को कर्मठता की आँच पर चमकने का अवसर मिलता है। समुचित सौन्दर्य बोध सम्पन्न बालक आगे चलकर कवि तथा कलाकार के रूप में विकसित होता है। ●

खण्ड चार

बच्चों का पूर्ण विकास क्यों नहीं होता ?

पूर्ण विकसित वृत्ति का अर्थ, पूर्ण विकासके दो आधार, समीक्षक दृष्टि, निर्भयता की शिक्षा, आक्रमण-वृत्ति, नया मार्ग।

बालकों की स्कूल जाने से पहले की शिक्षा निश्चय ही थोड़ी अवधि की होती है, लेकिन उसका महत्व अधिक है। माता-पिता अपने दैनिक क्रिया-कलापों द्वारा बच्चों को जाने-अनजाने प्रति क्षण शिक्षा देते ही रहते हैं। आजकल अधिकांश मनोवैज्ञानिक मानने लगे हैं कि शुरू-शुरू की उम्र में ही मनुष्य के चारित्र्य और मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। लेकिन वे इस बारे में एकराय नहीं हो सके हैं कि एक सामञ्जस्यपूर्ण और मवादी (हारमोनियम) व्यक्तित्व निर्माण करने की दृष्टि से बालक के साथ बर्ताव करने के तरीके क्या हैं। कई तो यह भी शंका करते हैं कि युद्ध और शांति की समस्या से क्या इसका वास्तव में कोई सम्बन्ध है ? क्योंकि जिस बाल्यकाल की शिक्षा का हम विचार कर रहे हैं उसके और युद्ध और शांति-जैसी सामाजिक समस्या के बीच समय का अन्तर बहुत ज्यादा है। छोटे बच्चों के साथ युद्ध, शांति, शिक्षा, मन आदि विषयों की चर्चा करना जरूरी माननेवाले भी कई हैं। लेकिन शंका होने लगती है कि यह सब करते हुए क्या हम कोरे सिद्धान्तों की ही वृद्धि तो नहीं कर रहे हैं।

स्कूल जाने से पहले की अवस्था में बालक को संस्कार सामान्यतया घरों में ही मिलता है। प्रश्न यह है कि हम या सरकार या कोई भी हितचिन्तक कौटुम्बिक स्थिति को कैसे बदल या सुधार सकता है। दरअसल प्राथमिक अवस्था के बच्चों के लिए कुछ करना है, तो हमें मुख्यतया परोक्ष पद्धति से ही काम लेना होगा यानी शिक्षकों को शिक्षित करना होगा। माता-पिताओं पर भी परोक्ष

ग्रैम वान डर लेक

रूप से ही प्रभाव डालना होगा ताकि वे भी अप्रत्यक्ष रूप से ही नयी पीढी को शातिनिष्ठा का सस्कार दे सकें।

पूर्ण विकसित वृत्ति का अर्थ

पहले ही मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि पूर्ण विकसित शब्द से मेरा क्या आशय है। मानव के व्यक्तित्व के विकास के पीछे कई ऐसे प्रभाव काम करते हैं जिन पर हमारा वस नही है। कुछ परिस्थितिया पर काबू पाने में हम समर्थ हो भी जायँ, तो भी हम जानते है कि कौन सी परिस्थिति हम में सामजस्य निमाण करती है। क्या सघर्ष और विरोध की स्थिति न रहे तो काफी है ? बिलकुल नहीं। क्या शिक्षा मे प्रेम, ज्ञान, विनोदी वृत्ति या ऐसे सदगुणो के रहने से काम बनेगा ? वह भी नही। बल्कि सयोग की बात है कि प्रत्यक्ष अनुभव इससे भिन्न है, वह यह है कि जिनके जीवन में किसी प्रकार का सामजस्य नही है, अन्तर्विरोध भरे पडे हैं, वे अपने दोषो से मुक्त हो सकते हैं और पूर्ण विकसित वृत्ति बढा सकते है।

पूर्ण विकसित व्यक्ति में आत्मनियत्रण की शक्ति होती है। उसमें अपने मनोभाव, अपने दोष तथा दूसरा के गुण-दोष को भी पहचानने की क्षमता होती है। इस से वह दूसरो के साथ यथायोग्य, समुचित व्यवहार कर सकेगा, उनके अनुकूल और परस्पर समझदारी के साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। वह यदि कोई निणय करेगा या किसी का विरोध करेगा तो वह तथ्य के ही आधार पर करेगा किसी व्यक्ति या समूह के खयाल से नहीं। चूँकि वह अपने प्रति सजग है निभय है, इसलिए किसी का विरोध करने के प्रसग मे किसी का साथ छूट जाने का भय उस नही रहेगा। इसी को मै पूर्ण विकसित वृत्ति कहता हूँ और मेरा विश्वास है कि युद्ध को रोकना और स्थायी शान्ति कायम करना मुख्यतया इसी मनोवृत्ति पर निर्भर है। श्री मार्टिन बबर कहते है, 'ध्येय-सिद्धि के लिए मनुष्य को लडना छोडकर विचार विनिमय का और आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का तरीका अपनाना चाहिए। उसके लिए मनुष्य मे हृदय की विशालता, उदारता, सत्य और न्यायनिष्ठा का विकास करना चाहिए। मनुष्य की समीक्षक-वृत्ति मे तथा विवेकज्ञान मे काफी वृद्धि होनी चाहिए ताकि वह एकागी प्रचार और अल्प परिचय के धोखे में न आ जाय और उससे भी बढकर अपनी हीन भावनाओ तथा गुटबन्दी के मनोभावो से वह बच सके, उन्हे रोक सके।' एरिक फ्राम ने आज के विचारवाद, युद्धोन्मुख गुटबाजी और विश्व भर के कारोबार का एक रोग बताया है। लेकिन मेरा ख्याल है कि यह इस बात का लक्षण है कि मानव अभी प्राथमिक अवस्था में ही है। वह पूर्ण विकसित स्थिति से अभी दूर है।

जिस पूर्ण विकसित मनोवृत्ति का मैंने विवेचन किया है, आपको भी लगता होगा कि यह आज के संसार में दुर्लभ है। यह कहना शायद अत्युक्ति होगा कि हम जो यहाँ एकत्र हुए हैं, व्यापक विश्व की तुलना में कुछ अधिक मात्रा में पूर्ण विकसित मनोवृत्ति रखते हैं। इसका कारण यह है कि चूंकि वैयक्तिक या वैचारिक स्वार्थ से ऊपर उठकर तथ्य का ही विचार हम अरसे से करते आये हैं। फिर भी मैं कहूँगा कि हम सब दूसरों के ही समान सामंजस्यहीन हैं हमारे जीवन में पूर्ण सामंजस्य नहीं आ सका है। तब फिर उस पूर्ण विकसित वृत्ति का आधार क्या है? मेरे ख्याल से उसके लिए दो गुण अत्यावश्यक हैं दोनों अधिकांश मनुष्यों में जन्मजात हैं, लेकिन बाल्य-काल में ही हम उन्हें नष्ट कर देते हैं, वे हैं (१) समीक्षक दृष्टि (विवेक ज्ञान) और (२) भय मुक्ति (निर्भयता)।

समीक्षक दृष्टि

बच्चों की नैसर्गिक समीक्षक दृष्टि या विवेक को खतम करना बड़ा आसान है। माता पिता तथा शिक्षकों में जो एक अधिकारवादी मानस है और व्यवहार में बड़प्पन का भाव है वही इसके लिए काफी है। सदाचार नियमपालन सफाई आदि बातें सिखाने के लिए अक्सर जो बल प्रयोग किया जाता है उसे मामूली बात नहीं समझना चाहिए बल्कि हमें स्वीकार करना चाहिए कि वह बड़ा दुराचार है। व्यस्त माता पिता अच्छी तरह जानते-बूझते हुए भी अपने बच्चों को हुक्म देते रहते हैं—'चुप रहो', 'हाथ धो लो', 'मुँह से उंगली निकालो', 'झगड़ो नहीं' आदि। कोई उनके साथ खुलकर चर्चा नहीं करता। आप पूछेंगे कि 'क्या हम अपने शिशुओं से चर्चा करें?' हाँ, जरूर करें। शिक्षक जानते हैं कि बालकों के साथ की जानेवाली चर्चा छोटी होनी चाहिए और केवल मतलब की ही होनी चाहिए। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब उनमें बहस करने का एक वास्तविक शौक पैदा होता है, मैं उसकी बात नहीं कर रहा हूँ। इसे मैं एक रोजमर्रा प्रसंग का उदाहरण देकर स्पष्ट करना चाहूँगा।

सफाई की आदत—बच्चों को सफाई सिखाना एक समस्या है। इस कठिन समस्या का कोई एक सर्वसम्मत उत्तर आज तक मेरे देखने में नहीं आया। आधुनिक मन शास्त्री कहते हैं कि बच्चों में सफाई की आदत डालने के लिए जोर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए, उससे बच्चे कुन्द हो जाते हैं। बच्चे आसानी से उपयोग कर सकें ऐसा पाखाना बना देना चाहिए और उन्हें उसका स्वेच्छा से उपयोग करने देना चाहिए। चन्द मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि बच्चों में ठेठ बचपन से ही व्यवस्थितता और सफाई की आदत डालनी चाहिए। और, कुछ लोग मानते

है कि बच्चा को पूरी स्वच्छन्दता की छूट देनी चाहिए। इस सलाह के अनुसार चलने पर तो माता पिता को अपने रेंगते और गिरते पड़ते बच्चे के पीछे पीछे दिनभर चलते रहना पड़ेगा और इसका नतीजा प्राय यही होगा कि हर काम म व दो मिनट देर से ही पहुँच पायेंगे। कुछ लोगों का कहना है कि जब-जब बच्चा खुद ही पाखाने का उपयोग करेगा तब-तब खुलकर उसकी सराहना करनी चाहिए। लेकिन सोचने की बात है कि ऐसा करके क्या हम उस चीज को आवश्यकता से अधिक महत्व तो नहीं दे रहे हैं। बच्चा के शारीरिक जीवन में जिस क्रिया का सब सामान्य से अधिक महत्व नहीं है उसपर इतना ज्यादा ध्यान देने से बच्चा घबरा तो नहीं जायगा ?

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरी पत्नी और मैंने बच्चों के साथ बर्ताव करने के तरीके को अनेक बार बदल बदल कर देखा है लेकिन कभी निर्णय नहीं कर पाये हैं कि सही तरीका क्या है। हम अपने बच्चों के साथ (हमारे चार बच्चे हैं) खूब चर्चा करते थे। इस बात का ध्यान रखते थे कि उसका परिणाम क्या आता है हमारा तरीका कितना कारगर हो रहा है, और यह भी सोचते थे कि क्या दूसरा भी कोई उपाय है कि जो बच्चे के लिए भी अनुकूल हो और हमारा हेतु भी सधे। लेकिन एक बात म हम बराबर गल्ती ही करते रहे हैं क्योंकि वह सबसे अधिक कठिन प्रसंग है कि बच्चे के साथ हम इस तरह व्यवहार कर कि वह मानो सचमुच एक व्यक्ति है।

बालक भी मानव है—बच्चा के साथ बर्ताव करते समय यदि हमारे मन में यह भाव हो कि हम बहुत बड़े हैं या अधिक अक्लमन्द हैं तो काम नहीं चलेगा। और ऐसे बर्तावों की कोई सुनिश्चित पद्धति नहीं हो सकती। जब आप किसी पड़ोसी से या बस कण्डक्टर से बात कर रहे हैं तो निश्चित ही आपको भान रहता है कि आप दोनों दो व्यक्ति हैं और उस बातचीत की कोई निश्चित पद्धति या ढंग पहले से तय नहीं रहता है। जब बोलने लगते हैं तो समय और व्यक्ति के अनुसार बोलने का ढंग अपने आप निश्चित होता जाता है। मेरा पक्का विश्वास है कि यही बात शिक्षा के लिए भी लागू होती है और इसका आरम्भ ठेठ बचपन से ही होना चाहिए। मैं श्रीमती मारिया माण्टसरी के विचारों से बहुत सहमत हूँ जो सन १९३७ में बच्चा की ओर से उनके हक के लिए लड़ी कि बालक का पूरा आदर होना चाहिए और उनके व्यक्तित्व के विकास का स्वतंत्र अवसर उनको देना चाहिए। मैं उसमें एक बात और जोड़ना चाहूँगा जो उन्होंने नहीं कही। वह यह कि हमें बच्चा और बड़ों के सम्बन्धों का भी विचार करना चाहिए। बच्चे कोई हम से भिन्न अलग प्राणी नहीं हैं व भी मानव हैं। उनमें बड़ों के सारे गुणों के बीज विद्यमान हैं और ठेठ जन्म से ही वे मानव बनने का उद्यम करते हैं।

जीवन म सामाजिक जीवन म वडा के जीवन म यानी पूण विकसित मानवो क साथ पूण विकसित मानव क रूप म घुल मिल का उन्ह अवसर मिलना चाहिए । इसलिए माता पिता को तथा शिक्षको को चाहिए कि वे बच्चो के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा आदर कर । माता पिता को चाहिए कि बच्चा को उचित महत्व द और अपनी महत्वाकाक्षाओ को जरा ताक पर रख (जैसे— मेरा मुन्ना उन के लन्दन म जन्मी कम्पनी लगा एसा ऊधमी बच्चा दस वर्ष प्रमुख क्या कहूँ ? आदि) आग्रह छोड (म जो कहता हू वह तुम्ह करना होगा क्योकि म कह रहा हूँ आदि) और बच्चो से अपनी समीक्षा सुनने को तयार रह ।

विद्रोही बनानेवाली शिक्षा—यह बात अजीब लगेगी कि कल के छात्र हमें हमारा ममा ना करन देना चाहिए। लेकिन हम स्मरण रखना चाहिए कि बच्चे भी मानव ह और उनको समानता बरतने का तथा विकसित होने देना ह तब तक वे अपने काम और अपनी भावनाओ की समीक्षा करना सीख न ले । यदि हम उन्ह हमारे साथ समान भाव से व्यवहार करने न द तो फिर यह आशा कैसे रख सकते ह कि वे हमारे प्रति आदर रखना सीख ? शायद आपको डर हो कि लोग उन अशिष्ट या उद्दण्ड न कह द । कुछ हद तक यह सही है लेकिन बच्चे म पूर्ण परिपक्व अवस्था का विकास होने देना चाहते ह तो उसकी इस कीमत समझना चाहिए । तब कुछ समय बाद हम देखेंगे कि वे सदाचार और शिष्टाचार को विशेष उत्सुकता के साथ—हम जितना चाहते थ शायद उनसे ज्यादा ही—अपनायगे । बच्चे चाहते ह कि लोग उनसे प्यार कर । लोगो के मुह से अपनी तारीफ सुनने के लिए वे अपने इद गिर्द के प्रसगो म मौका खोजते रहते ह । म तो यहा तक कहने का साहस करता हू कि इस तरह से अनेक नगिण समस्याए टाली जा सकती ह क्योकि वयक्तिक शिक्षण के जरिये बच्चो म सामाजिक ह्रास वृत्तियो का सामना करने की शक्ति धीरे धीरे बढ़ती जाती है । आखिर हम यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारी इच्छा यह न हो कि बच्चो को वतमान समाज को पूरा-पूरा मानकर उसी के अनुरूप बनने की शिक्षा मिले । हम तो बच्चो को भावी समाज के लायक शिक्षा देना चाहते ह आज के समाज को नही । इसका अथ यह कि हम बच्चो को विद्रोही बनाना चाहते ह ।

शिक्षा-पद्धति म सुधार—बालमदिर के शिक्षक जानते ह कि यत्रवत चलनेवाले बच्चो की अपेक्षा अलग अलग स्वतत्र व्यक्तित्ववाले बच्चो के साथ काम करना ज्यादा कठिन है । और वास्तविक कठिनाई तो जूनियर स्कूल म शुरू होती है क्योकि उसी उम्र म बालक समीक्षा करने लगता है जो शिशु नहीं करता । मन माना ही है कि उन्ह समीक्षा करने देना जरूरी है । इसके लिए जरूर अनेक शिक्षको से कहना होगा कि वे अपने छात्रो की संख्या कम कर छोटे

छोटे समूह को लेकर चलें। क्योंकि व्यक्ति व्यक्ति से गहरा सम्बन्ध कायम करने का यही एक उपाय है। यह अपेक्षा अति जैसी लगती होगी और बहुत सम्भव है कि स्कूल अधिकारी इस सुझाव को रद्दी की टोकरी के हवाले कर दें लेकिन मैं समझता हूँ कि यह समझा जा सकता है बल्कि समझना चाहिए कि आगे चलकर आटोमेशन की (स्वचालित यंत्र प्रणाली की) जितनी समस्याएँ आनेवाली हैं उन सबका उत्तम समाधान इसी में है।

बच्चों और माता पिता के सम्बन्धों के अलावा बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ भी घुलने मिलने देना चाहिए और हार्दिक सम्बन्ध बनने देना चाहिए। मैं जिस स्कूल में काम कर रहा हूँ उस के संस्थापक श्री वीस यूके उन पहले व्यक्तियों में एक हैं जिन्होंने यह पहचाना कि बच्चों को दूसरे बच्चों से घुलने मिलने और आत्मीय सम्बन्ध बनने देने से शिक्षकों को बच्चों से मिलने जुलने का और उन्हें व्यवहार और सभ्यता सिखाने का बढ़िया अवसर मिलता है। उन्होंने इस विचार को आगे बढ़ाया और चिल्ड्रन्स वर्किंग कम्युनिटी (बाल उद्योग समाज) की स्थापना की। वहाँ बच्चे छोटे छोटे समूहों में बड़ों के साथ मिलकर काम करते हैं जिससे एक दूसरे की निकटता के कारण बच्चों की समीक्षक दृष्टि तथा सामाजिकता की वृत्ति का विकास होता। लेकिन खेद की बात है कि आज वहाँ भिन्न पद्धति की माँग की जा रही है। फिर भी उनके व विचार आज भी मूल्यवान हैं खासकर उनका यह आग्रह कि बच्चों को वर्तमान समाज की अपेक्षाओं के अनुकूल बनने को नहीं बल्कि उसे बदलने की क्षमता रखनेवाले अमूल्य व्यक्ति बनाने की शिक्षा देनी चाहिए।

निर्भयता की शिक्षा

पूर्ण विकसित व्यक्ति के दो गुण बताते हुए मैंने समीक्षक दृष्टि के बाद भय मुक्ति का उल्लेख किया है। भय मुक्ति से मेरा आशय वह अवस्था है जिसे बाइबल में ईश्वर पर भरोसा (ट्रस्ट इन गाड) कहा है। इस अवस्था में मनुष्य के जीवन में एक प्रकार की सुनिश्चितता आ जाती है (अनिश्चितता रह नहीं जाती)। वह पूर्ण विनम्र होता है सबसे अपनी समानता का अनुभव करता है मानापमान की बहुत परवाह नहीं करता और अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार करने से झिझकता नहीं। यह वह निश्चितता है जिसमें मनुष्य कट्टर न होते हुए भी सुदृढ़ रह सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसे डरने का कोई स्थान रहता ही नहीं। बहुत सम्भव है कि वह यातना से डरे अज्ञान से डरे या उसका स्वभाव लज्जाशील हो। उसमें यह भय न हो तो फिर दूसरों के इन भयों को वह सहज रूप से ग्रहण करने योग्य भी न रह जायगा। इतना तो अनिवार्य है कि पूर्ण विकसित मनुष्य को दूसरों का समाधान कर सकना ही चाहिए क्योंकि वह स्वयं भयमुक्त है अस्थिरता से मुक्त है।

प्रारम्भ में मैंने प्रश्न रखा कि अधिकांश बालक क्यों पूर्ण विकसित मानव नहीं बनते, और मैंने माना कि विकास की उनकी क्षमताएँ बाल्यकाल में खतम कर दी जाती हैं। इसमें यह आशय निहित है कि सब बच्चों में अथवा अधिकांश बच्चों में वह क्षमता अवश्य है। उन अमूल्य क्षमताओं की देखभाल करने की जरूरत है। अक्सर माता-पिता और शिक्षक इस तथ्य को पहचानते नहीं हैं, क्योंकि वे स्वयं पूर्ण विकसित नहीं होते या कम-से कम उन्हें इस बात का भान भी नहीं रहता कि उनके बच्चों में ये विशेषताएँ हैं।

दुनिया भर में मनुष्य के अन्दर पायी जानेवाली आदतों में एक यह भी है कि भय के मामले में उसका बर्ताव बड़ी मूर्खता से भरा होता है, और उस मूर्खता को सीधे-सीधे मानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करने के बजाय, उलटे उसे वह अस्वीकार किया करता है। वह चाहे तो, चाहे जितनी शक्ति लगाकर उस आदत से बाज आ सकता है। अन्धविश्वास, अस्थिरता और भावनाजन्य भयों से प्रत्येक व्यक्ति को मुक्त होना ही चाहिए। प्रश्न यह है कि बच्चों को वह अवसर कैसे दिया जाय और भय से मुक्त होने की शक्ति उसमें कैसे पैदा की जाय। शायद इस बात से सभी सहमत होंगे कि बच्चों को बाल्यकाल से ही निर्भयता सिखानी चाहिए, उसमें सुरक्षितता का भान पैदा करना चाहिए। लेकिन अक्सर इसका गलत अर्थ लगाया जाता है कि माता-पिता बच्चों के सामने सुरक्षितता और निश्चिन्तता का प्रदर्शन करें जो वास्तव में वे खुद महसूस नहीं करते हैं तो बच्चों को निश्चितता का एहसास होगा। लेकिन मेरे खयाल से इससे उल्टा होना चाहिए। बच्चे आपस में उन्मुक्त और निश्छल व्यवहार के वातावरण में अपने को अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं। यदि उनको लगे कि उनका आदर होता है, उनके साथ पूर्ण व्यक्ति के समान बर्ताव किया जाता है—हाँ, इसमें उनकी उम्र का विवेक तो रखना ही होगा—तो उन्हें अधिक निश्चितता का भान हो सकेगा। इस प्रकार मेरी प्रमुख माँग फिर सामने आती है कि बच्चों की क्षमता का महत्त्व स्वीकार किया जाना चाहिए और उसके अनुरूप बर्ताव उनके साथ होना चाहिए।

आक्रमण वृत्ति

आक्रमण-वृत्ति पर अभी तक कुछ नहीं कहा गया। यह एक विवादास्पद विषय है। अक्सर लोग कहते हैं कि व्यक्ति के अन्दर दूसरे पर हावी होने का, आक्रमण करने का जो गुण है, उसी में सामाजिक संघर्षों और विशेषत युद्धों का बीज है। लेकिन मुझे लगता है कि इसमें कुछ अतिशयोक्ति है। मेरी इस धारणा का समर्थन इस विषय के एक अधिकारी व्यक्ति प्रो० कानराड लारेंज ने किया है, जिन्होंने समुन्नत प्राणियों में आक्रामक वृत्ति का अध्ययन और शोध किया है। उनका कहना है कि यह वृत्ति रीढ़ की हड्डियों के अंग-विशेष का नैसर्गिक परिणाम

है। इस वत्ति को अनेक व्यक्तिगत और सामाजिक हेतुओं की सिद्ध करने में मोड़ा जा सकता है जैसे क्षेत्रीय सुरक्षा करना सजातीय लोगों को अलग अलग क्षेत्रों में बाटना मित्रता करना या सामान्यतया प्रेम कहे जानेवाले आपसी मधुर सम्बन्ध स्थापित करना आदि।

हां आक्रमण के कई प्रकार हो सकते हैं। निराश या हताश बालक बहुत आक्रमणशील हो सकता है लेकिन यह आक्रमण वत्ति का गौण प्रकार है। इसे एक जर्मन मन शास्त्री ने पलायन वत्ति की ही दूसरी अवस्था कहा है। ऐसे व्यक्ति को सुधारने के लिए उसकी निराशा की जड़ पहचाननी चाहिए और उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए आक्रमण वत्ति को मिटाने का अलग से प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है।

वातावरण में युद्ध की भावना फैलाने से तथा विभिन्न प्रचारों के कारण भी लोगों में विशेष प्रकार की आक्रमण-वत्ति पैदा करता है। उसके बारे में यही कहा जायगा कि आक्रमण की एक साधारण चित्त वत्ति को गलत दिशा दी गयी है यानी उसे दूसरे व्यक्तियों या समूहों के विरुद्ध उत्तेजित किया गया है। यह सब इसलिए सम्भव होता है क्योंकि अधिकांश लोगों में स्वयं सोच समझकर काम करने की शक्ति नहीं होती और उनमें नाना प्रकार के भय और अंधविश्वास भरे होते हैं। इसलिए उस आक्रमण वत्ति को जो कि नैसर्गिक है गलत मानकर उसका उपचार करने के बजाय उनमें प्रचार के प्रभावों से बचने की और उन पर तटस्थ होकर विचार करने की शक्ति पैदा करना ही अधिक उचित लगता है। मेरे खयाल में पूर्ण विकसित व्यक्तियों पर प्रचार का प्रभाव जरा भी नहीं होगा और ऐसे लोगों के समाज में प्रचार की आवश्यकता नहीं रह जायगी।

इसलिए इस लेख में मैंने आक्रमण वत्ति का विचार नहीं किया। मेरा मानना है कि मैंने जिस पूर्ण विकसित मनोवत्ति का विवेचन किया है वह यदि हम में आ जाय तो शान्तिमय संसार में भी लोग आज के ही समान आक्रमण वृत्तिवाले और सामंजस्यहीन रहें तो भी कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। इसके लिए बुनियादी आवश्यकता इस बात की है कि हर प्रकार की शिक्षा में खासकर बाल्यकाल की शिक्षा में प्रत्येक बालक के साथ एक पूर्ण व्यक्ति के नाते बरताव किया जाय और वे उनके साथ समानता की भूमिका में व्यवहार करें।

नया मार्ग

आज की प्रचलित शिक्षा-पद्धति को जो सर्वथा अधिकारवादी (अथारिटेरियन) है जिसमें हार्दिक सम्बन्ध है ही नहीं और बच्चों की भावनात्मक तथा बौद्धिक आकांक्षाओं की जिसे कल्पना ही नहीं है हम कैसे बदलें?

कभी कभी माता पिता शिकायत करते हैं कि आजकल शिशु की देखभाल

बालक का व्यक्तित्व

व्यक्तित्व क्या है, व्यक्तित्व और आनुवंशिकता, व्यक्तित्व और पर्यावरण, अनुकरण की अवस्था, संकेत-ग्रहण की अवस्था, तादात्म्य की अवस्था, आत्मादर्श की अवस्था।

आधुनिक बाल मनोविज्ञान बालक के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों को अत्यधिक महत्व देता है। इसका कारण यह है कि शैशवकाल में बालक के व्यक्तित्व के विकास की वे सम्भावनाएँ उपस्थित होती हैं जो उसके भावी विकास को प्रभावित करती रहती हैं। दूसरे शब्दों में, शैशवकाल में व्यक्ति के व्यक्तित्व-सम्बन्धी ऐसे लक्षण उत्पन्न होते हैं जो कि प्रौढ़ जीवन के व्यक्तित्व की आधार-शिला माने जाते हैं।

व्यक्तित्व क्या है ?

व्यक्तित्व की अनेक परिभाषाएँ हैं, और इस सम्बन्ध में अनेक विचार पाये जाते हैं। लेकिन मूल रूप से व्यक्तित्व व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक क्षमताओं का वह सुगठित रूप है जो उसके समजन (इंटीग्रेशन) में सहायक होता है। किस परिस्थिति में कोई व्यक्ति किस प्रकार काम करेगा यह बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कुछ लोग अत्यन्त कार्यकुशल होते हैं और सहज ही समाज में अपना स्थान बना लेते हैं। यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति दब्बू एवं डरपोक होते हैं और कोई निर्णय नहीं ले पाते। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व से सम्बन्धित जो विशेषताएँ हैं उनकी पृष्ठभूमि शैशवकाल में तैयार होती है। इस दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि चाहे अभिभावक हों अथवा शिक्षक, उन बातों से भलीभाँति परिचित हों जिनका बालक के व्यक्तित्व से सम्बन्ध है।

डा० सीताराम जायसवाल
रीडर, शिक्षा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

व्यक्तित्व और आनुवंशिकता

प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व में ऐसे गुण निहित होते हैं जिन्हें कि वह अपने माता-पिता तथा पूर्वजों से प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए बालक के शरीर की बनावट, रूप-रंग, बाल, आँख एवं अन्य बाह्य लक्षण का अधिकतर सम्बन्ध आनुवंशिकता से होता है। इसके अतिरिक्त जन्म के समय बालक अपने पूर्वजों से ऐसे पैतृक गुण ग्रहण करता है जो कि स्वभाव (टेम्परामेंट)-सम्बन्धी होते हैं। वास्तव में आनुवंशिकता बालक को उसके व्यक्तित्व के विकास की सम्भावनाएँ प्रदान करती है। लेकिन ये सम्भावनाएँ पूरी होंगी अथवा नहीं, यह बहुत कुछ बालक के पर्यावरण पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से आधुनिक शिक्षा में बालक के पर्यावरण एवं परिवेश पर बल देना स्वाभाविक है। अतः व्यक्तित्व की दृष्टि से बालक की आनुवंशिकता का महत्व है क्योंकि उसके भावी विकास की सम्भावनाएँ आनुवंशिकता से ही प्राप्त होती हैं।

व्यक्तित्व और पर्यावरण

ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि व्यक्तित्व के विकास की जो सम्भावनाएँ आनुवंशिकता प्रदान करती है, उनकी पूर्ति वाञ्छनीय पर्यावरण में ही हो सकती है। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से पर्यावरण का पर्याप्त महत्व है। एक साधारण उदाहरण यह है कि यदि हम आनुवंशिकता को बीज मान लें और पर्यावरण को मिट्टी तो स्पष्ट है कि अच्छा बीज तबतक फूल-फल नहीं सकता जबतक कि उसे अच्छी मिट्टी में न बोया जाय। इसीलिए आधुनिक मनोविज्ञान में यह स्वीकार किया जाता है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता एवं पर्यावरण का समान महत्व है।

अनुकरण की अवस्था

बालक का व्यक्तित्व उस समय से प्रकट होने लगता है जबकि वह लगभग तीन वर्ष का होता है। मनोवैज्ञानिकों का यह सामान्य मत है कि ढाई वर्ष से लेकर लगभग छ वर्ष की उम्र में बालक के व्यक्तित्व का विकास चार अवस्थाओं से गुजरता है। इस दृष्टि से बालक के व्यक्तित्व-विकास की पहली अवस्था में अनुकरण की प्रधानता होती है। अनुकरण की अवस्था में बालक अनेक बातें अपने माता-पिता से सीखता है, जैसे किस प्रकार बैठना-उठना चाहिए, बोलना चाहिए तथा अन्य कार्य करने चाहिएँ। तात्पर्य यह है कि अनुकरण की अवस्था में बालक व्यक्तित्व-सम्बन्धी उन सभी बातों को ग्रहण करता है जिन्हें कि वह देखता रहता है।

संकेत-ग्रहण की अवस्था

बालक जब कुछ और बड़ा होता है तथा उसमें दूसरों के भाव एवं विचार समझने की योग्यता उत्पन्न होती है तब वह व्यक्तित्व-सम्बन्धी अनेक गुण, जैसे भाव एवं भावनाएँ, चित्तवृत्ति (मूड) एवं विचार आदि संकेत के द्वारा ग्रहण करने लगता है। दूसरे शब्दों में, बालक अपने व्यक्तित्व के विकास की दूसरी अवस्था में बहुत कुछ सुझाव एवं संकेत के द्वारा सीखता है। इसीलिए आधुनिक शिक्षा में इस बात पर बल देते हैं कि बच्चों के सामने हम ऐसी भाषा का व्यवहार न करें जो कि अनुचित हो अथवा ऐसे काम न करें जिनके द्वारा बच्चों को वाछनीय सुझाव अथवा संकेत न मिले। अभिभावकों एवं शिक्षकों को चाहिए कि वे इस बात की ओर ध्यान रखें, क्योंकि बच्चे बहुत कुछ परोक्ष रूप से संकेत के द्वारा सीखते हैं जो कि कालान्तर में उनके व्यक्तित्व का अंग बन जाता है।

तादात्म्य की अवस्था

बालक के व्यक्तित्व के विकास की तीसरी अवस्था को तादात्म्य (आइडेन्टिफिकेशन) की अवस्था इसलिए कहते हैं कि संकेत-ग्रहण के साथ-साथ बालक अपने को माता-पिता अथवा अन्य प्रियजनों के समतुल्य समझने लगता है। उदाहरण के लिए, यदि बालक का पिता शिक्षक है तो बालक तादात्म्य की अवस्था में यह कह सकता है कि वह अब स्कूल में बच्चों को पढ़ाने जा रहा है। तात्पर्य यह है कि बालक के माता-पिता जो कुछ काम करते हैं उनसे बालक का तादात्म्य स्थापित हो जाता है और वह इस प्रक्रिया के द्वारा उनके व्यक्तित्व के अनेक लक्षणों एवं गुणों को ग्रहण करता है। तादात्म्य की अवस्था में छोटा बच्चा प्रौढ़ व्यक्तियों की भूमिका अदा करना अधिक पसन्द करता है। इस दृष्टि से बच्चों के लिए ऐसे नाटक अधिक शिक्षाप्रद होते हैं जो उनके व्यक्तित्व के सम्यक विकास में सहायक होते हैं, साथ ही तादात्म्य के द्वारा बच्चों में सांस्कृतिक विशेषताएँ भी उत्पन्न करते हैं। मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि तादात्म्य की अवस्था में बालक जो कुछ भाव एवं विचार अपनाता है उनका भावी जीवन में अत्यधिक महत्व होता है। अतः बालक के व्यक्तित्व की दृष्टि से तादात्म्य की अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लेकिन इसी के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि तादात्म्य की क्षमता बहुत कुछ पहले सीखी हुई बातों पर निर्भर करती है। बालकों में अनुकरण एवं संकेत ग्रहण की अवस्थाओं में जो बातें सीखी हैं उनसे उसकी तादात्म्य की क्षमता भी प्रभावित रहती है। यदि व्यक्तित्व के विकास की पहली दो अवस्थाओं में सन्तोषजनक विकास नहीं होता तो तादात्म्य में बालक का व्यक्तित्व सुचारू रूप से विकसित नहीं हो पाता। सच तो यह है कि बालक के व्यक्तित्व के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ एक दूसरे पर आधारित हैं और इन्हें अलग करके नहीं समझा जा सकता।

आत्मादर्श की अवस्था

जब बालक लगभग छ वर्ष का होता है तब उसके व्यक्तित्व की चौथी अवस्था उपस्थित होती है जिसे कि आत्मादर्श की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बालक अपने लिए ऐसे आदर्श अथवा मॉडल चाहता है जो कि उसकी रुचि एवं इच्छाओं के अनुकूल हो। इस दृष्टि से भी बालक का पर्यावरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि बालक अच्छे विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है तो वहाँ वह ऐसे लोगों के सम्पर्क में आता है जो कि उसके लिए वाञ्छनीय आदर्श उपस्थित करते हैं। यदि दुर्भाग्यवश बालक को अच्छे व्यक्तियों का सम्पर्क प्राप्त नहीं हुआ तो वह अपने जीवन के लिए गलत आदर्श अपना लेता है। इस प्रकार यह अत्यन्त आवश्यक है कि बालक के व्यक्तित्व के सम्यक विकास के लिए ऐसा पर्यावरण उपस्थित किया जाय जिसमें कि उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप आदर्श व्यक्ति एवं विचार पाये जाते हों। इसीलिए यह अपेक्षित है कि बच्चों को रामायण एवं महाभारत तथा महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ सुनायी जायें जिससे कि वे अपने लिए वाञ्छनीय आदर्श चुन सकें।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बालक के व्यक्तित्व का विकास उसी समय सन्तोषजनक होता है जब कि उसे ऐसे व्यक्तियों की सगत मिलती है जो कि चरित्रवान एवं सभ्य हैं। चरित्रवान एवं सभ्य व्यक्तियों का अनुकरण करके बालक अच्छी बातें सीखता है। उन्हें देख-सुनकर वह ऐसे संकेत ग्रहण करता है जो कि उसके व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। अपने प्रिय व्यक्तियों से तादात्म्य साध करके बालक व्यक्तित्व-सम्बन्धी सूक्ष्म गुणों को विकसित करता है और अन्त में अनुकूल आदर्शों के सम्पर्क में आकर वह अपने लिए वाञ्छनीय आदर्श चुनता है। यह सब उसी समय सम्भव है जबकि बालक के माता-पिता और शिक्षक उसकी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को समझें और उसे ऐसे अवसर प्रदान करें जो कि उसके व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। नयी तालीम के आधार पर सचालित बुनियादी विद्यालयों में यह प्रयास किया जाता है कि बालक के व्यक्तित्व का सम्यक विकास हो। इस दृष्टि से उसे ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में लाया जाता है जो उसके व्यक्तित्व के विकास में सभी प्रकार से सहायक होते हैं। लेकिन हमारे देश में बच्चों के लिए अच्छे स्कूलों की बहुत कमी है और यही कारण है कि भारत के भावी नागरिकों के व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो रहा है। भारतीय राष्ट्र का भविष्य तभी सुखद होगा जबकि हम अपने बच्चों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए अच्छे स्कूलों तथा अध्यापकों की व्यवस्था करेंगे। ●

नयी शिशु-शिक्षा-पद्धतियाँ :

मॉन्टेसरी और पूर्व बुनियादी

मॉन्टेसरी-पद्धति, नित्य-प्रति के जीवन की क्रियाएँ, शिक्षोपकरणों-द्वारा खेल, लिखना-पढ़ना, मॉन्टेसरी-पद्धति की समीक्षा, पूर्व बुनियादी की शिक्षा, सफाई, नित्यप्रति की क्रियाएँ, स्वतन्त्र भाव-प्रकाशन की क्रियाएँ, व्यक्तिगत खेल, सामुदायिक खेल और क्रियाएँ।

शिक्षा के क्षेत्र में जो आधुनिक प्रयोग हुए हैं और जिन नवीन अध्यापन विधियों का विकास हुआ है, उनमें जिस पद्धति का सबसे अधिक प्रचार और प्रसार हुआ है, वह मॉन्टेसरी पद्धति है। इस पद्धति की प्रवर्तक मारिया मॉन्टेसरी हैं, जिनका जन्म १८७० ई० में इटली में हुआ था। उन्हीं के नाम पर इस पद्धति को मॉन्टेसरी पद्धति कहते हैं। आज संसार के लगभग सभी देशों में मॉन्टेसरी स्कूल चल रहे हैं। इनमें लगभग ३ वर्ष से ७ वर्ष के बच्चों को पढ़ाया जाता है। भारतवर्ष के प्रायः सभी शहरों में मॉन्टेसरी स्कूल हैं।

मादाम मॉन्टेसरी रोम के अस्पताल में मानसिक रोगों की चिकित्सक थीं और वहाँ उन्हें कुछ ऐसे लड़के पढ़ाने को मिले जो कमजोर दिमाग के थे। मॉन्टेसरी ने उन लड़कों को एक विशेष ढंग से पढ़ाया। और सत्र के अन्त में जब उनकी परीक्षा ली गयी तो देखा गया कि उनका बौद्धिक विकास उन विद्यार्थियों से कम नहीं हुआ है जो स्वस्थ मस्तिष्क के साधारण लड़के माने जाते थे। इससे वह इस परिणाम पर पहुँची कि वह अध्यापन-पद्धति ही दोषपूर्ण है जिससे लड़कों को सामान्य विद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है। अतः उन्होंने अपनी नयी पद्धति के प्रचार का निश्चय किया और एतदर्थ शिशुगृह स्थापित किये। इस नयी पद्धति से चलनेवाले स्कूल ही मॉन्टेसरी स्कूल कहलाये।

वंशीधर श्रीवास्तव
प्राचार्य राजकीय बुनियादी
प्रशिक्षण महाविद्यालय, वाराणसी

मॉन्टेसरी-पद्धति का मूल उद्देश्य है बच्चों द्वारा स्वयं अपनी शिक्षा। मॉन्टेसरी के अनुसार शिक्षा का चरम उद्देश्य है बालकों की जन्मजात शक्तियों के विकास

में सहायक होना। यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षक बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास की प्रक्रिया को समझे और बच्चों को 'स्वयं अपने द्वारा अपनी शिक्षा' प्राप्त करने के कार्य में सहायता करे। इसीलिए मॉन्टे-सरी बालकों के लिए एक ऐसा 'घर' बनाने की राय देती है जहाँ बच्चों के लिए इस प्रकार का वातावरण सुलभ किया जा सके जिसमें बच्चे की स्वाभाविक शक्तियों का विकास उन्हीं की क्रियाओं और खेलों के माध्यम से बिना किसी बाहरी रोक-टोक के हो।

बच्चों के इस घर के सामने खुली जगह हो, मकान के कमरे हवादार हों जिनमें खेलने-कूदने, खाने-पीने-सोने, आदि के समय साफ हवा और प्रकाश मिले। हाथ-मुँह धोने के लिए एक कमरा हो। एक खाने का कमरा हो, एक कमरा सोने का भी हो। एक कमरा ऐसा हो जिसमें लड़के बौद्धिक काम करें। बच्चों के इस 'घर' में खिलौने अथवा शिक्षा के उपकरण होंगे जिनसे खेलने में उनकी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का विकास होगा। इन कमरों के फर्नीचर—मेज, कुर्सी, आसन, चटाई, आदि—छोटे और हल्के होंगे, ताकि लड़के उन्हें खुद उठाकर रख सकें। सम्भव हो तो हर लड़के के लिए एक आलमारी और सन्दूक हो। दीवारों पर बच्चों की ऊँचाई के अनुसार श्यामपट लगा दिये जायें। जिनपर लड़के मनमानी ड्राइंग कर सकें अथवा लिख सकें। दीवारों के ऊपरी भाग पर ऐतिहासिक, भौगोलिक और प्राकृतिक चित्र चित्रित हों—विशेषतया विभिन्न देशों के लड़कों के। 'घर' में एक गोष्ठीगृह अवश्य हो जहाँ सब बच्चे एकत्र हो आपस में बातचीत करें, किस्से-कहानी कहें—सुनें अथवा संगीत और अभिनय के द्वारा एक दूसरे का मनोरंजन करें। बच्चे अपने कमरे की सफाई स्वयं करें, अपने खाने के बर्तन स्वयं साफ करें और उन्हें यथास्थान, यथाविधि रखें। साबुन, तौलिया, मंजन ब्रश, दातौन का प्रयोग और उन्हें ठीक-ठीक रखना भी उनका काम हो।

इन कामों को करने और खेलों को खेलने में बच्चों की शिक्षा स्वयं होती है। मॉन्टेसरी स्कूल में कोई नियमित काम नहीं, कोई समय-विभाजक-चक्र नहीं, कोई कक्षा नहीं, कोई दण्ड अथवा पारितोषिक नहीं। खेलों और कामों में सफलता प्राप्त कर लेने की प्रसन्नता ही वह प्रेरक शक्ति है जो बच्चों को खेलने और काम करने की प्रेरणा देती है। साथ ही उन्हें अनुशासन में भी रखती है। प्रत्येक बच्चा उस काम को करने के लिए स्वतंत्र है, जिसमें उसकी रुचि हो। बच्चा जब स्कूल जाता है तो बच्चों के छोटे छोटे झुण्डों को खेलते पाता है और वह भी एक झुण्ड में शामिल हो जाता है।

मॉन्टेसरी-पद्धति

मॉन्टेसरी-पद्धति में शिक्षा के कार्यक्रम के तीन अंग होते हैं —(१) नित्य-

प्रति के जीवन की क्रियाएँ, (२) शिक्षोपकरणों-द्वारा खेल और (३) लिखना-पढ़ना ।

(१) नित्यप्रति के जीवन की क्रियाएँ —

चूँकि यह विद्यालय ३ साल से ६—७ साल तक के बच्चों के लिए होते हैं, अतः इन स्कूलों में अध्यापन का कार्य अध्यापिकाएँ ही करती हैं । यही स्वाभाविक भी है । ये अध्यापिकाएँ बालकों के चलने-फिरने, उठने-बैठने, हाथ-मुँह धोने, शरीर और वस्त्र को स्वच्छ रखने, कपड़ा पहनने, उठने-बैठने के स्थान को साफ रखने, तथा वस्तुओं को यथास्थान रखने आदि नित्यप्रति की जीवन-सम्बन्धी क्रियाओं को सम्पादित करने में सहानुभूतिपूर्ण सहायता करती हैं । मान्टेसरी स्कूल का वातावरण भी ऐसा रखा जाता है कि जिसमें सब काम बच्चों को अपने हाथ से करना पड़े । इन कामों को करते हुए, बालकों को आत्म-निर्भरता की शिक्षा मिलती है और उनकी कर्मेन्द्रियों के विकास में वांछित सहायता प्राप्त होती है ।

(२) शिक्षोपकरणों-द्वारा खेल —

मॉन्टेसरी-पद्धति में सबसे अधिक महत्व इन खेलों और शिक्षोपकरणों का ही है । बालकों की ज्ञानेन्द्रियों का विकास इन्हीं खेलों के द्वारा किया जाता है । ज्ञानेन्द्रियों का विकास ही मॉन्टेसरी पद्धति का मुख्य लक्ष्य है । इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाल-मस्तिष्क को अनुभूति मस्तिष्क को होती है । अतः यदि इन इन्द्रियों को पुष्ट और विकसित कर दिया जाय तो ज्ञान ग्रहण की क्रिया सहज और टिकाऊ हो जायगी । इसीलिए मॉन्टेसरी ने भिन्न-भिन्न इन्द्रियों की ट्रेनिंग के लिए तरह-तरह के शिक्षोपकरण बनाये ।

इन्द्रियों में आँख सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । आँखों से ही हम रूप-रंग का ज्ञान प्राप्त करते हैं । इन्हीं से हम दूरी का भी अनुमान लगाते हैं । अतः इन्हें प्रशिक्षित करने के लिए मॉन्टेसरी ने विभिन्न लम्बाई, चौडाई, और मोटाई के लकड़ी के टुकड़ों और विभिन्न रंग की टिकियाँ बनायीं । स्पर्शेन्द्रियों की ट्रेनिंग के लिए खुरदरे और मुलायम धरातलवाले तख्ते बनाये और रेगमार (सैंडपेपर), रूई, मलमल, रेशम, चिकने-खुरदरे कागज से शिक्षोपकरण बनाये । कानों की ट्रेनिंग के लिए उन्होंने विभिन्न पदार्थों से भरे डिब्बे, सीटियाँ, भिन्न-भिन्न स्वरों की घण्टियाँ, और विभिन्न वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग किया एवं जिह्वा के प्रशिक्षण के लिए नमकीन, मीठे, कसैले, चरपरे, आदि पदार्थों का प्रयोग किया । इस प्रकार इन सारे उपकरणों की सहायता से बालक तरह-तरह के खेल खेलते थे, जिनसे उनकी इन्द्रियाँ प्रखर और पुष्ट होती थीं और उनमें समान असमान और मिलते-जुलते पदार्थों को पहचानने की शक्ति विकसित होती थी ।

मान्टेसरी के कुछ महत्वपूर्ण शिक्षोपकरण निम्नांकित है —

(१) लकड़ी का ठोस टुकड़ा—जिसमें १० छोटे-छोटे बेलनों को घुसेड़ने की जगह बनी रहती है। इन बेलनों का आकार तो एक ही तरह का होता है परन्तु व्यास विभिन्न होता है। बच्चे छेदों में उचित मोटाई के बेलन फिट करते हैं। इस खेल में बच्चों की दिलचस्पी बनी रहती है। साथ ही आँख की ट्रेनिंग भी होती जाती है। बच्चों मे स्वय निरीक्षण करने, तुलना करने और निर्णय करने की शक्ति का विकास होता है।

(२) लकडी के १० गुलाबी रग के घन—जिनकी एक भुजा क्रमश एक से दस सेन्टीमीटर की होती है। इसमें लडके मकान, पिरामिड आदि बनाते हैं।

(३) २० सेन्टीमीटर लम्बा भूरे रग का त्रिपार्श्व — इसका वर्ग वाला भाग १० सेन्टीमीटर से १ सेन्टीमीटर तक कम होता जाता है।

(४) दस हरे डण्डे — क्रमश एक सेन्टीमीटर से १० सेन्टीमीटर तक लम्बे। इनसे लड़के कई प्रकार के खेल खेलते हैं और उन्हें तुलनात्मक लम्बाई का ज्ञान होता है।

(५) खुरदरे और मुलायम धरातलवाले आयताकार तख्ते। इन तख्तों पर गोंद से उन पदार्थों को चिपकाया जाता है, जो क्रमश खुरदरे से मुलायम होते जाते है, जैसे रेगमार, लकडी, कार्डबोर्ड, ऊन, रुई, रेशम, मखमल आदि। इन उपकरणों-द्वारा स्पर्शेन्द्रिय की ट्रेनिग होती है।

(६) विभिन्न प्रकार की लकडियों की बनी हुई एक ही साइज की तख्तियाँ—जिनका वजन और रग भिन्न-भिन्न होता है। इनसे खेलते हुए लडको को तौल का ज्ञान होता है। तुलना करने की शक्ति विकसित होती है।

(७) दो बाक्स जिनमें से प्रत्येक में ६४ रग की रगीन टिकियाँ रहती है—आठ रग और प्रत्येक रग की आठ शेड की। इनसे खेलने से बालक मे रगो के अन्तर को ग्रहण करने की शक्ति आ जाती है और रग-सयोजन के सिद्धान्त को समझने की भूमिका भी बन जाती है।

(८) लकडी के ६ वर्गाकार फ्रेम, जिनमें ज्यामिति की विभिन्न आकृतियाँ फिट रहती हैं। उदाहरणार्थ एक मे वृत्त कटे रहते है, जिनका व्यास क्रमश कम होता जाता है। इसी प्रकार दूसरे में वर्ग, तीसरे मे आयत, चौथे मे त्रिभुज, पचभुज आदि रहते है, जिनकी भुजाओं अथवा कोणों मे अन्तर रहता है। इन आकृतियों को निकालकर उन छेदों मे फिट करना होता है।

(९) कार्ड-बोर्ड के अथवा टिन के डिब्बे जिनमें विभिन्न पदार्थ भरे रहते हैं—विभिन्न ध्वनियों की घण्टियाँ, सीटियाँ और बाजे। इनसे कानों की ट्रेनिग होती है।

(१०) इसी प्रकार स्वाद की ट्रेनिंग के लिए नमक चीनी आदि की शीशियाँ बोतलें रहती हैं।

(२) लिखना पढ़ना—

इस पद्धति में चार वर्ष के बच्चों के लिए लिखना-पढ़ना और गणित सिखाने का विधान भी है। पढ़ने के पहले लिखना सिखाया जाता है। बच्चे पहले ज्यामितिक आकृतियों के भीतरी भाग रंगीन पेंसिल से भरा करते हैं और रेगमाल पर के बने हुए अक्षरों पर उँगलियाँ फेरकर अक्षरों की बनावट से परिचित होते हैं। जब बच्चा उँगलियाँ फेरता है तो अध्यापिका अक्षरों का उच्चारण करती है। बार-बार उँगलियाँ फेरने से बच्चा अक्षरों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है और उच्चारण को सुनकर अनुकरण करके उनका उच्चारण करता है। इस प्रकार अभ्यास करने से मांस-पेशियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। फिर तख्ती अथवा कागज पर विभिन्न आकृतियों और अक्षरों की स्थूल रेखाओं पर खड़िया स्याही अथवा रंग भरकर कलम पकड़ने का अभ्यास करके लिखना सिखाते हैं। लिखना सीखने के दो तीन हफ्ता के बाद पढ़ना सिखाया जाता है। बच्चे जो पढ़ें समझकर पढ़ें इस बात पर जोर दिया जाता है। अध्यापिका परिचित वस्तुओं का नाम श्यामपट्ट पर अथवा तख्ती पर लिख देती है और बच्चों से उन वस्तुओं को लाने के लिए कहती है और उन नामों को पढ़वाया जाता है। परिचित वस्तुओं पर लेबुल लगाकर उन्हें भी पढ़वाया जाता है। शब्दों से परिचित हो जाने पर परिचित वस्तुओं के विषय में ही पूरे शब्द लिखकर पढ़वाये जाते हैं। लिखना पढ़ना सीखने के बाद ही बच्चों को गणित की शिक्षा दी जाती है। गणित भी खेल के द्वारा गोलियों तीलियों और डण्डों की सहायता से सिखलाया जाता है।

मान्टेसरी पद्धति की समीक्षा

मान्टेसरी पद्धति से बालकों को शिक्षा मनोरंजक और सुखद हो जाता है। खेल और क्रिया के द्वारा अर्जित ज्ञान सहज ग्राह्य और टिकाऊ होता है। विधि निषेधों से मुक्त बालक प्रकृति के नियमों के अनुसार अपना विकास करते हैं। अनुशासन यहाँ अपने से उत्पन्न होता है ऊपर से लादा नहीं जाता। मान्टेसरी स्कूल का वातावरण एक अच्छे घर का स्वस्थ वातावरण है जहाँपर बच्चे प्रसन्नतापूर्वक शिक्षोपकरणों से खेलते हैं और खेल-खेल में ही हस्तक्षेप न करनेवाले किन्तु चौकन्ने अध्यापक की संरक्षता में ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे अपनी भूलों का स्वयं सुधार करते हैं। अध्यापिका तो तभी सहायता देती है जब सहायता देना अनिवार्य हो जाता है।

दोष—परन्तु मान्टेसरी-पद्धति में दोष भी हैं। अनेक विद्वान मान्टेसरी पद्धति

के शिक्षोपकरणों को बहुत लाभप्रद नहीं समझते। उनका कहना है कि स्वस्थ मस्तिष्क के बालकों के लिए उनका उतना मूल्य नहीं है। इन उपकरणों और खेलों से शिक्षा कुछ मनोरंजक भले ही हो जाय परन्तु उसमें सीखने की प्रगति में गति नहीं आती।

एक आलोचना यह भी की जाती है कि मॉन्टेसरी ने अलग-अलग इन्द्रियों के विकास के लिए अलग-अलग खेल निकाले हैं। अत: इन खेलों से बच्चों की सारी इन्द्रियों का समन्वित विकास नहीं हो पाता। आज का मनोविज्ञान कहता है कि विभिन्न इन्द्रियों का नियंत्रण करनेवाला मन एक इकाई है; अत: जिन खेलों और क्रियाओं से विभिन्न इन्द्रियों का समन्वित विकास हो सके शिक्षा की दृष्टि से वही खेल महत्वपूर्ण है।

कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि ये खेल मानसिक विकास के लिए ही हैं। अत: इन खेलों में बालकों को वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं मिलती और उनके द्वारा सारी कार्य-पद्धति में एकरूपता आ जाती है जो मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों और 'खेल-द्वारा शिक्षा' के सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

मॉन्टेसरी-पद्धति में कल्पना-प्रधान खेलों और कहानियों के लिए कोई स्थान नहीं है। अत: इस पद्धति में बालक के संवेग, चरित्र आदि का विकास और संस्कार नहीं हो पाता। मॉन्टेसरी ने सारा जोर केवल बौद्धिक और शारीरिक विकास पर ही दिया है जो मनोवैज्ञानिक नहीं है।

परन्तु इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष है सामूहिक खेलों और क्रियाओं का अभाव। इसी अभाव के कारण मॉन्टेसरी-पद्धति से सीखे हुए बच्चों में सामुदायिक भावना का विकास नहीं हो पाता। इस पद्धति में जो व्यक्तित्व विकसित होता है वह व्यक्तिवादी व्यक्तित्व है, सामुदायिक व्यक्तित्व नहीं। अत: जो देश समाजवादी राजनीति और अर्थनीति में विश्वास रखते हैं उन देशों के लिए यह पद्धति उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

इतना ही बड़ा दोष है इस पद्धति का महँगा होना। किसी भी गरीब देश के लिए अच्छे मॉन्टेसरी स्कूल चलाना सम्भव नहीं, विशेषकर एक समाजवादी देश के लिए, जो देश के सभी बच्चों के लिए समान शिक्षा की व्यवस्था करना चाहता है।

यही कारण है कि जब भारतवर्ष में पूर्व प्राइमरी शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया तो उसे मॉन्टेसरी-पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता मालूम हुई और इस देश की बालवाड़ी, बालकन-जी-बारी, पूर्व-बुनियादी नाम की शिशु-शिक्षण-पद्धतियाँ इसी विचारधारा का परिणाम हैं।

ये सभी पद्धतियाँ बालकों के खेल और क्रियाओं-द्वारा उनकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को शिक्षित करने का प्रयास करती हैं परन्तु उनके खेल

ग्रौर वातावरण देशी हैं और उनकी क्रियाग्रो मे ग्रधिक सामुदायिकता है तथा उनके उपकरण ग्रधिक सस्ते और देश के वातावरण के ग्रधिक ग्रनुकूल हैं।

पूर्व बुनियादी शिक्षा

गांधी जी बुनियादी शिक्षा को जन्म से मृत्यु पर्यन्त की शिक्षा मानते थे। उनका मत था कि जीवन के जिन आदर्शो को प्राप्त करने की जिन पद्धतियो पर बेसिक शिक्षा आधारित है उनकी शिक्षा का प्रबन्ध शिशु-कक्षाग्रो मे ही होना चाहिए। ग्रत उनके जीवन काल मे ही बुनियादी शिक्षा पर प्रयोग आरम्भ हो गये थे और आज अनेक प्रदेशो में अनेक स्थानो पर पूर्व बेसिक बुनियादी शिक्षास्तर की शिक्षा की तैयारी के रूप मे सचालित हो रहा है।

इन पूर्व बुनियादी स्कूलो मे पाठ्यक्रम को उत्पादक उद्योगो और बालक के सामुदायिक जीवन के रचनात्मक और अनुकरणात्मक पहलुओ के इर्द गिर्द सगठित किया जाता है। इन सस्थाग्रो के खेल शिशु के पास पडोस के उद्योगो और उत्पादन पद्धतियो के अनुकरणात्मक रूप हैं। हम जानते हैं कि इस अवस्था के बच्चे यदि स्कूल न भी जाय तो भी वे माँ बाप के अथवा पडोसी के काम धन्धो की नकल करते हैं। लडका मकान बनाता है घरौंदे बनाता है गाडी मोटर चलाता है। लडकियां रसोई बनाती हैं गुड्डे गुडिया को खिलाती पिलाती तथा सुलाती हैं ब्याह रचाती हैं। इस प्रकार के अनुकरणात्मक खेलो की एक लम्बी सूची दी जा सकती है। नि सन्देह ये खेल माण्टेसरी के शिक्षोपकरणो से भिन्न हैं।

इन पूर्व बुनियादी स्कूलो का वातावरण गैर बुनियादी कक्षाग्रो (माण्टेसरी अथवा किण्डर गार्टन) के वातावरण से भिन्न है। पूर्व-बुनियादी स्कूलो का वातावरण भारतीय वातावरण के अधिक अनुरूप है। इन कक्षाग्रो मे छोटे छोटे हल कुदाल और फावडा तथा चरखो तकलियो से खेलते हुए बालक और छोटी छोटी कडाही कलछुल लेकर पूरी सजीदगी के साथ रसोई बनाने के काम मे लगी हुई बालिकाए और एक साथ बैठकर नाश्ता करने के बाद अपनी छोटी छोटी कटोरियो तश्तरियो को साफ करते हुए शिशु सहकारिता सामुदायिकता उत्पादकता और स्वावलम्बन का जो वातावरण उपस्थित करते है वह नि सन्देह परम्परागत माण्टेसरी स्कूलो मे नही मिलता।

इन स्कूलो मे भी खेल और अनुकरण द्वारा आत्म प्रकाशन पर ही बल दिया जाता है। परन्तु यहाँ खेल के उपकरण देशी और सस्ते होते हैं और यहा का वातावरण बालको के वास्तविक जीवन के समान होता है। यहाँ कोई विलगाव उन्हे नजर नही आता। इस वातावरण मे श्रमनिष्ठा और सहकारिता के जिन गुणो का बीजारोपण बालक में होता है वे उसे समाजवादी समाज का नागरिक बनाने मे

सहायक होते हैं। इन स्कूलों में व्यक्तिगत ही नहीं सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होता है।

पूर्व बुनियादी स्कूलों को चलाने के लिए आम तौर पर जिन क्रियाओं का व्यवहार हो रहा है उनकी सूची नीचे दी जा रही है—

(१) सफाई —

शरीर के भिन्न अंगों की सफाई, कमरों की सफाई, अपने आसन, आसन और चटाइयां बिछाना, खूंटियों पर यथास्थान कपड़े टांगना, यथास्थान जूते चप्पल रखना। बर्तनों की सफाई, मटकों की सफाई, पीने के लिए जल साफ करना, छानना, पानी ढककर रखना, बगीचे की सफाई, गिरे हुए पत्ते चुनना, टूटे पत्तों को खादे हुए गड्ढे में डालना, घास-पतवार निकालना।

(२) नित्यप्रति की क्रियाएँ —

कपड़े पहनना, कपड़े की तह करना, बटन लगाना, हाफ पैंट की पेटी बांधना, जूते के फीते खोलना तथा बांधना, कपड़ों को यथास्थान टांगना।

तरकारी और फल छीलना और काटना, चाकू और हँसिये का ठीक प्रयोग करना, आग जलाना आदि।

खेलना—खेलना-कूदना, लट्टू नचाना, रस्सी कूदना, गेंद खेलना, झूला झूलना, स्थानीय वातावरण के खेल-कूद—जैसे आँख मिचौनी, कबड्डी आदि खेलना।

गाना—नाचना, सामूहिक गीत, प्रार्थना, भजन, कीर्तन—स्थानीय बाजों का प्रयोग, लोकनृत्य की व्यवस्था करना।

(३) स्वतंत्र भाव प्रकाशन-सम्बन्धी क्रियाएँ —

तख्ती अथवा कागज पर खड़िया, खजूर की कूचियों और तूलिकाओं-द्वारा स्वतंत्र भाव प्रकाशन और डिजाइन बनाना, कागज काटना और कागज के काम, कागज की बनाई, रंगीन कागजों से कागज की चिड़ियां, जंजीर, नाव आदि बनाना, रद्द बनाना, कटी हुई आकृतियाँ और चित्र चिपकाना, रंगीन गोलियां, पत्थर के टुकड़े, रंग हुए बुरादे और गोबर आदि से अल्पना के लिए विभिन्न डिजाइन बनाना।

(४) सामुदायिक खेल और क्रियाएँ —

छोटे छोटे हल, कुदाली और फावड़ा, खुरपियां, बागवानी सम्बन्धी उपकरणों से खेलना।

छोटे बरतनों-चूल्हे तथा कड़ाही, करछुल, चम्मच आदि से रसोई का खेल खेलना। अन्न सँभालकर रखने और भोजन परसने का काल्पनिक अनुकरणात्मक खेल, गुड्डे-गुड़ियों के शादी-ब्याह सम्बन्धी खेल खेलना, इस प्रसंग

में निमंत्रण देना, शिष्ट ढंग से अतिथियों या अभिवादन आदि शिष्टाचार को सीखना, कमरा को फूलदान आदि से सजाना।

छोटे लकड़ी के टुकड़ों, मिट्टी की टिकियों, तख्तियों आदि की सहायता से मकान बनाने के खेल खेलना। स्कूल अथवा मुहल्ले की सामूहिक सफाई में बड़ों की सहायता करना, त्योहार मनाना, गाँव अथवा शहर की समाज-सेवा की संस्थाओं—जैसे, डाकखाना, औषधालय आदि का तथा देहात अथवा नगर के उद्योग-धन्धों का निरीक्षण करना।

(५) पढ़ना-लिखना —

मॉन्टेसरी-पद्धति के ही अनुसार देशी और सस्ते शिक्षोपकरण की सहायता से।

•

बालमन्दिरों की समस्या

शिशु शिक्षा के उद्देश्य शिक्षाक्रम शिक्षक प्रशिक्षण
स्थान समय दिनचर्या व्यवस्था।

समाजवादी ढांचे के नये समाज की रचना में लोकतंत्र का बहुत बड़ा महत्व है। लोकतंत्र नवसमाज निर्माण की हमारी पद्धति है इसलिए लोकतंत्र की सफलता के लिए शिशु से वृद्ध तक की शिक्षा अनिवार्य होनी है बल्कि शिक्षा का आरम्भ भ्रूण से ही हो तो ज्यादा अच्छा है। आज की शिक्षा योजना में दुर्भाग्यवश समग्र शिक्षा की दृष्टि नहीं रहती है। हमारी शिक्षा-योजनाओं में छः से ग्यारह ग्यारह से चौदह चौदह से अठारह अठारह से चौबीस तक की और छिटपुट ढंग से औद्योगिक शिक्षा और वयस्क शिक्षा की योजनाएं बनती हैं। इन शिक्षा-योजनाओं की कैसी स्थिति है इसकी चर्चा करना इस लेख का लक्ष्य नहीं है बल्कि शिशुओं की उस अवधि की शिक्षा-योजना के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करना इसका लक्ष्य है।

शिशु शिक्षा अवधि हम कामचलाऊ ढंग पर छः साल तक मानते हैं।

इस अवस्था के शिशुओं के लिए अपने देश में शासन के सामने कोई औपचारिक योजना नहीं है। अराजकीय कल्याणकारी संस्थाएं छिटपुट ढंग से शिशु शिक्षा का काम जहां-तहां कर रही हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में केन्द्र सरकार ने प्रत्येक राज्य में शिशु शिक्षा संचालन के लिए राज्यों को सहायता दी थी। वह योजना तृतीय पंचवर्षीय योजना-काल में जैसे तैसे चली पर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में तो ऐसा लगता है कि वह काम बन्द ही हो जायगा।

द्वारिका सिंह
नि० बिहार स्टेट टेक्स्टबुक
पब्लिशिंग कारपोरेशन
लि० पटना १

शिशु शिक्षा की योजना चलानेवाली अपने देश में जो संस्थाएं हैं उनमें से अधिकांश नगरों में अवस्थित हैं। उनके विभिन्न नाम हैं जैसे—शिशु मन्दिर बालमन्दिर बाल विहार नर्सरी स्कूल चिल्ड्रन कॉर्नर चिल्ड्रन होम शिशु गृह शिशु

शाला, पूर्व शाला, पूर्व बुनियादी शाला, प्री बेसिक स्कूल, नर्सरी स्कूल, मॉंटेसरी स्कूल, किन्डरगार्टन, इत्यादि, इत्यादि। शहरों में तथाकथित शिशु-संस्थाएँ मात्र व्यावसायिक हैं जिनमें मनमाने ढंग से फीस वसूल की जाती है। ऐसी संस्थाएँ स्वीकृत नहीं हैं और ये मानसी ढंग पर चलती हैं। सब का शिक्षा-क्रम अलग-अलग है। शिक्षाक्रम के माध्यम भी अलग-अलग हैं। इनमें अधिकांश का माध्यम अंग्रेजी ही है।

ऐसी संस्थाएँ देश में एक बड़ी समस्या बन गयी हैं। ऐसी संस्थाओं की उत्तरोत्तर स्थापना के कई कारण हैं, उनमें मुख्य कारण अच्छे प्राथमिक स्कूलों का अभाव ही है। १९५१ तक स्कूलों में जो औपचारिक शिक्षा दी जाती थी, उसमें एक शिशु वर्ग भी रहता था। शिशु वर्ग के बाद के वर्ग की गणना एक से होती थी और प्राथमिक शिक्षा सात साल की होती थी। शिशु वर्ग को लेकर यह शिक्षा अवधि आठ साल की होती थी। ऐसे शिशुवर्गों में उठने-बैठने, अभिवादन करने, भाषा शिक्षण, गणित और प्रकृति पर्यवेक्षण इत्यादि पर ज्यादा जोर रहता था। इसका फल यह होता था कि प्राथमिक शिक्षा की नींवें अधिक दृढ़ सी हो जाती थीं। १९५१ के बाद तो वह शिशु वर्ग भी हटा दिया गया, जिसका दुष्परिणाम प्राथमिक शिक्षा पर हुआ।

पहले यह कहा जा चुका है कि छः के पहले की शिक्षा के सम्बन्ध में शासन ध्यान नहीं दे रहा है और समाज बिलकुल उससे उदासीन है। इसका फल यह है कि सबारे पशुओं की तरह गली-कूचों में, खेत-खलिहानों में, यत्र-तत्र शिशु अरक्षित से दौड़ते फिरते हैं, आपस में गाली गलौज करते हैं, बुरी आदतों में फँसते हैं, स्वस्थ और सुघड़ आदतों के निर्माण से वंचित रहते हैं। या कहिए, मानव जीवन की मूल्यवान नींवें ही उन शिशुओं में गलत ढंग से पड़ती हैं। तीन से छः साल तक शिशुओं के बारे में पूरे मनोयोग और निष्ठा के साथ सोचना चाहिए। शासन और समाज को परस्पर मिलकर शिक्षा की इस मौलिक समस्या का समाधान करना चाहिए। विदेशों में इस अवधि की शिक्षा के बारे में बड़ी दिलचस्पी से लोग सोचते विचारते हैं और योजनाएँ कार्यान्वित करते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि तीन से छः साल की अवधि में शिक्षा देनेवाली संस्थाओं के विभिन्न नाम हैं, पर मैं यहाँ एक खास नाम ऐसी संस्था के लिए लेना चाहता हूँ। वह है बालमन्दिर। पाठक जो चाहें अपनी सुविधा के अनुसार नाम दे सकते हैं। *बालमन्दिर की स्कीम निम्नांकित सुझावों के आधार पर* तैयार की जा सकती है —

१ शिशु-शिक्षा के उद्देश्य—

(क) इसका मुख्य उद्देश्य शिशुओं में जीवन की नींवें डालना होगा।

(ख) इस अवधि में स्वस्थ जीवन-यापन यानी सन्तुलित भोजन, उठने-बैठने का ढग, साफ-सुथरा रहना, कपडे साफ-सुथरा रखना इत्यादि का अभ्यास डाला जायगा।

(ग) शिशुओं की इन्द्रियों का प्रशिक्षण होगा।

(घ) नागरिक जीवन के सरल बुनियादी तत्त्वों का शिशु-जीवन-द्वारा अभ्यास किया जायगा।

(च) साक्षरता का आरम्भ होगा (आकृति-अध्ययन-द्वारा)।

(छ) मनोरंजक सोद्देश्य क्रियाशीलनों का समावेश होगा।

२. शिक्षाक्रम—

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो शिशु-शिक्षाक्रम तैयार होगा, उसके मुख्य आधार ऊपर के उद्देश्य होंगे। शिक्षाक्रम के निर्माण में इस बात पर ध्यान रखा जायगा कि बच्चे पूरी निर्भीकता, स्वतन्त्रता और नियमितता के साथ उल्लासपूर्ण ढग से विभिन्न क्रियाशीलनों में दिलचस्पी लेते रहें।

३ शिक्षक-प्रशिक्षण—

अपने देश में शिशु-शिक्षा के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण का बहुत बड़ा अभाव है, इसलिए प्रारम्भ में शासन को इस काम में सहायता देनी चाहिए। यदि प्रत्येक राज्य में प्रारम्भ में एक भी प्रशिक्षण-केन्द्र हो, तो प्रयोग के लिए वह कामचलाऊ व्यवस्था होगी। उसके बाद तो प्रशिक्षण का काम प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय और प्रशिक्षण-विद्यालय सुगमतापूर्वक ले सकते हैं। शिशु-शिक्षा-सचालन के लिए जो शिक्षक होंगे उनका गहरा प्रशिक्षण होना चाहिए। आज जो ऐसे इने-गिने प्रशिक्षण-केन्द्र हैं उनका आयोजन बिलकुल पश्चिमी ढग से किया गया है, जिसका फल यह होता है कि गलत ढग से ऐसे प्रशिक्षित शिक्षक बालमन्दिरों को गलत रास्ते पर ले जाते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि बालमन्दिरों में अशिक्षिता प्रौढ महिलाएँ अच्छा काम कर सकती हैं। ऐसे प्रशिक्षण में शिशु-मनोविज्ञान, शिशुपालन, शिशु-चिकित्सा और शिशु-इन्द्रिय-प्रशिक्षण, सही चरित्र-निर्माण इत्यादि प्रमुख केन्द्र-बिन्दु हैं।

४. स्थान—

पश्चिम की नकल कर हमलोग किसी भी व्यवस्था में कीमती और टिकाऊ भवनों का प्रश्न उठाकर काम होने देना नहीं चाहते। आज बहुत-सी शैक्षिक संस्थाएँ हैं, जिनके भवनों का उपयोग प्राय तीन से पाँच घण्टे तक होता है। उन्नीस से इक्कीस घण्टे तक का उनका कोई उपयोग नहीं है। स्वतन्त्र भारत में विरासत में मिली यह विलासिता की प्रवृत्ति आगे नहीं ढोयी जा सकती। इसलिए शैक्षिक संस्थाओं के भवनों को बहुधन्धी बनाना होगा। इसके लिए सुझाव है कि प्राथमिक शाला, माध्यमिक शाला, पचायत-

घर सहयोग समिति घर पुस्तकालय वाचनालय एक प्रशस्त घना वृक्ष एक फुलवारी इत्यादि स्थान पर बाल मंदिर का काम चल सकता है।

५ समय—

यह अनुभव प्रयोग है कि बालमंदिर प्रातःकाल छः से आठ बजे तक काम करे तो अधिक अच्छा हो। सप्ताह में दो या तीन दिन संस्था में शिशु इकट्ठे हो सकते हैं।

६ दिनचर्या—

(१) प्रातः जागरण का काम —माता पिता द्वारा बालमंदिर में शिशुओं को पहुंचाना या शिक्षकों के साथ शिशुओं का बालमंदिर में जाना

(२) पाखानाघर और पेशाबघर का उपयोग

(३) मह हाथ धोना

(४) बालमंदिर की सफाई

(५) सामूहिक प्रार्थना

(६) सामूहिक जलपान

(७) मनोरंजक खेल

(८) इन्द्रिय प्रशिक्षण

(९) चित्र-परिचय

(१०) घरेलू वार्ता

(११) विसर्जन

दिनचर्या के उक्त क्रियाशील सुझाव मात्र हैं। स्थानीय आवश्यकता के अनुसार इसे घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

७—व्यवस्था

शासन को निम्नलिखित चीजों का दायित्व लेना चाहिए —

(क) शिक्षक प्रशिक्षण

(ख) साहित्य निर्माण

(ग) निरीक्षण और मार्गदर्शन

(घ) आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय स्तर पर अनुदान का प्रबंध

स्थानीय समुदाय को स्तर चाहे पंचायत का हो या प्रखण्ड का हो संचालन का पूर्ण दायित्व लेना चाहिए। बालमंदिर के साथ मातृ सेवा सदन भी होना चाहिए। पश्चिमी मुल्कों की तरह यह संस्था औपचारिक नहीं होगी, बालमंदिर में बल्कि अनौपचारिक रूप से माताओं का भी प्रशिक्षण चलेगा। माता पिता पूरी दिलचस्पी लेंगे। आयोजन इस प्रकार का होना चाहिए कि बालमंदिर समाज शिक्षण का अनौपचारिक सबल साधन बन जाय। ●

गाँव का बालमन्दिर

मॉं-बाप बनना काफी नहीं गाँव गाँव में बालमन्दिर—
उनके साधन खेल के साधन घरलू सामान उत्पादन के
साधन अन्य फुटकल साधन बालमन्दिर मुक्ति का स्थान,
बालमन्दिर कहाँ हो शिक्षिका माता सफल बालमन्दिर।

प्राय जीवन के पहले तीन वर्षों में ही मनुष्य की शारीरिक सामाजिक और सांस्कृतिक बुनियाद पड़ जाती है इसलिए यह देखना आवश्यक है कि शुरू में ही उसका चारित्रिक और बौद्धिक विकास गलत दिशा में न चला जाय। आज मानव-जीवन के बारे में नित्य नये कल्पनाएं की जा रही है। विकास की योजना को नवीन कल्पना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न हो रहा है। मनुष्य एक व्यक्ति है और व्यक्ति के साथ ही सामाजिक इकाई है और सांस्कृतिक प्राणी है। जन्म से ही बच्चे की इन्द्रियाँ और दिमाग दोनों सक्रिय हो जाते हैं जिनके द्वारा वह तरह-तरह की क्रियाएँ सीखने लगता है तथा विचार और भाव ग्रहण करने लगता है। बच्चा सीखेगा ही चाहे उसे सिखाया जाय या नहीं। यह बच्चे की ऐसी विशेषता है जिसे कोई छीन नहीं सकता। यदि सही नहीं सिखाया जायगा तो गलत सीखेगा लेकिन सीखेगा अवश्य। इसलिए अगर शिक्षण सुनियोजित हो तो सही सीखेगा अच्छा सीखेगा।

जितना ही छोटा बच्चा उतनी ही अधिक उसके शिक्षण की सम्भावना जितना छोटा बच्चा उतना ही कठिन और महत्त्वपूर्ण उसका शिक्षण। इस दिशा में अपने देश में उतना काम नहीं हो रहा है जितने की आवश्यकता है।

विद्या
कस्तूरबा श्रम निकेतन
बसना इलाहाबाद

आज अपने बच्चे उपेक्षित भाव से बरते दिये जाते हैं जिसका नतीजा यह हो रहा है कि बच्चा जिस प्रकृति रूप में पैदा हुआ है उसकी वह प्रकृति संस्कृति की ओर न जाकर विकृति की ओर चली जाती है। बच्चा जन्म से जो मानसिक और शारीरिक सम्भावनाएँ लेकर

पैदा होता है, उनको बदलने की शक्ति शिक्षण में नहीं है, लेकिन उन्हें अधिक से अधिक विकसित करने की पूरी जिम्मेदारी और शक्ति शिक्षण में है।

जन्म से ही शिक्षण शुरू कर दिया जाय तो बच्चा कितना अधिक सीख सकता है इसकी कल्पना भी कठिन है। आज के जीवन की समस्याओं की वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य के शिक्षण की पूंजी बढ़ाना आवश्यक है क्योंकि सीमित और संकुचित शिक्षण से बढ़ती और बदलती हुई समस्याओं का मुकाबिला करना असम्भव है। इसलिए बच्चे को जन्म के बाद जल्द-से-जल्द शिक्षण की परिधि में लाना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि माँ के गर्भ से ही शैक्षणिक प्रभाव डाले जायँ।

माँ-बाप बनना काफी नहीं

जन्म के बाद तीन से छः साल तक की उम्र शिक्षण की दृष्टि से सबसे अधिक महत्व की है क्योंकि इन्हीं वर्षों में बच्चों के भावी जीवन का पूरा स्वरूप स्थिर हो जाता है। आगे के वर्षों में उस स्वरूप और दिशा के अनुसार ही बच्चे का विकास होता है। उसके बचपन की छाप अमिट होती है, इसलिए शिक्षण में सबसे अधिक महत्व इन वर्षों का है।

माँ बच्चे की प्रथम और श्रेष्ठ गुरु मानी जाती है लेकिन हर माता गुरु नहीं हो सकती। अपने देश में आज की परिस्थिति में यह सम्भावना अत्यन्त सीमित है। पारिवारिक जीवन की परिसीमाएँ और अपूर्णताएँ बच्चे के शिक्षण और विकास के लिए प्रतिकूल वातावरण भी पैदा करती रहती हैं। आज तो अधिकांश परिवार अनेक कारणों से बच्चों के लिए कुशिक्षण के केन्द्र बने हुए हैं।

अति प्रेम, अज्ञान या शासक मनोवृत्ति के होने के कारण माँ-बाप बच्चों को अपने ही साँचे में ढालना चाहते हैं। उनको इस बात का ध्यान नहीं रहता कि बच्चे का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है और विकास की दिशा उनकी मर्जी से भिन्न भी हो सकती है। मोह के कारण बच्चे के प्रति उनके हृदय में यह विवेक नहीं रह जाता और अकसर वे सही रास्ते पर ले जाने की कोशिश में दमन-नीति का सहारा लेना शुरू कर देते हैं।

गाँव-गाँव में बालमन्दिर—उनके साधन

परिवार बच्चे की पहली अनिवार्य पाठशाला तो है फिर भी विशेष शिक्षण के लिए अलग व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए गाँव-गाँव में बाल-मन्दिर होना चाहिए तभी परिवार के भीतर नव-निर्माण की हवा पहुँच सकेगी। बाल-मन्दिर दिन के चार-पाँच घंटों के लिए बच्चों का घर है। इसलिए घर और शाला में ज्यादा से ज्यादा एकरूपता होनी चाहिए। अगर बालमन्दिर घर से बहुत भिन्न

हुआ तो यह भिन्नता भी बच्चे के मन में असमाधान का कारण बन सकती है। इसलिए बालमन्दिर के साधनों में यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि साधन अधिक से अधिक स्थानीय हों। यों तो कुछ विशेष जानकारी देने के लिए बाहरी साधन भी रखना अनिवार्य होता है।

बालमन्दिर में बच्चों के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के लिए ऐसे साधनों की आवश्यकता है जिसके माध्यम से बच्चों का विकास सहज रूप से होता रहे। इन साधनों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) खेल के साधन, (२) घरेलू सामान, जैसे बर्तन, चूल्हा, चक्की आदि, (३) उत्पादन के साधन, जैसे चरखा तथा खेती के औजार, (४) अन्य फुटकल साधन तथा जीवन-व्यवहार की वस्तुएँ, जिन्हें इधर-उधर करके बच्चा इन्द्रियों के माध्यम से कुछ सीखता रहता है।

खेल के साधन

खेल के जो साधन बालमन्दिर के क्रीडांगन में हों। उनमें मुख्यरूप से दो चीजें अवश्य होनी चाहिएँ—एक, झूलने की, दो, चढ़ने की। ऐसे साधनों से बच्चों की इन्द्रियों की अच्छी ट्रेनिंग होती है और बच्चे के शरीर का खिंचाव होता रहता है, साथ ही बच्चे को अपने साहस और अपनी शारीरिक शक्ति को आजमाने का अवसर मिलता रहता है।

बच्चे को क्रिया प्रिय होती है इसलिए साधन ऐसे हों कि वे उसे हिलाते, डुलाते और दौड़ाते रहें। क्रिया के बाद बच्चे को रंग और ध्वनि आकर्षित करती है। बजाने की चीजों में से जो मधुर ध्वनि निकलती है वह बच्चे के अन्दर कोमल भावनाएँ जागृत करती हैं, उसे कलात्मक बनाती रहती हैं। इसलिए तरह-तरह के छोटे बाजे, जैसे ढोल, बाँसुरी, सीटी, मँजीरा, खँजरी आदि सुलभ सामान रखना चाहिए।

घरेलू सामान

घरेलू सामानों में भोजन, वस्त्र और मकान बनाने की तरह-तरह की चीजें तथा काम में आनेवाले अन्य औजार आदि अवश्य होने चाहिएँ, ताकि बच्चा खेलते-खेलते इन कामों को करना सीखे।

उत्पादन के साधन

बच्चे कुछ उत्पादन कर सकें या न कर सकें लेकिन उनके सामने उत्पादन की सभी प्रक्रियाएँ और उत्पादन की सभी सामान खेल के रूप में प्रस्तुत किये जाने चाहिएँ। इसके लिए बालमन्दिर के आँगन में छोटी-छोटी क्यारियाँ बनायी जायँ। उनमें अनाज, साग, सब्जी, फूल आदि उगाये जायँ। इसी उम्र से बच्चे

के दिमाग मे यह बात आनी चाहिए कि उपभोग का सम्बन्ध उत्पादन से है और उत्पादन का सम्बन्ध मनुष्य के श्रम से और धरती से है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उत्पादन के साथ जुड़े हुए ये खेल बच्चे के अन्दर उत्पादन का मानस तैयार करेंगे। जो देश बच्चे के मानस मे नये समाज की नयी बुनियादें डालना चाहते हैं वे बालशिक्षण में उत्पादन के साधना को सबसे ऊँचा स्थान देते हैं। इस ने रास्ता दिखाया है। गरीब भारत का उस रास्ते पर चलना चाहिए। कम से कम अब तो देश अपने बच्चे को मुहताज रईस बनने से रोके!

अन्य फुटकाल साधन

रंग तथा आकार का ज्ञान करानेवाली वस्तुओं का संग्रह किया जाय। लकड़ी के टुकडे मिट्टी, कोयला, ईंट, फलों और सब्जियों के बीज, सीप, घोंघे, चिड़िया के पर तथा अन्य चीजें जैसे रद्दी कागज, माचिस की खाली डिबिया, टटे चूड़ियाँ आदि चीजों का संग्रह करके इनके द्वारा बच्चों से खेलने की चीजें बनवाना चित्र बनाना, सजावट करना आदि सिखाया जाय। इस तरह संग्रह करने तथा रद्दी चीजों में से अपने काम की चीजें बनाने से बच्चा एक ही वस्तु के कई उपयोग सीखता है। ऐसा करने से चीजों को तोड़-फोड़ कर फेंकने की आदत छूट जाती है। वह सहज ही सोचने लगता है कि इन वस्तुओं का उपयोग हो सकता है। इस तरह बच्चा इधर-उधर फेंकी पड़ी वस्तुओं को अपनी जगह प्रतिष्ठित करना तथा कूड़े-करकट को सम्पत्ति में परिणत करना सीखता है। ऐसी अन्य वस्तुएँ जो बच्चे के शिक्षण, संस्कार, परिष्कार या वातावरण परिचय मे सहायक हों उन्हें बालमन्दिर मे अवश्य रखना चाहिए।

बच्चा चित्र बनाता है तरह-तरह की आकृतियाँ बनाता है, हाथ से अन्य कई काम करता है। इनमें उसकी उँगलियों पर जोर पड़ता है और उँगलियाँ सध जाती हैं। जैसे वह इन कार्यों को करता है उसी तरह लिख भी सकता है। बालमन्दिर म अन्तिम चरण म पहुँचकर अक्षर ज्ञान कराया जा सकता है। यदि बच्चे में जिज्ञासा जग गयी हो और उसकी बुद्धि आसानी से ग्रहण कर सके तो अक्षर ज्ञान कराने मे कोई शैक्षणिक दोष नहीं है। आखिर बच्चा तरह तरह की आकृतियाँ बनाता है बोलता है तो अक्षर लिखना और पढ़ना ही निषिद्ध क्यों माना जाना चाहिए?

बच्चा अपने खेलों द्वारा ही अपने भावी जीवन की तैयारी करता है। जो कुछ दूसरों को करता देखता है उसे खुद करने लगता है। खेल के द्वारा बच्चा जीवनोपयोगी, समाजोपयोगी, व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि करता है। खेल से बच्चे का अनुभव बढ़ता है उसके अवयव सुदृढ़ होते हैं, शरीर सुगठित होता है। खेल द्वारा प्रकृति बच्चे से भावी जीवन की तैयारी कराती है। जिस तरह बच्चा

खाये बिना नहीं रह सकता उसी तरह खेले बिना भी नहीं रह सकता। जिस बच्चे को जितना ही अधिक खेलने का अवसर मिलता है वह उतना ही अपने जीवन को सफल और समाजोपयोगी बना सकता है। खेल के द्वारा बच्चा अनुशासन तथा सामाजिक नियमों का पालन करना सीखता है, समाज में रहना सीखता है। वास्तव में खेल बच्चे के लिए जीवन का अभ्यास है।
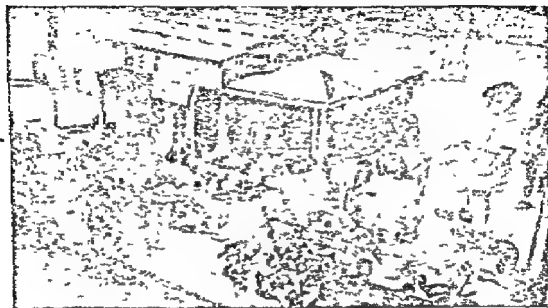
गुडिया-घर

अच्छे संस्कारों से बच्चे का शिक्षण शुरू होता है। इसलिए हर सम्भव उपाय होना चाहिए जिससे बच्चा जल्दी अच्छे संस्कार ग्रहण कर ले। जल्दी का अर्थ यह नहीं है कि बच्चे से कह-सुनकर या डाँटकर या भय दिखाकर काम कराने की कोशिश की जाय। बच्चा कहने से नहीं सीखता, वह प्रत्यक्ष रूप से दूसरों को देखकर और अप्रत्यक्ष रूप से वातावरण से सीखता है। इस तरह परिवार के बाद शिक्षिका के अपने संस्कार और बालमन्दिर का सामान्य वातावरण, ये दो शिक्षण के माध्यम हैं।

बालमन्दिर मुक्ति का साधन

नियंत्रित स्वतंत्रता, जिसमें बच्चों को स्वतः डोलने की छूट हो, सुव्यवस्था, शान्ति, निर्भयता, ये चीजें बच्चों को बालमन्दिर में मिलनी चाहिएँ। इनकी सुगन्ध यहाँ की हवा में होनी चाहिए। सफाई, सुन्दर प्रकृति, सुरम्य स्थान, आकर्षक रंगों की अधिकता और संगीत की बहुलता हो। बालमन्दिर में स्वतः

त्रता का अर्थ यह है कि बच्चे को मन-पसन्द प्रवृत्ति का चुनाव और उसे करने का मौका मिले। बच्चे को खुद सोचने तथा अपनी समस्याएँ हल करने का अवसर मिले। शिक्षक अपने विचार बच्चे पर न लादे। बच्चे को बिना रोक-टोक काम करने का अवसर मिले और मांगने पर सहायता मिले। बच्चों को किसी काम के करने या न करने के लिए मजबूर न किया जाय, जबतक कि उससे तत्काल कोई गम्भीर अहित न होता हो। बच्चा स्वावलम्बी तथा स्वाश्रयी बन सके, ऐसा अनुकूल वातावरण होना चाहिए।

स्वेच्छा से सीखी हुई चीज स्थायी होती है, दबाव से सीखी हुई कभी स्थायी नहीं होती। स्वतन्त्र वातावरण में ही शिक्षक बच्चे का सहायक हो सकता है और स्वतन्त्र-वातावरण में ही बच्चे की प्रकृतिदत्त शक्तियों और वृत्तियों का समुचित विकास होता है। पाबन्दियों और बन्धनों में जकड़ा हुआ बच्चा विकास नहीं कर पाता।

स्वतन्त्रता मिलने से बच्चा दूसरे बच्चों के अधिकार और भावनाओं का खयाल रखना सीखता है। नियमों का पालन करना, अपनी जिम्मेवारी निभाना, अपनी इन्द्रियों पर, अपने भावों पर और बुद्धि पर काबू रखना सीखता है। पर हर चीज की मर्यादा होती है, इसलिए स्वतन्त्रता की मर्यादा को समझना आवश्यक है। शिक्षक को हर क्षण यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा स्वतन्त्रता की ओर है या स्वच्छन्दता की ओर। स्वतन्त्रता और मनमानेपन में अन्तर है।

बालमन्दिर कहाँ हो

सबसे पहले यह ध्यान देने की बात है कि बालमन्दिर के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो गाँव के बीच में हो। यदि बीच में न हो तो गाँव के निकट हो ताकि बच्चे आसानी से आ सकें। दूर होने पर बच्चा के आने में कठिनाई होगी है। गाँव के निकट या बीच में होने से बच्चा की माताएँ या घरवाले भी सहज अपना काम करते-करते बच्चों को पहुँचा जाते हैं तथा समय-समय पर बच्चों की प्रवृत्तियों को देखते रहते हैं। दूर रहने पर चाहते हुए भी कोई देखने नहीं आ पाता। पास रहने पर बच्चा की माँ कभी कभी फुरसत निकालकर घण्टे-दो घण्टे के लिए आ सकती है। यह माँ और बच्चा दोनों के लिए आवश्यक है, इससे दोनों को एक तरह का सन्तोष मिलता है।

बालमन्दिर के लिए दो कमरे और एक 'हॉल' होना चाहिए। इन कमरों और हॉल का खर्चीला होना आवश्यक नहीं है, बल्कि साफ-सुथरा और हवा-दार होना आवश्यक है। कमरे ऐसे हों जिनमें सामान सुरक्षित रह सके। उनमें सामान के लिए आलमारी हो, रैक हो। कुछ रैक इतनी ही ऊँचाई पर हो कि बच्चा के हाथ आसानी से पहुँच सकें, ताकि वे समय-समय पर उनपर रखी

चीजों को उतार और रख सके। सामान के लिए दो कमरों का होना आवश्यक है, भले ही कमरे छोटे हों, किन्तु हॉल बड़ा होना चाहिए ताकि उसमें कोई प्रवृत्ति आसानी से करायी जा सके। हॉल रहने से बालमन्दिर का आकर्षण बढ़ेगा। यह हॉल गाँव के और भी कई काम आ सकता है। कमरे और हॉल से लगा हुआ आँगन या मैदान हो, जिसमें चहारदीवारी हो तो अच्छा। यह आँगन बच्चों के खेल-कूद तथा जाड़े के मौसम में उनके धूप लेने के लिए अच्छा रहेगा। इस आँगन में क्यारियाँ सुरक्षित रहेंगी। झूले आदि के साधनों की दृष्टि से मैदान का घिरा होना आवश्यक है।

मैदान ऐसा हो जिसमें बच्चे आसानी से खेल सकें। वृक्ष भी हों ताकि छाया रहे और उनकी डालों पर झूले डाले जा सकें। इस मैदान में एक कुआँ होना चाहिए। कुआँ पास रहने से बच्चा का हाथ मुँह धोने, स्नान आदि करने तथा क्यारियों में पानी देने में सुविधा होगी। तभी बच्चे सृजन का आनन्द ले सकते हैं।

इस तरह दो कमरे, हाल, कुआँ और हाता को मिलाकर आज की परिस्थिति में सम्पूर्ण बालमन्दिर हो जायगा। पानी रखने का स्थान पेशाबघर, टट्टीघर, कचरे के लिए गड्ढा, ये नितान्त आवश्यक हैं। इन्हें मकान बनाने से पहले ही बना लेना चाहिए। जबतक ये नहीं होंगे सफाई का संस्कार नहीं डाला जा सकेगा। और, अगर बच्चे ने सफाई न सीखी तो क्या सीखा ?

शिक्षिका+माता

बालमन्दिर के लिए गाँव के लोग जगह दे सकते हैं। अगर बना-बनाया घर नहीं होता तो बना भी देते हैं। अकसर गाँव में बालमन्दिर में शिक्षिका का काम करने के लिए कोई-न-कोई महिला मिल ही जाती है। लेकिन आपसी मनमुटाव और प्रतिद्वन्द्विता के कारण गाँव की बहनों को गाँव की ही शिक्षिका पसन्द नहीं आती। वे बराबर ही शिकायत करती रहती हैं कि गाँव की स्त्री गाँव के कुछ बच्चों के प्रति पक्षपात कुछ के प्रति दुराव रखती है या ठीक काम नहीं करती है, आदि। ऐसे वातावरण में शिक्षिका घबराकर काम छोड़कर बैठ जाती है। ऐसी हालत में अच्छा यही होता है कि एक गाँव की शिक्षिका अपने यहाँ नहीं, दूसरे गाँव में काम करे।

यह जरूरी नहीं है कि बालमन्दिर में स्त्री ही होनी चाहिए, कई पुरुष भी बहुत अच्छे बाल शिक्षक होते हैं। स्त्री या पुरुष कोई भी हो, उसके दिल में बच्चे के लिए प्रेम और आदर होना चाहिए और वृत्ति शिक्षक की होनी चाहिए। कोई भी नौकरी के लिए शिक्षक बन गया और हाथ में छड़ी लेकर बालमन्दिर में बैठ गया ऐसे काम नहीं चलेगा। चुने हुए, प्रशिक्षित व्यक्ति ही बालमन्दिर में रखे जाने चाहिएँ जो शिक्षिका+माता का रोल अदा कर सकें।

बच्चे के शिक्षण का अर्थ है माता पिता का, मुख्यरूप से माता का शिक्षण। परिवार और बालमन्दिर को मिलाकर बच्चे का स्कूल बनता है। इसलिए दोनो जगह बच्चे को जहाँतक हो सके एक ही तरह का वातावरण मिलना चाहिए। इसलिए बालमन्दिर की शिक्षिका के लिए जरूरी है कि बच्चे के साथ साथ घर म वह मा और बेटी पर भी ध्यान दे।

लोग कहेगे कि ऐसी शिक्षिका मिलेगी कहा। मिलेगी और बडी सख्या मे मिलेंगी, बशर्ते समाज बच्चो का महत्व समझे और उनके विकास म अपना विकास माने। तब माता, पिता और शिक्षिका, तीनो मिलकर सोचेंगे। सच मुच हमारे देश को विकास की दिशा मे अभी सीखना क्या नही है ? बुद्धिमानी इसमें है कि गँवाने के पहले सीख लिया जाय। कोई देखे तो कि हमारे बच्चो की क्या हालत है ? मीठा फल सब चाहते हैं। पर अच्छा पौदा लगाकर पानी देने को कितने तैयार है ?

सफल बालमन्दिर

कितना भी अच्छा भवन हो कितने भी विविध साधन हो, कितनी भी सुयोग्य सुशिक्षित शिक्षिका हो, बालमन्दिर की सफलता की कसौटी स्वय बच्चे हैं। सफलता की झलक बच्चो की आँखो में मिलनी चाहिए। अगर गिनानी हो तो तीन बातें गिनायी जा सकती है निर्भयता, अनाक्रमणशीलता, स्वच्छता। ये तीनो सस्कार हैं। बालमन्दिर का शिक्षण ही सस्कारो का शिक्षण है। निर्भयता का स्थान सबसे ऊपर है। जिसकी आँखो में भय न हो, आत्महीनता न हो वह बच्चा व्यक्ति है। उद्दण्डता निर्भयता नही है। निर्भयता मे आत्म-विश्वास है कुसस्कार नही। इसी तरह सामाजिकता की शुरुआत अनाक्रमण शीलता से होती है। ईर्ष्या द्वेष, लडाई झगडा, छीना झपटी ये सब कुसस्कार आज के समाज के लक्षण है। इन्हे बदलना होगा। ये बदलेंगे तब जब समाज बदलेगा लेकिन तबतक बालमन्दिर जितना कर सके उसे करना चाहिए। ऐसा नही है कि सहकार-वृत्ति बिलकुल पैदा ही न की जा सके। तीसरी चीज है स्वच्छता। सफाई का शौक गन्दगी से घृणा, सामान की परवाह चीजो को सुव्यवस्थित रखना आदि ऐसे गुण हैं जो छ साल के बच्चे में निश्चित रूप से पैदा किये जा सकते हैं, और पैदा किये जाने चाहिएँ। आज तो उनका शिक्षण में जैसे स्थान ही नहीं है।

सफल बालमन्दिर के शिक्षण का प्रश्न पूरे शिक्षण की नयी भूमिका के साथ जुडा हुआ है और नये शिक्षण का नये जीवन के साथ। नये शिक्षण का तूफान उठेगा तो नये जीवन की लहर आयगी। ●

खण्ड पाँच

किशोर-शिक्षण के कुछ पहलू

किशोरावस्था में समायोजन, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, मूल्य-परिवर्तन, अभिभावकों के साथ व्यवहार, व्यावसायिक रुचि का विकास, किशोर, बुनियादी विद्यालय और अध्यापक।

किशोरावस्था में समायोजन

समायोजन (एडजस्टमेंट) किशोरों की एक बुनियादी समस्या है। समायोजन जीवन का सूत्र है। शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य है—जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के मध्य समायोजन उत्पन्न करना। आज किशोरों से उत्पन्न छात्र असंतोष को गहन समस्या के रूप में लिया जा रहा है। पर कभी हमने यह भी सोचा है कि आखिर किशोर चाहता क्या है? उसकी बुनियादी आवश्यकता क्या है? क्या शिक्षण में उस बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति की व्यवस्था है?

किसी के अनुसार—परिपक्वता अथवा प्रजननक्षमता का आना ही किशोरावस्था है। डेनिस के अनुसार—व्यवहार तथा परिपक्वता का आना ही किशोरावस्था का आरम्भ है। यह शब्द तथाकथित संक्रमणकाल में विकास तथा समायोजन की प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। यह समय टीन (Teen) आयु समूह अर्थात् तेरह से उन्नीस वर्ष तक का होता है।

विशिष्ट रूप में किशोरावस्था को विकास की परिस्थिति में अव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। इसका परिणाम मनोवैज्ञानिक असन्तुलन है। इसमें किशोर अपने ढंग से ही समायोजन चाहता है। मनोवैज्ञानिक विकास के लिए यह समय जटिल होता है। व्यक्तित्व का पुनर्गठन इस समय की विशेषता है। बुनियादी विद्यालयों

सुरेश भटनागर
प्राध्यापक,
बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज
गांधी विद्या मंदिर
सरदार शहर (राजस्थान)

में पढ़ानेवाले शिक्षकों के समक्ष किशोरों के विकास के आधारभूत तथ्य रहते हैं। सामान्यतया ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बालकों के साथ उन्हें सम्पर्क बनाना होता है। बुनियादी स्कूल के अध्यापक को चाहिए कि वह किशोरावस्था में कदम रखनेवाले छात्रों के विकासक्रम को पहचाने।

किशोरों के विकास को सामान्यतया शारीरिक तथा मानसिक क्षेत्र में विभक्त किया जाता है।

शारीरिक विकास

इस अवस्था में बालक बाल्यावस्था से निकलकर किशोरावस्था में पदार्पण करता है। उसकी ऊँचाई बढ़ने लगती है। शरीर के अन्य अंगों का भी विकास होता है। शरीर के अनेक स्थानों पर बाल उग आते हैं। बालकों के होठों के ऊपर के भाग में मूँछों की रेखाएँ बनने लगती हैं और वे अपने को प्रौढ़ों की श्रेणी में रखना चाहते हैं और प्रौढ़ हैं कि उन्हें स्वीकार करना नहीं चाहते। इसी प्रकार लड़कियों का भी शारीरिक विकास होने लगता है।

मानसिक विकास

किशोरावस्था में बालक में तर्क-शक्ति का विकास होने के साथ-साथ संवेगात्मक विकास भी होता है। तर्क तथा संवेग के कारण बालक में अहं (ईगो) का अभ्युदय होता है। ऐसी अवस्था में वह स्वयं को बालक नहीं समझता और न ही कहलाना पसन्द करता है। बुद्धि का विकास होता है। स्थानीय राजनीतिक समस्याओं, स्वास्थ्य, परिवार के झगड़े तथा प्रेम, मित्रता, दलबन्दी आदि में वह अपना अस्तित्व स्थापित करता है। उसके सम्बन्धों में अमरक्षता का विकास होता है। मैत्री में समानता का आग्रह बढ़ता है। वह मित्रों की आवश्यकताओं को समझने लगता है। रुचियों में परिवर्तन होने लगता है। विद्यालय में पढ़ाये जानेवाले विषयों में उसकी रुचि बढ़ या घट जाती है। परिभ्रमण तथा समाजसेवा के कार्यों में बालक रुचि लेने लगता है। भाषा के प्रति उसके अनुराग हो जाते हैं। गणित के प्रति बहुतों की अरुचि देखी गयी है। अर्थशास्त्र तथा नागरिक शास्त्र के प्रति उनका रुझान अनुभव किया गया है। विज्ञान के प्रति हर एक के मन में जिज्ञासा पायी गयी है। इसी प्रकार वाणिज्य, चित्रकला, संगीत, हस्तकला और कृषि के प्रति रुचियों का प्रतिशत भिन्न रहा है।

मूल्यों में परिवर्तन

किशोरावस्था की सबसे बड़ी देन है—किशोरों के सोचने-विचारने में और व्यवहार में मूल्यों का परिवर्तन होना। मूल्यों के इन परिवर्तनों में सत्य के प्रति

मनोवत्ति, धार्मिक विचार सामाजिक उत्तरदायित्व प्रशंसा नतिक मान्यताओं का उभार रूप कुछ आदर्शों का चयन आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार उनके स्वभाव में उग्रता व सहनशीलता भी आ जाती है और वे सत्य का निरूपण तथ्यों के आधार पर करते हैं।

अभिभावकों के साथ व्यवहार

शिक्षा शास्त्रियों-द्वारा किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि किशोरावस्था में बालक का व्यवहार अपने माता पिता से भी बदल जाता है। किशोर यह नहीं चाहता कि अभिभावक उसपर रोकथाम कर नुक्ताचीनी करें। जब भी वह स्वयं को रोक थाम व नुक्ताचीनी के दायरे में अनुभव करता है वह विद्रोही हो जाता है। वह नहीं चाहता कि उसकी आलोचना की जाय। उसके नैतिकता सम्बन्धी दृष्टिकोण भी बदल जाते हैं।

अध्ययन से पता चलता है कि लड़कियों में मानसिक संघर्ष इस आयु में अधिक होता है। इसका मुख्य कारण है माता पिता द्वारा रोक-थाम।

व्यावसायिक रुचि का विकास

किशोरावस्था में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का विकास अधिक होता है। यही जिज्ञासा बालक में व्यवसाय के प्रति रुचि उत्पन्न करती है। इस आयु में बालक प्रशिक्षण के समय अनुसन्धान या नवीन वस्तु के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहता है। यह समय अभिनय तथा मूल्यांकन करने का होता है। स्वयं सफलता प्राप्त करना और दूसरे की सफलता क्यों नहीं प्राप्त हुई इसके कारणों पर किशोर अच्छी तरह विचार करता है। कल्हन के अनुसार यह उचित ही प्रतीत होता है कि जीवन का अध्ययन जो पहले हो चुका है के आधार पर होना है। जबतक ऐसा नहीं किया जाता तबतक किसी भी आयुसमूह की विशेषताओं पर विचार नहीं किया जा सकता। जैसे किशोरों द्वारा समायोजन महत्वपूर्ण है पर अर्थपूर्ण हो यह आवश्यक नहीं। इसके अध्ययन के लिए उदार विकासात्मक मनोविज्ञान की आवश्यकता है।

इन बुनियादी पहलुओं पर यदि हम ठंडे दिमाग से विचार करें तो सहज ही हमारे किशोरों द्वारा उत्पन्न समस्याओं का समाधान मिल जायेगा।

किशोर, बुनियादी विद्यालय और अध्यापक

बुनियादी विद्यालयों पर अनेक आरोप लगे हैं। जैसे वे बालकों के सर्वांगीण विकास करने में नितान्त असफल रहे हैं। बालक वर्तमान सभ्यता के सम्पर्क में नहीं आ पाता। वह समय से सकड़ों वर्ष पीछे रह जाता है आदि।

वास्तविकता यह है कि बुनियादी विद्यालय का विचार ही तथाकथित शिक्षा

शास्त्रियों को स्पष्ट नहीं है। बुनियादी विद्यालय का आधार है समुदाय, और समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है वह सामुदायिक विद्यालय। ऐसे सामुदायिक विद्यालयों का आधार है विकेन्द्रीकरण। सरकार के आगे हाथ फैलाकर भिक्षा माँगने से बुनियादी सवाल ही समाप्त हो जाता है। उस समय रुपयों का महत्व अधिक होता है और प्रतिभा का विकास नहीं के बराबर होता है। ऐसे सक्रान्ति के समय में किशोरों की शिक्षा के लिए बुनियादी विद्यालय क्या करें? यह प्रश्न विकट रूप से हमारे सामने है।

इसका उत्तर यह है कि बुनियादी विद्यालयों में अध्यापक ऐसे चाहिएँ जो सिर पर कफन बाँधकर निकले हों। ऐसे अभिभावक चाहिएँ जो अपने बच्चों को सरकारी गुलाम बनाना न चाहते हों। जब ये दो काम पूरे होंगे तो समुदाय अपना कार्य अपने आप करने लगेगा। समुदाय की विवेचना करते हुए कहा गया है कि समुदाय वह समूह है जो निश्चित भू-भाग पर सामाजिक वंश क्रम को लेकर, आधारभूत सेवा तथा संस्था के माध्यम से जीवन के सामान्य तौर-तरीकों से निर्वाह करता है।

इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज के विकासोन्मुख अंग किशोर की शिक्षा में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(१) अध्यापक किशोरों की आवश्यकताओं को समझें और उनके अनुसार शिक्षण-पद्धति अपनायें।
(२) मशीन के युग में पुरानी मान्यताएँ बदल गयी हैं या बदलती जा रही हैं। छात्रों में पुरातन का बोझ और नयी मान्यताओं के बहिष्कार से विद्रोह उत्पन्न होता है। अतः समन्वय का मार्ग अपनाना आवश्यक है।
(३) पाठ्य विषयों में विविधता हो और विकल्प भी हो। पाठ्य-विषयों का लक्ष्य जीवन मूल्यों का निर्माण हो।
(४) अध्यापक प्रशिक्षित हों। उनको प्रशिक्षण देते समय यह अवश्य ध्यान दिया जाय कि वे वेतन पानेवाले अध्यापक नहीं, समाज का निर्माण करनेवाले सेवक हैं।
(५) अध्यापकों को जीवन निर्वाह के लिए समुचित सहायता मिले। इसका दायित्व समाज पर हो।
(६) नयी नयी शिक्षण-विधियों का शिक्षण में उपयोग किया जाय।
(७) किशोरों के संवेग, रुचि, सम्मान पर पूरा ध्यान दिया जाय।
(८) शिक्षण में अप्रत्यक्ष पद्धति अपनायी जाय।
(९) उद्योग स्थानीय आवश्यकता के अनुसार हों। वे आधुनिक भी हों।

जहाँतक चरित्र निर्माण का प्रश्न है, वह एक प्रक्रिया है। चरित्र की मान्य-

ताएँ भी अलग हैं। फिर भी चरित्र सम्बन्धी मान्यताएँ स्थापित करने में बुनियादी विद्यालयों का उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण है। स्काउटिंग खेलकूद परिभ्रमण आदि को शिक्षण का आवश्यक अंग बना देना चाहिए। कलात्मक क्रियाओं द्वारा आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना चाहिए। वाद विवाद संगीत [illegible] काव्य पाठ अन्त्याक्षरी नाटक आदि के द्वारा किशोर के मन के [illegible] का नया एवं रचनात्मक मोड़ दिया जा सकता है।

तब फिर हम क्या करें? यह प्रश्न फिर उभरता है। अध्यापक का काम तो बालकों का निर्माण करना है। पर समुदाय तथा अभिभावकों का क्या काम है? केवल फीस देना और अपने दायित्व से मुक्त होना? यदि यह सच है तो अध्यापक तो आया के समान हो गया। जब समुदाय ही उसे सम्मान नहीं देगा तो फिर बालक हो कहाँ उसका मान करेंगे।

मेरी अपनी धारणा यह है—यदि किशोर बालकों को प्रशिक्षण देना है तो विद्यालय समुदाय द्वारा संचालित हों। समुदाय विद्यालय की हर आवश्यकता पूरी करे। फिर देखिएगा कि आपका बालक उस सामुदायिक विद्यालय से निकलकर समाज का रचनात्मक व्यक्ति बनेगा नौकरी के लिए दर दर भटकनेवाला क्लर्क नहीं। ●

किशोरों का सामाजिक शिक्षण

मानव समाज का आधार, बाह्यजगत का परिचय, सामाजिक काम की प्रेरणा सामूहिकता का विकास, सहकारिता का विकास सामाजिक भावना का विकास।

मानव समाज का आधार

मनुष्य समाज में जन्म लेता है समाज में पलता है और समाज में ही विकास पाता है। इसलिए उसके लालन पालन में और विकास में समाज का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। जिस समाज के व्यक्ति जैसे होते हैं वह समाज भी वैसा ही बनता है। यानी यह कहा जा सकता है कि मानव समाज का आधार उसकी सामाजिक भावनाएं है। जिस समाज के व्यक्तियों की सामाजिक भावनाएं जितनी ही दृढ़ होगी वह समाज भी उतना ही सुदृढ़ होगा। मात्र व्यक्तिवादी दृष्टिकोण समाज को कमजोर बनाता है। उसमें एकता नहीं होने देता। इसलिए यह अनिवार्य है कि व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के स्थान पर सामाजिक दृष्टिकोण का विकास हो।

आज लोकतन्त्र और विज्ञान की परिस्थिति ने मनुष्य को मजबूर कर दिया है कि वह व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को छोड़े और सामाजिक दृष्टिकोण को अपनाये। लोकतन्त्र ने यह परिस्थिति पैदा की है कि मनुष्य मनुष्य के बारे में सोचे मनुष्य के दुख दर्द को समझे उसे दूर करने की कोशिश करे। मनुष्य में मनुष्य का विश्वास जागे। प्रेम का सम्बन्ध हो। जाति धर्म सम्प्रदाय के दायरे से मुक्त होकर मनुष्य मनुष्य से मनुष्य के नाते मिले। अगर मनुष्य में यह गुण नहीं आया तो लोकतन्त्र समाप्त हो जायगा। विज्ञान ने समाज के दायरे को बड़ा कर दिया है। जो असम्भव था उसे सम्भव बनाया है। कल्पना का यथार्थ का रूप दिया है। विज्ञान ने एक ऐसी शक्ति का विकास किया है जिसके कारण मनुष्य संहार के किनारे खड़ा है। यानी मनुष्य विज्ञान की मदद से अपना संहार भी कर

कृष्ण कुमार
नयी तालीम संघ सेवा संघ
वाराणसी

सकना है और अपना विकास भी। विकास की दिशा में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक है कि सभी सक्रिय ज्ञान को आधार दें, ज्ञान नहीं।

इस संदर्भ में बालकों के शिक्षण के बारे में सोचना होगा। बाल्यकाल में सामाजिकता का अभाव रह गया तो वह जीवनभर असामाजिक प्राणी होकर रह जायगा।

बाह्य जगत का परिचय

बालक जिस समाज में रह रहा है उस उस समाज की व्यवस्था का पूर्ण परिचय होना आवश्यक है। कूपमंडूकता दूर हो और बाह्य जगत का परिचय हो तो दृष्टि के व्यापक होने में मदद मिलती है। समाज की सामाजिक व्यवस्था क्या है? लोगों के आपस के सम्बन्ध कैसे हैं? सम्बन्धों के आधार क्या हैं? क्योंकि सामाजिक सम्बन्धों का विकास समाज-व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। अमुक हिंदू है, अमुक मुसलमान है, ईसाई है। अमुक ब्राह्मण है, राजपूत है, डोम है, चमार है। वह ऊँची जाति का है, वह नीची जाति का है। यह जो भेद भरी व्यवस्था है इसका प्रभाव मनुष्य के सम्बन्धों पर होता है। ये ही भेद मनुष्य को मनुष्य से मनुष्य के धरातल पर नहीं मिलने देते। इसका ज्ञान बालक को हो तो वह स्वयं निर्णय कर सकता है कि उसे किस प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध विकसित करना है।

बाह्य जगत के परिचय का क्रम पास-पड़ोस के समुदाय से शुरू करके विश्व के विभिन्न देशों के विभिन्न समुदायों तक निर्धारित कर सकते हैं। क्योंकि विभिन्न देशों के समुदायों के सामाजिक सम्बन्धों का परिचय व्यापक दृष्टिकोण के लिए आवश्यक है। चूँकि किशोरावस्था में बालक स्वयं सोचने, समझने और कल्पना करने लगता है इसलिए जब उसे इन व्यवस्थाओं और सम्बन्धों का परिचय होगा तब उन्हें एक व्यापक सन्दर्भ में सोचने, समझने में काफी मदद मिलेगी।

सामाजिक काम की प्रेरणा

अपने देश में सामाजिक काम की प्रेरणा बहुत कम है। व्यक्ति अपने लिए सोचता है, परिवार के लिए सोचता है, परन्तु पड़ोसी के लिए नहीं सोचता और न ही कुछ करता है। अगर पड़ोसी के दुख की तरफ कुछ ध्यान गया भी तो वह आह या दयादृष्टि भर, उसके लिए कुछ करने की प्रेरणा नहीं होती।

इस संकुचित दृष्टि का प्रशिक्षण बालक को परिवार से मिलता है। जिन परिवारों में परिवार से बाहर के समाज के लिए काम करने की परिपाटी नहीं होती उन परिवारों के बालकों में सामाजिक चेतना का पूर्ण अभाव होता है।

परन्तु जो परिवार समाज के प्रति जागरूक होते हैं उनके बच्चे सामाजिक चेतना वाले होते हैं।

जब स्कूल में आते हैं तब सजग शिक्षक को पता चल जाता है कि किसमें किस मात्रा में सामाजिक चेतना आयी है। उसका पता लगाकर स्कूल में इस चेतना का विकास किया जा सकता है।

स्कूल बच्चों का समाज होता है। अगर इस बात का ध्यान रखा जाय कि बच्चों में अपने समाज के प्रति जागरूकता पैदा हो तो उस समाज में ऐसे तरह तरह के प्रसंग आ सकते हैं जिनके माध्यम से बच्चों में समाज के लिए काम करने की प्रेरणा जगायी जा सकती है। पढ़ने में तेज बालक कमजोर बालक की मदद कर सकता है, दो लड़कों में झगड़ा हो गया तो उसमें पड़कर बीच बचाव कर सकता है। ऐसे प्रकार के अन्य प्रसंग लिये जा सकते हैं।

यह तो हुई बालकों के स्कूल समाज की बात। परन्तु स्कूल से बाहरी समाज के लिए भी कुछ करने की प्रेरणा जगायी जा सकती है। पास के गाँव में सफाई का काम, रास्ता बनाने का काम आदि का संयोजन हो सकता है। हम अपने विद्यालय में इस प्रकार का आयोजन करते रहते थे इसलिए हम यह कह सकते हैं कि इसका अच्छा नतीजा आया है। हम नियमित रूप से सप्ताह में एक दिन पास के गाँव में सार्वजनिक काम का आयोजन करते थे। स्कूल के सभी शिक्षक और विद्यार्थी उसमें शामिल होते थे। हम ऐसे ही काम अपने हाथ में लेते थे जिनका स्थायी महत्व हो और जिसका लाभ सीधे उत्पादन पर पड़नेवाला हो, जैसे सिंचाई के लिए बांध बांधना, खेत का मेड़ बनाना आदि। हमारा यह मानना था कि हमें उत्पादन के काम को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। उसमें शिक्षण की सम्भावनाएं ज्यादा छिपी हुई हैं और बच्चों को इस काम में ज्यादा आनन्द भी आता है। यह बात सफाई आदि के कार्यक्रम में नहीं है। हम इस काम के लिए न मजदूरी लेते थे और न पुरस्कार। बस एक ही भावना कि समाज में जीते हैं तो समाज की सेवा हम करनी चाहिए। इस तरह के श्रमदान का आयोजन किसी भी स्कूल में आसानी से किया जा सकता है।

सामूहिकता का विकास

जो व्यक्ति अकेले अकेला रह आया होता है उसे जब समूह में आने का मौका आता है तो वह झिझकता है। देखा जाता है कि जब विद्यार्थी शुरू शुरू में कक्षा में आता है तो वह बहुत झिझकता है। उसे बराबर इस बात का ध्यान बना रहता है कि अपरिचित लोग उसका मजाक तो नहीं उड़ा रहे हैं। यह भय सयाने होने तक बना रहता है। यही कारण है कि पढ़े लिखे और विद्वान लोग

भी और घरवालों के लिए सम दो चार लोगों में अपना विचार व्यक्त कर लें, परन्तु जब उन्हें बड़े समुदाय के सामने अपना विचार व्यक्त करना होता है तो नहीं कर पाते हैं, डरते हैं, झिझकते हैं।

इस झिझक को दूर करने की कोशिश किशोरावस्था में होनी चाहिए। नाटक, प्रहसन, वाद-विवाद तथा अपने विचार को व्यक्त करने का अवसर बालकों को मिलता रहे तो इस गुण का विकास हो सकता है।

सामूहिक जीवन का अभ्यास—समुदाय के सुख सुविधा का ध्यान रखना समूह में रहने का एक विशेष गुण है। जब इसमें कमी आती है तो सामूहिक जीवन मुश्किल हो जाता है। उदाहरण से इस बात को समझा जा सकता है। जैसे कक्षा में बैठकर शोर मचाना, एक दूसरे से बात करने में जोर जोर से बोलना और पास पड़ोस में बैठे लोगों की असुविधा पर ध्यान न देना, डेस्क या बेंच को बिना उठाये घसीटना आदि। इसी प्रकार अगर छात्रावास है तो सोये हुए या आराम कर रहे लोगों का बिना ध्यान किये ऊँची आवाज में बातचीत करना, बत्ती जलाये रखना, या टीन पटकना, दरवाजा जोर से खोलना और बंद करना आदि। इन छोटी छोटी बातों का ध्यान न रखा जाय तो समूह के जीवन से माधुर्य समाप्त हो जाता है। सामूहिक जीवन मुश्किल हो जाता है।

इसी सामूहिक जीवन के अभाव के कारण देखा जाता है कि पढ़े लिखे लोग भी सार्वजनिक स्थानों का ध्यान नहीं रखते और गंदगी फैलाते रहते हैं। उन्हें इस बात का होश नहीं होता कि उनकी इस असावधानी से दूसरे को परेशानी होगी। जैसे केला खाकर उसका छिलका रास्ते में फेंक देना, रेलगाड़ी में सफर कर रहे हैं और मूंगफली खाकर उसका छिलका डिब्बे में फेंक देते हैं। सार्वजनिक स्थानों को साफ सुन्दर रखने की चेतना मर सी जाती है। इसकी चेतना स्कूल जीवन से पैदा की जा सकती है। स्कूल में एक-एक चीज के लिए नियत स्थान हो, कूड़ा कचरा डालने के नियत स्थान हों, तो इसका अभ्यास आसानी से हो सकता है। फिर सार्वजनिक स्थान सुंदर हो, साफ-सुथरा और सुविधाजनक हो जाय। इसमें उच्च कोटि की सफाई का संस्कार, व्यवस्थित जीवन का संस्कार, समूह में रहने का संस्कार विकसित हो। इस तरह का अभ्यास स्कूल जीवन में हो सकता है और इसका प्रभाव जीवनभर बना रह सकता है।

एक तीसरा उदाहरण—विद्यालय के भोजनालय में ३० छात्र भोजन करते हैं। ४ छात्र चाहते हैं कि सब्जी में मिरची डाली जाय। बाकी मिरची खाना पसन्द नहीं करते। कुछ चाहते हैं दूध नहीं, दही खायेंगे, कुछ दही नहीं दूध खायेंगे। कुछ चाहते हैं कि दोनों वक्त के भोजन में भात मिले ही। मेस में हमेशा इस तरह का विवाद खड़ा रहता है। क्या होना चाहिए? भोजनालय में भोजन

करनेवाले छात्रों को ही भोजन की व्यवस्था में लगायें। अगर इस प्रकार की कोई समस्या खड़ी होती है तो उन्हें ही आपस में मिलकर उसपर चर्चा करनी चाहिए। हमने अपने यहाँ इसपर छात्रों के साथ काफी सोचा है। बीमार को ध्यान में रखकर उसको जिस चीज की जरूरत है उसका प्रबन्ध हो और बाकी लोग अपने स्वाद पर काबू पायें और स्वास्थ्य को ही ध्यान में रखकर भोजन में आवश्यक सुधार हो। कहने का मतलब यह कि व्यक्तिगत रुचि का समाज की रुचि के साथ सामंजस्य हो, व्यक्तिगत रुचि का सामूहिक जीवन के लिए त्याग हो।

इसी प्रकार कोई चीज परिमाण में थोड़ी-सी ही हो तो बजाय इसके कि सब उसकी माँग करें जिसको उसकी ज्यादा जरूरत है उसको दिलाने का प्रयत्न हो। इस वृत्ति का विकास बालक में सामूहिक जीवन में ही हो सकता है।

टोली में काम करना—देखा यह जाता है कि अच्छे से अच्छे लोग जो अकेले में अच्छा-से अच्छा काम कर लेते हैं। लेकिन उन्हें दो चार साथियों के साथ काम करना होता है तो मुश्किल पड़ती है, काम बनने के बजाय बिगड़ने लगता है। आखिर इसका क्या कारण है? अकेले अकेले काम करने का अभ्यास ही तो! आज कहीं भी किसी गाँव में असफलता नजर आ रही है तो इसी टोली-वृत्ति के अभाव के कारण। सरकार बनती है उनमें अच्छे अच्छे लोग आते हैं, लेकिन वे आपस में मिलजुलकर काम नहीं कर पाते हैं। कई टोलियों में बँट जाते हैं और अन्त में दो तीन आदमी भी साथ नहीं रह पाते, सब बिखर जाते हैं। इसी-प्रकार सार्वजनिक गैरसरकारी संस्थाओं में भी अच्छी से अच्छी भावनावाले लोग ऊँचे आदर्श के लिए एकत्र होते हैं परन्तु वे ज्यादा दिन तक एक साथ काम नहीं कर पाते। अतः टोली में काम करने का अभ्यास स्कूल-जीवन में ही हो जाना चाहिए। क्योंकि इस गुण का जितना ही ज्यादा अभ्यास होगा, लोकतंत्र की बुनियाद उतनी ही मजबूत होगी।

यह अभ्यास कैसे होगा? कक्षा में जितने विद्यार्थी हैं उन सबकी अपनी ग्रामसभा हो। यह ग्रामसभा सभी छात्रों को मिलाकर बने। फिर पाँच-पाँच सात सात छात्रों को मिलाकर अलग अलग काम के लिए अलग-अलग टोलियाँ बनायी जायें। शरीरश्रम की टोली, आहार और आरोग्य की टोली, खेल और मनोरंजन की टोली, वर्ग संयोजन की टोली, सफाई की टोली, उद्योग की टोली। इन टोलियों के जिम्मे काम बँटे होंगे। उन कामों के प्रति ये टोलियाँ जिम्मेवार होंगी। क्या काम करना, कैसे करना, इसका विचार टोलियाँ करेंगी। काम के बाद की समीक्षा करना भी इन टोलियों का काम होगा। एक साथ बैठकर सोचना और किसी एक निर्णय पर पहुँचना आसान काम नहीं है। जब बार बार साथ बैठने, सोचने समझने का मौका मिलता रहेगा तब टोली में

काम करने का अभ्यास होगा ही। किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए जरूरी नहीं है कि सबकी बात मानी जाय। अपनी-अपनी रायों का आग्रह न रखकर जिस काम के लिए टोली के लोगों का ज्यादा जोर हो उसे मान लेने का अभ्यास हो। काम के पूरा हो जाने के बाद उसकी समीक्षा अनिवार्य है। क्योंकि समीक्षा से पता चलेगा कि काम में कहाँ कमी रही। इसके लिए आगे से किस बात की सावधानी रखनी चाहिए, इत्यादि।

टोली में काम करने के लिए एक तरह की प्रेरणा का होना आवश्यक है। मिलजुलकर किसी चीज की रचना करना, निर्माण करना, सर्जन करना वह प्रेरक तत्त्व है। इसलिए इस बात की कोशिश की जानी चाहिए कि छात्र बराबर किसी न किसी रचनात्मक काम में लगे रहें। उनको इसका स्पष्ट भान हो कि वे किसी रचना के काम में लगे हैं।

सहकारिता का विकास

विद्यार्थियों के लिए कुछ ऐसे कामों का संयोजन करना चाहिए जिनसे उनमें सहकारी वृत्ति का विकास हो। क्योंकि अगर इस वृत्ति का विकास नहीं हुआ तो प्रेम-सम्बन्ध की निष्पत्ति तो होगी ही नहीं, किसी भी प्रकार के निर्माण का काम असम्भव हो जायगा। यदि हम चाहते हैं कि समाज का जीवन एक सूत्र में बँधे, परस्पर का सम्बन्ध मधुर और स्नेह का हो, तो जरूरी है कि समुदाय के प्रत्येक आदमी का दृष्टिकोण सहकार का हो। इसी प्रकार खेती, उद्योग आदि में भी ज्यादा उत्पादन के लिए सहकार की आवश्यकता है। सहकार को हम निम्न अर्थ में ले रहे हैं। एक गाँव को ले लें। गाँव में बढ़ईगिरी, लुहारी, तेल-उद्योग, जूते का उद्योग, कपड़े का उद्योग, आदि हैं। अब होना क्या चाहिए? होना यह चाहिए कि गाँव में जितनी चीजें बनती हैं या जितनी चीजों का उत्पादन होता है उनकी खपत गाँव में हो। गाँव की आवश्यकता से ज्यादा माल हो तभी गाँव के बाहर जाय। गाँव का उत्पादन और गाँव ही उसका सर्वप्रथम उपभोक्ता। उसी प्रकार उपभोक्ताओं को भी सोचना होगा कि गाँव में जितना उत्पादन है उसके इस्तेमाल के बाद ही बाहर से कोई सामान लायेंगे। इस प्रकार गाँव-स्तर से सहकार का दायरा बढ़ाते-बढ़ाते विश्व के स्तर तक पहुँचाया जा सकता है।

ऐसे सहकार का अभ्यास बालकों को कराया जा सकता है। उनमें सहकार की वृत्ति पैदा की जा सकती है। मानलीजिए विद्यार्थी अलग-अलग टोलियों में बँटकर मिट्टी खोदने का काम कर रहे हैं। एक टोली ने नियत समय से पहले ही मिट्टी खोदने का काम समाप्त कर लिया और दूसरी टोली को निश्चित समय से ज्यादा समय लगनेवाला है, तो होना यह चाहिए कि जिस टोली का काम समाप्त हो गया, वह दूसरी टोली की मदद कर दे। इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं में

परस्पर मदद करने की वृत्ति पैदा की जा सकेगी। इस क्रिया में इतनी सहजता आ जाना चाहिए कि संस्कार आदत में बदल जाय। जैसे जैसे सहकार-वृत्ति का विकास होगा वैसे वैसे छात्रों म प्रेम का आधार मजबूत होता जायगा। और यह तभी होगा जब समूह म काम करने का मौका मिलता रहे।

सामाजिक भावना का विकास

किशोर की शिक्षा में उनके भावात्मक जीवन के ऊपर ध्यान रखने की आवश्यकता है। क्योंकि इस उम्र म जिनके मन में सुन्दर भाव आ जाते हैं वे ही अच्छे नागरिक होते हैं। इसी उम्र म प्रेम की एकाएक वृद्धि होती है। प्रेम की वृद्धि के साथ साथ त्याग की मनोवृत्ति का विकास होता है और मानसिक चमता का भी बीजारोपण होता है। और चूंकि किशोर का सामाजिक दायरा बढ़ जाता है वह समाज म रहने लगता है तब उसका सामाजिक मन भी काम करने लगता है। इस अवस्था म शारीरिक क्षमता भी ज्यादा होती है और स्फूर्ति बनी रहती है। अतः जरूरी है कि व बराबर किसी न किसी रचनात्मक कार्य में लगे रहें। रचनात्मक कार्य के चुनाव म कुछ बातों का ध्यान रखना अनिवार्य है जैसे रुचि का शारीरिक क्षमता का और कल्पना शक्ति का। यानी उनकी रुचि का कार्य हो उस काम म उनका भरपूर शरीरश्रम हो जाता हो तथा उनकी कल्पना शक्ति को बढ़ानेवाला कार्य हो। जब इन बातों का ध्यान रखा जायगा तो उस काम से आनन्द की निष्पत्ति होगी और काम के साथ कोमल भावना का विकास होगा।

इस बात को ध्यान में रखकर बालक में सामाजिक भावना का विकास करना चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि जो बालक अकेले अकेले रहते हैं उनकी सामाजिक भावना का विकास नहीं होता है और वे अकेले मे घुलते रहते हैं। दूसरे का विकास उन्हें असह्य हो जाता है। दूसरे की प्रसन्नता से उन्हें पीड़ा होती है। धीरे धीरे उनमें आत्महीनता का विकास होता है और दोषारोपण की वृत्ति का विकास होता है। इसका एक बड़ा कारण है मा-बाप और शिक्षकों का कठोर नियन्त्रण। हर वक्त बच्चे को हुक्म मिला करता है—यह मत करो यह मत खाओ अमुक के साथ मत रहो वहाँ मत जाओ इत्यादि। कभी उनको प्रोत्साहन का शब्द नहीं सुनाई देता। इसलिए मा-बाप और शिक्षकों के रुख में परिवर्तन होना चाहिए। निषेधक आदेश के स्थान पर विधायक सहकार की बात सोचनी चाहिए। बच्चों को छूट मिलनी चाहिए कि वे अपने साथियों के साथ खेल सकें उनके बीच ज्यादा समय रह सकें।

सामाजिक भावना के विकास के लिए कुछ कार्यक्रम सोचे जा सकते हैं।

भावना का विकास परस्पर के सहयोग से ही होता है। सेवा के जरिये आदमी की कोमल भावनाओं का विकास हो सकता है—बीमार की सेवा, दुखी की सेवा, आदि। जिसकी कोमल भावनाएँ जितनी ही ज्यादा विकसित होंगी उसकी संवेदना उतनी ही तीव्र होगी। उसे दूसरे का दुख सह्य नहीं होगा। वह व्यग्र हो जायगा कि दुखी की उचित सेवा होनी चाहिए।

इस प्रकार की ऊँची कोटि की संवेदना का विकास किशोरावस्था में किया जा सकता है। यह कैसे होगा? एक उपाय है रोगी-सेवा। स्कूल का साथी बीमार है, उसकी उत्तम से उत्तम सेवा हो। सेवा करने का मौका सबको मिलना चाहिए। इस प्रकार सेवा लेने और सेवा देने का मौका सबको मिलेगा। इसका संयोजन छात्रावास के जीवन में आसान है। रोगी के लिए दवा का इन्तजाम करना, उसके कपड़े धोना, उसको दवा पिलाना, उसके पास बैठना, उसके कमरे की सफाई करना, रोगी को ढाढ़स बँधाना आदि काम हो सकते हैं। ये सब काम जितना ही प्रेम-पूर्वक और बिना किसी प्रकार के बोझ महसूस किये होगा, उतना ही सेवक और सेव्य में आत्मीयता की भावना पैदा होगी। रोगी-सेवा में इसी भावना की कीमत है। इस भावना का विकास जैसे-जैसे होता जायगा, वैसे-वैसे उसका क्षेत्र बड़ा होता जायगा। आज वह अपने साथी की सेवा करता है, कल गाँव में कोई दुखी और बीमार है तो उसकी सेवा करेगा और इसी प्रकार उसकी सहानुभूति इतनी व्यापक हो जायगी कि विश्व के किसी कोने में संकट आया, लोग दुखी हुए कि उनकी सेवा के लिए मचल उठेगा। इस तरह उसकी भावना का इतना विस्तार हो जायगा।

परन्तु यह सब दबाव से नहीं होगा, प्रेम से होगा। इसके लिए जल्दबाजी और उतावलापन उपयोगी नहीं है। जितना ही आग्रह होगा, बालक इनसे उतना ही भागेंगे। इसलिए इनको एक शैक्षणिक प्रक्रिया का आधार मिलना चाहिए। ●

संस्कार-शिक्षण में

जीवन-मूल्यों का स्थान

प्रमुख समस्या वैज्ञानिक वृत्ति, दृष्टिकोण का विकास गुणधर्म की पहचान, सजगता का अभ्यास, दृढता की आदत ।

प्रमुख समस्या

एक गाँव का स्कूल । चार पाच लडके बाकी लड़को से दूर अलग बैठे हैं । वे अछूत हैं । मास्टर साहब तथा गाव के प्रतिष्ठित लोगो की इच्छा है कि उन्हे स्कूल में आने ही न दिया जाय । लेकिन वह सम्भव नहीं हुआ इसलिए उन्हे दूर बैठाकर सन्तोष मानना पडा है । सन्तोष इस बात का कि सवर्ण बालको का इतना तो पवित्र संस्कार बचाया जा सका ।

एक पब्लिक स्कूल । पहले वर्ग में दाखिल करने से पहले ही माता पिताओं से कहा जाता है कि बच्चे को अँग्रेजी अक्षर पढना लिखना और आठ दस अँग्रेजी शब्द बोलना सिखा दें । इसके बिना बच्चे का प्रवेश नहीं मिल सकता । पब्लिक स्कूल के लडके-लडकियो की पोशाक देखकर संशय होने लगता है कि यह ईसाई मिशनरी स्कूल तो नहीं है । स्कूल के संचालको को बच्चो के इस प्रकार के संस्कार पर नाज है ।

एक वैदिक पाठशाला । लडको के माथे पर तिलक शिखा उत्तरीय मन्त्र कपड व्यवहार का फूहडपन । पाठशाला के प्रबन्धको को दुनिया से सख्त शिकायत है कि आधुनिक सभ्यता के कारण नयी पीढी का संस्कार रसातल में पहुँच रहा है ।

कादम्ब
११।२० नया महादेव वाराणसी

गाँव के लोगों की दृष्टि में छुआछूत और भेदभाव जीवन का आवश्य मूल्य है।

पब्लिक स्कूलवालों की दृष्टि में अँग्रेजियन जीवन का अनिवार्य मूल्य है।

वैदिक पाठशालाओं की दृष्टि में तिलक, छापा और शिखा जीवन के परम मूल्य है।

आज आधुनिक और प्रबुद्ध विचारक भी जीवन-मूल्यों के बारे में एकराय नहीं हैं। कोई सत्य और प्रेम को जीवन का उत्कृष्ट और निरपवाद मूल्य मानता है, तो कोई जरूरत पड़ने पर असत्य बोलना और दुश्मन से दुश्मनी करना गलत नहीं समझता।

कोई प्रेम और सहकार को जीवन का स्वभाव मानकर उनके विकास को प्रधानता देता है, तो कोई स्पर्धा और संघर्ष को स्वभाव मानकर उनके विकास पर जोर देता है।

जीवन-मूल्यों के बारे में विचारकों और विद्वानों में प्रामाणिक स्पष्ट मतभेद दिखाई देते हैं।

नित्य-व्यवहार में भी हमारे सभी निर्णय सदा एक-रूप नहीं होते। कभी हम बालक को छुतहा बीमार से बचकर रहने को कहते हैं, तो कभी उसकी सेवा करने को कहते हैं। कभी ज्ञानार्जन पर जोर देते हैं तो कभी कर्मरत होने का आग्रह रखते हैं। कभी कुटुम्ब की सेवा को प्रधानता देते हैं तो कभी कुटुम्ब का मोह त्यागकर समाज-सेवा की प्रेरणा देते हैं।

आशय यह कि हमेशा के लिए, हर एक के लिए समान रूप से लागू होने-वाले जीवन-मूल्यों का विचार करना एक जटिल विषय है।

फिर भी एक गुण पर सब एक राय हो सकते हैं। और, वह है वैज्ञानिकता का विकास। वैज्ञानिकता का अर्थ है प्रत्येक काम और प्रत्येक विषय को विवेक की कसौटी पर कसना, 'क्या और क्यों' जानना, अर्थात् सूक्ष्मता से विचार करना।

आज राजनीतिक लोग अपनी-अपनी विचार-धारा को जबरदस्ती थोपने और दिमाग में ठूँसने का हर तरह से प्रयत्न करते हैं और उसके लिए शिक्षा का उपयोग करते हैं। इसलिए बालक को 'क्या और क्यों' पूछने की गुंजाइश ही नहीं रह जाती है।

लेकिन मानवता के विकास के लिए शिक्षण की बात सोचते समय हमें इस वैज्ञानिकता को सर्व प्रथम स्थान देना होगा, इसमें संशय नहीं है। वैज्ञानिकता जागृत होगी तो परस्पर विरोधी दीखनेवाली बातों में भी एक सामंजस्य दीखेगा और दूसरे सभी नैतिक गुण उसमें समा जायेंगे।

वैज्ञानिक वृत्ति

हम जो कुछ करते हैं या मानते हैं उसके बारे में हम अक्सर जानते नहीं कि हम क्या ऐसा करते हैं या क्यों ऐसा मानते हैं।

एक उदाहरण। मेरी लड़की पत्नी है तो वह हर शब्द के शुरू में 'अं अं' करती है। उसको मालूम ही नहीं होता कि वह 'अं अं' करती है। कहानी सुनाने लगती है तो अक्सर हर शब्द के पीछे न जोड़ती है। जैसे 'मैं न' उस दिन न, गाँव में गयी थी न?' आदि। जब उसका ध्यान इस तरफ दिलाया तो घबरा गयी। न छोड़कर बोलने की कोशिश करती है तो बात ही नहीं पा रही है। इसका अर्थ यह कि उसका बोलना विवेकयुक्त नहीं है। उसे भान नहीं है कि वह क्या बोलती है, कैसे बोलती है और क्या ऐसा बोलती है।

दूसरा उदाहरण। मेरे मित्र का एक लड़का, रास्ते में जितने भी मन्दिर पड़ते हैं सबके सामने सिर झुकाता और हाथ जोड़ता जाता है। यह उसकी आदत हो गयी है। यह उसके घर के संस्कार का प्रभाव है। लेकिन वह इस बारे में स्पष्ट नहीं है कि वह क्या ऐसा करता है। अगर वह जानता होता कि यह पत्थर भगवान का मात्र प्रतीक है और इस प्रतीक के सहारे सारे विश्व को भगवान का प्रतीक मानने का अभ्यास करता है और उसका यह पहला पाठ है, तो इस प्रणाम क्रिया के परिणामस्वरूप उसमें वृत्ति की उदारता, हृदय की विशालता और चित्त की समता का विकास हुआ होता। लेकिन वह तो पारिवारिक संस्कार के कारण सिर झुकाने और हाथ जोड़ने का आदी है। इसीलिए उसमें उन गुणों का विकास नहीं हो पाया है। इसका अर्थ है कि उसका यह नमन विवेकहीन है, उसमें वैज्ञानिक वृत्ति नहीं है।

दृष्टिकोण का विकास

एक स्कूल। जलपान का समय। सब लड़के बाहर आँगन में घूम रहे हैं। दूर एक लड़का खड़ा है। सहसा एक लड़का वहीं से दौड़ा आता है और बड़े लड़के पर छुरे से वार करता है। थोड़ी ही दूर पर तीन चार लड़के खड़े हैं। उनमें से एक यह सब देख रहा है। वह खुद आगे बढ़ता है और एकदम उस छुरे वाले लड़के पर टूट पड़ता है। छुरेवाले बड़े लड़के को इस बात की आशंका शायद नहीं थी। इस आकस्मिक आक्रमण को वह झेल न सका और गिर पड़ा।

तुरत दूसरे लड़के आये। छुरेवाले को पकड़ा। मास्टर लोग आये। पुलिस आयी। आगे जो होना था सो हुआ।

यह बीच में पड़नेवाला जो छोटा लड़का था, उससे पूछा गया कि 'छोटा होते हुए भी तुम कैसे उस पर टूट पड़े' तो उसने सहज उत्तर दिया कि 'मुझे मालूम नहीं

हुआ कि मैं क्या कर रहा हूँ, मैं देख रहा था कि वह उस लड़के पर वार करने जा रहा है। मुझे लगा कि मानो मुझपर ही वार हो रहा है।'

उसके साथ ही जो दूसरा एक बड़ा लड़का था, उससे पूछा गया 'तुम तो तगड़े थे, तुम क्यों बचाने नहीं गये ?' तो उसने कहा—'उस लड़के से एक दिन मेरी लड़ाई हो गयी थी। उससे मेरी बोलचाल बन्द थी। मैं देख रहा था कि गुण्डा लड़का वार करने जा रहा है, तो मुझे लगा कि ठीक ही हो रहा है।'

इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों लड़कों ने अपने-अपने विवेक के अनुसार ही काम किया है। छोटे लड़के को लगा कि जिस पर वार हो रहा था वह और यह एक ही हैं। बड़े लड़के को लगा कि वह लड़का इसका दुश्मन है।

विवेक के लिए दृष्टिकोण का बड़ा महत्त्व है कि हमारा दृष्टिकोण मित्रता का, बन्धुता का, आत्मीयता का होता है या परायेपन का, शत्रुता का।

गुणधर्म की पहचान

सामान्यतया हर एक का यह अनुभव है कि छोटा बच्चा आग को हाथ से पकड़ने दौड़ता है। एक बार हाथ जला लेता है, तो दुबारा नहीं पकड़ता। आग देखकर दूर से ही डरने लगता है। दूसरों को माचिस जलाते देखता है, पर खुद जलाने से डरता है। एक बार उसके हाथ से तिल्ली पकड़वाकर जला के दिखाते हैं, तो फिर उसका डर खुल जाता है।

इसका अर्थ यह कि विवेक के लिए वस्तुओं के गुण-धर्म की जानकारी एक बड़ा आधार है।

भात खाने के आदी लोगों को रोटी खानी पड़ती है तो उन्हें मात्रा का खयाल नहीं रहता है। भात से जिस प्रकार पेट भरते थे, वैसे ही रोटी से भी भरे बिना उन्हें सन्तोष नहीं होता। नतीजा यह, कि अपच हो जाता है। इसका कारण है भात और रोटी के गुणधर्म का अज्ञान।

दक्षिण भारत के लोग उत्तर में आते हैं तो जाड़े के दिनों में भी पर्याप्त गरम कपड़े का उपयोग नहीं करते हैं, बीमार पड़ते हैं। क्योंकि यहाँ के तापमान का उन्हें ज्ञान नहीं है।

सजगता का अभ्यास

महाभारत का एक वाक्य बहुत मशहूर है। दुर्योधन कहता है, "मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, लेकिन उस ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं होती, और यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, पर उससे निवृत्त नहीं हो पाता हूँ।" अविवेक का यह सुन्दर उदाहरण है।

हम लोगों के जीवन में भी ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं। इसका कारण यह है कि अपने कर्तव्य का भान होने पर उसकी ओर से हम सजग नहीं रहते हैं। सजगता या सावधानता के अभाव से हम ऐसा काम कर बैठते हैं जो हम करना नहीं चाहते।

दृढ़ता की आदत

प्रथम महत्व की एक बात और है। वह है अडिग रहने का गुण। हम जानते हैं कि रोगी की सेवा करनी चाहिए। लेकिन रोगी को देखते ही उसकी सेवा में दौड़ने लगता है। क्रोध करना बुरा मानते हैं पर क्रोध आ जाता है तो रोक नहीं पाते हैं। संयम को आवश्यक मानते हैं लेकिन संयम रख नहीं पाते। सत्य को उत्तम धर्म मानते हैं पर सत्य पर डटे नहीं रहते हैं।

वैज्ञानिक वृत्ति के विकास के लिए दृढ़ता का अभ्यास आवश्यक है। माता-पिता तथा शिक्षक यदि ध्यान दें तो घर में तथा स्कूल में इन गुणों का सहज विकास बालकों में कर सकते हैं।

वैज्ञानिक वृत्ति का विकास यदि होता है तो बाकी गुणों का विकास अपने आप होगा या थोड़ी-सी सहायता देकर आसानी से किया जा सकेगा। वैज्ञानिक वृत्ति ही आधारभूत जीवन मूल्य है। इसलिए इसका विकास सर्वप्रथम होना आवश्यक है।

ठेठ बाल्य काल से इस वृत्ति का विकास किया जाना चाहिए। बच्चों के सामने हम अनेक तरह के विधि निषेध रोज रखते रहते हैं। उसके साथ ही यदि उन्हें उसका कारण समझाने का प्रयत्न करें तो वे क्यों का तत्त्व पकड़ लेंगे। सारी बातें बच्चों की समझ में आयेंगी ही ऐसा नहीं कह सकते फिर भी सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न करें तो वे जितना समझ सकते हैं उतना समझ लेंगे, जितना नहीं समझ सकते उतना छोड़ देंगे। उनका सारी बात समझना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना समझने की आवश्यकता का भान होना।

●

नयी तालीम और पुरुषार्थ-वृत्ति

पुरुषार्थ-वृत्ति पुरुषार्थ वृत्ति के आधार मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की आवश्यकता नयी तालीम में पुरुषार्थ-वृत्ति के विकास का अवसर पुरुषार्थ वृत्ति की बुनियाद।

शरीरश्रम का अवमूल्यन अपनी समाज-व्यवस्था की एक बुनियादी बीमारी है। इसके कारण प्रचलित शिक्षण-व्यवस्था श्रम तथा उत्पादन से सर्वथा पिछड़ी हुई है। इस बुनियादी समस्या का हल नयी तालीम करना चाहती है। श्रम और बुद्धि का समन्वय एक तरह से नयी तालीम का केन्द्र बिन्दु माना गया है और उसपर काफी ध्यान दिया गया है चिन्तन मनन और प्रयोग भी हुआ है।

पुरुषार्थ-वृत्ति यानी क्या ?

परन्तु हमारे समाज में एक और महत्व की कमी है जिसकी पूर्ति उसकी प्रगति के लिए आवश्यक है। यह कमी है पुरुषार्थ-वृत्ति की। पुरुषार्थ वृत्ति यानी किसी ध्येय की प्राप्ति के लिए भरपूर प्रयत्न करने की वृत्ति विरोध और प्रतिकूलताओं के सामने लड़ने की वृत्ति। आत्मविश्वास सातत्य और हिम्मत जैसे गुणों का भी समावेश इसमें होता है।

सामान्य निरीक्षण से व्यक्तियों में इस वृत्ति का अन्तर ध्यान में आता है। कोई ठान लेता है कि मैं पढ़ाई में अच्छा रहूँगा तो फिर वह वैसा करके ही रहता है। दूसरा मानता है कि अच्छा तो करना चाहिए पर उसमें यह आत्मविश्वास नहीं होता कि वह वैसा कर सकेगा। आत्मविश्वास की कमी के कारण मेहनत करने की उसकी लगन समाप्त हो जाती है। लड़ाई के मैदान में कोई फौज इस गुण के बिना कामयाब नहीं हो सकती। बड़े

मनमोहन चौधरी
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
वाराणसी

सेनापतियों मे इस गुण का दर्शन होता है। परन्तु सिर्फ लड़ाई में ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में इसका बुनियादी महत्व है। कोई विज्ञान, दर्शन या कला मे उच्च कोटि की साधना करता है और कामयाबी हासिल करता है तो इसी गुण की प्रेरणा से। एक किसान अपने छोटे से खेत को सोने के खान-जैसा उपजाऊ बनाता है और दूसरा वैसा नहीं कर पाता। इसमें सिर्फ साधन सामग्री और जानकारी का सवाल नहीं होता, पुरुषार्थ-वृत्ति का भी होता है। अच्छे से अच्छा साधन और जानकारी के होते हुए भी इस वृत्ति के अभाव के कारण मनुष्य उनका पूरा लाभ नहीं ले पाता है।

मिशनरी लोग हजारों मील दूर से आकर रेलवे या मोटर के रास्ते से पचासों मील दूर घने जगल में बरसों तक काम करते हैं, परन्तु वैसा करने के लिए हमारे यहाँ कम लोग मिलते हैं। इसमें सिर्फ सेवाभाव का अभाव नहीं, मात्र पुरुषार्थ-वृत्ति का अभाव होता है।

सामान्यतया माना जाता है कि व्यापार और उद्योग में मनुष्य 'नफा' के लिए (प्राफिट मोटिव से) काम करता है। पर इन दिनों ऐसे काफी शोध और प्रयोग हुए हैं जिनके परिणाम स्वरूप यह दावा किया जाता है कि व्यापार-धन्धा की सफलता के पीछे सर्व प्रधान प्रेरक शक्ति नफाखोरी की वृत्ति (प्राफिट मोटिव) नहीं होती। पुरुषार्थ-वृत्ति की भी उसमें महत्वपूर्ण देन होती है। शुद्ध नफाखोरी की वृत्ति साहूकारी में होती है। साहूकार कोई निर्माण नहीं करता, ब्याज ही वसूल करता है। परन्तु कोई उद्योगपति एक कारखाना खड़ा करता है, उद्योग की सारी शृंखला खड़ी करने के चक्कर में पड़ता है, सामान जगह-जगह पहुँचाने का व्यापक तंत्र खड़ा करता है तो उसके पीछे काफी हद तक एक नयी सृष्टि खड़ी करने का आनन्द और समाधान होता है, यानी पुरुषार्थ-वृत्ति होती है।

जैसे मनुष्यों में पुरुषार्थ-वृत्ति कम या ज्यादा होती है वैसे मानव-समूहों में भी मोटे तौर पर इसका औसत पैमाना अधिक या कम पाया जाता है। अपने देश के विभाजन के बाद एक तरफ से कई लाख पंजाबी और सिन्धी तथा दूसरी तरफ से करीब उतने ही पूर्व बंगाल के निवासी विस्थापित हुए। आज पंजाबी और सिन्धी शरणार्थी के रूप में कहीं नहीं दिखाई देते हैं, लेकिन बंगाली शरणार्थियों के बसान की समस्या अब भी कायम है। वैज्ञानिक ढंग से इस सवाल की छानबीन की जाय तो यही पाया जायगा कि इसकी जड़ में दोनों जमातों की पुरुषार्थ-वृत्ति का अन्तर है।

पुरुषार्थ-वृत्ति के आधार

सामान्यतया यह माना जाता है कि मनुष्यों के गुण अवगुण जन्मजात या

आनुवंशिक होते हैं। कुछ बुनियादी चीजें तो जरूर जन्मजात होती हैं, पर इनमें से गुण-अवगुणों का विकास सामाजिक परिस्थिति पर बहुत हद तक आधारित रहता है। खास करके पुरुषार्थ-वृत्ति के मामले में पाया गया है कि यह परिवारों में बच्चों के लालन-पालन के तरीके तथा समाज में प्रचलित श्रद्धाओं तथा मूल्य-बोधों पर आधार रखता है। मिसाल के तौर पर समाजशास्त्रियों ने यूरोप के कैथलिक और प्रोटेस्टेंट जमातों की पुरुषार्थ-वृत्ति में फर्क पाया है, यह औसतन कैथलिकों में कम और प्रोटेस्टेंटों में अधिक होती है।

पुरुषार्थ-वृत्ति को बढ़ावा देनेवाली या रोकनेवाली बालकों की लालन-पालन की पद्धतियों की जाँच करने से जो खास मुद्दे सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं। जो माता-पिता बच्चों को अधिक स्वतन्त्रता देते हैं, खेल-कूद में खतरा उठाने से रोकते नहीं हैं, डराते-धमकाते नहीं हैं, उनके बच्चों में पुरुषार्थ-वृत्ति अधिक होती है। जो माता-पिता बच्चों पर अपना अनुशासन लादते रहते हैं, हमेशा उनको हुकुम मानने को बाध्य करते रहते हैं, उनकी पुरुषार्थ-वृत्ति मारी जाती है। जो बच्चों को निर्णय करने की स्वतन्त्रता नहीं देते, उनके लिए खुद निर्णय देते हैं तो वही परिणाम आता है।

बच्चों को स्वाश्रयी बनने के लिए, यानी अपने हाथ से खाने, खुद कपड़ा पहन लेने, नहा लेने आदि में प्रोत्साहन दिया जाता है तो वे पुरुषार्थी बनते हैं। पर इसमें उनको ज्यादा 'ढकेला' जाय, या माँ अपनी मेहनत टालने के लिए उनको स्वाश्रयी बनने के लिए मजबूर करे, तो उसका असर उलटा होता है।

बड़ा काम करने की प्रेरणा घर से मिलती है तो पुरुषार्थ-वृत्ति बढ़ती है। माता-पिता के सम्बन्ध स्नेहपूर्ण और खुला हो तो यह पुरुषार्थ-वृत्ति के लिए अनुकूल होता है।

मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की आवश्यकता

समाज की मान्यताओं या श्रद्धाओं में अगर यह निष्ठा हो कि अमुक व्यक्ति के कथन को बिना पूछे मान लेना चाहिए (जैसे कैथलिकों के पोप के) तो यह पुरुषार्थ-वृत्ति के विकास के प्रति बाधक होता है। ईश्वर की कल्पना भी इसमें सहायक या बाधक हो सकती है। अगर ईश्वर को ऊपर बैठकर पाप-पुण्यों का निरीक्षण करनेवाला समझा जाय तो पाप से बचते रहना ही मुख्य चिन्ता बन जाती है। नया पुरुषार्थ करने की प्रेरणा कम होती है क्योंकि नये काम में कौन जाने क्या पाप छिपा हुआ होगा?

ईश्वर को अपने अन्तःकरण में स्थित माना जाता है, अपने को ईश्वर का काम करनेवाला उसका साधन समझा जाता है तो पुरुषार्थ को उत्तेजन मिलता है। कम्यूनिस्ट ईश्वर नहीं मानते पर अपने को इतिहास के आयुध मानते हैं।

अत उनकी पुरुषार्थ वृत्ति ऊँची होती है। यह सारा विषय अत्यंत दिलचस्प है। द एचीविंग सोसाइटी में मैक्लेलैंड न इसका सांगोपांग विवेचन किया है। उसका अध्ययन है कि जिन देशों में पुरुषार्थ वृत्ति का औसत दरजा ऊँचा रहा है वहा नैसर्गिक अनकूलता तथा साधन सामग्रियो की उपलब्धि बराबर कम होते हुए भी आर्थिक विकास अधिक तेजी से होता है। यद्यपि उन्होन आर्थिक विकास के सन्दर्भ म ही इसका महत्व जाँचने का प्रयत्न किया है फिर भी यह स्पष्ट है कि समाज के सर्वांगीण विकास के लिए यह बहुत महत्व रखता है।

हम जनशक्ति की बात करते हैं। इसके मूल म यही पुरुषार्थ वृत्ति है। आज लगता है कि अपने देश में सब तरफ भिखारी वृत्ति फैली हुई है। अपने हाथ से कुछ नही होगा बाहर स सरकार से या और कही से कुछ मिल जाय तो होगा। यह मनोदशा सर्वत्र है। यह पुरुषार्थ वृत्ति के अभाव का द्योतक है। इसको सुधारने के लिए बाहर से शासन और सयोजन के तंत्र को सुधारने की विकेन्द्रीकरण आदि की आवश्यकता तो है ही परन्तु अन्दर से मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की आवश्यकता भी है।

नयी तालीम म पुरुषार्थ वृत्ति का विकास

ग्रामदान आन्दोलन के द्वारा जनता म इस प्रकार का परिवर्तन लाने की कोशिश हो रही है। सफलता भी मिल रही है। परन्तु वृत्तियों की बुनियाद बचपन म ही पक्की हो जाती है इसलिए यह जाहिर है कि अपनी शिक्षण-पद्धति म पुरुषार्थ वृत्ति को प्रेरणा देनेवाले तत्वों का समावेश होना चाहिए। नयी तालीम की योजना म इस प्रकार के तत्वो का समावेश है। उसमे बच्चो को आजादी मिलती है। आत्मप्रकाश के लिए अवसर मिलता है स्व नियंत्रण का समूह की जिम्मेवारियाँ खुद सम्भालने का मौका दिया जाता है तथा अन्य कई तरह से पुरुषार्थ वृत्ति का पोषण मिलता है। मेरा मानना है कि ठीक ढग से चलनेवाले बुनियादी विद्यालय के औसत विद्यार्थियो के जीवन के साथ दूसरे विद्यार्थियो के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो पहले म पुरुषार्थ वृत्ति का मादा बहुत अधिक दीखेगा।

इस पहलू के प्रति जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था उतना ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिए इस दिशा म नयी तालीम की सफलताओ को जिस प्रकार सामने लाया जा सकता था वैसा नहीं लाया जा सका है और दूसरी तरफ इस दृष्टि से नयी तालीम की कमियों का सुधारकर उसको इस मामले में अधिक विकसित और कारगर बनाने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया नहीं जा सका है।

पुरुषार्थ-वृत्ति की बुनियाद

पुरुषार्थ-वृत्ति की बुनियाद बिलकुल छुटपन में माता-पिता के संसर्ग में पड जाती है। बाल-लालन-पालन के तरीके अलग-अलग जमानों में अलग-अलग होते हैं। उनका असर जमानों के औसत चरित्र पर पडता है। इसलिए अपने देश के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न जमानों और वर्गों के बाल-लालन-पालन के तरीकों का अध्ययन होना चाहिए, ताकि उनमें आवश्यक फेर-फार के लिए प्रयत्न किये जा सकें। कम-से-कम शिक्षक अपने आस-पास के समाज में इस विषय का अध्ययन कर सकते हैं और उसके आधार पर पालकों को आवश्यक मार्गदर्शन व सलाह दे सकते हैं।

विद्यालय में या घर में बालक जो आदर्श, श्रद्धा और मान्यता प्राप्त करते हैं, उनका भी अध्ययन इस दृष्टि से होना चाहिए जिससे कि बालकों में पुरुषार्थ-वृत्ति का अधिक-से-अधिक विकास हो। इस तरह से हमारे आज के समाज की एक बहुत बडी कमी को दूर करने में नयी तालीम कामयाब हो सकती है। ●

बुनियादी शिक्षा का स्वरूप

(६ से १४ वर्ष के बालकों की शिक्षा)

बुनियादी शिक्षा की व्याख्या, शिक्षा-शास्त्रियों का दृष्टिकोण, बुनियादी शिक्षा के तत्त्व, सीखने की प्रक्रिया के तीन तत्त्व, बुनियादी शिक्षा की विशेषताएँ, बुनियादी शिक्षा की रूप-विकृति।

वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राजकीय बुनियादी
प्रशिक्षण महाविद्यालय, वाराणसी

३१ जुलाई सन् १९३७ ई० के 'हरिजन' नामक पत्र में शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए गाधीजी ने लिखा—'केवल साक्षरता न तो शिक्षा का लक्ष्य है और न आरम्भ। वह तो एक साधन है जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष को शिक्षित किया जाता है। साक्षरता शिक्षा नहीं है। इसीलिए मैं बच्चे की शिक्षा उसे कोई उपयोगी शिल्प सिखाकर करना चाहूँगा जिससे वह अपनी शिक्षा के साथ कुछ पैदा भी कर सके। इस प्रकार विद्यालय स्वावलम्बी हो सकते हैं। मेरा विश्वास है कि इस ढंग से शिक्षा देने से शरीर और आत्मा का उच्चतम विकास सम्भव हो सकता है। किन्तु शिल्प की शिक्षा आज की तरह यन्त्रवत् न देकर वैज्ञानिक रूप से क्रिया के कार्य-कारण को समझाकर ही दी जानी चाहिए।"

'हरिजन' के इसी लेख से बुनियादी शिक्षा का आरम्भ मानना चाहिए। इस कथन में बुनियादी शिक्षा के सभी आधार-तत्त्व निहित हैं। सन् १९३७ ई० में ही वर्धा में शिक्षकों का एक छोटा-सा सम्मेलन बुलाया गया जिसकी अध्यक्षता डा० जाकिर हुसैन ने की। इस सम्मेलन ने बुनियादी शिक्षा के नीचे लिखे सिद्धान्तों को स्वीकार किया :—

(१) देश के सभी बच्चों के लिए सात साल तक अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।

(२) यह शिक्षा बच्चों की मातृभाषा के माध्यम-द्वारा दी जानी चाहिए।

(३) इस अवधि की शिक्षा का केन्द्र कोई उत्पादक दस्तकारी होना चाहिए। बच्चों में जो दूसरे गुण पैदा करने हैं अथवा जिन दूसरे विषयों की शिक्षा उन्हें देनी है, उसे जहाँतक हो सके इस केन्द्रीय शिल्प से अनुबन्धित करके दिया जाय। इस दस्तकारी का चुनाव बालक के वातावरण और स्थानीय परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया जाय।

यह आशा की जाती है कि इस पद्धति-द्वारा धीरे-धीरे अध्यापकों के वेतन का खर्च निकल आयगा।

बुनियादी शिक्षा की व्याख्या

सन् १९३७ के बाद जब बुनियादी शिक्षा का प्रयोग शुरू हुआ तो वह सात साल की प्रारम्भिक शिक्षा योजना के रूप में ही चली। १९४५ ई० में जेल से लौटने के बाद गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की नयी व्याख्या की, जिसमें बुनियादी शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। उन्होंने कहा—"बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है और जीवन की क्रियाओं-द्वारा होनी चाहिए। इसका काम प्रत्येक अवस्था के प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा होनी चाहिए। नयी तालीम का कार्य जन्म से प्रारम्भ होता है और मृत्यु के साथ समाप्त होता है। हमें बच्चों के अभिभावकों को भी शिक्षित करना चाहिए।"

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा न रहकर सभी स्तरों की शिक्षा हो गयी। माध्यमिक स्तर की भी और विश्व-विद्यालय स्तर की भी। प्रौढ़ों की शिक्षा भी उसके भीतर आ गयी। यह काम अपेक्षाकृत कठिन था। गांधीजी ने इस कठिनाई की ओर एक रूपक द्वारा संकेत भी किया। उन्होंने कहा—"अब तक हमलोग एक छोटे-से द्वीप में थे। अब हम समुद्र में आ गये हैं। इसमें उत्पादक शिल्प ही हमारा ध्रुवतारा रहेगा।" स्वावलम्बन को शिक्षा की तेजाबी जाँच (एसिडटेस्ट) बताते हुए उन्होंने कहा—"किसी भी तरह की

आपत्ति क्यों न उठायी जाय। मेरा दृढ विश्वास है कि वास्तविक शिक्षा को स्वावलम्बी होना चाहिए।"

शिक्षा-शास्त्रियों का दृष्टिकोण

बेसिक शिक्षा को इस व्यापक रूप मे ही लिया जाय यह गाधीजी चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिया था कि बच्चों की शिक्षा (प्रारम्भिक स्तर से लेकर विश्व-विद्यालय स्तर तक की एक सम्पूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा) का कार्यक्रम तैयार किया जाय। गाधीजी यह जानते थे कि अगर बेसिक शिक्षा का विकास प्रारम्भिक स्तर से विश्व-विद्यालय स्तर तक नहीं किया गया तो वह सफल नही होगी। इसीलिए उन्होंने उसके क्रम को आगे बढाने की बात कही। इस सन्दर्भ में समग्र नयी तालीम की बात वह बार-बार करते थे। परन्तु राष्ट्र ने बेसिक शिक्षा के इस समग्र और व्यापक रूप को नही अपनाया। राष्ट्र ने इसे प्रारम्भिक-शिक्षा के रूप में ही अपनाया। इसीलिए एक विद्वान ने बुनियादी शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार की है—"बुनियादी शिक्षा किसी उत्पादक उद्योग (शिल्प) के माध्यम द्वारा ६ वर्ष से १४ वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए एक राष्ट्रीय-शिक्षा-प्रणाली है।" अस्तु, चाहे जिन कारणो से भी हो, और उनकी व्याख्या यहाँ नही की जायगी, बेसिक शिक्षा को अपने समग्र रूप में व्यापक स्तर पर कभी भी अपनाया नही गया। शिक्षा-शास्त्रियों ने यह महसूस किया कि बेसिक शिक्षा के क्रान्तिकारी सिद्धान्त मूलत ठीक है अत. उन्हे आगे बढाने की आवश्यकता है। मुदालियर कमीशन ने बहु-उद्देशीय विद्यालयों के रूप मे बेसिक शिक्षा के कुछ मूलभूत सिद्धान्तो को अपनाने की सस्तुति की है। उद्योग को उसने मूल विषयों में से एक विषय रखा है और यह कहा कि माध्यमिक का विद्यार्थी उद्योग अनिवार्य रूप से पढे। कमीशन ने उत्तर बुनियादी को बहु-उद्देशीय विद्यालयों का एक रूप भी स्वीकार किया है। पर हम जानते है कि बहु-उद्देशीय विद्यालय उत्तर बुनियादी के पर्याय नही है और न राधाकृष्णन् आयोग-द्वारा सस्तुत और श्रीमाली-समिति-द्वारा अनुमोदित ग्राम सस्थान (रूरल इन्स्टीट्यूट)। उच्च बुनियादी के माध्यमिक स्तर पर बहु-उद्देशीय विद्यालयों में और विश्व-विद्यालय स्तर पर ग्राम सस्थानों में बुनियादी शिक्षा का स्वरूप विकृत हो गया है। उसके समस्त मूलभूत सिद्धान्तों का यहाँ परित्याग कर दिया गया है।

अत बुनियादी शिक्षा को 'किसी उत्पादक शिल्प के माध्यम-द्वारा ६ से १४ वर्ष तक की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली' मानकर ही चलना होगा। थोड़ा बहुत जो उसका प्रयोग और विस्तार हुआ है उसके इसी रूप में हुआ है। बुनियादी शिक्षा का अर्थ है ६ से १४ वर्ष तक के बालकों की नयी शिक्षा-पद्धति जो परम्परागत किताबी शिक्षा से भिन्न है और जिसके मूल में एक उत्पादक उद्योग है।

परन्तु उसके इस सीमित रूप में उसके सभी मूलभूत सिद्धान्तों को अक्षुण्ण नहीं रखा गया है।

बुनियादी शिक्षा के तत्त्व

बुनियादी शिक्षा की जो व्याख्या ऊपर हुई है उसमें निम्नांकित तत्त्व प्राप्त होते हैं :

१ बुनियादी शिक्षा का केन्द्र उत्पादक उद्योग है। उसके मूल में एक सोद्देश्य समाजोपयोगी धन्धा है। परम्परागत शिक्षा और बुनियादी शिक्षा का सबसे बड़ा अन्तर यही है। जहाँ परम्परागत शिक्षा-पद्धति में ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम केवल पुस्तकें हैं वहाँ बुनियादी शिक्षा में बालक की सोद्देश्य क्रियाएं हैं। केवल पुस्तकों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने से बालक का विकास एकांगी रह जाता है। पुस्तकों से सीखने का अर्थ है केवल शब्दों के माध्यम से सीखना शब्द (अथवा पुस्तक) अमूर्त माध्यम हैं। क्रिया का माध्यम मूर्त होता है माध्यम के मूर्त होने से ज्ञान ठोस और सहज ग्राह्य हो जाता है। अतः अधिक टिकाऊ बना रहता है।

२ बुनियादी स्कूलों में लड़के वैज्ञानिक ढंग से हाथ के काम सीखते हैं। इन कामों के द्वारा उन्हें भाषा गणित आदि स्कूल के दूसरे विषय पढ़ाये जाते हैं। यही समवाय का ढंग है जो सीखने के काम को आसान बना देता है। परम्परागत शिक्षा पद्धति में पाठ्यक्रम के एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध नहीं था। किसी केन्द्रीय क्रिया के माध्यम से पढ़ाये जाने के कारण वे एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं। इस समवाय अथवा अनुबन्ध पद्धति से हम ज्ञान की प्रक्रिया को विषयों में खण्डित होने से बचा लेते हैं। मनोविज्ञान बतलाता है कि बच्चे का मस्तिष्क अपने में पूर्ण इकाई है अतः स्कूलों में ज्ञान देने की जो पद्धति अपनायी जाय वह ज्ञान देने की क्रिया को टुकड़ियों (विषयों) में न बाँटे। इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस पद्धति से सीखने से बच्चा कोरे सैद्धान्तिक ज्ञान अर्जन करने के अवैज्ञानिक बोझ से बच जाता है इस पद्धति का सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक गुण यह है कि इस पद्धति से सीखने पर अनुभव के बौद्धिक और व्यावहारिक तत्त्वों का सन्तुलन हो जाता है दिमाग और हाथ में समन्वय हो जाता है।

सीखने की प्रक्रिया के तीन तत्त्व

ज्ञान सूचनाओं का मात्र संग्रह नहीं है। बालक को ज्ञान का प्रयोग भी आना चाहिए। भोजन जैसे शरीर से अलग नहीं रहता शरीर ही बन जाता है वैसे ही ठीक से पका हुआ विचार मस्तिष्क ही बन जाता है। समवाय पद्धति से इस

प्रकार का पाचन सम्भव होता है। यही इस पद्धति का सबसे बडा गुण है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक सीखने की प्रक्रिया को तीन नियमों-द्वारा शासित बतलाते हैं—(१) सन्नद्धता का नियम (२) प्रयोजन का नियम और (३) अभ्यास का नियम।

(१) सन्नद्धता के नियम का अर्थ होता है कि बालक जब किसी बात को सीखने का इच्छुक होता है तभी वह शीघ्र सीखता है। उसमें सीखने की इच्छा तभी होती है जब विषय का सम्बन्ध उसकी आवश्यकता अथवा उसकी किसी मूल प्रवृत्तियों से होता है। जिज्ञासा और रचना उसकी मूल प्रवृत्तियाँ हैं। शिल्प अथवा उद्योग की क्रियाएँ उसकी इन दोनों प्रवृत्तियों की परितुष्टि करती हैं। फिर इस शिक्षा के अन्तर्गत बालक जो कुछ बनाता है उसका सम्बन्ध उसकी रोजमर्रा की जरूरतों से होता है।

(२) प्रयोजन का नियम—इस नियम को सन्तोष का नियम भी कहते हैं। अर्थात बालक उसी ज्ञान को अधिक सहज ढंग से ग्रहण कर पाता है जिससे उसे सन्तोष प्राप्त होता है। तथ्यों के रटने से अथवा नीरस पुस्तकों को पढने से सन्तोष नहीं मिलता। बालक को सन्तोष सृजन से और जिज्ञासा की तृप्ति से मिलता है। विशेषतः ६ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों को सर्वाधिक सन्तोष सृजनात्मक कामों को करने और समस्याओं के लिए निराकरण से ही प्राप्त होता है। अतएव इस अवस्था के बालकों के लिए बुनियादी शिक्षा सबसे अधिक उपयोगी है क्योंकि सृजनात्मक क्रियाएँ उसके मूल में हैं।

(३) अभ्यास का नियम—इस नियम का अर्थ है कि सीखने की क्रिया बार बार अभ्यास करने से दृढ होती है। बुनियादी शिक्षा में उद्योगों की प्रक्रियाओं को बार बार करना होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ६ से १४ वर्ष की आयु के बच्चों की मूल प्रवृत्तियों का बुनियादी शिक्षा-द्वारा पोषण होता है और यह पद्धति सीखने के मनोविज्ञान के अनुकूल है।

थार्नडाइक ने ही तीन प्रकार की बुद्धियों की चर्चा की है—यान्त्रिक सामाजिक और सूक्ष्म। यान्त्रिक बुद्धि का अर्थ है यन्त्रों को मूर्त पदार्थों को समझना और उनका प्रयोग करना। सामाजिक बुद्धि का अर्थ है दूसरे मनुष्यों के साथ बुद्धिमानीपूर्वक आचरण करना। और सूक्ष्म बुद्धि का अर्थ है ऐसी क्षमता जिससे विचारों को समझकर उनका व्यवहार करना। इन तीनों प्रकार की बुद्धियों का विकास जिस शिक्षा-पद्धति से होता है वही शिक्षा पद्धति श्रेष्ठ है। जिस अवस्था में इस विकास की नींवें पडनी चाहिए वह अवस्था ६ से १४ वर्ष तक की ही अवस्था है। इसी अवस्था में यदि इन तीनों प्रकार की बुद्धियों का विकास किया जा सके तो

अधिक उत्तम होता है क्योंकि इसी की नींवें पर बालक के व्यक्तित्व की पूरी भित्ति खड़ी की जाती है। विकास का यह कार्य यदि समन्वित रूप से हो तो सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है क्योंकि यह अवस्था विशेषीकरण (स्पेशलाइजेशन) की नहीं होती और किसी विशेष प्रवृत्ति का पोषण इस स्तर की शिक्षा का लक्ष्य नहीं होता, नहीं होना चाहिए। बुनियादी शिक्षा से इन तीनों प्रकार की बुद्धियों का समन्वित विकास होता है।

बुनियादी शिक्षा की विशेषताएँ

(१) बेसिक स्कूलों के बच्चों को हाथ से काम करना पड़ता है। अतः उद्योग की क्रियाएँ करते समय स्वभावतः उनकी यान्त्रिक क्षमता विकसित हो जाती है। किताबी शिक्षा में इस क्षमता का विकास नहीं होता, वह ज्ञान शब्दों के अमूर्त माध्यम द्वारा प्राप्त किया जाता है। सूक्ष्म शब्दों द्वारा सीखने से यान्त्रिक बुद्धि का विकास नहीं होता। यान्त्रिक बुद्धि का विकास तो स्वयं अपने हाथ से काम करने से होता है।

(२) बेसिक शिक्षा पद्धति में सामाजिक बुद्धि का भी विकास होता है। इस पद्धति में अकेला चुपचाप बैठकर किताब पढ़ने की बात सोची नहीं जा सकती। उद्योगों के कार्यान्वयन की योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने में बालक को दूसरों के साथ काम करना पड़ता है। इससे उसमें सहकारिता उदारता और सहिष्णुता आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है। यही गुण सामाजिक बुद्धि के मूल में है।

(३) शिल्प अथवा उद्योग की क्रियाओं के क्यों और कैसे को जानने सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण के रहस्यों को समझने और नियमों को समझने की चेष्टा में बालक की सूक्ष्म बुद्धि का विकास हो जाता है। डाक्टर जाकिर हुसैन लिखते हैं– शिक्षाप्रद कार्य के चार अध्याय होते हैं–पहला यह समझना कि क्या करना है दूसरा, काम की योजना बनाना अर्थात यह सोचना कि काम को पूरा करने के लिए कौन सा औजार चाहिए उनको जुटाना और किस क्रम में काम किया जाय इसे सोचना और तय करना। तीसरा अध्याय है काम का करना और चौथा है काम को करने के बाद उसे परखना और यह देखना कि उसमें कितनी सफलता मिली है और कितनी कोर-कसर रह गयी है। स्पष्ट है कि तीसरे-काम को छोड़कर बाकी सब क्रियाएँ ऐसी है जिनसे सूक्ष्म बुद्धि का विकास होता है। अस्तु, बुनियादी शिक्षा में सूक्ष्म बुद्धि को विकसित करने की बहुत गुंजाइश है और जैसा गांधीजी ने कहा था कि यदि हाथ के काम की शिक्षा यन्त्रवत न हो तो इस पद्धति में बुद्धि के विकास की भी अपार क्षमता भरी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ६ से १४ वर्ष की आयु के बालकों के

लिए जिस मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है और जिस शिक्षण पद्धति के द्वारा बालक की समस्त बौद्धिक क्षमताओं का यान्त्रिक सूक्ष्म और सामाजिक क्षमताओं का समन्वित विकास सम्भव है— वह क्षमता बुनियादी शिक्षा पद्धति में है। इस अवस्था के बालकों के लिए यह एक सर्वोत्तम प्रणाली है और आवश्यकता इस बात की है कि इसके रूप को विकृत किये बिना इसका निष्ठापूर्वक कार्यान्वयन किया जाय।

बुनियादी शिक्षा की रूप विकृति

रूप विकृति से मेरा क्या तात्पर्य है मैं उसे भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं। प्रारम्भिक बुनियादी शिक्षा (मैं उसके व्यापक रूप की बात नहीं कहता) अथवा ६ से १४ वर्ष के बालक की कक्षा—१ से ७ या ८ साल की शिक्षा एक अखण्ड इकाई है। उसे ६ से ११ और १२ से १४ वर्ष के दो खण्डों में नहीं बाँटना चाहिए। अगर प्रशासनिक दृष्टि से यह विभाजन आवश्यक भी हो तो पाठ्यक्रम की दृष्टि से उसे एक इकाई ही रखना चाहिए। इकाई का अर्थ है कक्षा १ में जो विषय प्रारम्भ हों वे कक्षा ७ (या ८) तक अनिवार्य रूप से चलें और इस अवधि में न किसी प्रकार का स्पेशलाइजेशन हो और न किसी प्रकार का वैकल्पिक चुनाव (बाइफर्केशन)। बुनियादी शिक्षा केवल ६ से ११ वर्ष की आयु तक यानी ५ वर्ष तक ही न चलायी जाय—वह एक अखण्ड प्रक्रिया के रूप में पूरे ७ या ८ वर्ष तक चलायी जाय। डाक्टर जाकिर हुसैन ने तुर्की (बिहार) के अखिल भारतीय नयी तालीम सम्मेलन में स्पष्ट कहा था कि यह बटवारा एक बड़ी भारी चूक है। इस तरह काम अधूरा ही नहीं रहेगा बल्कि सिरे से होगा ही नहीं। जो बहलाव होगा मन फुसलाव होगा कि राष्ट्रीय शिक्षा हो रही है और उसपर करोड़ों रुपये लग रहे हैं। बात यह है कि बच्चे की जिन्दगी में वही प्रवृत्तियाँ स्थायी हो पाती हैं जो ९ से १४ वर्ष की अवस्था में सीखी जाती हैं। इसलिए अगर सरकार ५ ही वर्ष की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकती है तो वह ९ से १४ वर्ष की शिक्षा का प्रबन्ध करे। ६ से ९ वर्ष की शिक्षा को वह व्यक्तिगत संस्थाओं के हाथ में वैसे ही छोड़ दे जैसे शिशु शिक्षा की व्यवस्था छोड़ दी गयी है। लेकिन अगर चले तो कक्षा १ से कक्षा ७ तक की अखण्ड शिक्षा चले। खण्डित बुनियादी शिक्षा से बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा नहीं हो सकती। बुनियादी शिक्षा के ये सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि कोठारी आयोग ने इनकी महत्ता को स्वीकार करते हुए माना है कि शिक्षा पद्धति के प्रत्येक स्तर के मार्गदर्शन करने की शक्ति बुनियादी शिक्षा के इन तत्त्वों में है। आयोग ने स्वीकार किया है कि रिपोर्ट में जो प्रस्ताव रखे गये हैं वे इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बनाये गये हैं। ●

उत्पादन-उन्मुख शिक्षण

शिक्षा की जिम्मदारी विषय-केन्द्रित शिक्षा का निकम्मापन क्रियात्मक शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विशेषता उत्पादन मूलक शिक्षण का कार्यान्वयन उत्पादक क्रियाशीलन का सयोजन शिक्षक की सावधानिया ।

शिक्षा की जिम्मदारी

आज शिक्षा का काय सिर्फ इतना तक ही सीमित नहा माना जाता कि वह प्रचलित सभ्यता और सस्कृति क सस्कारा का बालक-बालिकाओ म पनपाय बल्कि शिक्षा का दायित्व यह भी है कि वह नयी पीढ़ी का उसके इद गिद होनवाले परिवतन के प्रति जागरूक बनाय । इसस वे भविष्य के सुयोग्य नागरिक बनग और आग होनवाले परिवतन को समुचित मोड देन म सफल होग ।

शिक्षा से बालक तथा बालिकाओ म एसी क्षमताओ और योग्यताओ का विकास होना ही चाहिए जिसक द्वारा उन्ह अपन भावी जीवन की परिस्थितियो को समझन और उन परिस्थितियो म से उत्पन्न होनवाली समस्याओ को सुलझान म सफलता मिल सके । यदि बालक-बालिकाओ को दी जानवाली शिक्षा उनकी जिन्दगी से सम्बन्धित न हो तो उस शिक्षा का उनके लिए कोई व्यावहारिक उपयोगिता नही रह जाती । आज के समाज म योग्य नागरिक की हैसियत से जीने के लिए बालक-बालिकाओ म जिस ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता है वह यदि उन्ह शिक्षा से न प्राप्त हो तो और कहाँ स प्राप्त होगी ?

रुद्रभान
नयी तालीम भव सेवा सघ
वाराणसी

शिक्षा जीवन की परिस्थितियां और समाज की समस्याओं पर आधारित हो इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ साथ यह भी निहायत जरूरी है कि वह बालक-बालिकाओं के बढ़ने के समय की मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताओं (ग्रोथ कैरेक्टरिस्टिक्स) की पूर्ति भी कर सके।

विषय-केन्द्रित शिक्षा का निकम्मापन

आज के भारतीय विद्यालयों में विषय-केन्द्रित शिक्षा की जो प्रणाली प्रचलित है वह कुछ नौकरियां दिलाने के लिए भले ही उपयुक्त हो, पर शैक्षिक दर्शन की कसौटी पर कसने पर वह निकम्मी ही साबित होती है। भारतीय परिस्थिति और मूलभूत शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि शैक्षिक ढांचे में कुछ बुनियादी परिवर्तन किये जायें। शिक्षा को प्रारम्भिक से लेकर उच्चतम स्तर तक उत्पादनमूलक बनाना परिस्थिति की न्यूनतम मांग है।

उत्पादनमूलक शिक्षण की मुख्य विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत छात्र ऐसे निर्माणकारी कार्यक्रम में संलग्न होते हैं जिससे कुछ ऐसी चीजें तैयार हो सकें जिनकी उन्हें सख्त जरूरत है। कार्यक्रम का चुनाव करते समय अधिकांश छात्रों की आवश्यकताओं में से ऐसी आवश्यकता की पूर्ति का काम हाथ में लेना होगा जिसमें सबकी दिलचस्पी हो।

जब बालकों को अपनी रुचि के काम में लगने का अवसर मिलता है तो वे सोचने समझने की कोशिश करते हैं कि उनके लिए कौन सा काम उपयोगी है और वह कैसे किया जाय। उस काम को करने के लिए जिन कुशलताओं की आवश्यकता होती है जिन साधनों सामानों के इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ती है और जो जो अन्य जानकारियां हासिल करनी पड़ती हैं उन सबके लिए बालक का मन से तैयार हो जाते हैं। चूंकि बालकों की अपनी रुचि के काम में गहरी दिलचस्पी जाग उठती है इसलिए उस कार्य के सम्बन्ध में जो कुछ सीखना जरूरी हो उसे वे खुशी-खुशी सीख लेते हैं। उस काम का कुछ हिस्सा उबानेवाला हो तो भी उसे वे उत्साह से पूरा कर लेते हैं बशर्ते उस कार्य से सचमुच उनकी किसी आवश्यकता की पूर्ति होनेवाली हो।

कुछ शिक्षाविदों के दिमाग में एक भ्रान्त धारणा जड़ जमा चुकी है कि अधिक से अधिक विषयों की गहरी जानकारी ही बालक के बौद्धिक विकास की मुख्य आवश्यकता है अतः अच्छे छात्रों का पूरा समय विभिन्न विषयों के अध्ययन, अभ्यास में लगना चाहिए और जो छात्र मन्द-बुद्धि हैं उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बदले किसी उद्योग या रोजगार की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। समाज के मन्द-बुद्धि छात्रों के लिए यही मौजूं है। इस भ्रान्त धारणा की बुनियाद पर तथाकथित पब्लिक स्कूलों का शैक्षिक ढांचा खड़ा है, जहां छात्रों को विषय-केन्द्रित शिक्षा-क्रम

के अंतर्गत दर्जनों छिटपुट विषयों की जानकारी मात्र स्मरण शक्ति के आधार पर करायी जाती है और कहा जाता है कि इस प्रकार के शिक्षण से ही समाज को प्रतिभाशाली और विशेषज्ञ व्यक्ति प्राप्त हो सकते हैं।

विषय-केन्द्रित शिक्षा के कट्टर हिमायती वस्तुतः शिक्षा मनोविज्ञान के एक बुनियादी आधार को ही अवहेलना करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि छिटपुट ढंग से प्राप्त किया गया विभिन्न विषयों का ज्ञान कितना भी सुनियोजित क्यों न हो उसके द्वारा बालक का संतुलित विकास नहीं हो पाता। इसके विपरीत जीवन की क्रियात्मक प्रवृत्तियों के बीच में से गुजरते हुए जो ज्ञान या अनुभव बालक को प्राप्त होता है वह बालक के सामंजस्यपूर्ण बौद्धिक विकास का मजबूत आधार बन जाता है।

क्रियात्मक प्रवृत्तियों के संदर्भ में प्राप्त ज्ञान-द्वारा बालक को अपने इर्द गिर्द के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण को समझने का अनायास ही सुअवसर प्राप्त होता है। अतः क्रियात्मक प्रवृत्तियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति एक ऐसी सहज प्रक्रिया है जिसे किसी भी प्रगतिशील शिक्षण का मजबूत आधार बनना चाहिए।

क्रियात्मक शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विशेषता

क्रियात्मक प्रवृत्तियों द्वारा शिक्षण देने का जो आर्थिक तथा सामाजिक महत्त्व है उसे प्रायः सभी लोग स्वीकार करते हैं। किन्तु इसकी कोई शिक्षा शास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक उपयोगिता भी है यह कुछ लोगों के लिए अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

क्रियात्मक प्रवृत्तियों-द्वारा शिक्षण प्रदान करने के निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक आधारों पर हमारा ध्यान जाना चाहिए

- ६ से १४ वर्ष की आयु के बालक अपने जन्मजात स्वभाव के अनुसार सक्रिय रहते हैं। जीवन की परिस्थितियों में साँस लेते हुए जो अनुभव इस आयु में बालक प्राप्त करते हैं वह उनके ज्ञान प्राप्त करने का सबसे उपयुक्त माध्यम है। शैक्षिक मनोविज्ञान इस तथ्य पर जोर देता है और बताता है कि बच्चे की इस उम्र की सहज रुचि और अनुभव उसकी ज्ञानवृद्धि के लिए प्रेरक अवसर उपस्थित करते हैं।
- बालक अपने विकास के दौरान किसी उत्पादक क्रिया में ऐसा ज्ञान सहज ही प्राप्त करता रहता है जो इर्द गिर्द के जीवन से उसे आसानी से उपलब्ध हो जाता हो। अन्य ऐसा ज्ञान अथवा जानकारियाँ सीखना जिसका उसकी आवश्यकता से सम्बन्ध न हो और जिसका बालक के जीवन की परिस्थितियों से कोई लगाव न हो बालक के मस्तिष्क पर बोझ बनते हैं।

- क्रियात्मक प्रवृत्तियों से उद्भूत शिक्षण प्रणाली बालक के सहज सन्तुलित विकास पर जोर देती है। वह बालक को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखते हुए उसे किसी न किसी प्रकार के उपयोगी उत्पादन-मूलक कार्यक्रम मे सहकारी ढंग से शामिल होने की सुविधा देते हुए बालक के शरीर, कर्मेन्द्रियों और बुद्धि के समग्र विकास का आयोजन करती है।
- क्रियात्मक प्रवृत्तियां-द्वारा शिक्षण देने की प्रक्रिया-द्वारा बच्चे के शिक्षण के अनुभव, परिवार के अनुभव तथा समाज के अनुभव में एकता स्थापित होती है। इससे बालक का व्यक्तिगत और सामाजिक विकास साथ-साथ होता है और वह अपने जीवन की परिस्थितियों और उसकी समस्याओं से भली प्रकार परिचित हो जाता है।
- क्रियात्मक प्रवृत्तियों द्वारा शिक्षण देने के लिए निरन्तर पूर्व सयोजन (प्लैनिंग) कार्यान्वयन (एग्जिक्यूशन) तथा मूल्यांकन (इवेल्यूएशन) की आवश्यकता पड़ती है। सयोजित विकास (प्लैंड डेवलपमेंट) के ये अनिवार्य अंग हैं जिनकी दीक्षा बालकों को बचपन से ही मिलने लगती है।

उत्पादनमूलक शिक्षण का कार्यान्वयन

क्रियात्मक प्रवृत्तियां-द्वारा शिक्षण देना जीवन-शिक्षण का पहला कदम है। इसके द्वारा बालक का शारीरिक, बौद्धिक और सामाजिक विकास साथ-साथ सम्पन्न होता चलता है। उत्पादनमूलक शिक्षण इसीका अगला कदम है। उत्पादनमूलक शिक्षण अपने आप मे मूलतः एक शैक्षिक कार्यक्रम है किन्तु उसका आर्थिक पक्ष भी है और वह यह कि उसके द्वारा बालक के भीतर आत्मनिर्भरता (सल्फ रिलायन्स) की क्षमता विकसित होती है। अपनी आरम्भिक स्थिति में यह आत्मनिर्भरता आंशिक होगी और बालक की शैक्षिक दीक्षा पूर्ण होते होते वह भी स्वयं परिपूर्ण हो जायगी यानी पूर्णतया उत्पादनमूलक शिक्षण प्राप्त करने के बाद छात्र में ऐसी योग्यता आ ही जानी चाहिए कि (१) वह प्राकृतिक साधनों और शक्तियों का बुद्धिमानी के साथ उपयोग कर सके, (२) परिवार तथा समुदाय में जो भी साधन उपलब्ध है उनका कुशलतापूर्वक उपयोग करते हुए अधिक समृद्ध और विकासोन्मुख जीवन-स्तर प्राप्त कर सके।

उत्पादनमूलक कार्यक्रम-द्वारा छात्र को ज्ञान प्राप्त करने का सहज स्वाभाविक और भरपूर अवसर मिल सके इसके लिए आवश्यक है कि उत्पादनमूलक कार्यक्रम से सम्बन्धित हर महत्वपूर्ण पहलू पर गहराई से विचार कर लिया जाय कि उत्पादनमूलक शिक्षण के सफल कार्यान्वयन के लिए शिक्षकों में दुहरी योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। एक ओर उन्हें बालक तथा बालिकाओं की सहज प्रवृत्तियां और रुचियों की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए, दूसरी ओर उन्हें

समकालीन समाज की आवश्यकताओ समस्याओ और उन भीतरी शक्तियो का खासा अच्छा ज्ञान होना चाहिए जो समकालीन समाज म सक्रिय है। एसी योग्यता होन पर ही शिक्षक एसे कायक्रम का सयोजन करन म सफल हो सकते ह जो बालको तथा बालिकाओ को उपयोगी ज्ञान प्रदान कर सके। उत्पादनमूलक शिक्षण का सन्तुलित पाठ्यक्रम (बलस्ड केरिकुलम) बनान के लिए समाज की तात्कालिक आवश्यकताओ तथा उस समाज म पढनवाले बालको की आवश्यकताओ का ध्यान रखना आवश्यक होगा। पाठ्यक्रम का ढाचा बनाते समय समाज के सास्कृतिक मूल्यो मानाजन करन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ और बालको के विकास की विभिन्न अवस्थाओ म प्रकट होनवाली रुचियो और रुझानो का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा तभी वह अपन शक्ति उद्देश्य की पूर्ति कर पायगा।

उत्पादक क्रियाशीलन का सयोजन

निर्माणात्मक अथवा उत्पादन कायक्रम का सयोजन करते समय किसी भी कुशल शिक्षक को निम्नलिखित पहलुओ का ध्यान रखना आवश्यक होगा —

- कायक्रम का चुनाव करत समय इस बात की भरपूर सावधानी बरतनी कि कक्षा के कुल छात्र उस कायक्रम म कही न कही सक्रिय रह सक। इसका अथ यह नही कि यदि कक्षा म ४० छात्र ह तो सबके सब एक ही काम म लगाय जायग बल्कि आशय यह है कि उस काय के विभिन्न अगो का कायान्वयन इस ढग से सगठित तथा सयोजित किया जायगा कि उसम प्रत्येक न कहीं प्रत्यक सक्रिय हो सक। उदाहरण के लिए मान ल कि निर्धारित कायक्रम को पूरा करन म ८ से १० छात्रों की आवश्यकता पडनवाली है एसी स्थिति म कक्षा के बाकी छात्रो के लिए एसे पूरक क्रियाशीलन की व्यवस्था करनी पडगी जिसम लगन पर छात्रो को यह प्रतीत हो कि वे उसी कायक्रम के किसी न किसी अग की पूर्ति म लग हुए ह। कुछ छात्र उस कायक्रम की योजना बनान म लगाय जा सकते ह कुछ उस कायक्रम को सरस और दिलचस्प बनान के लिए चित्र तथा अन्य सामान जुटान म सलग्न हो सकते ह।
- इस प्रकार का कायक्रम चलान के लिए कक्षा को टोलियो म विभाजित करना आवश्यक होगा ताकि प्रत्यक टोली बारी-बारी से कायक्रम के प्रत्यक हिस्से के कार्यान्वयन म शरीक हो सके।
- कायक्रम म छात्रों को लगान के पहले ही शिक्षक को यह देख लेना होगा कि जिस जिस साधन सामान की जरूरत पडनवाली है वह उपलब्ध ह न

लायक हो। छात्रों को इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि अमुक साधन, सामान कहाँ रखा हुआ है।

- छात्रों को यह तो मालूम रहना ही चाहिए कि वे कौन से कार्यक्रम में लगनेवाले हैं इसके साथ साथ उन्हें उसके कारण का भी ज्ञान होना चाहिए। कार्यक्रम की योजना बनाने और पूर्व तैयारी करने में शिक्षक के साथ-साथ छात्रों का भी यथासम्भव योगदान होना चाहिए। प्रत्येक छात्र को पहले से ही ज्ञान रहना चाहिए कि उसे कार्यक्रम के दौरान क्या-क्या करना होगा, किस टोली में रहना होगा, और किन चीजों से काम करना होगा।
- कार्य की योजना बनाते समय छात्र को यह अवसर मिलना चाहिए कि वे कार्यक्रम में शरीक होने के साथ-साथ उसके उद्देश्य को समझ सकें, मिल-जुलकर उसके कार्यान्वयन पर विचार कर सकें, सुझाव दे सकें और दूसरा के सुझाव मान सकें। प्रारम्भ में उन्हें इस बात का अवसर मिलना चाहिए कि वे अपनी पसन्द से काम का स्वयं चुनाव कर सकें। बाद में उन्हे कार्य के प्रत्येक पहलू का अभ्यास करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए। उनके भीतर यह क्षमता भी आनी चाहिए कि कार्यक्रम के पूरा होने पर वे उसकी समीक्षा करके सफलता का मापदण्ड तय कर सकें।

शिक्षक की सावधानियाँ

शिक्षक को इस सन्दर्भ में निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी होंगी—

- प्रत्येक छात्र अपने को समूह का एक अंग अनुभव करे,
- प्रत्येक छात्र को यह मालूम रहे कि उसे क्या करना है,
- प्रत्येक छात्र और उसकी टोली के कार्यक्रम की जाँच कर ली गयी हो,
- छात्रों में सुझाव तथा आलोचना स्वीकार करने की आदत पैदा हो,
- साधन, सामान का किफायतशारी और समझदारी से उपयोग हो सके,
- छात्रों में सही सही जानकारी एकत्र करने की आदत बने,
- छात्रों को क्रियात्मक सोच विचार करने की प्रेरणा मिले,
- छात्रों को नये साज-सामान का उपयोग करने का अवसर मिले,
- दुर्घटना न होने पाये इसकी सावधानी रखी जाय, और
- छात्र-समूह ने कार्यक्रम में शरीक होने पर मन में कैसा अनुभव किया यह मालूम हो सके।

जिस समय छात्र अपने कार्यक्रम के क्रियान्वयन में जुट जायँगे, शिक्षक बारी-बारी से प्रत्येक छात्र और टोली के पास जायगा और जिसे जिस प्रकार के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होगी वह देगा। कभी आवश्यक हुआ तो किसी साज-सामान या औजार का ठीक-ठीक इस्तेमाल करने का ढग बताने के लिए शिक्षक पूरी कक्षा के छात्रो का ध्यान उस ओर आकर्षित कर सकता है और कह सकता है कि छात्रो में से कोई आगे आकर उस औजार का ठीक उपयोग करके दिखाये।

शिक्षक छात्र-समूह में घूमते समय इस बात पर निगाह रखेगा कि कौन छात्र अपना कार्य कुशलता के साथ पूरा कर रहा है, कौन छात्र समूह में अच्छी तरह निभ रहा है, कौन अपने भरोसे पर काम कर रहा है, और किसे औरो के सहयोग की आवश्यकता पड रही है।

कार्यक्रम का चुनाव करते समय पहले कार्यक्रम चुनना चाहिए जिसे पूरा करने में लम्बे समय तक लगे रहने की आवश्यकता न पडे। जैसे-जैसे छात्रो को अनुभव मिलेगा वे अपेक्षाकृत अधिक समय तक चलनेवाले कार्यक्रम में दिल-चस्पी लेते जायँगे। ●

लेखक
विनोबा

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,

राजघाट, वाराणसी–१

आज हर समझदार और चैतन्य व्यक्ति यह सोचता है कि प्रचलित शिक्षा का स्वरूप और ढंग बदलना चाहिए। यह कैसे हो? स्वरूप और ढंग क्या हो?

विनोबाजी ने अनेक प्रसंगों पर शिक्षा के स्वरूप और पद्धति पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। शिक्षण विचार नाम की पुस्तक में उनके उन सभी विचारों को संकलित किया गया है। शिक्षण के लिए चिन्तित सभी लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

पृष्ठ—३६८ मूल्य—२.५०

शिक्षण और समाज

शिक्षा की बुनियाद, शिक्षा-पद्धति का पहला कदम, गर्भ-कालीन शिक्षा और समाज, माता की शिक्षण-प्रक्रिया, शिक्षण की लोकतान्त्रिक व्यवस्था, लोकतन्त्री शिक्षण की दिशा, लोकतन्त्र के अधिष्ठान का प्राथमिक आन्दोलन, शिक्षण की कसौटी स्वावलम्बन, सामुद्रिक वर्तुल की शिक्षण-व्यवस्था।

शिक्षा की बुनियाद

प्रश्न—आज शिक्षा जगत में शिक्षा की दृष्टि तथा पद्धति के प्रश्न पर अनेक प्रकार के चिन्तन चल रहे हैं। उनमें मुख्य चर्चा का विषय यह है कि शिक्षा विषय-केन्द्रित (सब्जेक्ट सेण्टर्ड) हो या बालक-केन्द्रित (चाइल्ड-सेण्टर्ड) ? आधुनिक शिक्षक का रुझान बालक-केन्द्रित शिक्षण-पद्धति की ओर है। इस प्रश्न पर आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—आधुनिक शिक्षक का विचार बालक-केन्द्रित शिक्षण पद्धति की ओर मुड़ रहा है यह शुभ संकेत है। लेकिन यह सही दिशा में एक प्रारम्भिक कदम है इतना समझना चाहिए। वस्तुतः बालक का कोई स्वतन्त्र और निरपेक्ष अस्तित्व नहीं है। उसका एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व जरूर है फिर भी वह अकेला नहीं है, एक सामाजिक प्राणी है। इस विज्ञान और लोकतन्त्र के युग में सामाजिक वातावरण बालक के व्यक्तित्व के अधिकांश हिस्से को प्रभावित करता है अतएव *शिक्षा का केवल विषय-केन्द्रित शिक्षण-पद्धति की विचारधारा को तो छोड़ना है ही* लेकिन शिक्षा में सिर्फ बालक-केन्द्रित पद्धति की बात सोचना भी नाकाफी होगा। आज तो शिक्षा को बालक और समाज की समन्वित बुनियाद पर विकसित करना होगा। जबतक लोकतन्त्र और समाजवाद का पूर्ण वैज्ञानिक विकास नहीं हो जायगा तबतक बालक समाज के भिन्न भिन्न हितों के घात प्रतिघातों से

धीरेन्द्र मजूमदार

बचा नहीं रह सकेगा। इस परिस्थिति को केन्द्र में रखकर ही शिक्षा का सयोजन होना चाहिए नहीं तो बालक का विकास निरपेक्ष व्यक्तित्व के रूप मे होता रहेगा और समाज अपनी क्रिया प्रतिक्रिया की परिणति पर चलता रहेगा। इसके फलस्वरूप समाज और शिक्षित व्यक्ति एक दूसरे से अलग पड जायेंगे। व्यक्ति सामाजिक जीवन में असफल रहेगा और समाज शिक्षण प्रक्रिया के दायरे से बाहर रहने तथा शिक्षित व्यक्तियो के अनुबन्ध म विकसित न हो सकने के कारण कुठित रहेगा। इसी स्थिति के निराकरण के लिए गाधीजी कहते थे कि शिक्षा की अवधि गर्भ से मृत्यु तक है और शिक्षण शाला पूरा समाज है।

शिक्षण पद्धति का पहला कदम

प्रश्न—लेकिन इस विज्ञान के युग में विषयो के ज्ञान का महत्व बहुत अधिक बढ गया है। विषय शिक्षण का स्थान यदि गौण रहेगा तो क्या समाज में वैज्ञानिक प्रगति हो सकेगी ? और अगर विज्ञान की प्रगति नहीं हुई तो क्या लोकतन्त्र भी कुठित नहीं होगा ?

उत्तर—शिक्षा को समाज और बालक की समन्वित बुनियाद पर विकसित करने के विचार का आशय यह नहीं है कि विषयो का महत्व गौण हो या कम हो। विषय अपने आप म कोई अलग चीज नहीं हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करना अमुक समस्या के समाधान के लिए आवश्यक होता है। अर्थात मूल में विषयो के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है बल्कि व्यक्ति और समाज के विकास की आकाक्षा है और ज्ञान उस आकाक्षा पूर्ति का उपादान मात्र है। विषयो का ज्ञान सहज रूप से प्रगति की आवश्यकता के अनुसार विकसित हुआ है और आगे भी होगा। शिक्षा पद्धति म इसका इसी प्रकार सयोजन करना होगा।

मनुष्य को जिन्दा रहने के लिए मुख्यरूप से जो सामग्रियाँ चाहिएँ उनकी प्राप्ति के लिए प्रकृति का ज्ञान चाहिए, प्रकृति प्रदत्त साधनों से अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उत्पादन का ज्ञान चाहिए। अधिक से अधिक उत्पादन हो अच्छी से अच्छी जिन्दगी बितायी जा सके, इसके लिए प्रकृति और उत्पादन का विज्ञान चाहिए। अत जिन्दा रहने के बुनियादी कार्यक्रम तथा अच्छी तरह से और आनन्दमय तरीके से जिन्दा रहने के सभी कार्यक्रमो के साथ आवश्यक ज्ञान का समवाय नयी शिक्षण पद्धति के विकास का पहला कदम होगा।

समाज म मनुष्य शान्ति और सहूलियत से रहना चाहता है। इस आकाक्षा की पूर्ति में समाज के भिन्न भिन्न हितो के कारण अनेक समस्याएँ खडी होती हैं और उन्हें हल करने के प्रयास में समाज शास्त्र के भिन्न भिन्न पहलुओ का ज्ञान आवश्यक होता है। उपरोक्त सामाजिक कार्यक्रम के साथ भिन्न भिन्न शास्त्रीय

ज्ञान का समवाय शिक्षा पद्धति का दूसरा नाम होगा। इस प्रकार विषयों का ज्ञान शिक्षण में सहज रूप से व्यक्तिगत तथा सामाजिक कार्यक्रम के साथ प्राप्त होता जायगा। आज शिक्षा में 'प्योर साइंस' सिखायी जाती है फिर 'अप्लायड साइंस' के रूप में उस ज्ञान को जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन जब शिक्षा को विज्ञान और लोकतंत्र का आवश्यकता के लिए सार्वजनिक बनाने की जरूरत पड़ती है और जब मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षण की अवधि गर्भ से मृत्यु तक फैल जाती है तब विषयों के ज्ञान की उपरोक्त पद्धति काम नहीं आयगी। आज की भूमिका में उस पद्धति को बदलना होगा। अब शिक्षा जगत में 'प्योर साइंस' और 'अप्लायड साइंस'—जैसी कोई चीज नहीं रहेगी। अब सिर्फ 'रिवकायड साइंस' रहेगी। ज्ञान की आवश्यकता ही साइंस की प्रगति को सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और और सूक्ष्मतम की ओर ले जायगी। लेकिन इस प्रकार का प्रयास और प्रयोग व्यक्ति और समाज की प्रगति के निश्चित हेतु के साथ जुड़ा हुआ रहेगा। तब वह प्रयास अधिक सरल होगा, सार्थक होगा।

प्रश्न—आपने कहा है कि शिक्षण समाज के समन्वित विकास के कार्यक्रम के समवाय में संयोजित होना चाहिए और बालक को सामाजिक प्राणी के रूप में ही देखना चाहिए। समाजवादी देशों की शिक्षा-नीति भी कुछ ऐसी ही है, तो क्या आप उसका समर्थन करेंगे?

उत्तर—मैं उसे उतना ही गलत मानता हूँ जितना केवल बालक-केन्द्रित शिक्षण-पद्धति को। यह सही है कि आज के बालक की जिन्दगी का अधिकांश हिस्सा समाज की परिस्थिति से प्रभावित होता है और इस कारण उसकी जिन्दगी काफी हद तक समाज-केन्द्रित हो जाती है फिर भी एक मनुष्य के नाते उसका स्वतंत्र अस्तित्व होता है और उसमें एक विशिष्ट तथा निरपेक्ष व्यक्तित्व भी होता है। मैं मानता हूँ कि व्यक्ति और समाज का विकास अन्योन्याश्रित है इसलिए दोनों के समन्वित विकास के कार्यक्रम को केन्द्र मानकर ही शिक्षण प्रक्रिया चलनी चाहिए। समाजवादी देशों में बालक के स्वतंत्र तथा निरपेक्ष व्यक्तित्व का महत्व नहीं है। उन देशों में बालक को समाज का एक अंग मात्र मानते हैं। ऐसा मानना मूल वस्तुस्थिति से ही इनकार करना है।

गर्भकालीन शिक्षा और समाज

प्रश्न—व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं, आपका यह विचार ठीक लगता है लेकिन गोद के बच्चे का प्रश्न अलग नहीं है क्या? क्या वह मां की गोद में स्वतन्त्ररूप से नहीं विचरता है? समाज से उसका क्या सम्बन्ध

रहता है ? इस अवस्था में क्या शिक्षण केवल बालक केन्द्रित ही नही रहेगा ?

उत्तर—आपने मां की गोद के बच्चा का जिक्र किया है। लेकिन मैंने तो ऊपर कहा है कि शिक्षा की अवधि गर्भ से मृत्यु तक की है। गर्भ के बच्चे के बारे में भी अगर विचार करेंगे तो देखेंगे कि वह भी समाज के प्रभाव से बचा हुआ नहीं रहता है। माँ के गर्भ में बच्चे के संस्कार और मानस पर मां की परिस्थिति और मन स्थिति का बहुत गहरा असर पडता है यह तो सर्वविदित है। इसीलिए पुराने जमाने में गर्भकालीन शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाता था। पूरा समाज इस बात की फिक्र करता था कि मां के मन पर सामाजिक परिस्थिति का कोई बुरा असर न पडे। बच्चे का संस्कार निर्माण करने के लिए मां के चारों ओर अनुकूल वातावरण का संयोजन किया जाता था। इस संयोजन का अर्थ ही है कि गर्भ के बच्चे की शिक्षण प्रक्रिया में भी समाज को अलग नहीं किया जा सकता।

जब गर्भ के बच्चे को भी समाज से अलग नहीं माना जा सकता तब गोद के बच्चे को कैसे अलग माना जायगा ? वह तो गोद में बैठा बैठा ही समाज के सम्बन्धों को देखता और सुनता रहता है। अतएव हर अवस्था के बच्चे के लिए जब कभी व्यवस्थित शिक्षण योजना बनानी होगी तो बालक और समाज के समन्वित सम्बन्ध को ही केन्द्र मानना होगा।

माता की शिक्षण-प्रक्रिया

शिक्षा शास्त्री बच्चे के शिक्षण में माता के शिक्षण को शामिल करना अब आवश्यक मानने लगे हैं। लेकिन माता के शिक्षण का मतलब क्या है ? उन्हें स्वतन्त्र इकाई मानकर शिक्षण-योजना बन सकती है क्या ? बन सकती है अगर शिक्षा का मतलब विषयों की जानकारी मात्र हो लेकिन मैंने पहले ही कहा है कि इस मैं शिक्षण नहीं मानता हूँ। शिक्षा शास्त्री अगर माता को भी शिक्षण प्रक्रिया के अन्दर मानने लगे हैं तो उन्हें इतना और मानना होगा कि माता का शिक्षण भी सामाजिक शिक्षण का अनिवार्य अंग है। इस तरह गोद के बच्चे के शिक्षण में यद्यपि माता का शिक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण है फिर भी वह समन्वित शिक्षण-पद्धति का ही एक हिस्सा है।

शिक्षण की लोकतान्त्रिक व्यवस्था

प्रश्न—आपने अपना शिक्षण विचार प्रकट करने के सिलसिले में कहा है कि यह विचार विज्ञान और लोकतन्त्र की भूमिका में आवश्यक है। आज शिक्षा-जगत में इस प्रश्न पर काफी चिन्तन चल रहा है। आज के

समाज-शास्त्री यह मानने लगे हैं कि शिक्षा में लोकतंत्र का तत्त्व आना ही चाहिए। आपके विचार से शिक्षा-पद्धति में लोकतांत्रिक तत्त्व का समावेश कैसे होगा ?

उत्तर—लोकतंत्र की वर्तमान राजनीतिक परिभाषा शिक्षण में लागू नहीं हो सकती है। वह परिभाषा राज्य-व्यवस्था तक ही सीमित रह सकती है। शिक्षा-पद्धति में इसका प्रसंग नहीं आता है। वस्तुतः आज की राजनीतिक परिभाषा के अनुसार जिसे आप लोकतंत्र कहते हैं वह लोकतंत्र भी नहीं है, वह लोकमत-तंत्र है। आज का लोकतंत्र संचालन-पद्धति का है। अधिनायक-तंत्र और वर्तमान लोकतंत्र में इतना ही फर्क है कि आज के लोकतंत्र में संचालक कौन होगा, इसका निर्णय लोकमत से होता है। किन्तु उसका संचालन अधिनायकवादी तरीकों से ही होता है। और लोकमत का स्थान नहीं के बराबर रह जाता है, जबकि लोकतांत्रिक व्यवस्था का असली मतलब यह है कि संचालक कोई न रहे और सर्वानुमोदित व्यवस्था परस्पर सहकार से चलती रहे।

शिक्षण की योजना में लोकमत का स्थान है, लेकिन शिक्षण की पद्धति में लोकतंत्र के तत्त्वों का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। शिक्षण में शिक्षक की प्रतिभा, ज्ञान तथा साधना का लाभ शिक्षार्थी को अपने जीवन विकास के लिए मिलता है। अगर व्यक्ति और समाज को अपनी प्रगति के लिए शिक्षक की सिद्धियों का लाभ लेना है तो उसे शिक्षक के बताये हुए अनुभव को ग्रहण करना होगा, उनसे प्राप्त ज्ञान को आत्मसात करने का प्रयास करना होगा। लेकिन यह सब व्यक्ति और समाज की रुचि, अभिमत तथा शक्ति के अनुसार ही होगा। यानी शिक्षक जो कुछ देगा, शिक्षार्थी उसे विश्लेषण करके तथा विचारपूर्वक ग्रहण करेगा, न कि शिक्षक द्वारा दी हुई सामग्री को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेगा। शिक्षार्थी के कहे अनुसार शिक्षक अपनी शिक्षा पद्धति को नहीं ढाल सकता। वह अपने दर्शन, अध्ययन, मनन तथा अनुभव के आधार पर ही अपनी पद्धति विकसित करेगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि वही वास्तविक शिक्षक होगा जो अपने शिक्षा-क्रम में ऐसी परिस्थिति और वातावरण का निर्माण कर सके जिससे शिक्षार्थी परिस्थिति के समवाय में तथा अपने स्वतंत्र चिन्तन, मनन तथा अनुभव के आधार पर शिक्षक के दिये हुए ज्ञान को अपना सके। शिक्षक-द्वारा इस प्रकार की परिस्थिति और वातावरण के निर्माण को मैं शिक्षण में लोकतांत्रिक तत्त्व का समावेश मानता हूँ।

मैंने कहा कि शिक्षक दर्शन, अध्ययन, चिंतन, मनन तथा अनुभव से ज्ञान हासिल करता है। प्रश्न यह है कि यह ज्ञान उसे मिलेगा कहाँ से ? शिक्षक के लिए ज्ञान प्राप्ति का क्षेत्र सम्पूर्ण समाज होगा, उसकी परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ

अपना वोट दे सके तब ऐसी कोई पद्धति निकालनी पड़ेगी जिससे हर स्त्री-पुरुष को काफी ऊँचे दर्जे तक की शिक्षा दी जा सके। ऐसी शिक्षा के लिए हर एक मनुष्य को स्कूल के कमरों में दाखिल करना सम्भव नहीं है और न यही सम्भव है कि सामाजिक वातावरण की उपलब्धि के लिए समाज के कुल कार्यक्रमों को स्कूल के हाते में 'प्रोजेक्ट' किया जाय। लेकिन, प्रश्न यह है कि पूरे समाज को शिक्षण-शाला के रूप में परिवर्तित करने की पद्धति क्या होगी और वैसी शिक्षा-पद्धति की रूपरेखा क्या होगी ?

उत्तर—लोकतन्त्र का अधिष्ठान सामान्य कार्यक्रम नहीं है वह एक व्यापक क्रान्तिकारी आन्दोलन में ही सम्भव है। ऐसे आन्दोलन द्वारा लोकतन्त्र के लोक को अपने स्व के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए सचेत करना होगा। फिर उसे लोकतान्त्रिक समाज में मनुष्यों की सामुदायिक इकाई की आवश्यकता की बात समझानी होगी क्योंकि बिना समुदाय बनाये समाज की इकाइयों का परिपूर्ण संगठन नहीं हो सकता है और ऐसे संगठन के बिना समाज का कार्यक्रम नियोजित नहीं हो सकता है। जबतक सामाजिक कार्यक्रम चाहे वह उत्पादन का हो या सम्बन्धों और व्यवहार का हो, सुनियोजित नहीं होगा, तबतक वह व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध शिक्षण का माध्यम नहीं बन सकता है।

अतएव ग्रामदान तूफान के कार्यक्रम को शिक्षण का प्राथमिक आन्दोलन कह सकते हैं। फिर जब ग्रामसभा उत्पादन तथा पारस्परिक सम्बन्धों का नियोजन करेगी तो सहजरूप से वह हर उम्र हर प्रकृति तथा हर प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों का कार्यक्रम निर्धारित करने का प्रयास करेगी। जब इस प्रकार के समग्र कार्यक्रमों का संयोजन इस ढंग से किया जायगा जिससे उनके समवाय में पूरी शिक्षण-कला विकसित हो सके तो इस प्रयास में नयी शिक्षा-पद्धति का आविष्कार होगा। आज ऊपर से आप उसकी पूरी रूप रेखा जानना चाहेंगे तो नहीं जान सकेंगे। इतिहास में वास्तविक लोकतन्त्र की यह आवश्यकता सम्पूर्ण रूप में नयी है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि दुनिया के प्रतिभाशाली शिक्षाशास्त्री प्रयोग के लिए अपने अपने पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला से बाहर निकलकर ऐसे आन्दोलन में शामिल हों और बुनियादी लोकतन्त्र के संयोजन में लोक के साथ मिलकर पूरे समाज को अपनी प्रयोगशाला बनायें। जबतक ऐसा नहीं होगा तबतक दुनिया में विधान सभावाले लोकतन्त्र का नाटक ही चलता रहेगा और चूंकि यह नाटक है इसलिए सहज प्रगति के अभाव में अधिक दिनों तक टिक नहीं सकेगा।

प्रश्न— आपने जो सुझाव दिया है वह विशेषरूप से ग्रामदानी क्षेत्र में लागू हो सकता है, लेकिन सार्वत्रिक प्रयास का इसका स्वरूप क्या होगा ?

जहाँ ग्रामदान तूफान नहीं चल रहा है वहाँ पर अगर कोई इस दिशा में प्रयोग करना चाहता है तो वह किस छोर से आगे बढ सकेगा ?

उत्तर—आपने शुरू से ही विज्ञान और लोकतंत्र की भूमिका में शिक्षण-पद्धति क्या होगी यही चर्चा की है। समझना होगा कि जहाँ लोकतंत्र ही नहीं है, वहाँ उसकी भूमिका का सवाल ही नहीं उठता है। फिर आज दुनिया में बाल्य-केन्द्रित या उससे आगे बढ़कर माँ-केन्द्रित शिक्षण-पद्धति विकसित करने का जो प्रयास चल रहा है वही चलेगा। उसमें से लोकतंत्र के लिए समाज परिवर्तन की शक्ति नहीं निकलेगी। ऐसे प्रयासों की निष्पत्ति इतनी ही होगी कि प्रचलित समाज एक हद तक सुसंस्कृत तथा परिमार्जित होगा। लोकतंत्र के लिए शिक्षण के कार्य में जो जहाँ भी लगना चाहता है उसे ग्रामदान की तरह के आन्दोलन-द्वारा पहले लोकशिक्षण की भूमिका का निर्माण करना ही होगा। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तथा मुल्कों में ऐसे आन्दोलनों का नाम और प्रकार भिन्न-भिन्न होगा, लेकिन उसकी दिशा लोकतंत्र के लोक की बुनियादी इकाई को स्वतंत्र तथा सार्वभौम समुदाय के रूप में प्रतिष्ठित करने की होगी।

शिक्षण की कसौटी : स्वावलम्बन

प्रश्न— लेकिन प्रचलित समाज-व्यवस्था में भी आधुनिक शिक्षा-शास्त्री उत्पादन और समाज को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात करते हैं, क्योंकि वे शिक्षा को अधिक से अधिक वास्तविक जगत के साथ जोड़ना चाहते हैं ताकि शिक्षित व्यक्ति अधिक व्यावहारिक तथा आत्मनिर्भर बन सके। अभी हाल में भारतीय शिक्षा-आयोग की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें कार्यानुभव का महत्वपूर्ण स्थान रखा गया है। क्या कार्यानुभव को शिक्षा में दाखिल करने से यह प्रक्रिया सहजरूप से आपकी बतायी हुई समन्वित शिक्षण-पद्धति तक पहुँच सकती है ?

उत्तर—कुछ हद तक पहुँच सकती है बशर्ते वह केवल औपचारिक न होकर वास्तविक हो। कार्यानुभव कई प्रकार के होते हैं। जैसे,

(१) जहाँ उत्पादन तथा निर्माण का कार्य हो रहा है उन स्थानों में स्कूल के बच्चों को समय-समय पर ले जाकर अध्ययन-शिविर चलाना,

(२) शाला में उत्पादन तथा निर्माण-कार्य के नमूने संगठित कर बच्चों की दिनचर्या में उसे दाखिल करना,

(३) शाला में चलने वाले उद्योग तथा निर्माण-कार्य में शिक्षार्थी को शामिल कर उसके जरिये स्वावलम्बन साधना,

(४) समाज के भिन्न-भिन्न उत्पादन तथा निर्माण-कार्य में लगी हुई इकाई के लोगों को उन्हीं के कार्यक्रम के समवाय में शिक्षित करना।

आदि सभी कुछ उसके लिए माध्यम होंगी ज्ञान-प्राप्ति का। उसकी प्रक्रिया में लोकतंत्र के तत्त्व होंगे। क्योंकि समाज से ज्ञान हासिल करने के लिए उसे समुदायों के साथ चर्चाएँ करनी होंगी, उनकी प्रवृत्तियों में उनके साथ रहना होगा; तो इस प्रकार ज्ञान सहचिन्तन और सहचर्चा की उपलब्धि होगा। यह एक तरह से शिक्षक और शिक्षार्थी, उभय पक्षों के शिक्षण की प्रक्रिया होगी। शिक्षण में लोकतान्त्रिक तत्त्व के समावेश का यह दूसरा पहलू है।

शिक्षा लोकतान्त्रिक हो इसके लिए एक तीसरी बात—शिक्षक के लिए किसी राष्ट्रीय या क्षेत्रीय एजेंसी-द्वारा निर्धारित पद्धति को अपनाने की अनिवार्यता न हो, चाहे उस पद्धति का निर्धारण राजनीतिक संगठन-द्वारा किया गया हो या शिक्षकों के संगठन-द्वारा।

लोकतंत्रीय शिक्षण की दिशा

प्रश्न—आपने शिक्षा में लोकतंत्र के समावेश के स्वरूप का जो विवेचन किया है वह काफी रोशनी देनेवाला है। इस सिलसिले में एक दूसरे प्रश्न पर आपका विचार जानना चाहेंगे। वह यह कि समाज-परिवर्तन के लिए लोकतांत्रिक पद्धति क्या होगी? अबतक समाज-परिवर्तन की दो ही पद्धतियाँ रही हैं—(१) आतंकवादी और (२) वैधानिक।

प्रचलित मान्यता के अनुसार कानूनी पद्धति से लाया हुआ परिवर्तन लोकतांत्रिक पद्धति से हुआ परिवर्तन माना जाता है; लेकिन आपने लोकतंत्र की अभी जो परिभाषा की है उसके अनुसार वर्तमान लोकतंत्र वास्तविक नहीं है, वह केवल कतिपय लोक-पसन्द व्यक्तियों-द्वारा परिकल्पित एक ढाँचा है, और इसकी डायनामिक्स भी सैनिक-शक्ति है, जिससे प्रत्यक्ष लोक-सम्मति का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता है।

उत्तर—इसीलिए मैं हमेशा कहता हूँ कि शिक्षण ही लोकतंत्र की वास्तविक 'डायनामिक्स' हो सकती है। वस्तुतः समाज गतिशील तब होता है जब वह सचेतन होता है और वह सचेतन तब होता है जब स्वतंत्र तथा सचेतन व्यक्तियों-द्वारा प्रभावित होता है। अतएव समाज-परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का विचार-परिवर्तन हो, और उस परिवर्तन का स्वरूप सार्वजनिक हो। यह शिक्षण-प्रक्रिया से ही सम्भव है। लेकिन यह प्रक्रिया व्यक्तियों के अलग-अलग शिक्षण से नहीं होगी, बल्कि जिसे मैं समन्वित शिक्षण-प्रक्रिया कहता हूँ उससे होगी। लोकतंत्र में दण्डशक्ति के स्थान पर सम्मति-शक्ति का अधिष्ठान है। यह सिर फोड़कर निर्णय करने के स्थान पर सिर गिनकर निर्णय करने की पद्धति है। विचार समझकर ही मनुष्य अपनी स्वतंत्र सम्मति दे सकता है, दण्ड के भय से नहीं।

वैसे गहराई से विचार करने पर मालूम होगा कि समाज परिवर्तन की डायनामिक्स' स्वदकालपुरुष ही है क्योंकि परिवर्तन किया नहीं जाता है वह होता है। नित्य परिवर्तनशील प्रकृति तथा विकासशील विज्ञान मानव समाज के सामने नित्य नयी समस्याएं उपस्थित करते हैं। इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए समाज परिवर्तन आवश्यक होता है।

कहते हैं आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। मानव समाज द्वारा परिवर्तन की आवश्यकता का अहसास ही उस परिवर्तन की वास्तविक डायनामिक्स है। चूंकि मनुष्य की प्रकृति संरक्षणवादी होती है इसलिए परिवर्तन का यह अहसास उसकी आवश्यकता के साथ कदम नहीं मिला पाता है। वह बहुत पीछे रह जाता है। दूसरी बात यह होती है कि इस प्रकार का कुदरती अहसास उसी तरह अव्यवस्थित रहता है जिस तरह जंगल का पेड़। इसलिए उसमें से परिवर्तन के लिए कोई निश्चित दिशा निर्देश नहीं मिलता है। शिक्षा का काम होता है कि वह इस अहसास को स्पष्ट रूप से समाज के सामने रखे परिवर्तन की आवश्यकता के अनुसार अहसास को गतिमान बनाए तथा उसे उसी तरह व्यवस्थित करे जिस तरह कोई माली निश्चित रूप से बाग लगाने के लिए जंगल के वृक्षों को भी व्यवस्थित ढंग से लगाता है। शिक्षा का काम है परिस्थिति के साथ मनुष्य की मनःस्थिति का मेल मिलाना साथ ही परिवर्तन का समुचित दिशा निर्देश करना और परिवर्तित समाज के अधिष्ठान के और संगठन के लिए मार्ग उपस्थित करना। अतएव लोकतन्त्र की भूमिका में जब शिक्षा को समाज-परिवर्तन की डायनामिक्स के रूप में प्रतिष्ठित करना है और परिवर्तित समाज को प्रतिशक्ति के रूप में उसको ही संगठित करना है तो शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। अब शिक्षा न प्राचीन गुरुकुलों या विहारों के घेरे में रह सकती है और न गाँव-गाँव के स्कूलों की चहारदीवारी के अन्दर मर्यादित हो सकती है। अब तो पूरे समाज को ही शिक्षण शाला के रूप में संगठित करना होगा। छोटा बच्चा बड़ा बच्चा किशोर युवा प्रौढ़ स्त्री पुरुष आदि स्तर के लिए समन्वित शिक्षण की योजना बनानी होगी। अब शिक्षा व्यक्ति परिवार तथा समुदाय के सम्बन्धों की बुनियाद पर समग्र शिक्षण-योजना के रूप में विकसित होगी। लोकतन्त्र की भूमिका में शिक्षा शास्त्री के चिंतन की यही दिशा हो सकती है।

लोकतन्त्र के अधिष्ठान का प्राथमिक आन्दोलन

प्रश्न— आपका यह कहना सही है कि लोकतन्त्र की भूमिका में शिक्षा स्कूलों की चहारदीवारी में मर्यादित नहीं रह सकती है क्योंकि लोकतन्त्र में जब हर बालिग को इतना ज्ञान आवश्यक है कि वह विचार-पूर्वक

उपरोक्त चार प्रकारो में से पहला प्रकार केवल सैर सपाटे का कार्यक्रम है। उसे कार्य परिचय कह सकते हैं कार्यानुभव नही।

चौथे प्रकार के कार्यक्रम का सगठन ग्रामदान किस्म के ग्रान्दोलन के बाद ही हो सकता है। प्रचलित सम्बन्धो के रहते हुए उस प्रकार के कार्यक्रम का सन्दर्भ नही बन सकता है।

भारतीय शिक्षा आयोग ने कार्यानुभव का जो सुझाव दिया है उसके ग्रमल के लिए दूसरे तथा तीसरे प्रकार के कायक्रम का विचार करना चाहिए। दूसरे प्रकार के कायक्रम से जो अनुभव होगा वह छिछला होगा। उसके माध्यम स बौद्धिक विकास विशेष ग्रागे नही जा सकेगा क्योकि केवल शाला की दिनचर्या में जो काम किया जायगा उसके लिए उतनी तीव्र जिज्ञासा पैदा नही हो सकेगी जितनी स्वावलम्बन के लिए काय करने मे हो सकती है। जब शिक्षार्थी स्वावलम्बन के लिए काय करता है तब कही कुछ दोष या विगाड पैदा होने पर भी वह चिंतित होता है उसे वह सुधारने का प्रयास करता है तथा उसके लिए अपने शिक्षक से पूछता है। उसी तरह जब वह अपने काम में कही कुछ विशिष्ट सफलता प्राप्त करता है तो भी उसके कारणो को जानने का प्रयास करता है। इस तरह स्वावलम्बन के लिए काय करने से शिक्षार्थी में अनुसधान व जिज्ञासा वृत्ति पैदा होती है। यही वृत्ति ज्ञान की जननी है इसे सभी मनोवैज्ञानिक स्वीकार करेंगे।

अतएव अगर कार्यानुभव को ज्ञान प्राप्ति के माध्यम के रूप मे इस्तेमाल करना है तो कायक्रमो का सगठन शाला की दिनचर्या के रूप म न करके स्वावलम्बन के उपादान के रूप में करना होगा।

गाधीजी न अपनी परिकल्पित शिक्षा पद्धति में स्वावलम्बन पर जो इतना जोर दिया है उसका कारण केवल आर्थिक नही है—वह राजनीतिक तथा शैक्षणिक भी है। प्रचलित लोकतन्त्र के लिए भी यह आवश्यक है कि लोकमन स्वतन्त्र हो। अगर शासन द्वारा शिक्षाक्रम चलेगा तो जिस विचार के लोगो के हाथ म शासन होगा शिक्षार्थी के दिमाग को वे अपने उस विचार के साँचे में ढालन की कोशिश करेंगे। इसका अनुभव ससार के भिन्न भिन्न राजनीतिक दलो द्वारा सचालित शिक्षण योजना में स्पष्ट रूप मे आ रहा है। अत लोकतन्त्र की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा सरकार के हाथ में न होकर स्वतन्त्र सस्था के अन्तर्गत हो। कल्याणकारी राज्य के कल्याण काय के लिए पूरा पूरा टैक्स देने के बाद एक भी गैर सरकारी कल्याणकाय के मद मे राष्ट्रीय पैमाने पर समाज द्वारा दान की परिपाटी का प्रचलन स्थायी रूप से सम्भव नही है यह तो आप समझ ही सकते हैं। अर्थात लोकतन्त्र की रक्षा के लिए अगर शिक्षा को स्वतन्त्र प्रवृत्ति के रूप मे चलाना है तो वह स्वावलम्बी हो इसकी प्रक्रिया खोजनी ही चाहिए।

शिक्षण मनोविज्ञान के लिए स्वावलम्बन का तत्त्व क्या आवश्यक है यह

मन ऊपर रहा ही है। यही कारण है कि गांधीजी हमेशा कहते रहे हैं कि स्वावलम्बन नयी तालीम की कसौटी (एसिडटेस्ट) है।

सामुद्रिक वर्तुल की शिक्षण-व्यवस्था

प्रश्न — आपकी समन्वित शिक्षण की परिकल्पना समाज की बुनियादी इकाई को लेकर बनती है। उसमें मुझे दो कठिनाइयां दिखाई देती हैं। पहली यह कि अलग-अलग इकाई में मर्यादित शिक्षण के कारण शिक्षार्थी का दृष्टिकोण पूरे मानव-समाज तक फैला हुआ नहीं होगा। अपनी अपनी इकाई के दायरे में वह मर्यादित हो जायगा। दूसरी यह कि केवल प्राथमिक इकाई के समग्र कार्यक्रम को शिक्षा के माध्यम के रूप में संयोजित करने पर उच्च शिक्षा का सन्दर्भ शायद न मिल सके क्योंकि विज्ञान ने जहां पूरे विश्व को बहुत छोटा बना दिया है वहीं समाज को बहुत अधिक व्यापक भी बनाया है।

उत्तर—मैंने कहा है—गर्भ में भी बच्चा अकेला नहीं रहता है और यह भी कहा है कि केवल मां और शिशु के सम्बन्धों को लेकर शिक्षण-योजना नहीं बन सकती है। माता का सम्बन्ध परिवार से और परिवार का सम्बन्ध समाज से रहता है। उसी तरह जब समाज-व्यवस्था का चित्र सामुद्रिक वर्तुल जैसा (ओसनिक सर्किल) होगा तो स्पष्ट है कि प्राथमिक इकाई उस वर्तुल का मध्य बिन्दु बनेगी और उसके चारों ओर की वर्तुलाकार परिधियां बढ़ते-बढ़ते आखिर में विश्व समाज में विलीन होंगी।

इस तरह प्राथमिक इकाई विश्व समाज से किसी तरह अलग नहीं पड़ेगी बल्कि वह विश्व समाज का मूल आधार होगी। इस प्रकार की समाज-व्यवस्था में शिक्षण-पद्धति को भी ओसनिक सर्किल में संयोजित करना होगा

प्रारम्भ में तो इकाई के अन्दर के सम्बन्धों के समवाय में शिक्षाक्रम को संगठित करना होगा। फिर वर्तुल के भिन्न भिन्न स्तरों के परस्पर सम्बन्धों को भी शिक्षा का माध्यम बनाना होगा। यह सम्बन्ध उत्पादन के सिलसिले में आर्थिक सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था के प्रसंग पर लोकनीतिक (राजनीतिक नहीं) परस्पर के लौकिक व्यवहार में सांस्कृतिक तथा प्रकृति के रहस्योद्घाटन के प्रयास के प्रसंग पर वैज्ञानिक होगा। जैसे-जैसे शिक्षा ग्राम के वर्तुल के सम्बन्धों को केन्द्र बनाकर संयोजित होगी वैसे वैसे शिक्षा का स्तर भी उच्च से उच्चतर और उच्चतम होता जायगा। ●

—प्रश्नकर्ता रुद्रभान

लेखक

महात्मा भगवान दीन

सव सया सघ प्रकाशन,

राजघाट वाराणसी—१

कौन माता पिता होगा जो यह न चाहता हो कि उसके बच्चे सस्कारवान चारित्र्यवान और बुद्धिमान बन। परन्त सिर्फ चाहने से क्या होगा ? उसके लिए जरूरी है बच्चो की हरकतो और मनोविज्ञान को समझना।

बालमनोविज्ञान के अनुभवी लेखक ने अपनी इस छोटी-सी पुस्तिका माता पिताओ से म एमे अनेक प्रसग दिये ह जिनसे माता पिता को आवश्यक मार्गदर्शन मिल सकता है।

पृष्ठ—६४ मूल्य—५० पैसे

नयी तालीम–साहित्य

शिक्षण और सरकार	विनोबा	०.२५
समग्र नयी तालीम	धीरेन्द्र मजूमदार	१.२५
बुनियादी शिक्षा-पद्धति	,, ,,	०.६०
बालक बनाम विज्ञान	म० भगवानदीन	०.७५
बालक सीखता कैसे है ?	,,	०.५०
बच्चों की कला और शिक्षा	देवी प्रसाद	८.००
हमारा राष्ट्रीय शिक्षण	चारुचन्द्र भण्डारी	२.५०
बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा	जाकिर हुसेन	१.५०
बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे ?	दयालचन्द्र सोनी	१.२५
सफाई विज्ञान और कला	वल्लभस्वामी	१.००
प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य		१.००
सुन्दरपुर की पाठशाला	जुगतराम दवे	०.७५
पूर्व बुनियादी	शान्ता नारूलकर	०.५०
बाबा विनोबा (पाकेट साइज में)	श्रीकृष्णदत्त भट्ट	२.००

बाल–साहित्य

बोलती कहानियाँ (भाग १, २)	विनोबा प्रत्येक	१.२५
बोलती कहानियाँ (भाग ३ से ६)	,, ,,	१.००
आओ हम बनें : उदार और दयालु	श्रीकृष्णदत्त भट्ट	१.००
बोलती घटनाएँ (५ भाग)	म० भगवानदीन प्रत्येक	०.५०
देर है, अंधेर नहीं (कहानी संग्रह)	,, ,,	०.७५
सर्वोदय की सुनो कहानी	बबलभाई मेहता (प्रेस में)	
बिल्ली की कहानी	म० भगवानदीन (प्रेस में)	
खेल-खेल में सीखना	शिरीष	१.५०
शहद का छत्ता	,,	१.००
क से कमला	,,	१.००
कतक धैयाँ धुनू मनइयाँ	राष्ट्रबंधु	०.७५
नये अंकुर	चिंचलीकर	०.२५

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

नयी तालीम, अप्रैल-मई '६७

पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

आवरण मुद्रक—खण्डलवाल प्रेस मानमन्दिर, वाराणसी।

जून १९६७

श्री धोत्रेजी, जो अब नहीं रहे

स्व० श्री धोत्रेजी

गांधीजी जब भारत लौटे और आजादी के लिए तपस्या शुरू की, तब उनके आसपास जवानों की जो टोली इकट्ठी हुई थी उसमें धोत्रेजी एक थे। गांधीजी के विचारों के गहरे स्वरूप को उन्होंने पहचाना, अपनाया और जिन्दगी भर निभाया। उनकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। गांधीजी, विनोबाजी और अखिल भारतीय रचनात्मक संस्थाओं से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों और संस्मरणों का जब वे वर्णन करने लगते तो प्रसंगों को हूबहू श्रोता के सामने उपस्थित कर देते थे। वे हमेशा हँसमुख और प्रसन्नचित्त रहते थे। उनका देहावसान १६ मई १९६७ को नागपुर अस्पताल में हुआ। 'नयी तालीम' की ओर से उनकी आत्मा को शत्-शत् प्रणाम।

समाज की दीवारें और बच्चा

"तुम्हारा जूता कौन उतारता है ?" शिक्षक ने पूछा।

"नौकर", बच्चे ने उत्तर दिया।

"और, तुम्हारा ?" शिक्षक ने दूसरे बच्चे से पूछा।

"मेरे पास जूता ही नहीं है। जब होगा तो क्या मुझे उतारना नही आयगा ?" दूसरे बच्चे ने कहा।

दोनो लडके साथ स्कूल में पढते थे। एक अमीर था। उसके पास एक नही कई जोडे जूते रहे होगे। जूतो के लिए नौकर भी रहा ही होगा। लेकिन जिस लडके के पास जूता ही नही था, उसे चिन्ता जूते पहनने की थी, न कि उनकी देखभाल की।

जिस परिवार म जूतो की भी देखभाल के लिए नौकर होगा उसमे और जिसमे स्कूल मे पढनेवाले लडके के पास जूता भी न हो उसमे कितना अन्तर होगा ? खान-पान और रहन-सहन मे अन्तर, माता-पिता की भावनाओ म अन्तर परिवार के तौर-तरीकों मे अन्तर, बच्चों की आशाओ-आकाक्षाओ में अन्तर कौन-सी ऐसी चीज है जिसमे अन्तर नही होगा ?

अमीर घर मे मां बच्चे से कहती है "बेटा, तुम्हे परिवार की मान-मर्यादा बढानी है। तुम्हारे बाप दादे एक से एक हुए है। खूब मन लगाकर पढना, नाम कमाना। ये बात सुनकर बच्चे के मन में बचपन से ही एक नकली बडप्पन की घुन घुस जाती है। घर मे सुखी जीवन मिलता है, नौकर-चाकर देखभाल के लिए रहते है, किसी कठिनाई का सामना कभी करना नही पडता। यह सब देखकर उसे लगता है कि दुनिया उसकी महत्वाकाक्षा की पूर्ति का एक साधन है, और वह अपनी मर्जी से इस साधन का इस्तेमाल कर सकता है। उसकी नजर मे परिवार, परिवार ही नही वल्कि पूरे 'कुल' की सामाजिक प्रतिष्ठा का महत्व नैतिक जीवन के महत्व से कही अधिक होता है।

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : ११

मध्यम वर्ग में बच्चा विवाह की सफलता का प्रतीक होता है। माता-पिता चाहते हैं कि बच्चा परिवार के हित को समझे, इसलिए परिवार उसे अपने कठोर अनुशासन में रखना चाहता है। हाँ, अनुशासन के लिए बहुत ज्यादा शारीरिक दण्ड का प्रयोग नहीं किया जाता। परिवार नहीं चाहता कि बच्चा परिवार की मर्जी के जरा भी इधर-उधर जाय। हर चीज में उससे शत-प्रतिशत 'कन्फार्मिटी' की अपेक्षा रहती है।

अमीर और मध्यम, दोनों वर्गों से भिन्न स्थिति निम्न वर्ग की होती है। बच्चा देखता है कि माता-पिता को किस बुरी तरह पेट के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। परिवार का सारा वातावरण हर वक्त रोटी की समस्या से घिरा रहता है। बच्चे को शुरू से इस समस्या का अंग बनकर रहना पड़ता है। माता-पिता कोशिश करते हैं कि बच्चा जल्द से जल्द 'प्रौढ़' बन जाय, कमाई में शरीक हो, और नाहक बचपन में समय न गँवाये। लड़कियों को कुछ ही वर्ष बाद 'छोटी माताएँ' बन जाना पड़ता है। वे घर का काम-काज करती हैं, और अपने से छोटे बच्चों को सँभालती हैं ताकि उनकी माँ कमाई का कुछ काम कर सके। जीवन की इस परिस्थिति का माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध पर गहरा असर होता है। घर में सौतेली माँ के होने का जो असर होता है वह जाहिर है। बच्चों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे आज्ञाकारी बनें, और बिना उज्र-एतराज के माता-पिता का कहना मानें। इन 'गुणों' के विकास के लिए शारीरिक दण्ड का भरपूर इस्तेमाल किया जाता है, और बचपन में जिम्मेदारियों से बंधे रहने के कारण अकसर बच्चे स्कूल भी नहीं जा पाते।

अलग-अलग वर्ग का अलग-अलग जीवन है। हर वर्ग की अपनी 'दुनिया' है। जीविका के आधार अलग, सांस्कृतिक वातावरण अलग, जीवन की प्रेरणाएँ-आकांक्षाएँ अलग, सब कुछ अलग। बच्चा अपनी इस अलग 'दुनिया' में पलता है, और धीरे-धीरे उसी अलग 'दुनिया' का होकर जीता है। स्कूल-कालेज का शिक्षण उसके दिमाग से परिवार और वर्ग की सीमाओं को निकालने में प्राय समर्थ नहीं होता।

हमारे देश में वर्ग के अलावा जाति भी है। हम देखते हैं कि कई बार वर्ग से कहीं अधिक जबरदस्त प्रभाव जाति का होता है। परम्परा से हमारे जीवन की रचना जाति के आधार पर हुई है, और यह कहा जा सकता है कि हमारा दिमाग जाति का दिमाग (कास्ट-माइण्ड) है। गाँव में सम्पत्ति, मुख्यत भूमि, आमतौर पर उन लोगों के हाथ में है जो 'बड़ी' जाति के कहे जाते हैं, और उस भूमि पर मजदूरी वे करते हैं जो 'नीची या 'छोटी' जाति के कहे जाते हैं। जो बड़े हैं वे मालिक हैं, जो छोटे हैं वे मजदूर हैं। आर्थिक स्तर पर मालिक-मजदूर का यह

सम्बन्ध सामाजिक स्तर पर ऊँची जाति और नीची जाति का हो जाता है। गरीब ब्राह्मण गरीबी के आधार पर अपने को गरीब चमार के नजदीक नही मानता, बल्कि जाति के नाते उसका दिल धनी ब्राह्मण के साथ रहता है। यही कारण है कि वर्ग-सघर्ष का नारा आसानी के साथ जाति-सघर्ष का रूप धारण कर लेता है। यह हमारे समाज की एक विशेषता है। इसका नतीजा यह है कि समाज का जीवन जातिगत दमन और वर्गगत शोषण के ताने-बाने से बना हुआ है। इसी ताने-बाने से जुडकर दूसरी सब मान्यताएँ और मर्यादाएँ विकसित हुई है।

आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक अलगाव के वर्ग-निष्ठ और जाति-निष्ठ समाज में हमारा बच्चा शिक्षित, दीक्षित होता है। दूसरे देशो में दूसरे अलगाव है, लेकिन जातिगत 'अलगाव' नही है। और, यह भी है कि दूसरे देशो मे लोगो के नित दिन के जीवन म, खान-पान म, रहन-सहन में, स्तर का इतना अन्तर नही है जितना हमारे देश मे। इस अलगाव का बच्चे के 'व्यक्तित्व' पर क्या प्रभाव पडता है इस पर अपने देश मे शिक्षण की दृष्टि से बहुत कम विचार हुआ है। विज्ञान और लोकतत्र के इस जमाने के कारण इतनी 'समाजवादी' भावना तो जगी है कि अब यह माँग हो रही है कि बच्चो के लिए—बच्चे चाहे जिस जाति और वर्ग के हो—स्कूल एक हो, अलग-अलग न हो। ठीक है, 'एकता' के लिए एक स्कूल होना अच्छा है, लेकिन इतना काफी है यह मान लेना भूल है।

'अलगाव' को दूर करना भारतीय शिक्षण की मुख्य समस्या है। इस अलगाव में ह्रास और सघर्ष के कितने भयकर बीज छिपे हुए है, इसे या तो हमारा शिक्षण जानता नही, या उसे दूर करना अपनी जिम्मेदारी नही मानता। जो शिक्षण देश और समाज के इस बुनियादी तथ्य से दूर रहेगा वह देश के किस काम का होगा, यह सोचने की बात है।

यह तय है कि सकुचित, सीमित परिभाषा का शिक्षण उस समस्या को हल नही कर सकेगा जो सामाजिक सन्दर्भ को अपने माध्यम के रूप म स्वीकार करेगा। सामाजिक सन्दर्भ का अर्थ यह है कि जिसे हम विकास कहते है (डेवलपमेंट) वह शिक्षण की निष्पत्ति के रूप में प्रकट हो। सामूहिक विकास ही नही, एक व्यक्ति के जीवन की उन्नति (इम्प्रूवमट) के रूप में भी। एजूकेशन', 'डेवलपमेट' और 'इम्प्रूवमेंट', यह एक त्रयी है। एक को दूसरे से अलग नही किया जा सकता। अगर 'एजूकेशन' से 'डेवलपमेंट' और 'इम्प्रूवमेंट' न हुआ तो 'एजूकेशन' किस काम का, और अगर 'इम्प्रूवमेट' न हुआ तो डेवलपमट होकर क्या करेगा ? वास्तव मे एजूकेशन के बिना 'डेवलपमेंट' को कायम रखनेवाली शक्ति ही नही पैदा हो सकती।

यह शिक्षण म 'सामाजिक सन्दर्भ' का अर्थ है। इसके लिए शिक्षण के साथ साथ विकास की ऐसी योजना बननी चाहिए कि एक साथ रहनेवाले विभिन्न जातियो और वर्गो

के लोगो मे सम्मति और सहकार का क्षेत्र (एरिया आव ऐग्रीमेंट एण्ड कोआपरेशन) निरन्तर बढ़ता रहे ताकि हरएक को यह महसूस करने का मौका मिले कि समाज मे एक का जीवन दूसरे के जीवन का पूरक है, और सचमुच एक का जीवन दूसरे के बिना चल ही नही सकता।

उदाहरण के लिए एक गाँव लीजिए। गाँव, पूरा गाँव, और गाँव मे रहनेवाले समुदाय का हर व्यक्ति—सबको शिक्षित करना है, विकसित करना है, उन्नत बनाना है। यह हमारे सामने 'चैलज' है, और अवसर भी है। सामाजिक सन्दर्भ को माध्यम मानकर चलनेवाला नया शिक्षण 'गाँव' को ही विद्यालय मानेगा। उसे टुकड़ो मे तोडेगा नही। बच्चे, बूढे, पुरुष, स्त्री, सब उस विद्यालय के 'विद्यार्थी' होंगे। हाँ, आयु और परिस्थिति के अनुसार अभ्यासक्रम अलग होगे। कई बातो के लिए एक परिवार एक विद्यार्थी माना जायगा। इस तरह 'गाँव' शिक्षण की इकाई होगा, विकास की इकाई होगा, और उन्नति का मापदण्ड होगा।

गाँव का पारिवारिक जीवन, उसकी खेती, उद्योग, स्वास्थ्य, जितने भी पहलू हैं और उनकी जितनी भी क्रियाएँ और प्रक्रियाएँ हैं वे सब शिक्षण के अभ्यासक्रम के अन्तर्गत होगी। और यह अभ्यासक्रम एक जगह शुरू होकर दूसरी जगह समाप्त नही होगा, बल्कि विज्ञान के प्रकाश मे हमेशा चलता रहेगा—गर्भ से मृत्यु तक, आज से अनन्त काल तक। इस पद्धति मे गाँव अपना जीवन जीयेगा, और जीवन जीने की प्रक्रिया में 'शिक्षित' होगा। प्रक्रिया शैक्षणिक होगी, साधन वैज्ञानिक होंगे, पद्धति लोकतान्त्रिक होगी। जीवन से अलग 'पढ़ाई'-जैसी कोई चीज नही रहेगी। हाँ, किसी विशेष अभ्यास के लिए किसी बच्चे या प्रौढ को कही बाहर जाना पड़ेगा तो जायगा, लेकिन प्राथमिक शिक्षा गाँव मे होगी और माध्यमिक क्षेत्र में।

लेकिन कठिनाई यह है कि हमारा आज का गाँव जैसा है उसमें शिक्षण, विकास और उन्नति का मेल नही मिलाया जा सकता। जब समाज का जीवन दमन और शोषण का रहेगा तो स्कूल में बन्द शिक्षण क्या जौहर दिखायगा? नये शिक्षण के लिए नया समाज चाहिए, यानी लोक-शिक्षण पहले और बाल-शिक्षण बाद को। समाज का स्थान स्कूल से पहले है। बच्चे से समाज बनता है, प्रौढ से समाज बदलता है। इसलिए सबसे पहले समाज की बुनियादें बदलनी होगी। जिन बुनियादो पर आज के सामाजिक सम्बन्ध चल रहे हैं उनपर नये सम्बन्ध नही चल सकते। वे नयी बुनियादें क्या हैं? वे ही हैं जो लोकतन्त्र और विज्ञान की हैं।

१ जीविका के साधनो का इस्तेमाल सम्पत्ति के लिए और जनता का वोट सत्ता के लिए न हो। सत्ता और सम्पत्ति के आधार पर सम्बन्ध, मालिक-मजदूर, और शासक-शासित का हो सकता है, उसमें से समानता और सहकार की निष्पत्ति नही हो सकती। इस दृष्टि से गाँव की भूमिपर गाँव का स्वामित्व हो, और उसके सदुपयोग

का अधिकार परिवार को। ग्रामस्वामित्व, परिवार-स्वामित्व या सरकार-स्वामित्व नहीं, ग्रामस्वामित्व होगा तो भूमि झगड़े का कारण न रहकर ग्रामयोजना का आधार बन जायगी।

२. ग्रामस्वामित्व की दृष्टि से गाँव के बालिगों की अपनी सभा हो जिसके निर्णय से आन्तरिक जीवन—खेती, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय आदि—का नियमन, संचालन हो। गाँव की सभा सरकार के हस्तक्षेप से मुक्त हो। सरकार माँग होने पर बाहर से सहायता करे लेकिन पुलिस-द्वारा शासन नहीं। सरकार का तंत्र गाँव के बाहर रहेगा तो गाँव के भीतर गाँववालों की सहकार-शक्ति चलेगी। हो सकता है कि ऐसी व्यवस्था में एक गाँव का शिक्षण दूसरे गाँव के शिक्षण से भिन्न हो। ऐसा होने में कोई हर्ज नहीं, क्योंकि हर गाँव अपने सन्दर्भ में शिक्षण विकसित करेगा।

३. हर एक अपनी कमाई से एक अंश गाँव-कोष के लिए दे। यह सामूहिक पूँजी गाँव की योजना का आधार बने। योजना ऐसी हो कि योजना के परिणाम से होनेवाली कमाई में सबका हिस्सा हो। व्यवस्था ऐसी हो कि किसी की बेबसी से बेजा फायदा न उठाया जा सके।

४. गाँव की सभा हर एक के काम, दाम और आराम की गारंटी ले, और कोई शिक्षित होकर और स्वस्थ रहकर 'उन्नति' (इम्प्रूवमेंट) के अवसर से वंचित न रहने पाये।

५. इन तत्त्वों को सामने रखकर गाँव की सभा सब निवासियों के लिए अपनी 'शिक्षण-योजना' बनायगी। सरकार अपने साधनों से, तथा विद्वान अपनी सलाह से उसकी सहायता करेंगे।

जाहिर है कि गाँव अपने को 'इकाई' बनाकर अपने लिए शिक्षण-योजना बनायगा तो वह शिक्षण-योजना वस्तुतः उस गाँव के लिए जीवन-योजना होगी जिसमें जो जहाँ है उसके लिए वहाँ से एक कदम आगे जाने का अवसर होगा। निर्णय सबकी सम्मति से होंगे और कार्य की दृष्टि से सहकार का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जायगा। स्पष्ट है कि इस योजना में लोकतंत्र (निर्णय) और विज्ञान (उत्पादन) दोनों का मेल होगा। यह शिक्षण शासनमुक्त होगा। लोगों की समझ यानी शिक्षण की शक्ति से गाँव चलेगा, जाति के दमन या वर्ग के शोषण या सरकार के डण्डे से नहीं।

एक बार गाँव को शिक्षण की 'इकाई' मान लिया जाय तो पूरा अभ्यासक्रम बनाया जा सकता है। पहला सवाल यह है कि जिस स्वामित्व से जाति और वर्ग दोनों पल रहे हैं उसे सबसे पहले जाना चाहिए।

—राममूर्ति

राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग तथा प्राथमिक शिक्षा

डा० लक्ष्मीलाल के० ओड

रीडर इन एजूकेशन, विद्याभवन, टीचर्स कालेज, उदयपुर

शिक्षा के क्षेत्र में इस समय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन बहुचर्चित विषय बना हुआ है। ऐसी मान्यता है कि आगामी २० वर्षों की शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों का आधार उक्त प्रतिवेदन की सिफारिशें रहेंगी। शिक्षा आयोग ने बुनियादी शिक्षा नाम समाप्त कर देने की सिफारिश की है क्योंकि बुनियादी शिक्षा के मूल तत्त्व शिक्षा के प्रत्येक सोपान पर अनुप्राणित होने चाहिएँ न कि केवल प्राथमिक स्तर पर। आयोग की दृष्टि में बुनियादी शिक्षा के तीन मूलतत्त्व निम्नाकित हैं—(१) शिक्षा में उत्पादकता, (२) प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा उत्पादन के साथ शिक्षा का समन्वय और (३) शाला एवं समाज का निकट सम्बन्ध।

शिक्षा-आयोग और बुनियादी शिक्षा

ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा आयोग ने बुनियादी शिक्षा को केवल ऊपरी सतह से देखा है। जिन्हें आयोग ने बुनियादी शिक्षा के आधार भूत तत्त्व माना है, ये वास्तव में बुनियादी शिक्षा के साधन मात्र हैं साध्य नहीं। इन तीनों तत्त्वों का समावेश करके भी बुनियादी शिक्षा का विचार ताक पर रखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में यदि आयोग-द्वारा सुझाये गये प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम को देखा जाय तो क्या बुनियादी शिक्षा का दर्शन वहाँ परिलक्षित होता है? कदाचित् उत्तर नकार में मिले। ऐसा प्रतीत होता है कि बुनियादी शिक्षा में विश्वास न रखते हुए भी आयोग के सदस्यों में यह नैतिक साहस नहीं था कि वे बुनियादी शिक्षा का नकार सकते, फलतः आयोग ने इस चतुराई के साथ बात कही ताकि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

बुनियादी शिक्षा के साथ दुर्भाग्य यही रहा है कि कभी हमने इसे गांधीजी के प्रति भक्तिभाव से प्रेरित होकर स्वीकार किया तो कभी किसी राजनीतिक दल की शिक्षा-नीति के रूप में इसे जनता पर लादा गया और कभी अच्छे पदों की लालसा कुछ शिक्षा शास्त्रियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों को इस ओर खींच लायी। परिणाम यह हुआ कि बुनियादी शिक्षा में नारेबाजी अधिक रह गयी, तथा वास्तविकता से हम निरन्तर दूर हटते गये।

समवाय विधि को न कभी ठीक तरह से समझा गया, न कभी उसे ठीक तरह से अपनाया ही गया, परन्तु उसको खुली चुनौती देने का साहस किसी में नहीं था। समवाय के सम्बन्ध में जो शोध ग्रन्थ लिखे गये, वे प्रश्नावलियों के आधार पर बने थे, अतः उनके निष्कर्ष वास्तविकता से अत्यन्त दूर हैं। यही हालत बुनियादी शालाओं के उद्योग की रही, परन्तु हमलोगों के प्रतिवेदन प्रशंसा तथा बुनियादी शिक्षा के गुणगानों से भरपूर रहे। बुनियादी शिक्षा के प्रसार का काम उनलोगों ने हाथ में लिया, जिनकी न उसमें आस्था थी न गति ही।

शिक्षा आयोग की सिफारिशों में पुनः वही प्रवंचना छिपी हुई है। बुनियादी शिक्षा के जिन मूल तत्त्वों का आयोग ने उल्लेख किया है, वास्तव में देखा जाय तो

बुनियादी शिक्षा की असफलता (?) के भी वे ही मूल कारण रहे हैं। समवाय अध्यापक प्रशिक्षणालयों तथा शिक्षकों के लिए सदा सर्वदा गले में अटकी हुई हड्डी के समान रहा है। बुनियादी शिक्षा के प्रति शिक्षकों तथा प्रशिक्षार्थियों में अनास्था उत्पन्न करने का बहुत बड़ा दायित्व 'समवाय' का रहा है। उद्योग के नाम पर बुनियादी शालाओं में कच्चे सामान को बिगाड़ने का ही अभिनय चलता रहा है, और स्थानीय समुदाय से सम्पर्क भी बरायेनाम ही रहा है। यदि ये सब बुनियादी शिक्षा को असफल बनाने के कारण रहे हैं तो शिक्षा-आयोग द्वारा इन्हें मूल्यवान तत्व मान लेना और फिर भी 'बुनियादी शिक्षा' नाम को अस्वीकार करना प्रवंचनामात्र नहीं है तो क्या माना जाय?

शिक्षा-आयोग का कल्पित समाज

शिक्षा आयोग ने भावी भारतीय समाज का जो चित्र सामने रखा है वह बुनियादी शिक्षा द्वारा कल्पित समाज से भिन्न है। आयोग के सामने अमेरिका अथवा अन्य किसी पश्चिमी देश का चित्र है, जिसे भारतीय चौखट में रखकर देखने का प्रयत्न किया गया है। आयोग के सामने एक औद्योगीकृत समृद्ध भारत का नक्शा है, जहाँ विज्ञान तथा तकनीक की सहायता से सभी सुख-सुविधाओं को उसी प्रकार उपलब्ध किया जा सकेगा जिस प्रकार यूरोप तथा अमेरिका के सम्पन्न देशों में आज किया जा सकता है। यद्यपि नैतिक तथा चारित्रिक विकास की बातें भी बीच-बीच में अवश्य की गयी हैं, तथापि मूलतः आग्रह आर्थिक उन्नति पर है। शिक्षा आयोग द्वारा सुझाये गये प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विश्लेषण करके हम देखें कि वह बुनियादी शिक्षा से किस प्रकार भिन्न है तथा उसके द्वारा किस प्रकार आयोग द्वारा परिकल्पित समाज की ओर आगे बढ़ने में सहायता प्राप्त हो सकती है। प्राथमिक शिक्षा के अभ्यासक्रम को आयोग द्वारा प्रतिपादित इन चार उद्देश्यों के सन्दर्भ में देखना उचित होगा :

(१) शिक्षा को उत्पादन से सम्बद्ध करना,
(२) सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण को दृढ़ करना,
(३) लोकतंत्र को सगठित करना तथा
(४) सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास-द्वारा चरित्र निर्माण करना।

प्राथमिक शिक्षा को दो भागों में विभक्त किया गया है—

(१) निम्न प्राथमिक, तथा (२) उच्च प्राथमिक जो कि क्रमशः जूनियर बेसिक तथा सीनियर बेसिक के पर्यायवाची हैं। निम्न प्राथमिक स्तर पर यह अपेक्षा की गयी है कि बालक पढ़ाई-लिखाई तथा गणना, जो सीखने के मूल साधन हैं, उन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेगा, और प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश के प्राथमिक अध्ययन द्वारा वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना सीखेगा। वह इस प्रकार के क्रिया-कलापों में भाग लेगा, जिनसे कि उसकी रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्तियों को विकास करने का अवसर प्राप्त हो। उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित पाठ्यक्रम सुझाया गया है—

(१) मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा
(२) गणित
(३) वातावरण का अध्ययन (कक्षा ३ व ४ में) विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन का आरम्भ
(४) सृजनात्मक क्रियाएँ
(५) कार्यानुभव तथा समाज सेवा
(६) स्वास्थ्य शिक्षा

उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा ५ से ७) की अपेक्षित उपलब्धियाँ वे ही रहेंगी जो कि निम्न प्राथमिक स्तर पर गिनायी गयी हैं, परन्तु उनका स्तर अधिक ऊँचा तथा क्रमबद्ध होगा। गणना का ज्ञान अधिक कठिन गणितीय ज्ञान में परिणत हो जायगा। वातावरण-सम्बन्धी अध्ययन का स्थान, भौतिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल नागरिक-शास्त्र ले लेंगे, तथा रचनात्मक एवं सृजनात्मक क्रियाओं का स्थान कला तथा उद्योग ले लेंगे। इसी प्रकार स्वस्थ जीवन के अभ्यास के स्थान पर शारीरिक शिक्षा आरम्भ कर दी जायगी। अब मातृभाषा के अतिरिक्त एक और अन्य भाषा आरम्भ कर दी जायगी। संक्षेप में इस स्तर का पाठ्यक्रम इस प्रकार है—

(१) दो भाषाएँ—(क) मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा (ख) हिन्दी अथवा अँग्रेजी।
(२) गणित
(३) विज्ञान
(४) सामाजिक अध्ययन (अथवा इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र)
(५) कला
(६) कार्यानुभव तथा समाज सेवा
(७) शारीरिक शिक्षा
(८) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

अभ्यासक्रम की समीक्षा

भाषाओं की शिक्षा—निम्न प्राथमिक स्तर पर आयोग ने केवल मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा सिखाने का सुझाव दिया है, जो सर्वथा संगत और उचित प्रतीत होता है, क्योंकि बालक की शिक्षा मातृभाषा से आरम्भ होनी चाहिए, जो कि उसकी अभिव्यक्ति का सहज साधन है। उच्च प्राथमिक स्तर पर आयोग ने द्वितीय भाषा आरम्भ करने की सलाह दी है। सिद्धान्ततः इस आयु पर द्वितीय भाषा आरम्भ करने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए, परन्तु प्रश्न केवल यह उपस्थित होता है कि वह द्वितीय भाषा कौन-सी हो? आयोग ने हिन्दी अथवा अँग्रेजी के बीच विकल्प रखा है। आयोग ने आशा की है कि "हिन्दी क्षेत्र के प्राय सभी विद्यार्थी तथा अहिन्दी क्षेत्र के अधिकांश विद्यार्थी द्वितीय भाषा के रूप में सम्भवत अँग्रेजी सीखेंगे, परन्तु अहिन्दी क्षेत्र के बहुत से विद्यार्थी हिन्दी भी ले सकते है।"*

उक्त उद्धरण से स्पष्ट ही है कि आयोग उच्च प्राथमिक स्तर पर अँग्रेजी आरम्भ करना चाहता है, हिन्दी तो केवल मन को समझाने के लिए ही विकल्प में रखी गयी है। अँग्रेजी का चाहे जितना महत्व स्वीकार करते हुए भी यह बात किसी भारतीय के गले उतरना कठिन है कि उसे भारतीय सम्पर्क भाषा के विकल्प रूप में स्वीकार किया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का आधार राष्ट्रीय सद्भावना होनी है। लगभग १५० वर्षों के प्रयत्न के बावजूद अँग्रेजी भारत के २ प्रतिशत व्यक्तियों तक भी नही पहुँच पायी। इस प्रकार की भाषा क्या भारत की ५० करोड जनता की सम्पर्क-भाषा का स्थान ले सकती है? इस आयु पर अँग्रेजी को आरम्भ करने का अर्थ यह होगा कि न्यूनतम शिक्षा की आयु तक बालक को भारत की सम्पर्क-भाषा से वंचित रखना, उसे भारतीय जनमानस से पृथक करना, तथा अँग्रेजी के नाम पर कुछ इतने शब्द एवं वाक्यावली सिखा देना, जिनसे उसका कोई काम न चल सके। यदि यही क्रम रहा तो भारत की कोई सम्पर्क-भाषा कभी विकसित ही नही हो सकती, और हम सदा-सर्वदा के लिए अँग्रेजी भाषाविदों से ज्ञान की भीख ही माँगते रहेंगे, जबकि स्वयं आयोग भारत को 'ग्रहण करने वाले सिरे पर' (रिसीविंग एण्ड आव नालेज) सदा सर्वदा नही रखना चाहता।

आयोग ने एक उद्देश्य 'राष्ट्रीय एकीकरण' का रखा है। लेकिन उसे प्राप्त करने के लिए अँग्रेजी का अध्ययन १० वर्ष की आयु से आरम्भ कर देना क्या एक युक्ति-युक्त समाधान है? आयोग 'अँग्रेजी' को एकीकरण का साधन मानता है, शायद अतीत काल में वह रही भी है, परन्तु क्या जनमानस आज भी अँग्रेजी को राष्ट्रीय एकीकरण का साधन मानने के लिए तैयार है? अतीत में अँग्रेजी कुछ पढे-लिखे लोगों की सम्पर्क-भाषा रही थी, परन्तु इसके साथ ही उसने विशाल जनसमुदाय और इन चन्द पढे-लिखों के बीच गहरी खाई खोद दी, जो आज भी पट नही पा रही है।

मेरी राय में उच्च प्राथमिक कक्षा के प्रथम वर्ष में (अर्थात् कक्षा ५ में) हिन्दी तथा अहिन्दी दोनो ही प्रदेशों में एक अन्य भारतीय भाषा आरम्भ करनी चाहिए न कि अँग्रेजी। स्वभावत अहिन्दी प्रान्तों में वह हिन्दी होगी तथा हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी से परे कोई अन्य भारतीय भाषा।

आयोग के इस कथन से असहमत होते हुए भी तथ्य अवश्य है कि अभी कुछ समय तक हमें अँग्रेजी पर निर्भर रहना पडेगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो भी कम आयु में नवीन भाषाएँ द्रुत गति से सीखी जा सकती है। इस दृष्टि से जो बच्चे इस प्रकार की उच्च शिक्षा में जाना चाहें, जहाँ अँग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य-

---

* शिक्षा-आयोग प्रतिवेदन १९६४-६६ अनुच्छेद ८.३६

गा है, उनके लिए अंग्रेजी वैकल्पिक रूप से ११ अथवा १२ वर्ष की आयु से आरम्भ करना उचित होगा।

गणित तथा विज्ञान

आयोग ने विज्ञान शिक्षण पर विशेष रूप से आग्रह किया तथा सिफारिश की है कि इसका आरम्भ निम्न प्राथमिक स्तर पर कर देना चाहिए। आयोग के अनुसार प्राथमिक शालाओं में विज्ञान अध्यापन का उद्देश्य भौतिक एवं जैविक वातावरण के मूल तथ्य अवधारण, तथा प्रक्रियाओं की जानकारी देना तथा अवबोध करवाना है। निम्न प्राथमिक स्तर की पहली व दूसरी कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण बालक के भौतिक, जैविक तथा सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित होगा, तथा तीसरी व चौथी कक्षाओं में विज्ञान के कुछ मूल तत्त्व तथा तथ्य सिखाये जायेंगे। आयोग ने कक्षा चार में रोमन लिपि सिखाने का भी सुझाव दिया है ताकि विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय सकेता को बालक समझ सके।

उच्च प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण का आग्रह वातावरण से हटकर ज्ञान प्राप्ति तथा तार्किक ढंग से विचार करने की दक्षता का विकास करने पर होना चाहिए। आयोग ने 'सामान्य विज्ञान' को निरर्थक बतलाकर यह सिफारिश की है कि इस स्तर पर विज्ञान शिक्षण—भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र भूगर्भ शास्त्र तथा ज्योतिर्विज्ञान के रूप में होना चाहिए। कक्षाओं की दृष्टि से आयोग ने विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

कक्षा—५ भौतिक शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, जीव विज्ञान

कक्षा—६ भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र।

कक्षा—७ भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान।

गणित के सम्बन्ध में आयोग ने सुझाव दिया है कि प्राथमिक स्तर पर अंकगणित एवं बीजगणित को पृथक-पृथक करना उचित नहीं है। अपितु इन दोनों के बीच समन्वय करने की आवश्यकता है। गणित सिखाने में नियमों, सिद्धान्तों तथा तत्पूर्ण विचार प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक है।

जहाँतक वातावरण से सम्बन्धित विज्ञान शिक्षण की बात आयोग ने कही है, वहाँतक तो बुनियादी शिक्षा के साथ उसकी समरसता है परन्तु आगे आकर बहुत जल्दी मूल विज्ञानों को आरम्भ करने की सिफारिश मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं मालूम होती। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी शिक्षाक्रम से आयोग के सदस्य इतने अभिभूत हो गये कि इतनी शीघ्र मूल विज्ञानों को आरम्भ करने का सुझाव दिया तथा 'सामान्य विज्ञान' का बहिष्कार कर दिया। सामान्य विज्ञान तथा मूल विज्ञान का अन्तर ही यही है कि प्रथम बालक की समग्र शिक्षा के लिए आवश्यक है, जब कि द्वितीय, विज्ञान के विशेष पाठ्यक्रम की पूर्व तैयारी के रूप में। सामान्य विज्ञान के अध्ययन से जीवन के दैनन्दिन व्यापारों को वैज्ञानिक रूप से सचालित करने में सहायता मिलती है, जबकि मूल विज्ञान के अवधारण आगे की तैयारी में काम आते हैं। आयोग विज्ञान से कुछ ऐसा अभिभूत सा हो गया मालूम होता है कि उसे साधन न मानकर साध्य मान लिया गया है। क्या आयोग यह मानता है कि सभी बालकों में वैज्ञानिक अध्ययन की क्षमता तथा रुझान होती है? और यदि यह सत्य भी हो तो क्या कला तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्रों की हम उपेक्षा करेंगे? यह सही है कि आज के युग में विज्ञान सबको आना चाहिए और उसके लिए 'सामान्य विज्ञान' अधिक उपयोगी है, बनिस्वत मूल विज्ञानों के, जिनका प्राथमिक स्तर पर न तो उद्योग से ही सम्बन्ध बैठ पाता है न जीवन से ही।

गणित सम्बन्धी सुझाव सर्वथा समुचित प्रतीत होते हैं।

सामाजिक अध्ययन

सौभाग्य से आयोग ने प्राथमिक स्तर पर इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र को पृथक-पृथक विषय के रूप में न देखकर उनके सम्बन्धित रूप 'सामाजिक अध्ययन' को ही स्वीकार किया है। सामाजिक अध्ययन का जो रूप आयोग ने सुझाया है वह बुनियादी शिक्षा की भावना के सर्वथा अनुरूप ही दिखाई देता है।

कार्यानुभव

आयोग ने 'समग्र शिक्षाक्रम' को 'उत्पादन' अथवा 'कार्यानुभव' से ओत प्रोत करने का जोरो से समर्थन किया है। यह एक ऐसा सुझाव है, जिसमें बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओ की सबसे अधिक रुचि होना स्वाभाविक है। बुनियादी शिक्षा की आधार-शिला 'उद्योग' अथवा 'उत्पादक श्रम' रही है। आयोग ने कार्यानुभव को इतना महत्व प्रदान करके भी बुनियादी शिक्षा को ठुकरा दिया, यह बात कुछ समझ मे नही आती। आयोग द्वारा सुझाया गया 'कार्यानुभव' किस प्रकार बुनियादी शिक्षा के 'उत्पादक श्रम से भिन्न है इसका विश्लेषण करना आवश्यक है।

आयोग के अनुसार प्राथमिक शाला की आरम्भिक कक्षाओ में कार्यानुभव का उद्देश्य बालको को अपने हाथो का उपयोग करने की शिक्षा देना है, जिसके परिणाम-स्वरूप उनका बौद्धिक एव भावात्मक विकास हो सके। अत निम्न प्राथमिक शाला में सामान्य दस्तकारी (उदाहरणार्थ—कागज काटना, गत्ते का काम, मिट्टी अथवा प्लास्टिक के खिलौने बनाना, कताई, सामान्य सीना-पिरोना, साग सब्जी की खेती) आरम्भ की जानी चाहिए। उच्च प्राथमिक शालाओ में सामान्य दस्तकारी का स्थान किसी उद्योग को ले लेना चाहिए, जिसके द्वारा तकनीकी चिन्तन तथा सृजनात्मक शक्तियो का विकास हो सके। आयोग ने निम्नांकित उद्योग उदाहरण के रूप में सुझाये है—खेत तथा बाग का काम, चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन बनाना, सिलाई बुनाई, बागवानी, खिलौने बनाना खेत पर काम इत्यादि। इस स्तर पर समग्र रूप से खेती का सुझाव आयोग ने नही दिया है, इसे माध्यमिक स्तर पर रखा गया है, यद्यपि यह अवश्य कहा है कि समय समय पर खेत मे काम करने के अवसर प्रदान करने चाहिएं।

कार्यानुभव के प्रयोजन तथा सुझाये गये कार्यानुभव को देखने से तो ऐसा लगता है कि बुनियादी शिक्षा के मूल विचार से बहुत अन्तर नही है, परन्तु गहराई से देखने पर इसका खोखलापन स्पष्ट हो जाता है। प्रथम तो 'कार्यानुभव' शब्द की समग्र शिक्षा का केन्द्र नही है, जैसा कि बुनियादी शिक्षा मानती है। कार्यानुभव अन्य शैक्षिक अनुभवो के समान एक उपयोगी अनुभव के रूप में स्वीकार किया गया है। दूसरे कार्यानुभव खण्डित रूप (ट्रकेटेड फार्म) में दिया जाने का भय है। निम्न प्राथमिक, उच्च प्राथमिक स्तरो में सातत्य का अभाव दिखाई देता है।

यद्यपि आयोग ने इस बात पर विशेष आग्रह किया है कि 'कार्यानुभव' वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान से संयुक्त होना चाहिए, परन्तु प्राथमिक स्तर पर जिन कार्यानुभव की सूची गिनायी गयी है, उनमे इसकी गुंजाइश बहुत कम दिखाई देती है। 'समवाय' केवल सिद्धान्त में रह जाने के कारण यह आशका है कि कार्यानुभव केवल 'शारीरिक श्रम' ही रह जायगा।

'कार्यानुभव' के द्वारा उत्पादन और शिक्षा का समन्वय करने की जो बात आयोग ने कही है वह आयोग द्वारा सुझाये गये शिक्षाक्रम में कही परिलक्षित नही होती। भय यही है कि प्रत्येक विद्यालय के साथ जबतक वर्कशाप, खेत अथवा अन्य उद्योगालय संयुक्त नहीं कर दिये जाते तबतक उद्योग की जो स्थिति बुनियादी तालीम मे हुई वही गति 'कार्यानुभव' की होनेवाली है।

यदि देश ने 'विज्ञान और तकनीक' का मार्ग अपना ही लिया है तो आरम्भ से ही कार्यानुभव मे विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान संयुक्त होना चाहिए। शायद बुनियादी शिक्षा की 'समवाय विधि' इसके लिए और भी अधिक आवश्यक है। 'कार्यानुभव' तथा 'समुदाय-सम्पर्क' को पृथक्-पृथक् करके देखना भी संगत नही है। बुनियादी शिक्षा में स्थानीय समुदाय के व्यवसाय तथा विद्यालय के उद्योगो में समरूपता लाने का प्रयत्न था। 'कार्यानुभव' को वास्तविकता प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि स्थानीय समुदाय के प्रचलित उद्योग-धन्धे, स्थानीय वर्कशाप, स्थानीय फैक्टरी अथवा उद्योगालय के साथ विद्यालय के 'कार्यानुभव' का ताल-मेल बैठाया जाय।

कला तथा शारीरिक शिक्षण के बारे में कोई नवीन बात दिखाई नही देती। प्रचलित कार्यक्रमो की ही मात्र पुनरावृत्ति की गयी है।

पाठ्यक्रम में एक नया विषय सुझाया गया है 'नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो' की शिक्षा। आयोग के अनु-

सार इन मूल्यों की शिक्षा दो प्रकार से दी जा सकती है। (१) अप्रत्यक्ष रूप से जो कि अध्यापक के जीवन तथा विद्यालय के वातावरण से प्राप्त होती है, तथा (२) प्रत्यक्ष रूप से जिसके अन्तर्गत आयोग ने कहानियों के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्रदान करने की बात कही है। बुनियादी शालाओं में जो सहगामी क्रियाएँ इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाती थी आयोग ने उनकी भी गणना की है। आयोग ने इस विषय को केवल सतह से देखने का प्रयत्न किया है, न तो इसका विशद् रूप से विवेचन ही हुआ है न धार्मिक व नैतिक शिक्षा प्रदान करने की सही विधियों का ही वर्णन किया गया है। पूर्व समितियों द्वारा सुझायी गयी बहु-चर्चित बातों का ही उल्लेख किया गया है।

आयोग द्वारा सुझाये गये प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम को समग्र दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि अभ्यासक्रम आगे बढ़ने की अपेक्षा एक कदम पीछे हटा है। अनेक वर्षों पूर्व लिखना-पढ़ना गणना (थ्री आर्स्) प्राथमिक शिक्षा का संकीर्ण उद्देश्य माना जाता था। बुनियादी शिक्षा में उसे व्यापकता प्राप्त हुई थी परन्तु गलत लोगों के हाथों में पड़कर और कहीं-कहीं अति उत्साह में लिखना पढ़ना गणना की उपेक्षा हो गयी थी। थ्री आर्स साधन हैं साध्य नहीं। नये पाठ्य क्रम को देखने से ऐसा लगता है कि वे स्वयं साध्य हो गये हैं। बुनियादी अभ्यासक्रम में सहेतुकता थी नये पाठ्य क्रम में वह लुप्त-सी हो गयी है। यदि कोई हेतु दिखाई देता है तो वह आगे की शिक्षा की तैयारी के रूप में है स्वयं पूर्ण नहीं।

बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं के सामने यह एक चुनौती है। जो संकीर्णता आ गयी थी उसे तो नष्ट करना ही था। प्रतिदिन के पाठों में समवाय ने जो कृत्रिमरूप धारण कर लिया था वह तो समाप्त करना ही उचित था, परन्तु 'कार्यानुभव' एक नयी दिशा लेकर सामने आया है। इसे सचमुच जीवन केन्द्रित शिक्षा के सन्दर्भ में कैसे ढाला जाय यह एक चुनौती है। 'कार्यानुभव' ने कुछ नये क्षितिज खोले हैं। इसे यदि शिक्षा में ठीक तरह अपनाया जाय तो 'उत्पादन-केन्द्रित' शिक्षा बन सकती है, जो 'उद्योग केन्द्रित' बुनियादी शिक्षा का विकसित रूप होगा। ●

सरदार गद्गद् हो गये

●

किशोरलाल घ० मशरूवाला

इसलाम के चौथे खलीफा हजरत अलीसाहब एक बार राज्य के खजाने का हिसाब करने बैठे। रात का वक्त था। इसलिए उन्होंने दिया जलाया और फिर से हिसाब किताब में लग गये।

थोड़ी देर बाद दो सरदार अपने निजी काम के सम्बन्ध में उनसे मिलने आये। हजरत अली ने आँख के इशारे से उन्हें थोड़ी देर इन्तजार करने के लिए कहा।

हिसाब पूरा हो जाने पर हजरत अली ने उस दीये को बुझा दिया और पास ही रखे हुए एक दूसरे दीये को जलाकर वे उन सरदारों से बातचीत करने लगे।

यह देखकर सरदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, *"जलते हुए दीये को बुझाकर हजरत अली* ने दूसरा दीया आखिर किसलिए जलाया?" इस विचार से उनके मन में उथल-पुथल मचा दी।

थोड़ी देर में काम पूरा हो गया, पर सरदार अपने कुतूहल को नहीं रोक सके। उन्होंने हजरत अली से विनयपूर्वक दूसरा दीया जलाने का कारण पूछा।

हजरत अली ने शान्तिपूर्वक कहा—"आपलोग आये तब मैं राज्य का हिसाब किताब देख रहा था। उस समय यहाँ जो दीया जल रहा था वह राज्य के खर्च से जल रहा था। इसके बाद हम अपने निजी काम के लिए बैठे। निजी काम के लिए राज्य के दीये का उपयोग कैसे किया जा सकता है?

हजरत अली की इस सच्चाई और प्रामाणिकता को देखकर दोनों सरदार गद्गद् हो गये। ●

सन् १६४६ में इनके प्रयोग का वर्णन किया है। इतना ही नहीं तख्ती और स्लेट का प्रयोग भी सदियों पुराना है। इन्हें श्यामपट्ट का पूर्वज कह सकते हैं। वास्तव में शिक्षण के लिए मूल साधना का प्रयोग शताब्दियों पहले से होता आया है। पेस्टालाजी, फोबेल आदि सभी शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षण की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए इन साधनों के प्रयोग की संस्तुति की है। रूसो तो यहाँ तक कहता है कि साधारणतया कभी किसी वस्तु के स्थान पर उसके प्रतीक (चिन्ह) का प्रयोग मत करो।

पाठ्य-वस्तु के समझने में सहायता देने के लिए सबसे पहले चित्रित पुस्तक सम्भवतः कामेनियस की आरबिस पिक्टस है जो सन् १६५८ में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद पाठ्य-पुस्तकों को अच्छी तरह समझने-समझाने के लिए चित्रों, मानचित्रों और रेखाचित्रों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। फोटोग्राफी की कला के आविष्कार के बाद शिक्षण प्रक्रिया में सहायता देने के लिए श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग का क्षेत्र विस्तृत हुआ। मैजिक लैन्टर्न स्लाइड्स, फिल्म स्लाइड्स, सिनेमा आदि का प्रयोग होने लगा। ग्रामोफोन और रेडियो के आविष्कार के बाद इस प्रयोग में और भी गति आ गयी। आज शिक्षा शास्त्री इनके अधिकाधिक प्रयोग के पक्ष में हैं, जिससे गणित विज्ञान आदि सूक्ष्म विषयों के अध्यापन में मूर्त साधनों का प्रयोग कर उन्हें सुगम और रोचक बनाया जा सके।

ज्ञानार्जन की क्रिया एक सूक्ष्म प्रक्रिया है। इसे सरल और स्थायी बनाने के लिए शिक्षाविद् प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन की पद्धति का सहारा लेते हैं। अब यह सर्वमान्य हो गया है कि प्रत्यक्ष अनुभव और दर्शन ही ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान को स्थायी बनाने का मनोवैज्ञानिक तरीका है।

हाथी के विभिन्न पहलू पर पचास पृष्ठों की पुस्तक पढ़ डालिए लेकिन हाथी के बारे में आपको उतना ठीक ज्ञान नहीं होगा जितना प्रत्यक्ष हाथी अथवा हाथी के सुन्दर माडल (या चित्र) को देखकर होगा। पचास पृष्ठ पढ़कर हाथी को समझने में जितना समय लगता है उससे बहुत कम समय में प्रत्यक्ष-दर्शन से उसकी जानकारी हो जाती है। हमारे देश में जो ज्ञान-भण्डार संचित है उसका नाम दर्शन है। वास्तविक दर्शन से ही उसकी प्राप्ति हुई थी। इसीलिए वह अक्षय है।

अतः यदि ज्ञान को अक्षय बनाना है तो उस पद्धति का प्रयोग करना आवश्यक है जो बालक को अधिक से अधिक प्रत्यक्ष दर्शन और श्रवण का अवसर देती है। दूसरे शब्दों में श्रव्य-दृश्य शिक्षण विधि सीखने की प्रक्रिया को मूर्त बनाकर ज्ञान को सहज ग्राह्य बना देती है।

श्रव्य-दृश्य शिक्षा अलग से स्कूल का विषय नहीं है। विषयों के अध्ययन में मात्र सहायक है। वह शिक्षण का महत्वपूर्ण अंग है। अध्यापक भाषा, गणित, विज्ञान आदि विषयों के भावों, विचारों-नियमों आदि को स्पष्ट करने के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग करता है वही श्रव्य-दृश्य साधन कहलाते हैं। वैसे श्रव्य-दृश्य शब्द रूढ़ हो गया है। नहीं तो इन दोनों इन्द्रियों के अलावा अन्य इन्द्रियों से सम्बन्ध रखनेवाले साधन होने के कारण कुछ शिक्षाविद् इन्हें ऐन्द्रियिक साधन भी कहते हैं। श्रव्य-दृश्य शिक्षा केवल मनोरंजन नहीं है। आज मनोविज्ञान बतलाता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में रुचि का बहुत बड़ा स्थान है। सीखने के लिए अवधान बहुत आवश्यक है और अवधान रुचि पर निर्भर करता है। पढ़ना लिखना और गणित सूक्ष्म प्रक्रियाएँ हैं अतः नीरस हैं। इन्हें सरस बनाने के लिए मूर्त साधनों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि पाठ्य-पुस्तकों को सरस और सरल बनाने के लिए सचित्र पुस्तकों का प्रयोग भी बहुत दिनों से हो रहा है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री कमेनियस ने सन् १६५८ में ही बच्चों के लिए 'आरबिस पिक्टस' नाम का सचित्र रीडर छपवाया था। फिर धीरे धीरे भूगोल इतिहास विज्ञान आदि की सचित्र पाठ्य-पुस्तकें निकलने लगीं।

चित्र सीखने की क्रिया को सरल बना देते हैं।

श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोगों के मूल में यही मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त अन्तर्निहित है।

प्रेरणा—श्रव्य-दृश्य-साधनों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है बालक को सीखने के लिए प्रेरणा देना। पहले प्रेरणा का अर्थ बाह्य प्रेरणा था और उसका रूप दण्ड और पुरस्कार था। दण्ड के भय से अथवा पुरस्कार के लोभ से बालक सीखने के लिए प्रेरित होता था। दण्ड के भय

ये साधन बालक की जिज्ञासा को जागृत कर देते हैं उसकी पूर्ण सन्तुष्टि नहीं करते। पूर्ण सन्तुष्टि के लिए उन्हें अलग से प्रयत्न करना पड़ता है। पर चूँकि उसकी एक बार जिज्ञासा प्रवृत्ति जागृत हो जाती है अत वह सीखने का काम जारी रखता है। अगर श्रव्य-दृश्य साधनों को सही ढंग से चुना जाय और सही ढंग से उनका प्रयोग किया जाय तो ये जिज्ञासा और रुचि को जागृत करने के बहुत बड़े साधन हैं और सीखने की क्रिया को सुगम और सीखे हुए ज्ञान को स्थायी बना देते हैं।

व्यक्ति को बाह्य जगत का ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से ही होता है। अत बौद्धिक क्रिया का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं बौद्धिक अनुभवों पर निर्भर करती है, जो इन इन्द्रियों-द्वारा प्राप्त होते हैं। कल्पना, चिन्तन, विचार आदि सूक्ष्म बौद्धिक क्रियाएँ भी ऐन्द्रियिक अनुभवों पर निर्भर करती हैं, क्योंकि मस्तिष्क को सोचने-विचारने अथवा कल्पना के लिए कुछ समय चाहिए और यह आधार इन्द्रिय-जन्य अनुभव ही हो सकते हैं। मस्तिष्क को भोजन इन्द्रियों से ही मिलता है।

श्रव्य-दृश्य साधनों की अच्छाई उनके सफल प्रयोग पर निर्भर करती है। यदि सफलतापूर्वक उनका प्रयोग किया जाय तभी उनका शिक्षा में उपयोग है। रेडियो और सिनेमा अपेक्षाकृत नये साधन हैं और उनके उपयोग के विषय में बहुत कम अनुभव है।

साधनों के सफल प्रयोग के सिद्धान्त

(१) सफल प्रयोग के लिए सबसे आवश्यक है शिक्षक को श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग में प्रशिक्षित करना। किसी भी साधन का प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। यह प्रशिक्षण जहाँतक सम्भव हो पर्याप्त होना चाहिए। उन्हें साधनों के प्रयोग की टेकनीक भी बतायी जाय। वे बालकों की कक्षाओं में उनका उपयोग करें दूसरे स्कूलों में उनके प्रयोग देखें और अपने स्कूल की सीमाओं में उनका प्रयोग करें।

(२) इन साधनों का अत्यन्त सावधानीपूर्वक चुनाव किया जाय। जिस सावधानी से शिक्षा के अन्य साधनों का (पाठ्यपुस्तक का) चुनाव किया जाता है उसी सावधानी से इन साधनों का भी चुनाव करना चाहिए। दक्ष व्यक्ति की सलाह ली जाय। आजकल इन साधनों के निर्माण हेतु अनेक फर्म खुले हैं, केवल अच्छे फर्मों से साधन लिये जायँ, महँगी और अच्छी चीजों का खरीदना तभी सस्ता पड़ता है। जिन अध्यापकों को इनका प्रयोग करना है उनकी राय से ही इन्हें चुना जाय अथवा क्रय किया जाय।

(३) विभिन्न साधनों (विशेष उपयोगों) के विषय में अध्यापक को ज्ञान हो। प्रत्येक साधन का अपना अपना उपयोग होता है। जहाँ सूई काम नहीं आती है वहाँ तलवार का कोई उपयोग नहीं होता, इसी प्रकार जहाँ कभी साधारण चित्र अथवा श्यामपट्ट सफल सहायक साधन सिद्ध होता है वहाँ चित्रपट बेकार सिद्ध हो सकता है। अत किसी विशेष ऐन्द्रियिक साधन का कहाँ और क्या सफलता-पूर्वक उपयोग हो सकता है, उसका ज्ञान अध्यापक को होना चाहिए।

(४) अध्यापक को विभिन्न साधनों के सफल प्रयोग का ज्ञान होना चाहिए। केवल उनकी कार्य प्रणाली से परिचित होना अथवा उनका बुद्धिमानीपूर्वक चुनाव करना ही पर्याप्त नहीं है। अध्यापक को इसका भी ज्ञान होना चाहिए कि उचित समय पर उनका ठीक ढंग से प्रयोग कैसे करे। जैसे परीक्षार्थी के लिए विषयों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है। यह भी आवश्यक है कि वह परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर देने में उसका ठीक उपयोग कर सके।

(५) साधन बच्चों की आयु, बुद्धि, अनुभव के अनुरूप हों। साधन तभी ठीक साधन है जब वह सहायक हो। जब वह बालक की रुचि, क्षमता और आवश्यकता के अनुरूप नहीं होता तो वह ज्ञानार्जन की क्रिया में सहायक नहीं हो सकता। उसे बालक के शारीरिक बौद्धिक, और मनोवैज्ञानिक विकास के अनुकूल होना चाहिए।

(६) अध्यापक को यह देखना चाहिए कि बालक इन साधनों का स्वय प्रयोग करें स्वत अनुभव प्राप्त करें। अध्यापक के हाथ में इन साधनों का जितना मूल्य है उससे कहीं अधिक बालक के हाथ में है। जैसे बहुत से पुस्तकाध्यक्ष पुस्तकों को बालक को देने के स्थान पर अल्मारियों में ठीक सजाकर रखना अधिक पसन्द करते हैं, इसी प्रकार कुछ अध्यापक इन श्रव्य-दृश्य साधनों को

कक्षा में सजाकर ही रखना पसन्द करते हैं और इस भय से कि वे खराब हो जायेंगे वे बालकों के हाथों में देना पसन्द नहीं करते। इस तरीके से साधन का शैक्षिक मूल्य समाप्त हो जाता है।

(७) साधनों का केवल प्रदर्शन ही नहीं करना है बल्कि उनका प्रयोग कर उनसे शिक्षा देना है। मानचित्र अथवा माडल को देखना अथवा सिनेमा को देखना अथवा रेडियो प्रोग्राम का सुनना ही काफी नहीं है क्योंकि इससे यह अर्थ नहीं हुआ कि बच्चों ने उसका पूरा अर्थ समझ लिया है। ये साधन ज्ञान प्राप्त करने में केवल सहायक भर हैं। अतः उनका प्रयोग करना ही उनका पूर्ण उपयोग है।

(८) सफलतापूर्वक सीखने के लिए सीखने की क्रिया में बालक का भाग लेना आवश्यक है। सीखने का बुनियादी सिद्धान्त है करके सीखना। अतः विद्यार्थी को स्वयं काम करके अथवा अपने आप अनुभव प्राप्त करके सीखना चाहिए। परन्तु यह सीखना हमेशा शारीरिक ही न होकर बौद्धिक भी हो सकता है।

(९) विद्यार्थियों को प्रयोग के लिए पर्याप्त रूप से तैयार करना चाहिए। विद्यार्थियों को यह मालूम होना चाहिए कि ऐन्द्रियिक साधन बालक की कुछ कमियों को पूरा करते हैं। इनके न रहने पर वे कमियाँ पूरी नहीं होंगी।

(१०) अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के लिए इन ऐन्द्रियिक साधनों के प्रयोग में समय की बचत होनी चाहिए। ज्ञान की जिस क्रिया को बिना साधनों की सहायता से एक घंटे में सीखा जा सकता है साधनों के उपयोग से उसे एक घंटे से कम समय में अधिक अच्छी तरह न सीखा गया तो सहायक साधनों का उपयोग व्यर्थ है।

(११) अत्यधिक सहायक साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पहले बहुत कम साधनों का प्रयोग होता था पर अब साधनों का बहुत बाहुल्य हो गया है। उत्साही अध्यापक कभी ज्ञान की एक क्रिया को स्पष्ट करने के लिए अनेक सहायक साधनों का प्रयोग करते हैं। इससे क्रिया स्पष्ट होने के स्थान पर अस्पष्ट हो जाती है।

(१२) जो अध्यापक ऐन्द्रियिक साधनों का प्रयोग करें वे निरन्तर उसका मूल्यांकन करते रहें। इससे साधन और उनके व्यवहार करने की शैली दोनों में निरन्तर सुधार होता रहेगा। मूल्यांकन का आधार निम्नांकित हो —

(१) सफलतापूर्वक प्रयोग करने की बालकों की क्षमता, (२) उनमें बालकों की रुचि, (३) कक्षा का वातावरण और (४) उनके प्रयोग करने से शिक्षण में सुधार का लेखा।

(१३) श्रव्य दृश्य शिक्षा का सन्तुलित कार्यक्रम विकसित कर लिया जाय, प्रयोग में विभिन्नता हो—विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग हो—इसकी इसलिए आवश्यकता है क्योंकि व्यक्तिगत रुचियों में अन्तर होता है। एक विशेष साधन सबके लिए समान रूप से रुचिकर नहीं होता। कोई बालक माडल अथवा चित्र में दिलचस्पी लेगा पर वह सिनेमा अथवा रेडियो प्रोग्राम की ओर से उदासीन रह सकता है।

(१४) साधनों की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध हो, उन्हें संभालकर रखा जाय और उनकी मरम्मत होती रहे। धूमिल चित्रपट, टूटे हुए माडल, फटे हुए नक्शे या मानचित्र बालकों की रुचि को कम कर देते हैं।

(१५) इन साधनों को किसी केन्द्रीय स्थान पर रख कर नियमपूर्वक उसको विभिन्न संस्थाओं में घुमाने का उचित प्रबन्ध हो। एक दूसरी संस्थाओं में हेर-फेर भी हो सके ऐसा इस कार्य का संगठन किया जाय।

(१६) श्रव्य-दृश्य शिक्षा के प्रसार में समुदाय की रुचि विकसित की जाय और उनसे इस कार्यक्रम में सहायता ली जाय।

(क्रमशः)

विनोबा के शिक्षण-विचार

●

उद्योग

● शाला को परिश्रमालय बनाना चाहिए और उसमें इस परिश्रम निष्ठा का निर्माण होना चाहिए कि कर्म ही श्रम है, कर्म ही सेवा है, कर्म ही आनन्द है और कर्म ही उपासना है।

● शारीरिक श्रम से चित्तक्रियाशील और प्रसन्न रहता है, और बुद्धि तेजस्वी होती है।

● उद्योग के द्वारा शास्त्रीय बुद्धि का विकास किया जा सकता है।

नयी तालीम केवल उद्योग की तालीम नहीं है, मानव की क्षमता का पूरा विकास करनेवाली तालीम है।

विद्यार्थियों को उद्योग में प्रवीण बनने से ही काम नहीं चलेगा, उनमें किसी बात का या वस्तु का विश्लेषण करने और शास्त्रीय दृष्टि से समझाने की शक्ति भी आनी चाहिए।

● उद्योग-शिक्षण तब पूर्ण समझा जायगा जब विद्यार्थी में यह हिम्मत और आत्मविश्वास पैदा हो कि चार घण्टे के परिश्रम से अपनी जीविका वह कमा सकता है।

● उद्योग-शिक्षण के तीन परिणाम वांछनीय हैं—समग्र-विकास की क्षमता, जीवनोपयोगी ज्ञान और जीवनकला की प्राप्ति।

● उद्योग-शिक्षण से शारीरिक विकास सधना चाहिए। इसमें ऐसी शक्ति पैदा होनी चाहिए कि विद्यार्थी अपने ज्ञान को व्यवहार में उतार सके और बच्चे के अन्दर निहित सृजन-शक्ति को प्रोत्साहन मिल सके।

● बुनियादी शाला की कसौटी यह नहीं है कि उसमें कितना धन पैदा हुआ—शाला की खेती से अनाज, फल, तरकारी पैदा होती है और बढ़ईगिरी से घर और शाला के लिए उपयोगी सरजाम बनता है।

● देश के सभी विद्यार्थी प्रतिदिन केवल आधे घंटे का समय कताई में लगायें तो देश की सम्पत्ति (खादी) अत्यधिक बढ़ सकती है।

● चीन में हाफ-हाफ स्कूल का जो प्रयोग चल रहा रहा है वह हमारे लिए अनुकरणीय है।

सरकार और रोजगार

● सरकारी नौकरी का शैक्षणिक पदवियों से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए।

● सरकार का प्रत्येक विभाग अपनी-अपनी अलग-अलग परीक्षाएँ लेकर योग्यता के आधार पर कर्मचारियों का चुनाव कर सकता है।

● इससे शिक्षा के स्वतंत्र प्रयासों को प्रोत्साहन मिलेगा और गाँव से शहरों की ओर लोगों का दौड़ना रुकेगा।

● जो शिक्षा बेकारों की संख्या बढ़ाती है, वह अनीति फैलानेवाली है।●

जीवन-मूल्यों का शिक्षण

●

तलत निसार अख्तर

हमारे देश में शिक्षा जितने असन्तोष और नाराजी का विषय रही है उतना अप्रिय शायद ही कोई दूसरा विषय रहा होगा। इसकी आलोचना किसी दूसरी बात की नहीं होती जितनी शिक्षा की होती है।

ऐसा क्यों? यह असन्तोष क्या वास्तविक है? अगर है तो फिर नये स्कूल-कालेज खुलते ही क्यों? यह माँग भी बढ़ती कैसे कि 'हमारे गाँव में स्कूल चाहिए, हमें कालेज चाहिए'।

छात्र कालेजों में सीट पाने के लिए कितनी परेशानी उठाते हैं! जैसे-तैसे सीट पाने के लिए हजार तरकीब सोचते हैं। जाति का सहारा खोजते हैं। उससे काम न बना तो प्रादेशिक हक का हवाला देते हैं। वह भी काम न दे तो रिश्वत देते हैं। तब भी सीट न मिले तो हाईकोर्ट की सीढ़ी पर चढ़ते हैं, रिट (दावा) दाखिल करते हैं।

इतने के बावजूद शिक्षा से सन्तोष नहीं है कहते हैं तो क्या समझा जाय? ऐसी हालत में भी लोग आलोचना क्या करते हैं?

प्रचलित शिक्षा के गुण-दोष

दरअसल यह शिक्षा व्यक्तिगत रूप से हममें से हर एक को पसन्द है। आराम की जिन्दगी जीने का इसके बजाय कोई चारा ही नहीं है। कालेज में जाकर जैसे-तैसे एक आध डिग्री कमा ली, कहीं एक नौकरी ढूँढ ली, तभी पेट चलता है, नहीं तो फाका!

इसलिए यह शिक्षा हर एक को पसन्द है, इसमें भी वह विभाग अधिक पसन्द है जिसमें ज्यादा कमाई है, ज्यादा सुविधा की गुंजाइश है। वरना हम अपने बच्चों को इंजीनियरी या ऐसे दूसरे टेकनिकल विभाग में इसलिए थोड़े भेजते हैं कि देश के लिए इंजिनियरों और टेकनीशियनों की जरूरत है? उनको पैसा ज्यादा मिलते हैं, तभी यह आपाधापी है।

रोज सुनने में आता है कि देहातों के लिए बहुत से डाक्टरों की जरूरत है। लेकिन क्या हमारे लड़के डाक्टर बनकर गाँवों में जाते हैं? दिखता तो नहीं।

विशेष अध्ययन के लिए लोग विदेश जाते हैं। क्या? इसीलिए कि वहाँ से डिग्री लेकर लौटने पर कमाई ज्यादा होती है, स्थान और मान बढ़ता है। और हम भेजते भी इसीलिए हैं।

यह सारी शिक्षा निजी लाभ पहुँचानेवाली है, राष्ट्र के बदले निजी स्वार्थ को महत्व देनेवाली मनोवृत्ति के लिए अनुकूल है। इसलिए जिस जिसको इससे लाभ होना होगा, उसको यह बहुत पसन्द है।

हमारे गाँव में एक आदर्श विद्यालय था, बेसिक स्कूल नहीं था। लेकिन सचालकों ने सोचा कि बुनियादी शिक्षा के तत्व दाखिल किये जायँ। उन्होंने बागवानी शुरू की। साग सब्जी पैदा करने लगे।

क्यारी बनाना, खाद देना, सिंचाई करना, निराई करना, वगैरह काम बच्चों से कराने लगे।

उनकी मंशा थी कि बच्चों का शिक्षण आनन्द देनेवाला हो, उनकी सृजनशक्ति के साथ प्रवृत्ति की सृजनशक्ति जोड़कर बालकों में रचनात्मक प्रेरणा जगायी जाय।

स्कूल में गाँव के मुखिया का भी लड़का था। मुखिया जी एक दिन स्कूल देखने आये थे। आते ही प्रधानाध्यापक पर बरस पड़े। कहने लगे—"क्या खाद मिट्टी में हाथ डालने के लिए हम अपने बच्चे स्कूल भेजते हैं? क्या हमारे घर में यह काम नहीं है? हम तो समझते थे कि हमारा लड़का पढ़ लिखकर कलेक्टर बनेगा, अफसर बनेगा। यह विद्या छोड़कर घास खुदवाने हम क्यों भेजें और ऐसे स्कूल की हमें जरूरत ही क्या है?"

चाहे जितना समझाने का प्रयत्न करने पर भी मुखियाजी के गले सचाल्नों का सद्हेतु नहीं उतरा। उन्हें इसमें लाभ नहीं दीखता था। यह पसन्द नहीं आया।

यही हमारी शिक्षा का गुण है, यही उसका दोष है। यही अनुकूलता है और यही प्रतिकूलता है।

यह व्यक्तिगत हित के अनुकूल है, सामूहिक और राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतिकूल है। खुद हमको इससे लाभ है, समाज और देश को हानि है।

व्यक्ति के स्वार्थ को ध्येय बनाकर उसे सिद्ध कर देना इसका गुण है, समाजहित का दुर्लक्ष्य कर जनता की सामूहिक प्रगति का ध्यान न रखना इसका दोष है।

सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से हम सब एक हैं। एक राष्ट्र हैं। फिर भी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से एक राष्ट्र नहीं हैं।

शिक्षा का यह काम था कि वह यह दोष मिटाये, हमारी जड़ता दूर करे। लेकिन वह नहीं हुआ।

जो शिक्षा राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदर्श के अनुकूल नहीं है, वह हर हालत में विफल ही है।

हमारी शिक्षा का कोई एक राष्ट्रीय आदर्श चाहिए, एक मानवीय आदर्श चाहिए।

इस आदर्श से फलित होनेवाली जीवन-पद्धति में हमें पूर्ण श्रद्धा चाहिए। वह श्रद्धा हमारे युवकों में प्रतिबिम्बित होनी चाहिए।

परिस्थिति-परिवर्तन का उपाय

यह सम्भव नहीं कि यह काम केवल स्कूल में ही हो। समाज में भी होना चाहिए। आदर्श के प्रति श्रद्धा, जीवन-पद्धति में विश्वास, उस मार्ग पर चलने की निष्ठा यदि समाज में ही न हो तो फिर स्कूल में कहाँ से आये ?

हमारे पास ऐसा एक आदर्श है, उसके अनुकूल चलने की एक जीवन-पद्धति है। जरूरत इस बात की है कि स्कूल उनको अपनाये। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि हमारी समाज रचना के लिए, भावी नवसमाज के लिए योग्य नागरिक तैयार करे।

हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में श्रद्धा पैदा करना, बालकों में राष्ट्रीय और मानवीय दृष्टि निर्माण करना शिक्षा का काम है।

इसमें व्यक्ति-हित की उपेक्षा की बात नहीं है। व्यक्ति का हित और समाज का हित परस्पर विरोधी नहीं होना चाहिए। समाज के हित में व्यक्ति का हित भी सधना चाहिए, उसमें यह निहित होना चाहिए।

इस महान काम में यदि समाज का सहयोग न मिले तो अकेले शिक्षक क्या कर सकते हैं ? समाज यदि उलटा चलता है, तो शिक्षा कुछ नहीं कर सकती।

यह अभी हम समझे नहीं है। हम तो झूठ बोलेंगे, लेकिन चाहेंगे कि हमारे बच्चे झूठ न बोलें। हम तो व्यसन करेंगे, लेकिन चाहेंगे कि हमारे बच्चे व्यसन से दूर रहें।

जमाना अब बदल गया है। पिछले जमाने में लड़के समाज के जंजाल से दूर कहीं गुरुकुलों में रह लेते थे। अब वैसा एकान्त नहीं रहा। स्वतन्त्र और आदर्श वातावरण आज बालक को नहीं मिलता। हमारे रोज-रोज की जिन्दगी की कमजोरियों का उन्हें साक्षी बनना पड़ता है, हमारे हर क्षण के विकारों का उन्हें शिकार बनना पड़ता है।

इसका अर्थ यह कि यदि हम चाहें कि बालकों की शिक्षा उत्तम हो राष्ट्र-हित का साधन बने, तो पहले हमको ही शिक्षित होना होगा। प्रौढ़ का प्रारंभ शिक्षण चलाना होगा। हमारी समूची संस्कृति को ही शिक्षा के समर्थन में खड़ा होना होगा।

शिक्षक के काम में माता पिता को हाथ बँटाना होगा। शिक्षा एक तिपाई है। आचार्य, माता और पिता उसके तीन पाये हैं। इसका अर्थ यह कि शिक्षा व्यवस्था और समाज-व्यवस्था, दोनों को हाथ से हाथ मिलाकर चलना होगा।

जो सदाचार स्कूल में शिक्षक सिखाना चाहता होगा, उसकी पूर्व तैयारी माता पिता को घर में करनी होगी। फिर स्कूल में जो काम होता है उसे घर में आगे बढ़ाना होगा। वह सहरी करनी होगी।

अधिकतर लोग इस सहयोग को जानते नहीं हैं, समझते नहीं है। मान लेते हैं कि शिक्षा केवल स्कूल का ही काम है। इसीलिए आज शिक्षण का काम एक टाँग पर खड़ा है। बल्कि स्कूल में और घर में बच्चों को मिलनेवाला शिक्षण परस्पर विरोधी होता है। दोनों में संघर्ष होता है। उनके संघर्ष में बालक पिसता है, उसे दिशा नहीं मिलती।

इस स्थिति में केवल बालकों को शिक्षा देना ही काफी नहीं है। माता पिताओं को भी शिक्षा देने की जरूरत है। लेकिन आज के शिक्षक यह कर पायेंगे ? शायद नहीं।

कुल मिलाकर हमारे शिक्षा जगत में जितनी उलझन है उतनी शायद और कहीं नहीं है। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाय, किधर मुड़ा जाय।

शिक्षा से सम्बन्धित सभी बातों पर और शिक्षा को सफल बनाने की समस्या पर आमूल विचार करने का समय आ गया है। इसकी आज जरूरत है। शिक्षा का प्रभाव बढ़ाने, शिक्षा के परिणाम को व्यापक करने, और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए यह जरूरी है।

इसपर समूचे समाज को सोचना होगा। पुनर्विचार कर नव समाज के अनुरूप शिक्षा की रूपरेखा बनानी होगी। उसके पूरक और सहायक के रूप में घर, परिवार, संस्थाएँ चलानी होंगी।

हमारा एक राष्ट्रीय ध्येय होना चाहिए

चाहे शिक्षा हो या आर्थिक व्यवस्था, चाहे राजनीतिक व्यवस्था हो या समाज-व्यवस्था, सबका एक ध्येय होना चाहिए। राष्ट्र के सब काम जीवन व्यापी और एकमुख होने चाहिएँ।

नव समाज रचना का ध्येय सर्वप्रमुख है, बाकी सारे ध्येय गौण हैं। हमारी प्रवृत्तियों के सब पहलुओं में यह सूत्र दीखना चाहिए।

इसके बिना कोरी पढ़ाई में सुधार केवल भ्रम है। साँप के बदले साँप के बिल को पीटने से साँप नहीं मरता है। असल ही नहीं तो ब्याज कैसा ?

किसी भी राष्ट्र की किसी भी प्रकार की शिक्षा सफल तभी होती है, जब उसमें मुख्यतया तीन बातें होंगी।

पहली बात—शिक्षा के तीनों अंगों में, तीनों साधनों में एकरूपता होनी चाहिए, सतत और घनिष्ट सहयोग होना चाहिए। वे अंग हैं माता पिता, शिक्षक और जनता, अथवा परिवार, स्कूल और समाज।

शिक्षा में पहल करने की राह दिखाने की प्रमुख जिम्मेदारी शिक्षकों की है।

यदि आदर्श और परम्परा में समता और समन्वय न हो, तीनों अंगों के प्रयत्न में समग्र दृष्टि न हो, तो वह प्रयत्न सतत नहीं चल पायगा और शिक्षा दुःसाध्य हो जायगी उसकी सफलता कठिन हो जायगी।

यह पहली बात है। बुनियादी बात है।

दूसरी बात जो स्पष्टतया और बारीकी से हमें मालूम रहनी चाहिए वह यह है कि हम क्या चाहते हैं, हमारा ध्येय क्या है, आकांक्षा क्या है। उस ध्येय का स्वरूप क्या है, लक्षण क्या है, मूल्य क्या है—यह भी निःसंशय मालूम होना चाहिए।

तीसरी लेकिन सबसे प्रमुख बात है, बड़ों को, सबको उस ध्येय की ओर चलना चाहिए। बड़ों का व्यवहार बालकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ बनना चाहिए।

यदि हम कहते हैं कि 'जो कहता हूँ वह करो' 'जो करता हूँ वह न करो', यदि हमारी कथनी और करनी में अन्तर रहता है तो बालकों के मन में बुद्धिभेद पैदा होगा, उलझन बढ़ेगी, उनका मन ढीला होगा, शिथिल होगा।

घर के, समाज के बड़ों के जीवन में व्यापक दृष्टि, विश्व प्रेम और सर्व के उदय की, सर्वसमता की परम्परा नहीं है तो स्कूल में लाख पढ़ाने से, बाहर चाहे जितना प्रचार करने से कोई लाभ नहीं है।

स्कूल में तो यह सिखाना है कि सारा विश्व एक है, किसी प्रकार का भेद भाव उचित नहीं है। यह नयी दृष्टि है। विश्वमानवता का धर्म है।

लेकिन कालेज में सीट पाने के लिए जाति की दुहाई देनी पड़ती है। छात्रवृत्ति पाने के लिए जाति या गरीबी की आड़ लेनी पड़ती है।

हर एक जातिवालों का अपना अपना छात्रालय होना चाहिए।

यदि इस प्रकार हमारे आदर्श पर हमारा ही आचरण पानी फेरता जाता है तो बालकों में नैष्ठिक श्रद्धा कैसे निर्माण हो ? क्या वे नहीं समझ सकते कि सारा ध्येय निरा ढोंग है, धोखा है ?

इस परिस्थिति में वे या तो कपटी और धोखेबाज बनेंगे या हताश होकर विद्रोही बनेंगे। सामान्य स्थिति में तो रह नहीं सकते।

दूसरी मिसाल। स्कूल में पढ़ाया जाता है कि नशेबाजी सेहत के लिए खराब है। नशा पैदा करनेवाली

किसी भी चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। लेकिन शहर के मुहल्ले-मुहल्ले में हम शराब की दुकानें चलाते हैं। तब बच्चों के मन में बड़ों की बात का कितना, क्या सम्मान रह पायगा ? वह कैसे समझेगा कि कथनी और करनी का मेल ही संस्कृति का आधार है।

एक और उदाहरण। भारत के प्राण ग्रामों में हैं। ग्रामजीवन ही श्रेष्ठ है। किसान ही भारत की रीढ़ है—यह सब कहते हैं लेकिन व्यवहार में गाँवों की जरा भी कद्र नहीं, किसान और उत्पादक का जरा भी सम्मान नहीं, शहर के मोटे पेटवालों को ही सारा स्थान और मान। ऐसी स्थिति में सारी पढ़ाई निरा बोझ ही तो है।

स्कूल में स्वदेशी और स्वावलम्बन की बात पढ़ायेंगे, घरों में स्वदेशी के दर्शन भी नहीं होंगे, स्वदेशी की दृष्टि ही नहीं होगी, तब बालकों का जीवन बिगड़े नहीं तो क्या हो ? उनमें यही मनोवृत्ति पैदा होगी कि कहना कुछ चाहिए और करना कुछ चाहिए।

वास्तविक शिक्षा

ककहरा रटाना ही शिक्षा नहीं है। चिड़ा चिड़ी का किस्सा सुनाना ही शिक्षा नहीं है। ज्ञान विज्ञान का भण्डार ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा का मुख्य ध्येय ज्ञान देना ही नहीं है।

एक पीढ़ी के सामाजिक मूल्य दूसरी पीढ़ी में पहुँचाना ही वास्तविक शिक्षा है।

राष्ट्र की संस्कृति और सामाजिक आदर्शों को बनाये रखने की शक्ति आगेवाली पीढ़ियों में निर्माण करना ही शिक्षा है।

तो, क्या यह तय करना नहीं होगा कि हमारे आदर्श क्या हैं ? हम क्या चाहते हैं ?

यह तय नहीं करते हैं तो क्या समाजवाद हमारा सामाजिक आदर्श होगा ? उस शब्द का स्वरूप क्या है ? उसके अंग क्या हैं ?

आज एक प्रकार का समाज है। इसकी अनेक परम्पराएँ हैं। उनमें आगे किसे रखना है ? किसे छोड़ना है ? आज की रूढ़ियों में, रीति नीतियों में, किसे कसना है ? किसे ढीली करना है ?

नया क्या दाखिल करना है ? उसके लिए हमें क्या करना है ? कौन सी नयी परम्परा चालू करनी है ? कौन-सा नया रूप विकसित करना है ?

इसके साथ शिक्षा का मेल कैसे साधना है ? शिक्षा में नव समाज-रचना का प्रयत्न किये बिना व्यवहार में नव समाज कैसे बनेगा ?

शिक्षा ही हमारे लिए ध्येय तक पहुँचने का वाहन है, साधन है, तो क्या उसके तीनों अंगों में एकरूपता लाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं ?

अगर नहीं, तो क्या अब करना नहीं है ? इतने सारे मन्थन का यही तो सार निकलता है।

हमने अपना आदर्श समाजवाद माना है, सर्वोदय माना है।

समाजवाद या सर्वोदय का अर्थ हम थोड़ा-बहुत जानते हैं। उसका अर्थ है याने हमारे समाज में शोषण जरा भी नहीं रहे। यानी आर्थिक विषमता नहीं रहे। किसी के पास किसी को खरीदने का, अपने लिए मेहनत कराने का मौका नहीं रहे। कोई किसी के कन्धे पर सवार न हो।

गांधीजी ने अंग्रेजों से कहा था कि तुम लोग हमारे कन्धे पर से उतरो। उसी प्रकार प्रत्येक को दूसरे के कन्धे पर से उतरना चाहिए।

लेकिन इस ध्येय की सिद्धि के लिए आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक कार्यक्रम क्या होंगे, यह हम स्पष्ट नहीं जानते। राष्ट्र में उत्पादन बढ़ जाय तो शायद लक्ष्य पर पहुँच सकेंगे, ऐसा मानते हैं।

जिन राष्ट्रों में उत्पादन अधिक है वहाँ क्या समाजवाद आ सका है ?

क्रान्ति के लिए केवल उत्पादन नहीं, कुछ और भी चाहिए। वह जो कुछ और है वह अभी हमारे विचारों में स्पष्ट नहीं हुआ है। हमारे हाथ नहीं लगा है—वह है नये मूल्यों के आधार पर समाज-रचना, राष्ट्रनिर्माण की क्रान्ति की कल्पना। हमें अब उसकी साधना करनी है।

जब वह जीवन-मूल्य हमारी समझ में आये, पकड़ में आये, उसके अनुरूप हमारा जीवन बने, उसका बीज हमारी शिक्षा में पड़े, तब शिक्षा प्राणवान होगी, वांछित फल देगी। ●

कल्याण-कार्यक्रम और विद्यार्थी

●

सुरेश भटनागर

प्राध्यापक,
बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज,
गांधी विद्या मन्दिर,
सरदार शहर (राज०)

आज समाज में जिस प्रकार की धारा प्रवाहित हो रही है, वह समाज परिवर्तन की प्रक्रिया का संकेत है। यह परिवर्तन तीन दिशाओं में अपेक्षित है।

१ वैज्ञानिक प्रणाली के द्वारा उत्पादन तथा रोजगार को बढ़ावा देना, जिससे कृषि, बागवानी, पशुपालन तथा अन्य घरेलू उद्योग धन्धों की प्रगति हो।

२ सहकारिता द्वारा स्वयं उत्तरदायित्व का निर्वाह करने की क्षमता या विकास करना।

३ समुदाय के कल्याण के लिए समय का पूरा पूरा उपयोग करना।

ये तीन सूत्र नहीं हैं अपितु कार्यक्रम की विस्तृत रूपरेखा है। यदि छात्रों को समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोगी बना दिया जाय तो एक पंथ दो काज सिद्ध होंगे। विद्यार्थियों की रचनात्मक शक्ति का विकास भी होगा और समुदाय भी प्रगति करेगा। इससे शिक्षा का प्रसार तो होगा ही, छात्रों तथा समाज के अन्य लोगों की मनोवृत्ति में भी परिवर्तन होगा।

समाज-परिवर्तन : दिशा और संकेत

विद्यालय का समाज-परिवर्तन में कृषि तथा सहकारिता के पश्चात तीसरा स्थान है। तीसरा स्थान होते हुए भी नये भारत की नींव का काम विद्यालय ही करते हैं। इसका आदर्श है—'संघे शक्ति कलौयुगे'—अतः स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालयों को राष्ट्र-विकास के लिए छात्रों को कल्याण-कार्यक्रम में लगाना ही होगा। ये कार्यक्रम उनकी पढ़ाई के अलावा समय में आयोजित किये जायें।

कल्याण-कार्यक्रम के आधार

हम विद्यालय को समुदाय मानकर छात्र-कल्याण कार्यक्रम चलाने पर जोर देते हैं। अभी तो विद्यालय केवल मिलन स्थल के रूप में कार्य कर रहे हैं। विद्यालय में छात्र कुछ समय के लिए आते हैं और किताबी दुनिया का रसास्वादन कर वापस चले जाते हैं। हमारी ऐसी मान्यता है कि विद्यार्थियों को तनिक भी अवकाश नहीं दिया जाय। विशेष रूप से ग्रीष्म व शरदावकाश में तो प्रत्येक विद्यार्थी को कल्याण कार्यक्रम में लगा देना चाहिए। ऐसा करने से समय का सदुपयोग होगा।

कल्याण-कार्यक्रम

हम छात्र कल्याण को मुख्य रूप से दो भागों में में बाँटते हैं।

१ ग्रामीण विद्यार्थी—कल्याण कार्यक्रम

२ नगर विद्यार्थी—कल्याण कार्यक्रम

हमारे वर्गीकरण का आधार है—क्षेत्र विशेष का छात्र अपने समुदाय की आवश्यकताओं को भली-भांति समझता है। उसके अभिभावक, साथी तथा अन्य परिजनों की दैनिक व सामयिक समस्याओं को उसने समझा होता है। अतः ग्रामीण क्षेत्र का विद्यार्थी ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करे और समुदाय के विकास में पूरा सहयोग दे। यह कार्यक्रम विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है। कार्यक्रम के मुख्य मुद्दे इस प्रकार हैं।

● ग्राम में अधिक अन्न व उद्योगों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने सम्बन्धी कार्यक्रम छात्रों द्वारा चलाये जायें।

- छात्र गांवों की आवश्यकता के अनुरूप सहकारी समितियों के बजट बनाने में सहायक हों।
- ग्रामवासियों को सरकारी सहायता प्राप्त करने की पद्धति से परिचित कराया जाय।
- ग्राम की बंजर एवं अनुपयोगी भूमि का उपयोग करना, भूमि संरक्षण, तालाबों तथा सड़का का निर्माण एवं मरम्मत आदि के कार्यक्रमों द्वारा समुदाय का कल्याण करना।
- समुदाय के सामान्य भवनों, जैसे विद्यालय, ग्राम-पंचायत, आदि की मरम्मत व निर्माण को प्रोत्साहन देना।
- सहकारिता सम्बन्धी गतिविधियों को प्रोत्साहित करना।
- सामुदायिक कार्यों के लिए श्रमदान आदि का आयोजन करना।
- अल्पबचत योजना को प्रोत्साहन देना।
- पशुधन का विकास करना।
- समुदाय से दलबन्दी दूर कर पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देना।
- सामुदायिक नेतृत्व का निर्माण करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाना।

इसी प्रकार के कार्यक्रम नगरों में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार चलाये जायँ। नगरों में निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते हैं।

समाज-शिक्षा-कार्यक्रम—१ इस कार्यक्रम के अन्तर्गत फैक्टरियों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए समाज शिक्षा की अनेक क्रियाएँ ली जा सकती हैं।

२ छात्रों को कोई न कोई काम सीखने के लिए प्रोत्साहित करना, जो कि उनके जीवन में काम आ सके।

३ राष्ट्रीय सेवा-योजना को लागू करना। जो छात्र एन० सी० सी० में भाग न लेते हैं, उन्हें इस सेवा-योजना के कार्यक्रमों में भाग लेना अनिवार्य हो। श्री गजेन्द्र गडकर के शब्दों में—'राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत पथ-निर्माण, तालाबों को गहरा करना, सिंचाई की योजनाओं आदि सामुदायिक कल्याण के कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते हैं।"

४ हर विश्वविद्यालय, कालेज, स्कूल में सहकारी भण्डार खोलने चाहिएँ जिससे छात्र अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं को सस्ते दामों पर खरीद सकें। इस भण्डार का सचालन छात्र ही करें।

छात्र कल्याण के लिए शिक्षा-आयोग (१९६४-१९६६) ने भी 'डीन आव स्टूडेन्ट वेलफेयर' की नियुक्ति की सिफारिश की है।

५ छात्रों को सहयोगी आधार पर अनेक सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं का जन्म देना चाहिए।

कार्यक्रम और पद्धतियाँ

छात्र कल्याण के कार्यक्रमों का आयोजन निम्नलिखित पद्धतियों द्वारा किया जा सकता है।

सेमिनार-पद्धति—इस पद्धति में किसी एक समस्या को चिन्तन का विषय बनाया जा सकता है। इसमें छात्रों की चिन्तन-शक्ति का विकास होगा।

प्रोजेक्ट-पद्धति—इस पद्धति के अनुसार किसी भी काम की प्रस्तावित योजना को एक या अनेक खण्डों में बाँट देना चाहिए। छात्रों को निश्चित समय में उस कार्य को करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

कार्यानुभव—शिक्षा आयोग (१९६४-१९६६) ने छात्र-कल्याण के लिए कार्यानुभव (Work Experience) को प्रस्तावित किया है। इसके अनुसार खेत-खलिहान घर, दुकान, कारखाना आदि सभी शिक्षा के आधार हैं। स्थानीय स्रोत का लाभ उठाना ही इसका उद्देश्य है।

शिविर-पद्धति—इस पद्धति से छात्रों में सहजीवन की प्रक्रिया का विकास होता है।

इन सभी पद्धतियों का आधार है करके सीखना और देखकर विश्वास करना। हमारा विश्वास है कि यदि छात्र-कल्याण-कार्यक्रम को पूर्ण निष्ठा के साथ उठाया गया और उन्हें उत्तरदायी बनाया गया तो निश्चय ही वे राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।●

राज्य-शिक्षा-मंत्रियों का सम्मेलन

२८, २९ और ३० अप्रैल को राज्य-शिक्षा-मन्त्रियों का दसवाँ सम्मेलन दिल्ली के विज्ञान-भवन में आयोजित हुआ। त्रिदिवसीय सम्मेलन में पहले दिन का पूरा समय भाषा-फार्मूले के विचार में ही व्यतीत हुआ।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने स्पष्ट रूप से विचार प्रकट न करते हुए देश-हित को ध्यान में रखकर भाषा-समस्या को हल करने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि देश की शिक्षा का माध्यम तय करते हुए दलीय हितों के बजाय राज्य के व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखना जरूरी है। उन्होंने शिक्षा के जरिये छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकता बतायी और शिक्षा प्रणाली का परिस्थितियों के अनुसार व्यापक हित के लिए तय करने पर बल दिया।

श्री मोरारजी देसाई ने अपने भाषण में तीन भाषा फार्मूले की आवश्यकता बतायी तथा सारे देश में सभी को समान अवसर देने के लिए एक समान स्कूल-प्रणाली रखने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि देश में कुछ चुने हुए शिक्षा-संस्थान बना देने से वहाँ समर्थ परिवारों के कुछ थोड़े-से बच्चे ही पढ़ सकेंगे जबकि सभी की उन्नति के समान अवसर और समान मानवीय अधिकार देने के लिए शिक्षा में किसी प्रकार की असमानता नहीं रखनी चाहिए। उन्होंने शिक्षा-आयोग की सिफारिश की आलोचना करते हुए कहा कि जहाँ एक ओर उसने पब्लिक स्कूलों को समाप्त करने की राय प्रकट की है वहीं कुछ आदर्श संस्थानों की भी आवश्यकता बतायी है जो परस्पर विरोधी बातें हैं।

प्रारम्भ में केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री श्री त्रिगुण सेन ने तीन भाषा फार्मूले को बदलने पर बल देते हुए कहा कि शिक्षा के बजाय राजनीतिक कारणों से ही इसकी आवश्यकता समझी जाती रही है। उन्होंने कहा कि इसमें छात्रों के अध्ययन-समय का आधे से अधिक भाग नष्ट हो जाता है। अतः यदि भाषा के प्रश्न पर सन्तोष-जनक हल नहीं निकलता है तो छात्रों पर भाषाओं के कारण पड़ रहा बोझ शिक्षा-स्तर को गिराता जायगा।

उन्होंने कहा कि हमें केवल शिक्षा का विस्तार ही नहीं करते जाना है, बल्कि नयी तरजीह योजना होगी जिसके अनुसार पहले परिवर्तन, फिर स्तर ऊँचा करने, और उसके बाद विस्तार की व्यवस्था की जा सकेगी। इसके विपरीत अभी तक शिक्षा के विस्तार को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती रही है। उन्होंने प्राइमरी और कन्याओं की शिक्षा तथा पिछड़े इलाकों में शिक्षा के विस्तार की जरूरत बताते हुए कालेज क्षेत्र में नये-नये कालेज खोलने में 'धीरे चलो' नीति अपनाने का सुझाव दिया। उन्होंने कुछ चुनी हुई योजनाओं और कार्यक्रमों को प्राथमिकता देने की प्रणाली अपनाने पर भी बल दिया और छात्रों की समस्याओं को दूर करने के लिए शिक्षक-छात्र-संयुक्त-परिषद बनाने की जरूरत बतायी।

श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि आज परिश्रम करने, कर्म करने की आवश्यकता है। हमें दिमागी गुलामी को भी दूर हटा देना है। इसके कारण ही विदेशी भारत पर राज्य करते रहे। इसीलिए हमारी शिक्षा-प्रणाली कर्म-अभिमुख होनी चाहिए। ऐसा होने

पर ही हमारे छात्र केवल शिक्षा नहीं, बल्कि वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। मातृभाषा में शिक्षा देने की आवश्यकता पर विचार करते हुए श्री देसाई ने कहा कि प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए पाँच वर्ष से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। परिवर्तन-काल बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए।

२९ अप्रैल

सम्मेलन में आज भी भाषा फार्मूले के बारे में विचार विमर्श के दौरान परस्पर विवाद चलता रहा, परन्तु साथ ही कुछ अहिन्दी भाषी राज्यों ने सारे देश में हिन्दी को अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाने का जोरदार समर्थन किया।

मद्रास की ओर से जब यह आशंका प्रकट की गयी कि हिन्दी अनिवार्यतः पढ़ाने की व्यवस्था से अहिन्दी राज्यों पर हिन्दी भाषी राज्यों के आधिपत्य को बल मिलेगा तो महाराष्ट्र के शिक्षामंत्री श्री चौधरी ने कहा कि यह निश्चित है कि किसी न किसी स्थल पर सभी स्कूलों में हिन्दी कुछ समय के लिए तो अनिवार्य करनी ही होगी। केन्द्रीय शिक्षामंत्री डा० त्रिगुण सेन ने भी स्वीकार किया कि हिन्दी की पढ़ाई तो जरूरी है ही, केवल यह तय किया जाना चाहिए कि वह कौन-सी कक्षा से शुरू की जाय।

हरियाणा के शिक्षामंत्री श्री हरद्वारी लाल ने भाषाओं की शिक्षा के लिए समय विभाजन का सुझाव पेश किया, परन्तु पहले हिन्दी को अहिन्दी राज्यों में भी माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य करने का सुझाव पेश करने के बाद वह ढीले पड़ गये और मद्रास के विरोध के कारण हिन्दी को भी ऐच्छिक विषय मानने को तैयार हो गये। उनकी योजना यह थी कि हिन्दी भाषी राज्यों में पहले तो पाँच या छह कक्षा तक मातृभाषा (हिन्दी) में शिक्षा दी जाय, उसके बाद दसवीं कक्षा तक भारतीय संविधान के अन्तर्गत किसी भी भाषा को पढ़ाने की छूट रहे। इसके साथ ही अहिन्दी भाषी राज्यों के लिए पाँच छह क्लास तक मातृभाषा तथा उसके आगे दसवीं तक हिन्दी अनिवार्य करने का उनका मूल सुझाव था। मद्रास के प्रतिनिधि के कहने पर कि अहिन्दी राज्यों में भी किसी भी भाषा को पढ़ाने की छूट क्या न दी जाय और हिन्दी ही 'थोपी' क्यों जाय, श्री हरद्वारी लाल इस पर तैयार हो गये कि वहाँ भी उसी प्रकार की छूट दी जा सकती है।

मैसूर और महाराष्ट्र के शिक्षा मंत्रियों का कहना था कि किसी भी फार्मूले में हिन्दी को किसी न किसी स्थल पर अनिवार्य करना ही होगा।

बिहार के शिक्षामंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजय मल्होत्रा ने भी हिन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया और कहा कि हिन्दी को राजभाषा का स्वरूप तो दिया जा चुका है, इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि उसे अब किसी राज्य में अनिवार्य नहीं भी किया जा सकता है। प्रश्न केवल यह है कि उसे अहिन्दी राज्यों में किस स्तर पर अनिवार्य बनाया जाय।

असम और गोवा ने अंग्रेजी के महत्व का समर्थन किया क्योंकि उनके प्रदेशों की कुछ विशेष स्थिति हो गयी है। असम ने कहा कि आदिवासियों ने अंग्रेजी को स्वीकार किया है और गोआ को अपने प्रदेश में अन्य भाषाओं के व्यवहार का तथ्य भी सामने रखना पड़ा।

सम्मेलन में प्रात: रक्षामंत्री श्री स्वर्ण सिंह ने एन० सी० सी० और प्रस्तावित राष्ट्रीय सेवा योजना को अनिवार्य करने के बारे में राज्यों के शिक्षामंत्रियों से जल्दी ही किसी निश्चय पर पहुँचने की अपील की जिससे नये पाठ्यक्रम से उसे लागू किया जा सके। विचार विमर्श के दौरान यह स्वीकार किया गया कि दोनों को अनिवार्य नहीं किया जा सकता। विचार प्रकट किया गया कि एन०सी०सी० का इस रूप में अधिक उपयोग नहीं हुआ है कि वह सेना के लिए अफसर और जवान तैयार करने के संस्थान बन सकें। एन०सी०सी० से सेना में जानेवालों की संख्या बहुत कम है।

अधिकांश मंत्रियों का मत था कि एन०सी०सी० अथवा राष्ट्रीय सेवा में से किसी को भी पसन्द करने की छूट दी जानी चाहिए। इसके विपरीत मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री ने सुझाव दिया कि छात्रों को छूट हो कि वह किसी तीसरी राष्ट्रीय सेवा को भी पसन्द कर सकें। सिद्धांत यह होना चाहिए कि छात्र-जीवन में वे राष्ट्रीय सेवा के क्षेत्र में भी पीछे न रहें।

श्री पटेल ने खेलों के महत्व पर भी बल देते हुए राज्यों को इस क्षेत्र के विकास के लिए विशेष अनुदान आदि देने की जरूरत बतायी।

हरियाणा के मंत्री और ससदीय शिक्षा समिति के एक सदस्य श्री बलराज मधोक ने एन० सी० सी० को अनिवार्य न रखने पर बल दिया। हरियाणा के शिक्षा-मंत्री ने तो कहा कि देश में एन०सी०सी० बिलकुल असफल हो चुकी है। उसकी परेडों में भाग लेनेवालों की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बतायी जाती है।

३० अप्रैल

सम्मेलन ने ९ राज्यों की एक समिति का गठन किया जो भाषा के प्रश्न पर व्यक्त किये गये विभिन्न विचारों में एकरूपता लाने का प्रयत्न करेगी। यह समिति हरियाणा के शिक्षामंत्री श्री हरद्वारीलाल द्वारा सम्मेलन में पेश किये गये प्रस्ताव के आधार पर भाषा-नीति में एकरूपता लायगी।

प्रस्ताव में कहा गया है कि सम्मेलन को पूरा अहसास है कि एक सामान्य भाषा का शीघ्र विकास करना बहुत जरूरी है। श्री हरद्वारीलाल ने कहा कि प्राइमरी स्तर तक शिक्षा सिर्फ मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में होनी चाहिए। हिन्दी-भाषी राज्यों में दूसरी भाषा अँग्रेजी या कोई अन्य भारतीय भाषा होनी चाहिए। इस प्रस्ताव पर महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, बिहार, मध्य-प्रदेश, पश्चिम बगाल, आन्ध्र, मद्रास तथा दिल्ली के प्रतिनिधि विचार करेंगे। केन्द्रीय शिक्षामंत्री डा० त्रिगुण सेन ने सम्मेलन की समाप्ति पर बताया कि स्कूल स्तर पर भाषा की शिक्षा के प्रश्न का कोई हल नहीं निकल पाया है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि धैर्य के साथ इस प्रश्न पर विचार करने से हल निकल आयगा।

सम्मेलन में निम्न मुद्दों पर समझौता हुआ—

● उच्च शिक्षा के सभी स्थानों में शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाओं को बनाया जाना चाहिए।

● उच्च शिक्षा के सभी सस्थानों में ५ वर्ष के अन्दर क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग शुरू कर दिया जाना चाहिए।

● शिक्षा आयोग की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षकों की वेतन-वृद्धि के लिए राज्यों तथा स्थानीय निकायों को केन्द्रीय सहायता ८० तथा २० के अनुपात में होनी चाहिए।

● शिक्षा की प्रणाली इस प्रकार होनी चाहिए—हाई स्कूल १० वर्ष, हायर सेकेण्डरी २ वर्ष तथा डिग्री कोर्स ३ वर्ष।

● कोई भी छात्र राष्ट्रीय छात्र-सेना अथवा राष्ट्रीय-सेवा-दल में शामिल हो सकता है।

सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास कर सिफारिश की कि सभी क्षेत्रीय भाषाओं में किताबों के प्रकाशन के लिए केन्द्र को उदारतापूर्वक सहायता देनी चाहिए। अन्य प्रस्ताव पास कर सम्मेलन ने शिक्षकों के दर्जे तथा शिक्षा के बारे में शिक्षा-आयोग की सिफारिशें मजूर कर ली।

सम्मेलन ने यह सुझाव दिया है कि शिक्षकों की सामान्य समस्याओं तथा शिक्षा में सुधार पर विचार करने के लिए शिक्षकों की सयुक्त परिषदों की स्थापना हो।

सम्मेलन ने मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री का एक प्रस्ताव पास किया जिसमें सुझाव दिया गया है कि सभी शिक्षा-सस्थानों में नैतिक शिक्षा सभी स्तरों पर अविलम्ब शुरू की जानी चाहिए।

सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन के अपने भाषण में श्री त्रिगुण सेन ने कहा कि जिन क्षेत्रों में हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा का विरोध किया जाता है वहाँ पर स्वेच्छा से हिन्दी की काफी पढ़ाई होती है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि इन क्षेत्रों में आम लोग जितनी अच्छी तरह अँग्रेजी जानते हैं उतनी ही अच्छी तरह हिन्दी भी जानने लगेंगे। उन्होंने कहा कि इस पर एक तरह से पूरी सहमति हुई है कि तीन भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए: मातृभाषा, केन्द्रीय राजभाषा (हिन्दी) तथा अँग्रेजी। लेकिन यहाँ कुछ शिक्षा-मंत्रियों ने हिन्दी को एक मात्र केन्द्रीय राजभाषा स्वीकार करने से इनकार किया है वहाँ दूसरी ओर कुछ मंत्री किसी भी स्तरपर अँग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य बनाने के लिए तैयार नहीं हैं।

डा० सेन ने विश्वास व्यक्त किया कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा तथा सेवा-आयोगों की परीक्षाओं के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करने से ही भाषा-समस्या का हल हो सकता है। ●

—कु० कु०

जैविक घड़ियाँ

•

सभी जीवित वस्तुएं समय पहचानने में सक्षम प्रतीत होती हैं—मौन का समय, विकसित होने का समय, स्थान परिवर्तन करने का समय और शीतकालीन विश्राम का समय। उनको इन सभी समयों का ज्ञान कैसे होता है, यह दीर्घकाल से एक पहेली बना हुआ है। आजकल अधिकाधिक वैज्ञानिक पृथ्वी पर विद्यमान जीवन के तालबद्ध चक्र की पहेली को सुलझाने के लिए अनुसंधानरत हैं। उन्होंने इस क्षेत्र में अबतक जो खोज की है वे जीवन पर पृथ्वी से बाहर की शक्तियों के प्रभाव—सूर्य के उल्लेखनीय प्रभाव—की ओर इंगित करती हैं।

पुष्प वसंतऋतु में ही क्यों फलते हैं? पक्षी यह कैसे जान लेते हैं कि अब दक्षिण की ओर पलायन करने का समय आ गया है? मधुमक्खी-द्वारा शहद की सफल खोज का वास्तविक रहस्य क्या है? और तेज रफ्तार से उड़नेवाले यान पर लम्बी हवाई यात्रा करने के बाद समय और स्थान के बारे में हम पर जो मानसिक प्रतिक्रिया होती है उसका क्या कारण है?

एक पुरानी कहानी है अत्यन्त प्राचीन काल से ज्ञात एक सुविदित तथ्य है कि विभिन्न प्रकार के पक्षी तथा पशु एक निर्धारित कालक्रम के अनुसार अपने विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। विज्ञान के समक्ष और मानव के समक्ष प्रश्न उपस्थित है: ऐसा क्यों? इससे भी अधिक कठिन प्रश्न है: ऐसा कैसे?

अपने उपयोग के लिए मनुष्य ने समय को मापने का एक तरीका निकाल लिया है: दीवाल पर लगी हुई घड़ी, हाथ की कलाई पर बंधी हुई घड़ी और वार्षिक कलेण्डर के रूप में वह समय को सैकेण्डों, मिनटों, घंटों, दिनों और वर्षों में बाँटकर अपने क्रिया-कलापों का एक क्रम निर्धारित कर लेता है। इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर वनस्पतिविज्ञान पौधों और पशुओं की समय-माप सम्बन्धी क्षमता को एक परिभाषा और एक अर्थ—और एक नाम—प्रदान किया है।

पौधों और पशुओं के सम्बन्ध में सबसे अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होने वाली बात यह है कि वे एक कालक्रम के अनुसार अपने समस्त कार्य सम्पन्न करते हैं। यह सत्य है कि वे सभी जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों के लिए विभिन्न कालक्रमों का उपयोग करते हैं लेकिन उनके कार्य करने के ढंग में एक तालबद्धता दृष्टिगोचर होती है। सत्य तो यह है कि इन तालों में भी भिन्नता पायी जाती है। एक प्रकार से जीवन के ये तालबद्ध चक्र प्रकृति की चुनौतियों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया हैं। वैज्ञानिक लोगों ने इन तालबद्ध चक्रों को तथाकथित बायोलोजिकल क्लाक की सुइयों का नाम प्रदान किया है।

ये जैविक घड़ियाँ क्या हैं? क्या वे वास्तविक हैं? वे किस प्रकार कार्य करती हैं? वैज्ञानिकों ने इन रहस्यों के अन्दर अभी पैठना ही प्रारम्भ किया है। पक्षियों द्वारा स्थान परिवर्तन इस प्रकार के तालबद्ध जीवन चक्र के अस्तित्व का एक ठोस प्रमाण है।

पक्षियों का समय बोध

इस सन्दर्भ में एक अत्यन्त दिलचस्प बात यह है कि

पक्षी दिन में सूर्य की परिवर्तनशील स्थिति के अनुसार अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। दिन में ठीक समय मालूम करने के लिए उनके शरीर के अन्दर कोई न कोई समय या काम करनेवाली ऐसी संवेदनशील प्रणाली अवश्य होनी चाहिए जिससे वे सूर्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए स्वयं नियंत्रित करने में समर्थ हों। कई मानों में वे उसी प्रकार यात्रा करते हैं जिस प्रकार मनुष्य समुद्र पर यात्रा करता है। वह सूर्य की स्थिति और समय मालूम करता है और इसके बाद उस दिशा को मालूम करता है जो उसे अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए ग्रहण करनी चाहिए। पक्षी भी अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए ठीक इसी प्रकार आचरण करते हैं।

पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय के जीव-वैज्ञानिक डा० कण्डल पाई तथा उन जैसे अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार जैविक घड़ियाँ गहन अनुसन्धान और सक्रिय वाद विवाद के विषय हैं। इस दिशा में किसी भी वार्ता के लिए व्यापकतम सन्दर्भ बिन्दु स्वयं सृष्टि—उसमें विषयमें जिस बात का पर्यवेक्षण हो सकता है, वह अर्थात् एक विशाल लय प्रणाली—ही है। हमारा सौर-मण्डल इस प्रणाली का एक सूक्ष्म-सा बिन्दु है, जिसके अन्तर्गत बहुत से ग्रह सूर्य, और चन्द्रमा-जैसे बहुत से उपग्रह यहां की नियमित क्रम में परिक्रमा कर रहे हैं। ऐसी दशा में क्या यह बात आश्चर्यजनक है कि पौधे और पशु अपने दैनिक जीवन में प्रकृति के नियमित चक्रों या लयों का अनुसरण करते हैं? प्रत्येक दिन सूर्योदय तथा सूर्यास्त-द्वारा विभाजित हो जाता है। इस प्रकार पृथ्वी का २४ घंटे का चक्र प्रकाश और अँधेरे की दो प्राकृतिक अवधियों में विभाजित हो जाता है। कुछ पशु—जैसे चूहे, उल्लू और जंगली जानवर—रात को काम करते और दिन को सोते हैं। मुर्गा सूर्योदय के समय अपना आलाप सुनाता है, जबकि मधुमक्खियाँ और चिड़ियाँ दिन के समय कार्य-व्यस्त रहती हैं।

पशुओं पर मौसमी परिवर्तन का प्रभाव

मौसमों के परिवर्तनों से बहुत से पशुओं की प्रजनन सम्बन्धी आदतें प्रतिबिम्बित होती हैं। उदाहरण के लिए, पक्षियों का एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर जा बसना मौसम के परिवर्तन का सूचक होता है। रीछ, चमगादड, गिलहरी आदि जीव तो जाड़े के दिनों में एकान्त में रहकर विश्राम करते हैं और शिथिल बने रहते हैं। समुद्र के किनारे चन्द्रमा का प्रभाव ज्वारभाटे के नियमित उतार-चढ़ाव के समय केकड़ों तथा अन्य जल जन्तुओं के व्यवहार में प्रतिबिम्बित होता है।

स्वयं हम मनुष्यों के लिए कुछ नियमित क्रम और लय हैं। उदाहरण के लिए, हममें से अधिकांश व्यक्ति दिन के समय जागते और रात को सोते हैं। स्त्रियों के रजस्वला होने का एक नियमित मासिक चक्र होता है। हमारे शरीर का तापक्रम प्रातःकाल कम और रात को ऊँचा होता है।

प्राकृतिक चक्र के इन तथा अन्य प्रमाणों को देखकर वैज्ञानिकों को विश्वास हो गया है कि जैविक घड़ियों का अस्तित्व अवश्य है। वे यह मानते हैं कि जीवों को समय की तीव्र अनुभूति होती है। इस सम्बन्ध में जो बात स्पष्ट नहीं है, वह है उनकी प्रकृति। क्या जीवित प्राणी इसलिए कालक्रम के अनुसार व्यवहार करते हैं कि वे ऐसा करने के लिए ही बनाये गये हैं? अथवा क्या उनके आसपास के विश्व के ब्रह्माण्ड-चक्र से प्रभावित होकर ऐसी प्रतिक्रिया होती है।

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए अनेकानेक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं। 'फेडरल अमेरिकन सोसायटीज फार एक्सपेरिमेण्टल बायोलोजी' के हाल के अधिवेशनों में वैज्ञानिकों ने उन प्रयोगों के परिणामों पर विचार विमर्श किया जिनका उद्देश्य इन घड़ियों का विश्लेषण करना रहा है। उनका उद्देश्य सम्भवतः ऐसे लक्षण और संकेत प्राप्त करना रहा है, जिन से प्राकृतिक घड़ियों की आन्तरिक क्रिया विधि का पता चल सके।

जैविक घड़ी का एक शास्त्रीय उदाहरण

जैविक घड़ियों के प्रभाव का शास्त्रीय उदाहरण पेंगुइन पक्षी की अपने घर या निवासस्थान पर वापिस लौट आने की आदत है। वे अपने घोंसलों से हजारों मील दूर क्यों न चले जायें, किन्तु उन्हें बर्फीले प्रदेशों और निर्जन बीहड़ों को पार कर फिर अपने निवासस्थान पर लौट आने में कोई कठिनाई नहीं होती।

गरीब किसानों की जो जमीन महाजनों के यहाँ रेहन है उसे छुड़वाने की उसकी योजनाएँ है। राहत के कार्यों द्वारा क्रान्तिकारी ताकत पैदा करने की वह कोशिश कर रहा है।

(सात)

और भावनगर का वह भोला भाई। वह पक्का भोला है। पिछले दस महीने से वह साइकिल पर निकला है। देश के अधिकतर हिस्सों का दर्शन उसने कर लिया। उड़ीसा से वह बिहार की ओर जा रहा था तो बिहार के भूखे लोग जो काम की खोज में उड़ीसा की धरती पर घूम रहे थे उनकी एक टोली ने इस साइकिल सवार को लूट लिया। मारा भी। मुश्किल से साइकिल बचा पाया। वह बिहार पहुँचकर भूखाग्रस्तों की सेवा में जुट गया। हरदत्ता केन्द्र में ऊपर से बड़ा खपड़ैल सिर पर गिरने से वह एक बार बेहोश हो गया था। होश आने पर उसने अपना काम चालू ही रखा। इस मस्त युवक के काम को देखकर उस गाँव के पढ़े-लिखे युवक भी बाबूपना छोड़ कर प्रत्यक्ष काम में भिड़ गये।

(आठ)

बड़ौदा के एक चार साल के बालक ने अपने पिता से सुना कि बिहार में खाना नहीं मिलने से कई जगह बच्चे चूहे पकड़कर उन्हें भूनकर खाते हैं, तो उसने दो पहर का अपना दूध बन्द करके हर रोज की बचत के बीस पैसे बिहार के बच्चों के लिए भेजने को कहा, जिससे वहाँ के बच्चों को चूहे न खाने पड़ें। पालनपुर के एक हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने स्टेशन पर मजदूरी करके, दूसरों के घरों के बर्तन, कपड़े आदि की सफाई करके २,००० रुपये बिहार भेजे।

ऐसे कितने ही दृश्य देखकर और कितने ही प्रसंगों को मन में सँजोकर बम्बई गया। वहाँ जो भी मिलते थे बिहार के अकाल की बात पूछते थे। एक स्फूर्तिसम्पन्न युवक, एक बहन के साथ बातें हो रही थीं जो एक अच्छी साहित्यकार हैं और सुन्दर पत्रिका की सम्पादिका भी हैं। वह अनेकविध कामों में से समय निकालकर बिहार सहायता के लिए चन्दा जमा करती हैं। उन्होंने मुझसे पूछा, 'देश-विदेश से लोग आते हैं, सहायता आती है, वह तो अच्छा ही है, परन्तु सुना है कि इतनी विपत्ति में भी अभी बिहार के युवक और विद्यार्थी नहीं जगे हैं यह सुनकर मैं सचमुच बड़ी दुखी होती हूँ। आखिर इसकी वजह क्या है?' कहते-कहते उस प्रबुद्ध महिला विचार-मग्न हो गयी, उसका प्रसन्न चेहरा खिन्न हो गया।

उस प्रश्न का मैं उत्तर नहीं दे सका। मौन ही रहा। कुछ देर के बाद इतना ही कह सका, आज तक विद्यार्थियों को कोरा इतिहास, समाजशास्त्र, विज्ञान और नागरिक शास्त्र पढ़ाया गया, परन्तु हमने उनको जीवन का समाज-शास्त्र, नागरिक शास्त्र, और विज्ञान नहीं सिखाया। वे स्वयं भी जीवन की पुस्तक में से सही पाठ नहीं पढ़ सके। परीक्षा पास करने की कुंजियों की खोज में वे भटकते रहे हैं। यही उनकी कमी है। यदि विद्यार्थियों ने जीवन की समस्याओं और चुनौतियों का उत्तर ढूँढ़ने की शिक्षा पायी होती तो सूखा की परिस्थिति में हमारे विद्यार्थी सूखे के मोर्चे पर सबसे आगे दिखाई देते।

दूसरे दिन सुबह बम्बई के सान्ताक्रूज के क्षेत्र के सुधन मजूमदार आदि युवक मित्रों द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में कितने ही बच्चे, युवक और बड़ी उम्र के लोग उत्साह से घर घर घूम रहे थे और बिहार के लिए पैसे, अनाज, कपड़े इकट्ठा करते जा रहे थे और साथ की तीन टकों में डालते जा रहे थे। तब फिर से मुझे बिहार के युवकों की याद आयी।

और याद आयी आज से पाँच महीने पहले की ता० ५ जनवरी १९६७ के पटना के गाँधी मैदान की। उस दिन बिहार के विद्यार्थी और युवकों की शक्ति का अजीब परिचय मिला। सचमुच शक्ति का बड़ा अवसर! शाम को एक ओर अश्रु गैस के गोले छूट रहे थे, गोलियाँ बरस रही थीं और दूसरी ओर खादी भवन धू धू जल रहा था। बिहार में अकाल था न? इसलिए उस दिन एकाध दर्जन खानेवाले कम कर दिये गये! और, जाड़े के दिनों में कपड़ों की भी कमी थी न? इसलिए खादी भवन जलाकर कपड़ों का भार भी कुछ कम कर दिया गया था।

उस दिन तो वह सारी घटनाएँ समझ में नहीं आयी थी, परन्तु आज बम्बई के युवकों का बिहार के लिए प्रयत्न करते देखकर पटना की घटना का अर्थ समझ

में आया कि शक्ति तो भरपूर भरी है, उसको अच्छी दिशा में मोड़नेवाले चाहिए।

मन में विश्वास था कि आम चुनाव के बाद बिहार के विद्यार्थी अवश्य अकाल के काम में लगेंगे परन्तु ऐसा नहीं हुआ। ऐसा होता तो उनकी माँगों में, उनकी बोलने की ताकत में ज्यादा वजन रहता। और, माँगों में प्रधान और गौण का विवेक रहता। आज बिहार के भूखे-नंगे लाखों-करोड़ों लोग दुःख से कराह रहे हैं। देश विदेश से आने वाली सहायता जल्द से जल्द और पूरी की पूरी उनके पास पहुँचे उसकी आज कितनी आवश्यकता है! सरकारी योजनाओं में किसानों और मजदूरों का जो शोषण चलता है, सस्ते गल्ले की दुकानों में गड़बड़ियाँ चलती हैं, लोगों के पास पूरा काम नहीं है, पीने के पानी का अभाव है निराशा बढ़ रही है, ऐसे मौके पर इन सबका मुकाबला करने में अगर विद्यार्थी चूकेगा तो क्या कहा जायगा?

जफर ने तो कह ही दिया है:

> जफर आदमी न उसको जानियेगा
> हो कितना ही साहिबे फहम व जका
> जिसे ऐश में यादे खुदा न रही
> जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।

अब भी मन में विश्वास है कि बुद्ध, महावीर और अशोक की भूमि का विद्यार्थी, इन महापुरुषों का भाजना वारिस बनेगा। इस भयंकर अकाल का मुकाबिला करने में जी-जान से जुटे हुए जयप्रकाश नारायण ने अभी विद्यार्थियों को सहायता-कार्य में लग जाने की अपील की और उनके लिए १,००० के विद्यार्थियों का उन्होंने एक शिविर का आयोजन किया। राजकीय परिवर्तन से आज यह कोई कम महत्व का काम नहीं है। चुनाव के वक्त परीक्षाओं के करीब होते हुए भी सब कुछ छोड़ विद्यार्थी प्रचार में लग गये थे। आज उसमे कई गुनी शक्ति के साथ इस घोर विपत्ति का मुकाबिला करने में बिहार के युवक और विद्यार्थी लग जाते हैं तो अपने भाइयों को बचाने के पुण्य कार्य के अलावा उतने समय में वे आज की शिक्षा के बदले अनेक गुनी सच्ची शिक्षा भी पायेंगे।

कवि ने आह्वान किया है:

> परीक्षा की घड़ी आ पहुँची है
> इस पवित्र भूमि पर
> विश्व-विचरण के अधिकारी
> युवको!
> राष्ट्र-जागरण की प्रभाती गाओ।
> समवेत स्वर में गाओ।
> विस्मरण न हो
> हम 'पृथ्वी पुत्र' है,
> देश की मैत्री दुर्लभ नहीं!
> परिश्रम का पुण्य है!
> नश्वरता के धधकते-
> यज्ञ-कुण्ड में
> अमरता की अग्नि
> प्रज्वलित करें!
> 'स्व' की समिधा
> होम करें।

मुफ्त भोजनालय : बच्चे भोजन की प्रतीक्षा में

राष्ट्रीय शैक्षिक समाचार

●

२४ अप्रैल—संसद सदस्यों की शिक्षा सम्बन्धी समिति ने आज अपनी एक बैठक में एकमत से निश्चय किया कि सभी स्तरों पर शिक्षा के लिए प्रादेशिक भाषाओं को माध्यम बनाया जाय। इस समिति ने यह निश्चय किया है कि प्रारम्भिक शिक्षा को, जो राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था का आधार है, सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय। इस क्षेत्र में जो कार्यक्रम पूरे किये जाने हैं, उनका ब्यौरा इस प्रकार है

(१) सभी राज्यों में निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय (अभी तक केवल चार राज्यों में निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा है असम, बिहार, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल),

(२) जरूरतमन्द विद्यार्थियों को निःशुल्क पुस्तकें,

(३) प्रारम्भिक शिक्षक के स्तर में सुधार तथा समय और साधनों की बचत,

(४) महिला शिक्षकों की नियुक्ति को प्रोत्साहन, और

(५) देश भर के स्कूलों में समानता।

● २५ अप्रैल—संसद-सदस्यों की शिक्षा सम्बन्धी समिति ने आज दूसरे दिन की अपनी बैठक में शिक्षा-आयोग की इस सिफारिश का समर्थन किया कि समूचे देश में हाई स्कूल की प्रारम्भिक शिक्षा भी शामिल हो जायगी।

समिति ने आयोग की इस सिफारिश का भी समर्थन किया कि १० वर्ष की हाई स्कूल की शिक्षा के बाद २ वर्ष तक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, और फिर ३ वर्ष तक कालेज की डिग्री शिक्षा दी जाय। एम० ए०, एम० एस० सी०, और एम० कॉम० की पढ़ाई की अवधि साधारण बी०ए० पासवालों के लिए ३ वर्ष की हो और आनर्स तथा विशेष कोर्स में पास डिग्रीवालों के लिए वह अवधि २ वर्ष की हो।

● २७ अप्रैल—मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री श्री परमानन्द भाई पटेल ने संसद सदस्यों की समिति द्वारा स्वीकृत द्विभाषा फार्मूले का विरोध किया। उन्होंने कहा कि इस पर अमल के परिणामस्वरूप हिन्दी को कभी पूरे राष्ट्र की भाषा का दर्जा नहीं प्राप्त होगा। अंग्रेजी का वर्तमान प्रभुत्व बना रहेगा। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि इससे हिन्दी का भविष्य खत्म हो जायगा। श्री पटेल ने पुराने त्रिभाषा फार्मूले पर बल देते हुए कहा कि यदि अहिन्दी भाषी राज्य इसके अन्तर्गत स्कूलों में हिन्दी पढ़ायें तो मध्यप्रदेश तथा अन्य हिन्दी-भाषी राज्यों में भी कोई दक्षिण भारतीय भाषा पढ़ायी जायगी।

● २७ अप्रैल—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० डी० एस० कोठारी ने कहा कि शिक्षा का उपयोग उत्पादन बढ़ाने तथा समाज में परिवर्तन लाने के लिए किया जाना चाहिए। हमारी शिक्षा में आज सबसे ज्यादा महत्व इस बात का है कि रूढ़िवाद को खत्म किया जाय। आज की शीघ्रता से बदलनेवाली दुनिया में कल की शिक्षा पद्धति आज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती है।

शिक्षा के सभी क्षेत्रों में तथा सभी स्तरों पर ऐसे संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए जिनसे अन्य संस्थान प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

● १ मई—मद्रास के मुख्यमंत्री श्री अन्नादुरै ने केन्द्रीय सरकार के इस निर्णय का पूर्ण समर्थन प्रदान किया जिसका उद्देश्य राजभाषा अधिनियम में यह संशोधन करना है कि केन्द्रीय प्रशासन में अंग्रेजी को तबतक बर-

बरार रखा जायगा जबतक कि वह आवश्यक समझी जाती है।

● २ मई—श्री मुहम्मद करीम चागला ने कहा कि स्कूल में पढ़ायी जानेवाली भाषाओं के प्रश्न पर शिक्षा की दृष्टि से विचार करना होगा, न कि राजनीतिक दृष्टि से। अन्ततः शिक्षा मातृभाषा में देनी होगी। किन्तु यदि ऐसा करने में जल्दबाजी की गयी तो इतनी जल्दी में न तो किताबें सुलभ हो सकेंगी और न मातृभाषा में पढ़ने की ट्रेनिंग शिक्षकों को पूरी की जा सकेगी। इस जल्दबाजी का असर खास तौर से विज्ञान और विश्वविद्यालय के स्तर पर पड़ेगा।

उन्होंने भाषा के महत्त्व पर ध्यान दिलाते हुए कहा है कि सम्पर्क भाषा हिन्दी या अंग्रेजी हो सकती है। सम्पर्क भाषा पर ध्यान न देने से देश की एकता खतरे में पड़ सकती है।

● कांग्रेस कार्यसमिति अंग्रेजी को अनिवार्य न बनाकर हिन्दी को ही उच्च स्थान देने के पक्ष में है। उसका मत है कि जब एक बार हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रश्न तय हो गया है तो उसे फिर से उठाना अनुचित है।

● ६ मई—हरियाणा सरकार ने घोषणा की कि सरकारी कामकाज की भाषा और शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगी। हरियाणा के सभी स्कूलों में प्राइमरी कक्षा से अनिवार्य विषय के रूप में हिन्दी पढ़ायी जायगी। सरकारी नौकरियों में पंजाबी का ज्ञान आवश्यक नहीं माना जायगा।

अंग्रेजी की पढ़ाई छठी कक्षा से शुरू होगी। अंग्रेजी दूसरा अनिवार्य विषय होगा। संस्कृत, उर्दू और पंजाबी ७वीं कक्षा से पढ़ायी जायगी और ७वीं तथा आठवीं कक्षा में अनिवार्य विषय होगी। उर्दू भाषी अल्पसंख्यकों के लिए कुछ शर्तों के साथ प्राइमरी कक्षा से हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू पढ़ाने की व्यवस्था भी रहेगी।

● ११ मई—भारत में पहली बार हायर सेकेण्डरी का परीक्षा मौखिक ली जायगी। यह परीक्षा १९६७-६८ के शैक्षणिक वर्ष में होगी।

अबतक स्कूलों में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की ओर कम ध्यान दिया जाता रहा। मौखिक परीक्षा प्रणाली से इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायता मिलेगी। देश में उच्चतर स्तर पर मौखिक परीक्षा प्रणाली पहली बार लागू की जा रही है।

१९६७-६८ के सत्र से एक वर्षीय उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों के लिए मौखिक परीक्षा लागू करने का निर्णय सेंट्रल बोर्ड ने किया था।

● १४ मई—केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को पत्र लिखकर उनसे देश की सम्पर्क भाषा हिन्दी को अनिवार्य बनाने और त्रिभाषा फार्मूले के बारे में अपने विचार भेजने को कहा है।

इस प्रश्न पर केन्द्रीय मन्त्रिमंडल की बैठक में हाल ही में विचार किया गया तथा उसमें फार्मूले के पक्ष में और विपक्ष में दोनों ही प्रकार के विचार प्रकट किये गये। बैठक में यह निश्चय किया गया है कि मुख्यमन्त्रियों के विचार प्राप्त होने के बाद ही इस बारे में कोई अन्तिम निर्णय लिया जाय।

त्रिभाषा फार्मूला को सर्व प्रथम केन्द्रीय शिक्षा परामर्श मण्डल ने १९५६ में स्वीकार किया था, परन्तु इस विचार को संविधान सभा में हुई बहस में प्रकट किया गया था।

जिस समय सर्व सम्मति से हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया तब निम्न बातों पर भी एक समझौता हुआ था

१ संविधान के लागू होने के बाद १५ वर्ष तक अंग्रेजी भारत की राजभाषा रहेगी। २ राजभाषा हिन्दी में अन्य प्रादेशिक भाषाओं से शब्द भी लिये जायेंगे और ३ हिन्दी भाषी क्षेत्रों के बच्चे कोई और भारतीय भाषा विशेषतः दक्षिण की भाषा सीखें क्योंकि गैर हिन्दी भाषी राज्यों के बच्चों को हिन्दी सीखनी पड़ेगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (१९४८-४९) ने यह सुझाव दिया था कि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों को माध्यमिक स्तर पर ६ वर्ष तक पढ़ाया जाय। आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि हिन्दी क्षेत्रों में अंग्रेजी के अलावा एक भारतीय भाषा भी पढ़ायी जाय।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२) ने भी त्रिभाषा फार्मूले के शब्द का प्रयोग नहीं किया था

परन्तु यह सुझाव दिया था कि माध्यमिक शिक्षा-स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए। परन्तु इसके लिए यह शर्त होनी चाहिए कि (१) भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए केन्द्रीय शिक्षा-परामर्श मंडल द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार सुविधाएँ प्रदान की जायें। (२) मिडिल स्कूल स्तर तक प्रत्येक छात्र को कम से कम दो अनिर्दिष्ट भाषाएँ पढ़ायी जायें, इस सिद्धान्त के आधार पर कि एक ही वर्ष में भाषाएँ पढ़ानी शुरू नहीं की जायेंगी। जुनियर बेसिक स्तर पर हिंदी और अंग्रेजी, दोनों की पढ़ाई शुरू की जाय। (३) हाई और हायर सेकेण्डरी पर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिए।

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श मण्डल ने १९५६ में जिस त्रिभाषा फार्मूले को रखा था उसमें यह सुझाव दिया गया था कि त्रिभाषा फार्मूले के निम्न दो विकल्पों में से एक को अपनाया जाय।

१ (अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा का मिला-जुला रूप या मातृभाषा और प्राचीन समुचित स्वरूप, (ब) हिन्दी या अंग्रेजी और (ग) आधुनिक भारतीय या आधुनिक यूरोपीय भाषा बशर्ते कि इसे अ और ब के अधीन न लिया गया हो।

२ (अ) ऊपर की तरह, (ब) अंग्रेजी या आधुनिक यूरोपीय भाषा और (स) हिन्दी (गैर हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों के लिए) या कोई अन्य भारतीय भाषा (हिन्दी राज्यों के लिए)।

इन दोनों ही विकल्पों में गैर हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी और अंग्रेजी तथा हिन्दी क्षेत्रों में अंग्रेजी और कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा की पढ़ाई ६ वर्ष तक अनिवार्य है।

व्यवहार में राज्य सरकारों ने दूसरे विकल्प को ही अपनाया है।

त्रिभाषा फार्मूले पर मुख्य मंत्रियों ने १९६१ में विचार किया था तथा यह निश्चय किया गया था कि इस फार्मूले को कुछ सरल बनाया जाय और माध्यमिक स्तर पर पढ़ाने की भाषा निम्न हो।

(अ) क्षेत्रीय भाषा और मातृभाषा यदि क्षेत्रीय भाषा से मातृभाषा भिन्न हो। (ब) हिन्दी और हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कोई अन्य भारतीय भाषा (स) अंग्रेजी या कोई अन्य यूरोपीय भाषा।

● १४ मई—उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री श्री रामप्रकाश गुप्त ने कहा कि मैं हाई स्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षा बोर्ड के उन्मूलन और परीक्षाओं की वर्तमान प्रणाली के स्थान पर माहवारी परीक्षाओं के आधार पर फैसला किये जाने सम्बन्धी प्रस्तावों के पक्ष में हूँ, पर इस सम्बन्ध में शिक्षा शास्त्रियों-द्वारा पूरी तरह से विचार कर लिये जाने के बाद ही कोई कार्रवाई की जा सकेगी।

उन्होंने कहा कि शिक्षा का स्तर उठाने के लिए आगामी एक वर्ष के दौरान हर दस प्राइमरी स्कूलों के पीछे एक स्कूल को विशेष सुविधाएँ प्रदान कर एक आदर्श संस्था बनाने का प्रयत्न किया जायगा। इस योजना के अन्तर्गत ८ हजार स्कूल आ जायेंगे।

● बिहार के शिक्षामंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने कहा है कि सरकार छठी कक्षा तक सभी स्तरों पर निःशुल्क शिक्षा देने का इरादा रखती है। उन्होंने कहा कि मैट्रिक तक अंग्रेजी में फेल विद्यार्थी फेल नहीं समझे जायेंगे।

● १९ मई—संसदसदस्यों की शिक्षा सम्बन्धी समिति ने सर्वसम्मति से शिक्षा आयोग की सिफारिश स्वीकार कर ली जिसके अनुसार वार्षिक परीक्षाओं की व्यवस्था बिलकुल बदल जायगी और मैट्रिक, हायर सैकेण्डरी आदि के स्तर की सम्पूर्ण परीक्षा में पास-फेल की रिपोर्ट न देकर हर विषय में छात्र की योग्यता लिख दी जायगी।

समिति की राय है कि उच्च शिक्षा के लिए छात्र का दाखिला उसकी पसन्द के नये विषय में उसकी योग्यता पर निर्भर हो न कि सारी परीक्षा में उसकी पास या फेल की रिपोर्ट पर। जिन विषयों का उसके भावी जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहना है उनमें उसकी योग्यता की परीक्षा करना उसे आगे की प्रगति के अवसर से वंचित करना है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय में शिक्षा सलाहकार श्री जे०पी० नाईक ने बैठक के बाद बताया कि परीक्षाओं की वर्तमान प्रणाली एक प्रकार की मनमानी है।

भविष्य में उसमें जो संशोधन किया जायगा उससे यह प्रणाली और लचीली हो जायगी और उससे छात्रों की प्रतिभा नष्ट होने से बच जायगी ।

उन्होंने बताया कि हाई स्कूल के बाद यदि कोई छात्र किसी रोजगार या नौकरी में लगना चाहेगा तो उसके लिए निश्चित विषयों में ही उसकी योग्यता को आधार माना जायगा ।

शिक्षा आयोग की सिफारिश में कहा गया है कि सबसे अधिक सुधार शिक्षा की व्यवस्था में होना चाहिए जिससे उसे जनता के जीवन के अधिक निकट लाकर व्यावहारिक बनाया जा सके और जो सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन कर राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति कर सके ।

समिति ने शिक्षा को उत्पादकता से जोड़े जाने पर बल दिया और वैज्ञानिक शिक्षा में सुधार की भी सिफारिश की ।

● २० मई—संसद की शिक्षा सम्बन्धी समिति ने आज सिफारिश की कि प्राइमरी शिक्षा के लिए स्कूलों का स्तर ऊँचा उठाकर एक ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे समाज में समानता और वर्गहीनता कायम की जा सके।

इस उद्देश्य के लिए समिति ने कहा है कि भविष्य में क्षेत्रीय स्कूलों की व्यवस्था लागू की जाय जिनमें उस क्षेत्र के हर निवासी के बच्चे अनिवार्य रूप से पढ़ने के लिए भेजे जायँ चाहे वे गरीब हों या अमीर। यदि उनके बच्चे एक ही स्कूल में शिक्षा लेने जायेंगे तो समानता के सिद्धान्त पर अमल किया जा सकेगा।

समिति ने छात्रों के लिए सभी स्तरों पर समाज-सेवा अथवा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में हिस्सा लेना अनिवार्य करने की भी सिफारिश की है। प्रस्ताव में कहा है कि माध्यमिक स्तर के स्कूलों का समाज से निकट सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में प्रयत्न किये जायँ और छात्रों तथा शिक्षकों के लिए समान रूप से समाज-सेवा के कार्यक्रम बनाये जायँ । जहाँ यह सम्भव न हो, वहाँ समाज सेवा शिविर लगें और हर छात्र के लिए कुछ समय के लिए वहाँ काम करना अनिवार्य हो ।

समिति की राय में विश्वविद्यालय स्तर पर एन० सी०सी० को अनिवार्य न रखकर ऐच्छिक बना दिया जाय तथा उसका स्तर ऊँचा किया जाय । छात्रों को वर्ष में कम-से-कम २० दिन अनिवार्यतः समाजसेवा का अवसर दिया जाय । हर छात्र को या तो एन०सी० सी० में भाग लेना होगा अथवा समाज-सेवा में । इसे क्रमिक रूप में चलाकर चार वर्ष में सभी छात्रों को इसमें अन्तर्गत लिया जाना चाहिए ।

● २१ मई—प्राथमिक शिक्षा पर एक राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी ने इस बात पर बल दिया कि जनसम्पर्क के जरिये अभिभावकों को शिक्षा का महत्व समझाने, दोपहर का भोजन, मुफ्त पाठ्यपुस्तकें व पोशाकें जैसे प्रोत्साहन देने और निरीक्षण अधिकारियों को अपने कार्यों का अच्छा प्रशिक्षण देने के कार्यक्रम पर अमल किया जाय ।

गोष्ठी में कहा गया कि १४ वर्ष की आयु तक के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने के सम्बन्ध में संविधान के निर्देश को पूरी करने की समस्याएँ लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अधिक है ।

अध्यापकों की शिक्षा के सम्बन्ध में गोष्ठी ने शिक्षा-आयोग की अधिकांश सिफारिशों की ही पुष्टि की । उसने सुझाव दिया कि अप्रशिक्षित पुराने अध्यापकों को अध्यापन के तरीकों तथा स्कूल संगठन के सभी पहलुओं का अभ्यास कराया जाय ।

गोष्ठी के समापन भाषण में महाराष्ट्र के शिक्षा-मंत्री श्री एम० डी० चौधरी ने कहा कि प्राथमिक शिक्षा पर राष्ट्रीय जीवन के गुणों की आधारशिला के रूप में बल दिया जाना चाहिए । उन्होंने कहा कि प्राथमिक शिक्षा में सर्वतोमुखी विकास के लिए तीन बातें जरूरी हैं अच्छा अध्यापक, अधिक रुचि लेनेवाले सक्रिय माता-पिता, और अधिक योग्य शैक्षणिक प्रशासक ।

● २१ मई—केरल के मुख्यमंत्री श्री ई०एम०एस० नम्बुदरीपाद ने त्रिभाषा फार्मूला लागू करने का समर्थन करते हुए कहा कि सभी कक्षाओं में शिक्षण का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए । इसके साथ ही राष्ट्रीय सम्पर्क-भाषा के रूप में हिन्दी का और किसी एक विकसित देश की भाषा—जैसे इंग्लिश, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, रूसी, जर्मन आदि का अध्ययन भी कराया जाना चाहिए । ●

वफादारी की शपथ

•

डा० ज़ाकिर हुसैन

डा० जाकिर हुसैन

मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारी जनता ने इस उच्चतम पद के लिए निर्वाचित करके मुझ पर जो विश्वास प्रकट किया है, उससे मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ। यह भावना इस वजह से और भी प्रबल हो जाती है कि भारत के एक महान सपूत डा० राधाकृष्णन जी के बाद मुझसे इस पद को सम्भालने के लिए कहा गया है जो वर्षों से मेरे पथ प्रदर्शक दार्शनिक और मित्र रहे हैं और जिनके अधीन मुझे पिछले पाँच साल से काम करने का अनमोल अवसर प्राप्त हुआ है। मैं उनके कदमों पर चलने की कोशिश करूँगा परन्तु उनकी बराबरी कैसे कर सकूँगा। डा० राधाकृष्णन ने राष्ट्रपति पद को बुद्धिमत्ता, पाण्डित्य और ऐसा सुसम्पन्न अनुभव प्रदान किया जिसका उदाहरण नहीं मिलता। ज्ञान तथा सत्य की खोज के लिए समर्पित सारे जीवन में उन्होंने भारतीय दर्शन के विचारों को और सभी आध्यात्मिक सिद्धान्तों के एकत्व को बताने तथा उन्हें स्पष्ट करने के लिए किसी भी अन्य व्यक्ति से सम्भवतः अधिक कार्य किया है। उन्होंने मनुष्य की अन्तरतम मानवता पर विश्वास कभी नहीं छोड़ा और वह स्वयं सभी मनुष्यों के इज्जत और इंसाफ के साथ रहने के अधिकार का सदा समर्थन करते रहे। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएँ बहुमूल्य रही हैं। उपराष्ट्रपति तथा राज्यसभा के सभापति के रूप में उन्होंने १० वर्ष तक राष्ट्र की अनुपम सेवा की और यह उचित ही हुआ कि इस कार्यकाल के उपरान्त वे राष्ट्रपति चुने गये। अपने पद से अवकाश ग्रहण करते समय सारा राष्ट्र उन्हें कृतज्ञता से धन्यवाद दे रहा है और उनके प्रति अपना प्रेमपूर्ण आदर समर्पित कर रहा है। हमारी कामना है कि वह अनेक वर्षों तक स्वस्थ और सुखी रहें।

मैं आपको केवल इतना ही यकीन दिला सकता हूँ कि मैं इस पद को नम्रता से तथा सच्चाई के साथ स्वीकार करता हूँ। मैंने अभी भारत के संविधान के प्रति वफादारी की शपथ ली है। यह एक प्राचीन देश के लोगों का युवा राष्ट्र है जिन्होंने हजारों सालों में और अनेक जातियों के सहयोग से देशकाल से परे परम तत्त्वों को अपने जीवन में अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मैं उन तत्त्वों का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। हालाँकि परिस्थिति के बदलने से कोई मूल्य पूरा और सही मानों में भले ही न हो सके मगर वह मूल्य हमेशा वहाँ रहता है और नित नूतन अनुभव करने को प्रेरित करता रहता है। अतीत कभी भी निर्जीव तथा गतिहीन नहीं होता। वह सजीव तथा गतिशील होता है और वह हमारा निश्चय करता है कि हमारे वर्तमान और भविष्य का स्वरूप क्या होगा।

मेरे विचार में शिक्षा का लक्ष्य बराबर नया जीवन देने में योग देना होता है और मुझे यह मानने के लिए माफ किया जाय कि इस ऊँचे पद के लिए मैं मुख्यतः यद्यपि पूर्णतः नहीं इस कारण चुना गया हूँ कि मेरा अपना

देशवासियों की शिक्षा से बहुत काल तक सम्बन्ध रहा है। मेरी यह धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने का मुख्य साधन है और जैसी उसकी शिक्षा होती है, वैसा ही उसका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मैं अपने अतीत की समग्र संस्कृति के प्रति चाहे वह जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने योगदान किया हो, अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ। मैं अपने देश की सम्पूर्ण संस्कृति की सेवा का व्रत लेता हूँ। मैं अपने देश के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त करता हूँ, क्षेत्र व भाषा चाहे जो हो। मैं उसे सशक्त और उन्नत बनाने और बिना जाति, रंग और धर्म भेद के अपने लोगों की भलाई के लिए कार्य करने का व्रत लेता हूँ।

सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार है। लोगों ने कुछ समय के लिए मुझे इस परिवार का कर्ता चुना है। मैं सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूँगा ताकि यह मेरे महान देशवासियों का उपयुक्त घर हो जो कि एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य में लगे हुए हैं, जिसमें इन्साफ और खुशहाली का अपना स्थान हो। यह परिवार बड़ा है जो अनुकूल नहीं है। हममें से हर एक को इस देश के नये जीवन के निर्माण के कार्य में अनवरत अपने अपने क्षेत्र में और अपने अपने ढंग से भाग लेना होगा। हमें जो काम करने हैं, वे इतने बड़े हैं और इतने जरूरी हैं कि कोई भी आराम से देखता नहीं रह सकता और देश में निराशा को जड़ पकड़ने नहीं दे सकता। स्थिति ऐसी है कि हम काम करें, अधिक काम करें, शान्ति से और सच्ची लगन से काम करें और अपने देशवासियों के समूचे भौतिक और सांस्कृतिक जीवन का ठोस और सन्तुलित ढंग से फिर से निर्माण करें।

जैसा कि मैं देखता हूँ, इस कार्य के दो पहलू हैं— एक वह जो अपने लिए किया जाता है और दूसरा वह जो अपने समाज के लिए। असल में ये दोनों सहायक अंग हैं जो कार्य को सफल बनाते हैं। अपने लिए जो कार्य किया जाता है, वह स्वतंत्र और स्वयंअनुशासित लोगों के नैतिक विकास के लिए है जिससे ही वह विकास सम्भव है। उसकी अन्तिम परिणति स्वतंत्र नैतिक व्यक्तित्व है। हम अपने आपको खतरों में डाल कर ही इस अन्तिम परिणति की उपेक्षा कर सकते हैं।

समाज में व्यक्ति का विकास

यह अन्तिम परिणति तभी स्थायी हो सकती है जब उसमें न्यायपूर्ण और सुन्दर जीवन के अनुरूप समाज के निर्माण की चेष्टा तथा शक्ति निहित होगी। किसी व्यक्ति का पूर्ण विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि सामूहिक रूप में समाज में उसके व्यक्तित्व का उसी प्रकार विश्वास न हो। हम सब व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों में पूरे दिल से लगने का संकल्प करें। यह दुहरा प्रयास हमारे राष्ट्र के जीवन को एक विशेष सौरभ प्रदान करेगा क्योंकि राष्ट्र हमारे लिए शक्ति का संगठन मात्र न होगा किन्तु वह एक नैतिक संस्था होगी। हमारे राष्ट्र का यह स्वभाव है और हमारी स्वतंत्रता-संग्राम के महान नेता महात्मा गांधी की वह विरासत है कि शक्ति का उपयोग नैतिक उद्देश्यों के लिए ही किया जाय। समर्थ लोगों की शान्ति प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्न करेंगे। हमारे राष्ट्र के भविष्य की कल्पना में विस्तारवादी विचारों और साम्राज्यवादी विकास का कोई स्थान नहीं होगा और हमेशा उद्दण्ड देशप्रेम से दूर रहेंगे।

हम यह कोशिश करेंगे कि हर एक नागरिक को कम से-कम वे चीजें हासिल हों जो सुन्दर मानव-जीवन के लिए जरूरी हैं। हम बौद्धिक शिथिलता और आवश्यक सामाजिक न्याय की उपेक्षा से संघर्ष करेंगे। हम संकीर्ण सामूहिक खुदगर्जी को मिटायेंगे। और, यह सब हम एक नैतिक कर्तव्य को खुशी से स्वीकार करेंगे। हम अपने राष्ट्रीय जीवन में नैतिकता का, सदाचार में कार्य-कौशल का, ध्यान में कार्य का, पश्चिम में पूर्व का, बुद्ध में सीगफीड का समावेश करेंगे। हम शाश्वत और सांसारिक जाग्रत आत्मा और दक्षतापूर्ण कार्य-कौशल, विश्वास और सफलता के दोनों रूपों को ध्यान में रखेंगे।

मुझे अपने लोगों से पूरी आशा है कि वे दुहरे कार्य को सन्तोषजनक रूप से निभाने की शक्ति का परिचय देंगे।

इस कार्य में अपना योग देने में मैं अपना गौरव समझूँगा। ●

—राष्ट्रपति चुने जाने के बाद के भाषण से—सं०

जब रसोइये ने हलुए में नमक डाल दिया !

एक सेठ थे रमणलाल। सीधे, सच्चे, अच्छे आदमी।

एक दिन वे भोजन करने बैठे तो देखा, हलुए म नमक पडा है और तरकारी मे चीनी।

उन्होंने अपने रसोइये की तरफ देखा।

लगा, उसका चेहरा उदास है, आँख अलसायी है।

पूछा 'महाराज लाभशकर, आज उदास क्यो है ?'

रसोइया बोला 'क्या बताऊँ सेठजी, ब्राह्मणी की तबीयत ठीक नही है।'

सेठजी बोले 'महाराज, तुम खाना खाकर जल्दी घर चले जाओ। ब्राह्मणी को जाकर सँभालो। तबीयत ठीक नही थी तो आये ही क्यो ? रातभर जगे भी होगे। जाओ, मैं अभी कोई आदमी तुम्हारे घर भेज दूँगा। थोडी देर तुम भी आराम कर लेना।'

रसोइया चला गया तो सेठ ने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा 'सुनती हो चम्पाबाई ! अपना रसोइया डर के मारे काम पर चला आया। उसकी बीबी बीमार है। रातभर जागता रहा है। तभी भूल से उसने हलुए मे नमक डाल दिया है और तरकारी में चीनी। अब तुम एक काम करो। यह सारा खाना गोशाला में जाकर गौओ को खिला दो। हलुआ और तरकारी फिर से बना लो। नही तो घर के दूसरे लोग और नौकर-चाकर उस गरीब ब्राह्मणकी खिल्ली उडायेगे। ऐसा करो, जिसम लाभशकर की भूल को किसीको भी पता न चले।'

सेठानी ने वही किया।

कैसा अच्छा सेठ !

× × ×

तिलक महाराज, लोकमान्य बाल गगाधर तिलक माडले मे कैद थे। अग्रेजी सरकार ने उन पर नाराज होकर उन्हे परदेश भेज दिया था।

एक दिन उनके रसोइये से भी ऐसी ही गलती हो गयी।

नाम था उसका वासुदेव कुलकर्णी।

खाना बनाते-बनाते उसे अपने बीवी-बच्चो की याद आ गयी। सोचन लगा 'पता नही, देश म वे लोग कैसे होगे ?'

इसी चिन्ता म था बेचारा कि गरम पानी स भरी बटलोई हाथ से छूट गयी। सारा पानी आटे म गिर गया। आटा लपसी बन गया।

वासुदेव डर के मारे रोने लगा।

सोचा उसने कि अब मैं महाराज को क्या परोसूँगा ? महाराज कही जेलर से कह दंगे तो मुझे दड होगा।

तभी तिलक महाराज आ गये रसोईघर में।

देखते ही वे समझ गये कि क्या हुआ है।

उन्होने ऐसा भाव दिखाया, मानो कुछ हुआ ही न हो।

उस लपसी से आटे को उठाकर उन्होने एक कपडे पर उँडेल दिया, कपडे ने पानी सोख लिया।

आटा रोटी बनाने लायक हो गया।

तिलक महाराज ने बहुत हँसी-खुशी से उसकी रोटी खायी।

गलती किससे नही होती ? पर उसे चुपचाप सहन कर लेना और दूसरो से छिपाना बडी बात है। अच्छे आदमी ही ऐसा करते है।

अनुक्रम

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छह रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

जून, '६७

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित

लाइसेंस न० ४६

रजि० सं० एल. १७२३

नयी तालीम, जून, '६७

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

भूख की पहचान

आलीशान मकानो और व्यापारियो की महानगरी बम्बई में हमलोग बिहार के सूखे के लिए सहायता माँग रहे थे। कोई अपने पुराने कपडे, कोई अनाज और कोई रुपये-पैसे देते तो कोई रद्दी अखबार का पुलिन्दा हमारे हवाले कर देता था। हम रद्दी कागज को बाजार मे बेंचकर उसकी रकम सूखा सहायता-कोष मे रख लेते। हमारी टोली पुराने कनस्टरो से बनी एक कबाडनुमा झोपडी के पास पहुँची। झोपडी के सामने दो अधनगे बच्चे मिट्टी और कोयले के चूरे से बनी गोलियाँ टोकरी में रख रहे थे। मन में हिचकिचाहट हुई कि क्या इस झोपडी में रहनेवालो से भी माँगा जाय। तभी हमारी टोली की बहनें प्रीति और हेमागिनी झोपडी के सामने पहुँची और बोली, "अपने देश में बिहार एक प्रान्त है। वहाँ इस साल सूखा पडा है। लाखो लोग भूखे प्यासे मर रहे हैं। उन्ही की जान बचाने के लिए हम मदद इकट्ठा कर रहे है।" झोपडी की स्वामिनी ने अपनी मैली-कुचैली कोयले की गर्द से ढँकी जेब में हाथ डालकर अपनी कुल पूँजी एक रुपया का नोट हमारे सामने बढा दिया। हम भौचक्के-से होकर उसे अठन्नी वापस करने लगे। उसने अपने बच्चो की ओर देखते हुए कहा, "बिहार को तो मैं नही जानती लेकिन पेट की भूख को जानती हूँ!"

—वसन्तव्यास

आवरण मुद्रक—खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी।

यी तालीम
सर्व-सेवा-संघ की मासिकी

श्री आर्यनायकम्जी नयी तालीम के लिए जीये और उसी की तड़प लेकर गये। गांधीजी ने उनके अन्दर नयी तालीम की जो आग जला दी थी, वह जीवन भर कभी बुझी नहीं। जितने शिक्षक उनके सम्पर्क में आये उनको उस आग की एक-एक चिनगारी दे दी। 'बाबा' (आर्यनायकम्जी के लिए शिष्यों और शिक्षकों का सम्बोधन) की तड़प तेजी से इस देश के करोड़ों की तड़प बन जाय यही उनके प्रति हमारी सर्वोत्तम श्रद्धांजलि होगी। उनकी जीवन-साधना की साथी आशादेवी हमारे बीच मौजूद हैं। उनके सन्तप्त हृदय को परम पिता शान्ति प्रदान करें।

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हजारों शिक्षकों के 'बाबा' आर्यनायकम्जी

अभी धोत्रेजी गये और अब आर्यनायकम्जी भी चले गये! गांधीजी के समय के उनके साथियों में ये दोनों अपने अपने ढंग के महारत्न रहे हैं। दोनों ने ही अपने अनोखे ढंग से गांधीजी के विचारों को साकार करने का प्रयास किया। धोत्रेजी अनेकाग्रबुद्धि के थे और अनेक काम में लगे रहे। नायकम्जी एकाग्र निष्ठा से अपनी आखिरी साँस तक उस नयी तालीम की सेवा में लगे रहे, जिसके लिए गांधीजी ने उन्हें चुना था।

श्री नायकम्जी से मेरा परिचय करीब तीस साल पुराना है। सन् १९३७ में गांधीजी ने जब देश के सामने बुनियादी शिक्षा की कल्पना रखी और उस कल्पना को रूप देने के लिए वर्तमान राष्ट्रपति डा० ज़ाकिर हुसेन के नेतृत्व में कमिटी बनायी, तब उन्होंने नायकम्जी और आशादेवी को बुलाकर उन्हें इस नयी तालीम का पुजारी बनाया। तब उनसे मेरा परिचय नहीं था। सन् १९३८ में एकाएक उनका पत्र मिला कि वे मेरे प्रयाग-स्थान रणीवाँ आ रहे हैं, तो मुझे बड़ी खुशी हुई। लोक शिक्षण के काम में हमेशा रुचि रखने के कारण मेरी दिलचस्पी नयी तालीम के नये प्रयोगों की ओर थी, लेकिन वह क्या चीज है, यह मैं नहीं जानता था।

वर्ष : पन्द्रह
•
अंक : १२

सुबह साढ़े तीन बजे की गाडी से गोसाईंगंज स्टेशन पर वे ग्रानेवाले थे। श्रीमती आशादेवी को मैं पहले से ही पहचानता था, इसलिए उन्हें भी पहचान लिया। गाडी से उतरते ही उनके व्यक्तित्व से मैं प्रभावित हुआ और स्टेशन से रणीवाँ तक चार मील बैलगाडी की यात्रा में केवल घनिष्ठता ही नहीं बढ़ी, बल्कि उनके परिवार का एक सदस्य बन गया।

रणीवाँ में दो दिन रहकर अपने काम के बारे में चर्चा हुई। फिर दूसरे दिन जब मैंने उनसे बुनियादी शिक्षा क्या है, ऐसा प्रश्न किया तो उन्होंने कहा, "धीरेन तुमको यह सवाल करने की जरूरत नहीं है। तुम जो कर रहे हो, वही बुनियादी शिक्षा है।

यह बात मेरी समझ में आयी नहीं। फिर पूछा, 'ऐसा किस तरह? आप लोग कहते हैं कि बुनियादी शिक्षा ७ साल से १४ साल तक के बच्चे के लिए है लेकिन मेरे यहाँ तो कोई बच्चा नहीं है।' उन्होंने कहा, 'बच्चा नहीं है तो क्या, लेकिन तुम अपने प्रौढ़ विद्यार्थी के साथ निष्ठापूर्वक और वैज्ञानिक चेतना के साथ उत्पादक श्रम के काम में लगे हुए हो, वही बुनियादी शिक्षा की बुनियाद है।"

यह सब चर्चा हुई, लेकिन कल्पना साफ नहीं हुई। कल्पना साफ होने में दस साल का समय लगा।

तब से आज तक नायकम्‌जी के साथ पारिवारिक सम्बन्ध हमेशा बना रहा। इस सम्बन्ध के कारण मैंने उन्हें निकट से देखा। अत्यन्त रईस घर में जन्मे और पले, माडर्न सभ्यता में बढ़े और शान्ति निकेतन के सुसज्जित और कलापूर्ण वातावरण में काम किये हुए नायकम्‌जी को जब मैं सेवाग्राम में देखता था, तो आश्चर्यचकित हो जाता था। जिस तरह अत्यन्त निष्ठा के साथ उन्होंने सर्वसामान्य जनों का जीवन बिताया, 'सहनाववतु सहनौ भुनक्तु' के गुरु शिष्य का सम्बन्ध निभाया, वह आज के जमाने के इतिहास में एक अपवाद ही रहा है।

ऊपर से रूखा और क्रोधी मनुष्य अन्दर से इतना अधिक स्नेहशील और वात्सल्य प्रेम से भरपूर चरित्र वाला विरला ही होता है। उनके इस वात्सल्य और प्रेम को मैंने तब देखा था जब चरखा संघ के अध्यक्ष के नाते मैं देश भर में घूमता था और हर स्थान पर नयी तालीम की शालाओं को देखने जाता था। उस समय के हर प्रदेश के बुनियादी शिक्षक प्रायः सेवाग्राम के प्रशिक्षित रहे हैं। उन शिक्षकों से जब मैं बात करता था, तो उनकी शक्ल तथा बातचीत की भंगिमा से नायकम्‌जी की वात्सल्य-भावना का स्पष्ट आभास मिलता था। ये शिक्षक उनको 'बाबा' कहते थे और दिल से उनका आदर करते थे। इस तरह नायकमजी देश भर के हजारों शिक्षकों के बाबा थे, जो अपने को उनके परिवार का अंग मानते हैं।

अब वे चले गये। २८ साल की अनेक घटनाएँ याद आ रही हैं, जो महत्व की हैं। विचार तथा कार्य-पद्धति में अनेक मतभेद रहे, लेकिन उनकी निष्ठा, उनकी आन्तरिकता तथा विचार को दृढ़ता से पकड़े रहने की उनकी शक्ति का मैं हमेशा कायल रहा हूँ और उस कारण मेरा आकर्षण आज भी बना हुआ है।

मैं अपने तथा सर्वोदय-परिवार की ओर से उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

—धीरेन्द्र मजूमदार

कोलम्बो (श्री लंका) के इण्डियन हाईकमीशन की ओर से २१ जून की दोपहर में अचानक तार मिला कि आर्यनायकम्‌जी हृदय की गति रुक जाने से २० ता० की सुबह वड्डकोडई में चल बसे।

हम सब तार पढ़कर अवाक् रह गये। घोत्रेजी की मृत्यु का आघात अभी मिटा भी नहीं था कि एक महीने के अन्दर नयी तालीम के आलोक की एक दिव्य ज्योति के बुझने की खबर सुनने का प्रसंग आया!!

सेवाग्राम से १ जून को आशादेवी के साथ नायकम्‌जी दक्षिण गये थे। वेलोर में डाक्टर से उनकी जाँच करानी थी। उनके भाई लंका में बीमार थे, उनसे मिलने के लिए वे १७ तारीख को मद्रास से लंका गये और अचानक हृदय का दौरा पड़ने से चल बसे।

आर्यनायकम्‌जी और नयी तालीम

आर्यनायकम्‌जी और नयी तालीम—एक के साथ दूसरे का नाम इतना अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था कि आर्यनायकम्‌जी को छोड़कर नयी तालीम या नयी तालीम

की छोड़कर आर्यनायकम्‌जी की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।

वे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास शान्ति-निकेतन पहुँचे और आगे चलकर उनके मंत्री बन गये। वहीं पर बंगाली भाषा पर उनका प्रेम और प्रभुत्व हो गया। श्रीमती आशादेवी बंगाली महिला हैं। वे भी उन दिनों शान्ति निकेतन में थीं। एक बार सांस्कृतिक कार्यक्रम में रामायण-कथा का दृश्य शान्ति निकेतन के साधियों ने प्रस्तुत किया था। उसमें आर्यनायकम्‌जी रावण और आशादेवी सीता बनी थीं। किसको कल्पना थी कि रामायणगाथा का यह सीता हरण आगे चलकर सत्य सृष्टि में एक मधुर मिलन का पूर्वसूचक सिद्ध होगा! आशादेवी नायकम्‌जी की जीवन संगिनी बन गयीं इतना ही नहीं, बल्कि नयी तालीम के काम के साथ इतनी ओतप्रोत हो गयीं कि सेवाग्राम के नयी तालीम परिवार की मानो माँ बन गयीं। आशादेवी की अपनी स्वतंत्र प्रतिभा तो थी ही, लेकिन आर्यनायकम्‌जी के जीवन के साथ वह और उज्ज्वल हो उठी।

सन् १९३६-३७ की बात है। वर्धा में काकावाड़ी के पास के एक परिवार निवास में आर्यनायकम्‌जी, आशादेवी मिनू (लड़की) और आनन्द (लड़का), यह परिवार एक अंग्रेज परिचारिका के साथ रहने आया। गांधीजी उन दिनों मगनवाड़ी में ही आकर ठहरते थे। सेगाँव का सेवाग्राम तब तक नहीं बना था।

बाइबिल में वर्णन आता है कि ईसा ने मछली पकड़नेवालों को पुकारकर कहा कि 'मेरे साथ चलो, मैं तुमको आदमी पकड़ने की कला सिखाऊँगा।' (फॉलो मी एण्ड आई विल मेक यू फिशर्स आफ मेन) आदमी पकड़ने की यह कला बापूजी में थी।

तालीमी संघ के आजीवन मंत्री

सन् १९३७ में पहले-पहले कांग्रेस के मंत्रिमण्डल अधिकार में आये थे। उस समय भारत आजाद नहीं हुआ था। फिर भी जो मर्यादित अधिकार प्रान्तीय मंत्रि-मण्डलों को प्राप्त थे, उनमें कांग्रेस कुछ कार्य कर सकती थी। इस अवसर का लाभ शिक्षण-क्षेत्र में लिया जाय, यह सोचकर गांधीजी ने एक अखिल भारतीय शिक्षण परिषद वर्धा में आयोजित की। इसी परिषद में "हिन्दुस्तानी तालीमी संघ" नाम की नयी तालीम की संस्था का जन्म हुआ। इस संघ के अध्यक्ष डॉ० जाकिर हुसेन और मंत्री श्री आर्यनायकम्‌जी चुने गये। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक आर्यनायकम्‌जी अत्यन्त तन्मयता से और एकनिष्ठा से नयी तालीममय बने रहे।

सेवाग्राम में रहने के लिए आने के कुछ ही महीनों बाद आर्यनायकम्‌जी का तीन साल का एकमेव लड़का एक दुर्घटना का शिकार होकर चल बसा। कितना प्यारा मासूम बच्चा था! माता पिता का दिल बैठ गया। सेवाग्राम में नजदीक की टेकड़ी पर उस बच्चे की समाधि अब भी मौजूद है। उन दिनों आर्यनायकम्‌जी कितने ही दिन लगातार घण्टों तक उस समाधि के पास बैठे रहते थे। धीरे-धीरे जख्म भर गया। नयी तालीम विद्यालय के बच्चों में अपने बच्चे की प्रतिमा उन्होंने देखी और वह पितृहृदय अधिक व्यापक और मृदु बन गया।

नयी तालीम का उज्ज्वल इतिहास

सन् १९३८ से लेकर सन् १९४८ तक का दस साल का कालखण्ड नयी तालीम के लिए एक उज्ज्वल इतिहास बनकर रह गया। रचनात्मक कार्यों में खादी और हरिजन सेवा के बाद गांधीजी की विशेष प्रवृत्ति का नाम लेना हो, तो नयी तालीम का ही ले सकते हैं। सन् १९४५ में जेल से छूटने के बाद खादी का नवसंस्करण और नयी तालीम में उत्तर तथा उत्तम बुनियादी का विचार गांधीजी बार-बार कार्यकर्ताओं के सामने रखते आये। सन् १९३८ से १९४२ तक के चारों वर्षों में शिक्षा-जगत् में बेसिक एजुकेशन के विचार का इतना जोरदार स्वागत हुआ कि भारत के ही नहीं, बल्कि देश विदेश के विद्यार्थी, प्रोफेसर और शिक्षाशास्त्री सेवाग्राम की तरफ आकृष्ट हुए। उन दिनों सेवाग्राम में ऐसा जमघट रहता था कि मानो यह एक 'कॉस्मापालिटन' (सार्वदेशिक) केन्द्र ही हो! करीब-करीब हर एक प्रान्तीय सरकार की ओर से नयी तालीम के प्रशिक्षण के लिए पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स के तौर पर प्रशिक्षार्थी सेवाग्राम में भेजे गये। अपने अपने प्रान्तों में सात वर्ष की पढ़ाई नयी तालीम पद्धति से चलायी जा सके, इसके लिए उन्होंने

प्रशिक्षार्थी भेजे। हर वर्ष सेवाग्राम में नयी तालीम का सम्मेलन आयोजित होता था। उस समय देश और विदेश के चुने हुए शिक्षाशास्त्री तथा नेतागण उपस्थित हो जाते थे। एक अद्भुत चैतन्य और प्रेरणा का स्रोत सेवाग्राम बन गया था।

जीवन समर्पण

आर्यनायकमजी-दम्पति, पति पत्नी शैक्षणिक दृष्टि से श्रेष्ठ उपाधियों से विभूषित तो थे ही, लेकिन नयी तालीम की उनकी लगन, बच्चों के प्रति उनका स्नेह और प्यार, और नयी तालीम के लिए दोनों का जीवन-समर्पण सेवाग्राम के वातावरण को प्रफुल्लित, प्रभावित और प्रेरित करता था।

ग्रामदान में नयी तालीम

सन् १९५१ के बाद भूदान आन्दोलन का एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम देश के सामने आया और सन् १९५७ के अन्त में भूदान में से ग्रामदान की नयी धारा फूट निकली। आर्यनायकमजी विनोबाजी के साथ तमिलनाड की भूदान यात्रा में घूम रहे थे। नयी तालीम विद्यालय का स्थान अब किसी संस्था में नहीं, बल्कि ग्रामदानी गाँवों में है और ग्रामसभाएँ अपने बच्चों की पढाई नयी तालीम के द्वारा चलायेंगी तो ग्रामदानी क्षेत्रों में दस साल के अन्दर गाँवों के लिए उपयोगी और सही माने में शिक्षित पीढी तैयार हो जायगी, इस चीज का दर्शन आर्यनायकमजी को हुआ और तालीमी संघ के मैनेजिंग बोर्ड में इस तरह का प्रस्ताव भी उन्होंने स्वीकृत कराया। आगे चलकर सन् १९५९ में सर्व सेवा संघ के साथ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का संगम हो गया।

सेवाग्राम में सन् १९६० से १९६२ तक के तीन वर्षों में आर्यनायकमजी के बदले अण्णासाहब सहस्रबुद्धे को यहाँ की प्रवृत्तियों का दायित्व सौंपा गया और नायकमजी ग्रामदानी क्षेत्रों में घूमने के लिए निकले।

नयी तालीम के लिए एग्रो-इण्डस्ट्रियल बेस (कृषि उद्योगप्रधान आधार) तैयार किये बगैर इसके आगे नयी तालीम ग्रामीण जनता में मान्य नहीं हो सकेगी यह धारणा अण्णासाहब की थी और उस दिशा में उन्होंने अपनी अधिकतर शक्ति लगाकर सेवाग्राम की खेती में आश्चर्यकारक सुधार किया, लेकिन सेवाग्राम की आधारभूत नयी तालीम की प्रवृत्ति क्षीण हो रही है, ऐसा नयी तालीम के अन्य साथियों ने महसूस किया और सन् १९६३ के बाद फिर से आर्यनायकमजी को नयी तालीम विद्यापीठ की जिम्मेवारी सौंपी गयी।

देश की बदलती परिस्थिति और प्रतिकूल वातावरण के रहते हुए भी आर्यनायकमजी ने हिम्मत के साथ काम सँभाला। सेवाग्राम में बेसिक एजुकेशन युनिवर्सिटी कायम हो, इस दिशा में नये सिरे से उन्होंने प्रयास आरम्भ किया। नया युवक मण्डल अपने आस पास जमा किया। खेती को सुदृढ बनाकर साथ साथ छोटे-मोटे उद्योगों को सेवाग्राम में शुरू करने के लिए जर्मनी के टेक्नीशियनों की मदद प्राप्त की। इस तरह नयी तालीम का फिर से सुसंगठित और समृद्ध बनाने की दिशा में वे जुट गये।

जीवन सन्ध्या

लेकिन आर्यनायकमजी के जीवन का सन्ध्या समय आ पहुँचा था। ७४ साल की उम्र हो गयी थी। मधुमेह की पुरानी बीमारी शरीर में घर किये हुए थी। दो बार अस्पताल की यात्रा करनी पडी थी। दोनों पाँवों के अँगूठे काटने पडे थे, ब्लड शुगर बीच-बीच में बढ जाती थी। चलना फिरना दिन ब दिन कठिन होने लगा था। फिर भी आँखों में वही तेजस्वी ज्योति, वाणी में वही ओज और हृदय में वही अटूट श्रद्धा थी। देश की गिरती नैतिक हालत को देखकर वे कहते थे कि इसको ठीक करने का एक ही तरीका है—नयी तालीम।

शान्तिसेना यानी नयी तालीम

कभी कभी झुंझलाकर वे कहते, खादी, ग्रामोद्योग, हरिजन सेवा, ये सब अलग अलग चलाने की क्या जरूरत है? नयी तालीम चलाओ तो यह सब उसमें आ जाता है। कुछ लोगों को उनका यह आग्रह एकांगी लगता था लेकिन विनोबाजी ने मर्म ठीक समझा था। त्रिविध कार्यक्रम में ग्रामदान, खादी, शान्ति सेना, ये ही तीन नाम हैं। उनमें नयी तालीम का स्थान कहाँ है, ऐसा विनोबाजी से पूछा गया था। उन्होंने जवाब दिया कि नयी तालीम इन तीनों में चीनी की तरह मिली हुई है, वह अलग नहीं है। लेकिन यदि विशिष्ट संकेत ही बनाना हो तो 'शान्ति सेना' यानी नयी तालीम है।

नयी तालीम का काम आर्यनायकम्‌जी के लिए महज एक प्रवृत्ति नहीं थी, बल्कि वह उनका जीवन-कार्य (मिशन) था। गांधीजी के साथ हुआ उनका संवाद उनके चित्त पर अंकित था।

अटूट श्रद्धा और दृढ़ संकल्प

एक बार नयी तालीम के सम्बन्ध में बापू से बात हो रही थी। कहते-कहते बापू कह गये—

"देखो नायकम्, विनोबा से बढ़कर नयी तालीम का हिमायती कौन हो सकता है? लेकिन सम्भव है कि दूसरे जरूरी कामों के कारण वह भी नयी तालीम को छोड़ दें। ऐसी हालत में तुम्हें अकेले ही नयी तालीम चलाने की नौबत आ सकती है। क्या इसके लिए अन्दर से तैयारी है?"

नायकम्‌जी ने जवाब दिया—"बापूजी नयी तालीम मेरे जीवन का अंग बन गयी है। विनोबाजी तो क्या, आप भी उसे छोड़ देंगे तो भी वह मुझ से छूट नहीं सकेगी।" इतनी अटूट श्रद्धा और दृढ़ संकल्प-शक्ति थी उनकी।

—दत्तोबा दास्ताने

श्री एडवर्ड विलियम्स आर्यनायकम् गांधीजी की पीढ़ी के उन लोगों में से थे, जो अपने सार्वजनिक सेवाकार्य के सिवाय दूसरी किसी बात की ओर जीवन भर नजर तक न उठाकर अपने काम में ही लगे रहे।

उनकी दृष्टि में शिक्षण का अर्थ केवल स्कूल चलाना नहीं था, बल्कि मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास था। वस्तुतः शिक्षण में किसी प्रकार की दीवारें होनी ही नहीं चाहिएँ। उसमें सबका समावेश होना चाहिए। जीवन का कोई अंग अछूता नहीं रह सकता। व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास के क्रम में जीवन का छोटा-सा छोटा पहलू भी एक महत्व का अंग है। सामाजिक सन्दर्भ में ही शिक्षण परिपूर्ण और समृद्ध होना है। जो शिक्षा समाज की चिन्ता नहीं करती, उस शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है, वह तो कुछ बौद्धिक जानकारियों के मात्र प्रदर्शन का जरिया बन जाती है, और ज्ञान को बेचनेवाली दूकान हो जाती है। शिक्षा वह है जो समाज की परिस्थितियों में से व्यक्ति का विकास और वृद्धि करे और व्यक्ति को समाज की भलाई के लिए प्रयत्नशील बनाये। श्री नायकम्‌जी शिक्षा के इस स्वरूप के प्रबल समर्थक थे और इसमें रत्तीभर भी न्यूनता को वे बरदाश्त नहीं करते थे।

श्री आर्यनायकम्‌जी की प्रतिभा

श्री आर्यनायकम्‌जी भक्त पुरुष थे। उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गांधी के विचारों का आधार लेकर उसीको कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया। गुरुदेव ने जब शान्ति-निकेतन में बच्चों के शिक्षण के काम में रुचि ली, तब इस काम में अपनी सहायता के लिए उन्होंने श्रीमार्यनायकम्‌जी को चुना। गांधीजी जब शिक्षा के द्वारा समाज की पुनर्रचना की योजना बनाने लगे, तब उन्होंने भी श्री आर्यनायकम जी को ही इस काम के लिए उपयुक्त समझा। सेवाग्राम ने बुनियादी शिक्षा का जो स्वरूप प्रस्तुत किया, वह देश के शिक्षा विकास की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। अनेक लोगों को बुनियादी शिक्षा के प्रति आस्था न होने हुए भी उसका जो प्रभाव समाज पर पड़ता है, उसे वे अस्वीकार नहीं कर सके, और कइयों ने उसका हार्दिक स्वागत भी किया। लेकिन सभी को उस शिक्षा पद्धति से स्फूर्ति और प्रेरणा अवश्य मिली। आज देश में ऐसे अनेक लोग हैं, जिनके लिए सेवाग्राम का जीवन और नयी तालीम के साथ का सम्बन्ध जिन्दगी भर का मधुर और भव्य स्मृति की पूँजी बना हुआ है।

भारत-लंका सद्भावना के प्रतीक

श्री आर्यनायकम्‌जी सिलोन की देन थे, लेकिन कौन उनको 'सिलोनी' कह सकता था। वे भारत के साथ और भारत की समस्याओं के साथ सर्वथा एकरूप हो गये थे। भारत और लंका के बीच मैत्री और सद्भावना निर्माण करने में उनका योगदान काफी महत्व का था और वह यहाँ तक बढ़ा कि लंका में रचनात्मक प्रवृत्ति आरम्भ करने की जिम्मेदारी उन्होंने उठायी थी। श्री आर्यनायकम् दम्पति केवल भारतीय सद्भावना के ही प्रतीक नहीं थे, बल्कि सुदृढ़ धार्मिक सौमनस्य के भी प्रतीक थे। कौन जानता था कि श्री आर्यनायकम् ईसाई थे? सेवाग्राम में उन्होंने जो परम्परा

कायम की थी, उनमें सवधर्म समभाव और समादर का साम्राज्य था, जो शान्ति-निकेतन के उनके पूर्वानुभव से उत्स्फूर्त था। वे इसी माने में ईसाई थे कि वे एक ईश्वर भक्त थे और अपनी अन्तिम साँस तक वे ईश्वर के सन्देश को समझने और उसको चरितार्थ करने में अपनी सारी शक्ति लगाये रहे।

शिक्षा-जगत् में कार्य

श्री आर्यनायकम्‌जी ने अपने लिए जो जीवन-कार्य चुना था, उसके लिए वृत्ति और योग्यता की दृष्टि से वे ही एकमात्र सुयोग्य व्यक्ति थे। उनका प्रारम्भिक शिक्षण, जिसमें अध्यात्म का शिक्षण भी शामिल था श्रीरामपुर कालेज में हुआ, बाकी शिक्षण लन्दन, केम्ब्रिज और कोलंबिया विश्वविद्यालयों में पूरा हुआ। विद्यार्थी-दशा में भी ईसाई छात्र-आन्दोलन के मंत्री के रूप में आपने काम किया था और देश विदेशों में काफी प्रवास किया था। सन् १९२५ में शान्ति-निकेतन में उन पर जो जिम्मेदारियाँ आयी, उनसे उनके जीवन की नींवें पड़ी और गांधीजी के रचनात्मक कार्यकर्ता-परिवार में शामिल होने की उनकी मानसिक तैयारी हो गयी।

गांधीजी के बाद सेवाग्राम और वहाँ का परिवार अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भावना का केन्द्र बना रहा, इसका पूरा श्रेय श्री नायकम्‌जी को है। सन् १९४९ में सेवाग्राम में विश्वशान्ति परिषद हुई थी और उसमें भाग लेने के लिए जितने भी विदेशी मित्र आये थे, सबने सेवाग्राम से अमिट प्रेरणा प्राप्त की। पहले गुरुदेव के सहायक के नाते और बाद में एक शिक्षाशास्त्री के नाते श्री आर्य-नायकम्‌जी ने विदेशों में जो दूर-दूर तक प्रवास किया था, उससे सेवाग्राम के प्रयोगों के बारे में विश्व का ध्यान खींचने में और सम्बन्ध बनाये रखने में काफी मदद मिली और वह सम्बन्ध आगे भी बना रहा। श्री नायकम्‌जी में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी, संकुचित प्रान्तीय भावना नहीं थी, न किसी प्रकार का लुकाव छिपाव था।

स्पष्टवादिता और ऋजुता श्री नायकम्‌जी की विशेषता थी। उन्होंने अपने जीवन कार्य के लिए जिस प्रकार जीवन समर्पण किया था, जो निष्ठा और एकाग्रता रखी थी, वह असाधारण थी। वे सतत उद्योगशील थे, उनके जीवन में सुघड़ता और व्यवस्था थी और उनका अंतःकरण चिरयुवा था। वे हिन्दुस्तानी भाषा के प्रबल समर्थक थे, हिन्दुस्तानी में ही आग्रह के साथ बोलने की हिम्मत उनसे बढ़कर किसी में नहीं थी। उनके लिए व्याकरण कभी बाधक नहीं रहा। आखिर भाषा का प्रयोजन यही तो है कि वह मनुष्य का मनोभाव व्यक्त कर सके।

सेवाग्राम का शैक्षिक परिवार आज श्री नायकम्‌जी के जीवन-कार्य की प्रेरणा का प्रतिनिधि है। वे उसके शिल्पी थे, वे उसके प्रमुख निर्माता थे, वे उसकी नस-नस को पहचानते थे। वे जानते थे कि क्या करना है और सम्पूर्ण चित्र का कौन कैसा अंग है। उनके काम को आगे बढ़ाने और पूर्ण करने से बढ़कर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करनेवाला दूसरा कोई काम नहीं हो सकता।

—राधाकृष्ण

नयी तालीम के लोगों में शायद ही कोई हो जो आर्यनायकम्‌जी के बारे में मुझसे कम जानता हो। वह कहाँ पैदा हुए, कहाँ उनकी शिक्षा हुई, कैसे वह नयी तालीम में आये, आदि बातें अगर कोई पूछे तो मैं नहीं बता सकूँगा। मैं जानता हूँ मुझे ये बातें जानना चाहिए, लेकिन न जाने क्यों मैंने जानने की कभी कोशिश नहीं की। मुझे याद है जिस दिन अनायास यह मालूम हुआ था कि वह लंका के हैं, उस दिन बड़ा आश्चर्य हुआ था।

नयी तालीम और प्रचलित तालीम में भेद

१९५५ की बात है। आर्यनायकम् जी एक दिन के लिए खादीग्राम आये थे। हमलोग बुनियादी शाला चला रहे थे। क्या मैं, और क्या मेरे साथी, कोई भी नहीं था जिसे नयी तालीम का जानकार कहा जा सकता रहा हो। धीरेन भाई ने कोशिश करके आशादेवी और आर्यनायकम्‌जी को बुलाया था ताकि हमलोग जान लें कि नयी तालीम क्या है?

'तुम्हें मालूम है रावण कहाँ का था?'

'लंका का।'

'मैं वहीं का हूँ जहाँ का रावण था।'

इस तरह उन्होंने खादीग्राम के बच्चों के सामने अपना परिचय दिया।

उन्होंने हमलोगों के आगे नयी तालीम पर लम्बा चौड़ा भाषण देने के पहले बच्चों का वर्ग लिया, और चर्चा वर्ग लेने के बाद ही की।

बच्चा पहले, बात बाद को। कोई दूसरा होता तो इस क्रम को उलट देता। लेकिन आर्यनायकम्‌जी ने केवल इतने से नयी तालीम और प्रचलित तालीम के भेद की दिशा स्पष्ट कर दी।

बच्चों के साथ अभिन्नता

आधुनिक शिक्षण में बच्चे का मुख्य महत्व माना गया है। मान्टेसरी ने बच्चे के आदर की बात कही थी, लेकिन मैंने आर्यनायकम् जी को देखा कि वह बच्च को एक पूर्ण मूल्य (वल्यू) मानते थे। उनके लिए बच्चा पूरी साधना का विषय था। वह अपने को अपने सम्पर्क में आनेवाले एक एक बच्चे का अंग बना लेते थे। जिस तरह भक्त भगवान से अभिन्न हो जाता है, शायद कुछ इसी तरह बाबा ने (आर्यनायकम्‌जी का पुकारने का नाम) बच्चा के साथ अभिन्नता साधी थी। उनके सारे दर्शन और सारी शिक्षण-कला का स्रोत यह अभिन्नता ही थी।

यूरोप की यात्रा से लौटने पर कई बार मैंने उन्हें यह कहकर रूस की प्रशंसा करते सुना था कि रूस एक ऐसा देश है जो अपने बच्चों की कद्र करना जानता है। यह कहकर रूस के बच्चा की भारत के बच्चा के साथ तुलना करते करते उनके मन का सन्ताप, और कभी कभी पावन प्रक्षोभ वाणी में उतर आता था। बच्चा उपेक्षा का शिकार हो, वह भविष्य की सम्भावनाओं से वंचित रहे, यह आर्यनायकम् जी को सहन नहीं होता था।

नयी तालीम के उत्कट साधक

गुरुदेव ने बच्चा की कद्र की तो आर्यनायकम्‌जी विश्वभारती में बच्चा के शिक्षक हो गये, बापू ने नयी तालीम द्वारा हर बच्चे के लिए मुक्ति का द्वार खोला तो आर्यनायकम्‌जी नयी तालीम के साधक बन गये। उन्होंने नयी तालीम में जीवन का वह सन्देश पाया जो मानव को भयों और अभावों से मुक्त कर देता है। इसलिए नयी तालीम में मूल्यों की प्रतीति उन्हें सहज ही हुई जो अनेक दूसरे लोगों के लिए एक अत्यन्त कठिन प्रश्न बन जाती है। इसलिए सत्य और अहिंसा से अलग हटी हुई तालीम उनके लिए तालीम ही नहीं थी, नयी तो क्या हो सकती थी? भला आर्यनायकम्‌जी कभी बर्दाश्त कर सकते थे कि राष्ट्र के नाम में, या किसी भी नाम से, विद्यार्थी के हाथ में बन्दूक दी जाय, और सरकार मदद के नाम में कुछ पैसे देकर शिक्षण को अपने पक्षपात-पूर्ण प्रचार का माध्यम बनाये? क्षुब्ध होकर वह चुप रह जा सकते थे, लेकिन जो उनकी नजर में गलत है उसके साथ समझौता नहीं कर सकते थे। शायद इसीलिए कभी कभी उनकी शाप देने की शक्ति भी प्रकट हो जाती थी जो सम्बन्धों में किरकिराहट का कारण बनती थी। सत्य को सम्भीर सत्य का आग्रह रखने से उन्हें संकोच नहीं होता था।

आर्यनायकम्‌जी सम्मान के साथ जीये और तड़प कर गये। गांधीजी ने उनके अन्दर नयी तालीम की जो आग जला दी थी वह जीवन भर कभी बुझी नहीं। सेवाग्राम में जितने शिष्य उनके सम्पर्क में आये उन सबको उन्होंने और आशादेवी ने उस आग की एक-एक चिनगारी दे दी। देश में ऐसी अनेक चिनगारियाँ आज भी जगह जगह मौजूद हैं। लेकिन सबके ऊपर जैसे राख सी जम गयी है। आर्यनायकम्‌जी उन्हें धधकती नहीं देख सके, यह उनकी तड़प थी। लेकिन कौन जाने उनकी तड़प तेजी से इस देश के करोड़ों की तड़प बनती जा रही है और वह दिन दूर न हो जब नयी तालीम एक व्यापक तारक शक्ति का रूप लेकर सामने आये? उस दिन आर्यनायकम्‌जी की साधना पूरी होगी। यह इतिहास की नियति है कि साधक अपनी साधना की सिद्धि नहीं देख पाता। लेकिन उस साधना की साक्षी के रूप में आशादेवी हमारे बीच मौजूद हैं, सन्तप्त हैं, पर तपी हुई हैं। वह देखेंगी, नयी तालीम के दिन आ रहे हैं।

—राममूर्ति

नयी तालीम का एक महान् साधक

श्री आर्यनायकम्‌जी का जीवन सर्वस्व नयी तालीम था। उनका संकल्प था कि जब तक दम में दम है, नयी तालीम का ही काम करना है। लगातार ३० वर्ष तक उनका सारा चिन्तन, सारी शक्ति और सारा ध्यान नयी तालीम के विकास में ही लगा और अन्तिम श्वास तक नयी तालीम की उनकी उपासना अखण्ड रही।

गांधीजी ने नयी तालीम के विचार की उत्पत्ति के बारे में कहते हुए लिखा था 'नयी तालीम मेरी अहिंसा से पैदा हुई है'।

श्री आर्यनायकम्‌जी ने उस नयी तालीम की आत्मा का रक्षण करते हुए वर्षों पहले, अपना व्यावहारिक संकल्प इन शब्दों में प्रकट किया था—

संकल्प

'बापू ने भारत देश को नयी जिन्दगी का मार्ग दिखाने के लिए जो काम शुरू किये, उनमें नयी तालीम का काम खास महत्व रखता है। यही बुनियाद है, जिस पर वे आजाद हिन्द की सुन्दर विशाल और शानदार इमारत खड़ी करना चाहते थे। हमलोग जो नयी तालीम की राह पर थोड़ी दूर तक उनके पीछे चल सके हैं, आज यह संकल्प करते हैं कि जबतक हमारे दम में दम है, इस यात्रा को जारी रखेंगे और अपने जीवन और काम में नीचे लिखे उद्देश्यों को सामने रखकर मंजिल की तरफ बढ़ते रहेंगे

१ तालीम में सत्य और अहिंसा की रूह फूँकना।

२ तालीम को हाथ के काम से, कुदरती वातावरण से और समाजी जिन्दगी से जोड़ना।

३ तालीम के द्वारा सच्ची देशभक्ति और इन्सानी हमदर्दी सिखाना, फिरकापरस्ती (साम्प्रदायिकता) को मिटाना।

४ बचपन से बुढ़ापे तक की उमर की हर सीढ़ी के लिए नयी तालीम का उचित प्रबन्ध करना।

५ बच्चों और सयानों को ऐसे समाज के लिए तैयार करना जिसमें मुकाबिले की जगह सहयोग हो, लूट की जगह इन्साफ हो, जिम्मेदारी के साथ आजादी हो नैतिक तरक्की के साथ आर्थिक तरक्की हो।"

आशा

शिक्षा के क्षेत्र में जो क्रान्ति लाना वे चाहते थे उसके विषय में समाज के कुछ विशिष्ट लोगों के विरोध का सही दर्शन आपको था और एक बार शिक्षकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का उद्बोधन करते हुए आपने निम्न शब्द कहे थे—

'इस समय हमारे देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था श्रेणियों में और परस्पर विरोधी हितों में बँटी हुई है। इसलिए जो शिक्षा इस समाज को जड़मूल से बदलकर एक वर्गविहीन शोषण-मुक्त नये समाज की रचना की तैयारी का दावा रखती है उसका वर्तमान-समाज के सुख और सुविधाओं के उपभोक्ता-वर्ग स्वागत करेंगे, यह आशा हम नहीं रख सकते हैं। इसलिए जबतक समाज के मूल्यांकन में आमूल परिवर्तन या क्रान्ति न हो तब तक इस वर्ग से सम्मति या सहयोग प्राप्त करना कठिन होगा। एक सामाजिक क्रान्ति के बिना यह सम्भव नहीं होगा। और हमारे देश में आज कौन ऐसा भूमिहीन किसान या मजदूर है जो नहीं चाहता कि उसके लड़के और लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिले जिससे समाज के सुख और सुविधाओं के, और सम्मान के द्वार उनके लिए खुल जायें?"

वतमान तत्र और सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए आपने कहा था—

भारतवर्ष ने स्वतत्रता की जो लडाई लडी उसका उद्देश्य था कि वह अपनी सस्कृति का विकास करे और अपनी प्रतिभा के अनुकूल एक शिक्षा प्रणाली के द्वारा देश का निर्माण करे। स्वतत्रता मिलने के दस साल पहले काग्रेस-मत्रियो और जन-सेवको के सामने एक चुनौती के रूप म बुनियादी शिक्षा रखी गयी थी। विनोबाजी कहते हैं कि स्वतत्रता मिलते ही जैसे अग्रजी झण्डे को हटाकर भारतीय झण्डा लगाया गया उसी प्रकार शिक्षा क क्षत्र म भी आमूल परिवतन होना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं हुआ? और स्वतत्रता प्राप्ति के बाद विकास की प्रगति इतनी धीमी क्यो हो गयी?

समाज की जसी सामाजिक आर्थिक स्थिति होती है उसीके अनुसार शिक्षा का ढाँचा होता है। हमने जो आर्थिक सामाजिक ढाँचा उत्तराधिकार म पाया है वह वग प्रणाली पर आधारित है और इसलिए शिक्षा का ढाँचा भी ऐसा है कि उसका लाभ खास वग के लोगो को ही मिलता है। इसस यह प्रकट होता है कि अपनी अत्यन्त महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या को हल करने में हमारी कितनी आन्तरिक कमजोरी है। हमारे राष्ट्रपति प्रधान मत्री और देश के प्राय सभी प्रमुख शिक्षा शास्त्रियो न वतमान प्रणाली का तिरस्कार किया है और तुरत परिवतन की माँग की है। दिसम्बर ५३ में कल्याणी में काग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमें एक जोरदार प्रस्ताव-द्वारा माँग की गयी कि बुनियादी ढग पर विश्व विद्यालय तक की सारी शिक्षा का पुनगठन किया जाय। प्रतिदिन बढनेवाली बकारी की समस्या और इससे सम्बन्धित विद्यार्थियो म अनुशासनहीनता की समस्या खतरे के चिह्न हैं। इनके लिए हम कुछ करते क्यो नहीं?

'हम प्रभावशाली ढग पर कुछ नहीं कर पाते ह उसका कारण यह है कि देश के कारबार की बागडोर जिस शिक्षित वर्ग के हाथो म ह वह एसी सामाजिक क्राति नहीं चाहता है जसी की बुनियादी शिक्षा म अतनिहित है। शहर में रहनेवाले लोग गाँवो की आवश्यकताओ मे कोई सहानुभूति नहीं रखते जबतक कि उनके बाल बच्चे पुरानी शिक्षा पाकर ऊचे वेतनवाले पद प्राप्त कर सकते ह। राज्यो के अधिकारी और मत्रीगण बुनियादी शिक्षा की थोडी-बहुत योजना प्राय दिल से चालू करते हैं और अपने बच्चो को उन्हीं पुराने ढग के खर्चीले स्कूलो में भेजते हैं जिनका लाभ सिफ धनी वग ही उठा सकता है। बुनियादी शालाओ को गरीबो की शाला समझकर उनसे वसा ही व्यवहार किया जाता है अर्थात वगवादी शिक्षा का ही एक स्वरूप और उन्हें भविष्य का मार्ग मानकर सम्माननीय स्थान देने की बात तो अलग रही इन स्कूलो के साथ दूसरे स्कूलो के समान व्यवहार भी नहीं किया जाता। मध्यमवग के भौतिकवाद और स्वाथ भावना ने इस बुनियादी शिक्षा की योजना को बहुत धक्का पहुचाया है। ऐसी स्थिति को राष्ट्र अधिक समय तक बर्दास्त नहीं कर सकता।

अभिमान

बुनियादी शिक्षा पर अनेक प्रकार के आक्षेप और प्रहार होते रहे। कुछ लोगो न कहा कि वह गरीबो की शिक्षा है कुछ लोग मानते थ कि वह राष्ट्रीय शिक्षा ही नहीं है।

लेकिन श्री आयनायकम् जी का उत्तर मार्मिक है—

नयी तालीम गरीब जनता के बच्चो की शिक्षा मानी जाती है यह हमपर कोई अभियोग नहीं है यह तो हमारे अभिमान का विषय है। क्योंकि हमारा राष्ट्र गरीब है। इसलिए वतमान भारत में सच्चा राष्ट्रीय शिक्षा गरीबो की शिक्षा ही होनी चाहिए। स्वाभिमानी स्वावलम्बी गरीबी में कोई अपमान या लज्जा नहीं है गौरव है। राष्ट्रीय नताओ से हमारा निवेदन इतना ही है कि नयी तालीम को गरीबो की शिक्षा जरूर मानें लेकिन सिफ प्राथमिक शिक्षा नहीं मानें। गाधीजी न इसे राष्ट्रीय शिक्षा के एक सम्पूर्ण कायक्रम के तौर पर ही राष्ट्र के सामने रखा था।

नया दर्शन

सन् १९५१ में विनोबाजी न भूदानयज्ञ शुरू किया और वह ५५ ५६ तक ग्रामदान के रूप म विशाल और गहरा रूप लेने लगा था। श्री आयनायकमजी न

विनोबाजी की पदयात्रा में भाग लिया और देखा कि नयी तालीम का नया और व्यापक क्षेत्र खुल गया है। श्री नायकम्‌जी की नम्रता की यह पराकाष्ठा ही है कि विनोबा के साथ की अपनी पदयात्रा का उल्लेख करते समय कहते हैं—'मैं विनोबाजी के उस पारिव्राजक ग्रामविश्वविद्यालय का शिक्षार्थी रहा।'

नये सन्दर्भ का विश्लेषण करते हुए श्री नायकम्‌जी ने लिखा था—

"मानवता का पूर्ण और सच्चा विकास ऐसे वातावरण में ही हो सकता है जहाँ किसी प्रकार का शोषण, अन्याय या असत्य न हो जहाँ प्रत्येक मनुष्य के मुक्त विकास के लिए समान सुयोग हो, मानव और मानव के बीच जहाँ परस्पर प्रेम और विश्वास हो और जहाँ समाज का जीवन सहयोग के सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित हो। विश्व और भारत के इतिहास में हमने बार बार यह पाया है कि जब जब शिक्षक शिक्षा के इस सच्चे ध्येय को भूल जाते हैं, तब तब समाज पथ भ्रष्ट हो जाता है, और समाज के जीवन का नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दर्जा नीचे गिरता है।

'नयी तालीम की शुरुआत से ही हमारा दावा यह रहा है कि नयी तालीम शिक्षा में एक अहिंसक क्रान्ति है, अहिंसक समाज रचना का एक साधन है। यह नयी तालीम का ही दावा नहीं है, शिक्षा में काम करनेवाले तथा शिक्षा के बारे में सोचनेवाले सभी यह मानते हैं कि सच्ची शिक्षा वही है, जो मानव समाज में द्वेष, भेद-बुद्धि और संघर्ष के स्थान में प्रेम, मैत्री और सहकार की भावना का विकास करे।

'विनोबाजी की भूदान यात्रा एक पारिव्राजक ग्रामविश्वविद्यालय है। प्रतिदिन नये नये ग्रामों में इस विद्यालय का अध्ययन चलता है। इस ग्रामविश्व-विद्यालय में मैं ११ महीना के लिए शिक्षार्थी रहा और इस अवधि में मुझे नयी तालीम का नया दर्शन मिला।

'हमारे लिए आशा और उत्साह की बात यह है कि भारत की जनता विनोबाजी की बात सुन रही है और जवाब भी दे रही है। आज ४२ लाख एकड़ भूमि और हजारों ग्रामदान हुए हैं। इसका अर्थ है नयी तालीम की विचार धारा देश में प्रवाहित हो रही है और देशवासियों का हृदय-स्पर्श कर रही है। नयी तालीम का क्षेत्र तैयार हो रहा है।

श्रद्धांजलि

आज श्री आर्यनायकम्‌जी नहीं रहे। लेकिन महान् विरासत हमारे लिए छोड़ गये हैं। नयी तालीम के पीछे उनकी महान् तपस्या रही है। उस तप फल को हम व्यर्थ नहीं, उनकी यह निष्ठा हममें जागृत हो यही उनकी पुण्य स्मृति में हमारी कामना है। ●

स्व० श्री ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम् जी के निधन पर शोक प्रदर्शित करने एवं उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए गांधी स्मारक निधि की ओर से एक शोक सभा दि. २९-९-६७ को सायं ६-०० बजे गांधी स्मारक संग्रहालय में आचार्य कृपालानी जी के सभापतित्व में हुई। इसमें दिल्ली शहर की सभी रचनात्मक संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले एवं अन्य सम्बन्धित व्यक्ति काफी संख्या में उपस्थित थे। आचार्य कृपालानी जी के भाषण के पश्चात् निम्न प्रस्ताव सब लोगों ने खड़े होकर पारित किया व दो मिनट के मौन के बाद सभा विसर्जित हुई।

"यह सभा देश की तालीमी दुनिया में गांधीजी की रहनुमाई में नयी राह खोजनेवाले अगुआ और अपने उद्देश्यके लिए अपने को पूरी तरह खपाने वाले श्री ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम् के निधन पर अपना गहरा शोक जाहिर करती है। श्री आर्यनायकम् ने सेवाग्राम को अपना घर बनाकर नयी तालीम के उसूल को सफल करने में सारा जीवन अर्पित किया और दुनिया के सामने नये मानव के निर्माण का स्पष्ट रास्ता दिखाया।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि उनके बड़े परिवार के हम सब लोगों को आर्यनायकम्‌जी के स्वप्न को साकार करने की शक्ति और भक्ति दें। हमारी उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी।"

बुनियादी तालीम के मूल सिद्धान्त

•

स्व० आर्यनायकम्

'गांधीजी के कार्यक्रम में एकता' पर भाषण करते हुए एक बार आचार्य कृपालानीजी ने कहा था कि गांधीजी हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में पूरी क्रान्ति पैदा करना चाहते हैं और इस महान क्रान्ति के राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक आदि भिन्न भिन्न पहलुओं में एक दूसरे के साथ कितना सामंजस्य है। उन्होंने बतलाया था कि इस क्रान्ति का उद्देश्य एक ऐसे समाज की सृष्टि करना है जो मौजूदा समाज से भिन्न होगा। इस समाज की बुनियाद में सत्य, अहिंसा और इन्साफ के आदर्श होंगे।

हमारे सामने सवाल यह है कि मौजूदा साधनों से इस नये समाज की सृष्टि एक नये किस्म के व्यक्ति के जरिये ही हो सकती है और ये नये किस्म के व्यक्ति एक नयी पद्धति के जरिये ही तैयार किये जा सकते हैं। इस तरह गांधीजी कदम-ब-कदम चलकर राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम तक पहुँचे थे और उन्होंने उसे देश के सामने रखा था।

उन्होंने राजनीतिक क्रान्ति के अपने कार्यक्रम को सत्य और अहिंसा के जरिये शुरू कर उसके साथ खादी के द्वारा आर्थिक क्रान्ति के कार्यक्रम को जोड़ दिया। उसके बाद हरिजन आन्दोलन की बड़ी भारी लहर उठी, जिसने सामाजिक क्रान्ति के बीज बो दिये। उसके बाद अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ' का जन्म हुआ, जिसने देहाती दस्तकारी के जरिये आर्थिक क्रान्ति का कार्यक्रम रख दिया। अन्त में सीढ़ी की सबसे ऊँची पायरी के रूप में या अपने जीवन के श्रेष्ठ तत्वज्ञान के रूप में उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी पुनःसंगठन का कार्यक्रम पेश किया, जो इन सब भिन्न भिन्न पहलुओं को एक में मिला देता है।

तब सवाल यह पैदा होता है कि तालीम की जो नयी योजना नये किस्म के व्यक्तियों की सृष्टि करना चाहती है, उसके बुनियादी उसूल या आधारभूत विशेषताएँ क्या हैं?

गांधीजी ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की सम्पूर्ण योजना की मुख्य बात 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' नामक पुस्तक की भूमिका में स्वयं बतला दी है। वे कहते हैं, उसका अधिक यथार्थ परन्तु बहुत कम आकर्षक वर्णन होगा— देहाती दस्तकारी के जरिये देहाती राष्ट्रीय शिक्षा। देहाती शिक्षा में नाममात्र की ऊँची या अंग्रेजी शिक्षा का समावेश नहीं होता। 'राष्ट्रीय' का मतलब सत्य और अहिंसा है और 'देहाती दस्तकारी के जरिये' का अर्थ यह है कि योजना तैयार करनेवाले लोग शिक्षकों से आशा करते हैं कि वे अपने गाँव के देहाती बालकों को इस ढंग से तालीम दें कि जिससे उनमें तमाम छिपी हुई शक्तियों का विकास, किसी बाहरी दबाव या दस्तन्दाजी से अछूते वातावरण में, किसी चुनी हुई देहाती दस्तकारी के द्वारा हो सके। इस तरह से विचार करने पर यह योजना तालीम के क्षेत्र में क्रान्तिकारी साबित होगी। यह किसी भी अर्थ में पश्चिम से लायी हुई चीज नहीं है।

नगर सम्बन्धी या शहराती की तुलना में देहाती पर जोर दिया गया है। भारतीय राष्ट्र गाँवों में रहता है, इसलिए राष्ट्र के बालकों के लिए निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा का रूप देहाती होना जरूरी है। ध्यान देने लायक एक खास बात यह भी है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध बुनियाद से ही गाँवों से है, इस लिए भी हमारी शिक्षा का रूप देहाती ही होना चाहिए। पिछले दिनों में इस मरती हुई सभ्यता को सजीव शिक्षण-

सस्थाओ के जरिये फिर से जीवित रखने की कोशिश जरूर की गयी है। इस कोशिश ने आश्रमो, राष्ट्रीय विद्यापीठो और गुरुकुलो का रूप धारण किया। परन्तु इन सस्थाओ ने प्रचलित शिक्षा पद्धति के साथ अपना सम्बन्ध पूरा पूरा न तोडा, यानी ये सस्थाएँ जिस तरह की क्रान्ति करना चाहती थी उसका रूप बुनियादी न था। वह पुराने रूप और नये आदर्श का मेल था। यही सबब है कि असली तह तक न पहुँच सकने के कारण उनकी कोशिशें पूरी पूरी सफल न हुई। क्योकि उन्होने भीतरी मकसद को छोडकर बाहरी रूप पर ध्यान दिया। पाठ्यक्रम देहाती जिन्दगी का कुदरती विकास न होकर बाहर से लादी हुई चीज थी। उसकी बुनियाद म दस्तकारी या उद्योग धन्धा का नहीं दिया गया था।

यहाँ इस बात को समझ लेने की जरूरत है कि बुनियाद में दस्तकारी या उद्योग धन्धेवाली तालीम से गाधीजी का मतलब क्या है। इस पद्धति की शिक्षा के लिए आवश्यक है कि जो उद्योग धन्धे आज केवल यत्रवत सिखाये जाते हैं, वे वैज्ञानिक ढग से सिखाये जायें, यानी बच्चो को यह समझाया जाय कि कौन-सी क्रिया किसलिए की जाती है। तभी सफलता मिल सकेगी।

दस्तकारी या उद्योगधन्धो के जरिये शिक्षा देना तालीम के इतिहास में कोई नयी बात नही है। पेस्टालाजी के समय से लेकर शिक्षा विशारदो ने दुनिया के हर एक हिस्से में बार-बार ऐलान किया है कि वास्तविक और पूरी शिक्षा सिर्फ दस्तकारी के जरिये ही दी जाय और कुछ लोगो ने इस उसूल पर किसी हद तक अमल भी किया है।

लेकिन दूसरो से गाधीजी के विचार में यह अन्तर है कि वे इस शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त को उसके आखिरी नतीजे तक ले गये हैं। क्योकि उन्होने सिर्फ यही नहीं कहा कि बच्चो की सारी शिक्षा किसी उद्योग धन्धे के जरिये दी जाय, बल्कि यह भी कहा है कि यह शिक्षा स्वावलम्बी भी हो। नयी तालीम के किसी दूसरे पहलू की उतनी नुक्ताचीनी नहीं हुई है, जितनी उसके स्वावलम्बी कहे जानेवाले पहलू की हुई है। इसलिए यह समझना जरूरी है कि स्वावलम्बी शब्द का क्या अर्थ है और वह हमारी शिक्षा योजना का मुख्य अग क्यो है।

इस तरह की तालीम के पूरे हिस्से पर गौर किया जाय तो वह स्वावलम्बी जरूर हो सकती है और जरूर होना भी चाहिए, दरअसल उसका स्वावलम्बीपन उसकी वास्तविकता की बडी कसौटी है। उसके स्वावलम्बीपन का तालीमी और नैतिक मूल्य, उसकी अधिक-से अधिक आर्थिक पैदावार की अपेक्षा से कही ज्यादा महत्वपूर्ण है।

अन्त में हमें यह देखना होगा कि गाधीजी के मनुष्य-जीवन के समूचे तत्वज्ञान और अहिंसा के साथ इस शिक्षा-योजना का तालुक किस तरह है। स्वावलम्बी शिक्षा की भावना अहिंसा की मनोभूमि से अलग नहीं की जा सकती जब तक हम यह याद नही रखते कि इस नयी योजना का उद्देश्य एक ऐसा जमाना पैदा करना है जिसमें जातिद्वेष और फिर्केबन्दी का झगडा बिलकुल न रहने पाये। गरीबो और अमीरो का भेद जबतक मौजूद हो तबतक हम इस योजना को सफल बना नहीं सकते। गरज यह है कि हमें अहिंसा में विश्वास रखकर इस काम में लगना चाहिए। इस योजना की रचना एक ऐसे दिमाग ने की है जो अहिंसा को तमाम बुराइयो की अचूक दवा समझता है।●
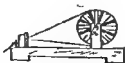
हिन्दी चाहिए—अँग्रेजी चाहिए

जब कुछ दिन पहले बिहार के शिक्षामंत्रीजी ने घोषणा की कि हाई और हायर सेकेण्डरी की परीक्षाओ में जो विद्यार्थी केवल अँग्रेजी मे फेल होगे उन्हें फेल नहीं माना जायगा, और आगे इन परीक्षाओ मे अँग्रेजी अनिवार्य न होकर वैकल्पिक विषय हो जायगी, तो ऐसा लगा कि मन्त्रीजी ने हजारो विद्यार्थियो की मुक्ति का द्वार खोल दिया। चारो ओर मन्त्रीजी का जय जयकार होने लगा। बिहार को हिन्दी बनाम अँग्रेजी की लडाई मे पहली विजय प्राप्त करने का श्रेय मिला। हमने भी कहा 'शाबाश बिहार'।

घोषणा हुई। कुछ दिन बीते। भागलपुर से खबर आयी कि विश्वविद्यालय ने अँग्रेजी मे फेल विद्यार्थियो को पास मानकर भर्ती करना अस्वीकार कर दिया है।

कुछ दिन और बीते। मगध विश्वविद्यालय ने भागलपुर का साथ दिया। जो अँग्रेजी नहीं जानता वह किस मुँह से विश्वविद्यालय मे पढेगा?

अब पटना से खबर आयी है। पटना बिहार की राजधानी है। पटना का बडा विश्वविद्यालय भी अँग्रेजी न जाननेवालो को जगह नहीं देगा।

विश्वविद्यालयो का कहना है कि भीतरी व्यवस्था म व 'स्वायत्त' हैं, उन्हे अधिकार है कि पढाई-लिखाई के मामले म निणय करन की उन्ह पूरी स्वतन्त्रता है। उन्हे इस बात का डर है कि अगर अँग्रेजी नही रहेगी तो उनकी पढाई का स्टैण्डर्ड गिर जायगा, और इससे उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगगा। हिन्दी म अँग्रेजी-जैसी अच्छी किताबे कहाँ हैं? विज्ञान की पढाई कैसे होगी? बडे प्रोफेसरो को हिन्दी में बोलने का अभ्यास कहाँ है? विद्यार्थी अँग्रेजी नही जानेगे तो वे ऊँची नौकरियो की परीक्षाओ म कैसे बैठेंगे? इस तरह के तमाम सवाल विश्वविद्यालयो की ओर से उठाये जाते हैं, और थोडी देर के लिए ऐसा लगने लगता है कि सचमुच अँग्रेजी की माँग शिक्षा को चौपट होने से बचाने के लिए की जा रही है। कितना ऊँचा देश-प्रेम है! जो लोग अँग्रेजी के कारण विद्यार्थियो को फेल होने से बचाना चाहते हैं, और अँग्रेजी को वैकल्पिक रखना चाहते हैं उनका भी यही कहना है कि अँग्रेजी हजारो विद्यार्थियो को निराशा का शिकार बना रही है, उनका समय, शक्ति, धन, सब बरबाद कर रही है और सबस बुरा तो यह है कि दूसरे विषयो का स्तर उठने नहीं दे रही है क्योकि विद्यार्थी अँग्रेजी को ही लेकर सिर मारते रह जाते हैं।

हिन्दी चाहिए विद्यार्थियो की मुक्ति के लिए। अँग्रेजी चाहिए शिक्षा की रक्षा के लिए। यह है हिन्दी बनाम अँग्रेजी का सवाल।

हिन्दी का समर्थन सरकार कर रही है अँग्रेजी का समर्थन विश्वविद्यालय कर रहे हैं। बिहार के शिक्षामन्त्रीजी ने अपने एक सार्वजनिक भाषण म कहा है 'विश्व-विद्यालयो से यह अपेक्षा नहीं है, कि सरकार की घोषित नीति का विरोध करें।

तारीफ यह है कि विश्वविद्यालय सरकार के हैं, पैसेऔर सरकार के पैसे चलते हैं।
लेकिन जिसे सरकार 'विरोध' समझती है उसे विश्वविद्यालय 'स्वतंत्रता' समझते है।

अब हिन्दी अँग्रेजी की लड़ाई सरकार और विश्वविद्यालय की लड़ाई बन गयी है। ऐसा लगता है जैसे इस लड़ाई में शासक शिक्षक से आगे है। शासक जनता की बात सोच रहा है लेकिन शिक्षक? हेडमास्टरो और प्रिंसिपलों ने अँग्रेजी को वैकल्पिक बनाने का समर्थन किया है।

शिक्षा-आयोग, राज्यों के शिक्षामंत्री, राजनीतिक दल, सबने निर्णय किया है कि नीचे से ऊपर तक पूरी शिक्षा मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा मे दी जाय। नयी सरकारो से यह बहुत बडी आशा है कि चलो, देर से ही सही, अब हमारी शिक्षा और शायद हमारे विद्यार्थियों का दिमाग भी, अँग्रेजी की गुलामी से मुक्त होगा।

हम नही सोचते थे कि इस तरह हमारे विश्वविद्यालयों में अँग्रेजी का नारा बुलन्द किया जायगा। लेकिन उन्होंने सिद्ध कर दिया कि हमारे देश में मोटी किताबों, ऊँची डिग्रियो और दिमाग के दकियानूसीपन का सह-अस्तित्व है।

क्या यह सच नही है कि अँग्रेजी के पीछे विशेषाधिकार की पुकार है। 'शिक्षा का स्तर'-जैसे मोहक नारे की आड़ में अँग्रेजी-शिक्षित समुदाय हिन्दी बोलने और समझनेवाली जनता को उसके सहज स्वाभाविक अधिकारों से अलग रखकर स्वराज्य के अवसरो को अपने लिए अपने हाथ मे दबाकर रखना चाहता है। यही काम अँग्रेजो ने किया, यही काम अब अँग्रेजियत के गुलाम अँग्रेजी-परस्त लोग कर रहे है। अँग्रेजो ने भारत को आधुनिक बनाने का भ्रम फैलाया था, अब विज्ञान और टेकनालाजी की लालच दिखायी जा रही है।

एक बात जान लेनी चाहिए—अगर अब तक किसी ने न जाना हो तो जान ले कि हिन्दी, और उसके साथ दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं का सवाल, जनता के अधिकारों का सवाल है, भारतीय लोकतंत्र के विकास का सवाल है। हमारे विश्वविद्यालय इस सवाल पर यह रुख अपनाकर अपने को लोक-जीवन से अलग कर रहे है। तब अगर यह कहा जाय कि इन नामधारी विद्या के आलयो मे सचमुच विद्या का लय हो रहा है तो उन्हें शिकायत नही होनी चाहिए। जो जानते है उन्हे मालूम है कि विश्वविद्यालयो मे ज्ञान, शोध, प्रयोग आदि बडे नामो की आड मे क्या हो रहा है?

बिहार किसी समय बुनियादी शिक्षा में देश में सबसे आगे था। उस समय भी विश्वविद्यालयों ने यही कहा था—सरकार की नीति के खिलाफ—कि उत्तर बुनियादी के सफल विद्यार्थी भी तभी भर्ती किए जायँगे जब दुबारा परीक्षा लेकर देख लिया जायगा कि उनका सन्तोषजनक बौद्धिक विकास हुआ है। विश्वविद्यालयों के हठ का जवाब सरकार नही दे सकी, और बुनियादी शिक्षा इतनी आगे बढ़कर भी टूट गयी। देखना है इस बार सरकार क्या करती है?

कुछ श्रव्य-दृश्य-उपकरण-२

•

वंशीधर श्रीवास्तव

साधारणतया शिक्षण के उपकरणों को दो वर्गों में बांटा जाता है (१) दृश्य उपकरण, श्रव्य उपकरण और (२) श्रव्य-दृश्य उपकरण। ऐसे उपकरण जिनसे पाठ्य-विषय अधिक सरलतापूर्वक समझा-समझाया जाता है दृश्य उपकरण कहलाते हैं। ऐसे उपकरण जो विषय को स्पष्ट बनाने के लिए छात्र की श्रवण-इन्द्रिया को प्रयोग में लाते हैं, श्रव्य उपकरण कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपकरण हैं जो श्रव्य-दृश्य दोनों ही होते हैं और जिनके उपयोग-द्वारा छात्र एक ही साथ आंख और कान दोनों की सहायता से सीखता है। सवाक् चित्रपट और टेलीविजन आदि ऐसे ही उपकरण हैं। ब्लैकबोर्ड पर ऐसा ही साधन है जिसके माध्यम से दी गयी व्याख्या को ग्रहण करने के लिए छात्र को अपनी श्रवणेन्द्रियां और चक्षुरिन्द्रिय, दोनों का प्रयोग करना पड़ता है।

यदि कक्षा में वास्तविक पदार्थ के माध्यम से ज्ञान दिया जाय तो सर्वोत्तम है। कृषि-विज्ञान और उद्योग में प्रयोग किये जानेवाले अधिकांश औजारों का ज्ञान इसी पद्धति से देना चाहिए। परन्तु यदि वास्तविक यन्त्रों अथवा वस्तुओं का उचित उपयोग न किया जा सके अथवा उनके प्रदर्शन से बालकों का ध्यान मूल विषय से हट जाय तो उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। घोड़ा अथवा गाय पढ़ाने के लिए कक्षा में घोड़ा या गाय लाना ठीक नहीं है। यदि आवश्यक हो तो कक्षा ही पशुशाला में ले जायी जाय।

प्रतिमान अथवा मॉडल

कक्षा में जिन पदार्थों अथवा वस्तुओं को मूलरूप में नहीं दिखला सकते उनका प्रतिमान (मॉडल) दिखाया जाता है। जैसे रेल के इंजन अथवा हवाई जहाज का मॉडल। इन्हें कक्षा में नहीं लाया जा सकता। प्रतिमानों के उपयोग का एक दूसरा लाभ यह भी है कि इनमें मूल पदार्थ के उस भाग को दिखाया जा सकता है जो वास्तविक पदार्थ में नहीं दिखलाई पड़ते—जैसे मनुष्य के प्रतिमान में रक्त परिभ्रमण की क्रिया अथवा आमाशय के भाग आदि। इसी प्रकार प्रतिमानों की सहायता से कुछ ऐसी वस्तुओं को जो छोटी होने से आंखों से दिखाई नहीं देती हैं बड़ा बनाकर दिखाया जाता है। जैसे चींटी अथवा मक्खी अथवा मच्छर का बड़ा बनाया हुआ मॉडल। अगर किसी प्राणी अथवा वस्तु के किसी विशेष अंग अथवा भाग का अध्ययन करना है, तो उसी भाग का प्रतिमान बनाया जा सकता है इससे विद्यार्थियों का ध्यान पूर्णत अध्ययन-वस्तु की ओर ही रहता है।

चित्र, छायाचित्र और चलचित्र

किसी विषय की व्याख्या के लिए चित्रों का उपयोग बहुत प्राचीन काल से हो रहा है। यह ठीक है कि शिक्षण की दृष्टि से उनका मूल्य वास्तविक पदार्थों और प्रतिमानों से कम है, परन्तु व्यवहार की दृष्टि से वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वे आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। अधिक सरलतापूर्वक उनकी सुरक्षा की जा सकती है। उनका अधिक व्यापक प्रयोग सम्भव है। भाषा

इतिहास और भूगोल के अध्ययन में उनसे पर्याप्त सहायता ली जा सकती है।

छायाचित्र—इसके अन्तर्गत स्लाइड्स, फिल्म स्लाइड्स आदि आते हैं। एपीडायस्कोप की सहायता से इन्हें पर्दे पर बड़ा करके दिखाया जा सकता है।

चलचित्र—आजकल सिनेमा सबसे बड़ा मनोरंजन का साधन है। इसका उपयोग शिक्षा के लिए भी हो सकता है। यूरोप और अमेरिका के प्रगतिशील देशों के विद्यालयों में इनका खूब प्रयोग होता है। हमारे देश में अभी चलचित्रों का बहुत कम प्रयोग होता है—विशेषत कक्षा-शिक्षण के लिए शिक्षोपकरण की भाँति। चलचित्र बहुत उपयोगी साधन सिद्ध हुआ है क्योंकि इससे बालक को वास्तविकता का बोध होता है। चलचित्र के द्वारा शताब्दियों पहले की और विभिन्न जगहों में घटित घटनाएँ कक्षा में दिखाई जा सकती हैं।

इस उपकरण के माध्यम से देर तक चलनेवाली क्रियाओं को थोड़ी देर में और अत्यन्त शीघ्रता से होने वाली घटनाओं को धीमी गति से दिखाया जा सकता है। इनकी सहायता से किसी वस्तु के आकार को आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा करके दिखा सकते हैं। इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों के शिक्षण को इसकी सहायता से बहुत रोचक बनाया जा सकता है।

रेखाचित्र-मानचित्र-ग्राफ और चार्ट

विषय सम्बन्धी ज्ञान का स्पष्ट करने के ये भी अत्यन्त उपयोगी साधन हैं। चार्टों की सहायता से कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण ही नहीं होता, बल्कि पाठ रुचिकर भी हो जाते हैं। आँकड़ा आदि के सुव्यवस्थित ढंग से दिखलाने के लिए ग्राफों का बड़ा उपयोग है।

पोस्टर

आजकल विज्ञापनों के लिए पोस्टरों का बहुत उपयोग हो रहा है। पोस्टरों को विज्ञापन-चित्र कहते हैं। व्यवसायी अपनी वस्तुओं की बिक्री के लिए, सरकार अपनी योजनाओं से जनता को परिचित कराने के लिए, विज्ञापन चित्रों का प्रयोग करती है। विज्ञापन चित्रों में चित्र इस ढंग से बनाये जाते हैं, शीर्षक ऐसी भाषा में लिखे जाते हैं कि देखनेवाले का ध्यान अनायास अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। यही उनकी विशेषता है।

ग्रामोफोन, रेडियो और टेलीविजन।

अभिनय—मूक अभिनय, छाया नाटक, कठपुतली, एकांकी नाटक, और नाटक।

संग्रहालय और प्रदर्शिनी

पर्यटन और यात्रा।

श्यामपट्ट

शिक्षण के साधनों में श्यामपट्ट सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। श्यामपट्ट कक्षा का अभिन्न अंग बन गया है उसे अध्यापक का सबसे बड़ा सहायक कहा गया है। अपने कितने ही उलझे हुये विचारों को अध्यापक श्यामपट्ट के ही सहारे सुलझाता है। इसकी सहायता से अध्यापक किसी भी विषय को रोचक और सहजग्राह्य बना देता है, श्यामपट्ट के बिना हम सफल अध्यापन की कल्पना नहीं कर पाते। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सबसे सस्ता साधन है और बिना किसी प्रकार की अतिरिक्त कठिनाई के उपस्थित किये ही पाठ के विकास को महत्वपूर्ण सहयोग देता है। शिक्षण के बीच-बीच में प्रोजेक्टर का प्रयोग तभी सम्भव है जब कमरे में अँधेरा कर दिया जाय। यहाँ तक कि चित्र अथवा मॉडल को कक्षा में खोलने और उसके प्रदर्शन में थोड़ा व्यवधान पड़ता ही है। परन्तु श्यामपट्ट ही ऐसा उपकरण है जिसका उपयोग पाठ की प्रस्तावना से पुनरावृत्ति तक उचित स्थान पर प्रभावकारी ढंग से किया जा सकता है। पाठ के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग के विषय के प्रस्तुतीकरण में सूक्ष्म और अस्पष्ट तथ्यों को मूर्त और स्पष्ट रूप देने के लिए चित्र, स्केच, डायग्राम, चार्ट, ग्राफ आदि अत्यन्त उपादेय साधन हैं। इन सभी साधनों का उपयोग यदि श्यामपट्ट के माध्यम से किया जाय अर्थात् अध्यापक यदि इन्हें श्यामपट्ट पर खींचे और बनावे तो उसका मूल्य बहुत बढ़ जाता है और वे पाठ के विकास का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

इसी तरह पाठ के अन्तिम चरण में अर्थात् पुनरावृत्ति करते समय पाठ के संक्षेप को श्यामपट्ट पर अंकित कर देने से पाठ सहज ग्राह्य बन जाता है। इस पाठ-संक्षेप को पाठ-संकेत का अभिन्न अंग होना चाहिए। उस अध्यापक के प्रति विद्यार्थी श्रद्धा करने लगते हैं जो अपने कथित तथ्यों और सिद्धान्तों को श्यामपट्ट के माध्यम से सरल

ग्रौर ठोस बना देता है। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है कि बालक तो अध्यापक के चित्र श्यामपट्ट के आईने में देखते हैं, जितना प्रभावपूर्ण श्यामपट्ट का कार्य होगा उतना ही सफल अध्यापक होगा। वह तत्त्व जिसका विद्यार्थी के निर्माण में सबसे बड़ा हाथ है—अध्यापक का व्यक्तित्व है और शिक्षा के श्रव्य-दृश्य उपकरणों में ऐसा कोई उपकरण नहीं है जो अध्यापक के व्यक्तित्व को बालक के व्यक्तित्व के इतना अधिक घनिष्ट सम्पर्क में लाये। इसका कारण यह है कि इसमें तथ्यों के स्पष्टीकरण की क्रिया यन्त्रवत् नहीं बनती। चलचित्र आदि साधन जब एक बार उन्नतिशील हो जाते हैं तब विद्यार्थियों की रुचि-भिन्नता की उपेक्षा करते हुए एक गति से चलती जाती हैं।

श्यामपट्ट के प्रयोग के विषय में सबसे बड़ा व्यवधान है कलात्मक क्षमता का। प्रत्येक अध्यापक में इतनी कलात्मक क्षमता नहीं होती कि वह श्यामपट्ट पर इच्छानुसार चित्र, रेखाचित्र, नक्शा आदि बना सके। अभ्यास से कुछ काम चल जाता है परन्तु प्रभावपूर्ण सफलता नहीं मिलती। इस कठिनाई को दूर करने के साधन नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) जिन मानचित्रों, रेखाचित्रों आदि को श्यामपट्ट पर बनाना हो उन्हें कार्ड-बोर्ड अथवा हार्डबोर्ड अथवा प्लाईवुड में पहले से ही काट लीजिए और इनकी सहायता से श्यामपट्ट पर खड़िया से रूपरेखा बना दीजिए। इस विधि से नक्शों के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के रेखाचित्र भी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार के कट पैम्फलेट का व्यवहार एक से अधिक व्यक्ति बहुत दिनों तक कर सकते हैं।

(२) जिन चित्रों, मानचित्रों आदि को श्यामपट्ट पर बनाना है उनका स्टेन्सिल काटकर पाठ पढ़ाते समय उनको श्यामपट्ट पर रखकर खड़िया की धूल से भरी पोटली से रगड़ना चाहिए। इस प्रकार बिन्दुओं की एक रूपरेखा श्यामपट्ट पर उतर जायगी। अध्यापक उन्हें लकीरों से जोड़ सकता है।

(३) पाठ के विकास के लिए जिन रेखाचित्रों, मानचित्रों की आवश्यकता हो उन्हें अध्यापक पहले से ही एक श्यामपट्ट पर क्रम से अंकित कर ले, उन्हें श्याम रंग के पर्दों से ही ढँक दे और जैसे-जैसे पाठ आगे बढ़े आवश्यकतानुसार पर्दे को खोलकर उतना दिखा दे, फिर ढँक दे इस तरह अध्यापक की सीमाएँ छिप जाती हैं।

श्यामपट्ट का प्रयोग उसी समय प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है जब अध्यापक उसका समुचित प्रयोग करे। वह श्यामपट्ट पर जो कुछ भी लिखे वह स्वच्छ और स्पष्ट हो, अक्षर सुडौल हों और इतने बड़े हों कि कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी उन्हें आसानी से पढ़ ले। श्यामपट्ट पर सीधी पंक्तियों में लिखना चाहिए। श्यामपट्ट पर लिखी टेढ़ी पंक्तियाँ बुरी मालूम देती हैं। श्यामपट्ट पर अशुद्ध कभी नहीं लिखना चाहिए। अध्यापक को सावधानी से लिखने, शीघ्र लिखने और लिखकर तुरत दोहरा लेने का अभ्यास करना चाहिए। लिखते समय खड़िया से ध्वनि न निकले। ध्वनि सुनकर लड़के हँसने लगते हैं और उनका ध्यान पाठ से छूट जाता है।

श्यामपट्ट का कार्य व्यवस्थित होना चाहिए। अध्यापक श्यामपट्ट पर प्रायः इधर-उधर लिख देते हैं इससे छात्रों के समझने में कठिनाई होती है तथा देखनेवाले को भी बुरा लगता है। श्यामपट्ट-कार्य भरापूरा हो, परन्तु व्यवस्थित स्वच्छ और सुन्दर हो।

श्यामपट्ट पर व्यर्थ के चित्र और रेखाचित्र बनाने की प्रवृत्ति से भी बचना चाहिए। श्यामपट्ट का उतना ही प्रयोग किया जाय जितना प्रस्तुतीकरण अथवा व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। श्यामपट्ट साधन-मात्र है—साध्य नहीं। अतः श्यामपट्ट के उपयोग से निष्णात होने पर भी उसका आवश्यकता से अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए।

श्यामपट्ट पर लिखते समय शिक्षक को श्यामपट्ट के सामने खड़ा होकर नहीं लिखना चाहिए। विद्यार्थी श्यामपट्ट का लेख भली-भाँति देख नहीं पाते अतः अध्यापक को बायीं ओर खड़ा होकर लिखना चाहिए। उसे श्यामपट्ट से सटकर नहीं खड़ा होना चाहिए। उसे अधिक समय कक्षा की ओर पीठ करके भी नहीं खड़ा होना चाहिए, एक साथ कई लम्बे वाक्य लिखने से ही ऐसा होता है, अतः शीघ्रतापूर्वक छोटे-छोटे वाक्य के लिखने की आदत डालनी चाहिए। श्यामपट्ट पर लिखने के साथ

अध्यापक को बोलना नहीं चाहिए। लिखकर कक्षा की ओर मुंह करके पढ देना अधिक अच्छा है, परन्तु कुछ विद्वानो का कहना है कि लिखने के साथ-साथ पढना अच्छा है, क्योकि इससे बालक को दो-दो इन्द्रियो का व्यवहार करना पडता है, साथ ही ज्ञानार्जन की क्रिया अधिक स्थायी हो जाती है।

श्यामपट्ट पर यदि चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र अकित किये जा रहे हैं तो उनमें केवल उतनी बातें ही दिखाई जायें जितनी व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। चित्र गलत न बनाये जायें। रगीन खडिया के प्रयोग से चित्र सजीव, सुन्दर और आकर्षक हो जाते हैं। अत चित्र, रेखाचित्र आदि के बनाने में रगीन खडिया का प्रयोग करना चाहिए परन्तु लिखने अथवा साराश बताने में नहीं। मानलीजिए आपको एशिया के जलवायु के प्रदेश दिखाने हैं तो अधिक अच्छा यह होगा कि आप उन्हें विभिन्न रंगो से दिखलायें।

श्यामपट्ट का उपयोग पाठ के विकास के साथ निरन्तर चलते रहना चाहिए। श्यामपट्ट पर साराश पाठके विकास के साथ-साथ लिखा जाय। कुछ विषयो मे उसे पुनरावृत्ति के समय भी लिखा जाता है। जो भी हो, इस साराश को लडके पाठ के अन्त में पुनरावृत्ति के बाद ही अपनी कापी में लिखें और अध्यापक इस लिखित कार्य का निरीक्षण करें।

श्यामपट्ट-कार्य के जहां अनेक लाभ हैं वहां एक दोष भी है कि जब अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखने लगता है तो विद्यार्थी बातचीत करने लगते है, इससे अनुशासन भग होने लगता है। इस दोष से बचने के लिए अध्यापक को सतर्क रहना चाहिए। उसे कभी-कभी पीठ घुमाकर देख लेना चाहिए और उसे कभी कभी प्रश्न भी पूछ लेना चाहिए। उसे शीघ्र और स्पष्ट लिखने की भी आदत डालनी चाहिए।

●

समवाय पाठ

शिल्प-द्वारा समवाय

●

महेन्द्रकुमार मौर्य एम० ए० एल० टी०

किसी भी हस्तकौशल को पाठ्यक्रम मे स्थान देने के पहले देख लेना चाहिए कि वह निम्नांकित कसौटियो पर खरा उतरता है अथवा नही —

(१) हस्तकौशल ऐसा होना चाहिए जिसके माध्यम से विद्यार्थियो को समुचित रूप से विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जा सके।

(२) हस्तकौशल ऐसा होना चाहिए जिसका एक क्रमबद्ध पाठ्यक्रम निर्धारित हो सके तथा जिसके द्वारा निर्बाध रूप से बालक को शिक्षा दी जा सके।

(३) बालक के सर्वांगीण विकास म साधक के रूप मे हस्तकौशल का निर्णय करना चाहिए।

(४) हस्तकौशल ऐसा हो जो बालक के किसी प्रमुख आवश्यकता की पूर्ति मे सहायक हो।

(५) हस्तकौशल ऐसा हो जो देश के मुख्य व्यवसाय कृषि के साथ-साथ एक सहायक व्यवसाय के रूप में चल सके।

(६) हस्तकौशल ऐसा होना चाहिए जो छोटे से छोटे बालक की शक्ति एवं रुचि के अनुकूल हो और बालक के निकट के वातावरण से चुना गया हो।

(७) हस्तकौशल ऐसा होना चाहिए जिसमें कम से-कम पूंजी लगे।

(८) हस्तकौशल में लगने वाले यंत्र एवं सामान आसानी से उपलब्ध हो सकें।

इस दृष्टिकोण से कृषि, कताई-बुनाई, काष्ठकला आदि ऐसे उद्योग हैं जिन्हें विद्यालय के अन्तर्गत हस्तकौशल के रूप में रखा जा सकता है तथा उचित रूप से पाठों का समवाय किया जा सकता है।

समवायित पाठ-संकेत

दिनांक	कक्षा	समय
	६	८० मिनट

मुख्य क्रिया—बुनाई।

उपक्रिया—चक्दार सादा कपड़ा बुनना।

समवायित विषय—इतिहास (अंगरेजों के आगमन के पश्चात् वस्त्रोद्योग की दशा)।

सामान्य उद्देश्य—

(१) बालकों का शिक्षात्मक एवं उत्पादक शिल्प की क्रियाओं द्वारा सर्वांगीण विकास करना।

(२) ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों में सम्बन्ध स्थापित करना।

(३) बालकों को ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्रदान करना तथा उन्हें अपने गौरवपूर्ण अतीत का ज्ञान देकर उनमें देशप्रेम की भावना जाग्रत करना।

(४) घटनाओं की परस्पर तुलना के द्वारा भूत तथा वर्तमान में सम्बन्ध स्थापित करना।

विशिष्ट उद्देश्य —

(१) बच्चों को चक्दार सादा कपड़ा बुनने की विधि से परिचित कराना।

(२) बालकों को जानकारी प्रदान करना कि (१) अंगरेजों के भारत में आने के पहले यहाँ वस्त्रोद्योग की दशा कैसी थी? (२) इस उद्योग को किस प्रकार नष्ट किया गया?

आवश्यक सामग्री—

(१) ताना चढ़े हुए करघे।

(२) रंगीन तथा सफेद सूत से भरी हुई बाने की बाबिन।

(३) हील्ड हुक।

(४) शटल।

सहायक सामग्री—

(१) चक डिजाइन के सादे कपड़े का चित्र।

(२) मुगलकालीन भारत का चित्र।

(३) अंगरेजों के अत्याचार से पीड़ित बुनकरों का चित्र।

पूर्वज्ञान—

(१) बालक सादा कपड़ा बुनना जानते हैं।

(२) वे मुगलकाल के पूर्व के वस्त्रोद्योग के इतिहास से भलीभांति परिचित हैं।

प्रस्तावना—

(१) करघे की प्रारम्भिक चालें कौन-कौन-सी हैं? (दबदबाना, बाना फेंकना और ठोकना)

(२) करघे की गौण चालें कौन-सी हैं? (ताना ढीला करना, कपड़ा लपेटना)

(३) कितना कपड़ा बुन लेने के बाद उसे कपड़े के लपेटन पर लपेट लिया जाता है? (निकटतम २० से० मी०)

(४) कपड़ा लपेटने के बाद हर बार कितना कपड़ा शेष रखा जाता है? (निकटतम ८ से० मी०)

(५) सादा कपड़ा बुनने की विधि क्या है? (एक ऊपर एक नीचे)

(६) चक्दार सादा कपड़ा कैसे बुना जाएगा? (समस्या)

उद्देश्य कथन—

आज हमलोग चक्दार सादा कपड़ा बुनना सीखेंगे।

प्रस्तुतीकरण—

चक डिजाइन का चित्र उपस्थित करते हुए निम्नलिखित प्रश्न किये जायेंगे —

(१) ताने में किनारा पर कितने रंगीन धागे लगाये गये हैं?

(२) उनके बाद सफेद धागों की संख्या कितनी है?

(३) सफेद के पश्चात् फिर रंगीन धागा की संख्या कितनी है ?
(४) बाने में सर्वप्रथम कितने रंगीन धागे लगाये गये है ?
(५) उनके बाद सफेद धागा की संख्या कितनी है ?
(६) फिर कितने रंगीन धागे लगाये गये हैं ?

आदर्श प्रदर्शनी—

अध्यापक करघे पर बुनकर बच्चों को दिखायगा तथा उनका ध्यान निम्नलिखित बातों की ओर आकर्षित करेगा —

(१) प्रारम्भ में १२ रंगीन बाने के धागे फेंके जायेंगे।
(२) इन रंगीन धागे के पश्चात् १६ सिर्फ सफेद बाने के धागे फेंके जायेंगे।
(३) सफेद धागा के पश्चात् चार रंगीन धागे फेंककर पैटर्न पूरा किया जाएगा।
(४) बुनने की इस विधि को बार बार दुहराया जायगा।
(५) ठोकाई समान रूप से की जाय इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा।
(६) यदि कोई धागा टूट जाय तो तुरत जोड़ लेना चाहिए।
(७) 'कम' हर बार साफ बने इसका प्रयत्न किया जाय।

पुनरावृत्ति

(१) सर्व प्रथम कितने रंगीन धागे डाले जायेंगे ?
(२) इसके बाद कितने सफेद धागे फेंके जायेंगे ?
(३) फिर कितने रंगीन धागे पड़ेंगे ?
(४) बुनते समय अन्य किन बातों पर ध्यान देना चाहिए ?

श्यामपट्ट कार्य—

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर को श्यामपट्ट पर क्रमश लिखते जायेंगे।

सामग्री वितरण—

अध्यापक बच्चों की सहायता से आवश्यक सामग्री का वितरण करेगा।

क्रियाशीलन एवं निरीक्षण—

बच्चे बुनने का कार्य निम्नलिखित बातों के आधार पर करेंगे —

(१) पावड़ी क्रमश एक दो, एक . दो के अनुसार दबायी जायगी।

(२) बाने के धागे बतलाये हुए नियमानुसार फेंके जायेंगे।

(३) ठोकाई समान रूप से की जायगी।
(४) टूटा हुआ ताना तुरन्त जोड़ लिया जायगा।
(५) अध्यापक प्रत्येक बच्चे के पास बारी-बारी से पहुँचकर व्यक्तिगत सहायता प्रदान करेगा।
(६) सभी बच्चे चुपचाप अपना-अपना कार्य करेंगे।

मूल्यांकन एवं नवीन पुष्ट समस्या—

सबसे अच्छा बुना हुआ कपड़ा दिखाते हुए निम्न प्रश्न किये जायेंगे —

(१) यह कपड़ा इतना सुन्दर कैसे बुना गया है ?
(२) महीन व चिकना कपड़ा बुनने के लिए क्या क्या चीजें आवश्यक होगी ?
(३) वर्तमान समय में हमारे देश में खादी बुनने का उद्योग किस दशा मे है ?
(४) यह खादी-उद्योग किस प्रकार आगे बढ़ाया जा सकता है ?
(५) हमारे देश में वस्त्रोद्योग की उन्नति सबसे अधिक कब हुई थी ?
(६) इस उद्योग का ह्रास किस प्रकार हुआ। (समस्या)

उद्देश्य कथन—अब हम लोग अंग्रेजों के आने के पूर्व वस्त्रोद्योग की दशा तथा इसके ह्रास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करें।

प्रस्तुतीकरण—

(कक्षा में "अंग्रेजों के भारत आने के समय यहाँ वस्त्रोद्योग की दशा कैसी थी ? " इस पर प्रकाश डाला जायगा।)

प्रथम सोपान—

उस समय भारत 'सोने की चिड़िया' के नाम से पुकारा जाता था। यहाँ का वस्त्रोद्योग उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। बाहर के प्रत्येक देश यहाँ के कपड़ा को प्राप्त करने के लिए लालायित थे। बड़ी-बड़ी नावों में भरकर यहाँ का कपड़ा बाहर भेजा जाता था। यहाँ की मलमल का गुणगान चारों दिशाओं में फैला हुआ था। 'ढाका' मलमल की बुनाई के लिए प्रसिद्ध था। मलमल की कई किस्में थीं — इरवाम, आबेरवाँ शबनम, खास, तन्जेब, मूमा, नैनसुख, सरवती तथा बदन-खास इत्यादि। सबसे महीन मलमल 'खास' मानी जाती थी। इसे शाही खानदान वाले या बड़े-बड़े लोग उपयोग में लाते थे। औरंगजेब के लिए जो मलमल बनती थी उसके आधे थान का मूल्य २६०) था। इस मलमल का १५ गज लम्बा और एक गज चौड़ा थान छोटी सी अँगूठी में से निकल जाता था। इस प्रकार का एक थान बुनने में लगभग छः महीने लग जाते थे। भारत से बाहर कपड़ा भेजने के मुख्य केन्द्र सूरत, हुगली, मछलीपट्टम तथा कालीकट आदि थे। यहाँ से उस समय ऊनी, सूती व रेशमी कपड़े बाहर भेजे जाते थे। यहाँ की साड़ियों तथा अन्य प्रकार के कपड़ों की माँग इंगलैण्ड में काफी बढ़ गयी थी और वहाँ का पैसा काफी मात्रा में आने लगा था। इस परिस्थिति को अँग्रेज बहुत दिन तक न देख सके।

बोध प्रश्न—

(१) भारत का नाम 'सोने की चिड़िया' क्यों रखा गया था ?

(२) मलमल की खास कौन-सी किस्म था ?

(३) उस समय कपड़ा बाहर भेजने के कौन कौन से केन्द्र थे ?

द्वितीय सोपान—

अँग्रेज भारत के इस विकसित वस्त्रोद्योग को नष्ट करने का उपाय ढूँढ़ने लगे। क्योंकि यहाँ के उद्योग को नष्ट करके ही वे अपने देश को इस दिशा में आगे बढ़ा सकते थे। यही उनकी धारणा थी। यहाँ की राजसत्ता भी धीरे धीरे उनके हाथ में आने लगी थी। इंगलैण्ड के निवासियों ने भारत के वस्त्रों के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने यहाँ के कपड़ा पर अनेक प्रकार के टैक्स लगाकर उसे काफी महँगा बना दिया। जिसके कारण वहाँ पर भारत के माल की माँग घटने लगी यहाँ कम्पनी के कर्मचारियों ने बुनकरों व व्यापारियों के साथ कठोरता का व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया, वे लोग निश्चित समय के अन्दर निश्चित माल की माँग करते थे। यदि बुनकर उतना वस्त्र नहीं दे पाते थे तो, उन्हें अनेक प्रकार की ताड़नाएँ और यातनाएँ भोगनी पड़ती थी। इधर भारत में मुसलमान राजाओं व नवाबों का पतन भी प्रारम्भ हो गया था और अँग्रेजों का प्रभुत्व दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। इन कारणों के फलस्वरूप भारतीय वस्त्रोद्योग का ह्रास प्रारम्भ हो गया। बुनकरों ने अपना परम्परागत व्यवसाय धीरे धीरे छोड़ना आरम्भ कर दिया। भारत के नाम को उज्ज्वल करनेवाले करघे व चरखे बेकार हो गये। भारत का बाजार विदेशी वस्त्रों से भर गया। इस प्रकार अँग्रेजों का भारत के वस्त्रोद्योग को नष्ट करने का स्वप्न पूर्ण हुआ।

पुनरावृत्ति प्रश्न—

(१) अँग्रेज भारत के वस्त्रोद्योग को क्यों नष्ट करना चाहते थे ?

(२) भारत में कम्पनी के कर्मचारी किस प्रकार कपड़े के उद्योग को नष्ट करने में सफल हुए ?

(३) इंगलैण्ड में भारतीय माल की माँग क्यों घटने लगी ?

(४) भारतीय वस्त्रोद्योग के नष्ट होने के क्या कारण थे ?

(५) भारतीय वस्त्रोद्योग के नष्ट होने का क्या परिणाम हुआ ?

बच्चे का व्यक्तित्व

●

कान्ति

दुनिया भर की शुभ-कामनाओं के बीच साँस लेकर बड़े होनेवाले बालकों में से कितने ऐसे होंगे जिन्हें बड़ों का निरपेक्ष प्यार मिलता होगा और जिन पर बुजुर्गों की महत्त्वाकांक्षाएँ और खानदान की जर्जर परम्पराएँ न लदती होंगी? बच्चे के जन्म पर मनायी जानेवाली खुशी नये व्यक्ति के आगमन की होती हैं या कुटुम्ब के वैभव में वृद्धि की सूचना की, यह एक सवाल है।

बालक एक व्यक्तित्व है, पूर्ण इकाई है। उसकी अपनी स्वतन्त्र हस्ती है। उसे अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वातन्त्र्य और अवसर की जरूरत है यह बात कितने शुभ चिन्तकों के गले उतर पाती है?

बहुत से माता पिता तरह-तरह के कपड़े पहना कर, खिलौने मँगाकर और मिठाइयाँ खिलाकर समझते हैं कि हमने बालक के प्रति अपने फर्ज को पूरा कर दिया, पर वास्तव में यह सब क्रियाएँ बालक के लिए नहीं, बल्कि उनकी समाज में जो अपनी प्रतिष्ठा है उसके लिए होती हैं। बाप की, या दादा की कमाई का पैमाना है बच्चे की वेशभूषा।

बालक के सम्पूर्ण अस्तित्व के तथ्य को भले विशिष्ट व्यक्तियों ने ही ग्राह्य किया हो पर बाल-शिक्षण के महत्व को विश्व के सभी नागरिकों ने स्वीकार कर लिया है। बाल-शिक्षण का पूरा आशय समझने की एक तरफ जहाँ जरूरत है वहीं यह भी देखना है कि शहरों, कस्बों और देहातों में छोटे बच्चों के जो स्कूल तेजी से खुलते चले जा रहे हैं वे बच्चों की उन आवश्यकताओं को जो घर पर पूरी नहीं होतीं, पूरी कर पाते हैं या नहीं? उनकी कल्पना में स्कूल, कमिटी, और फाइलों के स्थान पर बच्चे महत्व के होते हैं या नहीं?

बच्चे के व्यक्तित्व के टुकड़े

जहाँ स्कूल के सक्षम-अक्षम होने का सवाल आता है वहाँ ही यह विचार करना भी अति आवश्यक है कि परिवार से भिन्न प्यार और विश्वास का वातावरण देना बच्चे के हित में है या नहीं।

यह अटपटा-सा सवाल लगेगा परन्तु अनुभव बता रहा है कि विरोधी वातावरण में बच्चे का सन्तुलित विकास नहीं हो सकता। इस नाजुक उम्र में ही उनके व्यक्तित्व के टुकड़े होने शुरू हो जाते हैं। वे अपनी सहज बुद्धि से डाँटने-फटकारनेवाले के लिए एक तथा प्यार और आदर करनेवाले के लिए दूसरा नियम मानकर चलने लगते हैं। स्कूल में जो बच्चे होशियार, ग्रहणशील, संवेदनशील और जिज्ञासु होते हैं वे ही परिवार के लिए सिरदर्द हो जाते हैं। ४-५ घण्टे साथियों के साथ विभिन्न साधनों के माध्यम से नानाविध प्रवृत्तियों में आत्म विश्वासपूर्वक बिताने के बाद घर जाकर हाथ-पैर समेटकर बड़ों की निगरानी में चुपचाप, शान्त और अनुशासित रहना बालक के लिए बड़ा कष्टकर होता है। उसी हालत में वह 'ऊधमी हो गया है, कहना नहीं मानता, बिगड़ता जा रहा है'—जैसे वचनों से विभूषित होने लगता है, और साथ ही उसकी शाला भी बदनाम

होती है। 'वहाँ कुछ सिखाया नहीं जाता' यह प्रचार असन्तुष्ट अभिभावकों-द्वारा शुरू हो जाता है।

कुछ रोचक उदाहरण

एक दिन सुधीर ने खाना खाते समय उठकर जाने और माँ के आदेश से लकड़ी लाकर देने से इनकार कर दिया और कहा कि 'दीदी ने खाने के समय उठने को मना किया है।' "नाराज माँ ने दीदी से शिकायत करने की धमकी दी तो जले पर नमक छिड़का, 'दीदी मारती नहीं।

एक माँ का बेटा पहले की तरह झटपट नहाता नहीं, अपने आप नहाने, कपड़े पहनने का हठ करता है। माँ के पास इतना समय नहीं कि वह बालक के साथ बालक की रफ्तार से चल सके। उसके और भी बच्चे हैं। घर के दूसरे काम हैं। शायद नौकरी करती है। दफ्तर का बोझ है। संयुक्त कुटुम्ब है तो सास और जेठानी के उलाहने हैं— अनोखा बालक पैदा किया है, सुनता ही नहीं। हमारे भी बच्चे थे। ये वाक्य माँ की झुंझलाहट को क्रोध में बदलने के लिए पर्याप्त हैं।

एक दिन एक बालिका खाना खाकर उठी तो प्लेट उठा ली साबुन लगाकर साफ कर ली और आँखों में प्रसन्न उत्साह की चमक लेकर अपना जौहर दिखाने पहुँची माँ के पास। माँ की निगाह पहले पड़ी बेटी की फ्राक पर हाथ की प्लेट पर नहीं। माथे पर सिकुड़न भौंहों पर बल, और आवाज में तेजी आ गयी— यह क्या। अभी अभी धुले धुलाये कपड़े पहनाये थे, उन्हें गन्दे कर डाले किसने कहा था तुमसे यह करतब करने को? 'आखिर कितनी पोशाकें बनाय? एक साथ माँ का दिल जो, शायद पति से बजट पर नाक भौं कर आया था, बरस पड़ा मासूम बच्ची पर। वह बेचारी समझ ही नहीं सकी अपना कसूर। उसकी नजरें फ्रॉक और प्लेट के बीच घूमते हुए माँ की नजर से टकरा उठी और डर के मारे हाथ की पकड़ से प्लेट बाहर होकर टूट गयी, और उधर गाल पर चटट-चट्ट-चट्ट मिला बच्ची को पुरुषार्थ का पारिश्रमिक।

इसी तरह शब्बू को आये दिन सुनने को मिलता है—'तुम अच्छी बिटिया नहीं हो। बाजार से कोई और लायेंगे।' रोज की ट्रेनिंग का प्रभाव यह हुआ कि एक दिन जब शब्बू को जबरदस्ती चारपाई पर से उठाया गया तो कह दिया 'मम्मी अच्छी नहीं है, पापा से और मँगवायेंगे।' शब्बू को क्या पता था कि उसकी माँ की ही बात दुहराने पर मम्मी लाल पीली हो जायेंगी। शब्बू-पर ही डाँट फटकार पड़ेगी। उतना ही नहीं शब्बू के स्कूल से भी जवाब-तलब होगा कि क्या 'बाल भारत' में यही सिखाया जाता है।

बड़ों की शिकायत

ऐसे जुर्मों के अतिरिक्त सारे बच्चों से सारे बड़ों की शिकायत है कि बच्चे उनके मेहमानों को नमस्ते नहीं करते। पैर नहीं छूते। मेहमान के प्रवेश के समय बच्चा कुछ कर रहा है देख रहा है, सुन रहा है खेल रहा है या अपनी चेतना का जीवन जी रहा है। इसकी परवाह न मेहमान को है न मेजबान को। उन्होंने तो बच्चे की कुशलता संस्कारिता का थर्मामीटर बनाया है उसकी पशु-क्षमता को। उनके आदेशों का, सिखावन का अक्षरशः निर्जीव मशीन की भाँति पालन होना चाहिए। सही यन्त्र की तरह बटन दबते ही हाजिर होना चाहिए जब तक मम्मी सहेलियों से गप शप करें बच्चे को कमरे में रहना नहीं चाहिए फिर जब मम्मी की ओर से बुलाहट हो तो आकर गीत, कहानी, कविता, जो कुछ रटाया हो सुना देना चाहिए और एकदम पालतू जानवर की तरह विदाई के समय नमस्ते पेश करनी चाहिए। यह चाह पूरी नहीं होती तो कहा जाता है कि बच्चा बिगड़ा हुआ है उसे सुधारने की जरूरत है।

जिस शिक्षण शास्त्र या मानस शास्त्र के अनुसार ये बच्चे पात्र हैं झिड़कियों के, उलाहनों के या ताड़ना के?

शरारत क्या है?

शिक्षित समुदाय को यह बताने की जरूरत नहीं कि बच्चे के अन्दर एक सहज जिज्ञासा होती है, चेतना, स्फूर्त रहती है, वह सब कुछ जानना चाहता है, समझना चाहता है, सीखना चाहता है, करना चाहता है और प्रतिक्षण नया-नया करना चाहता है। उसका अंग प्रत्यंग लालायित रहता है अपने उपयोग के लिए।

उसका दिल और दिमाग छटपटाता रहता है अभिव्यक्त होने के लिए। जब उसकी इन माँगों को पूरी होने के लिए अनुकूल वातावरण, पूर्ण अवसर और उचित साधन तथा साथी मिल जाते हैं तो उसे न शरारत सूझती है न उत्पात। शरारत और अपराध अपने आप में कोई स्वतंत्र वृत्ति नहीं है। वह परिणाम है दबाव का और प्रतिक्रिया है बड़ों के निर्मम असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की।

एक प्रसंग याद आता है। मेरे मुँह में दातुन थी। ४ साल के बालक ने दूसर सिरे को अपने मुँह में लगाया और चबाना शुरू किया। उसके पिता ने यह देखा और कहा, 'क्यों शरारत करते हो, उन्हें दातुन करने दो न।' आज तक उस बालक की आँखों के भाव और शब्द कान में गूँज रहे हैं। उसने मुझसे कहा, 'बाबा, यह शरारत नहीं है हम तो आपके साथ खेल रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि बच्चों के प्रति थोड़ी-सी भी संवेदनशीलता बरती जाय तो स्पष्ट दिखाई देगा कि उनकी कोमल भावनाएँ कुचली जाने के कारण ही उच्छृंखल होती हैं, हिंसक होती हैं। इसी का परिणाम है कि घर-आँगन के ये पुष्प महकने के स्थान पर काँटे बन कर चुभने लगते हैं।

वर्तमान जीवन पद्धति और समाज-व्यवस्था ऐसी उलझनपूर्ण है कि इनसान अपने को एक तनाव और घुटन में ही घिरा पाता है। ऐसी परिस्थिति में उससे यह अपेक्षा करना कि वह अपने जिगर के टुकड़ों की हरकतों पर स्वस्थ, सन्तुलित, प्रसन्न और मुक्त मन से विचार करे अव्यावहारिक मानी जायेगी, पर जिन्हें बाल शिक्षण में सचमुच रुचि है वे बड़ों के तनाव, दुराव और मनमुटाव के प्रति आँख मूँदकर नहीं रह सकते।

पालकों की जिम्मेदारी

अभिभावकों का मनन चिन्तन, उनकी समस्याओं में रुचि लेना, बच्चे से भी अधिक सहानुभूतिपूर्वक बड़ों की बातों को सुनना तथा उनके आपसी सम्बन्धों को समझना उतना ही आवश्यक है जितना मानस-शास्त्र और शिक्षण-शास्त्र को जानना। माता-पिता अपने बालक को क्या बनाना चाहते हैं और स्वयं उस दिशा में क्या कदम उठाते हैं, अपने जीवन, अपने सम्बन्ध और अपने रीति-रिवाजों में क्या-क्या परिवर्तन बच्चे के निर्माण को ध्यान में रखकर वे करते हैं, इसकी स्पष्ट प्रतीति और समझ संरक्षक और शिक्षक के बीच गपशप, चर्चा, गोष्ठी शिविर के माध्यम से होती रहनी चाहिए।

अगर ऐसा नहीं होता और बच्चे को घर और शाला में सतत दो वातावरण मिलेंगे तो चेतन, जागृत, और सक्षम बच्चों का सत्संस्कार-शिक्षण नहीं कुसंस्कार-शिक्षण ही होगा। परिवार के असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के कारण बच्चा की संवेदना या तो कुंठित हो जायगी या उच्छृंखलता का रूप ले लेगी। बड़ों का निर्मम व्यवहार तथाकथित अपनों से उन्हें विमुख करेगा और जहाँ से आदर, प्यार और सहानुभूति वे पायेंगे उधर खिंचते चले जायेंगे। घरवालों की तुलना में बाहरवालों को अधिकार देना एकदम शुरू में ध्यान में नहीं आता, पर बालक के किशोर होते-होते तक अनेक माता-पिता यह रोना रोते पाये जाते हैं 'बालक हाथ से एक दम निकल गया।'

शुभेच्छु वर्ग जबतक अपने नन्हे मुन्ने या मुन्नी को पूर्ण व्यक्ति की तरह सम्मान देना, उस पर विश्वास करना शुरू नहीं करेगा, या बालक को समान रूप से प्यार करने और आदर देने का अवसर नहीं देगा तब तक केवल स्कूलों और शिक्षकों के भरोसे कोई पीढ़ी शिक्षित होनेवाली नहीं है।

प्यार और आदर दो आधार शिला हैं जीवन की इमारत की। मानवीय गुणों का विकास इन दो की उपेक्षा करके हो नहीं सकता। अंकुरित पौदे को उचित हवा, धूप, पानी से वंचित करना और फिर तकदीर को कोसना या बच्चों को ताड़ना एकदम गलत है।

●

गांधीजी और शिक्षा

•

रमाशंकर जायसवाल

गांधीजी ने जीवन के प्राय सभी पहलुओं पर अपने विचारों को व्यक्त किया है। वे जो भी कहते थे उसकी पृष्ठभूमि में उनका अनुभव बोलता था। उन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास का गहन अध्ययन और मनन किया था। इतना ही नहीं उन्होंने भविष्य में आनेवाली परिस्थितियों का भी आभास था। एक कुशल भविष्य द्रष्टा के रूप में उन्होंने देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव शैक्षिक समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है उन्होंने सरल और स्पष्ट शब्दों में यह बताने का प्रयत्न किया कि शिक्षा क्या है, शिक्षा का उद्देश्य क्या है, प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की क्या बुराइयाँ हैं और हमारे देश की शिक्षा का वास्तविक स्वरूप क्या होना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ

गांधीजी का विचार था, "जिस शिक्षा या विद्या से त्रिविध—आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक—मुक्ति मिलती है वही वास्तविक शिक्षा या विद्या है।" इस कथन में गांधीजी ने शिक्षा को मुक्ति दिलानेवाली कहा है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा मनुष्य को आर्थिक चिन्ताओं, सामाजिक कुरीतियों, अज्ञान तथा आन्तरिक सकीर्णता से मुक्ति दिलाती है। इस तरह हम देखते हैं कि गांधीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। गांधीजी कहते थे, 'शिक्षा से मेरा तात्पर्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का सर्वांगीण विकास करना है।" उनका विचार था कि शिक्षा के बिना मानव मस्तिष्क का विकास तथा चरित्र का निर्माण सम्भव नही है। लेकिन वे किसी वर्ग-विशेष तक शिक्षा को सीमित नही रखना चाहते थे। वे अनिवार्य और सार्वजनिक शिक्षा के समर्थक थे। गांधीजी शिक्षा के अन्तर्गत सगीत और चित्रकला को भी सम्मिलित करते थे। वे कहते थे, "सगीत के बिना तो सारी शिक्षा अधूरी ही लगती है। मैं हर एक बालक को अक्षरकला सिखाने के पहले चित्रकला सिखाने का लोभ रखता हूँ।" इस तरह हम देखते हैं कि गांधीजी ने शिक्षा का कितना व्यापक अर्थ लिया है।

शिक्षा का माध्यम

शिक्षा का माध्यम कौन सी भाषा हो इस प्रश्न पर अभी तक मतैक्य नहीं हो सका है। माध्यम की समस्या को लेकर समय समय पर बहस होती रहती है। परिणाम-स्वरूप इसे एक विवादग्रस्त एव भावनात्मक प्रश्न बना दिया गया है। गांधीजी ने इस समस्या का बहुत ही सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया है। वे कहते थे, 'शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही सर्वोत्तम ढग से हो सकती है। वे अंग्रेजी भाषा के अध्ययन को बुरा नहीं मानते थे। उनका विचार था अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय की भाषा है, कूटनीति की भाषा है और उसका साहित्य-भण्डार अनेक प्रकार के ग्रन्थ-रत्नों से भरपूर है। उसके द्वारा पाश्चात्य विचारों और सस्कृति की दुनिया में हमारा प्रवेश होता है। इसलिए हममें से थोड़े-से आदमियों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है।" यग इडिया, २ २ २१) लेकिन एक स्वतत्र देश के नागरिक के रूप में वे सोचते थे, "वास्तविक शिक्षा विदेशी भाषा के माध्यम से हो ही नहीं सकती क्योंकि शिक्षा वही है जो आपकी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कर सके, और यह काम विदेशी भाषा-द्वारा होना असम्भव है।'

गांधीजी कहते थे, विदेशी शासन के कई दोषों में इतिहास सबसे बड़ा दोष इस बात को मानेगा कि उसने देश के बालकों पर विदेशी माध्यम का ऐसा बोझ

दिया है जो उनकी शक्तियों को मार रहा है। इसने राष्ट्र की शक्ति हर ली है, विद्यार्थियों की आयु घटा दी है, उन्हें देश की जनता से दूर कर दिया है और शिक्षा को बिना कारण ही खर्चीली बना दिया है। शिक्षित भारत जितनी जल्दी विदेशी माध्यम के वशीकरण से मुक्त हो जाये, उतना ही उसको और जनता को अधिक लाभ होगा" (हिन्दी नवजीवन, ५७२८) दुःख इस बात का है कि स्वदेशी सरकार भी अभी तक विदेशी माध्यम को नहीं हटा सकी है। इससे ज्यादा दुःख की बात तो यह है कि कोठारी-कमीशन ने तीन भाषा फार्मूला में जो संशोधन किया है वह समय की माँग के विपरीत है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दोष

आज अधिकतर शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत है कि भारत की वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था समय के अनुरूप नहीं है। इसमें अनेक दोषों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया जाता है। महात्मा गांधी ने शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में कहा है, 'मेरे मत से वर्तमान शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है। ये दोष तीन प्रकार के हैं

(क) यह विदेशी संस्कृति पर आधारित है।

(ख) यह हृद्‌गत और हस्तगत संस्कारों की उपेक्षा करती है, और

(ग) यह विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाती है।'

गांधीजी के ये विचार अक्षरशः सत्य हैं। आज की शिक्षा हमें सहयोग की जगह प्रतिद्वन्द्विता, सहिष्णुता की जगह संघर्ष तथा आध्यात्मिक उत्थान की जगह भौतिक उत्थान की ओर उन्मुख करती है। ये बातें भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल नहीं है। गांधीजी के इन विचारों में इस बात की झलक भी मिलती है कि शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं का समाधान करने की क्षमता नहीं रखती। यह भी एक विडम्बना ही है कि कोठारी कमीशन के अनेक महत्वपूर्ण सुझाव देश की वर्तमान समस्याओं का समाधान नहीं करते, क्योंकि वे हमारी सांस्कृतिक परम्परा की उपेक्षा करते हैं। लेकिन गांधीजी ने केवल आलोचना ही नहीं की वरन् देश की आवश्यकताओं और साधनों को ध्यान में रखते हुए एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का प्रतिपादन किया जो बुनियादी शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध है।

बुनियादी शिक्षा

गांधीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मन, शरीर और आत्मा का सर्वांगीण विकास करना है। अतः वे साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। वे बालक की शिक्षा का आरम्भ किसी उद्योग के माध्यम से करना चाहते थे। गांधीजी का कथन है, "उद्योग की शिक्षा में बुद्धि की शिक्षा यानी बुद्धि का विकास छिपा ही हुआ है। मैं तो यह भी कहने की धृष्टता करूँगा कि उद्योग की शिक्षा के बिना बुद्धि का सच्चा विकास सम्भव है ही नहीं।" चूँकि उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-प्रणाली का आधार कोई बुनियादी उद्योग या दस्तकारी है इसीलिए उसे बुनियादी शिक्षा कहा जाता है। बुनियादी शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है, 'किसी दस्तकारी के जरिये बालक की बुद्धि के विकास की कोशिश करने को बुनियादी शिक्षा कहते हैं।" उनको विश्वास था कि भारत के अस्सी की सदी ग्रामीणों का उद्धार करने के लिए उनके बच्चों को बुनियादी तालीम देना लाजिमी हो जाना चाहिए और बुनियादी शिक्षा ही देश की आवश्यकता पूरी कर सकती है। बुनियादी शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह बालकों को स्वावलम्बन सिखाती है, और कम खर्चीली है। छात्रों-द्वारा निर्मित वस्तुओं से थोड़ी आमदनी होगी जो शिक्षा के व्यय के भार को हल्का बना देगी। गांधीजी ने स्वयं कहा है, 'बुनियादी शिक्षा यदि गाँवों में स्थानीय परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थित की जाय तो वह न सिर्फ अपने खर्च को निकाल लेगी बल्कि अपने छात्रों को भी भावी जीवन के लिए तैयार कर देगी।" देश की वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करने से बुनियादी शिक्षा की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली को प्रतिपादित करके शिक्षा और जीवन को एक दूसरे के निकट लाने का कठिन और सराहनीय कार्य किया है। शिक्षा और

जीवन के बीच की वर्तमान खाई शिक्षाशास्त्रियों के लिए आज भी चुनौती के रूप में खड़ी है।

नैतिक शिक्षा

गांधीजी का विद्यार्थियों से बहुत ही घनिष्ट सम्पर्क था। वे उनकी कठिनाइयां और कमियों से भली भांति परिचित थे। उनकी दृष्टि में विद्यार्थियों की सबसे बड़ी कमी उनके अन्दर श्रद्धा का अभाव था। गांधीजी ने लिखा है, "मनुष्य के लिए इससे बढ़कर सजा और अभाग्य और क्या हो सकता है कि उसका ईश्वर में से विश्वास उठ जाय? और मैं गहरे दुख की भावना से स्वीकार करता हूँ कि विद्यार्थी जगत से श्रद्धा धीरे धीरे उठती जा रही है। जब मैं किसी हिन्दू लड़के को राम नाम का आश्रय लेने का सुझाव देता हूँ, तो वह मेरे मुंह की ओर देखने लगता है और आश्चर्य में पड़ जाता है कि राम कौन है। जब मैं किसी मुसलमान लड़के से कुरान पढ़ने और खुदा से डरने को कहता हूँ, तो वह स्वीकार करता है कि वह कुरान नहीं पढ़ सकता और अल्लाह तो केवल कहने की बात है। ऐसे लड़कों को मैं कैसे विश्वास दिला सकता हूँ कि सच्ची शिक्षा की पहली सीढ़ी शुद्ध हृदय है। अगर आपको मिलनेवाली शिक्षा आपको ईश्वर से विमुख करती है, तो मैं नहीं जानता कि उससे आपको कैसे सहायता मिलेगी और आप संसार की कैसे मदद करेंगे।" (यंग इंडिया, ४-८-२७) आज यदि विद्यार्थियों में श्रद्धा नहीं है तो इसका मर्म है कि उनको ईश्वर पर विश्वास नहीं है। जिसे ईश्वर पर विश्वास नहीं होता उसे कदाचित अपने आप पर विश्वास नहीं होता।

वस्तुतः यह अप्रिय सत्य है कि विद्यार्थी-समाज से श्रद्धा लुप्त होती जा रही है। उसे किसी पर विश्वास नहीं है। उसके अन्तर में असन्तोष और भग्नाशा व्याप्त है जो व्यक्तिगत और सामूहिक अनुशासनहीनता के रूप में प्रकट होती है। गांधीजी के शब्दों में आज विद्यार्थी-समाज तथा सारे देश को "अपरिमित श्रद्धा और उसे अनुप्राणित करनेवाले निष्कलंक चरित्र की आवश्यकता है।" ●

कन्हैया के पहले दो साल

●

गुरुशरण

बड़े भाई साहब के पांच लड़कियों के बाद लड़का हुआ तो घर दफ्तर, टोला, पड़ोस, सभी जगह खुशियां की आतिशबाजी छूट पड़ी। बधाये गाये जाने लगे। बताशों के बजाय देशी घी के लड्डू सारे मुहल्ले में बँटे। किसी अपरिचित ने भी मुंह मीठा कराने को कहा तो उसे भरपेट खिलाया गया। जमकर जश्न मनाया गया। भाभीजी को हम सब बधाई देने पहुँचे तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, 'भगवान करे तुम मर्दों के भी होने लगे तब पता पड़े।'

बच्चे का नाम सबने कन्हैया रख दिया। सारे घर का लाड़-प्यार अब उसी पर केन्द्रित हो गया। दूज के चन्द्रमा की तरह वह जैसे-जैसे बढ़ने लगा वैसे-वैसे ही सबका और दुलारा होता गया। उसका आकार बढ़ने लगा, उसका वजन बढ़ने लगा। तीन-चार माह तक तो वह भोला बाबा बना रहा। जब पालने में पड़े-पड़े हाथ-पैर फटकारा करता। हम सब उसका मजाक बनाते, 'वाह यार! हवा में ही जोर-अजमाई चल रही है'। पर मझले भइया, जो मनोविज्ञान के पण्डित कहलाते हैं, हम सबको समझाते कि अभी तो वह अपने अवयवों पर कन्ट्रोल कर रहा है। मांसपेशियों पर काबू पाने की यह क्रिया है।

हमलोग तरह-तरह के रंगीन खिलौने, झुनझुने और गुब्बारे ला लाकर उसके झूले की डोरी में बांध देते और उसका उछलना देख देखकर बड़े खुश होते। झूला झुलाने पर जब खिलौने खनकते, झुनझुना बजता तो वह किलकारियां भरकर और अधिक उत्साहित होता। उसके झूले का नाम हमलोगों ने उड़न-खटोला रख दिया था, क्योंकि वह छोटा-सा, खाटनुमा था और बड़ी खूबसूरत डोरियों से छत के कुण्डे से बँधा हुआ था।

दूसरे तीसरे महीने उसने सबसे पहले अपनी माँ को पहचानना शुरू किया जिसका हम सबको थोड़ा दुःख हुआ। क्योंकि हममें होड़ लगी थी कि देखें किसको पुकारने पर पहचानता है। हमलोग तो तरह-तरह के स्वर में मुँह बनाकर भाँति-भाँति की बोलियाँ निकालते और भाभीजी चौके में बैठे-बैठे ही आवाज देतीं, 'कन्हैया', कि बस वह फिहुँक उठता। हम सब मुँह लटकाकर अपने-अपने पढ़ने लिखने के काम में लग जाते। पर मन न मानता। थोड़ी देर बाद फिर पहुँच जाते। मिठाई लेमनचूस गुड़, चना, जो भी हम सब पाते उसे खिलाने की चेष्टा करते जिस पर हमें बहुत डाँट पड़ती। कभी कभी चाँटे भी लग जाते। लेकिन हम अपने दाँव-पेच चलाकर उसे अपने वश में करने की फिक्र में थे।

कन्हैया की दूध की दँतुलियाँ चमकने लगीं तो हम उसके मुँह में अपनी अँगुली दे-देकर उन दाँतों को पैना करने में लग गये। उसके लिए यह खेल था। हमारी अँगुलियों में कभी-कभी दँतुलियाँ चुभ जातीं, फिर भी हमें बड़ा मजा आता। हमारी इन हरकतों के कारण अब उसके माथे पर काजल का टीका लगने लगा जिससे उसे कहीं नजर न लग जाय।

कन्हैया की मीना बड़ी बहना थी तो अब पूछ ही खतम हो गयी। उनकी आशाएँ भस्म हो गयीं। उनमें एक प्रकार का नकारात्मक संघर्ष उत्पन्न हो गया। प्रेम एवं सुरक्षा की आवश्यकता की असन्तुष्टि से उनमें निराशा, वास्तविकता से भागने और आक्रमण आदि की दुष्प्रवृत्तियाँ जागृत हो गयीं। मीना में माता-पिता, दादा-दादी का ही प्यार था। सभी का अत्यधिक प्रेम और सुरक्षा मिली थी। इसलिए वह अहंकारी और स्वार्थी हो गयी थी। भाभी जब उसे कन्हैया का गू-मूत उठाने को कहती तो वह नाक-भौं सिकोड़कर यही सोचती कि दूसरी को क्यों नहीं कहती। उन सबको भी भइया प्यारा तो था पर उनकी फ्रॉक पर उसका पेशाब करना उन्हें सख्त बुरा लगता और कभी-कभी तो उसकी इस हरकत पर वे एक-आध धौल भी जड़ देतीं, जिसकी शिकायत तत्काल दूसरी बहन भाभी तक पहुँचा देती और फिर कन्हैया के हाथ में लकड़ी देकर उन्हें मारना सिखाया जाता कि जीजी गन्दी, पत् कर दो।

कन्हैया की कल्पना-शक्ति नित नूतन बढ़ने लगी। उसके करतब भी बढ़ गये। वह दीवाल पकड़कर खड़ा होने लगा। लकड़ी की गाड़ी के सहारे दो-चार कदम चलने लगा। बाबा की मूँछों पर हाथ मारने लगा। जीजियों की चोटियाँ नहीं तो बाल नोचना उसने सीख लिया। रूठना, मचलना, लोट जाना उसकी आदत में शुमार हो गया। थोड़ा और बड़ा हुआ तो लकड़ी के डण्डे को ही घोड़ा बनाकर सुबह सुबह ही सफर की तैयारी में लग जाता। जब उससे पूछा जाता कि घोड़े पर किसे बिठाओगे तो सबके मुँह की तरफ देखकर, जिससे उसका मतलब हल होने की सम्भावना लगती, उसी की ओर अँगुली उठा देता, और वह निहाल हो जाता। वह उसको गोदी में उठाकर वहीं से आवाज देता, गोपाल देना तो एक लड्डू, और तुरत आवाज आती 'लाया साब'। गोपाल की दूध, मिठाई की दूकान हमारे घर के ही एक कमरे में थी जो सड़क की ओर थी। बस, आवाज दी नहीं कि गोपाल का नौकर घसीटा लड्डू लिये हाजिर। गोपाल पैसे लिख लिया करता। लड़कियों को मिठाई देने की मनाही हो गयी थी। फिर भी गोपाल का दूध, मिठाई का बिल महीने में पचास रुपये का हो ही जाता था और लगभग इतना ही डाक्टर का भी।

कन्हैया तुतलाकर बोलने लगा। ठुमक-ठुमककर चलने लगा।

हम सभी ठहरे सिनेमा प्रेमी और भाभीजी हम सबमें ज्यादा। कहीं पर शुरू हुआ 'ले गयी दिल...' करते वहीं अदा के साथ गाना गाने की कोशिश करता

ग्रौर बस केवल 'दिल' वह कर रह जाता। भाभीजी उसे बार-बार पूरा गाना सुनाती तो बड़ी मुश्किल से इतना ग्रौर सीख लिया—'घायल कल दिया' (घायल कर दिया) जब कभी वह भूलकर बाबाजी को सुना बैठता तो एक मिनट को सफेद मूंछें भी महक उठतीं, पर दूसरे ही मिनट वे चिल्लाने लगते—तुम सबने तो सिनेमा देख-देखकर सत्यानाश कर ही डाला, अब इस बूँदभर के बच्चे को भी अपने-जैसा बनाने में लगे हो।

अब वह २ वर्ष का होने ही वाला है। कहा जा रहा है कि तीसरा लगते ही उसका मुण्डन करा दिया जायगा। अभी तो उसके बड़े-बड़े बाल, जिन्हें रिबन से बांधकर उसकी जीजी लोग गुह दिया करती हैं, उसके लडके लडकी में कोई फर्क ही नही रहने देती। कभी-कभी वह फ्रॉक भी पहन लेता है जो उससे साल भर बड़ी बहन की है। वह छोटा मूढा रखकर ऊँची खाट पर भी चढ जाता है, ग्रौर बड़ी ग्रदा से कहता है 'चढ्य ग्राये।' ग्रलमारी में रखी चीजें उतार लेता है। बन्द ग्रालमारी में पडी कील निकालकर उसे खोलकर खाने-पीने की चीजों पर ग्रपनी उस्तादी दिखाता है। इनमें बहुधा नुकसान होता रहता है।

ग्रब उसकी पिटाई होने लगी है। इसकी शिकायत दौड़कर जाकर बाबा से कहता है—'मम्मी ने 'माल' (मार) दिया' ग्रौर चट्ट से बाबा के ही एक हाथ जमाकर बता देता है कि ऐसे मारा। बाबा कहते हैं 'ग्रच्छा हम मारेंगे' तो वह खुश होकर खेलने लगता है।

उसके पिताजी ग्रौर माताजी में यही झगडा चलता है कि बेटा पापा का है या मम्मी का ग्रौर वह इतना चण्ट हो गया है कि कभी पापा का कह देता है, कभी मम्मी का।

हम चाचा लोगो से बस बाजार जाने भर की दोस्ती है, जहां वह हर चीज की फरमाइश करता है। न लेने पर रूठता है, मचलता है। ग्रौर तो ग्रौर वहीं सडक पर गधे-सा लोटने लगता है।

हमलोग भी कम नही हैं। हमने ग्रपना स्नेह भतीजियों से बढा दिया है, जो एक गिलास पानी तो पिला देती हैं। इनसे तो खिलाये-पिलाये का कुछ नहीं, बस जरा-सा मारदो तो भाई साहब, भाभी की हाईकोर्ट से लेकर ग्रपने बाबा की सुप्रीम कोर्ट तक दौड़ेंगे। बस छू भर दो कि उनको घाव हो गये। 'माल दिया माल दिया' की रट लगाकर रह जायेंगे। भाभी के पैर फिर भारी होने लगे हैं। ग्रबकी बार लडका ग्रौर हुग्रा तो बच्चू को मालूम पडेगा। भाभी ने तो ग्रभी से ग्रपने पास सुलाना बन्द कर दिया है। ग्रपना दूध पिलाना बन्द कर दिया है। ग्रब उनकी धोती पकडे रट लगाये रहते हैं 'दूध दे दे, दूध दे दें', ग्रौर वे हैं कि जान छुडाने की फिक्र में रहती हैं। कहती हैं चाचा के पास जाग्रो। वे पेन देंगे। बस मेरे पास ग्राये कि कहेंगे 'चाचा मेन दे दे' जब तक नही देंगे ग्रडे रहेंगे। दे दो तो मेरी तरह ही लिखने की नकल करेंगे, फिर उनको कागज भी चाहिए ग्रौर वह भी लिखा लिखाया नहीं बल्कि कोरा। पेन्सिल से उनका मन नहीं भरता, पेन ही चाहिए ग्रौर वह भी वही जिससे कि खुद लिख रहे हों। ग्रब कन्हैयाजी हर बात की नकल करनेवाले नकलची नटखट बन्दर हो गये हैं।

●

ननिहाल से ही ये फर्स्ट तरीके सीख आया है। उसके नाना ने सिखाया होगा, "बेटा जूठन नहीं छोड़ना चाहिए, पेटभर खा लेने के बाद अच्छी से-अच्छी खाने की चीज को भी छूना नहीं चाहिए।' इसके नाना तो अपने को गांधी का अवतार मानते है न ! पता नहीं किस दुनिया में रहते है ये लोग, दुनिया कितनी आगे बढ़ गयी, लेकिन ये लोग वही पुरानी गांधीवादी 'लीक' पीटते जा रहे हैं, कोई सलीका नहीं, जिन्दगी की कोई तहजीब नहीं ।" मिसेज मिश्रा को भी बण्टू की असभ्यता बुरी लगी थी, वह चिन्तित थी कि उसे किस तरह 'सोसाइटी' की 'कल्चर' सिखायी जाय, लेकिन जब मिस्टर मिश्रा ने मायके को, उसमें भी उनके पिताजी को उघेड़ना शुरू किया तो यह बात सहन की सीमा पार कर गयी। वह अपने पिता का बहुत सम्मान करती थी, बोली, "चमन की बहार लूटनेवाले कभी माली की कद्र करना नहीं सीखेंगे, क्योंकि यह उनके एटिकेट के खिलाफ है, लेकिन वह माली एक-एक पौधे को अपने पसीने से सींच-कर फूलने की स्थिति में न ला दे तो आप जिस चमन की बहार लूटते हैं, वह 'बहार' ही आपको नसीब न हो। गयी होगी आपकी दुनिया बहुत आगे, लेकिन मुझे तो यही दीख रहा है कि आपकी यह दुनिया आगे नहीं, सदियां पीछे चली गयी है, जहां मानवीय संवेदना का कोई स्पर्श नहीं रह गया है। एक ओर बिहार म लाखा लोग भूखा मर रहे हैं और दूसरी ओर यहां दिल्ली में जनता के सेवकों की एक-एक डिनर पार्टी में सैकड़ों लोगों के पेट भरने लायक खाने की चीजें बरबाद की जा रही हैं। . 'एटिकेट' के अलावा क्या कभी आपलोग 'मनुष्यता' के सवाल पर विचार करते हैं ? सोचते हैं ?" शायद मिसेज मिश्रा का पुराना संस्कार उभड़ आया था, जब वह अपने पिताजी के संरक्षण में देश और मनुष्यता का पाठ पढ़ती थी। उनके पिताजी 'स्वराज्य' के लिए साढ़े ग्यारह साल की जेल काट चुके थे, स्वराज्य के बाद भी सत्ता के संघर्ष में न पड़कर गांवों में ही सेवा का कार्य संचालन कर रहे हैं।

मिस्टर मिश्रा ने झुंझलाकर एक अमेरिकन 'सिगार' सुलगा लिया और खिड़की खोलकर बाहर झांकने लगे। लेकिन 'बण्टू' की समझ में यह बात नहीं आयी कि लोग भूखा क्यों मर रहे हैं, जबकि खाने के लिए 'केक', 'आमलेट', 'मिठाइयां', सब कुछ है, वह मिसेज मिश्रा से लिपट कर बोला, मम्मी ! लोग भूखों क्यों मर रहे हैं ? खाना क्यों नहीं खाते ?"

'बेटा, उनके पास खाने को कुछ भी नहीं है।'

'तो उनको खाना भेज दो न।'

'बेटा हम जितना खाना भेज सकेंगे, उतने से क्या होगा ? लाखों लोगों की बात है।'

'ओ माई गाड, ममी, लाखों लोगों के पास खाना नहीं है ? क्या ?'

बेटा उनके खेतों में अनाज ही नहीं पैदा हुआ। उनका खाना तो खेतों से ही पैदा होता है।'

'तो क्या खेत नाराज हो गये कि उनको खाना नहीं दिया ?'

'खेत नहीं बेटा, भगवान नाराज हो गये। इस साल पानी ही नहीं बरसा, और पानी नहीं बरसा तो खाने की चीजें कैसे पैदा होतीं ?'

'पानी कौन बरसाता है मम्मी ?

'भगवान।'

'तब तो भगवान बहुत 'फूलिश' है मम्मी।'

'ना ना बेटे, ऐसा नहीं कहते।'

'क्या मम्मी, मैं तो भगवान होता तो जरूर पानी बरसाता, इतना बरसाता कि कोई भूखा नहीं मरता।'

मिसेज मिश्रा ने 'बण्टू' को सीने से चिपका लिया। उनकी आंखें नम हो गयी, मिस्टर मिश्रा ने एक बार लम्बा 'कश' लिया, सिगार को मसलकर 'ऐशट्रे' में डाला और धुंआ घोटते हुए 'बाथरूम' की ओर चले गये।

●

दादी की दवा

•

राजनाथ राव

एक बड़े मुल्क की बात है। ठीक जनसंख्या तो नहीं मालूम, लेकिन ३४-३५ करोड़ के आसपास लोग होंगे वहां।

बहुत दिनों के बाद मुल्क को आजादी मिली थी, इसलिए राष्ट्रीय झण्डे अभिमान से लहरा रहे थे। ध्वजदण्ड की लम्बाई से देश अपने भावी उत्कर्ष की गहराई नाप रहा था।

गाजे-बाजे, रंग और आतिशबाजी के तोरण से आजादी का रथ आया। स्वराज्य-रथ के चालक थे अपने पुराने साधना-पूत नेता, जिनके कष्ट और त्याग की कहानी देश की भावी पीढ़ी के लिए एक कीमती धरोहर थी।

मन्त्रिमण्डल अपना था। देश के भाग्य का स्टार्ट-सुपैंट अपने लोगों के हाथ में था।

लेकिन स्वराज्य-शकट अभी आगे बढ़ने की चेष्टा ही कर रहा था कि कुशल चालकों के सम्मुख एक भयंकर मुश्किल आ पड़ी। बाजारों में अन्न मिलना मुश्किल हो गया। एक ने दूसरे से कहा, दूसरे ने तीसरे से, और होते होते, चर्चा बढ़ चली—देश में अन्न का अभाव है।

मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई। सहज ही अकाल का कारण मिल गया। देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष आधा करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है।

स्पष्ट था कि ऐसी हालत में अकाल का न आना ही आश्चर्य की बात होगी।

खैरियत थी कि अब अपना राज्य था। देश के नेता सतत जागरूक थे और शासन की बागडोर उनके हाथ में थी। सरकारी विज्ञप्ति निकली, लोग घबड़ायें नहीं, हम विदेशी जहाजों पर विदेश से अनाज ढो-ढोकर गल्ले का ढेर लगा देंगे। स्वराज्य में देश का एक बच्चा भी भूखों नहीं मरने पायगा।

लोगों को ढाढ़स हुआ।

बन्दरगाहों पर अनाज के जहाज एक मिनट में एक के हिसाब से आने लगे। अफसरों की मुस्तैदी देखकर चारों तरफ धन्य-धन्य का स्वर गूंज उठा।

लेकिन, सबकी हैरानी बढ़ी तब जब मालूम हुआ कि अन्न आ रहा है तो अवश्य, परन्तु लोगों की खरीदने की ताकत कम होती जा रही है। मुद्रा-विशेषज्ञों ने गम्भीरतापूर्वक कहा—सिक्के का फैलाव बढ़ गया है। मन्त्रिमण्डल को भी इसे स्वीकार करना पड़ा। देश की आधी आय विदेशों से अन्न मँगाने में खर्च होने लगी।

× × ×

उस दिन शाम को राजधानी के एक प्रमुख होटल में एक सरकारी बैठक हो रही थी। देश के सभी होशियार लोग बुलाये गये थे —उद्योगपति, अर्थशास्त्री, मजदूरों के नेता, खेती के महकमे के विशेषज्ञ आदि। प्रधान थे खेती विभाग के मन्त्री।

एक लम्बी टेबुल के चारों ओर कुर्सियाँ लगी हुई थीं। चौड़ाई की ओर एक ऊँची कुर्सी पर मन्त्री महोदय थे।

अतिथियों के स्वागतार्थ कुछ हल्के से चाय-पान का भी आयोजन था। मन्त्री महोदय को चाय नहीं पसन्द है। बहुत तेजस्वी चेहरा है; वेशभूषा अत्यन्त साधारण परन्तु सुरुचिपूर्ण। सन्तरे के रस का गिलास खाली करने के बाद करीने से रुमाल से मुंह पोंछा और कुर्सी को थोड़ा पीछे ठेलकर खड़े हो गये। लोगों ने सतर्क होकर कान घुमाये। भाषण लम्बा और विद्वत्ता-पूर्ण था—ताजे आँकड़ों से ओतप्रोत।

सिद्ध हुआ कि देश में स्थायी रूप से ७ प्रतिशत अन्न की कमी रहेगी ही। यही ७ प्रतिशत देश की आय का आधा आत्मसात् किये जा रहा है।

भाषण के बाद लोगों ने अपनी अपनी रायें पेश कीं। सभी एकमत थे कि खेती लायक जमीन बनायी जाय, वैज्ञानिक तरीकों से खेती की जाय, सिंचाई की योजनाओं पर और अधिक खर्च किया जाय तथा खाद के कारखाने खोले जायें।

प्रोफेसर साहब ने सेठजी की बातों को स्पष्ट किया और सेठजी ने प्रोफेसर साहब की पुष्टि अपने अपने अनुभव के आँकड़ों से की।

मजदूर नेताओं ने 'पूँजी' को भला-बुरा कहा और उद्योगपतियों ने मजदूरों से अधिक सहयोग की अपील की।

सारांश यह कि बैठक की कार्यवाही सुचारु रूप से चल रही थी और उठने के पहले अन्तिम 'काम' की प्रतीक्षा थी।

तभी, मन्त्री महोदय के तेज बाना का हाल के सामने के दरवाजे पर कुछ अव्यवस्था की भनक मिली। अर्दली तथा बैरों के मना करने पर भी एक आदमी ने सामने आकर मन्त्री महोदय को नमस्कार किया।

गाढ़े की धोती थी और गाढ़े की चादर कन्धों से लटक रही थी। सर और दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे। पैरों में धूल लिपटी हुई थी। मालूम होता था दूर से पैदल चलकर आया है।

उपस्थित लोगों की आश्चर्य से घूरती हुई आँखों को झेलता हुआ वह टेबुल के एक किनारे आकर खड़ा हुआ। फिर शान्त, किन्तु कुछ थकी हुई आवाज में कहने लगा—

"मैं बहुत दूर से चलकर यह कहने आया हूँ कि स्वराज्य की नाव गलत दिशा में ले जायी जा रही है। देश के ऊपर सबसे बड़ा खतरा यह है कि हमारे राष्ट्र के कर्णधारों में सही कदम उठाने का 'खतरा' लेने की हिम्मत नहीं है। इसीलिए वे देश के रोगों की दवा छपी हुई किताबों में विदेश की ओर नजर रखकर ढूँढ रहे हैं। बचपन में घर में जिस वक्त चावल नहीं रहता था, मेरी दादी सबको मट्ठा पिलाकर सुला देती थीं। जब दादा कहते कि पड़ोस से उधार क्यों नहीं ले लेतीं, कल-परसों लौटा देंगे तो वह दृढ़तापूर्वक दादा के प्रस्ताव को यह कहकर दबा देती कि एक वक्त खाना न मिलने से कोई मरेगा नहीं, लेकिन दूसरे से भीख लेने की आदत ग्रहण करने से अवश्य मृत्यु होगी, यह निश्चित समझना। मैं आप विद्वानों के सामने दादी की वही बात रखने आया हूँ। मैंने हिसाब किया है। साल में ५२ इतवार होते हैं। यदि हममें से प्रत्येक आदमी इतवार को केवल एक वक्त भोजन करे तो अन्न की, प्रतिशत की कमी या ही पूरी हो जायगी। और तब प्रस्तावित योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए विदेशों से आवश्यक यन्त्रों को मँगाने में वह बचा हुआ धन व्यय किया जा सकेगा। आत्म निर्भरता भिक्षा वृत्ति से नहीं आयगी, संयम और आत्म-त्याग से आयगी। आत्म-निर्भरता के बिना स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं, यह मैंने दादी से ही सीखा है। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ। आप इन लोगों की मत सुनिए। विदेशों से अन्न मँगाने की विभीषिका को सर से उतार फेंकिए। नहीं तो वह आपको, हमको और हमारे इस नव-अर्जित स्वराज्य को खा जायगी ।"

अब आप इतना तो मानिएगा ही कि मन्त्री महोदय ने धैर्य और शिष्टता का एक सराहनीय स्तर कायम कर दिया। लोकशाही के सिद्धान्तों की पूर्ण रक्षा करते हुए उन्होंने संयत शब्दों में उस सिरफिरे भूले आदमी से सभाभवन से चले जाने की प्रार्थना की। और वह आदमी भी ऐसा कि उसने भी वह प्रार्थना मान ली।

यदि अशिष्टता न समझी जाती तो उपस्थित विद्वन्मण्डली ठठाकर हँस लेने के बाद अपने को हल्का अवश्य कर लेती। फिर भी, उन्होंने कार्यवाही के इस अंश को एक मनोरंजक विषयान्तर के रूप में ही स्वीकार किया।

दूसरे दिन देश के प्रमुख राष्ट्रीय पत्रों ने इस घटना को छापकर अपने पत्र के ऊँचे स्तर को नीचा नहीं किया। हाँ, कुछ अन्य पत्रों ने, जिनकी गम्भीरता की मर्यादा अभी स्थिर नहीं हो पायी थी, मोटे शीर्षकों में छापा—

देश की खाद्य समस्या पर दादी का नुस्खा ?' ●

छात्र-समाज के लिए चुनौती और उत्तर

•

अमरनाथ

बिहार प्रदेश में अकाल की काली छाया गहरी होती जा रही थी। देश-विदेश से जन, धन, अन्न, वस्त्र, औषधि, साधन आदि अकाल पीड़ितों के सहायतार्थ पहुँच रहे थे। जिस मुक्तता, निष्ठा तथा तन्मयता के साथ ये बिहार में पहुँचाये जा रहे हैं, इससे वसुधैव कुटुम्बकम् का स्वप्न साकार होता दिखता है। ठीक इसके विपरीत दुख होता था, यह देखकर कि इस संकट की घड़ी में बिहार का छात्र-समाज अपने कर्तव्य के प्रति इतना उदासीन क्यों है। जब प्रदेश में अकाल के परिणामस्वरूप पैदा हुई गम्भीर परिस्थिति युवकों के पुरुषार्थ को चुनौती दे रही हो उस समय मुजफ्फरपुर, पटना आदि नगरों में छात्रों द्वारा हिंसक विस्फोट की तैयारियाँ चल रही हों, इस स्थिति से किसी भी विवेकशील नागरिक के हृदय को आघात पहुँचना स्वाभाविक है। ऐसे मौकों पर हमेशा यह लगता है कि इन युवक मित्रों की शक्ति के सदुपयोग के लिए सही दिशा न मिलने के कारण ही उनके द्वारा अवांछित घटनाएँ घटती रहती हैं। इस स्थिति के लिए श्री जयप्रकाशबाबू के मन में दर्द था। उन्होंने अपने साथियों से बातचीत की। बातचीत के परिणाम स्वरूप विद्यार्थियों के एक विशाल शिविर की योजना बनी। जयप्रकाशबाबू ने रिलीफ-काम में मदद पहुँचाने के लिए छात्रों का आवाहन किया। देखते देखते चन्द दिनों में १४ सौ आवेदन पत्र आ गये। सभी को शिविर में आने के लिए निमंत्रित किया गया। कुल साढ़े तीन सौ विद्यार्थी शिविर में सम्मिलित हुए। शिविर में मुख्यतया बिहार के ही विद्यार्थी थे, किन्तु राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, मध्यप्रदेश, आसाम उड़ीसा, आन्ध्र, मद्रास, केरल, मैसूर, महाराष्ट्र, गुजरात तथा बंगाल प्रदेश का प्रतिनिधित्व शिविर में हुआ था। पूरे शिविर का संचालन गांधी जन्म शताब्दि के जन-सम्पर्क उपसमिति के मंत्री श्री एस० एन० सुब्बाराव ने किया। शिविर अखिल भारत शान्तिसेना मण्डल के सहयोग से बिहार रिलीफ कमिटी के तत्त्वावधान में आयोजित किया गया था।

सामूहिक रैली

एक जून को प्रातः साढ़े सात बजे पटना में सामूहिक रैली से शिविर का प्रारम्भ हुआ। शिविरार्थियों सहित नगर के छात्रों, नागरिकों, संस्थाओं के प्रतिनिधियों आदि को लेकर कुल लगभग एक हजार की संख्या रैली में हो गयी थी। चिलचिलाती धूप में खुली जीप पर खड़े श्री जयप्रकाशजी रैली का नेतृत्व कर रहे थे। बीच में बिहार के शिक्षा मंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर भी जुलूस में कुछ समय के लिए शामिल थे। रैली के साथ संग्रह का आयोजन भी किया गया था। दान देने में जिस उदारता का दर्शन हुआ, उसे देखकर आनन्दाश्रु उमड़ पड़ते थे। राह चलते कई युवक अपनी पहनी हुई कमीज उतारकर दान माँगनेवाले के हवाले कर स्वयं बनियायन पहिने चल दिये।

एक लड़के ने पाउडर का एक लम्बा सा डब्बा भेंट किया, जिसमें पाउडर नहीं बल्कि उस लड़के द्वारा प्रतिदिन अपनी जेब-खर्च में से इकट्ठी की हुई २२ रुपये २८ पैसे की रकम निकली। बाल बनानेवाले नाई, तथा जूता सीनेवाले मोची भी इस यज्ञ में अपनी आहुति डालने से पीछे नहीं रहे।

रैली के दरम्यान लगभग ६,००० नकद रुपये, ढेर-सी दवाएँ तथा कपड़े कुल चार घण्टे की अवधि में मिले। माँगनेवाले, देनेवाले और देखनेवाले सभी जैसे नशे में झूम रहे हों। मानो वे वास्तविक दृश्य नहीं, स्वप्न देख रहे हों। कुल मिलाकर एक अजीब समा बँध गया

था। शिविर के आयोजकों ने इस रैली को ही शिविर की सफलता की बुनियाद माना।

रैली की समाप्ति के बाद विद्यार्थियों ने अलग अलग टुकड़ियों में संगठकों के साथ मुंगेर, शाहाबाद, हजारीबाग, गया, सारण, भागलपुर संथालपरगना जिलों के लिए प्रत्यक्ष कार्यहेतु प्रस्थान किया। शिविर में किये जानेवाले कामों को मुख्यतया तीन भागों में बाँटा जा सकता है —

१ श्रम प्रोजेक्ट, २ रिलीफ-काम में सहायता ३ शिविर-जीवन।

श्रम-प्रोजेक्ट

युवकों में श्रमनिष्ठा जगाने, उनकी शारीरिक शक्ति को प्रवृत्त करने तथा सामूहिक कार्य के आनन्द का अनुभव कराने की दृष्टि से शिविर-स्थल के निकट ही श्रम प्रोजेक्ट का चुनाव किया गया था। तीन घन्टे शरीर-श्रम का काम चलता था। तालाब-खुदाई के समय मिट्टी खूब कड़ी रहने के कारण फावड़ा चलाते समय किसी वाद्य-यन्त्र-जैसी आवाज होती थी। अभ्यास न रहने के कारण विद्यार्थियों के हाथ में छाले पड़ गये, बदन में दर्द होने लगा। हाथों की मुट्ठियाँ बँध नहीं पाती थी, फिर भी किसी अज्ञात प्रेरणा से रोज प्रातः प्रार्थना के बाद कन्धे पर फावड़ा और हाथ में टोकरी लिए पंक्तिबद्ध सहगान करते हुए वे श्रम के लिए निकल पड़ते थे और मस्ती से झूम उठते थे। हैण्ड पाइप बैठाने के लिए बोरिंग का काम लगातार ६-६ घण्टे करते भी वे हार नहीं मानते थे। बोरिंग के समय पाइप में से मिट्टी तथा पानी मिश्रित कीचड़ से चोटी से एड़ी तक वे ऐसे ढँक जाते थे कि पहचानना मुश्किल हो जाता था। आँख, मुँह, कान में भी कीचड़ भर जाता था। 'पानी निकालकर ही आज वापस लौटेंगे' के संकल्प के आगे कीचड़ की कुछ भी परवाह नहीं होती थी।

तालाब खुदाई तथा बोरिंग के अतिरिक्त कुओं की सफाई, नहरों की सफाई, बाँध बाँधना तथा नाली बनाने आदि का काम हुआ। श्रमदान में सभी शिविरों में कुल मिलाकर ६७ हजार घनफुट मिट्टी काटने का काम हुआ। २१० कुओं में ब्लीचिंग पाउडर छोड़े गये। सात हैंड पाइप की बोरिंग की गयी।

रिलीफ-कार्य में सहायता

बिहार रिलीफ कमिटी तथा अन्य संस्थाओं द्वारा क्षेत्र में चल रहे राहत-कार्यों में शिविरार्थियों ने सहायता की। १५,००० लोगों को कपड़े वितरित किये गये। लगभग २० सौ लोगों को हैजे तथा चेचक के टीके लगवाये गये। ३ हजार रुपये का बीज वितरित किया गया। लाल राशन कार्डों की जाँच की गयी तथा २ सौ २५ नये राशन-कार्ड बनवाये गये। १४ दुग्ध-वितरण-केन्द्रों में मदद दी गयी। ८१ मुफ्त भोजनालयों के संचालन में सहायता दी गयी। २९० गाँवों में सम्पर्क किया गया।

जहाँ प्रत्यक्ष कार्य करते हुए कपड़े आदि के वितरण में एकाध शिविर में कुछ अनियमितताएँ हुई वहीं पर एक शिविर में कपड़े वितरित करते समय सभी शिविरार्थियों ने स्वयं के पहने हुए कपड़े भी गाँववालों में वितरित किये। कुल मिलाकर जिला रिलीफ कमिटी के प्रभारियों ने शिविरार्थियों के द्वारा किये गये काम के प्रति सन्तोष व्यक्त किया। शिविरार्थियों में भी उत्साह तथा आत्मविश्वास की वृद्धि हुई।

शिविर-जीवन

शिविरों में नियमित रूप से प्रातः-साय प्रार्थना, सामूहिक सफाई, सामूहिक भोजन, बौद्धिक वर्ग, गोष्ठियाँ खेल-कूद तथा रंजन आदि कार्यक्रम चलते थे। भाषा, प्रदेश, संस्कार, स्वभाव, रुचि तथा मतता की विभिन्नताओं के बावजूद शिविरार्थियों में परस्पर स्नेह, सहकार, भाईचारा तथा मैत्री का वातावरण दिखता था। आपस के व्यवहारों में प्रसंगवश कभी कभी थोड़ी टकराहट भी हो जाती थी। किन्तु वे तो थे ही लड़के, फिर क्या न लड़े। उस लड़ने का भी एक आनन्द था। विभिन्न प्रदेशों के स्कूल कालेज से आये हुए, तथा विभिन्न भाषा-भाषी विद्यार्थी एक दूसरे से अपरिचित, संगठकों के लिए अपरिचित तथा इस प्रकार के कार्यक्रम और वातावरण से अपरिचित रहने के बावजूद अनुशासित तथा संयमित रूप से अठारह दिन तक बिना किसी अवांछित घटना के मिल-जुलकर एक साथ रहे। यह अपने में एक बहुत ही आशाप्रद तथा प्रेरणादायी प्रसंग था।

६ जिलों के शिविर १८ जून को समाप्त हुए, किन्तु

भागलपुर जिले के जिला रिलीफ कमिटी के प्रभारी, शिविर-संगठकों तथा शिविरार्थियों ने ३० जून तक शिविर चलाने का निश्चय किया और चला। सभी संगठकों ने १९ जून को पटना सदाकत आश्रम में एकत्र होकर शिविर मूल्यांकन में भाग लिया। युवक-शक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग देखकर सभी आशा तथा उत्साह से भरे हुए थे।

शिविर की पूर्व तैयारी के समय काम के सिलसिले में पटना नगर के कई प्रमुख लोगों से सम्पर्क आया था। एक दिन पटना विश्वविद्यालय के एक उच्च अधिकारी ने कहा कि आप लोगों को क्या सूझा है? इस इन्फ्लेमेबुल एलिमेंट (ज्वलनशील तत्त्व) को लेकर आप शिविर करने जा रहे हैं? इनसे कुछ नहीं होने का। उस सज्जन के इस वाक्य में उनके लम्बे शिक्षण-काल का अनुभव बोल रहा था। इसी आशय की कई बातें समय समय पर लोगों से सुनने को मिलती थीं। इस प्रकार की चेतावनियों से हम आयोजकों के मन में शिविर की सफलता के सम्बन्ध में कुछ आशंका-सी पैदा हुई। लेकिन शिविर की अवधि में जो दृश्य देखने को मिला तथा विद्यार्थियों के जिस पुरुषार्थ का दर्शन हुआ उससे आरम्भ की वह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई तथा इन छात्र मित्रों के प्रति श्रद्धा और दृढ़ हुई।

प्रश्न यह है कि आज समाज में छात्र-समुदाय के प्रति जो एक उपेक्षा अथवा आतंक का वातावरण बनता जा रहा है उसमें क्या छात्रों का ही दोष है? अनेक शिक्षा विशारदों तथा विचारकों ने इस स्थिति के लिए सरकार, समाज, शिक्षण-संस्थाएँ तथा परिवार के भी वातावरण, नीति तथा मूल्यों को दोषपूर्ण माना है। विनोबाजी ने तो कई बार कहा है कि ऐसी गलत शिक्षा पाने के बावजूद छात्र इतने अनुशासित कैसे रहते हैं।

समय समय पर शिविरों के माध्यम से पिछले कुछ वर्षों में विद्यार्थी मित्रों के साथ जो सम्पर्क आया है उसपर से प्रतीत होता है कि इन किशोरों में असीम पुरुषार्थ, रचनात्मक सूझ बूझ, निर्माण की लगन तथा कुछ कर गुजरने की उत्कट इच्छा सारी प्रतिकूलताओं के बावजूद आज भी शेष है। आवश्यकता है योग्य मार्गदर्शन की। ●

शैक्षिक समाचार

मैसूर की पढ़ाई कन्नड़ में

१४ जून—मैसूर के शिक्षामंत्री ने कहा है कि राज्य में आगामी पाँच वर्षों में इंजीनियरिंग व डाक्टरी को छोड़कर बाकी सभी स्तरों पर शिक्षा क्षेत्रीय भाषा कन्नड़ में दी जायगी। उसके बाद के आगामी पाँच वर्षों में उपरोक्त दोनों स्तरों पर भी पढ़ाई कन्नड़ में ही कर दी जायगी।

बिहार में ७ वीं तक निःशुल्क शिक्षा

२५ जून—बिहार के राज्य-शिक्षामंत्री श्री उपेन्द्र-नाथ वर्मा ने कहा है कि अगले शैक्षणिक सत्र से राज्य में ७वीं कक्षा तक निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जायगी। इस समय ५वीं तक शिक्षा निःशुल्क है।

सरकारी पत्र-व्यवहार हिन्दी में

२९ जून—बिहार मंत्रिमण्डल ने कल अपनी एक बैठक में यह फैसला किया कि भारत सरकार और उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और महाराष्ट्र की सरकार के साथ पत्र-व्यवहार अनिवार्य रूप से हिन्दी में किया जाय। यह भी फैसला किया गया कि अधीनस्थ अफसरों के साथ समस्त सरकारी पत्र-व्यवहार हिन्दी में किया जाय।

अँग्रेजी में फेल विद्यार्थी पास

२९ जून—मध्यप्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री परमानन्द भाई पटेल ने घोषणा की है कि इस वर्ष की

उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में जो छात्र केवल अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण हुए हैं वे सब उत्तीर्ण माने जायेंगे। जो अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी एक और विषय में अनुत्तीर्ण होंगे, उन्हें उस विषय की पूरक परीक्षा देनी होगी।

शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा

१ जुलाई—केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० सेन ने ५० बड़े विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की बैठक में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में बताया कि आगामी ५ वर्षों में शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ होंगी। अब इन भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सरकार हर सम्भव सहायता देगी।

इस बैठक में कुछ अन्य प्रतिष्ठित शिक्षा-शास्त्री भी उपस्थित थे। डा० सेन ने कहा कि मातृभाषा के शिक्षा का माध्यम होने से कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु इसके लिए विश्वविद्यालयों को अभी रथ-प्रयत्न करना होगा।

प्रादेशिक भाषाओं को राज्यों में शिक्षा का माध्यम बनाने के केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के प्रयत्न की ओर यह गोष्ठी पहली है इसके बाद अन्य राज्यों में भी इस प्रकार की गोष्ठियाँ आयोजित की जायेंगी।

उन्होंने दुःख प्रकट किया कि विश्व में केवल भारत ही ऐसा देश है जहाँ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा न होकर एक विदेशी भाषा है।

डा० सेन ने उपकुलपतियों तथा शिक्षा शास्त्रियों से अपील की कि वे निर्धारित ५ वर्षों के समय में ही अंग्रेजी के स्थान पर प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में भरपूर सहयोग दें।

तीन भाषा के बजाय दो भाषा

४ जुलाई—शिक्षा के विषय पर बनी हुई ३० संसद सदस्यों की समिति ने देश के लिए एक नयी-भाषा-नीति की सिफारिश की है।

समिति ने जो गत सप्ताह यहाँ केन्द्रिय शिक्षा-मंत्री श्री त्रिगुण सेन की अध्यक्षता में बैठी थी, अपनी सिफारिशों को सरकार के सामने रखने के लिए अन्तिम रूप दे दिया है।

नयी शिक्षा-नीति का सारांश यह है कि स्कूलों में जो मौजूदा त्रिभाषी फार्मूला प्रचलित है, उसकी जगह द्विभाषी फार्मूला लागू हो जायगा। लेकिन, समिति ने यह इच्छा भी संकेत रूप में व्यक्त कर दी है कि हर छात्र अपनी स्कूल की पढ़ाई के दौरान स्वेच्छा से कोई तीसरी भाषा भी जान ले।

समिति ने स्कूल की पढ़ाई दस साल की रखी है और यह कहा है कि प्राथमिक स्तर तक छात्र केवल एक भाषा क्षेत्रीय भाषा या मादरी जबान का अध्ययन करे।

प्राथमिक शिक्षा के बाद दूसरी स्टेज में स्कूलों को १० वीं कक्षा तक वह भाषा पढ़ानी पड़ेगी जिसका संविधान की ८ वीं अनुसूचि में उल्लेख है या क्षेत्रीय भाषा के अलावा अंग्रेजी भी।

आठवें दर्जे से एच्छिक विषय के रूप में कोई तीसरी भाषा भी पढ़ी जा सकती है।

समिति की यह राय है कि क्षेत्रीय भाषा अर्थात मातृभाषा, हिन्दी और अंग्रेजी व कोई अन्य भाषा स्कूल स्टेज तक पढ़ाना वाञ्छनीय न होगा। जहाँ हायर सेकण्डरी स्टेज में क्षेत्रीय भाषा के अलावा एक अतिरिक्त भाषा की पढ़ाई होगी, वहाँ विश्वविद्यालय की स्टेज पर कोई भाषा अनिवार्य नहीं रहेगी कालेजों में भाषा की पढ़ाई केवल ऐच्छिक विषय रहेगा।

समिति ने शिक्षा नीति के सम्बन्ध में तुरत कार्रवाई के लिए जो महत्वपूर्ण कार्यक्रम सुझाये हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं—

१ प्राथमिक स्तर पर बच्चों को किताबें मुफ्त सप्लाई की जायें।
२ सारे देश में समस्त बच्चों के लिए पाँच वर्ष में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था का शीघ्र से शीघ्र प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
३ सारे देश में १० वर्षीय स्कूल पद्धति लागू की जानी चाहिए। इस दौरान बच्चों को सामान्य शिक्षा दी जानी चाहिए।
४ अध्यापकों के, विशेष कर स्कूलों के अध्यापकों के, वेतन स्तर में सुधार किया जाना चाहिए। प्रत्येक

श्रेणी के अध्यापकों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम वेतन निर्धारित किये जाने चाहिएँ। स्कूल व कालेजों के अध्यापकों के वेतनों के बीच जो भारी फर्क है, उसे कम किया जाना चाहिए।

५ कृषि सम्बन्धी अनुसंधान व कृषि शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

६ शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव व राष्ट्रीय सेवा को अनिवार्य किया जाना चाहिए।

७ १० वीं कक्षा तक विज्ञान व गणित की पढ़ाई अनिवार्य रूप से हो।

८ छात्रों की भलाई व कल्याण के लिए आवश्यक योजनाओं को तुरत लागू किया जाना चाहिए।

९ पोस्टग्रेजुएट शिक्षा व अनुसन्धान में सुधार किया जाना चाहिए और उसका विस्तार किया जाना चाहिए।

१० लड़कियों और पिछड़े वर्ग के बच्चों की शिक्षा का विस्तार होना चाहिए।

११ उद्योगों में लगे १५ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक के मजदूरों की शिक्षा के लिए भी कार्यक्रम चालू किये जाने चाहिएँ।

१२ आंशिक (पार्ट टाइम) शिक्षा की सुविधाएँ बड़े पैमाने पर दी जानी चाहिएँ।

इस नयी शिक्षा नीति का एक बड़ा परिणाम यह निकलेगा कि हिन्दी भाषी राज्यों में अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी और इसी तरह गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी अनिवार्य नहीं रहेगी।

इसी के साथ ही हिन्दी भाषी व अहिन्दी भाषी राज्यों के उन छात्रों की अंग्रेजी व हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ेगी जो इन भाषाओं में से किसी को ऐच्छिक रूप में पढ़ना चाहते हैं।

लोक-सेवा-आयोग की परीक्षाएँ

५ जुलाई—गृहमंत्रालय के राज्य मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने बताया कि संघीय लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में प्रत्येक व्यक्ति चौदह भाषाओं में से किसी भी एक भाषा के माध्यम से प्रश्नों का उत्तर देने के लिए स्वतंत्र रहेगा। लोक सेवा आयोग इसके लिए तैयारी कर रहा है, लेकिन इसे लागू करने में अभी समय लगेगा।

राजभाषा सम्बन्धी विधेयक की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह बहुत नाजुक प्रश्न है। लेकिन इतना अवश्य है कि हिन्दी राज्यों की सम्पर्क-भाषा होगी लेकिन किसी को ऐसी शिकायत करने का मौका नहीं देंगे कि हिन्दी के राजभाषा हो जाने से किसी अहिन्दी-भाषी का नुकसान होता है।

उत्तर प्रदेश में अँग्रेजी अनिवार्य नहीं

५ जुलाई—उत्तर प्रदेश के शिक्षामंत्री श्री रामप्रकाश ने राज्य विधान सभा में कहा कि राज्य सरकार ने छात्रों की इस माँग को स्वीकार नहीं किया है कि इस वर्ष हाई स्कूल और इण्टर की परीक्षाओं में जो छात्र केवल अँग्रेजी में फेल हुए हैं उन्हें उत्तीर्ण घोषित किया जाय। उत्तर प्रदेश में अब तक इन परीक्षाओं में अँग्रेजी अनिवार्य विषय था।

श्री रामप्रकाश ने कहा कि हाई स्कूल में तीन अनिवार्य विषयों के स्थान केवल दो ही विषय हिन्दी और गणित अनिवार्य रखे जायँगे तथा अँग्रेजी वैकल्पिक विषय हो जायगा। इण्टरमीडिएट में अब दो के बदले केवल हिन्दी को अनिवार्य विषय रखा जायगा। उन्होंने कहा कि सरकार ने जिला परिषदों द्वारा संचालित प्राथमिक स्कूलों के हेडमास्टरों की सेवाओं का प्रादेशिकीकरण करने का निश्चय कर लिया है। ऐसा करने से शिक्षा का स्तर उन्नत बनेगा और शिक्षा-संस्थाओं से राजनीति हमेशा के लिए समाप्त हो जायगा।

शिक्षामंत्री ने सदन को आश्वस्त किया कि सरकार प्राथमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के वेतन के बारे में शीघ्र ही घोषणा करेगी। सिद्धान्ततः में यह बात स्वीकार कर ली गयी है कि प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों का वेतन कम-से-कम १५० रु० होना चाहिए।

उन्होंने कहा कि सरकार ने स्कूलों और कालेजों के संचालन व काम-काज के निरीक्षण के लिए एक समिति गठित करने का निर्णय किया है। इसमें शिक्षक एसोसिएशनों और शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धकों के प्रतिनिधि और शिक्षा शास्त्री शामिल होंगे। विशेषज्ञों की एक दूसरी समिति बनायी जायगी जो राज्य में शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए अपने सुझाव देगी। ●

प्राथमिक शालाओं को बुनियादी का रंग देना

•

बनवारीलाल चौधरी

बुनियादी तालीम के शासन की मान्य नीति होने से शिक्षकों के लिए इन शालाओं को बुनियादी तालीम का रंग देना सम्भव है। शिक्षक की बुनियादी तालीम में यदि निष्ठा हो तो न केवल ऐसा करना सम्भव ही है वरन सरल भी है। *अपने विद्यार्थियों का सर्वांगीण* विकास करने हेतु एवं शाला को समाज की चुनौतियों का उत्तर देने योग्य बनाने के लिए यह प्रयत्न करना शिक्षकों का कर्तव्य भी हो जाता है। आगे दर्शायी बातों को शाला में असली रूप देने से शिक्षा का रूप परिवर्तित होगा।

श्रम प्रतिष्ठा

शिक्षा के सही विकास एवं समाज उत्थान के लिए शिक्षा में श्रम प्रतिष्ठा की स्थापना पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। *समाज के आवश्यक सब काम समान* महत्ता के हैं। कोई भी अनिवार्य कार्य कभी भी हीन न समझा जाय। मानस पर, भावना में, विचार और आचार में यह संस्कार जमाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि शाला में भंगी, फर्राश और पानी पाण्डे न हों। ये कार्य विद्यार्थी और शिक्षक मिल कर करें। शिक्षक का सहश्रम अवश्य रहे।

स्वावलम्बन

उत्पादक श्रम बुनियादी तालीम का प्राण है। इसलिए शाला के *उद्योग एवं अन्य उत्पादक प्रवृत्तियों* का ऐसा रूप हो कि विद्यार्थी शिक्षा युक्त रूप में अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में स्वावलम्बन का पाठ पा सकें।

सर्व धर्म-समभाव

भारत एक ऐसा देश है जिसने संसार के सब धर्मावलम्बियों को समान आश्रय दिया है। सब ही धर्म और संस्कृतियों का यहाँ पावन संगम है। सब धर्म अच्छे हैं, मुक्ति के मार्ग हैं। इस भावना से सब धर्मों के प्रति श्रद्धा *जाग्रत करना शिक्षा का एक महान् कर्तव्य है।*

चरित्र-निर्माण

प्रजातन्त्र की सफलता चरित्रवान् नागरिकों पर निर्भर करती है। जिम्मेदार नागरिक बनाना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण ध्येय है। शिष्टाचार, सदाचार और सद्व्यवहार का ज्ञान चरित्र निर्माण का एक अंग होगा।

सुचिता

बालकों के मन पर सफाई व स्वच्छता के उत्तम संस्कार पड़ें। सफाई, स्वच्छता और फैशन, सफेदी, चमक-दमक का व भेद समझ सकें। रूप ऐसा हो कि सुचिता से आत्मदर्शन प्राप्त हो सके।

ग्राम-प्रवेश एवं समाज-सेवा

शाला के पाठ्यक्रम का रूप और कार्यक्रम ऐसा हो कि *क्रमशः शाला की शिक्षा विद्यार्थियों के माध्यम* के द्वारा गांव के घर घर में प्रवेश पा जाये। शाला एक रूप में ग्राम घरों की, परिवारों की, समाज की खामियों का पूरक हल प्रस्तुत करे। बालकों तथा शाला के वातावरण और जीवन-व्यवहार एवं उनके घरों के वातावरण और जीवन व्यवहार में आज जो अन्तर है वह मिटे। शाला में लिया गया प्रत्यक्षिक कार्य का एक *पाठ ऐसा हो कि उसे बालक के घर में दुहराये बिना* वह पूर्ण ही न होगा। शाला की सफाई का प्रदर्शन बालक के घर की स्वच्छता में होना चाहिए।

सामाजिक कुरीतियों का निराकरण

छुआछूत, पर्दाप्रथा सरीखी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में शाला का पूर्ण योगदान हो। शाला का वातावरण ऐसा हो जहाँ बालकों के मन में हरिजन, *दरिजन, सवर्ण आदि भावनाएँ न उठें। बालकों द्वारा* लड़कियों के प्रति आदर का व्यवहार करना उन्हें प्रौढ़ावस्था में महिलाओं के प्रति आदर का व्यवहार बनाये रखने का प्रत्यक्ष पाठ होगा। •

अनुक्रम

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छह रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- समालोचना के लिए पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ भेजनी आवश्यक होती हैं।
- टाइप हुए चार से पाँच पृष्ठ का लेख प्रकाशित करने में सहूलियत होती है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

आहार और पोषण

लेखक—झवेर भाई पटेल

छोटे से लेकर बड़े तक शिशु से लेकर बूढ़े तक, सब भोजन करते हैं। लेकिन हम भोजन क्यों करते हैं ? कैसे करते हैं ? किस भोजन में कौन से तत्त्व है और तत्त्वों का शरीर-पोषण में क्या स्थान है क्या महत्व है ये बातें विरला ही जानता है। इस पुस्तक में माँ और बच्चों के बीच बातचीत के ढंग से हमारे आहार और पोषण के सभी पहलुओं की चर्चा की गयी है। पुस्तक का यह नया संस्करण है, जिसमें दोनों भागों को एक में कर दिया गया है। पुस्तक हर पालक (माँ-बाप) को पढ़नी चाहिए और आहार-तत्त्व की जानकारी प्राप्त कर बच्चों के जीवन को सुपुष्ट बनाने की ओर अग्रसर होना चाहिए। मूल्य १'५०

शान्ति-सेना परिचय

लेखक—नारायण देसाई

शान्ति-सेना क्या है ? उसके सैनिक कौन, कैसे बनते हैं ? वे गाँवों में और शहरों में क्या करते हैं ? गांधी और विनोबा ने शान्ति-सेना का गठन क्यों उचित माना ? प्रस्तुत पुस्तक में शान्ति सेना मण्डल के मंत्री श्री नारायण देसाई ने शान्ति-सेना की कल्पना, कार्य भविष्य और स्थान-स्थान पर किये गये सेवा-कार्यों की जानकारी दी है। १२८ पृष्ठ की पुस्तक का दाम प्रचार की दृष्टि से केवल ७५ पैसे रखा गया है।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन - राजघाट, वाराणसी १

नयी तालीम, जुलाई, '६७
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल. १७२३

अभी मरा नहीं है

केवल हड्डियाँ-हड्डियाँ है। हाथ-पैर लकडी की तरह कडे हो गये है। अधखुली

आँखें पथरा-सी गयी है। मुंह पर इतनी मक्खियाँ है, जितनी किसी सडे आम पर आ जाती है। पेशाब-पाखाने से चूतड सन गये हैं। पेट अतडियो में धँस गया है। चेहरा पीला, शरीर में जैसे खून नही रह गया है।

मैने अपने मित्र से कहा—'देखो, स्टेशन के पुल पर इस तरह लाश पडी है लेकिन किसी को चिन्ता नही कि हटवा तो दे। आने-जानेवाले देखते है, और देखकर चल देते है।'

जरा ध्यान से देखकर मित्र ने उत्तर दिया—'लगता है, मरा नही है। हलकी साँस आ रही है।'

मै बोल उठा—'क्या सचमुच अभी मरा नही है ?'

'हमारे देश में जाने कितने इसीलिए जिन्दा हैं कि मर नहीं रहे है'—मेरे मित्र ने चुपके से कहा।

—राममूर्ति

भावरण मुद्रक—खण्डेलवाल प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी।